स्व० आचार्य श्री रघुनाथजी म० के शिष्य पं० श्री ज्ञानचन्द्रजी म० के शिष्य प्र० श्री खुशालचन्दजी म० की ओर से सादर भेंट

जैनधर्म शिक्षावली

पंचम भाग

लेखक

उपाध्याय जैनमुनि आत्माराम जी महाराज पंजाबी

प्रकाशक

ला० शिवप्रसाद अमरनाथ जैन
अम्बाला शहर

ग्लोब प्रिन्टिंग वर्क्स लिमिटेड में
प० चन्द्रबल के प्रबन्ध से
छपवा कर प्रकाशित किया।

वि० सं० १९९९ पहलीवार १०००

॥ नमः श्री वर्द्धमानाय ॥

प्रथम पाठ ।

(ईश्वर स्तुति)

प्रिय बालको ईश्वर 'सिद्ध' परमात्मा 'खुदा' 'रब्ब' 'गाड' (GOD) इत्यादि यह जो नाम हैं सब उस परमेश्वर के ही नाम हैं जो कि संसार के तमाम प्राणियों के भावों को जानता है परमात्मा सर्वज्ञ और अनंत शक्तिमान होने से वह हमारे अन्दर के सब भावों के जानने वाला है हम जो भी पुण्य पाप करते हैं वे सब उसे ज्ञात हो जाते हैं इसलिये यदि कोई भी बुरा या अच्छा काम हम कितना ही छुपा कर भी करें मगर वह उस से छुपा नहीं रहता वह सब कुछ जानता है इसलिये सदा उसका ही स्मरण करो और कोई भी बुरा काम न करो ताकि तुम्हारी आत्मायें पवित्र हों ।

हे बालको यह भी याद रक्खो कि परमात्मा न किसी को मारता और न ही जन्म देता है और न ही वह

आप कच्छ मच्छ या और किसी रूप में खुद इस संसार में आता है यह तो इन बातों से निरलेप है न ही उसका इन से कोई सम्बन्ध है वह परमात्मा तो मुक्त रूप हमेशा सत चित आनन्द है।

जो लोग यह कहते हैं कि वह जन्म लेता या अवतार धारण करके इस संसार में आकर दुष्टों का नाश करता है वह सब उस से अज्ञात हैं ईश्वर का क्या आवश्यकता है कि वह इन झगड़ों में पड़े इस लिये यह कहना कि यदि कोई मरजावे कि हे ईश्वर तू ने क्या किया था इसको मार दिया यह महा पाप है जन्म मरण आदि जो भी सुख दुख संसार में जीव भोगते हैं यह सब अपने २ कर्मों के आधीन है इस में किसी का कोई चारा नहीं है इस लिये ईश्वर को ऐसे कामों में दोष देना उलटा पाप का भागी बनना है सो ऐसा मत कहो कि दुख सुख ईश्वर ही देता है सुख दुख तो अपना कर्तव्य कर्तव्य ही है ऐसा समझ कर हे बालको नित्य प्रति ईश्वर का ही भजन करते रहो ताकि तुम्हें सच्चा सुख मिले उसका जाप करने से विघ्न दूर होजाते हैं शान्ति की प्राप्ति होती है। जिस आधार में आत्मा लग जाता है

जिस से उसको आत्म ज्ञान की प्राप्ति होजाती है सो इस लिये सिद्ध परमात्मा का ध्यान अवश्य करना चाहिये ।

द्वितीय पाठ

[गुरु भक्ति]

प्रियवर ! शान्तिपुर नगर के उपाश्रय में प्रातःकाल और सायंकाल में दोनों समय नगर निवासी प्रायः सब श्रावक लोग एकट्ठे होकर संवर, और सामायिक वा स्वाध्याय आदि धर्म क्रियाएं करते हैं जिस से उन लोगों को धर्म परिचय विशेष होरहा है स्वाध्याय के द्वारा हर-एक पदार्थ का यथार्थ ज्ञान होजाता है यथार्थ ज्ञान के होने पर धर्म पर दृढ़ता विशेष बढ़ जाती है स्वाध्याय करने वाला आत्मा उपयोग पूर्वक हर एक पदार्थ के स्वरूप को भली प्रकार से जान लेता है जब यथार्थ ज्ञान होगया तब उस आत्मा ने हेय, ज्ञेय, और उपादेय, के स्वरूप को भी जान लिया अर्थात् त्यागने योग्य, जानने योग्य, और ग्रहण करने योग्य, पदार्थों को जब जान गया

तब आत्मा सच्चरित्र में भी आसक्त होसकता है। अतः स्वाध्याय अवश्य करना चाहिये।

आज प्रातःकाल का समय है हर एक श्रमणोपासक अपने २ आसन पर बैठे हुए नित्यकर्म कर रहे हैं—कोई सामायिक कर रहा है कोई सम्वर के पाठ को पढ़ रहा है, कोई स्वाध्याय द्वारा अपने वा अन्य आत्माओं के संशयों का दूर कर रहा है।

इतने में बाबू कपूरचन्द्रजी जैन बी ए० अपने किए हुए सामायिक के काल का पूरा हुआ जानकर सामायिक की आलोचना करके शीघ्र ही आसन का बांध कर तय्यार होकर चलने लगे तब बाबू-हेमचन्द्रजी ने पूछा कि—आप आज इतनी शीघ्रता क्यों कर रहे हैं तब बाबू कपूरचन्द्रजी ने प्रति वचन में कहा कि—आप क्या आप को मालूम नहीं है कि श्रीगुरु महाराज पधारने वाले हैं।

हेमचन्द्र! जब गुरुमहाराज पधारने वाले हैं तो फिर आप इतनी शीघ्रता क्यों करते हो यहां पर ही ठहरिये! जिस से गुरु महाराज जी के दर्शन भी हाजाएं।

कपूरचन्द्र ! गुरु महाराज के दर्शनों के लिए ही शीघ्रता कर रहा हूं ।

हेमचंन्द्र ! जब गुरु महाराज के दर्शनों की उत्कण्ठा है तो फिर शीघ्रता क्यों करते हो ।

कपूरचन्द्र ! गुरु महाराज की भक्ति के लिए ।

हेमचन्द्र ! गुरु महाराज की भक्ति किस प्रकार करनी चाहिए ।

कपूरचन्द्र ! जब गुरु महाराज पधारें तब आगे उनको लेने जाना चाहिए। जब वह पधार जाएं तब कथा व्याख्यान आदि कृत्यों में पुरुषार्थ करना चाहिए । जब वह आहार पानी के लिये कृपा करें तब उनको निर्दोष आहार देकर वा दिलवा कर लाभ लेना चाहिये। जब तक वह विराजमान रहें तब तक सांसारिक कार्यों को छोड़ कर उन से हर एक प्रकार के प्रश्नों को पूछ कर संशयों से निवृत्त हो जाना चाहिये। क्योंकि जब गुरु महाराज जी से प्रश्नों के उत्तर न पूछे जाएं तो भला और कौन सा पवित्र स्थान है जिस से सन्देह दूर होसके।

हेमचन्द्र ! गुरु भक्ति से क्या होता है ।

कपूरचन्द्र ! प्रियवर ! गुरु भक्ति से-धर्म प्रचार बढ़ता है परस्पर संप की वृद्धि होती है बहुत सी आत्माएं गुरु भक्ति में लग जाती हैं जिस से गुरु भक्ति की प्रथा बनी रहती है और कर्मों की महा निर्जरा होजाती है अतएव ! गुरु भक्ति अवश्यमेव करनी चाहिये।

हेमचन्द्र ! सखे ! जब गुरु इस उपाश्रय में पधार जाएंगे तब पूर्वोक्त बातें हो सकती हैं तो फिर बाहिर जाने की क्या आवश्यकता है।

कपूरचन्द्र ! वयस्य ! जब गुरु पधारें तब उनको आगे लेने जाना जब वह विहार करें तब उनकी शक्ति अनुसार बहुत दूर तक पहुंचाने जाना इस प्रकार भक्ति करने से नगर में धर्म प्रचार होजाता है फिर बहुत से लोग गुरुओं को पधारे हुए जान कर धर्म का लाभ उठाते हैं इस लिये ! अब स्वामी जी के पधारने का समय निकट होरहा है हम सब श्रावकों को उनकी भक्ति के लिए आगे जाना चाहिए तब बाबू हेमचन्द्रजी ने सब श्रावकों को सूचित कर दिया कि-स्वामी जी महाराज पधारने वाले हैं अतः हम सब श्रावकों को उनकी भक्ति के लिए आगे जाना चाहिये।

हेमचन्द्र जी के ऐसे कहे जाने पर सब श्रावक इकट्ठे होकर गुरु महाराज जी के लेने को आगे चले तब जो जो श्रावक मार्ग में मिलते जाते थे वह सब साथ होते जाते थे जब मुनि महाराज बहुत ही निकट पधार गये तब लोगों ने गुरु महाराज जी के दर्शनों से अपनी आंखों को पवित्र किया। तब बड़े समारोह के साथ गुरु महाराज बहुत से अपने शिष्यों के साथ जैन उपाश्रय में पधारगये।

वहां पीठ (चौंकी) पर विराजमान होकर लोगों को एक बड़ी ही रमणीय जिनेन्द्र स्तुति सुनाई उसके पश्चात् अनित्य भावना के प्रतिपादन करने वाला एक मनोहर पद पढ़कर सुनाया गया जिसको सुन कर लोग संसार की अनित्यता देख कर धर्म ध्यान की ओर रुचि करने लगे तब मुनि महाराज जी ने मंगली सुनाकर लोगों को प्रत्याख्यान करने का उपदेश किया तब लोगों ने स्वामी जी के उपदेश को सुनकर बहुत से नियम प्रत्याख्यान किये।

फिर दूसरे दिन उपाश्रय में जब श्रावक लोग वा जैनेत्तर लोग इकट्ठ हुए तब मुनि महाराजजी ने धर्म

विषय पर एक बड़ा मनोहर व्याख्यान दिया जिसको सुनकर लोग अत्यन्त प्रसन्न हुए क्योंकि वह व्याख्यान क्या था मानों अमृत की वर्षा थी तब उपाश्रय में लोगों ने बैठ कर विचार किया कि यदि इस प्रकार के व्याख्यान पबलिक में हो जायें तब जैन धर्म की प्रभावना भी हो सकती है और साथ ही जो लोग यहां पर नहीं आते उनको धर्म का लाभ भी हो सकता है।

जैन मण्डल ने इस सम्मति को स्वीकार करके नगर में पत्रों द्वारा सूचित किया कि प्रिय भ्रातृगण। हमारे शुभोदय से स्वामी जी
महाराज यहांपर पधारे हुए हैं और आज दिन २ बजे से लेकर चार बजे तक स्वामी जी का "मनुष्य जीवन का उद्देश्य क्या है" इस विषय पर व्याख्यान होगा— अतः आप सर्व सज्जन जन व्याख्यान में पधार कर धर्म का लाभ उठाइये और हम लोगों को कृतार्थ कीजिये। जब इस लेख के पत्र नगर में वितीर्ण किएगये तब सैंकड़ों नर वा नारियें नियत समय पर व्याख्यान में उपस्थित होगए। उस समय स्वामी जी ने अपने व्याख्यान में मनुष्य जीवन के मुख्य दो उद्देश्य बतलाये— एक तो "सदाचार"

दूसरे "परोपकार" इन दोनों शब्दों की पूर्ण रीति से व्याख्या की" तब लोग बड़े प्रसन्न होते हुए स्वामी जी को चतुर्मास की विज्ञप्ति करने लगे परन्तु स्वामीजी ने इस विज्ञप्ति को स्वीकार नहीं किया तब लोगों ने कुछ व्याख्यानों के लिये अत्यन्त विज्ञप्ति की। स्वामीजी ने पांच व्याख्यान देने की विज्ञप्ति स्वीकार करली फिर उन्होंने धर्म विषय, अहिंसा विषय, स्त्री शिक्षा, विद्या विषय, कुरीतिनिवारण विषय, इन पांचों विषयों पर पृथक् २ दिन दो २ घंटे प्रमाण व्याख्यान दिये जिन को सुनकर लोग मुग्ध होगये बहुत से लोगों ने उन व्याख्यानों से अतीव लाभ उठाया। बहुत से लोगों ने स्वामी जी से अनेक प्रकार के प्रश्नों को पूछकर अपने २ शंशयों को दूर किया।

जब स्वामी जी के विहार करने का समय निकट आगया तब स्वामी जी ने विहार कर दिया। उस समय सैंकड़ों लोग भक्ति के वश होते हुए स्वामीजी को पहुंचाने के वास्ते दूर तक गये। फिर स्वामीजी ने वहां पर भी उन लोगों को अपने मधुर वाक्यों से "प्रेम" विषय पर एक उत्तम उपदेश सुनाया और उसका फलादेश भी वर्णन किया.

जिसको सुनकर लोग अत्यन्त प्रसन्न होते हुये स्वामी जी को वंदना नमस्कार करके अपने २ स्थानों में चले आए।

मित्र वरो ! गुरु भक्ति इसी का नाम है जिसके करने से धर्म प्रभावना और कर्मों की निर्जरा होजावे। अनेक आत्मायें धर्म से परिचित होजायें। सो गुरु भक्ति सदैव करनी चाहिये गुरुओं का ध्यान भी अपने मन में सदैव रखना चाहिये जैसेकि जिस दिन गुरु देवों ने जिस नगर से विहार किया हो उसी दिन से ध्यान रखना कि वह कब तक यहाँ पधार जायेंगे। यदि किसी कारण वश से वह नियत समय से हुये समय पर न पधार सकें तब किसी द्वारा उनका समाचार लेना उसके अनुसार गुरु देव की फिर सेवा भक्ति करनी यह नियम प्रत्येक गृहस्थ का होना चाहिये।

यद्यपि ! गुरु देव अपनी रुचिके विरुद्ध कुछ भी काम नहीं करवाते किंतु गृहस्थों के सदा भाव उनके दर्शनों के बने रहने चाहियें। और उनके मुख से जिन वाणी सुनने के भी भाव सदैव होने चाहियें। सो यही गुरु भक्ति है।

तृतीय पाठ

(जैन सभा विषय

वर्द्धमान नगर के एक विशाल चौक में बड़ा ऊंचा एक भवन बना हुआ है जो कि उस बाजार में पहिले वही दृष्टि गोचर होता है उस समय "शान्ति प्रशाद" श्रावक नगर में भ्रमण करता हुआ वहां पर भी आ निकला जब उस स्थान के पास गया तब उसने एक मोटे अक्षरोंमें लिखा हुआ साइनबोर्ड (Sign-board) देखा जब उसने उसको पढ़ा तब उसको मालूम होगया कि— यह जैन सभा का स्थान है क्योंकि—"साइनबोर्ड" पर लिखा हुआ था कि—

"श्री श्वेताम्बर (स्थानक वासी जैन सभा)"

"उसी समय शान्ति प्रशाद ने विचार किया कि" चलें ऊपर चल कर देखें कि इस नगर की जैन सभा की क्या व्यवस्था है इस प्रकार विचार करके वह ऊपर चला गया तब वह क्या देखता है कि जैन सभा के

सभासद् बैठे हुये हैं और बहुत से लोग जैन वा अजैन भी आरहे हैं सभापति जी भी अपने नियत स्थान पर बैठे हुये है। सभा भली हीं सुसज्जित हो रही है 'मेज और कुरसी' भी लगी हुई है और "मेज" पर बहुत सी पुस्तकें रक्खी हुई हैं। तब शान्ति प्रशाद् ने पूछा कि- इस सभा के नियम क्या २ हैं और सभासद् वा उपाधिधारी कितने हैं। उस समय सभापति ने उत्तर में कहा कि—यह सभा साप्ताहिक है जो प्रत्येक रविवार के दिन के छः बजे लगती है और सभापति "उपसभापति" "मन्त्री" "उपमन्त्री" "कोशाध्यक्ष" प्रमाणोर मदाता" इत्यादि सभी उपाधिधारी हैं और दो सौ के अनुमान सभासद् हैं सभा की ओर से एक "जैन पाठशाला" भी खुली हुई है और एक "उपदेशक क्लास भी है" जिसमें अनेक उपदेशक तय्यार करके बाहिर धर्म प्रचार के लिये भेजे जाते हैं उन्हों के धर्म प्रचार के आये हुये पत्र प्रत्येक रविवार को सर्व सज्जनों को सुनाये जाते हैं और उसी का आय (आम) और व्यय (खर्च) भी सुनाया जाता है ॥

सभा में अनेक विषयों पर व्याख्यान दिये जाते

हैं इतनी बातें होते ही सभा का काम आरम्भ किया गया सभा की भजन मण्डली ने बड़े सुन्दर भजन गाने आरम्भ करदिये जिनको सुनकर प्रत्येक जन हर्षित होता था। भजनों के पश्चात् सभापति अपने नियत किये हुये आसन पर बैठ गये। तब मंत्री जी ने बाहिर से आये हुये पत्रों को पढ़कर सुनाया जिनमें दो पत्र अतीव उपयोगी थे वह इस प्रकार सुनाये गये।

श्रीमान् मन्त्री जी जय जिनेन्द्र देव !

विनय पूर्वक सेवा में निवेदन है कि–आप की सभा के उपदेशक पण्डित ························ साहिब कल्ल दिन यहां पर पधारे उन का एक आम (प्रकट) व्याख्यान करवाया गया अन्यमतावलम्बियों के साथ ईश्वर कर्तृत्व विषय पर एक बडा भारी संवाद हुआ नियम विषय पूर्वक प्रबन्ध किया हुआ था उन की ओर से दो सन्यासी पूर्व पक्ष में खड़े हुए थे हमारे पण्डित जी उत्तर पक्ष मे खड़े हुए थे सात दिन तक नियम बद्ध शास्त्रार्थ होता रहा अंत में उन सन्यासियों ने इस पूर्व पक्ष को उपस्थित किया कि फल प्रदाता ईश्वर

अवश्य है" क्योंकि—उसको फल देने की स्वयं ही स्फुरणा उत्पन्न होजाती है" इसके उत्तर में हमारे पंडित जी ने कहा कि—जब ईश्वर को आप सर्वव्यापक मानते हैं तब आप यह भी बतलाइये कि—स्फुरणा उस ईश्वर के एक अंश में होती है या सर्व अंशों में" यदि एक अंश में स्फुरणा होती है तब स्वतः न रही" यदि सर्व अंशों में स्फुरणा होजाती है तब फल तो एक जीव का देना था परन्तु मिल गया सब जीवों को? यह अच्छा पयवा ईश्वरीय न्याय हुआ" और कर्मों का फल (दण्ड) था इसलिए ऐसा होता है कि—और लोग दुष्ट कर्म करने छोड़ दें परन्तु जब हम एक वेश्या की पुत्री को देखते हैं जो कि एक बड़े सुन्दर रूप को धारण किए होती है तब हम इस बात का विचार करने लगते हैं कि—यदि इसको परमात्मा ने ही जन्म दिया है तब तो परमात्मा ने अपने आप ही व्यभिचार को फैलाना चाहा क्योंकि—यदि वह ऐसा रूप न देता तो फिर काम क्यों व्यभिचार करते यदि उस ने अपने किए हुए कर्मों के कारण से ऐसा रूप स्वयमेव प्राप्त किया है तो फिर परमात्मा को फल भुगाता मानने की क्या आवश्यकता है" तो वह सन्यासी इस पक्ष

पक्ष के खंडन करने में असमर्थ हो गए" सभापति ने जय की ध्वजा हमारे हाथ में दी-अनेक लोगों ने ईश्वर कर्तृत्व भ्रम को छोड़ दिया" अब यहां पर जैन सभा की स्थापना हो गई है ।

प्रति रविवार सभा लगती है जिस से धर्म प्रचार खूब ही हो रहा है।

भवदीय—

"मन्त्री-जिनेश्वरदास-सिंहल द्वीप"

श्रीयुत मन्त्री जी जय जिनेन्द्र !

प्रार्थना है कि-आप की सभा के उपदेशक पण्डित श्रीयुत............................। यहां पर पधारे उन्हों का एक सार्वजनिक व्याख्यान "जैन संस्कार विधि" पर कराया गया सभा में लोगों की सख्या अतीव थी लोगों ने जैन संस्कार विधि को सुन कर अति हर्ष प्रकट किया ।

और आनंद का विषय यह हुआ कि-लाला "प्रमोदचंद्र" जी ने अपने सुपुत्र "शान्ति कुमार का" जैन संस्कार विधि के अनुसार विवाह किया है और १००० सहस्र

रुपये आप के उपदेशक फंड को दान किये हैं जो भेजे जाते हैं कृपया पहुंच से कृतार्थ करें।

मवदीय—

मन्त्री—पथि द्वीप—

जब मन्त्री जी ने इन दोनों पत्रों को सुना दिया तब लोगों ने अति हर्ष प्रकट किया तब सभापति ने धर्म प्रचार विषय पर एक मनोहर व्याख्यान दिया जिस को सुन कर लोग अति प्रसन्न हुए। तदन्तु सभा की भजन मंडली ने एक मनोहर जिन स्तुति गाकर सभा का साप्ताहिक महोत्सव समाप्त किया इस महोत्सव का देख कर शान्ति प्रसाद जी बड़े प्रसन्न हुए और यह मन में निश्चय किया कि—हम भी अपन नगर में इसी प्रकार अनुकर्ण करतहुये धर्म प्रचार करेंगे ॥

चतुर्थ पाठ

(भवन जैन कन्या पाठ शाला)

आनन्द पुर नगर के एक बड़े पवित्र मौहल्ला में जैन कन्या पाठ शाला का स्थान है वहां लौकिक वा धार्मिक

दोनों प्रकार की शिक्षा दी जाती हैं साथ ही शिल्पकला भी योग्यता पूर्वक सिखलाई जाती है इस पाठशाला में सुयोग्य अध्यापकाएँ काम करती हैं कन्याओं की संख्या १०० सौ की प्रति दिन हो जाती हैं ।

नगर में इस पाठ शाला की शिक्षा विषय चर्चा फैली हुई है कि–जैसी इस पाठ शाला की पढ़ाई वा प्रवन्ध है ऐसा और किसी पाठ शाला का प्रवन्ध नहीं है ।

प्रायः हर एक कन्या वार्षिक महोत्सव में पारितोषिक लेती है और विदुषी वन कर यहां से निकलती है ।

आज पाठशाला के वार्षिक महोत्सव का दिन है प्रत्येक कन्या अपने पवित्र वेष को धारण करके आ रही हैं चारों ओर झंडियें लगी हुई हैं पाठ शाला में "दया सूचक" वैराग्य प्रदर्शक 'मनोरंजक" अनेक मनोहर चित्र लटक रहे हैं पाठ शाला के कर्मचारी–सभा पति आदि भी बैठे हुए हैं तव उसी समय "जिनेन्द्रकुमार" और "देवकुमार" दोनों मित्र भी वहां पहुंच गए आपने

श्रीयुत मुन्शी जी की आज्ञा लेकर पाठ शाला में प्रवेश किया तब आप ने इस भवन को देखा तब आप चकित हुए गए और उन कन्याओं की योग्यता देख कर बड़े ही प्रसन्न हुये—सैंकड़ों कन्याएं जिनस्तुति मनोहर स्वर से गा रही हैं बहुत सी कन्याएं धर्म शास्त्र की पढ़ाई में पारितोषिक ले रही हैं श्री भगवान् महावीर स्वामी की जय घोष रही हैं।

नाटक समाप्त होने के पीछे एक "सरस्वती" नाम वाली कन्या ने जिनेन्द्र स्तुति पढ़ी है परन्तु उसी स्तुति में मनुष्य जीवन के उद्देश का फोटू (चित्र) खींच दिया है जिस से उसने वह पारितोषिक भी प्राप्त किया है उस के पश्चात् एक कन्या पद्मावती ने खड़े होकर स्त्री समाज की ओर लक्ष्य लेकर निम्न प्रकार से अपने मुख से उद्गार निकाले, जैसे कि—

ए प्यारी बहनो! आप को यह भली भांति मालूम ही है कि आज एक महा शुभ दिन है जो प्रति वर्ष में यह दिन एक बार आता है इसमें हमारी वार्षिक परीक्षा भी होती है हम समाज की वर्तमान में क्या दशा

होरही है वह अवश्य शोचनीय है कारण कि हमारी स्त्री समाज अशिक्षित प्रायः बहुत है इसी कारण से वह अवनति दशा को प्राप्त हो रही है जो पूर्व समय में जिस स्त्री को रत्न कहा जाताथा आज वह स्त्रीस्त्रीसमाज में भार रूप हो रही है उसका मूल कारण यह है कि—मेरी बहनें ! अपने कर्तव्यों को भूल गई हैं केवल 'रोष' 'पति से लड़ाई' 'अति तृष्णा सासू से विरोध' तथा जो पड़ोसी हैं उनसे अनमेल सदा रखती हैं—सारा दिन घर के काम काज को छोड़ कर व्यर्थ निंदा, चुगली, हर एक बात में छल व झूठ इत्यादि व्यर्थ बातों से दिन व्यतीत करती हैं।

जो शास्त्रीय शिक्षाओं से जीवन पवित्र बनाना था उन को छोड़ ही दिया है भला पति से कलह तो रहता ही था साथ ही जो संतान उत्पन्न हुई है उस के साथ भी वर्ताव अच्छा देखने में कम आता है जैसे—पुत्रों को अयोग्य, गालियें देना, कन्याओं को असभ्य वचन बोलने, गर्भ रक्षा की यह दशा देखने में आती है कि—चुल्हे की मिट्टी, कोयले, स्वाहा, कारेक, पवित्र पदार्थों

के स्थान पर यह खाने में आते हैं, सारा दिन भैंस की तरह लेटे रहना यदि शिक्षा की भावे तो सचाई करम में चीज ही क्या है।

कभी वह समय था कि-हमारी बहनें! पति का साथ देती थी। सास सुसरे का देव की नाई पूजती थी। घर की लक्ष्मी कहलाती थीं, सुख दुःख में सहायक बनती थीं, उनकी कृपा से घर एक स्वर्ग की उपमा को धारण किए रहता था।

यदि पति किसी कारण से घबराहट में भी आ जाता था तो वह घर में आकर स्वर्गीय आनन्द मानता था। आज पति पति घर में शान्ति धारण किए हुए भी आता है तो घर में आते ही भाड़ की आग के समान तप्त हो जाता है। कारण कि-हमारी बहनें! आज कल खान पान की भूखी हैं। वस्त्रों की भूखी हैं। आभूषणों की भूखी हैं। एकान्त रहने की भूखी हैं। मान की भूखी है। इतना ही नहीं किन्तु लड़ाई की भूखी तो बहुत ही हैं। जिस से घर बाहर या गृहस्थ धाम सब तंग आ गए हैं यह सब कारण हमारा समाज के अवनति के ही हैं।

जब लौकिक कार्यों में ऐसी दशा है तो भला धर्म विषय को कहना ही क्या है। जैसे कि—घर के काम काज हमें विना देखे न करने चाहिएं। खान पान के पदार्थ भी विना देखे ग्रहण न करने चाहिएं। जैसे कि—ऐसी बहुत सी बहनें। दाल, शाक, वा चुन, आदि के पकाते समय, कोड़ी, सुसरी, आदि जीवों को न देखती हुई उन्हें भी शाक आदि पदार्थों के साथही प्राणों से विमुक्त करदेती हैं। जिस से खाना ठीक नहीं रहता और कई प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं। अतः मेरी प्यारी बहनो। हमें हर एक कार्य में सावधान रहना चाहिये। हमारा पतिव्रत धर्म सर्वोत्कृष्ट है जैसे हर एक प्राणी को अपने जीवन की इच्छा रहती है। उसी प्रकार हम को अपना जीवन भी पवित्र बनाना चाहिये। जिससे कि—हम औरों के लिये आदर्श रूप बन जायें। पवित्र जीवन धर्म से ही बन सकता है सो हम को धर्म कार्यों में आलस्य न करना चाहिये। बलकि—सम्वर,—सामायिक, प्रतिक्रमण पौषध, दया, आदि शुभ क्रियायें करनी चाहियें मुनि महाराजों के वा साध्वियों के, नित्यप्रति दर्शन करने चाहियें और उन के व्याख्यान नियम

पूर्वक सुनने चाहिये-जो मिथ्यात्व के कर्म हैं जैसे-शीतला पूजन, देवी पूजन, मढ़िया पूजन, श्राद्ध धर्म, इत्यादि कर्मों से चित्त हटाना चाहिये। पुत्र जन्म, विवाह आदि शुभ कार्यों में जो धार्मिक संस्थाओं का दान दिये जावे हैं साथ ही रजो हरण, या रजो हरणी, मुख वस्त्रिका, आसन, माला, इत्यादि धार्मिक उपकरणों का दान भी करना चाहिये जिस से धार्मिक कार्य सुख पूर्वक हो सकें। फिर सामायिकादि कर के धर्म समय स्वाध्याय या ध्यान में ही लगाना चाहिये। मुझे शोक से कहना पड़ता है कि-मेरी बहुत सी बहनें। नवकार मन्त्र का पाठ भी नहीं जानतीं हैं। और साधु वा आर्याओं के दर्शन तक भी नहीं करतीं इस लिये। मैं और कुछ न कहती हुई अपनी प्यारी बहनों से यही प्रार्थना कर के बैठती हूं कि-आप अपना पवित्र जीवन शास्त्रीय शिक्षाओं से अलंकृत करें। जिस से हम औरों के लिये आदर्श बन जायें क्योंकि-श्री भगवान् ने हम को चारों तीर्थों में एक तीर्थ रूप बतलाया है जैसे कि-साधु, साध्वी, श्रावक, और श्राविका, सो हम को तीर्थ ही बनना चाहिये।

जब पद्मावती देवी का भाषण हो चुका तब श्रीमती विद्यावती देवी ने इस भाषण का अनुमोदन किया अनुमोदन क्या था वह एक प्रकार का पवित्र पुष्पों का हार गुंथा हुआ था ॥ उस के पश्चात् "शान्ति देवी" उठ कर इस प्रकार कहने लगी। कि—मेरी प्यारी बहनों वा माताओ! मैं आप का अधिक समय न लूंगी मैं अपनी वक्तृता को शीघ्र पूर्ण करूंगी—क्योंकि—श्रीमती "पद्मावती" देवी ने जो कुछ स्त्री समाज का दिग्दर्शन कराया है वह बड़े ही उत्तम शब्दों में और संक्षेप में वर्णन किया है जिस का सारांश इतना ही है कि—हमें गृहस्था वास में रहते हुए प्रेम से जीवन निर्वाह करना चाहिये जैसे एक राजा ने अपनी सुशीला कुमारी से पूछा। कि—हे पुत्री! मैं तुम्हारा विवाह संस्कार करना चाहता हूं किन्तु मुझे तीन प्रकार के वर मिलते हैं जैसे कि—रूपवान्! विद्वान्! और धनवान्! इन तीनों में से जिस पर तेरा विचार हो सो तू कह तब कन्या ने इस के उत्तर में कहा कि—हे पिता जी मुझे तीनों की इच्छा नहीं है। तब पिता ने फिर कहा कि—हे पुत्री! तेरी इच्छा किसपर है। उसने फिर प्रतिवचन में कहा कि

पिता जो ! मा मेरे से "प्रेम" करे मुझे तो उसी की इच्छा है" सो इस कहानी का सोरांश इतना ही है कि— हर एक कार्य प्रेम से ठोक बन सकता है—प्रेम से ही" यह संस्था कार्य कर रही है इस का हिसाबकिताब इसप्रकार से है इसतरह संस्था का पूर्ण वृत्तान्त कह चुकने पर शान्ति देवी ने यह भी कहा कि—हमें जो स्त्रियां किसी प्रकार, का दान पुत्र उत्पन्न होने पर या विवाह अथवा मृत्यु आदि संस्कारों या सम्वत्सरी आदि पर्वों पर देती हैं "हम उनसे सामायिक करने की "पाटियां" "आनु पूर्वियां" "आसन" "रजोहरनियां" "मुखवस्त्रिकायें" "माला" आदि मंगवाकर स्त्रियों में ही बांट देती हैं" और जो जैन विधवा" बहनें या कि—इसतरह से असमर्थ हैं उनको सहायताएं कुछ दे देती हैं इस प्रकार यह संस्था काम कर रही है सो जिस बहन को चाहिये वह धर्म पुस्तकें और सामायिक करने का सामान ले सकती हैं और जो जैन विधवा स्त्री सहायता के योग्य हो उस का पता हमें देकर उसको सहायता पहुंचा सकती हैं इस प्रकार शान्ति देवी के कहे चुकने पर फिर सभापति ने यथा योग्य सब कन्याओं को पारितोषिक देकर वार्षिक महोत्सव समाप्त

किया जय ध्वनि के साथ महोत्सव मनाया गया इस दृश्य को देखकर जिनेन्द्र कुमार" वा" देव कुमार" वड़ेही प्रसन्न हुए और उन्हों ने निश्चय किया कि हम भी अपने नगर में इसी प्रकार जैन कन्या पाठशाला स्थापन करके धर्मोन्नति करें क्योंकि धर्मोन्नति करने का यह वडा ही उत्तम मार्ग है इस के द्वारा धर्म प्रचार भली भांति से हो सकता है।

पांचवा पाठ

(जैन सूत्रानुसार मुहूर्तादि के नाम)

प्रियवरो ! समय विभाग करने के लिये गणित विद्या की आवश्यकता पड़ती है सो गणित विद्या का नाम ही ज्योतिषः शास्त्र है यद्यपि गणित एक साधारण शब्द है किन्तु जब खगोल विद्या की ओर ध्यान दिया जाता है तब चांद सूर्य ग्रह आदि की गमन क्रिया की गणित द्वारा काल संख्या मानी जाती है फिर उन ग्रहों की राशिए आदि के देखने से गणित के द्वारा शुभाशुभ फल का ज्ञान भी हो जाता है परन्तु यह बड़ा गहन विषय है किन्तु यहां पर तो केवल मुहूर्त्त आदि के ही सूत्रानुसार नाम

दिए जाते हैं जिस से जब बालादि के नाम विद्याविदों के कण्ठास्थ हो जाएं। दिन रात के तीस महूर्त होते हैं (मुहूर्त दो घड़ी के काल का नाम है) उनके निमित्त शिल्पकार नुसार नाम बतलाए गए हैं। जैसे कि—रौद्र १ श्रेयान २ मित्र ३ वायु ४ सुपीत ५ अभिचन्द्र ६ माहेन्द्र ७ बलवान् ८ ब्रह्म ९ बहुसत्य १० ईशान ११ त्वष्टा १२ भावितात्मा १३ वैश्रमण १४ वारुण १५ आनन्द १६ विजय १७ विश्वसेन १८ प्राजापत्य १९ उपशम २० गन्धर्व २१ अग्निवैश्य २३ शतवृषभ २२ आतपवान् २४ अमम २५ ऋणवान् २६ भौम २७ वृषभ २८ सर्वार्थ२९ राक्षस ३० इस प्रकार तीस मुहूर्तों के नाम बतलाए गए ।

एक पक्ष के पंचदश दिन होते हैं सो पंचदश दिवसों के नाम यह हैं जैसे कि—पूर्वांग १ सिद्धमनोरम २ मनोहर ३ यशो भद्र ४ यशोधर ५ सर्वकाम समृद्ध ६ इन्द्र मूर्द्धाभिषिक्त ७ सौ मनस ८ धनञ्जय ९ अर्थसिद्ध १० अभिजात ११ अत्यशन १२ शतञ्जय १३ अग्नीवेश्या १४ उपशम १५ अब दिवसों के नाम हैं अब पंच दश रात्रियों के नाम भी जानने चाहिएं इसी न्याय को अवलम्ब करके अब रात्रियों के नाम इस प्रकार से बतलाए हैं

जैसे कि—उत्तमा १ सुनक्षत्रा २ एलापत्या ३ यशोधरा ४ सौमनसी ५ श्री सम्भूता ६ विजया ७ वैजयन्ती ८ जयन्ति ९ अपराजिता १० इच्छा ११ समाहारा १२ तेजा १३ अति तेजा १४ देवानन्दा १५।

इस प्रकार वर्णन करते हुए साथ में यह भी वर्णन कर दिया है कि दिन और रात्रियों की तिथीयें भी होती है वह इन प्रकार से हैं जैसे कि दिवसों की तिथियें यह हैं। नन्दा १ भद्रा २ जया ३ तुच्छा ४ पूर्णा ५ इन को तीन वार गिनने से यही पंच दश दिवस तिथियें होती हैं।

पच दश रात्रि तिथियें यह है जैसे कि—अग्रवती १ भोगवती २ यशोमती ३ सर्वसिद्धा ४ शुभनामा ५ इन को तीन वार गिनने से यही पच दश रात्रि तिथियें कही जाती हैं। और एक वर्ष के वारह मास होते हैं उनके नाम दो प्रकार से कथन किए गए हैं जैसे कि—लौकिक—और लोकोत्तर—जो लोक में सुप्रसिद्ध हों उन्हें लौकिक नाम कहते हैं जो केवल शास्त्रों में ही प्रसिद्ध हों उन्हीं का नाम "लोकोत्तर" नाम है। सो लौकिक नाम वारह

मासों के नाम हैं जैसे कि—श्रावण १ भाद्रपद २ आश्विन ३ कार्तिक ४ मृगशीर्ष ५ पोष ६ माघ ७फाल्गुण ८ चैत्र ९वैशाख, १० ज्येष्ठ ११ आषाढ़ १२ अपितु लोकोत्तर नाम यह हैं जैसे कि—अभिनन्द १ सुप्रतिष्ठ २ विजय ३ प्रीतिवर्द्धन ४ श्रेयान् ५ शिव ६ शिशिर ७ हैमवान् ८ वसन्त मास ९ कुसुम संभव १० निदाघ ११ वन विरोधी (वन विरोध) १२ यह बारह मास लोकोत्तर कहे जाते हैं अपितु सूर्य प्रज्ञप्ति सूत्र के दशवें प्राभृत के उन्नीसवें प्राभृत प्राभृत की टीका में लिखा है कि—"प्रथमः श्रावणरूपोमासः अभिनन्दः" इत्यादि इन शब्दों से यह सिद्ध होता है कि—जिस को लौकिक पक्ष में श्रावण मास कहते हैं उसी को जैन मत में "अभिनन्द" नाम से लिखा है इसी क्रम से हर एक मास के विषय में जानना चाहिये।

जो कि नीचे दिये हुये कोष्ठक से जान लीजिये

लौकिक मास	जैन मास
१ श्रावण	१ अभिनन्द
२ भाद्रवपद	२ सुप्रतिष्ठ
३ आश्विन	३ विजय
४ कार्तिक	४ प्रीतिवर्द्धन
५ मृगशीर्ष	५ श्रेयान्
६ पौष	६ शिव
७ माघ	७ शिशिर
८ फाल्गुण	८ हैमवान्
९ चैत्र	९ वसन्त मास
१० वैशाख	१० कुसुम सभव
११ ज्यैष्ठ	११ निदाघ
१२ आषाढ़	१२ वन विरोधी— वा वन विराध

और जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति में—"अभिनन्द" के स्थान में "अभिनन्दित" कहा गया है "वनविरोधी" के स्थान

पर "अनविरोह"—"अनविरोध" इस प्रकार से लिखा गया है परन्तु "अभिनन्दित" श्रावण मास का ही लोकोत्तर नाम वर्णन किया हुआ है जैसे कि—"प्रथमः श्रावणो अभिनन्दित" द्वितीयः प्रतिष्ठितः इत्यादि श्रावण मास को ही अभिनन्द वा अभिनन्दित कहते हैं इसी प्रकार भाद्रव का कहा जाता है बारह मासों के नाम इसी प्रकार जानने चाहिये। लौकिक मास नक्षत्रों के आधार पर बने हुए हैं जैसे कि—श्रावण नक्षत्र के कारण से "श्रावण" "भाद्रपद से" "भाद्रव" इत्यादि किन्तु लोकोत्तर मास ऋतुओं के आधार पर बने हुए हैं जैसे प्रावृट ऋतु के दो मास इसी प्रकार अन्य ऋतुओं के दो दो मास मिल कर बारह मास हो जाते हैं।

यद्यपि आज कल सम्वत्सर का आरम्भ चैत्र मास से किया जाता है परन्तु प्राचीन समय में सम्वत्सर का आरम्भ श्रावण मास से होता था इस का कारण यह था कि—प्राचीन समय में सायन मत के अनुसार कार्य होता था जैसे कि—जब सूर्य दक्षिणायण होता था तब ही सम्वत्सर का आरम्भ हो जाता था और "रवि" सोम"

मंगल" बुध" बृहस्पति" शुक्र" शनैश्चर" इन वारों का प्राचीन ज्योतिष शास्त्रों में नाम नहीं पाया जाता परन्तु जो अर्वाचीन काल के ग्रन्थ बने हुये हैं उन्हों में इन वारों का उल्लेख अवश्य किया हुआ है इस का कारण विद्वान् लोग यह बतलाते हैं कि—जब से हिन्दुस्तान में यवन लोगों का आगमन हुआ है तभी से इन वारों का इस देश में प्रचार हुआ है।

पहिले के लोग दिनों वा तिथियों से ही काम लिया करते थे। और जो चांद वा सूर्य को ग्रहण लगता है उसका कारण यह है जैन शास्त्रों में दो प्रकार के राहु वर्णन किए गए हैं जैसे "कि—नित्य राहु" और पर्व राहु नित्यराहु तो चांद के साथ सदैव काल रहता है जो कृष्ण पक्ष में चांद की कला को आवरण करता जाता है शुक्ल पक्ष में कलाओं को छोड़ देता है उसी के कारण से कृष्ण पक्ष वा शुक्ल-पक्ष कहे जाते हैं। पर्व राहु चांद वा सूर्य दोनों को ही लग जाते हैं, राहु का विमान कृष्ण रंग का है इस लिए उस की छाया उन्हों पर जा पड़ती है लोग कहते हैं चांद वा सूर्य को ग्रहण लग गया है किंतु

"लोग भाषा में" ग्रहण "कहा जाता है वास्तविक में "राहु" के विमान की भविरकाणा ही होती है और हम नहीं हाता तो लोग यह कहते है कि। चांद भारी है इस लिए राहु उस को पकड़ता है वा पृथ्वी की छाया चांद वा सूर्य पर पड़ती है इस लिए चांद वा सूर्य को लोग पक्ष में ग्रहण लग गया ऐसे कहा जाता है सो यह कथन जैन सूत्रानुसार प्रमाणिक नहीं है सूत्रों में तो एक ही कथन का स्वीकार किया गया है विद्यार्थियों को योग्य है कि-वेद जैन मासादि के स्मरण करके वेद अपने बतौव में लावें का रण कि-जब इंग्रेज या यवन लोगों के मासों के नाम काम में लाए जाते है तो महा अपने भी जिनेंद्र देव के प्रति पादन किए हुए जैन मासों के नाम क्यों न व्यवहार में लाने चाहिए। अपितु अवश्य में लाने चाहिए ॥

और यदि सम्पूर्ण ज्योतिष चक्र का स्वरूप जानना होवे तो "चन्द्रप्रज्ञप्ति" "सूर्य प्रज्ञप्ति" और "द्वीपप्रज्ञप्ति", "विवाह प्रज्ञप्ति" इत्यादि शास्त्रों का नियमपूर्वक स्वाध्याय करना चाहिए ॥

छटा पाठ

साधु वृत्ति

सज्जनों तुम भली प्रकार जैन धर्म शिक्षावली के चौथे भाग में गृहस्थ सम्बन्धी गृहस्थों का धर्म क्या है पठन कर चुके हो मगर अब तुम्हें हम यहां पर चंद बातें मुनियों के धर्म के बारे में बतलावेंगे यद्यपि मुनियों की भी कुछ वृत्ति उसी भाग में दरशा चुके हैं तोभी मोटी २ आवश्यक बातें मुनियों सम्बन्धी जानने योग्य फिर यहां पर लिखते हैं।

यह बात तो संसार में निर्विवाद प्रायः सिद्ध ही है कि जैन मुनियों जैसी अहिंसक और सच्ची साधु वृत्ति अन्य साधुओं में नहीं है जैन साधु जब से जैन मुनि का वेष धारण करते हैं तब से ही हर प्रकार के कष्टों को सहन करते हुये केवल धर्म क्रिया और संसार के उपकार के लिये ही अपने जीवन को व्यतीत करते हैं लोग अकसर उन्हें मत द्वेष के कारण से तरह तरह के निरमूल दोष देते और उन्हें अप शब्द भी कहते हैं परन्तु यह शांत-

रहते हुये उन्हें भी धर्म का ही उपदेश देते हुये अपने ४ महाव्रत रूप धर्म का पालन करते हैं जो इन्हीं के लिये जैन सूत्रों में बतलाये गये हैं क्योंकि हर एक जीव शान्ति की खोज में लगा हुआ है' अपनी समाधि की इच्छा रखता है किन्तु पूर्ण ज्ञान न होने के कारण से वेर पृथक् २ मार्ग की प्ररूपणा करते हैं।

जैसे किसी ने शान्ति वा "समाधि" धन की प्राप्ति होने से ही समझी हुई है इसी लिये वह सदैव धन इकट्ठे करने में ही लगा हुआ है किसी ने समाधि विषय विकार में मानी हुई है इस लिये "वह काम मार्गों में आसक्त हो रहा है" किसी ने समाधि अपने परिवार की वृद्धि ही में मानली है अतः यह इसी धुन में लगा हुआ है "किसी ने समाधि" सांसारिक कलाओं के जानने में मानली है सो वह उसी कला के ध्यान में लगा रहता है तथा किसी ने 'नाटक" जूआ" मांस" मदिरा" शिकार" परस्त्रीगमन" पर स्त्री सेवन" चोरी" इत्यादि कर्मों में ही सुख मान लिया है इस लिये वह पूर्वोक्त कामों में ही लग रहते हैं वा बहुत से लोगों ने समाधि

क्रियाओं के करने में ही वास्तविक में शान्ति समझी है इसी लिये वेह अनार्य कर्मों में ही लगी रहते हैं।

वास्तव में उन लोगों ने पूर्ण प्रकार से शान्ति के पा को जाना नहीं इस लिये वेह शान्ति की खोज में भटकते फिरते हैं क्योंकि—आशावान् को समाधि कभी भी नहीं प्राप्त हो सक्ती है जब समाधि की प्राप्ति होगी "निराश को होगी" क्योंकि—संसार में आशा का ही दुःख है जब किसी पदार्थ की आशा ही नहीं तो भला दुःख कहां से उत्पन्न हो सकता है।

निराश आत्मा ही शान्ति को आनन्द का अनुभव कर सकते हैं, अपितु संसार पक्ष से निराश होना चाहिए धर्म पक्ष से नहीं किन्तु धर्म पक्ष में वह सदैव कटिवद्ध रहता है—

सर्व संसार के बन्धनों से छूटा हुआ भिक्षु जिस आनन्द का अनुभव कर सकता है उस आनन्द के शतांशवें भाग का चक्रवर्ती राजा भी अनुभव नहीं कर सकता।

क्योंकि—वह भिक्षु योग मुद्रा द्वारा अपनी आत्मा का अनुभव या दर्शन करता है आत्मा के दर्शन करने के लिए उस मुनि को पांच समितियां तीन गुप्तियें भी साधन रूप धारण करनी पड़ती है।

पांच महाव्रत निम्न प्रकार से हैं॥

अहिंसा महाव्रत

प्राणी मात्र से मोह (मैत्री) रखने के लिए और सब जीवों की रक्षा के वास्ते श्री भगवान् ने प्राणातिपात विरमण" महाव्रत प्रति पादन किया है उसका भाव यह है कि—साधु मन वचन और काय से हिंसा करे नहीं औरों से हिंसा करावे नहीं हिंसा करने वालों की अनुमोदना भी न करे यह अहिंसा व्रत सर्वोत्कृष्ट महाव्रत है जिस ने इस का ठीक पालन किया वह आत्मा अपना सुधार कर सकता है वह सारा ही विशेष है अहिंसा प्राणी मात्र की माता है इस की कृपा से अनन्त आत्मा मोक्ष में चले गए हैं वर्तमान में बहुत से आत्मा मोक्ष प्राप्त कर रहे हैं भविष्यत काल में अनंत आत्मा मोक्ष प्राप्त करेंगे जिस का शुभ वा

मित्र परसमय भाव होता है अहिंसा धर्म पालन करने वाले प्राणी की यही पूर्ण परीक्षा है कि–यदि हिंसक जीव भी उसके पास चले जावें तो वेह अपने स्वभाव को छोड़ कर दयालू भाव धारण कर लेते हैं।

सत्य महाव्रत--

अहिंसा महाव्रत को पालन करते हुए द्वितीय सत्य महाव्रत भी पालन किया जाता है जिस आत्मा ने इस महाव्रत का आश्रय ले लिया है वह सर्व कार्यों में सिद्धि कर सकता है क्योंकि 'सत्य में सर्व विद्या प्रतिष्ठित हैं सत्य आत्मा का प्रदर्शक है तथा आत्मा का अद्वितीय मित्र है इस की रक्षा के लिए ! क्रोध–भय–लोभ–हास्य इन कारणों को छोड देना चाहिए। साधु मन वचन काय से मृषा वाद को न बोले न औरों से बोल ए जो मृषावाद (झूठ) बोलते हैं उनकी अनुमोदना भी न करे, क्योंकि असत्य वादी जीव विश्वास का पात्र भी नहीं रहता अतएव ! इस महाव्रत का धारण करना महान् आत्माओं का कर्तव्य है।

दत्त महाव्रत

सत्य को पालन करते हुए चौर्य परित्याग तृतीयमहा व्रत का पालनभी सुख पूर्वक हो सकता है यह महाव्रत शूर वीर आत्मा ही पालन कर सकते हैं विना आज्ञा किसी वस्तु का न उठाना यही इस महा व्रत का मुख्य कार्य है किसी स्थान पर कोई भी साधु के लेने योग्य पदार्थ पड़ा हो उसे विना आज्ञा न ग्रहण करना इस महाव्रत का यही मुख्योपदेश है मन वचन काय से आप चोरी करे नहीं औरों से चोरी कराए नहीं चोरी करने वालों की अनु मोदना भी न करे तथा चोरी करने वालों की जो दशा लोक में होता है वह सब के प्रत्यक्ष है इस लिए साधु महात्मा इस महा व्रत का विधि पूर्वक पालन करते हैं ।

ब्रह्मचर्य महाव्रत ।

दत्त महा व्रत का पालन ब्रह्मचारी ही पूर्णतया कर सकता है इस लिये चतुर्थ ब्रह्मचर्य महाव्रत कथन किया गया है ब्रह्मचारी का ही मन स्थिर हो सकता है ब्रह्म चारी ही ध्यान अवस्था में अपने आत्मा को लगा सकता है ।

सर्व अधर्मों का मूल मैथुन ही है इसका त्याग करना शूरवीर आत्माओं का ही काम है इस से हर एक प्रकार की शक्तियें (लब्धियें) प्राप्त हो सकती है यह एक अमूल्य रत्न है।

सब नियमों का सारभूत है ब्रह्मचारी को देव गण भी नमस्कार करते हैं जगत् में यह महाव्रत पूजनीय माना जाता है।

अतएव ! मन वाणी और काय से इस को धारण करना चाहिये क्योंकि–चारित्र धर्म का यह महाव्रत प्राण भूत है निरोगता देने वाला है चित्त की स्थिरता का मुख्य कारण है इस के धारण करने से हर एक गुण धारण किये जा सकते हैं।

इस लिये ! मुनियों के लिये यह चतुर्थ महाव्रत धारण करना आवश्यकीय बतलाया गया है सो मुनि जन–आप-तो मैथुन सेवन करें नहीं औरों को इस क्रिया का उपदेश न करें।

जो मैथुन क्रिया करने वाले जीव हैं उन के मैथुन की अनुमोदना न करे मनुष्य–देव–पशु–इन तीनों के

रात्रि भोजन परित्याग ।

फिर जीव रक्षा के लिये वा संताप वृत्ति के लिये रात्रि भोजन कदापि न करे रात्रि भोजन विचार शीलों के लिये अयोग्य वतलाया गया है रात्रि भोजन करने में अहिंसा व्रत पूर्ण प्रकार से नहीं पल सकता अतः दया वास्ते निश भोजन त्यागना चाहिये तथा मुनि अन्न की जाति, पानी की जाति, मिठाई आदि की जाति, चूर्ण आदि जाति, इन चारों आहारों में से कोई भी आहार न करे ।

इतना ही नहीं किन्तु सूर्य की एक कला दब जाने से भी रात्रि भोजन के त्याग में दोष लग जाता है यदि रात्रि भोजन परित्याग वाले जीव को रात्रि में मुख में पानी भी आजावे फिर वह उस पानी को वाहिर न निकाले फिर भी उसको दोष लग जाता है इस लिये रात्रि भोजन में विवेक भली प्रकार से रखना चाहिये ।

भिक्षु रात्रि भोजन आप न करें, औरों से न करावे, जो रात्रि में भोजन करते हैं उन की अनुमोदना

भी न करे यह अत भी मन वचन और काय से शुद्ध पालन करे क्योंकि— यह सब साधन आत्मा की शुद्धि के लिये ही हैं।

ईर्या समिति।

फिर यत्ना के साथ गमन क्रिया में प्रवृत्त होना चाहिये क्योंकि—यत्न क्रिया ही संयम के साधन द्वारी है जिस को बिना देखे नहीं चलना रात्रि को रजो हरण के बिना भूमि प्रमार्जन किए नहीं चलना क्योंकि—धर्म का मूल यत्न ही है इस लिये अपने शरीर प्रमाण आगे भूमि को देख कर पैर रखना चाहिये। और चलते हुए बातें न करनी चाहिये। खान पान करना न चाहिये। स्वाध्याय भी न करना चाहिये। ऐसे करने से यत्न पूर्ण प्रकार से नहीं रह सकता यद्यपि गमन क्रिया का निषेध नहीं किया गया किन्तु अयत्न का निषेध अवश्य किया हुआ है।

भाषा समिति।

जब गमन क्रिया में अयत्न का निषेध किया गया है तो बोलने का भी यत्न अवश्य होना चाहिये। मुनि

भाषा समिति के पालन करने वाला बिना विचार किये कभी भी न बोले तथा जिस शब्द के बोलने में पाप लगता होवे और दूसरा दुःख मानता होवे इस प्रकार की भाषा मुनि न बोले यद्यपि भाषा सत्य भी है किन्तु उस के बोलने से यदि दूसरा दुःख मानता होवे तो वह भाषा मुख से न निकालनी चाहिये जैसे काणे को काणा कहना इत्यादि भाषाएं न बोलनी चाहिये ।

क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, हास्य, भय, मोह, इन के वश होकर वाणी न बोलनी चाहिये कारण कि जब आत्मा पूर्वोक्त कारणों के वश होकर बोलता है तब उस का सत्य व्रत पलना कठिन हो जाता है । इस लिये सत्यव्रत की रक्षा के लिये भाषा समिति का पालन अवश्य ही करना चाहिये । जिस आत्मा के भाषा बोलने का विवेक होता है वह क्लेशों का नाश कर देता है जब बोलने का विवेक हो गया तो फिर—

एषणा समिति ।

भोजन का विवेक भी अवश्य होना चाहिए । जैसे कि— मुनि निर्दोष भिक्षा द्वारा जीवन व्यतीत करे शास्त्रों में

भिक्षा विधि बड़े विस्तार से प्रति पादन की गई है उसी के अनुसार भिक्षा लावे किन्तु तात्पर्य यह है कि—जिस प्रकार किसी जीव को दुख न पहुंचे उसी प्रकार भिक्षा लावे शास्त्रों में लिखा है जैसे भमरें फूलों में रस लेने को जाते हैं किन्तु रस से अपने आत्मा की तृप्ति तो कर लेते हैं फूलों को पीड़ित नहीं करते उसी प्रकार भिक्षु उस वृत्ति से आहार लावे जिस प्रकार किसी आत्मा को दुख न पहुंचे इतना ही नहीं किन्तु फिरभी अल्प आहार करे।

उक्त आहार भी परिमाण से अधिक खाया हुआ हानि कारक हो जाता है जैसे बहुत बड़े इंधन से आग और भी प्रचंड रूप धारण कर लेती है तद्वत् शुष्क आहार भी भिक्षु के लिए सुख कारक नहीं होता तथा जैसे फोड़े स्फोटक पर औषधि का प्रयोग किया जाता है केवल रोग शमन के लिए ही होता है शरीर की सुन्दरता के लिए नहीं है उसी प्रकार भिक्षु प्राणों की रक्षा के लिए वा संयम निर्वाहके लिएही आहार करे अपितु बल आदि की वृद्धि के लिए न करे यत्न पूर्वक आहार करता हुआ फिर जिस वस्तु को उठावे वा रक्खे उसमें भी यत्न होना चाहिए

आदान निक्षेपण समिति

जैसे कि जो वस्त्र पात्र उपकरण आदि उठाना पड़े वा रखना पड़े उसमें यत्न अवश्य होना चाहिए।

यत्न से दो लाभ की प्राप्ति होती है एक तो जीव रक्षा द्वितीय वस्तु वा स्थान सुथरा रहता है।

आलस्य के द्वारा उक्त दोनों कार्य ठीक नहीं हो सकते इस वास्ते इस समिति में ध्यान विशेष रखना चाहिए।

यद्यपि चलनादि क्रियाओं में यत्न पहिले भी कथन किया गया है किन्तु इस समिति में वस्तु का उठाना वा रखना इत्यादि कार्यों में यत्न प्रति पादन किया गया है जब इस प्रकार यत्न किया गया तो फिर—

परिष्ठापना समिति।

जो वस्तु गेरने में आती हैं जैसे मल मूत्र थूक—श्लेष्म आदि वा पानी आदि जो जो पदार्थ गेरने योग्य हों तो उस समय भी यत्न अवश्य ही होना चाहिये क्योंकि—

यदि इन क्रियाओं में यत्न न किया गया तो जीव हिंसा और घृणा उत्पादक स्थान बन जाता है अतएव ! परिष्ठापना समिति में यत्न करना आवश्यकीय है तथा जिस स्थान पर मल मूत्र आदि अशुभ पदार्थ बिना यत्न गेरे हुये होते हैं वह स्थान भी घृणा स्पर्द हो जाता है लोग भी इस प्रकार की क्रियाओं के करने वालों का घृणा की दृष्टि से देखते हैं मल मूत्र आदि पदार्थों में जीव उत्पत्ति विशेष हो जाती है इसलिये जीव हिंसा भी बहुत लगती है तथा दुर्गन्ध के विशेष बढ़ जाने से रोगों की उत्पत्ति की भी सम्भावना की जा सकती है अतएव ! परिष्ठापना समिति विषय विशेष सावधान रहना चाहिये।

सूत्रों में लिखा है कि—नगर के सुन्दर स्थानों में वा आरामों (बागों) में फल युक्त वृक्षों के ग्राम अमराति के वनों में वा मृतक गृहों (कबरों) में पूर्वोक्त क्रियाएं न करनी चाहियें। तथा मल मूत्रादि क्रियायें अदृष्ट में होनी चाहियें यह समिति तब पल सकती है जब मनो गुप्ति ठीक की गई हो।

मनोगुप्ति ।

मन के सङ्कल्पों का वश करना धर्म ध्यान वा शुक्ल ध्यान में आत्मा का लगाना तब ही मनोगुप्ति पल सकती

है। जैसे कि–जिस का मन वश में नहीं है उस को चित्त की एकाग्रता कभी भी नहीं हो सक्ती चित्त की एकाग्रता विना शान्ति की प्राप्ति नहीं होती जब चित्त को शान्ति ही नहीं है तब क्रिया कलाप केवल कष्टदायक ही हो जाता है अतएव ! सिद्ध हुआ एकाग्रता के कारण से ही शान्ति की प्राप्ति मानी गई है।

कल्पना कीजिये ! एक बड़ा पुरुष है उसको लौकिक पक्ष में हर एक प्रकार की सामग्री की प्राप्ति हुई २ है जैसे धन, परिवार, प्रतिष्ठा, व्यापार, लौकिक सुख, किंतु मन उस का किसी मानसिक व्यथा से पीडित रहता है जब उससे पूछो तब वह यही उत्तर प्रदान करेगा कि–मेरे समान कोई भी दुःखी नहीं है, अब देखना इस बात का है–यदि धन, परिवारादि के मिलने से ही शान्ति होती तो वह पदार्थ उस को प्राप्त हो रहे थे। तो फिर उसे क्यों दुःख मानना पड़ा, इस का उत्तर यह है कि–चित्त की शान्ति प्रवृत्ति में नहीं है, निवृत्ति में ही चित्त की शान्ति हो सकती है इस लिये जब चित्त की शान्ति होगी तब ही संयम का जीव आराधक हो सकता है, यद्यपि संयम

शब्द को हर एक प्रकार से व्याख्या की गई है परन्तु समपसर्ग—और "यम्" धातु "अप्" प्रत्यय से ही संयम शब्द बनता है सो जिस का अर्थ यही है। ज्ञान पूर्वक निवृत्ति का होना जब सम्यग् ज्ञान से तृष्णा का निरोध किया जायेगा तब ही आत्मा अपने संयम का आराधक बन सकता है तथा मनोगुप्ति द्वारा हर एक प्रकार की शक्तियें भी उत्पन्न कर सकता है। मेस्मेरेजम विद्या एक मन की शक्ति का ही फल है सो जब मनोगुप्ति होगी तब वचन गुप्ति का होना स्वाभाविक बात है।

वचन गुप्ति।

वचन वश करने से सब प्रकार के क्लेश मिट जाते हैं क्योंकि क्लेशों की उत्पत्ति वचन के ही कारण से हो जाती है क्योंकि—जब बिना विचार किए वचन बोला जाता है वह वचन दूसरे के अनुकूल न होने से क्लेश जन्य बन जाता है शास्त्रों में लिखा गया है कि—शस्त्रों के प्रहार लगे हुए विस्मृत हो जाते हैं किन्तु वचन रूपी शस्त्र का प्रहार लगा हुआ विस्मृत होना कठिन होता है शस्त्रों के घाव समय उनके टालने के लिये अनेक प्रकार

के उपाय किये जा सकते हैं उन उपायों से कदाचित् शस्त्र के प्रहारों से बचाव हो भी सकता है, किन्तु वचन रूपी शस्त्र बिना रोक टोक से कानों में प्रविष्ट हो जाता है, फिर श्रवण में गया हुआ वह प्रहार मन पर विजय पाता है जिस के कारण से मन औदासीन दशा को प्राप्त हो जाता है। अतएव! सिद्ध हुआ कि वचन के समान कोई भी और शस्त्र नहीं है। इस लिये वचन गुप्ति का धारण करना आवश्यकीय है जब वचन गुप्ति ठीक की जायेगी तब वचन के विकार से जीव रहित होता हुआ अध्यात्म वृत्ति में प्रविष्ट हो जाता है। अर्थात् आध्यात्मिक दशा में चला जाता है जिस के कारण से वह अपने आप को वा अनेक शक्तियों को देखने लगता है। यदि उस के मुख से अकस्मात् वचन भी निकल जावे तो वह वचन उसका मिथ्या नहीं होता" वर और शाप की शक्ति उस को हो जाती है इस लिये वचन गुप्ति का होना बहुत ही आवश्यकीय है" तथा जो बहु भाषी होते हैं उनकी सत्यता पर लोगों का विश्वास स्वल्प हो जाता है। साथ ही वह अनेक प्रकार के कष्टों के मुंह को देखता है सो जब वचन गुप्ति होगई तब काय गुप्ति का होना भी सुगम बात है।

काय गुप्ति

कायगुप्ति के बिना धारण किए लौकिक पक्ष में भी जीव यश प्राप्त नहीं करसक्ते देखिये ! जिनके काय वशमें नहीं है वेही चोरी और व्यभिचार में प्रवृत्त होते हैं जिनका फल प्रत्यक्ष लोगों के दृष्टिगोचर होरहा है यदि उनके काय वश में होता तो फिर क्यों वेह नाना प्रकार के कष्ट भोगते । किंवा ! काय के बिना वश किये ध्यान और ध्यान दोनों ही नहीं प्राप्त होसक्ते । क्योंकि-बिना दृढ़ आसन धारे उक्त दोनों ही कार्य सिद्ध नहीं होसक्ते ।

यद्यपि—मन के भावों से आत्मा नाना प्रकार के कर्मों का बांधता है परन्तु लौकिक-पक्ष में काय का पाप वलवान् बतलाया गया है क्योंकि—यश और अपयश काय के द्वारा ही जीव प्राप्त करता है अतएव ! काय का वश करना परमावश्यकीय है । सो जब काय वश में होगया तब पूर्णतया संवर भी [illegible] होती है फिर पूर्ण संवर भी [illegible] प्राप्त होजाता है फिर आत्मा पुण्य और पापरूपी आश्रव में रहित होती है।

जो आत्मा आश्रव से छूटगया और उसके पुण्य पाप क्षय होगए तो वही समय उस आत्मा के मोक्ष का माना जाता है यदि किञ्चित् मात्र पुण्य पाप की प्रकृतियें रहगई हों तब वेह जीवन मुक्त की दशा को प्राप्त हो जाता है अतएव ! सिद्ध हुआ काय का वध करना आवश्यकीय है ।

यद्यपि साधु वृत्ति के सहस्रों गुण वर्णन किए हुए हैं किन्तु मुख्य गुण यही हैं जो पूर्व कहे जा चुके हैं इन्हीं गुणों में अन्य गुण भी आ जाते हैं इसलिए साधु वृत्ति के द्वारा जीवन व्यतीत करना पवित्र आत्माओं का मुख्य कर्तव्य है और शान्ति की प्राप्ति इसी जीवन के हाथ में है और किसी स्थान पर शान्ति नहीं मिल सकती—क्यों कि—क्षमा, दमित इन्द्रिय—और निरारंभ रूप यही पूर्वोक्त वृत्ति कथन की गई है ॥

सातवाँ पाठ

(नियम करने के आगे विषय)

प्रिय सुज्ञ पुरुषों ! इस असार सन्सार में केवल धर्म ही एक सार पदार्थ है जिसके करने से प्राणी हर एक

प्रकार के सुख पा सकता है जैसे एक बड़ा विशाल प्रफुल्लित हुआ बाग देखने में आता है और उसको देख कर प्रत्येक आत्मा का चित्त आनंदित हो जाता है जब उस बाग की शाखमी पर विचार किया जाता है तब यह निश्चय हुए बिना नहीं रहता कि—इस बाग का बड़ा अच्छा सिंच चुका है उसी के कारण से इसकी शाखमी अतीव बढ़ गई है। इसी हेतु से माना जाता है कि—जिस आत्मा के मन के मनोरथ पूरे हो जाते हैं और वह सर्व स्थानों पर प्रतिष्ठा भी पाता है उसका मूल कारण एक धर्म ही है। जैसे भावों से उसने धर्म किया था वैसे ही फल उस आत्मा को लग गये। इस लिए! धर्म का करना अत्यावश्यकीय है।

अब प्रश्न यह खड़ा होता है कि—कौनसा धर्म ग्रहण किया जाए! तब इसका उत्तर यह है कि—शास्त्रों ने तीन अंग धर्म के कथन किए हैं जैसे कि तप, क्षमा, और दया, सो तप इच्छा निरोध का नाम है वा कष्टों का सहन करने को भी तप ही कहते हैं जब कष्टों का समय आ जाए तब उन कष्टों को शान्ति पूर्वक

सहन करना यही क्षमा धर्म है तथा जिन आत्माओं ने कष्ट दिया है उन्हीं पर मन से भी द्वेष न करना यह " दया " धर्म है परन्तु क्षमा और दया का भी मूल कारण तप ही है अतएव ! सिद्ध हुआ तप कर्म अवश्य ही करना चाहिए ।

संसार भर में हर एक पदार्थ की प्राप्ति हो सकती है जैसे कि–धन, परिवार, लाभ, मन इच्छित सुख परन्तु तप करने का समय प्राप्त होना अति कठिन है क्यों कि–तप कर्म उस दशा में हो सकता है जब शरीर पूर्ण निरोग दशा में हो और पांचों इन्द्रियें अपना २ काम ठीक करती हों फिर तप कर्म करते हुए इस विचार की भी आवश्यकता होती है कि–जिस प्रकार तप (प्रत्याख्यान) ग्रहण किया गया हो उसको उसी प्रकार से पालन किया जाए। इस विषय में प्रत्याख्यान करते समय ४६ भांगे कथन किए गए हैं–भांगे शब्द का यह अर्थ है कि एक प्रकार से प्रत्याख्यान किया हुआ है दूसरे प्रकार से प्रत्याख्यान नहीं है । जैसे कल्पना करो किसी ने प्रत्याख्यान किया कि–माज मैं मन से कंदमूल नहीं खाऊंगा

तब वह अपने हाथों से वनस्पति का स्पर्श करता है और वचन से औरों को उपदेश देता है कि–तुम अमुक फल खा लो परन्तु स्वयं उसका मन खाने का नहीं है इसी प्रकार यदि वचन से प्रत्याख्यान किया हुआ है तब उसका मन और काय से प्रत्याख्यान नहीं है तथा आप अमुक कार्य नहीं करूंगा तब उसके औरों से कार्य कराने वा औरों के किए हुए कार्यों की अनुमोदना करना इन बातों का त्याग नहीं है इस से सिद्ध हुआ कि–जिस प्रकार से प्रत्याख्यान कर लिया है फिर उसको उसी प्रकार पालन करना चाहिए।

यदि करते समय स्वयं ज्ञान नहीं है तो गुरू को उचित है कि–प्रत्याख्यान करने वाले को प्रत्याख्यान के भंगों का समझा देवे जब इस प्रकार से कार्य किया जाएगा तब कर्म में दोष नहीं लगेगा बस इसी क्रम का भांगे कहते हैं।

भांगों का ज्ञान हर एक व्यक्ति को होना चाहि जिस से वह सुख पूर्वक तप ग्रहण करने में समर्थ हो जाए।

और यह भांगे अंक और करण तथा योगों के आधार पर कथन किए गए हैं जिसमें करण तीन होते हैं जैसे कि—करना, कराना, अनु मोदना इन्हीं को करण कहते हैं मन, वचन, और काय को योग कहते हैं।

सुगम वोध के लिए एक इन के विषय का यंत्र दिया जाता है। यथा—

अंक	११	१२	१३	२१	२२	२३	३१	३२	३३
भांगा	९	९	३	९	९	३	३	३	१
करण	१	१	१	२	२	२	३	३	३
योग	१	२	३	१	२	३	१	२	३

भांगा—९ वां १८ वां २१ वां ३० वां ३९ वां ४२ वां ४४ वां ४८ वां ४९ वां यही इन भांगे को जानने का यन्त्र है अब इनके उच्चारण करने की शली लिखी जाती है जैसे कि—

अंक ११ का १ करण १ योग से कहना चाहिये—यथा—करूं नहीं मनसा १ करूं नहीं वयसा (वचसा)

२ कर्क नहीं कायसा (कायेन) ३। करार्ड नहीं मनसा ४ करार्ड नहीं वयसा (वचसा) ५ करार्ड नहीं कायसा (कायेन) ६ अनुमोदं नहीं मनसा ७ अनुमोदं नहीं वयसा (वचसा) ८ अनुमोदं नहीं कायसा (कायेन) ६॥ इस प्रकार एकादश अंक के नव भांगे बनते हैं किन्तु इनको इसी प्रकार कण्ठ करने की शैली चली आती है इस लिए (वयसा) "कायसा" यह दोनों शब्द प्राकृत भाषा के ज्यों के त्यों ही रक्खे गये हैं किन्तु पाठकों को चाहिये कि पालकों को इनके अर्थ समझा दें कि—"वयसा" वचन से "कायसा" काय से प्रत्याख्यान आदि करता हूं आगे भी सर्व भांगों के विषय इसी प्रकार जानना चाहिये ।

२ अंक १२ का—भांगे नव एक करण दो योग से कहने चाहिये । जैसे कि—कर्क नहीं मनसा वयसा कर्क नहीं मनसा कायसा कर्क नहीं वयसा कायसा करार्ड नहीं मनसा वयसा करार्ड नहीं मनसा कायसा करार्ड नहीं वयसा कायसा अनुमोदं नहीं मनसा वायसा अनुमोदं नहीं मनसा कायसा अनुमोदं नहीं वयसा कायसा ।

३—अंक एक १३—का भांगे ३ एक १ करण ३ योग से कहने चाहिए—जैसे कि—कर्क नहीं मनसा

वयसा कायसा १ कराऊं नहीं मनसा वयसा कायसा २ अनुमोदं नहीं मनसा वयसा कायसा ३ ॥

४—अंक-एक-२१ का भांगे ६। दो करण एक योग से कहने चाहिए-जैसे कि-करूं नहीं कराऊं नहीं मनसा १ करूं नहीं कराऊं नहीं वयसा २ करूं नहीं कराऊं नहीं कायसा ३ करूं नहीं अनुमोदं नहीं मनसा ४ करूं नहीं अनुमोदं नहीं वयसा ५ करूं नहीं अनुमोदं नहीं कायसा ६ कराऊं नहीं अनुमोदं नहीं मनसा ७ कराऊं नहीं अनुमोदं नहीं वयसा ८ कराऊं नहीं अनुमोदं नहीं कायसा ९ ॥

५—अंक एक २२ का भांगे ९। दो करण दो योग से कहने चाहिए। करूं नहीं कराऊं नहीं मनसा वयसा १ करूं नहीं कराऊं नहीं मनसा कायसा २ करूं नहीं कराऊं नहीं वयसा कायसा ३ करूं नहीं अनुमोदं नहीं मनसा वयसा ४ करूं नहीं अनुमोदं नहीं मनसा कायसा ५ करूं नहीं अनुमोदं नहीं वयसा कायसा ६ कराऊं नहीं अनुमोदं नहीं मनसा वयसा ७ कराऊं नहीं अनुमोदं नहीं मनसा कायसा ८ कराऊं नहीं अनुमोदं नहीं वयसा कायसा ९ ॥

६—आंक एक २१ दो करण ३ योग से करने चाहिये। जैसे कि—करू नहीं कराऊ नहीं मनसा वयसा कायसा १ करू नहीं अनुमोदूं नहीं मनसा वयसा कायसा २ कराऊ नहीं अनुमोदूं नहीं मनसा वयसा कायसा ३॥

७—आंक एक ३१ का भांगे ३। तीन करण एक योग से करने चाहिये। करू नहीं कराऊं नहीं अनुमोदूं नहीं मनसा १ करू नहीं कराऊं नहीं अनुमोदूं नहीं वयसा २ करू नहीं कराऊ नहीं अनुमोदूं नहीं कायसा ३॥

८—आंक एक ३२ का भांगे ३। तीन करण दो योग से करना चाहिये। करू नहीं कराऊ नहीं अनुमोदूं नहीं मनसा वयसा १ करू नहीं कराऊ नहीं अनुमोदूं नहीं मनसा कायसा २ करू नहीं कराऊ नहीं अनुमोदूं नहीं वयसा कायसा ३।

९—आंक ३३ का भांगा १ तीन करण तीन योग से करना चाहिये। जैसे कि—करू नहीं कराऊं नहीं अनुमोदूं नहीं मनसा वयसा कायसा १॥

इस प्रकार ४९ भांगों का विवरन किया गया है। हर एक नियम करने वाले को इनका ध्यान रखना चाहिये। जैसे कि—जब भांगों के अनुसार नियम किया जायगा। तब नियम का पलना बहुत ही सुगम होगा और उसके पालने का ज्ञान भी ठीक रहेगा जब प्रत्याख्यान की विधि को जानता ही नहीं तब उसके शुद्ध पालने की क्या आशा की जासकती है अतएव। इनको कण्ठस्थ अवश्य ही करना चाहिये।

इनका पूर्ण विवरण देखना होवे तो मेरे लिखे हुए पच्चीस बोल के थोकड़े के २४ वें बोल में देखना चाहिये।

तथा श्री भगवती सूत्र में इनका विस्तार पूर्वक कथन किया गया है जब कोई आत्मा प्रत्याख्यान करता है तब उसको देश वा सर्व चारित्री कहा जाता है सो चारित्र ५ प्रकार से प्रतिपादन किये गए हैं जैसे कि— सामायिक चारित्र १ छेदोपस्थापनीय चारित्र २ परिहार-विशुद्धि चारित्र ३ सूक्ष्म संपराय चारित्र ४ यथाख्यात चारित्र ५ सामायिक चारित्र सावद्य कर्म का निवृति रूप होता है १ पूर्व दीक्षा का छेद रूप छेदोपस्थापनीय चारित्र

होता है २ दोषों के दूर करने के वास्ते परिहार विशुद्धि (तप) चारित्र कहा गया है ३ सूक्ष्म कषायरूप सूक्ष्म संपराय चारित्र कथन किया गया है ४ जिस प्रकार कहता है उसी प्रकार करता है उसे ही यथाख्यात चारित्र कहते हैं ५ इन चारित्रों का पूर्ण वृत्तान्त विचार निर्युक्ति आदि सूत्रों से ज्ञान लेना चाहिये।

वास्तव में चारित्र का अर्थ आचरण करना ही है सो जब तक जीव शुभाचरण नहीं करता तब तक सुमार्ग में नहीं आसकता सदाचार शब्द भी इसी पर्याय का वाची है।

किन्तु चारित्र दो प्रकार से प्रतिपादन किया गया है जैसे कि—द्रव्य चारित्र और भाव चारित्र—द्रव्य चारित्र से पुण्य का बंध पौद्गलिक सुख उपलब्ध होजाते हैं भाव चारित्र से मोक्ष की प्राप्ति होजाती है अपितु पांचों चारित्रों का आदि मूल सामायिक चारित्र ही है क्योंकि सब सावद्य (पाप मय) योगों का ही त्याग किया गया है, तब उत्तरोत्तर गुणों की प्राप्तिरूप अन्य चारित्रों का वर्णन किया जाता है इस लिए । सामायिक चारित्र में

पुरुषार्थ अवश्य ही करना चाहिये और इस चारित्र के दो भेद किए गये हैं जैसे देश चारित्र वा सर्व चारित्र सो देश चारित्र गृहस्थ सुख पूर्वक ग्रहण कर सकते हैं सर्व चारित्र मुनि जन धारण करते हैं सो गृहस्थों को देश चारित्र में विशेष परिश्रम करना चाहिये जिस से वह सुगति के अधिकारी बनें।

पाठ आठवां।

(संयतराजर्षि का परिचय)

पूर्व समय में काम्पिल्लपुर नामक एक नगर था जो नागरिक गुणों से मण्डित था, सुन्दरता में इतना प्रसिद्ध था, कि–दूरदेशान्तरों से दर्शक जन देखने की तीव्र इच्छा से वहां पर आते थे, और नगर की मनोहरता को देखकर अपने २ आगमन के परिश्रम को सफल मानते थे, उस नगर के बाहिर एक उद्यान था, जिसका नाम "केशरी वन" ऐसा प्रसिद्ध था, नाना प्रकार के सुन्दर वृक्षों का आलय था, विविध प्रकार लतायें जिसकी प्रभा को उत्तेजित कररही थीं, जिनमें

पट्ऋतुओं के पुष्प विद्यमान रहते थे, अनेक प्रकार के पक्षीगण अपने २ मनोरंजक राग अलाप रहे थे, मृगों की पंक्तियें भोलीभाली मुखाकृति को लिए इतस्ततः धावन कररहीं थीं, जिनके मिष लोचन चलते हुए पथिकों के हृदयों को अयस्कान्त के समान आकर्षण करलेते थे कहांतक उस बन की उपमा लिखें! यावत् जो पुरुष उसको एकबार देखलेता था, वह अपने जन्म को उसदिन से ही सफल समझता था।

सो पूर्वोक्त नगर में अति प्रभावशाली, पुरुष पुंग परम विख्यात "संयत" नामक राजा राज्य अनु शासन करता था जिसको पूर्व आरपोल्य से धन, धान्य, बल वाहन अश्व गजादि राज्य के योग्य सर्व सामग्री पूर्णतया प्राप्त थी, एकदा वह राजा चतुर प्रकार की सेना को साथ लेकर आखेटक निमित्त अर्थात् शिकार खेलने के लिए केशरी बन में गया, वहां एक परम सुन्दर श्याम वर्णीय मृग दृष्टिगोचर हुआ, और वहकर बाणा से मृग को हाने की इच्छा करके भागगया, किन्तु भागता हुआ अपनी मनोहरता की आकर्षण शक्ति का बान राजा के हृदय में प्रविष्ट करगया, फिर क्या था!

राजाजी के मुख में शीघ्र पानी भर आया, और चाहा कि-इस मृग का वध करूं, रसों के लोलुपी राजा ने सेना को वहां ही खड़े रहने की आज्ञा दी, केवल दो दासों को ही साथ लेकर उसके पीछे अपने पवन जीत अश्व को दौड़ाना प्रारंभ किया, और बड़े बल से एक ऐसा धनुष मारा, जो मृग के हृदय को विदीर्ण करता हुआ उसकी दूसरी ओर जानिकला तब मृग, घाव से दुःखित होकर मृत्यु के भय से भाग कर एक अफोव (लताओं के) मंडप में जा गिरा, राजा अपने नशाने पर विश्वास करके अर्थात् मेरे धनुष प्रहार से मृग अवश्यमेव ही घायल होगया होगा, अतः वह कदापि जीवित नहीं रहसकेगा, ऐसा विचार करके उसके पीछे २ भागता हुआ वहां पर ही आगया, और उस घावयुक्त हरिण को देख अपने परिश्रम की सफलता का विचारही कररहा था, कि, अकस्मात् उसकी दृष्टि एक जैन साधु पर पड़ी; जोकि-धर्म और शुक्ल ध्यान को ध्या रहे थे, स्वाध्याय में प्रवृत्त थे, तथा उग्रतपोधन क्षमा (शान्ति) निरहंकारता, निर्लोभता तथा पांच महाव्रत (अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह,) करके विभूषित थे

और उस मफोद मंडप में अर्थात् नागिवल्ली आदि, लता वृक्षादि करके आकीर्ण स्थान में इकेले ही ध्यान कररहे थे, तदनन्तर, राजा मुनि को देखकर भयभीत होगया, और विचार करने लगा कि–मुझकर्मदभागी ने मांस के स्वाद के वास्ते इस मुनि के मृग को मारदिया, सो यह महत् अन्याय हुआ, यदि यह मुनि क्रोधित होगए तो फिर मेरे दुःख की सीमा न रहेगी, ऐसा सोच कर अश्व का विसर्जन करके (त्याग करके) मुनि महाराज के समीप आया, और सविनय वंदना नमस्कार (प्रणाम) की मुख से ऐसे बोला कि–हे भगवन्! मेरे अपराध को क्षमा करो, मुनि मौन वृत्ति में ध्यान कररहे थे, इस कारण उन्होंने राजा को कुछ भी उत्तर न दिया, अतः अपने ध्यान में बैठे रहे, मुनि के न बोलने से राजा भयभीत होगया, तथा भयभ्रान्त होकर इस प्रकार भाषण करने लगा कि–हे भगवन्! मैं कांम्पिल्यपुर का संयत नामक राजा हूं, इसलिए! आप मेरे से वार्त्तालाप करें, हे स्वामिन्! आप जैसा साधु क्रुद्ध होने पर अपने तप के बल से सहस्रों, लाखों, करोड़ों, पुरुषों का दाह करने में समर्थ है, अतः आपको क्रुद्ध न होना चाहिए!

राजा के इस प्रकार वचनों को श्रवण करके मुनि ने विचार किया कि—मेरा यह धर्म है कि—किसी प्राणी को भी भय न उपजाऊं तथा जो मेरे से भय करें, उनका भय दूर करूं, इसी प्रकार शास्त्रों का उल्लेख है; (निर्भय करना परम धर्म है) ऐसा विचार कर मुनि बोले,—हे राजन् ! भय मतकर ! मैं तुझे अभय दान देता हूं, तूभी जीवों को अभय दान प्रदान कर, किसी प्राणी को दुःखित करना मनुष्य का कर्तव्य नहीं है ।

हे पार्थिव ! इस क्षणभंगुर, अनित्य, संसार में स्वल्प जीवन के वास्ते क्यों प्राणी वध करता है ।

हे नृप ! एकदिन सर्वराष्ट्र अन्तःपुरादिक, भाण्डागारादिक त्यागने पड़ेंगे, और परवश होकर परलोक को जाना पड़ेगा, फिर ऐसे अनित्य ससार को देखकर भी क्यों राज्य में मूर्च्छित होकर जीवों को पीड़ित करने से स्वआत्मा को पापों से बोझल कररहा है ।

हे महीपते ! जिस जीवित तथा रूप में तू इतना मुग्ध हो रहा है, और परलोक के भय से निर्भय होरहा है, वह आयु तथा शरीर की सौन्दर्य विद्युत् के समान

चंचल है, यौवन नदी के वेग की उपमा वाला है "जीवन तृणाग्नि के समान स्वल्पकाल का है" भोग शरदृतु के मेघों की छाया सदृश हैं, मित्र, पुत्र, कलत्र, भृत्यवर्ग, सम्बन्धी अमादि सर्व स्वप्न तुल्य है।

हे पुत्र! नारा, पुत्र, बान्धव, भ्रातादि मनुष्य सब अपने २ स्वार्थ के साथी हैं "और जीवित रहने तक ही मीत हैं" मृत्यु के समय कोई भी साथ नहीं जाता, उस पुरुष के पीछे उसी के धन से अपन सम्पत्तियों का पालन पोषण करते हैं, आनन्द से शेष आयु का व्यतीत करते हैं, और उस मृतक पुरुष का स्मरण भी नहीं करते —इसलिए।

हे राजन्! कुतघ्न दारा, दारादि में व्यर्थ मूर्च्छा न करना चाहिए ऐसिये संसार की कैसी शोचनीय दशा है कि—अत्यन्त शोकार्दित पुत्र अपने मृतक पिता को घर से बाहर करते हैं, उसी प्रकार पिता भी महा दुःखी होता हुआ मृतक पुत्र को श्मशान भूमिका में लाकर रखकर से उसका दाह करता है, बान्धव, बन्धु का, मृत्यु संस्कार करता है।

हे राजन् ! ऐसे विचार कर तप को ग्रहण, धर्म का आचरण, करना आवश्यक है।

हे पृथिवीपते ! जिस जीवने जैसे शुभ अथवा अशुभ कर्म तथा सुख दुःख उपार्जित न किए होते हैं, उन्हीं के प्रभाव से पर लोक को चला जाता है, और वेह कर्म ही उसके साथ जाते हैं, अन्य कोई भी जीव का साथी नहीं बनता।

हे महीपते ! इस प्रकार की व्यवस्था को देख कर भी क्यों वैराग्य को प्राप्त नहीं होता, अर्थात् इन सांसारिक विनाशी, क्षणिक, अध्रुव सुखों के ममत्व भाव को त्याग कर कैवल्य रूपी नित्य ध्रुव सुखों की प्राप्ति का प्रयत्न कर।

इस प्रकार मुनि के परम वैराग्य उत्पादक, स्वल्पाक्षर, बहुत अर्थ सूचक, शराव (प्याले) में सागर को भरने की कहावत को चरितार्थ करने वाला, सत्योपदेश श्रवण करके, वह संयत राजा अत्यन्त संवेग को प्राप्त हुए, और गर्द भालि नामक अनगार के समीप वीतराम धर्म में दीक्षा के लिए उपस्थित होगए, राज्य को त्याग

चंचल है, यौवन नदी के वेग की उपमा वाला है "जीवन तृणाग्नि के समान स्वल्पकाल का है" भोग शरदृतु के मेघों की छाया सदृश हैं, मित्र, पुत्र, कलत्र, भृत्यवर्ग, सम्बन्धी धनादि सर्व स्वप्न तुल्य हैं।

हे भूपते! दारा, पुत्र, बान्धव, भ्रातादि मह्त् सब अपने २ स्वार्थ के साथी हैं "और जीवित रहने तक ही जीते हैं" मृत्यु के समय कोई भी साथ नहीं जाता, उस पुरुष के पीछे उसी के धन से अपने सम्बन्धियों का पालन पोषण करते हैं, आनन्द से शेष आयु को व्यतीत करते हैं, और उस मृतक पुरुष का स्मरण भी नहीं करते,—इसलिए।

हे राजन्! कलत्र दारा, राज्यादि में व्यर्थ मूर्च्छा न करना चाहिए इसलिए संसार की कैसी शोचनीय दशा है।८—अत्यन्त शोकार्त पुत्र अपने मृतक पिता को घर से बाहर करते हैं, उसी प्रकार पिता भी महा दुःखी होता हुआ मृतक पुत्र को श्मशान भूमिका में लेजाकर स्वकर से उसका दाह करता है, बान्धव, बन्धु का, मृत्यु संस्कार करता है।

हे राजन्! ऐसे विचार कर तप को ग्रहण, धर्म का आचरण, करना आवश्यक है।

हे पृथिवीपते! जिस जीवने जैसे शुभ अथवा अशुभ कर्म तथा सुख दुःख उपार्जित न किए होते हैं, उन्हीं के प्रभाव से पर लोक को चला जाता है, और वेह कर्म ही उसके साथ जाते हैं, अन्य कोई भी जीव का साथी नहीं बनता।

हे महीपते! इस प्रकार की व्यवस्था को देख कर भी क्यों वैराग्य को प्राप्त नहीं होता, अर्थात् इन सांसारिक विनाशी, क्षणिक, अध्रुव सुखों के ममत्त्व भाव को त्याग कर कैवल्य रूपी नित्य ध्रुव सुखों की प्राप्ति का प्रयत्न कर।

इस प्रकार मुनि के परम वैराग्य उत्पादक, स्वल्पाक्षर, बहुत अर्थ सूचक, शराव (प्याले) में सागर को भरने की कहावत को चरितार्थ करने वाला, सत्योपदेश श्रवण करके, वह संयत राजा अत्यन्त संवेग को प्राप्त हुए, और गर्द भालि नामक अनगार के समीप वीतराग धर्म में दीक्षा के लिए उपस्थित होगए, राज्य को त्याग

किया, तथा मुनि के पास दीक्षित होकर उन्हीं के शिष्य होगए। अपितु सामाचार्यादि तथा तत्त्व ज्ञान को गुरु के पास से अध्ययन प्रारंभ किया।

बुद्धि की प्रगल्भता से स्वल्पकाल में ही तत्त्वज्ञान जैसे कठिन विषय के पारगामी होगए। एकदा गुरु की आज्ञा शिरोधारण करके आप अकेले ही विहार करगए, मार्ग में आपको एक क्षत्रिय मुनि मिले जोकि,—महान् विद्वान् थे उनसे चिरकाल तक वार्तालाप हुआ, तथा उन्होंने आपको प्राचीन राजों, महाराजों, चक्रवर्तियों के इतिहास अतीव विस्तार पूर्वक सुनाए, और संयम मार्ग में पूर्व से भी अधिक दृढ़ किया, जिनका विस्तीर्ण विवरण जैन सूत्र श्रीमदुत्तराध्ययन के अष्टादशवें अध्याय में पूर्णतया विद्यमान है जिस महाशय को अधिक इच्छा दर्शन की अभिलाषा हो, वह पूर्वोक्त सूत्र के उक्त अध्याय को स्वाध्याय करें, यहां केवल परिचय मात्र ही लिखा गया है। तथा यही इन चित्र का परिचय है।

नोट – संजय राजर्षि के चरित्र परिचय नामक लेख स्वर्गीय जैनमुनि पं॰ ज्ञानचन्द्र जी महाराज का लिखा हुआ था जो कि उनकी संचिका में ज्यू का त्यू पड़ा था और यह चित्र हस्त लिखित एक प्राचीन भंडारे से उपलब्ध हुआ था।

नवाँ पाठ।

(जैन सिद्धान्त विषय)

प्रश्न	उत्तर
ससार अनादि है या आदि है।	अनादि भी है आदि भी है।
भला यह दोनों बातें कैसे होसक्ती हैं, या तो अनादी कहना चाहिये या आदि।	प्रियवर ! संसार दोनों स्वरूपों का धारण करने वाला है अतएव ! संसार अनादि भी है और आदि भी है।
अनादी किस प्रकार से है।	प्रवाह से।
प्रवाह किसे कहते हैं।	जो क्रम से कार्य चला आता हो।
इसमें कोई दृष्टान्त दो।	जैसे पिता—और पुत्र का अनादि सम्बन्ध चला आता है तथा जैसे कुक्कड़ी से अण्डा, और अण्डा से कुक्कड़ी—इसी क्रम को प्रवाह कहते हैं।

प्रश्न	उत्तर
पहिले हथकड़ी क्यों न मानली जाए।	क्या—बिना अपराध से हथकड़ी होसकती है।
यदि बिना अपराध से हथकड़ी नहीं होसकती तो फिर पहिले अपराध ही मानलेना चाहिए।	प्रियवर! क्या हथकड़ी के बिना अपराध उत्पन्न कभी होसकता है।
जिस समय परमात्मा सृष्टि की रचना करता है उस समय अपनी शक्ति द्वारा बिना माता, पिता के पुत्र उत्पन्न होजाते हैं।	प्रियवर्य! कारण के बिना कार्य की उत्पत्ती कभी भी नहीं होसकती—जैसे मिट्टी के बिना घट नहीं बन सकता, उसी प्रकार जब परमात्मा ने मनुष्य बनाए, तब पहिले किस कारण से बनाए, और तुम कौनसा कारण मानते हो।
क्या कारण भी कई प्रकार के होते हैं।	हां—कारण दो प्रकार के होते हैं—जैसे उपादान कारण, और निमित्त कारण।
उपादान कारण का क्या अर्थ है।	अपनी शक्ति से कार्य करना।

प्रश्न	उत्तर
निमित्त कारण किसे कहते हैं।	जैसे—कुंभकार घट के बनाने में निमित्त मात्र होता है किन्तु मिट्टी आदि द्रव्य पहिले ही विद्यमान होते हैं।
हम तो सृष्टि कर्ता परमात्मा को उपादान कारण से मानते हैं।	उपादान कारण निमित्त कारण विना सफलता प्राप्त नहीं करसकता, जैसे कुंभकार—घट बनाने का वेत्ता तो है किन्तु मिट्टी आदि द्रव्य उसके पास नहीं है तो भला! वह किस प्रकार घट बना सकता है।
परमात्मा अपनी शक्ति द्वारा सब कुछ करसकता है।	क्या—ईश्वर के इच्छा भी है।
ईश्वर इच्छा से रहित है इसलिए! उसको इच्छा नहीं होती।	जब! ईश्वर इच्छा से रहित है तो फिर विना इच्छा शक्ति का स्फुरणा कैसे संभव होसकता है।
वह सर्वशक्तिमान् है। जो चाहे सो करसकता है।	क्या—ईश्वर अपने स्थान में दूसरे ईश्वर को बना सकता है। और अपना नाश कर सकता है।

प्रश्न	उत्तर
यह दोनों असम्भव कार्य हैं इन्हें ईश्वर क्यों करे।	प्रियवर ! जब सर्वशक्तिमान् मानते हो फिर यह असंभव क्यों होसकते हैं।
असम्भव कार्य ईश्वर नहीं करता।	यथा–बिना माता पिता के सृष्टि की रचना करना यह असम्भव कार्य नहीं है।
माता पिता के बिना सृष्टि का उत्पन्न करना कोई असम्भव बात नहीं है क्योंकि–बहुतसी सृष्टि बिना माता के ही उत्पन्न होती दिख पड़ती है जैसे–मेंढक सृष्टि बिना माता पिता के होजाती है।	उत्त ! मेंढक सृष्टि ! वर्षा के निमित्त से उत्पन्न होती है–क्योंकि–जिस पृथिवी में मेंढक उत्पन्न होने के परमाणु होते हैं उसी में वर्षा के कारण से पूर्व कर्मों के कारण से मेंढक योनि वाले जीव उत्पन्न होजाते हैं–क्योंकि–यदि ऐसे न माना जायगा तब ! वर्षा के समय किसीने पानी आदि वर्तन (भाजन) रखलिए फिर वह जल से भरगए किन्तु मेंढकों की उत्पत्ति उस जल में नहीं देखीजाती अतः

प्रश्न	उत्तर
	सिद्ध हुआ—वर्षा केवल निमित्त मात्र होती है वास्तव में उन जीवों की योनि वही है।
जैसे वनस्पति समूर्च्छिम उत्पन्न होजाती है उसी प्रकार सृष्टि के विषय में भी जानना चाहिए।	मित्रवर ! वनस्पति आदि जीवों की जैसे योनि होती है वेह उसी प्रकार उस योनि में पानी आदि निमित्तों के द्वारा उत्पन्न होजाते हैं किन्तु विना माता पिता के पुत्र उत्पन्न कभी भी नहीं होसक्ता।
मनुष्यों की सृष्टि के विषय में जैन शास्त्र क्या बतलाते हैं।	जैन सूत्रों में लिखा है कि अनादिकाल से यह नियम चला आता है—स्त्री पुरुष के परस्पर संयोग (मैथुन) से गर्भजन्य मनुष्य सृष्टि उत्पन्न होती चली आरही है और आगे को भी यही नियम चला जायगा।

प्रश्न	उत्तर
सखे ! आदि सृष्टि मैथुनी नहीं होती परन्तु मैथुनी सृष्टि होजाती है।	अवश्य ! अब ! अमैथुनी सृष्टि उत्पन्न होती नहीं सकती तो क्या सृष्टि हुई कहां से जो आपने परन्तु सृष्टि मैथुनी होती है ऐसे मानलिया है, तो क्या पहिली सृष्टि में परमात्मा ने क्या दोष देखा जिससे उसको प्रथम नियम बदलना पड़ा।
तो फिर हमको क्या मानना चाहिए !	हमको प्रवाह से संसार अनादि मानना चाहिए।
तो क्या आदि संसार किस प्रकार माना जासकता है।	पर्याय से !
पर्याय किसे कहते हैं।	पदार्थों की दशा परिवर्तन हो जाना जैसे शुभ पदार्थ से अशुभ होजाते हैं और अशुभ पदार्थों से शुभ बन जाते हैं नूतन से पुरातन, और प्राचीन से फिर नूतन—जैसे अनादि पदार्थ बनाया करने

प्रश्न	उत्तर
	के पश्चात् मल मूत्र की पर्याय को प्राप्त होजाते हैं फिर वही मल मूत्र खेत आदि स्थानों में पड़ कर फिर अन्नादि पर्याय को प्राप्त होजाते हैं।
मनुष्यों का पर्याय किस प्रकार परिवर्त्तन होता है।	मनुष्यों का पर्याय समय२ परिवर्त्तन होता रहता है, और स्थूल पर्याय—यह है जैसे—बाल, युवा, और वृद्ध।
मनुष्य आदि क्या अनादि हैं।	मनुष्य आदि भी है और अनादि भी है।
किस प्रकार अनादि और आदि है।	जीव अनादि है मनुष्य की पर्याय आदि है जैसे जब मनुष्य उत्पन्न हुआ उस समय उसकी आदि हुई और जब मृत्यु होगया तब मनुष्य की पर्याय का अंत होगया।
क्या हर-एक जीव इसी प्रकार से माने जाते हैं।	हां—हर एक—जीव इसी प्रकार माने जाते हैं जैसे—देव योनि के जीव आदि भी हैं—और अनादि भी हैं—आदि तो वेह इस लिए हैं कि—देव

उत्तर

योनि में उत्पन्न होने के कारण से क्योंकि-जिसकी उत्पत्ति है उसकी आदि है और जब आदि सिद्ध हुई तब वेद अन्त वाले भी सिद्ध होगए। अतएव ! वेद सादि सान्त हैं किन्तु जीव द्रव्य की अपेक्षा से वेद अनादि अनंत हैं इस प्रकार हर एक के विषय में जानना चाहिये।

अनादि अनन्त कौन २ से द्रव्य हैं।

धर्म-अधर्म, आकाश, काल जीव और पुद्गल, यह वे द्रव्य अनादि अनन्त हैं।

अनादि सान्त क्या है ?

भव्य जीवों के कर्म अनादि सान्त हैं अर्थात् जो जीव मोक्ष जाने वाले हैं उनके साथ जो कर्मों का सम्बन्ध है वह अनादि सान्त है क्योंकि-कर्मों को क्षय करके मोक्ष जायेंगे।

प्रश्न	उत्तर
सादि अनन्त पदार्थ कौन सा है।	जिस समय ! जो जीव मोक्ष में जाता है उस समय उसकी आदि होती है परन्तु वह अपुनरा त्ति वाला होता है इस लिये उसे सादि अनन्त कहा जाता है।
सादि सान्त पदार्थ कौन २ से हैं।	चारों जातियों क जीवों का पर्याय सादि सान्त हैं तथा पुद्गल द्रव्य का पर्याय सादि सान्त है।
चारों जातियों के जीवों की पर्याय सादि सान्त कैसे हैं।	नारकीय १ देव २ मनुष्य ३ और तियक् ४ इन जीवों के उत्पन्न और मृत्यु धम के देखने से यही निश्चय होता है कि—इनका पर्याय सादि सान्त है और जीव की अपेक्षा अनादि अनन्त है।
पुद्गल द्रव्य किसे कहते हैं।	जिसके मिलने और बिछुरने का स्वभाव है यावन्मात्र पदार्थ हैं वे सर्व पुद्गल द्रव्य हैं और यह रूप है।

प्रश्न	उत्तर
प्रमाण किसे कहते हैं।	जो सर्व देश ग्राही हो अर्थात् सर्व प्रकार से पदार्थों का वर्णन करे।
प्रमाण कितने हैं।	दो।
उनके नाम बताओ।	प्रत्यक्ष प्रमाण १ और परोक्ष प्रमाण २।
प्रत्यक्ष प्रमाण कितने प्रकार से वर्णन किया गया है।	दो प्रकार से।
उनके नाम बतलाओ।	इन्द्रिय प्रत्यक्ष प्रमाण १ और नो इन्द्रिय प्रत्यक्ष प्रमाण।
इन्द्रिय प्रत्यक्ष प्रमाण किसे कहते हैं।	जो पांचों इन्द्रियों के प्रत्यक्ष होवे-जैसे जो शब्द सुनने में आते हैं वह श्रुतेन्द्रिय के प्रत्यक्ष होते हैं, जो रूप के पुद्गल देखने में आते हैं, वह चक्षुरिन्द्रिय के प्रत्यक्ष हैं उसी प्रकार पांचों इन्द्रियों के विषय में जानना चाहिये। अर्थात् जिन पदार्थों का पांचों इन्द्रियों द्वारा निर्णय किया जाता है उन्हें ही इन्द्रिय प्रत्यक्ष कहते हैं।

प्रश्न	उत्तर
नो इन्द्रिय प्रत्यक्ष किसे कहते हैं।	नो इन्द्रिय प्रत्यक्ष उसे कहते हैं जो इन्द्रियों के विना सहारे केवल आत्मा द्वारा ही पदार्थों का निर्णय किया जाए।
नो इन्द्रिय प्रत्यक्ष ज्ञान कितने प्रकार से वर्णन किया गया है।	दो प्रकार से।
उनके नाम बतलाओ।	देश प्रत्यक्ष १ और सर्व प्रत्यक्ष २
देश प्रत्यक्ष किसे कहते हैं।	जिस आत्मा के ज्ञाना वरणीय और दर्शना वरणीय कर्म के सर्वथा आवरण दूर नहीं हुए हैं किन्तु देश मात्र आवरण दूर होगया है सो वह आत्मा जिन पदार्थों का निर्णय करता है या अपने आत्मा द्वारा उन पदार्थों को देखता है उसे ही देश प्रत्यक्ष कहते हैं।

प्रश्न—	उत्तर—
देश प्रत्यक्ष के कितने भेद हैं।	दो भेद।
वे कौन २ से हैं।	अवधि ज्ञान ना इन्द्रिय देश प्रत्यक्ष और मनः पर्यय ज्ञान नो इन्द्रिय देश प्रत्यक्ष।
अवधि ज्ञान देश प्रत्यक्ष किसे कहते हैं।	जो रूपि पदार्थ हैं वह उनको अपने ज्ञान में प्रत्यक्ष देखता है किन्तु जो पर्यायादि द्रव्य हैं उनको वह अपने ज्ञान में प्रत्यक्ष नहीं देखता।
मनः पर्यय ज्ञान देश प्रत्यक्ष किसे कहते हैं।	जो–मन के पर्यायों को भी जान लेता है मनके पर्यायों को (भाषा) जानता है।
ना इन्द्रिय सर्व प्रत्यक्ष ज्ञान किसे कहते हैं।	ना इन्द्रिय सर्व प्रत्यक्ष ज्ञान केवल ज्ञान का नाम है क्योंकि– केवल ज्ञान क्षायिक भाव में होता है इसी ज्ञान वाले को सर्वज्ञ और सर्वदर्शी कहते हैं।

प्रश्न	उत्तर
प्रत्यक्ष ज्ञान कैसा होता है।	यह अति निर्मल और विशद होता है केवल आत्मा पर ही इसकी निर्भरता है इन्द्रियों की सहायता की यह ज्ञान इच्छा नहीं रखता इसी लिए ! इस ज्ञान को अतीन्द्रिय ज्ञान भी कहते हैं ज्ञाना वरणीय १ दर्शना वरणीय २ कर्मों के क्षय से इसकी उत्पत्ति मानी जाती है।
परोक्ष ज्ञान किसे कहते हैं।	जो इन्द्रियादि के सहारे से प्रादुर्भूत हो और फिर आत्मा द्वारा उस का प्रमाण सहित निर्णय किया जाए।
परोक्ष ज्ञान के कितने भेद हैं	पांच—५
वे कौन २ से हैं।	स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अनुमान, और आगम (शास्त्र)

प्रश्न	उत्तर
स्मृति ज्ञान किसे कहते हैं?	पहिले संस्कार से जो ज्ञान उत्पन्न होता है उसे स्मृति ज्ञान कहते हैं —जैसे यह वही देवदत्त है इत्यादि
प्रत्यभिज्ञान किसे कहते हैं।	जो-प्रत्यक्ष और स्मृति की सहायता से उत्पन्न होता है उस ज्ञान को प्रत्यभिज्ञान कहते हैं जैसे कोई पुरुष किसी के पास खड़ा है वा उसको देखने वाले ने कहा कि— यह वही पुरुष है जिसको मैंने वहाँ पर देखा था वा गौ के सदृश यह गवय है इत्यादि।
तर्क ज्ञान किसे कहते हैं।	जो अन्वय-और व्यतिरेक की सहायता से उत्पन्न होता है उसही "तर्क" ज्ञान कहते हैं।

प्रश्न	उत्तर
अन्वय किसे कहते हैं ।	जिसके होने मे दूसरे पदार्थ की सिद्धि पाई जावे, जैसे आग होने से धूआं होता है उसे अन्वय कहते हैं ।
व्यतिरेक किसे कहते हैं ।	जिसके न होने से दूसरे पदार्थ की भी असिद्धि होजावे—जैसे आग के न होने से धूम भी नहीं होता ।
अन्वय का दूसरा नाम क्याहै	उपलब्धि ।
व्यतिरेक का दूसरा नाम क्या है ।	अनुपलब्धि ।
अनुमान किसे कहते हैं ।	साधन के द्वारा जो साध्य का ज्ञान होता है उसे ही अनुमान कहते हैं ।
हेतु किसे कहते हैं ।	जो साध्य के साथ अविनाभावपन से निश्चित हो, अर्थात् साध्य के विना होही न सके उसेही हेतु कहते हैं ।
अविना भाव किसे कहते हैं ।	जो सह भाव नियम को और क्रम भाव को नियम को धारण किये हुए हो ।

प्रश्न	उत्तर
सहभाव नियम किसे कहते हैं।	जो सदैव साथ २ ही रहें पदार्थ उन्हीं का नाम सह भाव नियम होता है। जैसे—रूप में रस अवश्य ही होता है तथा "व्याप्य" और व्यापक पदार्थों में अविना भाव सम्बन्ध होता है जैसे वृक्षत्व "व्यापक" और शिंशपात्व व्याप्य है।
क्रम भाव नियम किसे कहते हैं।	पूर्व चर और उत्तर पदार्थों में तथा कार्य कारणों में क्रम भाव नियम होता है जैसे कृत्तिका उदय पहले होता है और उसके पीछे रोहिणी का उदय होता है तथा अग्नि के बाद धुआं होता है इस प्रकार के भावों का तर्क से निर्णय किया जाता है।

प्रश्न	उत्तर
साध्य किसे कहते हैं।	जो पक्षवादी का माना हुआ हो और प्रत्यक्षादि प्रमाणों से असिद्धि न किया गया हो। वही साध्य कहा जाता है। अर्थात् जो सिद्ध करना है वही साध्य होता है।
आगम किसे कहते हैं।	जो शास्त्र आप्त प्रणीत हैं वही आगम हैं तथा आप्त के वचन आदि से होने वाले पदार्थों के ज्ञान को आगम कहते हैं।
आप्त किसे कहते हैं।	जो यथार्थ वक्ता हो और राग द्वेष से रहित हो वही आप्त होता है क्योंकि जो जीव राग द्वेष से युक्त है वह कभी भी यथार्थ वक्ता नहीं हो सकता। किन्तु जिसका राग द्वेष नष्ट होगया है वास्तव में वही आप्त है और जो उसके वचन होते हैं उन्हें ही आप्त वाक्य कहते हैं।

प्रश्न	उत्तर
वाक्यार्थ ज्ञान का हेतु क्या है।	जिसमें तीन बातें पाई जावें जैसे–आकांक्षा–योग्यता–और सन्निधि—
आकांक्षा किसे कहते हैं।	एक पद का पदान्तर में व्यतिरेक (विशेष) प्रयोग किये हुये अन्वय (सम्बन्ध) का अनुभव (समझना) न होना आकांक्षा कहलाती है।
योग्यता किसे कहते हैं।	अर्थ के अबाध (रुकावट का न होना) का नाम योग्यता है।
सन्निधि किसे कहते हैं।	पदों का अविलम्ब (शीघ्र) से उच्चारण करना।

प्रश्न	उत्तर
इसमें कोई दृष्टान्त दो।	जैसे—किसी ने कहा कि—शास्त्र शीघ्र पढ़ो। इस वाक्य में आकांक्षा योग्यता—और सन्निधि तीनों का अस्तित्व है तब ही शास्त्र शीघ्र पढ़ो! इस वाक्य से बोध हो सकता है—यदि इन तीनों पदों को भिन्न २ ता से पढ़ें। जैसे—शास्त्र—फिर कुछ समय के पश्चात् "शीघ्र" कह दिया तदनु बहुत समय के पीछे "पढ़ो" इस क्रिया पद का प्रयोग कर दिया इस प्रकार पढ़ने से वाक्य से यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती अतः उक्त त्रय वाला ही वाक्य प्रमाण हो सकता है।
अभाव किसे कहते हैं।	भाव का न होना वही अभाव होता है।

प्रश्न	उत्तर
अभाव कितने कथन किये गये हैं।	चार।
उनके नाम बतलाओ।	प्राग भाव, प्रध्वंसा भाव, अत्यन्ता भाव, अन्योन्या भाव,
प्राग भाव किसे कहते हैं।	जैसे घट की उत्पत्ति के पहिले मिट्टी में घट का प्राग भाव कहा जाता है अर्थात् कारण रूप मिट्टी तो होती है किन्तु कार्य रूप का अभाव ही माना जाता है।
प्रध्वंसा भाव किसे कहते हैं	जब कार्य रूप घट बनगया है तो फिर उस घट का विनाश भी अवश्य होगा अतः विनाश काल का प्रध्वंसा भाव कहते हैं।

प्रश्न	उत्तर
अत्यन्ता भाव किसे कहते हैं।	जैसे जीव से अजीव नहीं होता अजीव से जीव नहीं बनसकता यह दोनों पदार्थ परस्पर अत्यन्ता भाव में रहते हैं इन्हींका नाम अत्यन्ता भाव है।
अन्योऽन्या भाव किसे कहते हैं।	जैसे घोड़ा बैल नहीं हो-सकता, बैल घोड़ा नहीं हो सकता—जो जिसका वर्त्तमान में पर्याय है उसका भावपर्यन्त वही रहता है। अन्य नहीं—इसी का नाम अन्योऽन्या भाव है।
प्रतिज्ञा किसे कहते हैं।	जैसे यह पर्वत अग्नि वाला है इस बात की अनुभूति को प्रतिज्ञा कहते हैं।
हेतु किसे कहते है।	जैसे यह पर्वत अग्नि वाला इस लिये है कि—इस से धूआं निकलता है—इसको हेतु कहते हैं।

प्रश्न	उत्तर
उदाहरण किसे कहते हैं।	जैसे जो जो धूम वाला होता है सो सो आग वाला होता है। यही उदाहरण है।
उपनय किसे कहते हैं।	जो उदाहरण का प्रमाण है यही विशद उपनय कहा जाता है।
निगमन किसे कहते हैं।	जैसे जो जो धूम वाला होता है सो सो आग वाला होता है उसी प्रकार यह पर्वत भी धुएं के देखने से निश्चित होगया है कि—यह भी आग वाला है।
अनुमान प्रमाण के मुख्य कितने भेद हैं।	तीन।
उनके नाम बतलाओ।	पूर्ववत् १, शेषवत् २, और सामर्थ्यवत् ३।

प्रश्न	उत्तर
पूर्ववत् किसे कहते हैं।	जैसे किसी स्त्री का पुत्र बाल्यावस्था में कहीं चला गया जब फिर वह अपने नगर में आगया तब उसकी माता ने उसके पूर्व चिन्हों को देख कर निश्चय किया कि—यह मेरा ही पुत्र है तथा बाढ़ का ज्ञान धूम के चिन्ह देखने से आग का ज्ञान इत्यादि को पूर्ववत् कहते हैं।
शेषवत् के कितने भेद हैं।	पांच।
उनके नाम बतलाओ।	कार्य, कारण, गुण, अवयव, आश्रय,
कार्य किसे कहते हैं।	कारण से कार्य का ज्ञान होना जैसे शंख के शब्द से शंख का ज्ञान इत्यादि,
कारण किसे कहते हैं।	कारण से कार्य की उत्पत्ति होना—जसे—तंतुओं से वस्त्र, मृत्पिण्ड से घट इत्यादि,

प्रश्न	उत्तर
गुण किसे कहते हैं।	सुवर्ण निकष से जाना जाता है अर्थात् कसोटी पर सुवर्ण के गुण देखे जाते हैं पुष्प गंध से जाना जाता है, लवण रस से इत्यादि।
अवयवज्ञान किसे कहते हैं।	अवयव से अवयवी का ज्ञान होजाता है जैसे-धूंमसे अग्नी का ज्ञान, दांतों से हाथी का ज्ञान, मोर पिच्छी से मोर का ज्ञान, खुर से घोड़े का ज्ञान, दो पद से मनुष्य का ज्ञान, केशरसे सिंह ज्ञान एक सिक्थ भात के देखने से चावलोंके पकनेका ज्ञान, कवि का एक गाथा के बोलने से कवित्वने का ज्ञान, इत्यादि अवयवों स अवयवी का ज्ञान होता है।

प्रश्न	उत्तर
आश्रय ज्ञान किसे कहते हैं।	जैसे—धूप से आग का ज्ञान बगलों से जल का ज्ञान, बादलों से वृष्टि का ज्ञान, शीलाचार से कुल पुत्र का ज्ञान इत्यादि को आश्रय ज्ञान कहते हैं।
दृष्टि साधर्म्यवत् किसे कहते हैं।	दृष्टि साधर्म्य के दो भेद हैं—जैसे सामान्य दृष्ट और विशेष दृष्ट २
सामान्य दृष्ट किसे कहते हैं।	जैसे—एक पुरुष है उसी प्रकार और पुरुष भी होते हैं तथा जैसे एक मुद्रा होती है उसी प्रकार और मुद्रा भी होती हैं।

प्रश्न	उत्तर
विशेष दृष्ट किसे कहते हैं।	जैसे किसी ने–किसी को किसी स्थान पर देखा। तो उसने यह निश्चय किया कि– मैंने इस को अमुक स्थान पर देखा था यह वही पुरुष है इत्यादि प्रत्यभिज्ञान को विशेष दृष्ट कहते हैं।
जब तुम प्रवाह से संसार को अनादि मानते हो तो फिर–यह भाषादादि प्रवाह से अनादि क्यों नहीं है।	प्रियवर ! तुम्हारा प्रश्न के पर्याय में सादि सान्त भाषा बतलाया गया है या जब जैन शास्त्र ही इन भाषों को सादि सान्त मानते हैं, तो फिर हम भाषादादि को प्रवाह से अनादि कैसे बनाए कैसे मानें–तथा यह भाषा दादि प्रवाह से बनाम अनादि कहे जाते हैं किन्तु पर्याय से आदि है–जैसे–प्रवाह से मनुष्य भग,दि कहे जाते हैं तद्वत् हो उन की कृतियें क्रियाएं भी प्रवाह से अनादि हैं।

प्रश्न	उत्तर
हमारे विचार में बिना बनाये तो कोई वस्तु नहीं बन सकती।	प्रियवर! जब तुम जीव ईश्वर और प्रकृति को अनादि मानते हो तो बतलाइये यह बिना बनाये कैसे बन गये।
जैन धर्म का मन्तव्य क्या है।	जैन धर्म का मन्तव्य यही है कि–इस अनादि संसार चक्र में अनादि काल से जीव अपने किये हुये कर्मों द्वारा जन्म मरण करते चले आये हैं अपितु वेद कर्म प्रवाह से अनादि हैं पर्याय से कर्म आदि हैं उन कर्मों को सम्यग्-ज्ञान, सम्यग दर्शन, सम्यग् चारित्र, द्वारा क्षय करके मोक्ष प्राप्ति करना है।
सम्यग् ज्ञान किसे कहते हैं।	अच्छा ज्ञान—"यथार्थ ज्ञान"।

प्रश्न	उत्तर
लक्षणाभास किसे कहते हैं।	जो वास्तविक लक्षण तो नहीं हो परन्तु लक्षण सरीखा मालूम पड़े उस को लक्षणाभास कहते हैं"
अव्याप्ति दोष किसे कहते हैं	जो लक्षण के एक देश में रहे उसको अव्याप्ति कहते हैं" जैसे गौ का लक्षण शावलेयत्व।
अति व्याप्ति दोष किसे कहते हैं।	जो लक्षण लक्ष्य में रह कर अलक्ष्य में भी रहे उस को अति व्याप्ति लक्षण कहते हैं जैसे-गौ का लक्षण "पशुपना" यद्यपि-गौ भी पशु है परन्तु यह लक्षण भैंसादि में भी पाया जाता है इसीलिए। यह अति व्याप्ति दोष कहा जाता है॥

प्रश्न	उत्तर
असंभव दोष किसे कहते हैं।	जिस का लक्ष्य में रहना किसी प्रकार से भी सिद्ध न हो, जैसे मनुष्य का लक्षण सींग" यह मनुष्य का लक्षण किसी भी मनुष्य में घटित नहीं होता इस लिये इस लक्षण को असम्भवी लक्षण कहते हैं।
स्याद्वादशब्द का क्या अर्थ है।	यह पदार्थ इस प्रकार से है और इस प्रकार से नहीं है, जैसे जो पदार्थ है वह अपने गुण में सद्रूप है पर गुण में असद्रूप है इस को स्याद्वाद कहते हैं। तथा यह पदार्थ ऐसे भी है और ऐसे भी हैं इसप्रकार के कथन को स्याद्वाद कहते हैं।

प्रश्न	उत्तर
सम्यग् दर्शन किसे कहते हैं।	सच्चा श्रद्धान—"यथार्थ निश्चय"
सम्यग् चारित्र किसे कहते हैं।	सच्चा आचरण—"यथार्थ चारित्र"
सम्यग् शब्द किस लिये जोड़ा गया है।	संशय, विपर्यय, अनध्यवसाय, इन दोषों के दूर करने के लिये।
संशय ज्ञान किसे कहते हैं।	जिस ज्ञान में संशय उत्पन्न हो जावे, जैसे क्या यह, स्थाणु है या पुरुष है"
विपर्यय ज्ञान किसे कहते हैं।	विपरीत ज्ञान, जैसे—सीप में चांदी की बुद्धि तथा मृग तृष्णा का भ्रम।
अनध्यवसाय ज्ञान किसे कहते हैं।	जैसे मार्ग में चलते हुए, पाद में (पैर) में कण्टक लग गया वा फिर यह विचार करना कि—पाद में क्या लगा है इस प्रकार के संशय को अनध्यवसाय कहते हैं।

प्रश्न	उत्तर
लक्षण किसे कहते हैं।	अनिधारित वस्तु समूह में से किसी एक विवक्षित वस्तु का निर्धार कराने वाले हेतु को लक्षण कहते हैं।
लक्षण कितने प्रकार का होता है।	दो प्रकार का।
उन के नाम बतलाओ।	आत्म भूत लक्षण और अनात्म भूत लक्षण,,
आत्म भूत लक्षण किसे कहते हैं।	जो वस्तु के स्वरूप से भिन्न न हो उस को आत्म भूत लक्षण कहते हैं, जैसे अग्नि का लक्षण उष्णता "यह लक्षण अग्नि का आत्म भूत कहा जाता है।
अनात्म भूत लक्षण किसे कहते हैं।	जो आत्म स्वरूप से भिन्न हो उसी को अनात्म भूत लक्षण कहते हैं—जैसे, दण्डे वाले को लाओ "यह दण्ड लक्षण" "अनात्म भूत कहा जाता है"

प्रश्न	उत्तर
लक्षणा भास किसे कहते हैं।	जो वास्तविक लक्षण तो नहीं हो परन्तु लक्षण सरीखा मालूम पड़े उस को लक्षण भास कहते हैं"
अव्याप्ति दोष किसे कहते हैं	जो लक्ष्य के एक देश में रहे उसको अव्याप्ति कहते हैं" जैसे गौ का लक्षण शावलपना।
अति व्याप्ति दोष किसे कहते हैं।	जो लक्ष्य मात्र में रह कर अलक्ष्य में भी रहे उस को अति व्याप्ति लक्षण कहते हैं जैसे—गौ का लक्षण "पशुपना" यद्यपि—गौ भी पशु है परन्तु यह लक्षण भैंसादि में भी पाया जाता है इसीलिए। यह अति व्याप्ति दोष कहा जाता है ॥

प्रश्न	उत्तर
असंभव दोष किसे कहते हैं।	जिस का लक्ष्य में रहना किसी प्रकार से भी सिद्ध न हो, जैसे मनुष्य का लक्षण सींग" यह मनुष्य का लक्षण किसी भी मनुष्य में घटित नहीं होता इस लिये इस लक्षण को असम्भवी लक्षण कहते हैं।
स्याद्वादशब्द का क्या अर्थ है।	यह पदार्थ इस प्रकार से है और इस प्रकार से नहीं है, जैसे जो पदार्थ है वह अपने गुण में सद्रूप है पर गुण में असद्रूप है इस को स्याद्वाद कहते हैं। तथा यह पदार्थ ऐसे भी है और ऐसे भी है इसप्रकार के कथन को स्याद्वाद कहते हैं।

प्रश्न	उत्तर
आत्मा का आत्मभूत लक्षण कौनसा है।	चैतन्यता—उपयोग और बलवीर्य यह दोनों लक्षण आत्मा के आत्म भूत हैं
अनात्म भूत लक्षण कौन सा है।	जैसे "क्रोधी आत्मा" इत्यादि क्योंकि क्रोध के परमाणु आत्मा के आत्म भूत में नहीं होते किन्तु वास्तव में पुद्गलास्तिकाय का द्रव्य है राग द्वेष के कारण से यह परमाणु आत्मा में आते हैं—यदि उन का आत्म भूत कहा जाए तो यह कभी भी आत्मा से पृथक् न होंगे परन्तु आत्मा उन परमाणुओं को छोड़ कर मोक्ष हो जाता है वा जीवन मुक्त हो जाता है।

दशवां पाठ।

(श्रमणो पासक विषय)।

प्रिय सुज्ञ पुरुषो ! इस असार संसार में सदा चार ही जीवन है सदा चार से ही सर्व गुणों की प्राप्ति हो सकती है जिस जीव ने सदा चार को मित्र नहीं बनाया उस का जीवन इस संसार में भार रूप ही होता है,, क्योंकि–यदि सदा चार से रहित जीवन है तो उस का जीवन पशु के समान ही होता है।

खान, पान, भोग, शीत, उष्ण इत्यादि जो पशु कष्ट सहन करते हैं वही कारण सदा चार से पतित जीव को मिल जाते हैं आदर्श रूप वही जीव बन सकता है जो सदा चार से अलंकृत हो, जिस का जीवन पवित्र नहीं है, उस का प्रभाव किसी पर पड़ नहीं सकता, धर्म पथ से भी वह गिर जाता है, लोग उस को सुदृष्टि से नहीं देखते हैं।

अतएव ! मनुष्यों के जीवन का सार सदा चार ही है संसार पक्ष में अनेक प्रकार के सदा चार होने पर भी

मुनियों की संगति करना और उन को यथोचित सेवा करना यह परम सम्यक्त्व कोटि का सदा चार का अंग है, बहुत से आत्मा अच्छे आचार वाले होने पर भी साधु संगति से वञ्चित ही रहते हैं वे सर्व प्रकार से सदा चार के फल को उपलब्ध नहीं कर सकते। ज्ञान और विज्ञान से वे पृथक् हा रह जाते हैं।

इस लिये ! जो साधु गुणों से युक्त मुनि हैं उन्हीं का नाम श्रमण है सदा चारियों के लिये वह "उपास्य" है सदा चारी उस के उपासक होते हैं इसी लिये ! सदा चारियों का नाम, "श्रमणो पासक" कहा जाता है, अपितु सदा चार की प्राप्ति गुणों पर ही निर्भर है।

गुणों की प्राप्ति करना प्रत्येक व्यक्ति का मुख्य कर्तव्य है यह गुण कहीं से प्राप्त होजाएं वहां से ही ले लेने चाहियें।

सज्जनो ! गुण ही जीवन का सार है गुणों से ही जीव सत्कार के पात्र बन सकते हैं, प्रतिष्ठा भी गुणों से ही मिल सकती है जैन ग्रन्थों में श्रमणो पासक के २१ गुण वर्णन किए गये हैं जैसे कि—

१ क्षुद्र वृत्तिवाला न होना और अन्याय से धन उत्पन्न न करना क्योंकि- जो अन्याय से धन उत्पन्न करते हैं वे सदा चारियों की पंक्ति में नहीं गिने जाते न वे धन्यवाद के पात्र ही हैं मित्रो ! अन्याय करने का फल कभी भी अच्छा नहीं होता इसलिये अन्याय न करना चाहिये, और क्षुद्र वृत्तिवाला पुरुष सभ्यता से गिर जाता है सदैव पिशुनता (चुगली) में ही लगा रहता है और धर्म कर्म से गिर जाता है इस लिए ! पहिला गुण यही है कि- अक्षुद्र होना । २ रूपवान्-जैसे कोकिला का स्वरूप है कुरूपों का विद्या रूप है उसी प्रकार मनुष्यों का शील रूप है जो पुरुष शील से रहित होता है वह शरीर के सुन्दर होने पर भी असुन्दर ही गिना जाता है लोगों में माननीय नहीं रहता-यदि उसके पास धन भी है तो भी वह सभ्य पुरुषों में निंदनीय ही होता है जैसे-रावण-अतिसुन्दर होने पर भी लोगों में उस की सुन्दरता नहीं गिनी जाती अपितु जिन पुरुषों ने अपने शील को नहीं छोड़ा और प्रतिज्ञा में दृढ़ रहे हैं वे संसार की दृष्टि में पूजनीय हैं । अतएव ! सदाचारियों का रूप शील है यद्यपि पांचों इन्द्रिय पूर्ण, शरीर निरोग्यता यह भी गुण रूपवान्

के गिने जाते हैं और इन्हीं गुणों से रूपवान् कहा जाता है परन्तु वास्तव में शील गुण ही प्रधान माना जाता है अतएव ! यह गुण अवश्य ही धारण करने चाहिये।

३ प्रकृति सौम्य—स्वभाव से शुद्ध हृदय वाला होवे—क्योंकि जब आधार (भाजन) ठीक होगा तब ही उस में गुण निवास कर सकते हैं—जिन की प्रकृति कठिन वा कुटिल है वे कदापि धर्म के योग्य नहीं हो सकते— स्वच्छ भूमि में ही शुद्ध बीज की उत्पत्ति हो सकती है जो भूमि अशुद्ध है उस में शुद्ध बीज भी अंकुर नहीं दे सकता इसी प्रकार जिस आत्मा का हृदय शुद्ध है प्रकृति सौम्य है वही गुणों का भाजन हो सकता है जैसे पशुओं में गौ—वृष—आदि जीव कुटिल प्रकृति वाले न होने के कारण लोगों के प्रेम के पात्र बन जाते हैं और गिरद् (श्याल) लोमड़ी चित्ता आदि जीव सरल और सौम्य प्रकृति वाले न होने से वे विश्वास के पात्र नहीं होते अतएव ! प्रकृति सौम्य अवश्य ही होनी चाहिए।

लोकप्रिय—अपने गुणों द्वारा लोक में प्रिय होना चाहिए क्योंकि—प्रिय कार्य करने वाला और प्रिय

बोलने वाला किसी को भी अप्रिय नहीं लगता जो उक्त गुणों से गिरे हुए हैं वे किसी को भी प्रिय नहीं लगते क्यों कि लोक तो जिस प्रकार देखते हैं उसी प्रकार कह देते हैं अतएव लोक प्रिय बनना अपने स्वाधीन ही है जब अवगुणों को छोड़ दिया तब अपने आप सब को प्रिय लगने लग जाता है—जैसे क्रोध, माया, लोभ, छल, चुगली, धूर्त्तपना, हठ, इत्यादि जब अवगुणों को छोड़ दिया तब लोक प्रिय बनना कोई कठिन नहीं है फिर उत्तम वही होता है जो अपने गुणों से सुप्रसिद्ध हो—किन्तु जो पिता के नाम से प्रसिद्ध है वह मध्यम है इस लिये । उत्तम गुणों द्वारा लोक में सुप्रतिष्ठित होना चाहिये । इसी से लोक में वा राजादि की सभा में माननीय पुरुष बन जाता है ॥

५—अक्रूरचित्त—चित्त क्रूर न होना चाहिए—जिन आत्माओं का चित्त क्रूर होता है वह निर्दयी कहलाते हैं क्रूर चित्त वाले आत्मा किसी पर भी परोपकार नहीं कर सकते वे सदैव औरों को छलने के भावों में लगे रहते हैं उन के सामने यदि कोई हिंसादि क्रियाएँ करते

हों फिर भी वह आर्द्र चित्त नहीं होते तथा क्रूर चित्त वाले जीव धार्मिक कार्यों में भी भाग नहीं लेते न वे धार्मिक कर्मों को श्रेष्ठ ही, समझते हैं अपितु उन से सदैव क्रूर ही कर्म होते हैं जिन का फल उनके लिए पशु योनि वा नरक गति है।

सज्जनों ! इस एकगुण वाला जीव कदापि मोक्ष कर्म में प्रविष्ट नहीं होता जैसे सांप का विष उगलने का स्वभाव होता है ठीक उसी प्रकार क्रूरचित्त वाले जीव का स्वभाव भी निर्दय भाव में ही रहता है अतएव सदाचारी जीव को अक्रूर चित्त वाला ही होना चाहिए ।

६–भीरु—पाप कर्म के करने से भय मानना यही भीरु शब्द का अर्थ है अर्थात् पाप कर्म से सदैव भय मानता रहे जैसे लोक—सांप वा सिंहादि पशुओं से डरते हैं तथा शत्रु से भय मानते हैं व राजादि का भय मानते हैं उसी प्रकार पाप कर्म का भी भय मानना चाहिए क्योंकि जो कर्म किया गया है वह फल अवश्यमेव देगा अतएव ! पाप करते भय खाना चाहिए, किन्तु धर्म करते हुए निर्भीक बन जाना चाहिये–माता पिता वा राजादि भी यदि धर्म से प्रति

कुल उपदेश दें तो उसे भी न मानना चाहिए किन्तु यदि देवते भी धर्म से गिराना चाहें तो भी न गिरना चाहिये, अतएव सिद्ध हुआ कि पाप कर्म करते समय भय युक्त और धर्म करते समय निर्भीक बनना सुपुरुषों का मुख्य कर्त्तव्य है ।

७–अशठ–धूर्त्त न होना–जो पुरुष मायावी होतेहैं वह भी धर्म के योग्य नहीं होते क्योंकि–माया (छल) नाम एक प्रकार आभ्यन्तरिक मल है जब तक वह आत्मा से निकल न जाये तब तक आत्मा शुद्धि के मार्ग पर नहीं आसकता जैसे किसी रोगी के उदर में मल विकार विशेष हो, फिर उस को बल प्रद औषधी भी फलदायक नहीं हो सकती जब तक कि–मल न निकल जाये । जब मल निकल जाता है तब उस का औषधियों का सेवन सुख प्रद हो जाता है इसी प्रकार जब आत्मा के अन्तःकरण से माया रूप मल निकल जाता है तब उसमें भी ज्ञानादि ठीक रह सकते है, इस लिये! सदा चारी पुरुष धूर्तता से रहित होने चाहिये ।

८–दाक्षिण्य–निपुणता होनी चाहिये–क्योंकि–जो पुरुष निपुण होते हैं वही धर्मादि क्रियाएं कर सकते हैं

किन्तु जो मूढ़तादि गुणों से युक्त हैं उन से धार्मिक आदि क्रियाएं होनी असम्भव प्रतीत होती हैं क्योंकि- शास्त्रों में लिखा है कि- तीन आत्माएं शिक्षा के अयोग्य हैं जैसे कि-दुष्ट, मूर्ख, और क्रोधी, यह तीनों आत्मा शिक्षा के अयोग्य होते हैं यद्यपि मूर्ख किसी का नाम नहीं है किन्तु जो अपने हित की बात का नहीं सुनता यदि सुनता है तो उस को मानता नहीं है उसी का नाम मूर्ख है जैसे किसी मूर्ख का ज्वर का आवेश हो गया किन्तु उस के फिर तृतीय ज्वर आन लग गया तब डाक्टर साहब ने पूछा कि-तुम्हें ज्वर नित्य प्रति आता है तो उस ने उत्तर में निवेदन किया कि-डाक्टर साहब नित्य प्रति तो नहीं आता किन्तु एक दिन आता है और एक दिन नहीं आता तो फिर डाक्टर साहब ने कहा कि-क्या तुम्हें बारी का ज्वर है तो उस ने उत्तर में कहा कि नहीं साहब बारी का ज्वर तो मुझे नहीं है साहब कहा सा, कि भाई, इस का बारी कहते हैं उस मूर्ख ने कहा कि-मैं तो इस को बारी नहीं सकता फिर डाक्टर साहब ने (बारी। मानता हूं तो उसने डाक्टर

साहब मैं बारी उस को मानता हूं, यदि एक दिन ज्वर आप को चढ़ जाए और एक दिन मुझे चढ़ जाए, जब ऐसे हो जाए तो मैं बारी मानूंगा, इतनी बात सुन कर डाक्टर साहब हंस पड़े, इससे सिद्ध हुआ कि मूर्ख किसी का नाम नहीं है जो हित की बात नहीं समझता वही मूर्ख है-गृहस्थ को दाक्षिण्य होना चाहिये।

९-लज्जालु-अकार्यों से लज्जा करने वाला, पाप कर्म करते समय लज्जा करनी चाहिये, लज्जा से ही गुणों की प्राप्ति हो सकती है जो पुरुष निर्लज्ज होते हैं वे पाप कर्मों में प्रवेश कर जाते हैं, इस लिए! माता, पिता, गुरु, स्थविर (वृद्ध) इत्यादि की लज्जा करनी चाहिये, पापों से बचना चाहिए, पुरुषों और स्त्रियों की लज्जा ही आभूषण है इसी के द्वारा धर्म पंक्ति में आसकते हैं काम बिगड़ते हुओं को लज्जा वाला पुरुष ठीक कर सकता है अतएव सिद्ध हुआ लज्जा करना सुपुरुषों का मुख्य कर्तव्य है।

१०-दयालु-दया करने वाला त्रस और स्थावरों की सदैव रक्षा करने वाला इतना ही नहीं किन्तु जो

किन्तु जो मृदुतादि गुणों से युक्त हैं उन से वार्त्तिक आदि क्रियाएं होनी असम्भव प्रतीत होती हैं क्योंकि शास्त्रों में लिखा है कि– तीन आत्माएं शिक्षा के अयोग्य हैं जैसे कि–दुष्ट, मूर्ख, और क्रोधी, यह तीनों आत्मा शिक्षा के अयोग्य होते हैं यद्यपि मूर्ख किसी का नाम नहीं है किन्तु जो अपने हित की बात को नहीं सुनता यदि सुनता है तो उस को मानता नहीं है उसी का नाम मूर्ख है जैसे किसी मूर्ख को ज्वर का आवेश हो गया किन्तु उस को फिर तृतीय ज्वर आने लग गया तब डाक्टर साहब ने पूछा कि–तुम्हें ज्वर नित्य प्रति आता है तो उस ने उत्तर में निवेदन किया कि–डाक्टर साहब नित्य प्रति तो नहीं आता किन्तु एक दिन आता है और एक दिन नहीं आता तो फिर डाक्टर साहब ने कहा कि–क्या तुम्हें बारी का ज्वर है तो उस ने उत्तर में कहा कि नहीं साहब, बारी का ज्वर तो मुझे नहीं है डाक्टर साहब कहने लगे, कि, भाई, इसी का बारी कहते हैं तो उस मूर्ख ने कहा कि–मैं तो इस को बारी नहीं मान सकता, फिर डाक्टर साहब ने कहा कि–तुम बारी किसे मानते हो तो उसने डाक्टर साहब से कहा कि–डाक्टर

शास्त्र में वारी रस को मानता हूं, यदि एक दिन ज्वर आप को चढ़ जाए और एक दिन मुझे चढ़ जाए, जब ऐसे हो जाए तो मैं वारी मानूंगा, इतनी बात सुन कर डाक्टर साहब हंस पड़े, इससे सिद्ध हुआ कि मूर्ख किसी का नाम नहीं है जो हित की बात नहीं समझता वही मूर्ख है-गृहस्थ को दाक्षिण्य होना चाहिये।

९-लज्जालु-अकार्यों से लज्जा करने वाला, पाप कर्म करते समय लज्जा करनी चाहिये, लज्जा से ही गुणों की प्राप्ति हो सकती है जो पुरुष निर्लज्ज होते है वे पाप कर्मों में प्रवेश कर जाते हैं, इस लिए! माता, पिता, गुरु, स्थविर (वृद्ध) इत्यादि की लज्जा करनी चाहिये, पापों से बचना चाहिए, पुरुषों और स्त्रियों की लज्जा ही आभूषण है इसी के द्वारा धर्म पंक्ति में आसकते हैं काम बिगड़ते हुओं को लज्जा वाला पुरुष ठीक कर सकता है अतएव सिद्ध हुआ लज्जा करना सत्पुरुषों का मुख्य कर्तव्य है।

१०-दयालु-दया करने वाला त्रस और स्थावरों की सदैव रक्षा करने वाला इतना ही नहीं किन्तु जो

अपने ऊपर अपकार करने वाले हैं उन्हों पर भी दया भाव करने वाला होवे—क्योंकि जहां पर दया के भाव हैं वहां ही धर्म रह सकता है जहां दया के भाव ही नहीं हैं तो फिर वहां पर कुछ भी नहीं है इसलिये। सब जीवों पर दया करना यही सुपुरुषों का लक्षण है किन्तु हिंसा तीन प्रकार से कथन की गई है जैसे मन, वाणी और काय, मन से किसी के हानिकारक भाव न करने चाहिये वाणी से कटुक वचन न बोलना चाहिये, काय से किसी को पीड़ा न देनी चाहिये, जिस के तीनों योगों से दया के भाव हैं वह सर्व प्रकार से दयालु कहा जा सकता है अतएव। दयावान् ही धर्मों का भाजन बन सकता है।

१२—माध्यस्थ-माध्यस्थ भाव को अवलम्बन करने वाला यदि कोई कार्य विपरीत किसी ने कर दिया है तो उस को शिक्षा करनी तो आवश्यकीय है किन्तु उस के ऊपर राग द्वेष न करना चाहिये, क्योंकि जिस ने अनु चित कर्म किया है उस का फल तो उसने भोगना ही है परन्तु उस के ऊपर रागद्वेष करके अपने कर्म न बांधने चाहिये, शिक्षा करना पुरुषों का धर्म है मानना न मानना

उस की इच्छा पर निर्भर है इस लिए। जो श्रेष्ठ गृहस्थ हैं वे सदैव माध्यस्थ भाव का अवलम्बन किया करते हैं जो पुरुष माध्यस्थ भाव का अवलम्बन नहीं कर सकते हैं वे धर्म में भी स्थिर भाव नहीं रख सकते हैं, अतएव। सिद्ध हुआ कि-माध्यस्थ भाव अवश्य ही अवलम्बन करना चाहिये।

१२-सौम्यदृष्टि-दर्शन मात्र से ही आनन्दित करने वाला, जिस की दृष्टि सौम्य होती है उस के मस्तक पर क्रोध के चिन्ह नहीं दिखाई पड़ते इस लिए। जो उसके दर्शन कर लेता है उस का मन प्रफुल्लित हो जाता है-क्रोध, मान, माया, और लोभ के कारण से ही क्रूरदृष्टि हुआ करती है जब उस के चारों कषायों मन्द हो जाती हैं तब उस आत्मा की दृष्टि भी सौम्य दृष्टि बन जाती है इसलिए। यह गुण अवश्य ही धारण करना चाहिये।

१३-गुण पक्ष पाती-गुणों का पक्ष पात करना चाहिए किन्तु-जो कुल क्रम में कोई व्यवहार आ रहा हो किन्तु वह व्यवहार सभ्यता से रहित है तो उस के छोड़ने में पक्ष पात न करना चाहिए, यथा यदि मित्र

अपने ऊपर अपकार करने वाले हैं उन्हों पर भी दया भाव करने वाला होवे—क्योंकि जहां पर दया के भाव हैं वहां ही धर्म रह सकता है जहां दया के भाव ही नहीं हैं तो फिर वहां पर कुछ भी नहीं है इसलिये ! सब जीवों पर दया करना यही सुपुरुषों का लक्षण है किन्तु हिंसा तीन प्रकार से कथन की गई है जैसे मन, वाणी और काय, मन से किसी के हानिकारक भाव न करने चाहिये वाणी से कटुक वचन न बोलना चाहिये, काय से किसी को पीड़ा न देनी चाहिये जिस के तीनों योगों से दया के भाव हैं वह सर्व प्रकार से दयालु कहा जा सकता है अतएव ! दयावान् ही गुणों का भाजन बन सकता है।

११—माध्यस्थ-माध्यस्थ भाव को अवलम्बन करने वाला यदि कोई कार्य विपरीत किसी ने कर दिया है तो उस को शिक्षा करनी तो आवश्यकीय है किन्तु उस के ऊपर राग द्वेष न करना चाहिये, क्योंकि जिस ने अनुचित कर्म किया है उस का फल तो उसने भोगना ही है परन्तु उस के ऊपर रागद्वेष करके अपने कर्म न बंधलेने चाहिये, शिक्षा करना पुरुषों का धर्म है मानना वे माननेवा

करे किन्तु यथार्थ ही कहने वाला होवे । तथा--जो हर मत वाले असत्कथा करने वाले हैं उन के संग को छोड़ देवे या असत्यकथा करने वालों की प्रशंसा भी न करे क्योंकि--उन की प्रशंसा करने से अज्ञात जन उन्हों पर विश्वास करने लग जाते हैं तब उसका परिणाम अच्छा नहीं निकलता अतएव ! सिद्ध हुआ कि--सत्कथा "स्वपक्ष युक्त" होना आवश्यकीय है तभी गुण आ सकते हैं ।

१५--दीर्घ दर्शी-- जो कार्य करना हो, पहिले उस का फल फल जान लेना चाहिए जब विचार से काम किया जायगा तब उस में विकृतिपणा उत्पन्न नहीं होता यदि हर एक कार्य में औत्सुक्य ही किया जायगा तो फिर न तो कार्य ही प्रायः सुधरता है और नहीं लोगों में प्रतिष्ठा मिलती है तथा बहुत से कार्य ऐसे होते हैं जिनके करते समय तो अच्छे लगते हैं किन्तु उन का परिणाम अच्छा नहीं निकलता और बहुत से कार्य ऐसे भी हैं जो करते समय तो यश विशेष नहीं मिलता परन्तु परिणाम में उस का नाम सदा के लिए स्थिर हो जाता है क्योंकि जो बुद्धि काम बिगाड़ करउत्पन्न होती है यदि वह बुद्धि पहिले ही उत्पन्न हो

कुपथ में खड़ा हुआ है और शत्रु ठीक मार्ग पर स्थित है तो उस समय गुणों का पक्ष पात करना चाहिए।

अपितु हठ करना अच्छा नहीं है—जो पुरुष गुणों का पक्ष पाति है वह सब का ही मित्र है, किन्तु वह किसी का भी शत्रु नहीं है अवश्य! गुणों का पक्ष पात करना सभ्य पुरुषों का मुख्य कर्तव्य है जो गुणों के पक्ष पाती नहीं हैं किन्तु राग पक्ष हो दिखा रहे हैं वे धर्म के योग्य नहीं गिने जाते—अतः गुणों का ही पक्ष पात करना चाहिये।

१४—सत्कथा सुपक्ष युक्त—सत्कथा करने वाला और सपक्ष से युक्त अर्थात्—यथार्थ कहने वाला, शुद्ध जाति वाला वा अपने निर्णय किए हुए सिद्धान्त में दृढ़ता रखने वाला होना चाहिए—जब स्वसिद्धान्त में पूर्ण दृढ़ता हो जावे तो फिर असत्कथा कदापि न करनी चाहिये, यदि ऐसे कहा जाए कि—जब उस का सिद्धान्त दृढ़ है तो फिर वह असत्कथा कैसे कर सकता है तो उस का समाधान इस प्रकार किया जाता है कि—सत्य सत्कथा हुआ उपहास्यादि क्रियाओं में भी असत्यकथा कदापि न

करे किन्तु यथार्थ ही कहने वाला होवे। तथा- जो हर मत वाले असत्कथा करने वाले हैं उन के संग को छोड़ देवे या असत्यकथा करने वालों की प्रशंसा भी न करे क्योंकि-उन की प्रशंसा करने से अज्ञात जन उन्हों पर विश्वास करने लग जाते हैं तब उसका परिणाम अच्छा नहीं निकलता अतएव ! सिद्ध हुआ कि-सत्कथा "स्वपक्ष युक्त" होना आवश्यकीय है तभी गुण आ सकते हैं।

१५-दीर्घ दर्शी- जो कार्य करना हो, पहिले उस का फला फल जान लेना चाहिए जब विचार से काम किया जायगा तब उस में विकृतिपणा उत्पन्न नहीं होता यदि हर एक कार्य में औत्सुक्य ही किया जायगा तो फिर न तो कार्य ही प्रायः सुधरता है और नहीं लोगों में प्रतिष्ठा मिलती है तथा बहुत से कार्य ऐसे होते हैं जिनके करते समय तो अच्छे लगते हैं किन्तु उन का परिणाम अच्छा नहीं निकलता और बहुत से कार्य ऐसे भी हैं जो करते समय तो यश विशेष नहीं मिलता परन्तु परिणाम में उस का नाम सदा के लिए स्थिर हो जाता है क्योंकि जो बुद्धि काम बिगाड़ कर उत्पन्न होती है यदि वह बुद्धि पहिले ही उत्पन्न हो

सा म तो लोग ही हँसें और नहीं काम बिगड़े अतएव। जो कार्य करना हो उस के फल फल जानने के लिए दीर्घ दर्शी होना चाहिये यदि दीर्घ दर्शी गुण उत्पन्न न किया जायगा तो हर एक काम में प्रायः हंसी का ही होना बना रहेगा।

१६–विशेषज्ञ–गुण और अगुण के जानने वाली होना चाहिये। क्योंकि–जो गुण और अगुण की परीक्षा नहीं कर सकता वह कदापि धर्म की परीक्षा भी नहीं कर सकता जिस की बुद्धि में पक्षपात नहीं है वही गुण और अवगुण को ख्याल में ला जाता है किन्तु जिस की बुद्धि पक्षपात से मलीमस हो रही है तो भला फिर वह गुण और अगुण की परीक्षा कैसे कर सकता है जहाँ पर तो उस का राग है वहाँ पर यदि अगुण भी पड़े हों तो उस को तो वह गुण ही दिखाई देते हैं यदि उसका राग नहीं है वहां गुण होने पर भी अवगुण दृष्टि गोचर होते हैं अतएव। विशेषज्ञ होना आवश्यकीय सिद्ध हो गया विशेषज्ञ होना ही गुणों की परीक्षा करना है।

१७ वृद्धानुगः वृद्धों की शैली पर चलने वाला– माता पिता गुरु आदि के विनय करने में हर एक गुण

की प्राप्ति हो सकती है यदि विनय न किया गया तो हर एक गुण भी अवगुण हो जाता है, जैसे जल के सिंचन करने से वृक्ष प्रफुल्लित हो जाता है उसी प्रकार विनय से हर-एक गुण की प्राप्ति हो जाती है वृद्धों के पथ पर चलाने से लोकापवाद भी मिट जाता है अपितु वृद्धों का मार्ग यदि सुमार्ग होवे तो, यदि वृद्धों का मार्ग धर्म से प्रतिकूल होवे तो उस के त्याग देने में किंचित् मात्र भी संकुचित भाव न करने चाहिए जैसे—बहुत से लोगों की कुल क्रम से मांस भक्षण और मदिरा पान की प्रथा चली आती है तो उस के त्यागने में विलम्ब न होना चाहिये, और बहुत से कुलों में धार्मिक नियम कुल क्रम से चले आते हों जैसे—"जूआ, मांस, मदिरा, वेश्या संग, परनारी सेवन, चोरी, शिकार" इन का त्याग चला आता है तो इन नियमों को तोड़ना न चाहिये वा—सम्वर, सामायिक, पौषध, प्रतिक्रमण, के करने की जो प्रथा चली आती हो तो उसे भंग न करना चाहिये—और विनय धर्म का परित्याग भी न करना चाहिये यही "वृद्धानुग" है।

१८—विनीत—विनयवान् होना चाहिये—विनय से बिगडे हुए काम सुधर जाते हैं विनय धर्म का मूल है

विनय करने से ज्ञान की भी शीघ्र प्राप्ति हो जाती है विनय से सत्पथ में आरूढ़ हो जाता है, जैसे सुवर्ण और रत्नों की हर एक को इच्छा रहती है उसी प्रकार विनयवान् की भी इच्छा सब को लगी रहती है उसकी प्रतिष्ठा बढ़ जाती है वह सब के लिए आधार रूप होजाता है—शास्त्रों में प्रवीणता के कारण से वह सब स्थानों पर आदर पाता है अतएव। सब जीवों को विनयवान् होना चाहिये।

१६—कृतज्ञ—कृतज्ञ होना चाहिये—जिस ने किसी समय उपकार कर दिया है उस को विस्मृत न करना चाहिये—अपितु उस के किए हुए उपकार को स्मरण करके उस का उपकार विशेष मानना चाहिये, क्योंकि—शास्त्रों में लिखा है कि—चार कारणों से आत्मा अपने गुणों का नाश कर बैठते हैं जैसे कि—क्रोध करने से १, और दूसरों की ईर्षा करने से २, मिथ्या हठ करने से ३, कृतघ्न होने से ४ कृतघ्नता के समान कोई भी पाप नहीं बतलाया गया इस लिए। कृतज्ञ होना चाहिए। अपितु जो कृतघ्न होते हैं वे विश्वास पात्र नहीं रहते और जैसे क्रोधी को बुद्धि छोड़ जाती है वा सूखे हुये सरोवर को पक्षि छोड़ जाते हैं उसी प्रकार कृतघ्न पुरुष को सज्जन

पुरुष भी छोड़ देते हैं ॥ सा कृतज्ञ भी बनना चाहिये।

२०-परहितार्थकारी-सब जीवों का हितैषी होना श्रावक का मुख्य धर्म है-वा-जिस प्रकार उन जीवों को शान्ति पहुंचे अथवा अन्य जीवों के कष्ट दूर होवें उसी प्रकार श्रावक को करना चाहिए। परोपकार ही मुख्य धर्म है जो परोपकार नहीं कर सकता उस का जीवन संसार में भार रूप ही माना जाता है—ज्ञान के साथ परोपकार करना यह परम शूरवीरता का लक्षण है। परोपकारी सर्व स्थानों पर पूजनीय बन जाता है। तीर्थकरों का नाम आज कल इस लिये लिया जा रहा है कि-उन्होंने असीम भर संसार भर में उपकार किया. लाखों जीवों को सन्मार्ग में स्थापन किया उसी कारण से वह सदा अमर हैं और सब जीवों के आश्रय भूत हैं अतः परहितार्थकारी बनना गृहस्थ का मुख्य धर्म है।

२१-लब्धलक्ष-माता पिता-गुरु आदि की चेष्टाओं को देख कर उनकी इच्छानुसार कार्य करने और उनको प्रसन्न रखना यही लब्धलक्षता है तथा धर्म दानादि में अग्रणीय बनना इतना ही नहीं किन्तु धर्म कार्यों में

अधिक भाग लेना और लोगों के धर्म कार्यों में उत्साहित करना यह सब क्रियायें कल्पवत्सता में ही गिनी जाती हैं तात्पर्य-यह है कि-धारम्भास श्रेष्ठ कर्म हैं धम में बिना रोक टोक के आगे हो जाना, इसमें कोई भी सन्देह नहीं है कि संसारी कार्यों में काग अग्रणीय होते ही हैं किन्तु जो धार्मिक कार्यों में अग्रणीय बनना है यही एक शूरवीर ता का लक्षण है धर्म दान और अधर्म दान का पर स्पर इतना अन्तर है जैसे अमावस्या और पौर्णमासी का पर स्पर अन्तर है, इसी प्रकार जो धर्मदान किया जाता है वह तो पौर्णमासी के समान है और जो अधर्मदान है वह अमावस्या की रात्री के तुल्य है। यदि ऐसे कहा जाए कि-धर्मदान कौनसा है और अधर्म कौनसा है तो इसका अन्तर इतना ही है कि-जिस दान करने से धर्म कार्यों में सहायता पहुंच या धर्मियों की रक्षा हो जावे उसे ही धर्मदान कहते हैं।

"तथा जिस दान करने से अधर्म की पोषणा" हो और धर्म से विरुद्ध हो वही अधर्म दान कहलाता है जैसे हिंसक पुरुषों की सहायता करना और उनके लिए

हुये कार्यों की अनुमोदन करना यही अधर्म दान है"
सो-धर्मदान करना गृहस्थों का मुख्य धर्म है अतएव!
उपलक्ष गुण वाला गृहस्थ को अवश्य ही होना
चाहिए।

और गृहस्थों का यह भी नियम शास्त्रों में वर्णन
किया गया है कि—न्याय से लक्ष्मी उत्पन्न करते हुए
गृहस्थों के योग्य है कि—यदि वे अपने समान कुल में
विवाह करते हैं तब तो वे शान्ति से जीवन व्यतीत कर
सकते हैं नहीं तो प्रायः अशान्ति उनकी बनी रहती है
तथा देशाचार को जो नहीं छोड़ता है वह भी धर्म से
पराङ्मुख नहीं हो सकता—यह बात मानी हुई है कि—
जिस देश की भाषा वा वेष ठीक रहता है वह देश
उन्नति के शिखर पर जा पहुंचता है, जिसकी भाषा
और वेष बिगड़ जाता है उस देश की उन्नति के दिन
पीछे पड़ जाते हैं,

जो गृहस्थ देश धर्म को ठीक प्रकार से समझते हैं
वे श्रुत वा चारित्र धर्म को भी पालन कर सकते हैं।

फिर किसी के भी अवगुणवाद न बोलने चाहिए

किन्तु जो अल्पज्ञ पुरुष हैं उनके वा अवगुण बाद विशेष वर्जन योग्य हैं साथ ही जो गृहस्थ आय (लाभ) व्यय (खरच) का विवेक रखते हैं वे कभी भी प्रतिष्ठा की हानि के दुःख का अनुभव नहीं करते जो इन बातों का विचार कम रखते हैं वे अन्तिम दुःखों का ही अनुभव करते हैं और धर्म से भी उनकी रुचि कम हो जाती है अत एव ! मयर्योप सज्जनों को बारह व्रतों के साथ ही अनेक और गुणों के धारण करने की आवश्यकता है।

जब गुणों का समूह इकट्ठा हो जायगा, तब वे यथेष्ट सुखों की प्राप्ति कर सकेंगे, अतएव ! सिद्ध हुआ कि— देश, जाति, और धर्म की, वही सेवा कर सकता है, जो पहिले अपने गुणों (कर्तव्यों) को जानता हो—सो अपने कर्तव्यों का भान कर मर्यादि की अवश्य, ही सेवा करनी चाहिए।

ग्यारहवाँ पाठ ।

(श्री श्रमण भगवान् महावीर स्वामी जी)

प्रिय पाठको ! जिस महान् आत्मा का आज हम आप को कुछ परिचय देना चाहते हैं वे परम पूज्य जगत् प्रसिद्ध श्री भगवान् महावीर स्वामी जी हैं जिन का कि दूसरा नाम श्री वर्द्धमान भी है—यह भगवान् जैन धर्म के अंतिम चौवीसवें तीर्थंकर थे इन का समय बौद्ध सम कालीन का था जिस को आज २५२० वर्ष के लगभग होते हैं यह महात्मा ईस्वी—५९९ वर्ष पहिले इस भारत वर्ष के क्षत्रिय कुंडपुर नामक नगर में जो उस समय परम रमणीय रूप गुणों से पूर्ण था पानी के अतीव होने के कारण से दुर्भिक्ष का तो वहाँ पर अभाव ही था किन्तु राजा के पुण्य के प्रभाव से सर्व प्रकार के उपद्रव वहाँ शान्त हो रहे थे, मरी आदि रोगों से भी लोग शान्त थे किन्तु नई से नई कलाओं का आविष्कार करते थे जिस के कारण से वह "क्षत्रिय कुण्ड पुर" ग्राम ग्राम की अवस्था को छोड़ कर राजधानी की दशा को प्राप्त हो गया था ।

चारों ओर यह नगर आरामों और उद्यानों से सुशोभित हो रहा था और व्यापार के लिये यह नगर "केन्द्रस्थान" बना हुआ था "चारों ओर" न्याय नीति में कुशल "शास्त्र विशारद" सर्व राजाओं के गुणों से अलंकृत—ज्ञात वंशीय सिद्धार्थ महाराज अनुशासन करते थे जिन के न्याय से प्रजा अत्यन्त प्रसन्न थी इसी कारण से प्रजा का चार से सर्व प्रकार से उपद्रवों की शान्ति थी कला कौशलता की अत्यन्त वृद्धि होती जाती थी महाराजा सिद्धार्थ का एक छोटा भाई भी था जो "सुपार्श्व" नाम से सुप्रसिद्ध था महाराजा के अन्तरंग कार्यों में सहायक था और महाराजा सिद्धार्थ की रानी का नाम त्रिशला क्षत्राणी था जो स्त्री के गुणों (लक्षणों) से अलंकृत थी ।

परन्तु पतिव्रत धर्म का अन्तःकरण से पालन करती थी इस लिए "सतियों में शिरोमणी थी" अतएव महाराजा सिद्धार्थ के साथ जिस का अत्यन्त स्नेह था जिस से गृह की लक्ष्मी "दिन दो गुनी रात चौगुनी" के न्याय से वृद्धि प्राप्त कर रही थी ।

महाराजा के एक "नन्दि वर्द्धन" नाम वाला कुमार था जो ७२ कलाओं में निपुण और राज्य की धुरा को प्रेम से उठाए हुए था' इसी कारण से वह "युवराज" पदवी का भी धारक था और उस की एक कनिष्ठा भगिणी "सुदर्शना" नामा थी' जो शीलवती और सुशीला थी, "महाराजा सिद्धार्थ" श्री भगवान् पार्श्वनाथ प्रभु के मुनियों के श्रावक थे, और श्रावक वृत्ति को प्रसन्नता पूर्वक पालन करते थे।

एक समय की बात है कि महाराणी "त्रिशला" जब अपने पवित्र राज्य भवन के वास भवन में सुख शय्या में सोई पड़ी थी, तब अर्धरात्रि के समय पर महाराणी ने १४ स्वप्न देखे जैसे कि—

„हाथी १ वृषभ २ सिंह ३ लक्ष्मी देवी ४ पुष्पों की माला ५ चन्द्रमा ६ सूर्य्य ७ ध्वजा ८ कलश ९ सरोवर १० क्षीर समुद्र ११ देव विमान १२ रत्नों की राशि १३ अग्नि शिखा १४" । जब राणी जी ने इन चतुर्दश स्वप्नों को देख लिया तब उसकी आंख खुल गई फिर वह अपनी शय्या से उठकर महाराजा सिद्धार्थ के पास गई

राजा को मधुर वाक्यों से जगा कर अपने आए हुए चौदह स्वप्नों को विनय पूर्वक निवेदन किया। जिनको सुन कर महाराजा अत्यन्त प्रसन्न हुए और राणी से कहने लगे कि। हे देवी तूने बड़े पवित्र स्वप्नों को देखा है जिसका फल यह होगा कि—हमारी सर्व प्रकार की पुष्टि होते हुए चक्रवर्ती कुमार उत्पन्न होगा।

इस प्रकार राणी को स्वप्न के फल बतला कर प्रातःकाल में राजा ने अपने नगर के ज्योतिषियों को बुला के चौदह स्वप्नों के फलादेश को पूछा तब ज्योतिषियों ने कहा कि हे राजन्। इन स्वप्नों के फलादेश से यह निश्चय होता है कि आप के घर में एक ऐसे राजकुमार का जन्म होगा जो कि चक्रवर्ती या तीर्थङ्कर देव होगा जिसकी महिमा का विवरण हम नहीं कर सकते तब श्री महाराज ने उन स्वप्न पाठकों का सत्कार और पारितोषिक देकर विसर्जन किया किन्तु उसी दिन से महाराणी श्री शास्त्रोक्त विधि के अनुसार गर्भ रक्षा करने लगी फिर सवा नौ मास के पश्चात् चैत्र शुक्ला १३ त्रयोदशी के दिन हस्त उत्तरा फाल्गुणी नक्षत्र के योग में आधी रात्रि के समय में श्री श्रमण भगवान्

महावीर स्वामी का शुभजन्म हुआ, जन्म दिन बड़े समारोह के साथ मनाया गया राजा के यहां आप का जन्म होते ही हर प्रकार से सुख बढ़ने लगा और राजा ने उत्साह पूर्वक बहुत सा दान भी किया और प्रजा को पहले की भांति उस से भी बढ़ कर हर प्रकार से सुख देने लगा इस प्रकार दिन व्यतीत होने लगे और आप के अन्य संस्कार भी समय २ पर बड़े समारोह से होते हुये पालना होती रही मगर आप का चित्त इस बाल्यावस्था से ही ले कर संसार से उदास रहता था सदैव यही भाव उत्पन्न रहते थे कि मैं अपनी आत्मा का सुधार करके परोपकार करूं परोपकार ही सत्-पुरुषों का धर्म है।

— इस प्रकार के भाव होने पर भी माता पिता के अत्यन्त आग्रह से "यशोदा" राज कुमारी से विवाह किया गया फिर आप के गृह में कुमारी का जन्म हुआ जिसका नाम, प्रिय सुदर्शना कुमारी रक्खा गया परन्तु वैराग्य भाव में जब अत्यन्त भाव उत्कृष्टता में आ गये तब माता पिता के स्वर्ग वास होजाने के पश्चात् ३० वर्ष की अवस्था में आप बड़े भाई "नन्दिवर्द्धन"

राजा को मधुर वाक्यों से जगा कर अपने आए हुए चौदह स्वप्नों को विनय पूर्वक निवेदन किया। जिनको सुन कर महाराजा परमप्रसन्न हुए और रानी से कहने लगे कि। हे देवी तूने बड़े पवित्र स्वप्नों को देखा है जिनका फल यह होगा कि—हमारी सर्व प्रकार की पुष्टि होते हुए चक्रवर्ती कुमार उत्पन्न होगा।

इस प्रकार रानी को स्वप्न के फल बतला कर प्रातः काल में राजा ने अपने नगर के ज्योतिषियों को बुला कर चौदह स्वप्नों के फलादेश को पूछा तब ज्योतिषियों ने कहा कि हे राजन्! इन स्वप्नों के फल वश से यह निश्चय होता है कि आप के घर में एक ऐसे राज कुमार का जन्म होगा जो कि चक्रवर्ती या तीर्थंकर रूप होगा जिसकी महिमा का विवरण हम नहीं कर सकते तब श्री महाराज ने उन स्वप्न पाठकों को सत्कार और पारितोषिक देकर विसर्जन किया किन्तु उसी दिन से महारानी जी शास्त्रोक्त विधि के अनुसार गर्भ रक्षा करने लगी फिर सवा नौ मास के पश्चात् चैत्र शुक्ला १३ त्रयोदशी के दिन हस्त उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र के योग में आधी रात्रि के समय में श्री श्रमण भगवान्

महावीर स्वामी का शुभजन्म हुआ, जन्म दिन बड़े समारोह के साथ मनाया गया राजा के यहां आप का जन्म होते ही हर प्रकार से सुख बढ़ने लगा और राजा ने उत्साह पूर्वक बहुत सा दान भी किया और प्रजा को पहले की भांति उस से भी बढ़ कर हर प्रकार से सुख देने लगा इस प्रकार दिन व्यतीत होने लगे और आप के अन्य संस्कार भी समय २ पर बड़े समारोह से होते हुये पालना होती रही मगर आप का चित्त इस बाल्यावस्था से ही ले कर संसार से उदास रहता था सदैव यही भाव उत्पन्न रहते थे कि मैं अपनी आत्मा का सुधार करके परोपकार करूं परोपकार ही सत्-पुरुषों का धर्म है।

इस प्रकार के भाव होने पर भी माता पिता के अत्यन्त आग्रह से "यशोदा" राज कुमारी से विवाह किया गया फिर आप के गृह में कुमारी का जन्म हुआ जिसका नाम, प्रिय-सुदर्शना कुमारी रक्खा गया परन्तु वैराग्य भाव में जब अत्यन्त भाव उत्कृष्टता में आ गये तब माता पिता के स्वर्ग वास होजाने के पश्चात् ३० वर्ष की अवस्था में आप बड़े भाई "नन्दिवर्द्धन

की अनुमति से दीक्षित हो गये दीक्षा लेते समय ही आप ने यह प्रतिज्ञा कर ली कि बारह वर्ष पर्यन्त मैं घोर से घोर कष्टों को सहन करूंगा और अपने शरीर की रक्षा भी न करूंगा इतने काल में आप को अनेक कष्टों का सामना करना पड़ा।

जिन का कि हाल इस कदर भयानक है कि उसे लिखना तो दूर रहा उस के सुनने से भी हृदय कांपता है परन्तु यह आपकी ही महान् आत्मा और महान् शक्ति थी कि आप ने उसे सहन किया हम सिर्फ पाठकों के लिये यहां पर उन के इस जीवन की चन्द घटनायें देते हैं जिस से कि तुम को ज्ञात होगा कि श्री भगवान् महावीर देव स्वामी किस कदर उच्च आत्मा और दृढ़ सहनशीलता होने के अतिरिक्त महान् तपस्वी थे यही कारण था कि उन्हों ने महान् से महान् तपस्या करके अपने कर्मों का नाश करते हुये केवल ज्ञान को प्राप्त किया।

महात्मा महावीर जी त्यागी के जीवन की चन्द घटनायें।

१—पाठको जिस समय भगवान महावीर जी ने गृहस्थ आश्रम को त्याग कर सन्यास धर्म का प्रभाव

किया तो उस समय आप के बड़े भाई ने आपको आज्ञा नहीं दी और आप अपने बड़े भाई का हुक्म मानते हुये दो साल और ठहरे जब आप की अवस्था ३० साल की होगई तो आप ने अपना राज पाट अपने बड़े भाई को सौंप दिया और अपनी तमाम धन दौलत दान करते हुये अपनी आत्मा के साधन और पर उपकार के लिये चित्त में ठानी तो यह महान् आत्मा ने इस प्रकार की वृत्ति धारण की अपने चित्त में इस बात को सोचा कि पहले इस से कि मैं किसी और कार्य में लगूं यह बेहतर मालूम होता है कि अपनी आत्मा को इस तरह साधन करूं कि वह तपस्या रूपी अग्नि से कुन्दन हो जावे इस पर विचार करते हुये उन्होंने कड़ो से कड़ी तपस्या की जो यहां तक थी कि अपने जीवन के १२ वर्ष इस तपस्या रूपी मनजिल के तै करने में आप को लगाने पड़े दो बार तो आप ने छः छः मास पर्यन्त अन्न जल नहीं किया चार चार मास तो आप ने कई बार किये एक बार जब कि आप ध्यान में खड़े थे तो आप को एक संगम नाम वाला अभव्य देव मिल गया उस ने ६ मास पर्यन्त आप को भयङ्कर से भयङ्कर कष्ट दिये किंतु

आप का मन ऐसा शान्त मय था कि उस पर रोम मात्र भी क्रोध नहीं, किया बल्कि यह विचारा कि यह मेरे ही कर्मों का फल है जो कुछ भी यह कर रहा है, करे मुझे इस से पश्चातापमान नहीं होना चाहिये इसका काम मुझे गिराना है और मेरा कर्तव्य अपने ध्यान में लगे रहना है ऐसा ख्याल करते हुये अडिग अपने ध्यान में ही रहे जब आप के मन मेरू को वह किसी प्रकार भी हिला नहीं सका तो उदास सा होकर जाने लगा इतने में भगवान् का ध्यान पूर्ण हो गया पश्चात् आप ने उस देव से कहा कि हे देव तुम उदास क्यों हो उदास तो मैं हूं जो यह देख कर कि तू मेरे पास आया और कबल खाली ही नहीं बल्कि बोझ रूप हो कर जा रहा है देव ने इन शब्दों को सुना और सुन कर कहा कि भगवन् यह कैसे भगवन् ने कहा कि देव तुम जो मेरे पास आया है वह धर्म रूप उपदेश को सुन कर लाभ उठा लेता है जिस से वह सद्गति का अधिकारी बन जाता है परन्तु तू ने मेरे पास छै मास पर्यन्त रह कर महान् अशुभ कर्मों का बन्धन किया जिसका फल तुझे चिरकाल तक दुःख भोगना होगा इस प्रकार आप उस देव के हित चिंतन

करते हुये आप के दया भाव से नेत्र आर्द्र हो गये।

२—श्री महावीर भगवान् ने जो तपस्या धारण कर रक्खी थी उस का समय अभी पूरा न होने के कारण आप अपने कर्मों के क्षय करने के वास्ते अनार्य भूमि में चले गये वहां पर भी अनार्य लोगों ने आप को असीम कष्ट दिये जिन के सुनने मे रोमांच खड़े हो जाते हैं एक समय जब कि आप पर्वत पर ध्यानावस्था में बैठे हुये थे उन लोगों ने आप को पहाड़ से नीचे गेर दिया परन्तु आप अपने ध्यान से विचलित नहीं हुए।

जब कभी आप भिक्षा के लिये ग्राम में जाते तो कुत्ते आप के पीछे लोग लगाते थे। केश लुंचन किए मुष्टि आदि से प्रहार किए परन्तु आप का मन ऐसा दृढ़ था जो कि देवों से भी चलायमान नहीं हो सकता था इस प्रकार के कष्ट होने पर भी आप ने उन लोगों पर मन से भी द्वेष नहीं किया सदैव काल यही विचार करते रहते थे कि जैसे प्राणी कर्म करते हैं उन्हीं के अनुसार फल भोगते हैं अतः जैसे मैंने कर्म किये हैं वैसे ही मैंने

फल भोगना है यदि अब मैंने द्वेष किया तो आगे के लिये और नये कर्मों का बंध हो जायगा।

अतएव ! अब मुझे शान्ति से ही इन के फल को भोगना चाहिये इस प्रकार तप करते हुये और नाना प्रकार के कष्टों को सहन करते हुये भी आप अपने आत्म ध्यान में ही लगे रहे।

इस प्रकार महान् तप करते हुये नाना प्रकार के कष्टों का सहन कर आप विहार करते हुये जृम्भि नामक नगर के बाहर ऋजु पालिका नदी के उत्तर कूल पर श्यामाक नामक गृह पति के कर्षण के समीपस्थ अव्यक्त चैत्य (व्यान) की ईशान कूण में शाल वृक्ष के समीप विराजमान हो गये तब आप को वैसाख शुक्ल दशमी के दिन विजय नामक महूर्त में हस्तोत्तरा नक्षत्र के यान के पिछले पहर में दो उपवास के साथ शुक्ल ध्यान में प्रवृत्त होने हुओं का केवल ज्ञान और केवल दर्शन की प्राप्ति हो गई।

जब आप का केवल ज्ञान प्राप्त हो चुका तब आपने विचार किया कि अब मुझे संसार में वह धर्म जिस का

कि मैंने अपने ज्ञान में अनुभव किया है जिस का कि फल निर्वाण (याने सच्चा सुख) हासिल करना है उस को इस संसार के दुःखों से पीड़ित हुये हुये प्राणियों को भी अनुभव करवा देना चाहिये इस उद्देश को सामने रखते हुये आप अनु क्रम से विहार करते हुये सब से पहले आपापा पुरी (पावापुरी) में पधारे ।

(भगवान् का उपदेश)

जब भगवान् महावीर स्वामी जी केवल ज्ञान को प्राप्त कर पावा पुरी में पधारे तो पहला उपदेश भगवान् का यहां पर हुआ चौसठ इन्द्रों ने समव सरण को रचा आपने वहां सिंहासन पर विराजमान हो कर सार्वजनिक हितैषी धर्म उपदेश किया जिस को सुन कर प्रत्येक जन हर्ष प्रगट करता था उसी समय उसा नगरी में सामल ब्राह्मण ने एक यज्ञ रचा हुआ था जिस में उस समय के बड़े २ विद्वान् ब्राह्मण इन्द्र भूति, अग्नि भूति, वायू भूति, व्यक्त सुधर्मा मंडी पुत्र, मौर्य पुत्र, अकंपित अचल भ्राता मैतार्य प्रभास यह ११ विद्वान् अपनी २ शिष्य

मैतकी के साथ उस यज्ञ में आये हुये थे जब उन्होंने भी भगवान् महावीर स्वामी के धर्म उपदेश की महिमा को आम लोगों के मुख से श्रवण किया तब वह उस को सहन न कर सके और आपस में विचार करने लगे कि हमें महावीर स्वामी के साथ शास्त्रार्थ करके उन के धर्म को और उन की कीर्ति को उज्वल न होने देना चाहिये जिससे कि हमारे ब्राह्मण धर्म को हानि न हो ऐसा सोच कर वह महावीर स्वामी के पास गये और धर्म सम्बन्धी उन्होंने प्रश्नोत्तर किये तब भगवान् ने अपने केवल ज्ञान के बल से उन के मनों को जानते हुये उन के प्रश्नों के उत्तर दिये तो वह सत्य रूप उत्तर को पाकर वहीं समवसरण (व्याख्यान मंडप) में ही दीक्षित हो गये श्री भगवान ने एक ही दिन में चौतालीस सौ को दीक्षित किया इन में सब से बड़े इन्द्र भूति जी महाराज थे जिन का गौतम गोत्र था इस लिये वह गौतम स्वामी के नाम से प्रसिद्ध हैं यही ११ श्री भगवान् के मुख्य शिष्य थे इन्हें ने चौन्ह पूर्व रच जैन धर्म का स्थान २ पर प्रचार किया लाखों लोगों का सत्पथ म आरूढ़ किया और स्थान २ पर शास्त्रार्थ करके जैन धर्म का झंडा फहराया

और श्री भगवान् ने अनेक राजों और राज कुमारों को दीक्षित किया अपने सद् उपदेश से चौदह हजार साधु ३६ हजार आर्यायें बनाई लाखों श्रावक बनाये और महाराजा 'श्रेणिक' 'कुणिक' चेटक, जिनशत्रु, उदायन, इत्यादि महाराजों की आप पर असीम भक्ति थी एक समय की बात है आप विचरते हुये चपा नगरी के बाहिर पूर्ण भद्र उद्यान (बाग़) में पधार गये तब महराजा कुणिक बड़े समारोह के साथ आप के दर्शनों को आये और उनके साथ सहस्रों नर नारियें थीं उस समय आप ने "अर्द्ध मागधी" भाषा में सार्व जन उपदेश किया जिसका सारांश यह था कि हे आर्यो मैं जीव का मानता हूं और अजीव को भी मानता हूं इसी प्रकार पुण्य, पाप, आश्रव, संवर, निर्जरा, बंध, और मोक्ष को भी मानता हूं और प्रवाह से संसार अनादि है पर्याय से आदि है सो इस ससार से छूटने का मार्ग केवल सम्यग् दर्शन, सम्यग् ज्ञान, और सम्यग् चारित्र ही है अतः इन्हीं के द्वारा जीव मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

हे आर्यो! शुभ कर्मों के शुभ ही फल होते हैं। और

अशुभ कर्मों के अशुभ ही फल होते हैं, जिस प्रकार प्राणी कर्म करते हैं प्रायः कर्मों के फल भी उसी प्रकार भोगते हैं।

हे भव्य जीवो! तुम कभी भी धर्म कार्यों में आलस्य मत करो। यह समय पुनः पुनः मिलना अति कठिन है—आर्य देश, आर्य कुल उत्तम संहनन, शरीर निरोग, पाँचों इन्द्रिय पूर्ण, सुगुरों की संगति इत्यादि जो आप लोगों को सामग्री प्राप्त हो रही है इस से धर्म का लाभ लो और राज धर्म यही है कि—किसी से भी अन्यार्य से वर्ताव न किया जावे प्रजा पर न्याय पूर्वक अनुकंपा करना यही राजों का मुख्य धर्म है परन्तु प्रजा पर तब ही न्याय से वर्ताव हो सकता है जब राजा लोग अपने स्वार्थ, और व्यसनों को छोड़ देवें।

हे देवानु प्रियो! मनुष्य जन्म, शास्त्र श्रवण, धर्म पर दृढ़ विश्वास—और शास्त्रानुसार आचरण, जब यह चारों अङ्ग जीव को प्राप्त हो जावें। तब हो जीव मोक्ष प्राप्ति कर सकता है। इस प्रकार के पवित्र उपदेश को सुन कर सभा अत्यन्त प्रसन्न हुई फिर यथा शक्ति नियमादि लोगों ने धारण किये। राजा बड़ा हर्षित होता हुआ भगवान् को वंदना करके अपने राज भवनों में चला गया।

भगवान् महावीर स्वामी और अहिंसा का प्रचार।

जिस समय भगवान् महावीर व स्वामी का सत्य-प्रथी और संसार में शान्ति लाने वाला सच्चा अहिंसक धर्म फैलने लगा तब उस समय के ब्राह्मण लोग जो हिंसा में ही धर्म मानते थे जिन के यहां यज्ञ करना ही केवल महान् धर्म सब के लिये बताया गया था और उन यज्ञों में घोर हिंसा यानी पशु वध जो होता था वह धर्मानुकूल समझा जाता था और देश में उस समय जिधर भी देखो यज्ञों ही यज्ञों का जोर होने से हिंसा ही हिंसा की इतनी प्रबलता थी कि मानो खून की नदियां बह रही थीं इस अवस्था को देख कर भगवान् महावीर स्वामी का हृदय कांप उठा और उन्हों ने इस का विरोध अति जोर शोर से करना प्रारंभ किया और उन राजाओं ने भी जिनको कि आपने धर्म उपदेश सुना कर अपने अनुयायी कर लिये थे उन्होंने भी अहिंसा प्रचार बहुत ही किया किन्तु आपने उन यज्ञों में होम होते हुये लाखों पशुओं को बचाया जिस का फल यह हुआ कि

इस संसार से ब्राह्मण धर्म के वह हिंसामयी यज्ञ उठ गये और अहिंसा धर्म का महान् प्रचार किया जब इस प्रकार अहिंसा धर्म का प्रचार बढ़ने लगा और महावीर स्वामी की जय जय कार होने लगी तो फिर ब्राह्मणों ने जैन धर्म से और भी द्वेष करना प्रारम्भ कर दिया यही कारण था कि जैन धर्म वालों को नास्तिक वेद निंदक आदि तरह २ के दोष लगाये मगर उनके ऐसा करने पर भी जैन धर्म की गूँज पहले की भांति और भी ज्यादा होती गई।

जब भगवान् महावीर स्वामी ने उन हिंसक यज्ञों को देश से हटा देने में सफलता प्राप्त कर ली तब उन्हों ने उस समय जो गौतम बुद्ध ने अफल वाद का मत खड़ा किया था और गोशाला ने होनहार के सिद्धान्त को ही सर्वोत्कृष्ट बतलाया था न्याय पूर्वक युक्तियों से युक्त दोनों मतों का खण्डन भी किया।

शिष्य निम्नप्रकार से प्रश्न पूछने लगे और आपने उनके संशय दूर किये—जैसे कि ।

प्रश्न—हे भगवन् ! प्रथम लोक है किम्वा अलोक है !

उत्तर—हे रोह ! यह दोनों पदार्थ अनादि हैं क्योंकि—यह दोनों किसी के बनाये हुए नहीं हैं यदि इन का कोई निर्माता माना जाये तब यह पूर्व वा पश्चात् सिद्ध होसकते हैं सो जब निर्माता का अभाव है तब इनका अनादित्व स्वतः ही सिद्ध है अनादि होनेसे इनको प्रथम वा अप्रथम नहीं कह सकते हैं ।

प्रश्न—प्रथम जीव है वा अजीव है ?

उत्तर—हे भद्र ! जीव और अजीव दोनों अनादि हैं क्योंकि जब इनकी उत्पत्ति मानी जाए तब कार्यरूप जीव का नाश अवश्य ही होगा जब नाश सिद्ध होगया तब नास्तिक वाद का प्रसंग आजाएगा फिर पुण्य पाप बंध मोक्षादि आकाश के पुष्पवत् सिद्ध होंगे तथा दोनों का कारण क्या है ! इस प्रकार की शंका होनेपर सङ्कर वा अनवस्था दोष की भी प्राप्ति सिद्ध होगी इसलिये ! यह दोनों वस्तुएँ स्वतः सिद्ध होने से अनादि हैं ।

इस संसार से ब्राह्मण धर्म के वह हिंसामयी यज्ञ उठ गये और अहिंसा धर्म का महान् प्रचार किया जब इस प्रकार अहिंसा धर्म का प्रचार बढ़ने लगा और महावीर स्वामी की जय जय कार होने लगी तो फिर ब्राह्मणों ने जैन धर्म से और भी द्वेष करना प्रारम्भ कर दिया यही कारण था कि जैन धर्म वालों को नास्तिक वेद निंदक आदि तरह २ के दोष लगाये मगर उनके ऐसा करने पर भी जैन धर्म की गूँज पहले की भांति और भी ज्यादा होती गई।

जब भगवान् महावीर स्वामी ने उन हिंसक यज्ञों का देश से हटा देने में सफलता प्राप्त कर ली तब उन्होंने उस समय जो गौतम बुद्ध ने क्षणिक वाद का मत खड़ा किया था और गोशाला ने होनहार के सिद्धान्त का ही सर्वोत्कृष्ट बतलाया था न्याय पूर्वक युक्तियों से युक्त दोनों मतों का खण्डन भी किया।

एक समय की वार्ता है कि—श्रीभगवान् वर्द्धमान स्वामीजी से विनयपूर्वक रोहा नामक आपके सुयोग्य

शिष्य निम्नप्रकार से प्रश्न पूछने लगे और आपने उनके संशय दूर किये—जैसे कि ।

प्रश्न—हे भगवन् ! प्रथम लोक है किम्वा अलोक है !

उत्तर—हे रोह ! यह दोनों पदार्थ अनादि हैं क्योंकि—यह दोनों किसी के बनाये हुए नहीं हैं यदि इन का कोई निर्माता माना जाये तब यह पूर्व वा पश्चात् सिद्ध होसकते हैं सो जब निर्माता का अभाव है तब इनका अनादित्व स्वतः ही सिद्ध है अनादि होनेसे इनको प्रथम वा अप्रथम नहीं कह सकते हैं ।

प्रश्न—प्रथम जीव है वा अजीव है ?

उत्तर—हे भद्र ! जीव और अजीव दोनों अनादि हैं क्योंकि जब इनकी उत्पत्ति मानी जाए तब कार्यरूप जीव का नाश अवश्य ही होगा जब नाश सिद्ध होगया तब नास्तिक वाद का प्रसंग आजाएगा फिर पुण्य पाप बंध मोक्षादि आकाश के पुष्पवत् सिद्ध होंगे तथा दोनों का कारण क्या है ! इस प्रकार की शंका होनेपर संकर वा अनवस्था दोष की भी प्राप्ति सिद्ध होगी इसलिये ! यह दोनों वस्तुएँ स्वतः सिद्ध होने से अनादि हैं ।

प्रश्न–हे भगवन् ! प्रथम भव्य जीव (मोक्ष जाने वाले) हैं वा अभव्य जीव (मोक्ष न जाने वाले) हैं ?

उत्तर–हे रोह ! मोक्ष गमन योग्य वा अयोग्य यह भी दोनों प्रकार के जीव अनादि हैं।

प्रश्न–हे भगवन् ! प्रथम मोक्ष है किम्वा संसार है।

उत्तर–हे रोह ! दोनों ही अनादि हैं।

प्रश्न–हे भगवन् ! प्रथम सिद्ध (अजर अमर) है वा संसार है।

उत्तर–हे रोह ! संसार आत्मा वा मोक्ष आत्मा यह दोनों अनादि हैं इनको प्रथम वा अप्रथम नहीं कहा जासकता–क्योंकि–आदि नहीं है इसलिये मोक्ष आत्मा और संसार आत्मा यह दोनों अनादि हैं (सिद्ध आत्माओं का ही नाम ईश्वर है)

प्रश्न–हे भगवन् ! प्रथम अंडा और पीछे कुकड़ी है वा प्रथम कुकड़ी पीछे अंडा है।

उत्तर–हे रोह ! अंडा कहां से उत्पन्न होता है हे भगवन् ! कुकड़ी से, फिर कुकड़ी कहां से उत्पन्न होती है, हे भगवन् ! अंडा से। हे रोह ! अब इस प्रकार से दोनों

का सम्बन्ध है तब सिद्ध हुआ कि—यह दोनों प्रवाह से अनादि हैं प्रथम कौन है। इस प्रकार नहीं कह सकते।

इस प्रकार रोह अनगार ने अनेक प्रश्नों को पूछा श्रीभगवान् ने उनके सर्व संशयों को दूर किया।

एक समय श्री गौतम स्वामी ने श्रीभगवान् से प्रश्न किया कि—हे भगवन्! गर्भावास में जीव इन्द्रिय लेकर आता है वा इन्द्रिय छोड़ कर गर्भावास में जीव प्रविष्ट होता है तब श्रीभगवान् ने प्रतिउत्तर में प्रतिपादन किया कि—हे गौतम! इन्द्रियों को लेकर भी आता है छोड़ कर भी आता है तब श्री गौतम प्रभुजी ने फिर शंका की कि—हे भगवन्! यह कथन किस प्रकार से है तब श्रीभगवान् ने फिर उत्तर दिया कि—हे गौतम द्रव्य इन्द्रियों को जीव छोड़ कर आता है और भावेन्द्रियों को (सत्तारूप) को जीव लेकर आता है जिसके द्वारा फिर द्रव्य इन्द्रियों की निष्पत्ति होजाती है गौतम स्वामी ने फिर प्रश्न किया कि—हे भगवन्। जीव शरीर को छोड़ कर गर्भावास में आता है वा शरीर को लेकर गर्भावास में आता है।

तब श्रीभगवान् ने उत्तर में प्रतिपादन किया कि-हे गौतम ! आत्मा शरीर को छोड़कर भी आता है और लेकर भी आता है जैसे कि औदारिक शरीर, वैक्रिय शरीर, आहारिक शरीर, इन तीनों शरीरों को छोड़कर तैजस, और कार्मणय शरीरों को लेकर जीव गर्भावास में प्रवेश करता है क्योंकि-कर्मों के भार से जीव इस प्रकार से भारी होरहे हैं जैसे कि-ऋणी पुरुष, ऋण के भार से भारी होता है यद्यपि ऋणी के सिरपर प्रत्यक्ष में कोई भी भार नहीं दीखता तथापि उसकी आत्मा भार से युक्त होती है उसी प्रकार जीव को कर्मों का भार है।

इस प्रकार जीव को कर्मों का भार है।

इस प्रकार से श्रीभगवान् ने ३४ अतिशययुक्त और ३५ वाणी से विभूषित देश २ में धर्मोपदेश करते हुए अनेक जीवों के संशयों का उच्छेदन किया।

और सर्व प्रकार से अहिंसा धर्म का देश में प्रचार किया शास्त्रों हवन कुंड में जो पशुओं का वध होरहा था उसका निषेध किया, करोड़ों पशुओं को अभयदान

मिलगया, क्योंकि–जो लोग दया से पराङ्मुख होरहे थे, उनको दया धर्म में स्थापना करदिया ।

साथ ही आपके प्रति वचनों में न्याय धर्म ऐसे टपकता था जैसे कि–अमृत की वर्षा में कल्पवृक्ष प्रफुल्लित होजाता है ।

एक समय की बात है कि–आप देश में दया धर्म का प्रचार करते हुए–कौशाम्बी नगरी के बाहिर एक बाग में विराजमान होगए–तब वहाँ पर "उदायन" नामी राजा भी व्याख्यान सुनने को आगया और राणी आदि अन्तःपुर भी वहां पहुंच गया, व्याख्यान होने के पश्चात् एक जयन्ती राजकुमारी ने आप से निम्नलिखित प्रश्न किये, और आपने न्यायपूर्वक उनका निम्नलिखितानुसार उत्तर प्रदान किए । जैसे कि—

जयन्ती–हे भगवन् ! भव्य आत्मा स्वभाव से है वा विभाव से ।

भगवन्–हे जयन्ती ! स्वभाव से है विभाव से नहीं है ।

जयन्ती–हे भगवन् ! यदि भव्य आत्मा स्वभाव से है तो क्या सर्व भव्य आत्मा मोक्ष हो जायेंगे ।

भगवन्–हे भाविके ! सर्व भव्य आत्मा मोक्ष प्राप्त नहीं करेंगे क्योंकि–यह अनन्त हैं जैसे आकाश की श्रेणियें अनन्त हैं उसी प्रकार जीव भी अनन्त हैं जिस प्रकार उन श्रेणियों का अन्त नहीं आता उसी प्रकार जीवों का अन्त भी नहीं हैं

जयन्ती–हे भगवन् ! अनन्त शब्द का अर्थ क्या है।

भगवन्–हे जयन्ती ! जिसका अन्त न हो उसे ही अनन्त कहते हैं जब उसका अन्त है तब वह अनन्त नहीं कहा जा सकता। अतएव ! हे जयन्ती ! अनादि संसार में अनादि काल से अनन्त आत्मा निवास करते हैं अनन्त ही होने से उन का अन्त नहीं पाया जाता।

जयन्ती–हे भगवन् ! जीव बलवान् अच्छे होते हैं वा निर्बल अच्छे होते हैं।

भगवन् हे जयन्ती ! बहुत से आत्मा बलवान् अच्छे होते हैं बहुत से निर्बल अच्छे होते हैं।

जयन्ती–हे भगवन् ! यह कथन किस प्रकार से माना जाए कि बहुत से आत्मा बलवान् अच्छे होते हैं और बहुत से निर्बल—

भगवान्–हे जयन्ती ! न्याय पक्षी, धर्मात्मा, धर्म से जीवन व्यतीत करने वाले, धर्म–के उपदेशक वा सत्यपथ के उपदेशक इस प्रकार के आत्मा बलवान् अच्छे होते हैं क्योंकि–धर्मात्माओं के बल से अन्याय नहीं होने पाता, जीवों की हिंसा नहीं होती पाप कर्म घट जाता है लोग न्याय पक्ष में वा धर्म पक्ष में आरूढ़ हो जाते हैं अतएव ! धर्मात्मा जन तो बलवान् ही अच्छे होते हैं । किन्तु जो पापात्मा हैं वे निर्बल ही अच्छे होते हैं क्योंकि–जब पापियों का बल निर्बल होगा तब श्रेष्ट कर्म बढ़ जायेंगे किन्तु जब पापी बल पकड़ेंगे तब अन्याय बढ़ जाएगा । पाप बढ़ जाएगा । हिंसा, झूठ, चोरी–मैथुन, और परिग्रह,–यह पाचों ही आश्रव बढ़जाएँगे, अतएव ! पापियों का निर्बल ही होना अच्छा है ।

जयती–हे भगवन् ! जीव सोए हुए अच्छे होते हैं वा जागते हुए ?

भगवान् ! हे जयंती ! बहुत से आत्मा सोए हुए अच्छे हैं और बहुत से जागते हुए अच्छे है ।

जयंती ! हे भगवन् ! यह बातों किस प्रकार मानी जाए कि—बहुत से आत्मा सोए हुए अच्छे हैं और बहुत से जागते हुए अच्छे हैं।

भगवान् ! हे जयन्ति ! म स्यधारी, न्याय करनेवाले, सर्व जीवों के हितैषी समयज्ञ, सर्व जीवों का अपने समान जानने वाले इत्यादि गुण वाले जीव जागते अच्छे होते हैं। पाप कर्मों के करने व ले, सर्व जीवों से वैर करने वाले अनेरव्याद्रो अधर्म स जोवन व्यतीत करने वाले इत्यादि अवगुण वाले जीव सोए पड़े ही अच्छे हैं क्योंकि उनके सोने से बहुतसी आत्माओं को शान्ति रहती है।

इस प्रकार अनेक प्रकार के प्रश्नों के यथेष्ठ उत्तर पाकर जयती राजकुमारी दीक्षित होकर श्रीमती चन्दन बाला आर्या के पास रहकर मोक्ष प्राप्त होगई।

श्रीभगवान ने अपन पवित्र चरणकमलों से इस धरातल का पवित्र किया और अनेक आत्माओं को ससार चक्र स पार किया।

इस प्रकार श्रीभगवान् परोपकार करते हुए अन्तिम चतुर्मास श्रीभगवान् ने अपापापुरी (पावापुर) नगरी

के हस्तीपाल राजा की शुल्कशाला में किया इस चतुर्मास में बहुत विषयों पर उपदेश किये। कार्तिक कृष्ण १५ पंचदशी की रात्रि में १५५ अध्याय कर्मविपाक के और ३६ अध्याय उत्तराध्ययन सूत्र के वर्णन करके श्रीभगवान् निर्वाण होगए।

उसी समय १८ देशों के राजे श्रीभगवान् के पास पौषध करके बैठे हुए थे जब उन्होंने श्रीभगवान् निर्वाण हुए जानलिए। तब उन्होंने रत्नों का द्रव्य उद्योत किया तब ही श्रीभगवान् महावीर स्वामी की स्मृति में "दीप-माला" पर्व स्थापन किया गया जो आज पर्यन्त अव्य-वच्छिन्नता से चला आता है। श्रीभगवान् ७२ वर्ष पर्यन्त इस धरातल को सुशोभित करते रहे। उन्हों का इन्द्रों वा मनुष्यों ने मृत्यु संस्कार बड़े समारोह के साथ अग्नि द्वारा किया सो हरएक भव्य आत्माओं को योग्य है कि—श्रीभगवान् की शिक्षाओं से अपने जीवन को पवित्र बनाएँ और सबके हितैषी बनें क्योंकि—शास्त्रों में श्रीभगवान् सब जीवों के हित के लिए निम्नलिखित आठ शिक्षाएँ करगए हैं। जैसे कि—

१ जिस शास्त्र को श्रवण नहीं किया उसको श्रवण करना चाहिए।

२ सुने हुए ज्ञान को विस्मृत न करना चाहिए।

३ संयम के द्वारा प्राचीन कर्म क्षय करदेने चाहिएं।

४ नूतन कर्मों का सम्वर करना चाहिए।

५ जिसका कोई न रक्षक हो उसको रक्षा करनी चाहिए—(अनाथों को पालना)

६ नव शिष्यों का शिक्षा ओं द्वारा शिक्षित करदेना चाहिये।

७ रोगियों की घृणा छोड़ के सेवा करनी चाहिये।

८ यदि परस्पर कलह उत्पन्न होगया हो तो उस कलह को माध्यस्थ भाव अवलम्बन करके और निष्पक्ष होकर मिटाना चाहिए क्योंकि—कलह में अनेक गुणों की हानी होती है। यतु-मन-क्रूरता, यह सब कलह से उत्पन्न होते हैं। इन शिक्षाओं द्वारा अपना जीवन पवित्र करना चाहिए।

बारहवाँ पाठ ।

(श्राविका विषय)

प्रिय सुज्ञ पुरुषो ! जैसे जैनमत में श्रावक को धर्माधिकारी बतलाया है वा श्रावक को चारों तीर्थों में एक तीर्थ माना गया है तथा जैसे द्रव्य तीर्थ के स्नान से शारीरिक मल दूर होजाता है उसी प्रकार श्रावक वा श्राविका रूप तीर्थ के संग करने से जीव पापों से छूट जाते हैं ।

जब श्रावक बारह व्रतों का धारी होता है फिर उस की धर्मपत्नी भी बारह व्रत ही धारण करले तब धर्म की साम्यता होने पर उनके दिन आनन्द पूर्व व्यतीत होते हैं ।

श्रावक और श्राविकाओं को अन्य द्रव्य तीर्थों की यात्रा करने की आवश्यकता नहीं है किन्तु उनसे बड़े जो और दो तीर्थ हैं वे आनन्द पूर्वक उनकी यात्रा कर सकते हैं जैसे कि—साधु और साध्वी—इनके दर्शनों से

धर्म की प्राप्ति हो सकती है धर्मों को निर्णय हो जाता है और ज्ञान से विज्ञान बढ़ जाता है जब विज्ञान होगया तब संयम होता है संयम का फल [illegible] है कि-आश्रव से रहित हो जाना, जब आश्रव से रहित होगया तब उसका परिणाम मोक्ष होता है।

शिष्य ! श्राविकाओं को जैन सूत्रों ने धर्म विषय वही अधिकार दिये हैं जो श्रावकों का दिये गये हैं। अतएव ! सिद्ध हुआ कि-श्रावक और श्राविका का धर्म एक ही होना चाहिये।

धर्म की साम्यता होने पर हर एक कार्य में फिर शान्ति रह सकती है जब धर्म में विषमता होती है तब प्रायः हर एक काय में विषमता हो जाती है।

[illegible] श्राविकाओं का योग्य है कि-घर सम्बन्धि काम [illegible] हुई यत्न को न छोड़े-जैसे स्त्रियों की सूत्रों [illegible] कलाएं वर्णन की गई हैं उनमें यह भी कला [illegible] है कि-जो घर के काम हों उनका भी सभी यत्न बिना न करें।

जैसे-चुल्हा, चौका, चक्की, इत्यादि कार्यों में यत्न बिना काम न करना चाहिये। क्योंकि-चुल्हादि की

क्रिया करते समय यदि विवेक न किया जाएगा तब अनेक जीवों की हिंसा होने की संभावना की जाती है तथा चक्की की क्रिया में भी सावधान रहने की अत्यन्त आवश्यकता है यदि विना यत्न काम किया जायेगा तब हिंसा होने की संभावना हो जाती है और साथ ही अपनी रक्षा भी नहीं हो सकती क्योंकि—यदि विना यत्न से काम करते हुए कोई विष वाला जीव चक्की द्वारा पीसा गया तब उस के परमाणुओं से रोग उत्पन्न हो जाते हैं जिस से वैद्यों वा डाक्टरों के मुंह देखने पड़ते हैं तथा इस समय जो अधिक रोग उत्पन्न हो रहे हैं उसका मूल कारण यही प्रतीत होता है कि—खान, पान, में विवेक नहीं रहा है इसी वास्ते मशीन द्वारा चुन पीसा हुआ विवेकी पुरुषों को त्याज्य है क्योंकि—मशीनों में प्रायः यत्न नहीं रह सकता फिर अनर्थ दण्ड का भी पाप अतीव लगता है जो घरों में अपनी चक्की द्वारा काम किया जाता है उस में अनर्थ दण्ड का पाप तो टल ही जाता है परन्तु यत्न भी हो सकता है और वह अन्न भी स्वच्छ होता है तथा स्वच्छता के कारण से रोगों से भी निवृत्ति हो जाती है।

और घर में भी भाव बने रहते हैं इसलिए। स्त्रियों को योग्य है कि–घर के काम बिना यत्न न करें।

जिन घरों में यत्न से काम नहीं किया जाता और प्रमाद बहुत ही आता हुआ रहता है उन घरों की लक्ष्मी की वृद्धि नहीं हो सकती इस लिए। भाविकाओं को योग्य है कि–घर के काम बिना यत्न कभी न करें तथा पुरुष सम्बन्धि काम जैसे बिना देखे लकड़ियें न जलायें, जो गोमय (थापियां वा पाथियां) भी जलाना पड़ता है तो वे भी बिना देखे पुरुष भी न दें क्योंकि गोमय में बहुत से सूक्ष्म जीव उत्पन्न हो जाते हैं वा गीले ईंधन में बहुत से जीव होते हैं इस लिए इन कार्यों में विशेष यत्न की आवश्यकता है।

और भोजन शाला की छत पर भी वस्त्राच्छादन की अत्यावश्यकता होती है क्योंकि–धूम के छत पर लग जाने से बहुत से जीव उत्पन्न होजाते हैं वा मसी (मषी) छत पर लगी हुई होती है जब वह भोजनादि क्रियाएं करते समय भोज्य में गिर जाती है तो फिर रोग के उत्पन्न करने वाली वा भोजन को बिगाड़ने वाली होती है अतः

पत्र। सिद्ध हुआ कि–भोजन शाला (मंडप) में अत्यन्त यत्न की आवश्यकता है।

तथा चारपाई वा वस्त्रादि भी विना यत्न से न रखने चाहिये, विना यत्न से इन में भी जीवोत्पत्ति हो जाती है और जो खांड आदि पदार्थ घरों में होते हैं वा घृत तैलादि होते हैं उन के वर्त्तन को विना आच्छादन किये न रखने चाहिये अपितु सावधानी से इन कार्यों के करने से जीव रक्षा हो सकती है और घर के सामान को ठीक रखते हुये, स्वभाव कटु कभी न होना चाहिये–स्वभाव सुन्दर होने से ही हर एक कार्य ठीक रह सकता है–सन्तान रक्षा, पशु सेवा, स्वामी आज्ञा पालन, इत्यादि कार्य श्राविकाओं को विना विवेक न करने चाहिये। कारण कि–पत्नियों का देव शास्त्रकारों ने पति ही बतलाया है जो–स्त्री अपने प्रिय पति की आज्ञा पालन नहीं करती अपितु आज्ञा के अतिरिक्त पति का सामना करती है और असभ्य वर्ताव करती है वह पतिव्रत धर्म से गिरी हुई होती है।

और मरकर भी सुगति में नहीं जाती किन्तु श्राविकाओं

को पक्ष बर्ताव न करना चाहिये, धर्म में सहायक परस्पर प्रेम, मित्र के समान बर्ताव सुख दुःख में सहन शीलता सत्य, मेधावी, आदि से प्रीतिभाव, और अपने परिवार को धर्म में लगाना, जिस क्रियाओं में लगा रहता भी-वीत राग प्रभु के धर्म का पालन करना यही श्राविकाओं का मुख्य कर्तव्य है, बच्चों को पढ़ते ही धर्म शिक्षाओं से अलंकृत करना और उन को गाली आदि के देने से रोकना इत्यादि क्रियाओं के करने में जब स्त्री की कुशलता बढ जाती है तब स्त्री अपने मन पर भी विजय पा सकती है।

किन्तु जिस की क्रियाएं अनुचित होती हैं वह स्त्री अपने मन पर विजय नहीं पा सकती किन्तु व्यभिचार में प्रवृत्ति करने लग जाती हैं अतएव सिद्ध हुआ, कि- हर्ष पूर्वक धम पथ में अपने प्राण प्यारे पति के साथ समय व्यतीत करना चाहिये। जिस ने पति सेवा का ही छोड दिया उस ने अपने धर्म कर्म को भी तिलांजली दे दी, किन्तु पति को भी चाहिये, कि अपनी धर्म पत्नी को दुष्ट मार्ग में प्रवृत्त न करे और विपथा गामिनी उस

को न बनावे किन्तु आप श्रावक धर्म में प्रवृत्ति करता हुआ उस को सुशिक्षा से अलंकृत करे ।

और परस्पर प्रेम सम्बन्धि वार्त्तालाप में धर्म चर्चा भी करते रहें सदैव काल प्रसन्न मुख से परस्पर निरीक्षण करें क्यों कि—जिस घर में सदैव कलह ही रहता है उस घर की लक्ष्मी चली जाती है,

इस लिए ! धर्म पूर्वक प्रेम पालन के लिए जा कुछ स्त्री की न्याय पूर्वक मांग होती है यदि उसको पालन (पूर्ण) न किया जाए तब अनुचित वर्ताव होने की शंका की जाती है सो उसकी मांग पूरी करने से उसका चित्त अनुचित्त वर्ताव से दूर करना ही है परन्तु स्त्रियों को भी उचित है कि—अपने घर की व्यवस्था ठीक देख कर पदार्थों की याञ्चा करनी चाहिए ।

वह भी एक सकोमल और मृदु वाक्यों से करनी चाहिए ।

क्योंकि—कठिन वाक्यों के परस्पर प्रयोग करने से प्रेम टूट जाता है असभ्य वर्ताव बढ़ जाता है ॥

साथ ही अपनी मावी होनहार संतान के सन्मुख कोई भी अनुचित बर्ताव न होना चाहिए क्योंकि—जब बच्चे अपने मां और बाप के अनुचित बर्ताव को देखते हैं तब उनके मन से अपने मां और बाप का पूज्य भाव हट जाता है फिर वह उनके साथ अनुचित बर्ताव करने लग जाते हैं इतना ही नहीं किन्तु कुसंग में पड़ जाते हैं अपने मां और बाप की शिक्षा की भी परवाह नहीं रखते जिसका कि परिणाम आगे के लिए सुखप्रद नहीं रहता ,,

अत एव ! सिद्ध हुआ कि—परस्पर अनुचित बर्ताव कदापि न होना चाहिए,

और जो घर में स्वधर्मी भाई आ जाए तो उसके साथ सभ्यता पूर्वक बर्ताव करना चाहिए। जैसे शंख श्रावक के घर में पुष्प कली श्रावक के पधारने पर शंख श्रावक की धर्म पत्नी "उत्पला" श्राविका उनको आते हुओं को देख कर सातवां आठ पाद (पैर) उनके सामने उनके लेन वास्ते गई थी।

और उनको वन्दना नमस्कार किया फिर उनको आसन की आमंत्रणा की, जब वह शान्ति पूर्वक बैठ गए फिर उन से प्रेम पूर्वक पूछा कि—आप कैसे पधारे आप का क्या प्रयोजन है इत्यादि तब उन्हों ने उत्तर में प्रति पादन किया कि—मैं शख जी के मिलने के वास्ते आया हूं, वह कहां पर हैं।

तब "उत्पला" ने उत्तर में कहा कि—उन्होंने आज पाक्षिक पौषध शाला में पौषध की हुई है—वह आज ब्रह्मचारी और उपवासी हैं अकेले ही बैठे हुये हैं इत्यादि,'

इस कथन से—यह स्वतः ही सिद्ध हो गया कि—श्राविकाओं का स्वधर्मियों के साथ कैसा पवित्र वर्ताव होना चाहिये।

श्राविकाए—चारों तीर्थों में से एक तीर्थ रूप हैं इन का धार्मिक जीवन बड़े ऊंच कोटि का होना चाहिये।

साधु वा साध्वियों की संगति शास्त्रों का स्वाध्याय, पति सेवा गृह कार्यों में कुशलता—धार्मिक पुरुषों वा स्त्रियों से प्रेम अनुकंपा युक्त—ईर्ष्या—असूया, कलह,

जुगली, पर के अवगुणवर्णन, अभ्याख्यान (कलङ्क) इत्यादि दुर्गुणों को त्याग देना चाहिये। इस का अन्तिम परिणाम यह होगा कि–इस लोक में सुख पूर्वक जीवन व्यतीत होगा और परलोक में–सुख वा मोक्ष के सुख उपलब्ध होंगे॥

तेरहवां पाठ।

(देव गुरु और धर्म विषय)

सुज्ञपुरुषो! इस असार संसार में प्राणी मात्र को एक धर्म ही का सहारा है मित्र, पुत्र, सम्बन्धि इत्यादि जब मृत्यु का समय निकट आता है तब सब छोड़ कर उस से पृथक् हो जाते हैं तब प्राणी अकेला ही परलोक की यात्रा में प्रविष्ट हो जाता है।

जैसे किसी ने–किसी ग्राम में जाना हो तब वह जाने वाला अपने वहां पर ठहरने के लिये अनेक प्रकार के उपायों को सोचता है उसी प्रकार हर एक प्राणी ने

परलोक की यात्रा करनी है वहां पर अपने किये हुये ही कर्म काम आते हैं इस लिये ! परलोक के लिये तीनों की परीक्षा अवश्य ही करनी चाहिए जैसे कि—देव, गुरु और धर्म।

सारा संसार विश्वास पर काम कर रहा है लाखों वा करोडों रुपइयों का व्यापार भी विश्वास पर ही चल रहा है—कन्या दान भी विश्वास पर ही लोग करते हैं।

उसी प्रकार जब परीक्षा द्वारा "देव" सिद्ध हो जाए तब उस पर पूर्ण विश्वास होना चाहिये।

जैसे कि—जिस देव के पास स्त्री है वह कामी अवश्य है क्योंकि—स्त्री का पास रखना ही उस का कामी पना सिद्ध कर रहा है, तथा जिस देव के पास शस्त्र हैं वह भी उस का देव पना नहीं सिद्ध कर सकते क्योंकि—शस्त्र वही रखता है जिस को किसी शत्रु का भय हो तथा जिस देव के हाथ में जप माला है वह भी देव नहीं होता है, जप माला वही रखता है जिस ने किसी का जाप करना हो तथा स्मृति न रहती हो जब वह स्वयं ही देव है तब वह किस देव का जप कर रहा है तथा—स्मृति

आदि के न रहने से सर्वज्ञता का व्यवच्छेद हो जाता है और कमंडलु आदि के रखने से अपवित्रता सिद्ध होती है सिंह आदि पशुओं की सवारी करने से दयालुपना नहीं रहता इत्यादि चिन्हों द्वारा देव के लक्षण संघटित नहीं होते हैं इसी लिये इन्हें देव नहीं माना जाता।

जो गुरु हो कर कनक कामनी के त्यागी नहीं हैं अपितु विषयों में लिप्त होरहे हैं पर लोक जमीन के झगड़े में फंसे हुए हैं और भांग-चरस, सुल्फा तमाखू, अफीम, गांजा, इत्यादि व्यसनों में फंसे हुए हैं फिर इन्हीं के कारण से वे जूआ—मांस-मदिरा परस्त्री-वेश्यादि के गामी बन जाते हैं।

राज द्वार में गृहस्थों की तरह धन के भी न्याय (फैसले) होते हैं अतएव। वे गुरु पद के योग्य नहीं हैं किन्तु उन कुगुरुओं से बहुत से सद् गृहस्थ अच्छे हैं जो व्यसनों से बचते हैं।

फिर वह हर तरह की सवारियों में भी चढ़ जाते हैं-लोगों के आमंत्रणों का स्वीकार करते हैं भंडारे बनाते हैं-भंडारों के नाम पर हजारों रुपये लोगों से एकट्टे

करते हैं—सो यह कृत्य साधु वृत्ति से बाहर हैं इसलिये ! ऐसे पुरुष भी गुरु होने के योग्य नहीं हैं।

जिस धर्म में हिंसा की प्रधानता है और असत्य, मैथुन आदि क्रियाएं की जाती हैं देवों के नाम पर पशु वध होते हैं वह धर्म भी मानने योग्य नहीं है क्योंकि—जैसे उन के देव हैं वैसे ही उन देवों के उपासक हैं जैसे—कवि ने कहा है कि—

करभाणां विवाहेतु रासभास्तत्र गायकाः
परस्परं प्रशंसंति अहोरूप महो ध्वनिः १

अर्थ—ऊंटों के विवाह में गधे बन गये गाने वाले, फिर वह परस्पर प्रशंसा करते हैं कि—आश्चर्य है ऐसे रूप पर और वह कहते हैं आश्चर्य है ऐसे गाने वालों पर क्योंकि—जैसे वर का रूप है वैसे ही गाने वालों का मधुर स्वर है।

उसी प्रकार, जैसे हिंसक देव हैं उसी प्रकार के हिंसक उन के उपासक हैं अतएव ! सिद्ध हुआ कि—जिस धर्म में व्यभिचार ही व्यभिचार पाया जाता है वह धर्म

भी विद्वानों के उपादेय नहीं है। जिज्ञासुजनों को ऐसे धर्मों से भी पृथक् रहना चाहिये।

सुज्ञ पुरुषों को चाहिये कि—देव उन को मानें जो १८ दोषों से रहित हैं, जीवन्मुक्त और सर्वज्ञ सर्वदर्शी हैं योग मुद्रा में ही ऐसे भाव हैं—सर्व जीवों को निर्भय करने वाले हैं प्राणी मात्र के रक्षक हैं, ३४ अतिशय और ३५ वाणी के धारक हैं जो ऊपर उन देवों के शस्त्रादि चिन्ह वर्णन किए गए हैं उन चिन्हों में से कोई भी चिन्ह उन में नहीं है ऐसे श्री अर्हन् प्रभु देव मानने चाहिये। और गुरु वही हो सकते हैं जो शास्त्रानुसार अपना जीवन व्यतीत करने वाले हैं, सत्योपदेष्टा और सर्व जीवों के हितैषी हैं भिक्षा वृत्ति के द्वारा यह अपना जीवन व्यतीत करते हैं जैसे भ्रमर की वृत्ति होती है उसी प्रकार जिनका भोजन की वृत्ति है हर एक प्रकार से वह त्यागी हैं कायोत्सर्ग में सदा लग रहते हैं विवेक जिन का सहचर है जैसे सदाचार से धर्म होता है उसी प्रकार विवेक से जिन का धर्म है।

पांच महाव्रत यथाशक्ति धर्म इत्यादि के जो पालने वाले हैं वही गुरु हो सकते हैं।

धर्म वही होना चाहिये–जिस में जीव दया हो। क्योंकि–जिस धर्म में जीव दया नही है वह र्म ही क्या है कारण कि–जीव रक्षा ही धर्म का मुख्य अङ्ग है इसी से अन्य गुणों की प्राप्ति हो सकती है।

मित्रो! जैन धर्म का महत्त्व इसी बात का, है कि–इस धर्म में अहिंसा धर्म का असीम प्रचार किया। अनन्त आत्माओं के प्राण बचाये हिंसा को दूर किया

यद्यपि–अन्यमतावलम्बो लोगों ने भी "अहिंसा परमो धर्म" इस महा वाक्य का अति प्रचार किया किंतु वह प्रचार स्वार्थ कोटी में रह गया क्योंकि–उन लोगों ने बलि, यज्ञ, देवादि के वास्ते अहिंसा को विहीत मान लिया इसी कारण से वेद लाग इस महा वाक्य का पालन न कर सके।

तथा अपने स्वार्थ के वास्ते, वा शरीरादि रक्षा वास्ते भी उन लोगों ने हिंसा विहीत मान लिया।

तथा–एकेन्द्रियादि कायों में कतिपय जनों ने जीव सत्ता ही नहीं स्वीकार की जैसे–मिट्टी, पानी, अग्नि, वायु,

और वनस्पति काय में जैन शास्त्रों ने संख्यात, असंख्यात, वा अनन्त आत्मा स्वीकार किये हैं-किन्तु जब उन लोगों के धर्म में जीव सत्ता ही नहीं स्वीकार की तो भला फिर उन की रक्षा में वे कटिबद्ध कैसे खड़े हो जाएं।

अतएव ! जैन शास्त्रों ने एकेन्द्रियादि से लेकर पांचेन्द्रिय पर्यन्त जीवों पर अहिंसा धर्म का प्रचार किया, सो धर्म वही हो सकता है जो अहिंसा का सर्व प्रकार से पालन करता हो।

और जीव रक्षा धर्म से ही दान, शील, तप, और भावना रूप धर्म बन [illegible] सकते [illegible] अन्य नहीं।

क्योंकि—अहिंसा धर्म [illegible] पालन हुए ही दान दिया जा सकता है [illegible] किया जाता है, शील पालन होता है, भ [illegible] द्वारा तीनों उक्त धर्मों [illegible] सफलता की जाती है।

जब दान [illegible] तप भी कर लिया किन्तु भावना [illegible] न [illegible] तो ये तीनों ही धर्म सफल नहीं हो सकते हैं अतएव ! [illegible] द्वारा कार्यों की सफलता करनी चाहिए।

मुभपुरुषो—जैन धर्म ने अहिंसा धर्म का सेतु रामेश्वर से लेकर विंध्याचल पर्वत पर्यन्त तो प्रचार किया ही था, किन्तु अन्य देशों में भी अहिंसा धर्म का नाद बनाया समय की विचित्रता है कि—अब यह पवित्र धर्म का प्रचार स्वल्प होने के कारण से केवल—गुजरात (गुजर,) मारवाड़, मालवा कच्छ, पंजाब, आदि देशों में ही यह धर्म रह गया है किन्तु इस धर्म के अमूल्य सिद्धान्त विद्वानों के स्वल्प होने के कारण से छिपे पड़े हुये हैं।

विद्वान् वर्ग को योग्य है कि—सब के हितैषी भाव को अवलम्बन करके इस पवित्र जैन धर्म के अहिंसा धर्म का प्रचार करना चाहिये जिस के द्वारा अनंत आत्माओं के प्राणों की रक्षा हो जाये। परन्तु यह प्रचार तब हो सकता है जब परस्पर सम्य (प्रेम) हो—जहाँ प्रेम भाव रहता है वहाँ पर हर एक प्रकार की सम्पदाएं मिल जाती हैं जैसे कि—

किसी नगर में एक शेठ रहता था वे बड़ा लक्ष्मी पात्र था एक समय की बात है कि—वह रात्रि के समय, सोया पड़ा था उसको लक्ष्मी देवी ने दर्शन देकर कहा कि—

शेठ जी मैंने बहुत चिरकाल पर्यन्त आपके घर में निवास किया किन्तु अब मैं जाती हूं, परन्तु आप एक सुभाग्य पुरुष हैं मेरे से कोई वर मांग लो मुझे मत मांगना क्योंकि मैं अब रहना नहीं चाहती, तब शेठ जी ने लक्ष्मी देवी से विनय पूर्वक हाथ जोड़ कर निवेदन किया कि हे मातः ! मैं कल का अपने परिवार की सम्मति के अनुसार आप से वर विषय याचना करूंगा, मातः काल होते ही शेठ जी ने अपने परिवार से सम्मति ली, किन्तु उनकी सम्मतियों से शेठ जी की सतुष्टी नहीं हुई तब शेठ जी की छोटी कन्या जो पाठशाला में पढ़ती थी जब उस से पूछा तब उसने विनय पूर्वक शेठ जी के चरणों में निवेदन किया कि–पिता जी ! आप लक्ष्मी माता से सम्प (प्रेम) का वर मांगो जिस से उस के जाने के पश्चात् घरमें फूट और कलह उत्पन्न हो जायेगा, तब न हो शेठ जी ने इस बात को स्वीकार कर लिया, फिर रात्री के समय देवी ने दर्शन दिये तो फिर शेठ जी ने वही प्रेम का वर मांगा तब देवी ने उत्तर में कहा कि–हे शेठ जी ! जब तुम परस्पर प्रेम रखने की याचना करते हो तो फिर मैंने कहां जाना है क्योंकि–जहां 'प्रेम'

वहां ही मैं–फिर लक्ष्मी शेठ जी के घर में स्थिर हो कर रहने लगी इस दृष्टान्त से यह सिद्ध हुआ कि–जहां प्रेम होता है वहां सब कुछ होजाता है इस लिये ! देव, गुरु, और धर्म की पूर्ण प्रकार से परीक्षा करके फिर इस के प्रचार में रुचि वध हो जाना चाहिये । जब अहिंसा धर्म का सर्वत्र प्रचार किया जाएगा तब सदाचार का प्रचार भी साथ ही हो जाएगा ।

जो कि–सदाचार सत् पुरुषों का जीवन है ।
मोक्ष के अक्षय सुख के देने वाला है ।
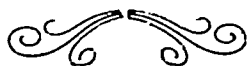
चौदहवाँ पाठ ।

(श्रीपूज्य अमरसिंह जी महाराज का जीवन चरित्)

प्रिय सुज्ञपुरुषो ! एक महर्षि की जीवनी से अनेक आत्माओं का लाभ पहुंचता है फिर जनता उसीका अनुकरण करने लगजाती है ।

लोगों की जीवनी एक स्वर्गीय साधारण का विभाव बतलाती है परन्तु जीवनी किसी अर्थ को अवश्य रखती है—

यदि जीवनी सत्यचित्रमयी होवेगी तब वह फिर जगत् में पूजनीय बन जाएगी क्योंकि—जीवनी के पढ़ने से पाठकों को तीन पर्वों का ज्ञान होता है, उस समय संसार की क्या गति थी उसका अपना जीवन निर्वाह किस प्रकार करते थे उन महर्षि ने किस उद्देश के लिए अनेक कष्टों का सामना किया इतना ही नहीं किन्तु उन कष्टों को शान्ति पूर्वक सहन किया, अन्त में किस प्रकार वह सफल मनोरथ हुए।

आज हम एक ऐसे महर्षि के पवित्र जीवन को अवलोकन करते हैं—जिन्होंने पंजाब देश में किस प्रकार से जैन धर्मोद्योत किया और अपना अमूल्य जीवन संघ सेवा में लगा दिया।

वह आचार्य श्री पूज्य अमर सिंह जी महाराज हैं। आप का जन्म पंजाब देश के सुप्रसिद्ध अमृतसर

आप के पिता जी जवाहरात की दुकान करते थे, उस समय पंजाब देश में महाराजा "रणजीत सिंह" जी के राज्य तेज से बहुतसी जातियों में सिंह नाम की प्रथा चली हुई थी। आप बाल्यावस्था के अति क्रम हो जाने पर अति निपुण हो गये विद्या में भी अति प्रवीण हुये। नामक शहर में १८६२ वैशाख कृष्णा "द्वितीया के दिन" लाला बुद्ध सिंह ओसवाल (भावड़े) सत्तड गोत्री की धर्म पत्नी श्री मती कर्मो देवी की कुक्षि में हुआ था।

लाला मोहर सिंह, और लाला मेहर चन्द्र, यह दोनों आप के बड़े भाई थे आप का परस्पर प्रेम भाव उन्हों के साथ अधिक था, जब आप यौवनावस्था में आये तब आपको पूर्व कर्मों के क्षयो पशम भाव से वैराग्य उत्पन्न हो गया, सदैव काल यही भाव आप अपने मन में भावने लगे कि—मैं जैन दीक्षा लेकर धर्म का प्रचार करू जो लोग अन्ध श्रद्धा में जा रहे हैं उन को सुपथ में लाऊं।

जब आप के भाव अति उत्कट हो गये तब आप के माता पिता ने आपके इस प्रकार के भावों को जान कर

आपके विवाह का रचना रचदिया थी कि आपको बिना इच्छा माता पिता की आज्ञा का पालन करना पड़ा, अर्थात् उन्हों ने आप का सियालकोट में लाला हीरा लाल (सर्राफ वाले) ओसवाल की धर्म पत्नी श्री मती आत्मा देवी जी की पुत्री श्री मती ज्वाला देवी के साथ पाणी ग्रहण करवा दिया।

जब आप का विवाह संस्कार भी हो गया परन्तु धर्म में आपके भाव और भी चढ़ते रहे किन्तु भागावली कर्मों के प्रभाव से आप को संसार में ही कुछ समय तक ठहरना पड़ा आप जौहरियों में एक बड़े प्रसिद्ध जोहरी थे, आप के दो पुत्रियें उत्पन्न हुई उन्हों का आप ने विवाह संस्कार किया फिर आपके भाव संयम में अतीव बढ़ गये।

उस सम समय पंजाब देश में श्री रामलाल जी महाराज धर्म प्रचार कर रहे थे आप के भाव उनके पास दीक्षा लेने का हो गये। माता पिता का स्वर्ग वास तो हो ही चुका था, तब आप ने अपनी दुकान पर पांच गुमास्ते बिठलाए, और काम काज निपम

पूर्वक उनको दे दिया क्योंकि—आपका पारवार बहुत बढ़ चुका था—तब आप दीक्षा के लिए देहली में श्रीराम-लाल जी महाराज के चरणों में उपस्थित होगए किन्तु रामरत्न जी और जयन्तीदास जी यह भी दोनों आपके साथ ही दीक्षा के लिए तय्यार हुए तब आपको श्रीगुरु महाराज ने संयम वृत्ति की दुष्करता सिद्ध करके दिख-लाई किन्तु आपने संयम वृत्ति के सर्व कष्टों को सहन करना स्वीकार करलिया क्योंकि—आप पहिले ही ससार से विरक्त होरहे थे, और परोपकार करने के भाव उत्कटता में आए हुए थे। तब देहली निवासी लोगों ने दीक्षा महोत्सव रचदिया तब आपने १८६८ वैशाख कृष्णा द्वितीया के दिन उन दोनों के साथ दीक्षा धारण की, गुरुजी के साथ ही प्रथम चतुर्मास दिल्ली में किया।

काल की बड़ी विचित्र गति है यह किसी के भी समय को नहीं देखता अकस्मात् श्रीमान् पण्डित—श्री रामलाल जी महाराज का दीक्षा के षट्मास के पश्चात् स्वर्गवास होगया, तब आपने शान्ति पूर्वक अपने गुरु भाइयों के साथ देश में विचरना आरंभ किया, और

आप ऐसे उच्च कोटी के विद्वान् वा आचार्य होते हुए भी आप तपस्वी भी थे-एक वार आप ने ३३-व्रत (उपवास) लगातार किए पानी के शिवा (सिवा) आप ने और कुछ भी नही खान पान किया, ८ वा १५ दिन पर्यन्त तो आपने कई वार तप (उपवास) किये।

सहन शक्ति आपकी ऐसी असीम थी कि—विपक्षियों की ओर से आप को अनेक प्रकार के कष्ट हुए उनको हर्ष पूर्वक आप ने सहन किए।

अनेक सुयोग्य पुरुषों ने आप के पास दीक्षाएँ धारण की—जो आप के अमृतमय व्याख्यान को सुन लेता था वह एक वार तो वैराग्य से भीग जाता था, ग्राम २ वा-नगर-२ में आप ने फिरकर जैन ध्वजा फहराई और लोगों को सुपथ में आरूढ़ किया, अपनी गच्छ मर्यादा के कई-नियम भी आपने नियत किए, जैन धर्म पर आप की असीम-श्रद्धा थी—जैसे कि—

उन दिनों में आपके हाथों के दीक्षित किए हुए श्री श्री श्री १०८ स्वामी जीवनरामजी महाराज के शिष्य आत्मा राम जी की, श्रद्धा मूर्त्ति पूजा की होजाने के

इस प्रकार आप और आप के सुयोग्य शिष्य धर्म प्रचार करते हुए आप ने १९३७ का चतुर्मास अमृतसर में किया, चतुर्मास के पश्चात् जंघावल क्षीण हो जाने के कारण से श्रावक समुदाय की विज्ञप्ति अत्यन्त होने पर आप ने फिर विहार नहीं किया आप के विराजमान होने से अमृतसर में अनेक धार्मिक कार्य होने लगे किन्तु, काल की ऐसी विचित्र गति है कि—यह महात्मा वा सामान्यात्मा को एक ही दृष्टि से देखता है किसी ना किसी निमित्त को सनमुख रख कर शीघ्र ही प्राणी को आ घेरता है, १९३८ आषाढ़ कृष्णा १५ का आपने उपवास किया परन्तु उस उपवास का पारणा ठीक न हुआ, तब अपने अपने ज्ञान बल से आयु को निकट आया जान कर जैन सूत्रानुसार आलोचनादि क्रियाएँ करके सब जीवों से क्षमापन (खमावना) आदि करके दिनके तीन बजे के अनुमान में श्री संघ के सन्मुख शास्त्रविधि के अनुसार अनशन व्रत करलिया फिर परम सुन्दर भावों के साथ मुख से अर्हन् अर्हन् का जाप करते हुए आषाढ़ शुक्ला द्वितीया दिन के १ बजे के अनुमान आप का स्वर्गवास होगया ।

कारण से उन्हों ने आपके बारह शिष्य कहलाए और वह आप के साथ बड़ा से क्रिया करते रहे अन्तिम आप ने उन्हों को अपने गच्छ से पृथक् कर दिया थे—आत्मा राम जी के साथ मिल कर तप गच्छ में चले गए।

उन्होंने आपको कई प्रकार के अनुकूल वा प्रतिकूल परीषह भी दिए परन्तु आपकी ऐसा सहन शक्ति थी कि-कभी अन्त में हतोत्साह होगए, आपकी जय विजय सर्वत्र हतीरही आपके बारह शिष्य हुए जिन्होंने देश देशान्तरों में फिरकर जैनधर्म का प्रचार किया, उनके शुभ नाम यह हैं जैसे कि—

श्री स्वामी सुखाकारामजी महाराज १ श्री स्वामी सुखावरामजी म० २ श्रीस्वामी विलासरायजी महाराज ३ श्रीस्वामी रामबक्षजी महाराज ४ श्री स्वामी सुखदेवजी महाराज ५ श्री स्वामी मायोरामजी ६ श्रीस्वामी मोहन लाल जी महाराज ७ श्री स्वामी रत्नचन्द्र जी महाराज ८ श्री स्वामी खेताराम जी महाराज ९ श्री सुखचन्द्र जी महाराज १० श्री स्वामी बालक राम जी महाराज ११ श्री स्वामी राधाकृष्ण जी महाराज १२ ।

इस प्रकार आप और आप के सुयोग्य शिष्य धर्म प्रचार करते हुए आप ने १६३७ का चतुर्मास अमृतसर में किया, चतुर्मास के पश्चात् जंघाबल चीण हो जाने के कारण से श्रावक समुदाय की विज्ञप्ति अत्यन्त होने पर आप ने फिर विहार नहीं किया आप के विराजमान होने से अमृतसर में अनेक धार्मिक कार्य होने लगे किन्तु, काल की ऐसी विचित्र गति है कि—यह महात्मा वा सामान्यात्मा को एक ही दृष्टि से देखता है किसी ना किसी निमित्त को सनमुख रख कर शीघ्र ही प्राणी को आ घेरता है, १६३८ आषाढ़ कृष्णा १५ का आपने उपवास किया परन्तु उस उपवास का पारणा ठीक न हुआ, तब अपने अपने ज्ञान बल से आयु को निकट आया जान कर जैन सूत्रानुसार आलोचनादि क्रियाएँ करके सब जीवों से चमापन (खमावना) आदि करके दिनके तीन बजे के अनुमान में श्री संघ के सन्मुख शास्त्रविधि के अनुसार अनशन व्रत करलिया फिर परम सुन्दर भावों के साथ मुख से अर्हन् अर्हन् का जाप करते हुए आषाढ़ शुक्ला द्वितीया दिन के १ बजे के अनुमान आप का स्वर्गवास होगया ।

तब श्रावक संघ ने तारों द्वारा आपका हृदयविदीर्ण करने वाला शोक समाचार नगर २ देदिया जिससे अमृतसर में बहुतसा श्रावक तथा श्राविका संघ एकत्र होगया तब आपके शरीर का बड़े समारोह के साथ चन्दन द्वारा अग्नि संस्कार किया गया आपके विमान पर लोगों ने ६४ दुशाले पाए थे।

अब पंजाब देश में आपके श्रावकों ने आपके नाम पर अनेक संस्थाएँ स्थापन की हुई हैं जैसे—अमर जैन पुस्तकालय अमर जैन छात्रालय (बोर्डिंग) इत्यादि—२ पंजाब देश में आपके शिष्यों के शिष्य वर्तमान समय में हैं आपके गच्छ का नाम लाहौरी गच्छ था पंजाब गच्छ अन्य देशों में प्रसिद्ध हो रहा है।

पाठक जनों को आपके पवित्र जीवन से अनेक प्रकार की शिक्षाएँ लेनी चाहिए।

आपने जिस प्रकार जैनधर्म का रक्षण पूर्वक प्रचार किया था इस बात का अनुकरण प्रत्येक व्यक्ति को करना चाहिए।

पन्द्रवां पाठ।

(धन्ना शेठ की कथा)

प्रिय सुज्ञ पुरुषो ! प्राचीन समय में एक राज गृह नगर बसता था उस के बाहिर एक सुभूमि भाग नाम वाला बाग था जो अति मनोहर था उस नगर में एक धन्ना शेठ बसता था जो बड़ा धनवान् था उस की भद्रा नाम वाली धर्म पत्नी थी, धन्ना शेठ के चार पुत्र थे उन के नाम शेठ जी ने इस प्रकार स्थापन किये थे जैसेकि— धन पाल १ धन देव २ धन-गोप ३ और धन रक्षत ४ उन चारों पुत्रों की चारों वधुएँ थी—जैसेकि—उज्झिया १ भोग वत्तिका २ रक्षिका ३ और रोहिणी ४।

एक समय की बात है कि—धन्ना शेठ आधी रात के समय अपने कुटम्ब की विचारणा कर रहे थे साथ ही इस बात को भी विचार करने लग गये, कि—मैं इस समय इस नगर में बड़ा माननीय शेठ हूं, मेरी सर्व प्रकार से उन्नति हो रही है किन्तु मेरे विदेश जाने पर वा-रुग्णावस्था के आने पर तथा मृत्यु के प्राप्त होने पर मेरे

पीछे मेरे घर के काम काज के चलाने वाला कौन होगा इस बात की परीक्षा करनी चाहिये।

ऐसा विचार करते हुये उन्हों ने जाना कि पुत्र तो सुयोग्य हैं वह भली प्रकार काम चला लेंगे परन्तु घर सम्बन्धी उन की स्त्रियों की जांच करनी चाहिये कि वह घर के काम को किस योग्यता से चला सकती हैं तब सेठ जी ने प्रातः काल होते ही अपने पुत्रों को बुलाया और उन से कहा कि हे पुत्रो! तुम तो हर प्रकार से गृहस्थ सम्बन्धी काम करने के योग्य हो मैं तुम से संतुष्ट हूं परन्तु मेरी इच्छा है कि अपने घर की स्त्रियों का परीक्षा लूं तुम सब को बुलाओ तब उन्हों ने अपनी अपनी स्त्री को अपने पिता के सन्मुख शिक्षा और परीक्षा के लिये उपस्थित किया जिस पर सेठ जी ने अपनी चारों बहुओं को पांच २ धान दे दिये और उन से कहा कि—हे पुत्रियो! यह पांच धान्य मैंने तुम को दिये हैं तुम ने इन की रक्षा करनी अपितु जब मैं तुम्हारे से मांगूंगा तब तुम ने वही धान्य मुझे दे देने इस प्रकार की शिक्षा अपनी चारों बहुओं को कर विसर्जन कर दिया।

जब पहिली वधु ने शेठ जी के हाथों से पांच धान्यों को ले लिया और बाहिर आने पर उस ने विचार किया कि-शेठ जी वृद्ध हैं न जाने इन के कैसे २ संकल्प उत्पन्न होते रहते हैं क्या हमारे घर में धान्यों की कमी है। जिस समय शेठ जी मेरे से धान्य मांगेंगे तब मैं अपने कोठों से निकाल कर पांच ही धान्य शेठ जी को दे दूंगी फिर उस ने ऐसा विचार करके उन पांचों धान्यों को वहां ही गेर दिया।

जो दूसरी वधु को पांच धान्य दिये थे उस ने भी पहिली की तरह उन पर विचार किया, किन्तु वह धान्य गेरे तो नहीं अपितु छील कर खा लिये।

तीसरी वधु ने सोचा कि जब इन धान्यों के वास्ते इस प्रकार हमें शेठ जी ने बुला कर दिये हैं तो इस से सिद्ध होता है कि-इस में कोई न कोई कारण अवश्य है इस लिये इन की रक्षा करनी चाहिये। तब उस ने अपने रत्नों की पेटी में उन पांचों धान्यों को रख दिया इतना ही नहीं किन्तु उन की दोनों समय रक्षा करने लग गई।

जब चौथी वधू ने पांच धान्य ले लिये तब उस ने भी तीसरी की तरह विचार किया, किन्तु उन धान्यों को अपने कुल घर के पुरुषों को बुला कर यह कहा कि—हे मित्र ! इन पांचों धान्यों को तुम ले जाओ और उनका एक क्यारा बना कर विधि पूर्वक वर्षा ऋतु के आने पर इनका बीज दो, फिर यथा विधि क्रियाएं करते जाओ जब तक मैं तुम्हारे से धान्य न मांगलूं—तब तक इस क्रम से यावन्मात्र धान्य होते जाएं वे सब बीजते जाओ ।

दास पुरुषों ने इस आज्ञा को सुनकर हर्ष प्रकट किया फिर वे उसी प्रकार पांच वर्ष पर्यन्त करते गए।

पांचवें वर्ष उन पांचों धान्यों की वृद्धि इतनी गई धान्यों के कठे भरगए। वे दास पुरुष प्रतिवर्ष सर्व समाचार श्रीमती रोहिणी देवी को देते रहे।

जब पांच वर्ष व्यतीत होगए—तब अकस्मात् शेठजी रात्री के समय अपने भवन में सोए पड़े थे अर्धरात्रि के समय उनकी नींद खुलगई तब उनके मन में यह भाव उत्पन्न हुए कि—मैंने गत पांच वर्ष में अपनी वधुओं की परीक्षा के वास्ते उनको पांच २ धान्य दिए थे, अब देखें

उन्होंने पांच धान्यों से क्या लाभ उठाया। उन से वृद्धि की या नहीं- तब प्रातःकाल होनेही शेठजी ने फिर एक बड़ा विशाल भोजन मंडप तय्यार करवाया उसमें नाना प्रकार के भोजन तय्यार करवाए गए।

ताम्बूलादि पदार्थों का भी संग्रह किया गया फिर शेठजी ने अपनी ज्ञातिवाले पुरुषों को वा अपनी वधुओं के सम्बन्धि पुरुषों को विधिपूर्वक आमंत्रित किया जब भोजनशाला में सर्व स्वजनवर्ग इकट्ठा होगया तब उनको भोजन दियागया सत्कार करने के पश्चात् उनके सामने अपनी चारों वधुओं को बुलाया गया।

फिर शेठ जी ने पहली वधु से पांच धान्य मांगे तब बड़ी वधु ने अपने धान्यों के कोठो से पांच धान्य लाकर शेठ जी के हाथ में रख दिये तब शेठ जी ने उसे शपथ दे कर कहा कि-तुम्हें अमुक शपथ है कि-क्या ये वही धान्य हैं। तब वधु ने कहा कि-हे पिता जी! यह धान्य वह तो नहीं हैं किन्तु मैंने अपने धान्य के कोठों में से लाकर धान्य दिये हैं। तब शेठ जी ने उस वधु को विशेष सत्कार तो नहीं दिया और नहीं कुछ कहा परन्तु

जब चौथी वधु ने पांच धान्य लिये तब उस ने भी तासरी की तरह विचार किया, किन्तु उन धान्यों को अपने कुल घर के पुरुषों को बुला कर यह कहा कि–हे प्रिय ! इन पांचों धान्यों को तुम ले जाओ और कोईसा एक क्यारा बना कर विधि पूर्वक वर्षा ऋतु के आने पर इनका बीज दो, फिर यथा विधि क्रियाएं करते जाओ। जब तक मैं तुम्हारे से धान्य न मांगलू—तब तक इस अर्थ से यावन्मात्र धान्य होते जाएं वे सब बीजते जाओ।

दास पुरुषों ने इस आज्ञा को सुनकर हर्ष प्रकट किया फिर वे उसी प्रकार पांच वर्ष पर्यन्त करते गए।

पांचवें वर्ष उन पांचों धान्यों की वृद्धि इतनी गई धान्यों के कुठे भरगए। वे दास पुरुष प्रतिवर्ष सर्व समाचार श्रीमती रोहिणी देवी को देते रहे।

जब पांच वर्ष व्यतीत होगए—तब अकस्मात् सेठजी रात्री के समय अपने भवन में सोए पड़े थे अर्धरात्र के समय उनकी नींद खुलगई तब उनके मन में यह भाव उत्पन्न हुए कि–मैंने गत पांच वर्ष में अपनी वधुओं की परीक्षा के वास्ते उनको पांच २ धान्य दिए थे, अब देखें

उन्होंने पांच धान्यों से क्या लाभ उठाया । उन से वृद्धि की या नहीं- तब प्रातःकाल होतेही शेठजी ने फिर एक बड़ा विशाल भोजन मंडप तय्यार करवाया उसमें नाना प्रकार के भोजन तय्यार करवाए गए ।

ताम्बूलादि पदार्थों का भी संग्रह किया गया फिर शेठजी ने अपनी ज्ञातिवाले पुरुषों को वा अपनी वधुओं के सम्बन्धि पुरुषों को विधिपूर्वक आमंत्रित किया जब भोजनशाला में सर्व स्वजनवर्ग इकठ्ठा होगया तब उनको भोजन दियागया सत्कार करने के पश्चात् उनके सामने अपनी चारों वधुओं को बुलाया गया ।

फिर शेठ जी ने पहली वधु से पांच धान्य मांगे तब बड़ी वधु ने अपने धान्यों के कोठों से पांच धान्य लाकर शेठ जी के हाथ में रख दिये तब शेठ जी ने उसे शपथ दे कर कहा कि-तुम्हें अमुक शपथ है कि-क्या ये वही धान्य हैं। तब वधु ने कहा कि-हे पिता जी! यह धान्य वह तो नहीं हैं किन्तु मैंने अपने धान्य के कोठों में से लाकर धान्य दिये हैं । तब शेठ जी ने उस वधु को विशेष सत्कार तो नहीं दिया और नहीं कुछ कहा परन्तु

उस के सत्य बोलने की प्रशंसा करके चुप हो रहे और उस को बैठने की आज्ञा दी, तदनु सेठ जी ने दूसरी बधू को बुलाया उस से भी वही धान्य मांगे उस ने भी पहली की तरह सब कुछ कह दिया तब सेठ जी ने उस को भी बैठने की आज्ञा दी, उस के पश्चात् तीसरी बधु को आमंत्रित किया गया उसने आकर सर्व वृतान्त कह सुना ॥ और यह भी कह दिया कि-मैं कोई कारण समझ कर दोनों समय इन धान्यों की रक्षा करती रही तब सेठ जी ने तीसरी बधु का सत्कार करके अपने पास ही उसे भी बैठा लिया ।

फर सेठ जी ने चौथी बधु को बुलाया उस से भी वही धान्य मांग लिये गये उस ने सब के सामने यह कहा कि-पिता जी ! उन धान्यों के लाने के लिये ! मुझे शकट मिलने चाहिये तब सेठ जी ने कहा कि-हे पुत्रि ! यह कैसे ! तब उस ने जिस प्रकार धान्य लिये थे । और उन को बीजा गया था । पांच वर्ष में उन का इतना वृद्ध हुआ इत्यादि वृतान्त को सुन कर सेठ जी ह्द ! ।सन हुए और चौथी बधु को बहुत ही सत्कार

देते हुये उस को अत्यन्त प्रशंसा की और उस को पूर्ण आदर दिया।

तब शेठ जी ने उन चारों वधुओं की परीक्षा लेली, तब लोगों के सामने यह कहा कि—देखो! मेरी पहली पुत्र वधु ने मेरे दिये पांचों धान्यों को गेर दिया, इस लिये! मैं अपने घर की शुद्धि करने के काम में नियुक्त करता हूं। जो घर में रज, मल, आदि पदार्थ हों यह उन को घर से बाहिर गेरती रहे,,

दूसरी पुत्र वधु को मैं भोजन शाला में नियुक्त करता हू क्योंकि—इसने मेरे दिये हुये धान्य खा लिये हैं सो मैं खाने पकानेके काम में स्थापन करता हूं।

तीसरी वधु ने मेरे दिये हुये पांचों धान्यों की सावधानता पूर्वक रक्षा की है इस लिये! इसको मैं कोशाधिपत्नी बनाता हू। जो मेरे घर में जवाहरात आदि पदार्थ हैं उन की कुंची इस के पास रहेगी।

चौथी पुत्र वधु ने मेरे दिये हुये पांचों धान्यों को

इचि की है इस लिए । मैं इस को सब कार्यों में पूछने योग्य और हरएक कार्य में प्रमाण भूत स्थापन करता हूं ।

इस प्रकार सेठ जी ने न्याय करके सभा विसर्जन कर दी । हे बालको इस दृष्टान्त से पूर्व समय का कैसा प्रमाण भूत न्याय सिद्ध होता है और तुम को शिक्षा मिलती है कि-पूर्व समय की स्त्रियां तक कदापि झूठ का मनन न करती थीं-अतः तुम को योग्य है कि तुम सर्व दा सच बोलो झूठ न बोलो और अपनी माता पिता के आज्ञाकारी बनो व बुद्धि को निर्मल करते हुए विचार वान् होने का पुरुषार्थ करो और अपनी स्त्रियों व बाल कादिकों को बुद्धिमता बनाओ यही इस कहानी का सार है—

सोलहवा पाठ ।

(जैन धर्म)

जैन धर्म एक प्राचीन धर्म है हिन्दुस्थान के बड़े बड़े शहरों (नगरों) बम्बई कलकत्ता में जैनियों की बहुत २ बस्ति है गुजरात काठियावाड़ मालवा मेवाड़ दक्खन

मारवाड़ मद्रास-पञ्जाब आदि में जैन लोग बहुत से बसते हैं जैन जाति विशेष करके व्यापार करने वाली जाति है यही कारण है कि जैन जाति में विद्या की न्यूनता है और इस न्यूनता के होने से जैन धर्म का प्रचार वर्तमान समय में इस प्रकार नहीं जैसा कि होना चाहिये अपितु फिर भी जैन लोगों की संख्या देशों में १०—११ लाख (गणना की जाती है) जैन धर्म की तीन बड़ी शाखाएं हैं "श्वेताम्बर स्थानक वासी" दिगम्बर" श्वेताम्बर-पुंजेरे' या मन्दिर मार्गी" परन्तु इन में सब से अधिक संख्या श्वेताम्बर स्थानक वासियों की ही है दिगम्बर श्वेताम्बर स्थानक वासी इन में परस्पर भेद तो थोड़ा सा ही है परन्तु विशेष भेद इस बात का है कि श्वेताम्बर स्थानक वासी मूर्ति का पूजन नहीं मानते और अन्य मानते हैं-जैन धर्म वालों के बड़े २ भाषा की हिन्दी गुजराती प्राकृत संस्कृत मागधी आदि भाषाओं की पुस्तकों के भंडार हैं जो जैसलमेर आदि स्थानों में हैं इन की बहुत सी पुस्तकें हस्त लिखित होने के कारण बड़े २ पुराने पुस्तकालयों और भंडारों में होने से प्रकट रूप संसार में नहीं फैलीं परन्तु अब इन का प्रकाश देश की

हानि की है इस लिये ! मैं इस को सब कार्यों में पुरुषसे योग्य और हरएक कार्य में ममाण भूत स्थापन करता हूँ।

इस प्रकार सेठ जी ने प्रलाप करके सभा विसर्जन कर दी। हे बालको इस दृष्टान्त से पूर्व समय का कैसा प्रमाण भूत न्याय सिद्ध होता है और तुम को शिक्षा मिलती है कि-पूर्व समय की स्त्रियां सक कदापि झूठ का कथन न करती थीं-तो-तुम को योग्य है कि तुम मर्द हो कर कभी झूठ न बोलो और अपनी माता पिता के आज्ञाकारी बनो व बुद्धि को निर्मल करते हुए निर्मार बान होने का पुरुषार्थ करो और अपनी स्त्रियों व बालकों को बुद्धिमता बनाओ यही इस कहानी का सार है—

सोलहवां पाठ।

(जैन धर्म)

जैन धर्म एक प्राचीन धर्म है हिन्दुस्थान के बड़े बड़े शहरों (नगरों) बम्बई कलकत्ता में जैनियों की बहुत २ बस्ति है गुजरात काठियावाड़ मालवा मेवाड़ दक्षिण

मारवाड़ मदरास-पञ्जाब आदि में जैन लोग बहुत से बसते हैं जैन जाति विशेष करके व्यापार करने वाली जाति है यही कारण है कि जैन जाति में विद्या की न्यूनता है और इस न्यूनता के होने से जैन धर्म का प्रचार वर्तमान समय में इस प्रकार नहीं जैसा कि होना चाहिये अपितु फिर भी जैन लोगों की संख्या देशों में १०—११ लाख [गणना की जाति] है जैन धर्म की तीन बड़ी शाखाएं हैं "श्वेताम्बर स्थानक वासी" दिगम्बर" श्वेताम्बर-पुंजेरे' या मन्दिर मार्गी" परन्तु इन में सब से अधिक संख्या श्वेताम्बर स्थानक वासियों की ही है दिगम्बर श्वेताम्बर स्थानक वासी इन में परस्पर भेद तो थोड़ा सा ही है परन्तु विशेष भेद इस बात का है कि श्वेताम्बर स्थानक वासी मूर्ति का पूजन नहीं मानते और अन्य मानते हैं-जैन धर्म वालों के बड़े २ प्राचीन हिन्दी गुजराती प्राकृत संस्कृत मागधी आदि भाषाओं की पुस्तकों के भंडार हैं जो जैसलमेर आदि स्थानों में हैं, इन की बहुत सी पुस्तकें हस्त लिखित होने के कारण बड़े २ पुराने पुस्तकालयों और भंडारों में होने से प्रकट रूप संसार में नहीं फैली परन्तु अब इन का प्रकाश देश की

सब ही भाषाओं में हो रहा है जिस से जैन धर्म का महात्म्य प्रति दिन बढ़ रहा है जैन धर्म ने जहां और बहुत से उपकार के बड़े २ काम किये हैं वहां संसार में सब धर्मों से उत्कृष्ट महान् काम मुख्य यह भी किया है कि इस धर्म ने—

(अहिंसा का सच्चा आदर्श)

देश के सामने रखते हुवे इसका सम्पमेव पूर्ण पालन ही नहीं किया किन्तु हिंसा को देश निकाला देते हुवे लोगों को पूर्ण अहिंसक बनाया यही कारण था कि इस धर्म पर बड़ी २ आपत्तियां आई परन्तु यह फिर भी आज तक जीवित और जाग्रत ही है—

जैन कुमार की प्रेमभरी भावना

१

हे सर्वज्ञ देव तुमसे मेरा यह इलतिजा है ।
इस संसार घार वन में जो दुःख भरा हुआ है ॥
उस दुःख के मटने की गुण ज्ञान का दवा है ।
वह हाथों में हो मेरे मेरी यह भावना है ॥

मैं उस दवा से मेटूं दुःख जग के प्राणियों का ।
और भ्रम सब मिटादूं दिल से अयानियों का ॥

२

रह करके ब्रह्मचारी विद्या करूं मैं हासिल ।
आलिम बनूं मैं पूरा हरएक फन में कामिल ॥
होकर धर्म का माहिर हरइक अमल का आमिल ।
चक्खूं चक्खाऊ सबको गुण ज्ञान के सरस फल ॥
रक्षा करू मैं अपने बल वीर्य की निभा कर ।
सेवा करूं धर्म की मैं जिस्मो जाँ लगा कर ॥

३

अर्जुन सा बल हो मुझ में और भीम सी हो ताकत ।
अकलङ्क सी हो हिम्मत निःकलङ्क सी शजायत ॥
श्रीपाल जैसी स्थिरता और राम जैसी इज़्ज़त ।
विष्णु सा प्रम मुझ में लक्ष्मण सी हो मुहब्बत ॥
उस करण जैसी मुझ में हां दानवीरता हो ।
गज सुख माल जैसी हां ध्यान धीरता हो ॥

४

सादी गिज़ा हो मेरी सादा चलन हो मेरा ।
मैं हूं वतन का प्यारा प्यारा वतन हो मेरा ॥

सब ही भाषाओं में हो रहा है जिस से जैन धर्म का महात्म्य प्रति दिन बढ़ रहा है जैन धर्म ने जहां और बहुत से उपकार के बड़े २ काम किये हैं वहां संसार में सब धर्मों से उत्कृष्ट महान् काम मुख्य यह भी किया है कि इस धर्म ने—

(अहिंसा का सच्चा आदर्श)

दया के सामने रखते हुए इसका स्वयमेव पूर्ण पालन ही नहीं किया किन्तु हिंसा को रोक निकाला दत हुवे लोगों का पूर्ण अहिंसक बनाया यही कारण था कि इस धर्म पर बड़ी २ आपत्तियां आई परन्तु यह फिर भी आज तक जीवित और जाग्रत हो है—

जैन कुमार की प्रेमभरी भावना

१

ऐ सर्वज्ञ देव तुमसे मेरी यह इलतिजा है।
इस संसार घोर बन में जो दुःख भरा हुआ है॥
उस दुःख के मटने की गुण ज्ञान जो दवा है।
हर रोगों में हो मर मेरी यह भावना है॥

यह अनादि कर्म मल से संसार चतुर्गति में परिभ्रमण करने वाला अशुद्ध और दुखी आत्मा निज परमात्म-स्वरूप को प्राप्त कर सदैव आनन्द में मग्न रहा करता है—

(३) स्मरण रक्खो कि मोक्ष मांगने और किसी के देने से नहीं मिलती उसकी प्राप्ति हमारी पूर्ण वीतरागता और पुरुषार्थ से कर्म्म मल और उनके कारण नष्ट करलेने पर ही अवलम्बित है—

(४) स्याद्वाद-सत्यता का स्वरूप है और वस्तु के अनन्त धर्म्मों का यथार्थ कथन करसक्ता है—

(५) जैनधर्म ही परमात्मा का उपदेश है क्योंकि पूर्वापर विरोध और पक्षपात रहित सब जीवों को उनके कल्याण का उपदेश देता है और उसी के परमात्मा की सिद्धि और छाप इस संसार में है—

(६) एकमात्र 'ही' और 'भी' यही अन्य धर्म्म और जैनधर्म्म का भेद है यदि उन सब के भाव और उपदेश की इयता की 'ही' 'भी' से बदल दी जाय तो उन्हीं सबका समुदाय जैनधर्म्म है—

सच्चा मस्तक हो मेरा पक्का मन हो मेरा ।
आदर्श ज़िन्दगी हो आत्म भूषण हो मेरा ॥
दुनिया के प्राणियों में ऐसा मेरा निबाह हो ।
मुझ को भी इनकी चाह हो उनको भी मेरी चाह हो ॥

५

दुनिया के बीच करूँ पूर्ण ज्ञान का उजारा ।
और दूर सब भगाऊँ अज्ञान का अंधेरा ॥
मैं सब का एक करूँ आत्म का रसास्वादन कर
वाणी पवित्र प्रभु की महावीर की सुनाकर ॥
व्याप्ति मैं यह करूँगा सब मन लगा के अपना ।
सच्चा करूँ धर्म का सब छूट जाए कपना ॥

आवश्यक सूचनायें ।

(१) जैन धर्म आत्मा का निज स्वभाव है और एक मात्र उसी के द्वारा सुख सम्पादन किया जासकता है—

(२) सुख अपने में ही है जिसको कि प्राप्त करके

नोट—सब विद्यार्थियों को इसे कण्ठस्थ करके नित्य प्रति पढ़ना चाहिए ।

सत्रहवां पाठ।

(धर्म प्रचार विषय)

प्रिय सज्जनों ! जब तक धर्म प्रचार नहीं होता तब तक लोग सदाचारी नहीं बन सकते अतएव सदाचार की प्रवृत्ति के लिये धर्म प्रचार की अत्यन्त आवश्यकता है।

विद्वान् पुरुषों को योग्य है कि देश कालज्ञ हो कर धर्म शिक्षाओं द्वारा प्राणियों को सदाचार में प्रवृत्त कराते रहें यावन्मात्र संसार भर में अन्याय व्यभिचार की प्रवृत्ति दृष्टि गोचर हो रही है यह सब धर्म प्रचार के न होने के ही कारण से है जब धर्म प्रचार न्याय पूर्वक किया जावे तब उक्त प्रवृत्तियें अन्यतर हो जायें अपितु धर्म प्रचार के जिन २ साधनों की आवश्यकता है वे साधन देश कालानुसार प्रयुक्त करने से सफलता को प्राप्त हो जाते हैं।

अब उन साधनों के विषय में यत्किंचित् लिखते हैं
"उपदेशक" सदाचार में रत धर्मात्मा पुरुष

(७) मत समझो कि जैनधर्म्म किसी सम्प्रदाय विशेष का ही धर्म्म है या होसका है मनुष्यों का तो क्या कौन जीवमात्र इसको स्वशक्त्यानुसार धारण कर तद्रूप निज कल्याण कर सकता है—

(८) जैनधर्म्म के समस्त तत्व और उपदेश वस्तु स्वरूप प्राकृतिक नियम न्यायशास्त्र शब्दानुशासन और विज्ञान सिद्धान्त के अनुसार होनेके कारण सत्य है—

(९) सर्वज्ञ वीतराग और हितोपदेशक देव निर्ग्रन्थ गुरु और अहिंसा प्ररूपक शास्त्र ही जीव का यथार्थ उपदेश दसकते हैं और इन तीनके रखने का सौभाग्य एकमात्र जैनधर्म्म को ही प्राप्त है—

(१०) समस्त दुःखों से उद्धार करने वाली जैनदीक्षा है यदि उसकी शक्ति न हो तो भी वैसा लक्ष्य रख अन्याय और अभक्ष्य का त्याग करके गृहस्थ मार्ग द्वारा क्रमशः स्वपर कल्याण करते रहना चाहिये ।

सत्रहवां पाठ ।

(धर्म प्रचार विषय)

प्रिय सज्जनों ! जब तक धर्म प्रचार नहीं होता तब तक लोग सदाचारी नहीं बन सकते अतएव सदाचार की प्रवृत्ति के लिये धर्म प्रचार की अत्यन्त आवश्यकता है ।

विद्वान् पुरुषों को योग्य है कि देश- कालज्ञ हो कर धर्म शिक्षाओं द्वारा प्राणियों को सदाचार में प्रवृत्ति कराते रहें यावन्मात्र संसार भर में अन्याय व्यभिचार की प्रवृत्ति दृष्टि गोचर हो रही है यह सब धर्म प्रचार के न होने के ही कारण से है जब धर्म प्रचार न्याय पूर्वक किया जावे तब उक्त प्रवृत्तियें अन्यतर हो जायें अपितु धर्म प्रचार के जिन २ साधनों की आवश्यकता है वे साधन देश कालानुसार प्रयुक्त करने से सफलता को प्राप्त हो जाते हैं ।

अब उन साधनों के विषय में यत्किंचित् लिखते हैं जैसे कि—"उपदेशक" सदाचार में रत धर्मात्मा पूर्ण

विद्वान् स्वमत स्वमत और पर-मत के पूर्ण वेत्ता तत्त्व दर्शी मृदु भाषी प्रत्येक प्राणी से प्रेम भाव से बर्ताव करने वाले आपत्तियां आने पर भी धर्म में दृढ़ जिस भाषा की सभा हो उसी भाषा में उपदेश करने वाले इत्यादि गुण युक्त उपदेशकों द्वारा जब धर्म प्रचार कर वाया जावे तब सफलता शीघ्र हो जाती है क्योंकि यद्यपि न्याय आदि शास्त्रों में उपदेशकों के अनेक गुण वर्णन किये गये हैं किन्तु उन गुणों में भी दो गुण मुख्यता के रखते हैं जैसे कि—"सत्य" और "शीक" पर दो गुण प्रत्येक उपदेशक में होने चाहियें यावत्काल उपदेशक वर्ग सत्यवादी और ब्रह्मचारी न होंगे तावत्काल प्रत्येक वर्ग का उपदेश श्रोताओं के चित्तों को आकर्षित नहीं कर सकता अतएव प्रत्येक उपदेशक का मुख्य अपने मतानुयायी बिनवाना लाने के पश्चात् इस काम में प्रवृत्त होना चाहिये।

आज कल जो पुष्कल उपदेश के होने पर भी यथेष्ट सफलता होती हुई दृष्टि गोचर नहीं होती उस का मुख्य कारण उपदेशकों के ज्ञान दर्शन और चारित्र की न्यूनता

ही है जब यह तीनों गुण उपदेशकों में ठीक हो जायें तब उपदेश की सफलता भी शीघ्र हो जायगी समाज को उपदेशकों के चारित्र पर अवश्य ध्यान देना चाहिये ।

पुस्तकें" द्वितीय साधन धर्म प्रचार का पुस्तकों द्वारा होता है बहुत से सज्जन जन पुस्तकों के पठन से धर्म प्राप्ति कर सकते हैं जैसे कि—जैन सूत्रों में भी लिखा है सूत्र रुचि श्रुत के अध्ययन करने से हो जाती है जब विधि पूर्वक श्रुत का अध्ययन व स्वाध्याय किया जायेगा तब भी धर्म की प्राप्ति हो सकती है जैसे जब श्री देवर्द्धि क्षमा श्रमण जी महाराज जी ने ९८० में सूत्रों को पत्रों पर आरूढ़ किया आज इसी का फल है कि जैन मत का अस्तित्व पाया जाता है और उन्हीं सूत्रों के आधार से जैन आचार्यों ने लाखों जैन ग्रन्थों का निर्माण किया जो कि आज कल प्रखर विद्वानों के मान मर्दन करने वाले हैं और जैन तत्त्व को भली प्रकार से प्रदर्शित कर रहे हैं अतएव देश कालानुसार पुस्तकों और धार्मिक समाचार पत्रों द्वारा भी धर्म प्रचार भली भांति हो जाता है किन्तु पुस्तकों और समाचार पत्रों के सम्पादक पूर्ण

विद्वान् समयज्ञ स्वमत और पर मत के पूर्ण वेत्ता तत्त्व दर्शी मृदु भाषी प्रत्येक प्राणी से मैत्र भाव से वर्ताव करने वाले आपत्ति आ जाने पर भी धर्म में दृढ़ जिस भाषा की सभा हो उसी भाषा में उपदेश करने वाले इत्यादि गुण युक्त उपदेशकों के द्वारा जब धर्म प्रचार कर वाया जाये तब सफलता शीघ्र हो जाती है क्योंकि यद्यपि न्याय आदि शास्त्रों में उपदेशकों के अनेक गुणों का वर्णन किये गये हैं किन्तु उन गुणों में भी दो गुण मुख्यता से रहते हैं जैसे कि—"सत्य" और "शौच" यह दो गुण प्रत्येक उपदेशक में होने चाहियें यावत्काल उपदेशक गण सत्यवादी और ब्रह्मचारी न होंगे तावत्काल पर्यन्त धर्म का उपदेश श्रोताओं के चित्तों को आकर्षित नहीं कर सकता अतएव प्रत्येक उपदेशक को प्रथम अपने मन को विजयाया करने के पश्चात् इस काम में शीघ्र हो जाना चाहिये ॥

आज कल जो पुस्तक उपदेश के होने पर भी यथेष्ट सफलता होती हुई दृष्टि गोचर नहीं होती उस का मूल कारण उपदेशकों के ज्ञान दर्शन और चारित्र की न्यूनता

ही है जब यह तीनों प्रकार उपदेशकों में ठीक हो जायें तब
उपदेश की सफलता भी ठीक हो जायगी समाज को
उपदेशकों के चारित्र पर अवश्य ध्यान देना चाहिये।

पुस्तकें द्वितीय साधन धर्म प्रचार का पुस्तकों द्वारा
होता है बहुत से सज्जन जैन पुस्तकों के पढ़ने से धर्म
प्राप्ति कर सकते हैं जैसे कि जैन सूत्रों में भी लिखा है
सूत्र रुचि श्रुत के अध्ययन करने से हो जाती है जब विधि
पूर्वक श्रुत का अध्ययन व स्वाध्याय किया जायगा तब भी
धर्म की प्राप्ति हो सकती है जैसे जब श्री देवर्द्धि क्षमा
श्रमण जी महाराज जी ने ९८० में सूत्रों को पत्रों पर
आरूढ़ किया आज उसी का फल है कि जैन मत का
अस्तित्व पाया जाता है और उन्हीं सूत्रों के आधार से
जैन आचार्यों ने लाखों जैन ग्रन्थों का निर्माण किया
जो कि आज कल प्रखर विद्वानों के और पढ़ने में आते
हैं और जैन तत्त्व को भली प्रकार से मालूम कर
रहे हैं अतएव देश कालानुसार पुस्तकों और
समाचार पत्रों द्वारा भी धर्म प्रचार भली भांति हो सकता
है किन्तु पुस्तकों और समाचार पत्रों के सम्पादक

विद्वान् सच्चरित्र वाले होने चाहियें क्योंकि पुस्तकों और समाचार पत्रों द्वारा जिस प्रकार धर्म प्रचार हो सकता है उसी प्रकार इन से अधर्म प्रचार भी हो सकता है इस लिये इन के सम्पादक विद्वान् और शुद्ध चरित्र वाले होने चाहियें साथ ही वे अपनी बुद्धि में पक्षपात को तिलाञ्जली देकर इस काम में यदि प्रवृत्त होंगे तब वे यथेष्ट काम की प्राप्ति कर सकते हैं यदि वे कदाचार में लगे रहेंगे तब उन का परिश्रम सदाचार के आन्तरिक कदाचार की प्रवृत्ति कर डालेगा अपितु यदि उक्त अवगुण वाले सम्पादकों द्वारा कोई लेख विद्यार्थियों के पढ़ने में आजावे तब विद्यार्थियों का योग्य है कि वे अपनी बुद्धि में हेय (त्यागने योग्य) ज्ञप (जानने योग्य) उपादेय (ग्रहण करने योग्य) पदार्थों का ध्यान रक्खें ता कि उन्हों पर उस लेख का प्रभाव ही न पड़सके अतएव सिद्ध हुआ कि जब तक पुस्तक और धर्मिक समाचार पत्र नहीं होंगे तब तक धर्मोन्नति के साधनों में न्यूनता अवश्य ही रहेगी इनके द्वारा यह न्यूनता दूर हो सकती है अपितु पुस्तकों का प्रचार देश भाषा में होने से लोगों को धर्म बोध शीघ्र हो जाता है

जैसे श्रीभगवत् की वाणी अर्द्ध मागधी भाषा में होने पर भी जो श्रोताओं की भाषा होती है वह उसी में परिणत हो जाती है इस कथन से स्वतः ही सिद्ध हो-गया कि जो श्रोताओं व देशियों की वाणी हो उसी में पुस्तकें और धार्मिक समाचार पत्रों से लाभ विशेष हो जाता है अतएव सिद्ध हुआ कि धर्म प्रचार के लिये शुद्ध पुस्तकों और धार्मिक समाचार पत्रों की अत्यन्त आवश्यकता है इनके न होने से धर्म प्रचार में बाधा अत्यन्त हो रही है।

व्यवसाय सभा, धर्म प्रचार के लिये प्रसिद्ध नगरों में पुस्तकों की अत्यन्त आवश्यकता है क्योंकि जब पुस्तक संग्रह ही नहीं है तब जिज्ञासु जन किस प्रकार से लाभ उठा सकते हैं अतः यत्न और विनय पूर्वक शास्त्रों का संग्रह वा अन्य पुस्तकों का संग्रह जब तक नहीं होता तबतक धर्म प्रचार में विघ्न उपस्थित होते रहते हैं बहुत से मुमुक्षु जन इस प्रकार के भी हैं जो निज व्यय से पुस्तक मंगवाने में प्रमाद करते है वा असमर्थ हैं तथा अपने मत से भिन्न मतों की पुस्तकें मगवाने में उनके

विद्वान् सच्चरित्र वाले होने चाहियें क्योंकि पुस्तकों और समाचार पत्रों द्वारा जिस प्रकार धर्म प्रचार हो सकता है उसी प्रकार इन से अधर्म प्रचार भी हो सकता है इस लिये इन के सम्पादक विद्वान् और शुद्ध चरित्र वाले होने चाहियें साथ ही वे अपनी बुद्धि में पक्षपात को तिलाञ्जली देकर इस कार्य में यदि प्रवृत्त होंगे तब वे यथेष्ट लाभ की प्राप्ति कर सकते हैं यदि वे कदाचार में लगे रहेंगे तब उन का परिश्रम सदाचार के आतिरिक्त कदाचार की प्रवृत्ति कर डालेगा अपितु यदि उक्त अवगुण वाले सम्पादकों द्वारा कोई लेख विद्यार्थियों के पढ़ने में आजावे तब विद्यार्थियों का योग्य है कि वे अपनी बुद्धि में हेय (त्यागने योग्य) ज्ञय (जानने योग्य) उपादेय (ग्रहण करने योग्य) पदार्थों का ध्यान रक्खें जो कि उन्हों पर उस लेख का प्रभाव ही न पड़सके अतएव सिद्ध हुआ कि जब तक पुस्तक और धार्मिक समाचार पत्र नहीं होंगे तब तक धर्मोन्नति के साधनों में न्यूनता अवश्य ही रहेगी इनके द्वारा वह न्यूनता दूर हो सकती है अपितु पुस्तकों का प्रचार देश भाषा में होने से लोगों को धर्म बोध शीघ्र हो जाता है

जैसे श्रीभगवत् की वाणी अर्द्ध मागधी भाषा में होने पर भी जो श्रोताओं की भाषा होती है वह उसी में परिणत हो जाती है इस कथन से स्वतः ही सिद्ध हो-गया कि जो श्रोताओं व देशियों की वाणी हो उसी में पुस्तकें और धार्मिक समाचार पत्रों से लाभ विशेष हो जाता है अतएव सिद्ध हुआ कि धर्म प्रचार के लिये शुद्ध पुस्तकों और धार्मिक समाचार पत्रों की अत्यन्त आवश्यकता है इनके न होने से धर्म प्रचार में बाधा अत्यन्त हो रही है।

व्यवसाय सभा, धर्म प्रचार के लिये प्रसिद्ध नगरों में पुस्तकों की अत्यन्त आवश्यकता है क्योंकि जब पुस्तक संग्रह ही नहीं है तब जिज्ञासु जन किस प्रकार से लाभ उठा सकते हैं अतः यत्न और विनय पूर्वक शास्त्रों का संग्रह वा अन्य पुस्तकों का संग्रह जब तक नहीं होता तबतक धर्म प्रचार में विघ्न उपस्थित होते रहते हैं बहुत से मुमुक्षु जन इस प्रकार के भी हैं जो निज व्यय से पुस्तक मंगवाने में प्रमाद करते हैं वा असमर्थ हैं तथा अपने मत से भिन्न मतों की पुस्तकें मंगवाने में इनके

मन में संकोच रहता है किन्तु जब उनको किसी पुस्तकालय का सहारा मिलजाय तो वे पठन करने में प्रमाद नहीं करते उनमें बहुत से भद्र जन ऐसे भी होते हैं जो उन सूत्रों वा ग्रन्थों का पढ़कर धर्म से परिचित हो जाते हैं तथा यदि किसी कारण से किसी उपदेशक का शास्त्रार्थ नियत हो जाय तब उस समय उस पुस्तकालय से पर्याप्त सहायता मिल सकती है स्वाध्याय प्रेमियों को तो पुस्तकालय एक स्वर्गीय भूमि प्रतीत होती है किन्तु इसका प्रबन्ध ऐसे सुयोग्य विद्वान् पुरुषों द्वारा होना चाहिये जो कि इस कार्य के पूर्ण वेत्ता हों शास्त्रोद्धार से जीव कर्मों की निर्जरा करके मोक्ष तक भी पहुंच सकता है अतएव सिद्ध हुआ कि धर्म प्रचार के लिये पुस्तकालय भी एक मुख्य साधन है।

"व्याख्यान" अपना में प्रभावशाली व्याख्यानों का होना भी धर्म प्रचार का मुख्यांग है क्योंकि जो व्याख्यान शैली जिन स्थानों में प्रचलित हो रही है उसमें नित्य के श्रोतागण ही लाभ उठा सकते हैं किन्तु जो पुरुष उस स्थान से अनभिज्ञ हैं वा किसी कारण से उस स्थान

में आना नहीं चाहते वे धर्म लाभ नहीं उठा सकते इस लिये सब लोगों में धर्म प्रचार हो इस आशा से, प्रेरित हो कर व्याख्यान का प्रबन्ध ऐसे स्थान में होना चाहिये जहां पर बिना रोक टोक के जनता आ सके और उन में धर्म प्रचार भली प्रकार हो सके अपितु साधुओं वा उपदेशकों को ऐसे ग्रामों वा नगरों में जाना योग्य है जहां पर धर्म प्रचार की अत्यन्त आवश्यकता हो क्योंकि वर्तमानकाल में ऐसा देखा जाता है कि श्रोता-गणों की उपदेशक जनही प्रायः प्रतीक्षा करते रहते हैं किन्तु श्रोता गण उपदेशकों की प्रतीक्षा विशेष नहीं करते जब ऐसे क्षेत्रों में धर्म प्रचार करना चाहें तो यथेष्ट फल की प्राप्ति होनी दुसाध्य प्रतीत होती है अतएव जिन क्षेत्रों में धर्म प्रचार की आवश्यकता हो उन्हीं क्षेत्रों में धर्म प्रचार के लिये विशेष प्रबन्ध करना चाहिये तब ही धर्मोन्नति हो सकती है।

"पाठशालाएं" धर्म प्रचार के लिये धार्मिक संस्थाओं की अत्यन्त आवश्यकता है क्योंकि जबतक बच्चों को धार्मिक शिक्षा नहीं दी जाती तबतक वे धर्म से अपरि-

मन में संकोच रहता है किन्तु जब उनको किसी पुस्तकालय का सहारा मिलजाय तो वे पठन करने में प्रमाद नहीं करते उनमें बहुत से भद्र जन ऐसे भी होते हैं जो इन सूत्रों वा ग्रन्थों का पढ़कर धर्म से परिचित हो जाते हैं तथा यदि किसी कारण से किसी उपदेशक का शास्त्रार्थ नियत हो जाय तब उस समय उस पुस्तकालय से पर्याप्त सहायता मिल सकती है स्वाध्याय प्रेमियों को तो पुस्तकालय एक स्वर्गीय भूमि प्रतीत होती है किन्तु इसका प्रबन्ध ऐसे सुयोग्य विद्वान् पुरुषों द्वारा होना चाहिये जो कि इस कार्य के पूर्ण वेत्ता हों शास्त्रोद्धार से जीव कर्मों की निर्जरा करके मोक्ष तक भी पहुंच सकता है अतएव सिद्ध हुआ कि धर्म प्रचार के लिए पुस्तकालय भी एक मुख्य साधन है।

"व्याख्यान" जनता में प्रभावशाली व्याख्यानों का होना भी धर्म प्रचार का सुप्रयोग है क्योंकि जो व्याख्यान शैली जिन स्थानों में प्रचलित हो रही है उसमें निस्य के श्रोतागण ही लाभ उठा सकते हैं किन्तु जो पुरुष उस स्थान से अनभिज्ञ हैं या किसी कारण से उस स्थान

में आना नहीं चाहते वे धर्म लाभ नहीं उठा सकते इस लिये सब लोगों में धर्म प्रचार हो इस आशा से, प्रेरित हो कर व्याख्यान का प्रबन्ध ऐसे स्थान में होना चाहिये जहां पर विना रोक टोक के जनता आ सके और उन में धर्म प्रचार भली प्रकार हो सके अपितु साधुओं वा उपदेशकों को ऐसे ग्रामों वा नगरों में जाना योग्य है जहां पर धर्म प्रचार की अत्यन्त आवश्यकता हो क्योंकि वर्तमानकाल में ऐसा देखा जाता है कि श्रोता-गणों की उपदेशक जनही प्रायः प्रतीचा करते रहते हैं किन्तु श्रोता गण उपदेशकों की प्रतिचा विशेष नहीं करते जब ऐसे क्षेत्रों में धर्म प्रचार करना चाहें तो यथेष्ट फल की प्राप्ति होनी दुसाध्य प्रतीत होती है अतएव जिन क्षेत्रों में धर्म प्रचार की आवश्यकता हो उन्हीं क्षेत्रों में धर्म प्रचार के लिये विशेष प्रबन्ध करना चाहिये तब ही धर्मोन्नति हो सकती है।

"पाठशालाएं" धर्म प्रचार के लिये धार्मिक संस्थाओं की अत्यन्त आवश्यकता है क्योंकि जबतक बच्चों को धार्मिक शिक्षा नहीं दी जाती तबतक वे धर्म से अपरि-

चित ही रहते हैं इतना ही नहीं किन्तु वे समय पाकर नास्तिकता में फंस जाते हैं इसलिये बच्चों के कोमल हृदयों पर पहले से ही धर्म शिक्षाओं के बीज अंकुर उत्पन्न करदेने चाहिये जो माता पिता अपने प्रिय पुत्र पुत्रियों को धर्म शिक्षाओं से वंचित रखते हैं वे वास्तविक में अपनी संतान के हितैषी नहीं हैं न वे माता पिता कहलाने के योग्य ही हैं क्योंकि उन्होंने अपने प्रिय पुत्र और पुत्रियों के जीवन को उच्च कोटि के बनाने का प्रयत्न नहीं किया जिससे वे अपने जीवन में उन्नति के फल देखने में असमर्थ ही रहजाते हैं और धर्म शिक्षा के न होने के कारण से ही उनकी प्यारी संतान जूआ मांस मदिरा शिकार परस्त्री संग वेश्या गमन चोरी आदि कुकर्मों में फंसी हुई जब वे देखते हैं तब परम दुःखित होते हैं और संतान भी अपने माता पिता के साथ असभ्य बर्ताव करने लग जाती है जिस व्यवहार का योग देख भी नहीं सकते यह सब धार्मिक शिक्षा न होने के ही हेतु हैं अतएव सिद्ध हुआ कि धर्म प्रचार के लिये धार्मिक संस्थाओं की अत्यन्त आवश्यकता है ।

भारी काम यह है कि–प्रत्येक मनुष्य प्रत्येक पदार्थ के गुण और उस में स्थित तत्त्वों को जान कर उस पदार्थ की सुखकारिणी योजना को दूसरे पदार्थों के साथ कर सकता है ।

गुण के अनुसार खुराक के दो भेद हैं–अर्थात् पुष्टिकारक और गर्मी लानेवाली, इन में से जो खुराक शरीर के नष्ट हुए परमाणुओं की कमी को पूरा करती है उस को पुष्टिकारक कहते हैं । तथा जो खुराक शरीर की गर्मी को ठीक रीति से कायम रखती है उस को गर्मी लानेवाली कहते हैं, यद्यपि पुष्टिकारक खुराक के पदार्थ बहुत से हैं तथापि उन का प्रत्येक का भीतरी पौष्टिक तत्त्वों का गुण एक दूसरे से मिलता हुआ ही होता है, रसायनिक प्रयोगके वेत्ता विद्वानों ने यह निश्चय किया है कि–पौष्टिक खुराक में नाइट्रोजन नामक एक विशेष तत्त्व है और गर्मी लानेवाली खुराक में कार्बन नामक एक विशेष तत्त्व है, गर्मी लानेवाली खुराक से शरीर की गर्मी कायम रहती है अर्थात् वायु तथा ऋतु आदि का परिवर्त्तन होने पर भी उक्त खुराक से शरीर की गर्मी का परिवर्त्तन नहीं होताहै अर्थात् गर्मी प्रायः समान ही रहती है और शरीर में गर्मी के ठीक रीति से कायम रहने से ही जीवन के सब कार्यों का निर्वाह होता है, यदि शरीर में ठीक रीति से गर्मी कायम न रहे तो जीवन का एक कार्य भी सिद्ध न हो सके, देखो ! बाहरी हवा में चाहें जैसा परिवर्त्तन होजावे तथापि गर्मी लानेवाली खुराक के लेने से शरीर की गर्मी बराबर बनी रहती है, ठंढे देशों में (जहां अधिक शीत के कारण पानी का बर्फ जम जाता है और पारेकी घड़ी में पारा ३२ डिग्री से भी नीचे चला जाता है वहां) और गर्म देशों में (जहां अधिक गर्मी के कारण उक्त घड़ी का पारा १२५ डिग्री से भी ऊँचा चढ़ जाता है वहां) भी अंग की गर्मी ९० से १०० डिग्री तक सदा रहा करती है ।

शरीर में गर्मी को कायम रखनेवाली खुराक में मुख्यतया कार्बन और हाइड्रोजन नामक दो तत्त्व हैं और वे दोनों तत्त्व प्राणवायु (आक्सिजन) के साथ रसायनिक संयोग के द्वारा मिलते हैं अर्थात् गर्मी उत्पन्न होती है तथा यह संयोग प्रत्येक पलमें जारी रहता है, परन्तु जब किसी व्याधि के होने पर इस संयोग में फर्क आ जाता है तब शरीर की गर्मी भी न्यूनाधिक हो जाती है ।

पौष्टिक खुराक के अधिक खाने से लोहू में स्वाभाविक शक्ति न रहकर विशेष शक्ति उत्पन्न हो जाती है और ऐसा होने से उस (लोहू) का जमाव कलेजे और मगज़ आदि अवयवों में बहुत हो जाता है इस लिये वे सब अवयव मोटे हो जाते हैं इसलिये पुष्टिकारक खुराक को अधिक खानेवाले लोगों को चाहिये कि उस पुष्टिकारक खुराक के

१–लोहू का अधिक जमाव होने से कभी २ कलेजे का रोग हो जाता है और कभी २ मगज़ पर भी लोहू का जोर चढ़ जाता है इस से अधिक पुष्टिकारक खुराक के खानेवाले लोगों को बहुत भय में गिरना पड़ता है ॥

अनुकूल ही शरीर को श्रम देवें क्योंकि ऐसा करने से अधिक हानि का संभव नहीं रहता है, परन्तु यह भी स्मरण रखना चाहिये कि–सदा एक ही प्रकार की खुराक को खाते रहना भी अति हानिकारक होता है।

खुराक ऐसी खानी चाहिये कि–जिस में शरीर के पोषण के सव तत्व यथायोग्य मौजूद हो, अपने लोगों की खुराक सामान्य रीति से इन सव तत्वो से युक्त होती है क्योंकि शुद्ध अन्न और दाल आदि पदार्थों में शरीर के पोषण के आवश्यक तत्व मौजूद रहते हैं, परन्तु प्राणिजन्य खुराक अर्थात् घी मक्खन और मास आदि पदार्थों में आटे के सत्ववाला तत्व अर्थात् गर्मी को कायम रखनेवाला तत्व विलकुल नही होता है, हां इस प्रकार की (प्राणिजन्य) खुराक में केवल दूध ही सव तत्वो से युक्त है, इसी लिये अकेले दूध से भी वहुत दिनों तक मनुष्य का निर्वाह होसकता है।

घी में केवल चरवीवाला तत्व है, परन्तु उस में पौष्टिक आटे के सत्ववाला तथा क्षार का तत्व बिलकुल नही है, चॉवलों में वहुत सा भाग आटे के सत्वका है और पौष्टिक-तत्व प्रति सैकड़े पाच रुपये भर ही है, इसी लिये अपने लोगों में भात के साथ दाल तथा घी खाने का आम (सामान्यतया) प्रचार[1] है।

वालकों के लिये चरवीवाले तत्व से युक्त तथा अति पौष्टिक तत्व से युक्त खुराक उपयोगी नही है, किन्तु उन के लिये तो चॉवल दूध और मिश्री आदि की खुराक बहुत अनुकूल हो सकती है, क्योंकि–इन सव पदार्थों में पौष्टिक तत्व बहुत कम है और गर्मी लानेवाला तत्व विशेष है और वालकों को ऐसी ही खुराक की आवश्यकता है, गेहूँ में चरबी का भाग बहुत कम हैं इस लिये गेहूँ की रोटी में अच्छी तरह घी डाल कर खाना चाहिये, वाजरी तथा ज्वार में यद्यपि चरबी का भाग आवश्यकता के अनुसार मौजूद है तथा पौष्टिक तत्व गेहूँ की अपेक्षा कम है तथापि इन दोनो पदार्थों से पोषण का काम चल सकता है, अन्नों में उड़द सब से अधिक पौष्टिक है इसलिये शीत ऋतु में पौष्टिक तत्ववाले उड़द के आटे के साथ गर्मी देनेवाला घी तथा मिश्री का योग कर खाना बहुत गुणकारक है, गर्म देश में ताज़ी शाक तरकारी फायदा करती है, अपना देश गर्म है इस लिये यहा के निवासियों को ताज़ी वनस्पति फायदा करती है, इसी कारण से शीत ऋतु की अपेक्षा उष्ण ऋतु में उस (ताज़ी वनस्पति) के विशेष सेवन करने की आवश्यकता होती है, चरवीवाले और चिकनासवाले भोजन में नींबू की खटाई और थोड़ा बहुत मसाला अवश्य डालना चाहिये।

१–यह बहुत ही उत्तम प्रचार है क्योंकि–दाल से पौष्टिक तत्व पूरा हो जाता है और दाल मे नमक के होने से चॉवलों मे क्षार की जो न्यूनता है वह भी पूरी हो जाती है और घी से चरवीवाला तत्व भी मिल सकता है॥

यद्यपि देश, काल, समाज, श्रम, शरीर की रचना और अवस्था आदि के अनेक भेदों से खुराक के भी अनेक भेद हो सकते हैं तथापि इन सब का वर्णन करने में ग्रन्थविस्तार का भय विचार कर उनका वर्णन नहीं करते हैं किन्तु मुख्यतया यही समझना चाहिये कि खुराक का भेद केवल एक ही है अर्थात् जिस से भूख और प्यास की निवृत्ति हो उसे खुराक कहते हैं, उस खुराक की उत्पत्ति के मुख्य दो हेतु हैं—स्थावर और जङ्गम, स्थावरों में तमाम वनस्पति और जङ्गम में प्राणिजन्य दूध, दही, मक्खन और छाछ (मठ्ठा) आदि खुराक जान लेनी चाहिये ।

जैनसूत्रों में उस आहार वा खुराक के चार भेद लिखे हैं—अशन, पान, खादिम और स्वादिम, इनमें से खाने के पदार्थ अशन, पीने के पदार्थ पान, चाब कर खाने के पदार्थ खादिम और चाट कर खाने के पदार्थ स्वादिम कहलाते हैं ।

यद्यपि आहार के बहुत से प्रकार अर्थात् भेद हैं तथापि गुणों के अनुसार उक्त आहार के मुख्य आठ भेद हैं—भारी, चिकना, ठंढा, कोमल, हलका, रूक्ष (रूखा), गर्म और तीक्ष्ण (तेज), इन में से पहिले चार गुणोंवाला आहार शीतवीर्य है और पिछले चार गुणोंवाला आहार उष्णवीर्य है ॥

आहार में स्थित जो रस है उसके छः भेद हैं—मधुर (मीठा), अम्ल (खट्टा), लवण (खारा), कटु (तीखा), तिक्त (कडुआ) और कषाय (कषैला), इन छः रसों के प्रमाण से आहार के ३ भेद हैं—पथ्य, अपथ्य और पथ्यापथ्य, इन में से हितकारक आहार को पथ्य, अहितकारक (हानिकारक) को अपथ्य और हित तथा अहित (दोनों) के करने वाले आहार को पथ्यापथ्य कहते हैं, इन तीनों प्रकारों के आहार का वर्णन विस्तार पूर्वक आगे किया जावेगा[1] ।

इस प्रकार आहार के पदार्थों के अनेक सूक्ष्म भेद हैं परन्तु सर्व साधारण के लिये वे विशेष उपयोगी नहीं हैं, इस लिये सूक्ष्म भेदों का विवेचन कर उनका वर्णन करना अनावश्यक है, हां वैद्यक छः रस और पथ्यापथ्य पदार्थ सम्बन्धी आवश्यक विषयका ज्ञान लेना सर्व साधारण के लिये हितकारक है, क्योंकि जिस खुराक को हम सब खाते पीते हैं उसके जुदे २ पदार्थों में जुदा २ रस होने से कौन २ सा रस क्या २ गुण रखता है, क्या २ क्रिया करता है और मात्रा से अधिक खाने से किस २ विकार को उत्पन्न करता है और हमारी खुराक के पदार्थों में कौन २ से पदार्थ पथ्य हैं तथा कौन २ से अपथ्य हैं, इन सब बातों का जानना सर्व साधारण को आवश्यक है, इसलिये इनके विषय में विस्तारपूर्वक वर्णन किया जाता है—

१–देखो । पथ्यापथ्य वर्णननामक छठा प्रकरण ॥

छः रस ॥

पहिले कह चुके है कि-आहार में स्थित जो रस है उस के छः भेद है-अर्थात् मीठा, खट्टा, खारा, तीखा, कडुआ और कषैला, इनकी उत्पत्ति का क्रम इस प्रकार है कि-पृथ्वी तथा पानी के गुण की अधिकता से मीठा रस उत्पन्न होता है, पृथ्वी तथा अग्नि के गुण की अधिकता से खट्टा रस उत्पन्न होता है, पानी तथा अग्नि के गुण की अधिकता से खारा रस उत्पन्न होता है, वायु तथा अग्नि के गुण की अधिकता से तीखा रस उत्पन्न होता है, वायु तथा आकाश के गुण की अधिकता से कडुआ रस उत्पन्न होता है और पृथ्वी तथा वायु के गुण की अधिकता से कषैला रस उत्पन्न होता है ॥

छओं रसों के मिश्रित गुण ॥

मीठा खट्टा और खारा, ये तीनों रस वातनाशक है ॥
मीठा कडुआ और कषैला, ये तीनों रस पित्तनाशक हैं ॥
तीखा कडुआ और कषैला, ये तीनों रस कफनाशक है ॥
कषैला रस वायु के समान गुण और लक्षणवाला है ॥
तीखा रस पित्त के समान गुण और लक्षणवाला है ॥
मीठा रस कफ के समान गुण और लक्षणवाला है ॥

छओं रसों के पृथक् २ गुण ॥

मीठा रस—लोहू, मांस, मेद, अस्थि (हाड़) मज्जा, ओज, वीर्य तथा स्तनों के दूध को बढ़ाताहै, ऑख के लिये हितकारी है, बालों तथा वर्ण को स्वच्छ करता है, बल-वर्धक है, टूटे हुए हाड़ों को जोड़ता है, बालक वृद्ध तथा जखम से क्षीण हुओं के लिये हितकारी है, तृषा मूर्च्छा तथा दाह को शान्त करता है सब इन्द्रियों को प्रसन्न करता है और कृमि तथा कफ को बढाता है ।

इस के अति सेवन से यह-खासी, श्वास, आलस्य, वमन, मुखमाधुर्य (मुख की मिठास), कण्ठविकार, कृमिरोग, कण्ठमाला, अर्बुद, श्लीपद, बस्तिरोग (मधुप्रमेह आदि मूत्र के रोग) तथा अभिष्यन्द आदि रोगों को उत्पन्न करता है ॥

खट्टा रस—आहार, वातादि दोष, शोथ तथा आम को पचाता है, वादी का नाश करता है, वायु मल तथा मूत्र को छुड़ाता है, पेटमें अग्निको करता है, लेप करने से ठंढक करता है तथा हृदयको हितकारी है ।

१-दोहा-मधुर अम्ल अरु लवण पुनि, कटुक कषैला जोय ॥
और तिक्त जग कहत है, षट् रस जानो सोय ॥ १ ॥

इस के अति सेवन से यह–दन्तहर्ष (दाँतों का अकड़ जाना), नेत्रमन्थ (आँखोंका मिचना), रोमहर्ष (रोंगटों का खड़ा होना), कफ का नाश तथा शरीरशैथिल्य (शरीर का ढीला होना) को करता है, एवं कण्ठ छाती तथा हृदय में दाह को करता है ॥

खारा रस—मलशुद्धि को करता है, खराब व्रण (गुमड़े) को साफ करता है, खुराक को पचाता है, शरीर में शिथिलता करता है, गर्मी करता तथा अवयवों को कोमल (मुलायम) रखता है ।

इस के अति सेवन से यह खुजली, कोढ़, शोथ तथा वेसरको करता है, चमड़ी के रंग को बिगाड़ता है, पुरुषार्थ का नाश करता है, आँख आदि इन्द्रियों के व्यवहार को मन्द करता है, मुखपाक (मुँह का पकजाना) को करता है, नेत्रव्यथा, रक्तपित्त, वातरक्त तथा खट्टी डकार आदि दुष्ट रोगों को उत्पन्न करता है ॥

तीखा रस—अग्नि दीपन, पाचन तथा मूत्र और मल का शोधक (शुद्ध करने वाला) है, शरीर की स्थूलता (मोटापन),आलस्य, कफ, कृमि, विषजन्य (जहर से पैदा होनेवाले) रोग, कोढ़ तथा खुजली आदि रोगों को नष्ट करता है, सांधों को ढीला करता है, उत्साह को कम करता है तथा स्तन का दूध,वीर्य और मेद इन का नाशक है ।

इस के अति सेवन से यह–भ्रम, मद, कण्ठशोष (गले का सूखना), तालुशोष (तालु का सूखना), ओष्ठशोष (ओठों का सूखना), शरीर में गर्मी, बलक्षय, कम्प और पीड़ा आदि रोगों को उत्पन्न करता है तथा हाथ पैर और पीठ में वादी को करके शूल को उत्पन्न करता है ॥

कडुआ रस—खुजली, दाज, पित्त, तृषा, मूर्च्छा तथा ज्वर आदि रोगों को शान्त करता है, स्तन के दूधको ठीक रखता है तथा मल, मूत्र, मेद, चरबी और व्रणविकार (पीप) आदि को सुखाता है ।

इस के अति सेवन से यह–गर्दन की नसों का अकड़ना, नाड़ियों का खिंचना, शरीर में व्यथा का होना, भ्रम का होना, शरीर का टूटना, कम्पन का होना तथा भूख में रुचि का कम होना आदि विकारों को करता है ॥

कषैला रस—दस्त को रोकता है, शरीर के गात्रों को दृढ़ करता है, व्रण तथा प्रमेह आदि का शोधन (शुद्धि) करता है, व्रण आदि में प्रवेश कर उस के क्लेद को निकम्मा करता है तथा क्लेद अर्थात् गाढ़े पदार्थ पके हुए पीपका शोषण करता है ।

इस के अति सेवन से यह–हृदय पीड़ा, मुखशोष (मुखका सूखना), आध्मान (अफरा), नसों का अकड़ना, शरीर स्फुरण (शरीर का फड़कना), कम्पन तथा शरीरका संकोच आदि विकारोंको करता है ॥

यद्यपि खाने के पदार्थों में प्रायः छओं रसोंका प्रतिदिन उपयोग होता है तथापि कडुआ और कषैला रस खानेके पदार्थों में स्पष्टतया (साफ तौर से) देखने में नहीं आता है, क्योंकि-ये दोनों रस बहुत से पदार्थों में अव्यक्त (छिपे हुए) रहते है, शेष चार रस (मीठा, खट्टा, खारा और तीखा) प्रतिदिन विशेष उपयोग में आते है ॥

यह चतुर्थ अध्यायका आहारवर्णन नामक चतुर्थ प्रकरण समाप्त हुआ ॥

पाँचवां प्रकरण—वैद्यक भाग निघण्टु ॥

धान्यवर्ग ॥

चावल—मधुर, अग्निदीपक, बलवर्धक, कान्तिकर, धातुवर्धक, त्रिदोषहर और पेशाव लानेवाला है ॥

उपयोग—यद्यपि चावलों की बहुत सी जातियां है तथापि सामान्य रीति से कमोद के चावल स्वाद में उत्तम होते हैं और उस में भी दाऊदखानी चावल बहुत ही तारीफ के लायक हैं, गुण में सव चावलों में सोंठी चावल उत्तम होते है, परन्तु वे बहुत लाल तथा मोटे होने से काम में बहुत नहीं लाये जाते हैं, प्रायः देखा गया है कि-शौकीन लोग खाने में भी गुणको न देख कर शौक को ही पसन्द करते हैं, बस चावलों के विषय में भी यही हाल है ।

चावलों में पौष्टिक और चरबीवाला अर्थात् चिकना तत्व बहुत ही कम है, इस लिये चावल पचने में बहुत ही हलका है, इसी लिये बालकों और रोगियों के लिये चावलों की खुराक विशेष अनुकूल होती है ।

साबूदाना यद्यपि चावलों की जाति में नही है परन्तु गुण में चावलों से भी हलका है, इसलिये छोटे बालकों और रोगियों को साबूदाने की ही खुराक प्रायः दी जाती है ।

यद्यपि डाक्टर लोग कई समयों में चावलों की खुराक का निषेध (मनाई) करते है परन्तु उसका कारण यही मालूम होता है कि-हमारे यहा के लोग चावलों को ठीक रीति से पकाना नहीं जानते है, क्योंकि प्रायः देखा जाता है कि बहुतसे लोग चावलों को अधिक आच देकर जल्दी ही उतार लेते है, ऐसा करने से चावल ठीक तौर मे नहीं पक

१—स्मरण रहना चाहिये कि—यद्यपि ये सव रस प्रतिदिन भोजन में उपयोग मे आते हैं परन्तु इनके अत्यन्त सेवन से तो हानि ही होती है, जिस को पाठक गण ऊपर के लेखसे जान सकते हैं, देखो ! इन सव रसों में मीठा रस यद्यपि विशेष उपयोगी है तथापि अत्यन्त सेवन से वह भी बहुत हानि करता है, इसलिये इन के अत्यन्त सेवन से सदैव वचना चाहिये ॥

२—इन को गुजरात मे वरीना चोखा भी कहते है ॥

सक्ते हैं और इस प्रकार पके हुए चावल हानि ही करते हैं, चावलों के पकाने की सर्वोत्तम रीति यह है कि—पतीली में पहिले अधिक पानी चढ़ाया जावे, जब पानी गर्म होजावे तब उस में चावलों को धोकर डाल दिया जावे तथा धीमी २ आंच जलाई जावे, जब चावलों के दो कण सीझ जावें तब पतीली के मुँह पर कपड़ा बाँध कर पतीलीको औंधा कर (उलट कर) सब मांड निकाल दिया जावे, पीछे उस में थोड़ा सा घी डाल कर पतीली को अंगारों पर रख कर ढक दिया जावे, थोड़ी देर में ही भाफ के द्वारा तीसरा कण भी सीझ जायगा तथा चावल फूल कर भात तैयार हो जावेगा, इस के ठीक २ पक जाने की परीक्षा यह है कि—थाली में डालते समय ठनाठन आवाज करने के बदले फूल के समान हलके होकर गिरें और हाथ से मसलने पर मक्खन के समान मुलायम मालूम हों तो जान लेना चाहिये कि चावल ठीक पक गये हैं, इस के सिवाय यह भी परीक्षा है कि—यदि चावल खाते समय जितने दबा २ कर खाने पड़ें उतना ही उनको कच्चा समझना चाहिये ।

बहुत से लोग चावलों को बहुत बादी करनेवाला समझ कर उन के खाने से डरते हैं परन्तु जितना वे लोग चावलों को बादी करनेवाले समझते हैं चावल उतने बादी करने वाले नहीं हैं, हां बेशक यह बात ठीक है कि—घटिया चावल कुछ बादी करनेवाले होते हैं किन्तु दूसरे चावल तो पकने की कमी के कारण विशेष बादी करते हैं, सो यह दोष सब ही अन्नों में है अर्थात् ठीक रीति से न पके हुए सब ही अन्न बादी करते हैं ।

नये चावलों की अपेक्षा दो एक वर्ष के पुराने चावल विशेष गुणकारी होते हैं तथा दाल के साथ चावलों के खानेसे उन का वायु गुण कम हो जाता है और पौष्टिक गुण बढ़ जाता है, चावल और दाल को अलग २ पका कर पीछे साथ मिला कर खाने से उन का जल्दी पाचन हो जाता है किन्तु दोनों को मिलाकर पकाने से खिचड़ी होती है वह कुछ भारी हो जाती है, खिचड़ी प्राय चावलों के साथ मूंग और अरहर (तुर) की दाल मिलाकर बनाई जाती है ॥

गेहूँ—पुष्टिकारक, धातुवर्धक, बलवर्धक, मधुर, ठंढा, भारी, रुचिकर, टूटे हुए हाड़ों को जोड़नेवाला, व्रण को मिटानेवाला तथा दस्त को साफ लानेवाला है ॥

उपयोग—गेहूँ की मुख्य दो जाति हैं—काठा और बाजिया, इन में पुनः दो भेद हैं—श्वेत और लाल, श्वेत गेहूँ से लाल अधिक पुष्ट होता है, गेहूँ में पौष्टिक तथा गर्मी लानेवाला तत्त्व मौजूद है, इस लिये दूसरे अन्नों की अपेक्षा यह विशेष उपयोगी और उत्तम पोषण की एक अपूर्व वस्तु है ।

गेहूँ में खार तथा चरबी का भाग बहुत कम है इसी कारण गेहूँ के आटे में नमक डाल कर रोटी बनाई जाती है, ग्रन्थानुसार भी मक्खन और मलाई आदि पदार्थों के साथ

गेहूँ का यथायोग्य खाना अधिक लाभदायक है, गेहूँ की मैदा पचने में भारी होती है इसलिये मन्दाग्निवाले लोगों को मैदे की रोटी तथा पूडी नहीं खानी चाहिये, गेहूँ के आटे से बहुत से पदार्थ बनते है, गेहूँ की राव तथा पतली घाट पचने में हलकी होती है अर्थात् घाट की अपेक्षा रोटी भारी होती है, एवं पूडी, हलुआ (शीरा), लड्डू, मगध और गुलपपडी, इन पदार्थों में पूर्व २ की अपेक्षा उत्तरोत्तर पचने में भारी होते है, घी के साथ खाने से गेहूँ वादी नही करता है ॥

बाजरी—गर्म, रूक्ष, पुष्ट, हृदय को हितकारी, स्त्रियो के काम को बढ़ानेवाली, पचने में भारी और वीर्य को हानि पहुँचानेवाली है ॥

उपयोग—बाजरी गर्म होने से पित्त को खराब करती है, इसलिये पित्त प्रकृतिवाले लोगो को इससे बचना चाहिये, रूक्ष होने से यह कुछ वायु को भी करती है, जिन २ देशों में बाजरी की उत्पत्ति अधिक होती है तथा दूसरे अन्न कम पैदा होते हैं वहा के लोगों को नित्य के अभ्यास से बाजरी ही पथ्य हो जाती है ।

यद्यपि पोषण का तत्त्व बाजरी में भी गेहूँ के ही लगभग है तथापि गेहूँ की अपेक्षा चरबी का तत्व इस में विशेष है इस लिये घी के विना इस का खाना हानि करता है ॥

ज्वार—ठढी, मीठी, हलकी, रूक्ष और पुष्ट है ॥

उपयोग—ज्वार में बाजरी के समान ही पोषण का तत्व है तथा चरबी का भाग भी बाजरी के ही समान है, ज्वार करड़ी और रूक्ष है इस लिये वह वायु करती है परन्तु नित्य का अभ्यास होने से मरहठे, कुणबी तथा गुजरात और काठियावाड़ आदि देशों के निवासी गरीब लोग प्रायः ज्वार और अरहर (तूर) की दाल से ही अपना निर्वाह करते है ॥

मूंग—ठंढा, ग्राही, हलका, स्वादिष्ट, कफ पित्त को मिटानेवाला और आखों को हितकारी है परन्तु कुछ वायु करता है ॥

उपयोग—दाल की सब जातियों में मूग की दाल उत्तम होती है, क्योंकि मूंग की दाल तथा उस का जल प्रायः सब ही रोगों में पथ्य है और दूध की गर्ज (आवश्यकता) को पूर्ण करता है किन्तु विचार कर देखा जावे तो यह दूध की अपेक्षा भी अधिक गुण-

---

१–मुर्शिदावादी ओसवाल लोगों के यहा प्रतिदिन खुराक मे मैदा का उपयोग होता है और दाल तथा शाकादिमें वहा वाले अमचुर बहुत डालते हैं जिस से पित्त बढता है–सत्य तो यह है कि–ये दोनो खुराके निर्वलता की हेतु हैं परन्तु उन लोगों में प्रात काल प्राय दूध और बादाम की कतली के खाने की चाल है इस लिये उन के जीवन का आवश्यक तत्व कायम रहता है तथापि ऊपर कही हुई दोनों वस्तुयें अपना प्रभाव दिखलाती रहती हैं ॥

२–जैसे बीकानेर के राज्य में बाजरी की ही विशेष खपत है, मौठ, बाजरी और मतीरे जैसे इस जमीन में होते हैं वैसे और कहीं भी नहीं होते हैं ॥

कारक है, क्योंकि नवे सन्निपात ज्वर में दूध की मनाई है परन्तु उस में भी मूंग की दाल का पानी हितकारी है, एवं बहुत दिनों के उपवास के पारने में भी यही पानी हितकारी है साबत मूंग वायु करता है, यदि मूंग की दाल को कोरे तवे पर कुछ सेक कर फिर विधिपूर्वक सिजा कर बनाया जावे तो वह बिलकुल निर्दोष होजाती है यहां तक कि पूर्व और दक्षिण के देशों में तथा किसी भी बीमारी में वह वायु नहीं करती है, यद्यपि मूंग की बहुत सी जातियां हैं परन्तु उन सब में हरे रंग का मूंग गुणकारी है ॥

अरहर—मीठी, भारी, रुचिकर, ग्राही, ठंढी और त्रिदोषहर है, परन्तु कुछ वायु करती है ॥

उपयोग—रक्तविकार, अर्श (मस्सा), ज्वर और गोले के रोग में फायदेमन्द है। दक्षिण और पूर्व के देशों में इस की दाल का बहुत उपयोग होता है और उन्हीं देशों में इस की उत्पत्ति भी होती है, अरहर की दाल और घी मिलाकर चावलों के खाने से वे वायु नहीं करते हैं, गुजरातवाले इस की दाल में कोकम और इमली आदि की खटाई डाल कर बनाते हैं तथा कोई लोग दही और गर्म मसाला भी डालते हैं इस से वह वायु को नहीं करती है, दाल से बनी हुई वस्तु में कच्चा दही और छाछ मिला कर खाने से थूक के स्पर्शसे दो इन्द्रियवाले जीव उत्पन्न होते हैं इसलिये वह अभक्ष्य है और अभक्ष्य वस्तु रोग कर्त्ता होती है, इस लिये द्विदल पदार्थों की कढ़ी और रायता आदि बनाना हो तो पहिले गोरस (दही वा छाछ आदि) को भाफ निकलने तक गर्म कर के फिर उस में बेसन आदि द्विदल अन्न मिलाना चाहिये तथा दही खिचड़ी भी इसी प्रकार से बना कर खानी चाहिये जिस से कि वह रोगकर्त्ता न हो।

पाकविद्या का ज्ञान न होने से बहुत से लोग गर्म किये बिना ही दही और छाछ के साथ खिचड़ी तथा खीचड़ा खा लेते हैं वह उन के शरीर को बहुत हानि पहुँचाता है, इस लिये जैनाचार्योंने रोग कर्त्ता होने के कारण २२ बहुत बड़े अभक्ष्य बतला कर उन का निषेध किया है तथा उन का नाम अतीचार सूत्र में लिख बतलाया है उसका हेतु केवल यही प्रतीत होता है कि उन का स्मरण सदा सब को बना रहे, परन्तु बड़े शोक का विषय है कि—इस समय में हमारे बहुत से प्रिय जैन बन्धु इस बातको बिलकुल नहीं समझते हैं ॥

उड़द—अत्यन्त पुष्ट, वीर्यवर्धक, मधुर, तृप्तिकारक, मूत्रल (पेशाब लानेवाला), मलभेदक (मल को तोड़नेवाला), स्तनों में दूध को बढ़ानेवाला, मांस और मेदे को

१—जिस अन्न की दो फाड़ हों उस अन्न को द्विदल कहते हैं, ऐसे अन्न को गोरस अर्थात् दही और छाछ आदि के साथ मिला किये बिना खाना जैनमत में निषिद्ध है अर्थात् इस को अभक्ष्य किया है ॥

वृद्धि करनेवाला, शक्तिप्रद (ताकत देनेवाला), वायुनाशक और पित्त कफ को बढ़ानेवाला है ॥

उपयोग—श्वास, श्रान्ति, अर्दित वायु (जिस में मुँह टेढ़ा हो जाता है) तथा अन्य भी कई वायु के रोगों में यह पथ्य है, शीत ऋतु में तथा वादी की तासीरवाले पुरुषों के लिये यह फायदेमन्द है, पचने के बाद उड़द गर्म और खट्टे रस को उत्पन्न करता है इस लिये पित्त और कफ की प्रकृतिवालों को तथा इन दोनों दोषों से उत्पन्न हुए रोगवालों को हानि पहुँचाता है ॥

चना—हलका, ठढा, रूक्ष, रुचिकर, वर्णशोधक (रग को सुधारनेवाला) और शक्तिदायक (ताक़त देनेवाला) है ॥

उपयोग—कफ तथा पित्त के रोगों में फायदेमन्द है, कुछ ज्वर को भी मिटाता है परन्तु वादी कर्त्ता, कबजी करनेवाला अथवा अधिक दस्त लगानेवाला है, खुराक में काम देनेवाली चने की बहुत सी चीजें बनती है क्यों–कि यह सावत, आटा (बेसन) और दाल, इन तीनों तरह से काम में लाया जाता है, मोतीचूर का ताजा लड्डू पित्ती के रोग को शीघ्र ही मिटाता है, चने में चरवी का भाग कम है इस लिये इस में घी और तेल आदि स्निग्ध पदार्थ अधिक डालना चाहिये, यह तासीर के अनुसार परिमित खाने से हानि नहीं करता है, घी के कम डालने से चने के सब पदार्थ हानि करते हैं ॥

मौठ—रुचिकर, पुष्टिकारक, मीठा, रूक्ष, ग्राही, बलवर्धक, हलका, कफ तथा पित्त को मिटानेवाला और वायुकारक है ॥

उपयोग—यह रक्तपित्त के रोग, ज्वर, दाह, कृमि और उन्माद रोग में पथ्य है ॥

चँवला—मीठा, भारी, दस्त लानेवाला, रूक्ष, वायुकर्त्ता, रुचिकर, स्तन में दूध को बढ़ानेवाला, वीर्य को बिगाड़नेवाला और गर्म है ॥

उपयोग—यह अत्यन्त वायुकर्त्ता है इस लिये इस को अधिक कभी नहीं खाना चाहिये, यह खाने में मीठा तथा पचने के बाद खट्टे रस को उत्पन्न करता है, शक्तिदायक है परन्तु रूक्ष और भारी होने से पेट में गुरुता को उत्पन्न कर वायु को करता है, गर्म, दाहकारी और शरीरशोषक (शरीर को सुखानेवाला) है, शरीर के विष का तथा आखो के तेज का नाशक है ॥

१–दिल्ली के चारो तरफ पजाब तक इस की दाल को हमेशा खाते हैं तथा काठियावाडवाले इस के लड्डू शीत काल मे पुष्टि के लिये बहुत खाते हैं ॥

२–गुजरातवाले तेल के साथ चने का उपयोग करते हैं ॥

मटर—रुचिकर, मीठा, पुष्टिकर, रूक्ष, ग्राही, शक्तिवर्धक (ताकत को बढ़ानेवाला), हलका, पित्त कफ को मिटानेवाला और वायुकर्ता है ।

कलिकाल सर्वज्ञ श्री हेमचन्द्राचार्य ने निघण्टुराजमें पदार्थों के गुण और अवगुण लिखे हैं वे सब मुख्यतया बनाने की क्रिया में तो रहते ही हैं यह तो एक सामान्य बात है परन्तु संस्कार के अदल बदल (फेरफार) से भी गुणों में अदल बदल हो जाता है, उदाहरण के लिये पाठक गण समझ सकते हैं कि—पुराने चावलों का पकाया हुआ भात हलका होता है परन्तु उन्हीं के मुरमुरे आदि बहुत भारी हो जाते हैं, इसी प्रकार उन्हीं की बनी हुई खिचड़ी भारी, कफ पित्त को उत्पन्न करनेवाली, कठिनता से पचनेवाली, बुद्धि में बाधा डालनेवाली तथा दस्त और पेशाब को बढ़ानेवाली है, एवं थोड़े जल में उन्हीं चावलों का पकाया हुआ भात शीघ्र नहीं पचता है किन्तु उन्हीं चावलों का अच्छी तरह धोकर पँचगुने पानीमें खूब सिज्रा कर तथा मांड निकाल कर भात बनाने से वह बहुत ही गुणकारी होता है, इसी प्रकार खिचड़ी भी धीमी २ आंच से बहुत देरतक पका कर बनाई जाने से ऊपर लिखे दोषों से रहित हो जाती है ।

चने चँवले और मौठ आदि जो २ अन्न वातकर्त्ता हैं तथा जो २ दूसरे अन्न दुर्जर (कठिनता से पचनेवाले) हैं वे भी घी के साथ खाये जाने से उक्त दोषों से रहित हो जाते हैं अर्थात् वायु को कम उत्पन्न करते और जल्दी पच जाते हैं ।

मारवाड़ देश के बीकानेर और फलोधी आदि नगरों में सब लोग आखातीज (अक्षय तृतीया अर्थात् वैशाखसुदि तीज) के दिन ज्वार का खीचड़ा और उस के साथ बहुत घी खाकर ऊपर से इमली का शर्बत पीते हैं क्योंकि आखातीज को नया दिन समझ कर उस दिन वे लोग इसी खुराक का खाना शुभ और लाभदायक समझते हैं, सो यद्यपि यह खुराक प्रत्यक्ष में हानिकारक ही प्रतीत होती है तथापि वह प्रकृति और देश की तासीर के अनुकूल होने से ग्रीष्म ऋतु में भी उन को पचजाती है परन्तु इस में यह एक बड़ी खराबी की बात है कि बहुत से अज्ञ लोग इस दिन को नया दिन समझ कर रोगी मनुष्य को भी यही खुराक खाने को दे देते हैं जिस से उस बेचारे रोगी को बहुत हानि पहुँचती है इस लिये उन लोगों को उचित है कि—रोगी मनुष्य को वह (उक्त) खुराक भूल कर भी न देवें[3] ॥

१—इस प्रकरणमें मैं बहुत थोड़े आवश्यक धान्यों का वर्णन किया गया है, शेष धान्यों का तथा उन से बने हुए पदार्थों का वर्णन बृहन्निघण्टु रत्नाकर आदि ग्रन्थों में देख लेना चाहिये ॥

२—इस को बीकानेरनिवासी धमकधानी कहते हैं ॥

३—श्री ऋषभदेवजी ने तो इस दिन छाठे अर्थात् ऊख का रस पिया था जिस रस को श्रेयांस नामक पड़पोते ने वर्ष भर के भूखे को सुपात्र दान देकर अक्षय पुण्य का उपार्जन किया था उसी दिन से इस का नाम अक्षयतृतीया हुआ ॥

शाक वर्ग ॥

नित्य की खुराक के लिये शाक (तरकारी) बहुत कम उपयोगी है, क्यौंकि–सब शाक दस्त को रोकनेवाले, पचने में भारी, रूक्ष, अधिक मल को पैदा करनेवाले, पवन को बढ़ानेवाले, शरीर के हाडों के भेदक, आख के तेज को घटानेवाले, शरीर के रग खून तथा कान्ति को घटानेवाले, बुद्धि का क्षय करनेवाले, वालो को श्वेत करनेवाले तथा स्मरणशक्ति और गति को कम करनेवाले है, इसी लिये वैद्यकशास्त्रो का सिद्धान्त है कि–सब शाकों में रोग का निवास है और रोग ही शरीर का नाश करता है, इस लिये विवेकी लोगों को उचित है कि–प्रतिदिन खुराक में शाक का भक्षण न करें, जो २ दोष खट्टे पदार्थों में कह चुके है प्रायः उन्ही के समान सब दोष शाको में भी है, यह तो सामान्यतया शास्त्र का अभिप्राय कहा गया है परन्तु पाश्चात्य विद्वानो ने तो यह निश्चय किया है कि–ताजे फल और शाक तरकारी विलकुल न खाने से स्कर्वी अर्थात् रक्तपित्त का रोग हो जाता है।

यह रोग पहिले फौज में, जेलों में, जहाजों में तथा दूसरे लोगों में भी बहुत बढ गया था, सुना जाता है कि–आतसन नामक एक अग्रेज ने ९०० आदमियों को साथ लेकर जहाज़ पर सवार होकर सब पृथिवी की प्रदक्षिणा का प्रारम्भ किया था, उस यात्रा में ९०० आदमियों में से ६०० आदमी इसी स्कर्वी के रोग से इस संसार से विदा होगये तथा शेष बचे हुए ३०० में से भी आधे (१५०) उसी रोग से ग्रस्त होगये थे, इस का कारण यही था कि वनस्पति की खुराक का उपयोग उन में नहीं था, इस के पश्चात् केप्टिन कुके ने पृथ्वी की प्रदक्षिणा का प्रारम्भ कर उसी में तीन वर्ष व्यतीत किये, उन के साथ ११८ आदमी थे परन्तु उन में से एक भी स्कर्वी के रोग से नहीं मरा, क्योंकि केप्टिन को मालूम था कि खुराक में वनस्पति का उपयोग करने से तथा नींबू का रस खाने से यह रोग नहीं होता है, आखिरकार धीरे २ यह बात कई विद्वानों को मालूम होगई और इसके मालूम हो जाने से यह नियम कर दिया गया कि–जितने जहाज़ यात्रा के लिये निकलें उन में मनुष्यों की सख्या के परिमाण से नींबू का रस साथ रखना चाहिये और उस का सेवन प्रतिदिन करना चाहिये, तब से लेकर यही नियम सर्कारी फौज तथा जेलखानों के लिये भी सर्कार के द्वारा कर दिया गया अर्थात् उन लोगों को भी महीने में एक दो वार वनस्पति की खुराक दी जाती है, ऐसा होने से इस स्कर्वी (रक्तपित्त) रोग से जो हानि होती थी वह बहुत कम हो गई है।

१–जैसा कि लिखा है कि–"सर्वेषु शाकेषु वसन्ति रोगाः" इत्यादि ॥

२–परन्तु मेरी सम्मति मे उत्तम फलादि का विलकुल त्याग भी नहीं कर देना चाहिये ॥

ऊपर के लेख को पढ़ कर पाठकों को यह नहीं समझ लेना चाहिये कि—इस (रक्त पित्त) रोग के कारण को डाक्टरों ने ही खोज कर बतलाया है क्योंकि—पूर्व समय के जैन श्रावक लोग भी इस बात को अच्छी तरह से जानते थे, देखो ! उपासकदशासूत्र में आनन्दश्रावक के बारह व्रतों के ग्रहण करने के अधिकार में यह वर्णन है कि—आनन्द श्रावक ने एक क्षीरामल फल (खीरा ककड़ी) को रखकर और सब वनस्पतियों का त्याग किया, इस वर्णन से यह सिद्ध होता है कि—आनन्दश्रावक को इस विद्या की विज्ञता थी, क्योंकि उस ने क्षीरामल फल को यही विचार कर खुला रक्खा था कि यदि एक भी उत्तम फल को मैं खुला न रक्खूगा तो स्कर्वी (रक्तपित्त) का रोग हो जावेगा और शरीर में रोग के होजाने से धर्मध्यानादि कुछ भी न बन सकेगा।

परन्तु बड़े ही शोक का विषय है कि—वर्त्तमान समय में हमारे बहुत से भोले जैन बन्धु एकदम मुक्ति में जाने के लिये बिलकुल ही वनस्पति की खुराक का त्याग कर देते हैं, जिस का फल उन को इसी भव में मिलजाता है कि वे वनस्पति की खुराक का बिलकुल त्याग करने से अनेक रोगों में फँस जाते हैं तथापि वे ज़रा भी उन (रोगों) के कारणोंकीओर ध्यान नहीं देते हैं।

इस विद्या का यथार्थ ज्ञान होने से मनुष्य अपना कल्याण अच्छी तरह से कर सकता है, इस लिये सब जैन बन्धुओं को इस विद्या का ज्ञान कराने के लिये यहां पर संक्षेप से हम ने इस विषयको लिखा है, इस बात का निश्चय करने के लिये यदि प्रयत्न किया जावे तो सैकड़ों ऐसे प्रत्यक्ष उदाहरण मिल सकते हैं जिन से यही सिद्ध होता है कि—वनस्पति की खुराक का बिलकुल त्याग कर देने से अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं, देखो ! जिन लोगों ने एकदम वनस्पति की खुराक को बन्द कर दिया है उनकी गुदा और मुख से प्रायः खून गिरने लगता है अर्थात् किसी २ के महीने में दो चार बार गिरता है और किसी २ के दो चार बार से भी अधिक गिरता है तथा मुख में छाले आदि भी हो जाते हैं इत्यादि बातें जब आंखों से दीखती हैं तो उन के लिये दूसरे प्रमाण की क्या आवश्यकता है।

डाक्टरों का कथन है कि—उपयोग के लिये शाक और फल आदि उत्तम होने चाहियें चाहें वे थोड़े भी मिलें, और विचार कर देखने से यह बात बिलकुल ठीक भी मालूम होती है, क्योंकि—थोड़े भी शाक और फल आदि हों परन्तु उत्तम हों तो उन से विशेष लाभ होता है और बाज़ार में कई दिन तक पड़े रहने के कारण सूखे और सड़े हुए शाक

---

१ इस ग्रन्थ के अनुसार अंग्रेजी भाषा में भी छप चुका है ॥

२—क्योंकि न्याय का सिद्धान्त है कि "प्रत्यक्षे किं प्रमाणम्" अर्थात् प्रत्यक्ष में दूसरे प्रमाण की आवश्यकता नहीं है ॥

और फल आदि चाहें अधिक भी हों तो भी उन से कुछ लाभ नहीं होता है किन्तु उन से अनेक प्रकार की हानियां ही होती है, तात्पर्य यह है कि हरी चीजों का बहुत ही सावधानी के साथ यथाशक्य थोडा ही उपयोग करना परन्तु उत्तमो का उपयोग करना बुद्धिमानो का काम है और यही अभिप्राय सब वैद्यक ग्रन्थों का भी है, परन्तु वर्त्तमान समय में हमारे देश के जिह्वालोलुप लोगों में शाकादि का उपयोग बहुत ही देखा जाता है और उस में भी गुजराती, भाटिये, वैष्णव और शैव सम्प्रदायी आदि बहुत से लोगों में तो इस का वेपरिमाण उपयोग देखा जाता है तथा वस्तु की उत्तमता और अधमता पर एव उस के गुण और दोष पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया जाता है, इस से बड़ी हानिया हो रही है, इसलिये बुद्धिमानों का यह कर्त्तव्य है कि—इस हानिकारक वर्त्ताव से स्वयं बचने का उद्योग कर अपने देशके अन्य सब भ्राताओं को भी इस से अवश्य बचावें।

वनस्पति की खुराक के विषय में शास्त्रीय सिद्धान्त यह है कि—जिस वनस्पति में शक्तिदायक तथा उष्णताप्रद (गर्मी लानेवाला) भाग थोड़ा हो और पानी का भाग विशेष हो इस प्रकार की ताज़ी वनस्पति थोडी ही खानी चाहिये।

पत्ते, फूल, फल और कन्द आदि कई प्रकार के शाक होते है—इन में अनुक्रम से पूर्व २ की अपेक्षा उत्तर २ का भारी होता है अर्थात् पत्तों का शाक सब से हलका है और कन्द का शाक सब से भारी है।

हमारे देश के बहुत से लोग वैद्यकविद्या और पाकशास्त्र के न जानने से शाकादि पदार्थों के गुण दोष तथा उन की गुरुता लघुता आदि को भी बिलकुल नहीं जानते हैं, इसलिये वे अपने शरीर के लिये उपयोगी और अनुपयोगी शाकादि को नहीं जानते हैं अतः कुछ शाकों के गुण आदि का वर्णन करते है:—

चँदलिया (चौलाई)—हलका, ठढा, रूक्ष, मल मूत्र को उतारनेवाला, रुचिकर्त्ता, अग्निदीपक, विषनाशक और पित्त कफ तथा रक्त के विकारको मिटानेवाला है, इस का शाक प्राय[1] सब रोगों में पथ्य और सबों की प्रकृति के अनुकूल है, यह जैसे सब शाकों में पथ्य है उसी प्रकार स्त्रीके प्रदर में इस की जड़, बालकों के दस्त और अजीर्णता में इस के उबाले हुए पत्ते और जड़ पथ्य है, कोढ़, वातरक्त, रक्तविकार, रक्तपित्त और खाज दाद तथा फुनसी आदि चर्म रोगों में भी विना लाल मिर्चका इस का शाक खाने से बहुत लाभ होता है, यद्यपि यह ठढा है तथापि वात पित्त और कफ इन तीनों दोषो को शान्त करता है, दस्त और पेशाव को साफ लाता है, पेशाव की गर्मी को शान्त करता है, खून को शुद्ध करता है, पित्त के विकार को मिटाता है, यदि किसी विकृत दवा की गर्मी

१—जिस शाक को जैन सूत्रों मे जगह २ पर 'अनन्तकाय' के नाम से लिखा है वह शाक महागरिष्ठ, रोगकर्त्ता और कष्ट से पचनेवाला समझना चाहिये ॥

अथवा किसी विष का प्रभाव हो रहा हो तो इस के पत्तों को उबाल कर तथा उन का रस निकाल कर उस रस को शहद वा मिश्री डाल कर पीने से तथा इस का शाक खाने से वृषा की गर्मी और विष का असर दस्त और पेशाब के मार्ग से निकल आता है, इस को जिस कदर अधिक सिझाया जावे उसी कदर यह अधिक स्वादिष्ठ और गुणकारी हो जाता है, मद, रक्तपित्त, पीनस, त्रिदोषज्वर, कफ, खांसी और दस्त की बीमारी में भी यह बहुत फायदेमन्द है ॥

पालक—अग्निदीपक, पाचक, मलशुद्धिकारक, रुचिकर तथा शीतल है, शोथ, विष दोष, हरस तथा मन्दाग्नि में हितकारक है ॥

पथुआ—बथुए का शाक पाचक, रुचिकर, हलका और दस्त को साफ लानेवाला है, ताप तिल्ली, रक्तविकार, पित्त, हरस, कृमि और त्रिदोष में फायदेमन्द है ॥

पानगोभी—फूल गोभी की चार किस्मों से यह (पानगोभी) अलग होती है, यह भारी, ग्राही, मधुर और रुचिकर है, वातादि तीनों दोषों में पथ्य, स्तन के दूध और वीर्य को बढ़ानेवाली है ॥

पानमथी—यह पित्तकारक तथा ग्राही है, परन्तु कफ, वायु और कृमि का नाश करती है, रुचिकर और पाचक होती है ॥

अरुई के पत्ते—अरुई के पत्तों का शाक रक्तपित्त में अच्छा है, परन्तु दस्त की कब्जी कर वायु को कुपित करता है, इस से मरोड़े के दस्त होने लगते हैं ॥

मोगरी—तीक्ष्ण तथा उष्ण है और कफ वायु की प्रकृतिवाले के लिये अच्छी है ॥

मूली के पत्ते—मूली के ताजे पत्तों का शाक—पाचक, हलका, रुचिकर और गर्म है, मूली के पत्तों को बीकानेर गुजरात और काठियावाड़ के लोग तेल में पकाते हैं तथा उन के शाक को तीनों दोषों में लाभदायक समझते हैं, इस के कच्चे पत्ते पित्त और कफ का बिगाड़ते हैं ॥

परवल—हृदय को हितकर, बलवर्धक, पाचक, उष्ण, रुचिकर, कामवर्धक, हलका और चिकना है, खांसी रक्तपित्त, ज्वर, त्रिदोषज सन्निपात और कृमि आदि रोगों में बहुत फायदेमन्द है, फलों के सब शाकों में सर्वोत्तम शाक परवल का ही है ॥

मीठा तूंबा—मीठा, धातुवर्धक, बलवर्धक, पौष्टिक, शीतल और रुचिकर है, परन्तु पचने में भारी, कफकारक, दस्त को बन्द करनेवाला और गर्भ को पुष्ट करनेवाला है, इस को कद्दू, लवा और तूंबी भी कहते हैं तथा इस का खीरा भी बनाया जाता है ॥

१—पूर्व के देशों में अरुई को घुइयां कहते हैं ॥

२—यद्यपि वैद्यकग्रन्थ के रचयिता ने ऐसा कहा है कि— मूलीमूल न खाय जो सुख चाहे जीव रे" परन्तु यह कथन एकदेशी है, क्योंकि कभी मूली भी बहुत से रोगों में पथ्य मानी गई है ॥

कोला, पेठा—इस की दो क़िस्मे है–एक तो पीला और लाल होता है उस को कोला कहते है, उस का शाक बनाया जाता है और दूसरा सफेद होता है उस को पेठा, कहते है, उस का मुरब्बा बनता है, यह बहुत मीठा, ठंढा, रुचिकर, तृप्तिकर, पुष्टिकारक और वीर्यवर्धक है, श्रान्ति और थकावट को दूर करता है, पित्त, रक्तविकार, दाह और वायु को मिटाता है, छोटा कोला ठढा होता है इस लिये वह पित्त को शान्त करता है, मध्यम कद का कोला कफ करता है और बड़े कद का कोला बहुत ठंढा नहीं है, मीठा है, खारवाला, अग्निदीपक, हलका, मूत्राशय का शोधक और पित्त के रोगों को मिटानेवालों है ॥

बैंगन—बैगन की दो किस्में हैं–काला और सफेद, इन में से काला बैगन नींद लाने वाला, रुचिकारक, भारी तथा पौष्टिक है, और सफेद बैगन दाह तथा चमड़ी के रोग को उत्पन्न करता है, सामान्यतया दोनो प्रकार के बैगन गर्म, वायुहर तथा पाचक होते है, एक दूसरी तरह का भी नीबू जैसा बैगन होता है तथा उसे गोल काचर कहते है, वह कफ तथा वायु की प्रकृतिवाले के लिये अच्छा है तथा खुजली, वातरक्त, ज्वर, कामला और अरुचि रोगवाले के लिये भी हितकारी है, परतु जैनसूत्रों में बैगन को बहुत सूक्ष्म वीज होने से अभक्ष्य लिखा है ॥

घिया तोरई—स्वादिष्ट, मीठी, वात पित्त को मिटानेवाली और ज्वर के रोगी के लिये भी अच्छी है ॥

तोरी—वातल, ठढी और मीठी है, कफ करती है, परन्तु पित्त, दमा, श्वास, कास, ज्वर और कृमिरोगों में हितकारक है ॥

करेला—कडुआ, गर्म, रुचिकारक, हलका और अग्निदीपक है, यदि यह परिमित (परिमाण से) खाया जावे तो सब प्रकृतिवालो के लिये अनुकूल है, अरुचि, कृमि और ज्वर आदि रोगो में भी पथ्य है ॥

ककड़ी—इस की बहुत सी किस्में है–उन में से खीरा नाम की जो ककडी है वह कच्ची ठढी, रूक्ष, दस्त को रोकनेवाली, मीठी, भारी, रुचिकर और पित्तनाशक है, तथा

१–इसे पूर्व मे काशीफल, सीताफल, गगाफल और लौका भी कहते हैं ॥

२–इस को कुम्हेडा भी कहते हैं ॥

३–इसका आगरे में पेठाभी बहुत उमदा बनता है जिसको मुर्शिदावादवाले हेसमी कहते है और व्यवाह आदि मे बहुत उमदा बनायी जाती है ॥

४–किसी अनुभवी वैद्य ने कहा है कि–“बैंगन कोमल पथ्य है, कोला कच्चा जहर है, हरडें कच्ची और पक्की सदा पथ्य हैं, वोर (वेर) कच्चा पक्का सदा कुपथ्य है” ॥

५–इस को आनन्द श्रावक ने खुला रक्खाया, यह पहिले कह चुके हैं, यह धर्मात्मा श्रावक महावीर स्वामी के समय में हुआ है, (देखो–उपासक दशा सूत्र) ॥

यही पकी ककड़ी अग्नि और पित्त को बढ़ाती है, मारवाड़ की ककड़ी तीनों दोषों को कुपित करती है इसलिये वह खाने और शाक के लायक बिलकुल नहीं है, हां यदि खूब पकी हुई हो और उस की एक या दो फांकें काली मिर्च और सेंधानमक लगा कर खाई जावें तो वह अधिक नुकसान नहीं करती है परन्तु इस का अधिक उपयोग करने से हानि ही होती है ।

कलिन्द (मतीरा)—कफकारक और वायुकारक है, लोग कहते हैं कि—यह पित्त की प्रकृति वाले के लिये अच्छा है परन्तु इस का अधिक सेवन करने से क्षय की बीमारी हो जाती है, वास्तव में तो ककड़ी और मतीरा तीनों दोषों में अवश्य विकार को पैदा करते हैं इस लिये ये उपयोग के योग्य नहीं हैं ।

बीकानेर के निवासी लोग कच्चे मतीरे का शाक करते हैं तथा पके हुए मतीरे को हेमन्त ऋतु में खाते हैं सो यह अत्यन्त हानिकारक है, मारवाड़ के जाट लोग और किसान आदि कची बाजरी के मोरड़ को खाकर ऊपर से मतीरे को खा लेते हैं इस से उन को अभ्यास होने से यद्यपि किसी अंश में कम नुकसान होता है तथापि महिनों तक उस का सेवन करने से शीत दाह ज्वर का स्वाद उन्हें भी चखना ही पड़ता है ॥

सेम की फली—मीठी है, ठढी और भारी होने से वातल है, पित्त को मिटाती है तथा ताकत देती है ॥

गुवार फली—रूक्ष, भारी, कफकारक, अग्निदीपक, सारक (दस्तावर) और पित्त हर है, परन्तु वायु को बहुत करती है ॥

सहजने की फली—मीठी, कफहर, पित्तहर और अत्यन्त अग्निदीपक है, शूल, कोढ़, क्षय, श्वास तथा गोले के रोग में बहुत पथ्य है, सहजने की फली के सिवाय बाकी सब फलियां वातल हैं ॥

सूरण कन्द—अग्निदीपक, रूक्ष, हलका, पाचक, पित्तकर्त्ता, तीक्ष्ण, मलस्तम्भक और रुचिकर है, हरस, शूल, गोला, कृमि, कफ, मेद, वायु, अरुचि, श्वास, तिल्ली और खांसी, इन सब रोगों में फायदेमन्द है, परन्तु दाद, कोढ़ और रक्तपित्त के रोगी के लिये अपथ्य है, हरस की बीमारी में इस का शाक तथा इसी की रोटी पूड़ी और सीरा आदि बनाकर खाने से दवा का काम करता है, कन्दशाकों में सूरण का शाक सब से श्रेष्ठ है परन्तु इस को अच्छीतरह पका कर तथा घृत डालकर खाना चाहिये ॥

---

१ इस को गुजरात में चीभड़ा कहते हैं तथा इसी का नाम संस्कृत में चिर्भटी है ॥

२-इस को पूर्व देश में तरबूज कहते हैं और यहां वह वर्षा की ऋतु में उत्पन्न होता है ॥

३-इस में अदरख की तरह गांठें होती हैं ॥

आलू—ठंढा, मीठा, रूक्ष, मूत्र तथा मल को रोकनेवाला, पोषणकारक, बलवर्धक, स्तन के दूध तथा वीर्य को बढानेवाला, रक्तपित्त का नाशक और कुछ वायुकर्त्ता है परन्तु अधिक घी के साथ खाने से वायु नहीं करता हैं, अगार में भून कर अथवा घी में तलकर छोटे बालकों को खिलाने से उन का अच्छी तरह पोषण करता है तथा हाडों को बढाता है ॥

रतालू तथा सकरकन्द—पुष्टिकारक, मीठा, मलको रोकने वाला और कफकारी है ॥

मूली—भारी मल को रोकने वाली, तीखी, उष्णताकारक, अग्निदीपक और रुचिकर है, हरस, गुल्म, श्वास, कफ, ज्वर, वायु और नाक के रोगों में हितकारी है, कच्ची मूली तीनो प्रकृति वाले लोगों के लिये हितकारक है, पकी हुई तथा बड़ी मूलियों को मूले कहते हैं–वे (मूले) रूक्ष, अति गर्म और कुपथ्य हैं, मूले के ऊपर के छिलके भारी और तीखे होते है इसलिये वे अच्छे नहीं है, मूले को गर्म जल में अच्छी तरह से सिजा कर पीछे अधिक घी या तेल में तल कर खाने से वह तीनों प्रकृति वालों के लिये अनुकूल हो जाता है ॥

गाजर—मीठी, रुचिकर तथा ग्राही है, खुजली और रक्तविकार के रोगों में हानि करती है, परन्तु अन्य बहुत से रोगों में हितकारी है, यह वीर्य को बिगाडती है इसलिये इस को समझदार लोग नहीं खाते हैं ॥

काँदा—बलवर्धक, तीखा, भारी, मीठा, रुचिकर, वीर्यवर्धक तथा कफ और नींद को पैदा करने वाला है, क्षय, क्षीणता, रक्तपित्त, वमन, विषूचिका (हैजा), कृमि, अरुचि, पसीना, शोथ और खून के सब रोगों में हितकारी है, इस का शाक मुरब्बा और पाक आदि भी बनता है ॥

राधने की युक्ति और दूसरे पदार्थों के सयोग से शाक तरकारी के गुणों में भी अन्तर हो जाता है अर्थात् जो शाक वायुकर्त्ता होता है वह भी बहुत घी तथा तेल के सयोग से बनाने पर वायुकर्त्ता नहीं रहता है, इसी प्रकार सूरण और आलू आदि जो शाक पचने में भारी है उस को पहिले खूब जल में सिजाकर फिर घी या तेल में छौका जावे तो वह हानि नहीं करता है क्योंकि ऐसा करने से उस का भारीपन नष्ट हो जाता है।

१–इसीलिये–जैन शास्त्रों में जगह २ कन्द के खाने का निषेध किया है तथा अन्यत्र भी इस का सर्वत्र निषेध ही किया है, इस लिये कन्द का कोई भी शाक दवा के सिवाय जैनी तथा वैष्णवों को भी नहीं खाना चाहिये, क्योंकि–जैन सूत्रों में कन्द को 'अनन्तकाय, के नाम से बतलाकर इस के खाने का निषेध किया है तथा वैष्णव और शैव सम्प्रदाय वालों के धर्मग्रन्थों में भी कन्दमूल का खाना निषिद्ध है, इस का प्रमाण सात व्यसन तथा रात्रिभोजन के वर्णन में आगे लिखेंगे ॥

शाकों के विषय में यह भी स्मरण रखना चाहिये कि—शाकों में बहुत लाल मिर्च तथा दूसरे मसाले डाल कर नहीं खाने चाहियें, क्योंकि अधिक लाल मिर्च और मसाले डाल कर शाकों के खाने से पाचनशक्ति कम होकर दस्त, संग्रहणी, अम्लपित्त, रक्तपित्त और कुष्ठ आदि रक्तविकारजन्य रोग हो जाते हैं ॥

दुग्ध वर्ग ॥

दूध का सामान्य गुण यह है कि—दूध मीठा, ठंढा, पित्तहर, पोषण कर्त्ता, दस्त साफ लाने वाला, वीर्य को जल्दी उत्पन्न करने वाला, बलबुद्धि वर्धक, मैथुन शक्ति वर्धक, अवस्था को स्थिर करने वाला, वयोवर्धक (आयु को बढ़ाने वाला), रसायन रूप, टूटे हुए हाड़ों को जोड़ने वाला, भूखे को बालक को और वृद्ध को तृप्ति देनेवाला, स्त्रीभोगादि से क्षीण को तथा मस्तक वाले को हित है, एवं जीर्णज्वर, भ्रम, मूर्छा, मन सम्बन्धी रोग, शोष, हरस, गुल्म, उदररोग, पाण्डु, मूत्ररोग, रक्तपित्त, भ्रान्ति, तृषा, दाह, उरोरोग (छाती के रोग,) शूल, आध्मान (अफरा), अतीसार और गर्भस्राव में दूध अत्यन्त पथ्य है, न केवल इन्हीं में किन्तु प्राय सब ही रोगों में दूध पथ्य है, परन्तु सन्निपात, नवीन ज्वर, वातरक्त और कुष्ठ आदि कई एक रोगों में दूध का निषेध है, यद्यपि नवीन ज्वर में तो कोनैन पर डाक्टर लोग दूध पिला भी देते हैं परन्तु सन्निपातकी अवस्था में तो दूध विष के तुल्य है यह निश्चित सिद्धान्त है, एव सुजाक (फिरंग) रोग की तरु णावस्था में भी दूध हानिकारक है, जो लोग दूध की लस्सी बना कर पीते हैं वह गँठिया हो जाने का मूल कारण है, दूध में यह एक बड़ा ही अपूर्व गुण है कि—यह अति शीघ्र धातु की वृद्धि करता है अर्थात् जितनी जल्दी दूध से धातु की वृद्धि होती है उतनी जल्दी अन्य किसी भी वस्तु से नहीं हो सकती है, देखो। किसी ने कहा भी है कि—"वीर्य बढावन बलकरण, जो मोंहि पूछो कोय ॥ पय समान सिहुँ लोक में, अपर न औषध होय" ॥ १ ॥

गाय के दूध मे ऊपर लिखे अनुसार सब गुण हैं परन्तु गाय के वर्णभेद से दूध के गुणों में भी कुछ अन्तर होता है जिस का संक्षेप से वर्णन यह है कि —

काली गाय का दूध—वायुहर्ता और अधिक गुणकारी है ॥
लाल गाय का दूध—वातहर और पित्तहर होता है ॥
सफेद गाय का दूध—कुछ कफकारी होता है ॥
तुरत की ब्याई हुई गाय का दूध—तीनों दोषों को उत्पन्न करता है ॥

१—यह ग्रंथ मे कुछ शाकों का वर्णन किया गया है शेष शाकों का वर्णन बृहन्निघण्टु रत्नाकर आदि ग्रन्थों में देखना चाहिये ॥

विना वछड़े की गाय का दूध—यह भी तीनो दोषो को उत्पन्न करता है ॥

भैंस का दूध—यद्यपि भैस का दूध गुण मे कई दर्जे गाय के दूध से मिलता हुआ ही है तथापि गाय के दूध की अपेक्षा इस का दूध अधिक मीठा, अधिक गाढ़ा, भारी, अधिक वीर्यवर्धक, कफकारी और नींद को बढ़ानेवाला है, वीमार के लिये गाय का दूध जितना पथ्य है उतना भैंस का दूध पथ्य नहीं है ॥

वकरी का दूध—मीठा, ठंढा और हलका है, रक्तपित्त, अतीसार, क्षय, कास और ज्वर की जीर्णावस्था आदि रोगो में पथ्य है ॥

भेड़ का दूध—खारा, मीठा, गर्म, पथरी को मिटानेवाला, वीर्य, पित्त और कफ को पैदा करनेवाला, वायु को मिटानेवाला, खट्टा और हलका है ॥

ऊँटनी का दूध—हलका, मीठा, खारा, अग्निदीपक और दस्त लानेवाला है, कृमि, कोढ़, कफ, पेटका अफरा, शोथ और जलोदर आदि पेट के रोगो को मिटाता है ॥

स्त्री का दूध—हलका, ठढा और अग्निदीपक है, वायु, पित्त, नेत्ररोग, शूल और वमन को मिटाता है ॥

धारोष्ण दूध—शक्तिप्रद, हलका, ठंढा, अग्निदीपक और त्रिदोपहर है । इस की वैद्यक शास्त्र में वहुत ही प्रशसा लिखी है तथा वहुत से अनुभवी पुरुष भी इस की अत्यन्त प्रशसा करते है–इस लिये यदि इस की प्राप्ति हो सके तो इस के सेवन का अभ्यास अवश्य रखना चाहिये क्योंकि यह दूध वालक से लेकर वृद्धतक के लिये हितकारी है तथा सब अवस्थाओं में पथ्य है ।

दुहने के पीछे जब दूध ठढा पड़ जावे तो उस को गर्म करके उपयोग में लाना चाहिये, क्योंकि कच्चा दूध वादी करता है इस लिये कच्चा नहीं पीना चाहिये, गाय तथा भैस के दूध के सिवाय और सब पशुओं का कच्चा दूध शर्दी तथा आम को उत्पन्न करता है, इस लिये कुपथ्य है, गर्म किया हुआ दूध वायु कफ की प्रकृतिवाले को सुहाता हुआ गर्म पीने से फायदा करता है, अधिक गर्म दूध का पीना पित्तप्रकृतिवाले को हानि पहुँचाता है तथा गर्म दूध के पीने से मुख में छाले भी पड़ जाते है इस लिये गर्म दूध को ठढा कर के पीना चाहिये, दूध के वज़न से आधा वजन पानी डाल कर उस को औटाना चाहिये जब पानी जल जावे केवल दूध मात्र शेप रह जावे तब उस को उतार कर ठंढा करके कुछ मिश्री आदि मीठा डाल कर पीना चाहिये । यह दूध वहुत हलका तीनों प्रकृतिवालों के लिये अनुकूल तथा वीमार के लिये भी पथ्य है, औंटाने के द्वारा वहुत गाढ़ा

१–सामान्यतया वाखडी गाय का (जिस को व्याये हुए दो चार महीने वीत गये हैं उस गाय का) दूध उत्तम होता है, इस के सिवाय जैसी खुराक गाय को खाने को दी जावे उसी के अनुसार उस के दूध मे भी गुण और दोप रहा करता है ॥

हुआ दूध भारी हो जाता है इसलिये यह दूध नहीं पीना चाहिये किन्तु बीमारों को तथा मन्दपाचन शक्तिवालों को दूध में डाले हुए पानी के तीन हिस्से जल जावें तथा एक हिस्सा रह जावे उस दूध का पीना फायदेमन्द होता है, औटाने के द्वारा अधिक गाढ़ा किया हुआ दूध बहुत ही भारी तथा शक्तिप्रद है परन्तु वह केवल पूरी पाचनशक्तिवालों को तथा कसरती जवानों को ही पच सकता है ॥

खराब दूध—जिस दूध का रंग और स्वाद बदल गया हो, खट्टा पड़ गया हो, दुर्गन्धि आने लगी हो और उस के ऊपर फेन सा बँध गया हो उस दूध को खराब हो गया समझ लेना चाहिये, ऐसा दूध कभी नहीं पीना चाहिये क्योंकि ऐसा दूध हानि करता है, दुहने के तीन घड़ी के पीछे भी यदि दूध को गर्म न किया जावे तो वह हानिकारक हो जाता है इस दूध को बासा दूध भी माना गया है, यदि दुहा हुआ दूध दुहने के पीछे पांच घड़ी तक कच्चा ही पड़ा रहे और पीछे खाया जावे तो वह अवश्य विकार करता है अर्थात् वह अनेक प्रकार के रोगों का हेतु हो जाता है, दूध के विषय में एक आचार्य का यह भी कथन है कि–"गर्म किया हुआ भी दूध दश घड़ी के बाद बिगड़ जाता है, इसी प्रकार जैन भक्ष्याभक्ष्य निर्णयकार ने भी कहा है कि–"दुहने के सात घण्टे के बाद दूध (चाहे वह गर्म भी कर लिया गया हो तथापि) अभक्ष्य हो जाता है, और विचार कर देखने से यह बात ठीक भी प्रतीत होती है क्योंकि सात घण्टे के बाद दूध अवश्य खट्टा हो जाता है, इस लिये दुहने के पीछे या गर्म करने के पीछे बहुत देर तक दूध को नहीं पड़ा रखना चाहिये ।

प्रातःकाल का दूध सायंकाल के दूध से कुछ भारी होता है, इस का कारण यह है कि रात को पशु चलते फिरते नहीं हैं इस लिये उन को परिश्रम नहीं मिलता है और रात ठंढी होती है इसलिये प्रातःकाल का दूध भारी होता है तथा सायंकाल का दूध प्रातःकाल के दूध से हलका होने का कारण यह है कि दिन को सूर्य की गर्मी के होने से और पशुओं को चलने फिरने के द्वारा परिश्रम प्राप्त होने से सायंकाल का दूध हलका होता है, इस से यह भी सिद्ध होता है कि–सदा बँधे रहनेवाले पशुओं का दूध भारी और चलने फिरनेवाले पशुओं का दूध हलका तथा फायदेमन्द होता है, इस के सिवाय जिन की वायु तथा कफ की प्रकृति है उन लोगों को तो सायंकाल का दूध ही अधिक अनुकूल आता है ।

1–सर्वज्ञ के वचनामृत सिद्धान्त में दुहने से दो घड़ी के बाद कच्चे दूध को अभक्ष्य लिखा है तथा जिस का रंग, गन्ध, स्वाद और रूप बदल गया हो ऐसी खाने पीने की सब ही चीज़ों को अभक्ष्य कहा है, इसलिये ऊपर कही हुई बात का ख़याल सब वस्तुओं में रखना चाहिये क्योंकि ऐसी अभक्ष्य वस्तुयें अवश्य ही रोग का कारण होती हैं ॥

पोषण के सब पदार्थों में दूध बहुत उत्तम पदार्थ है क्योंकि–उस में पोषण के सब तत्त्व मौजूद हैं, केवल यही हेतु है कि–बीमार सिद्ध और योगी लोग बरसों तक दूध के द्वारा ही अपना निर्वाह कर आरोग्यता के साथ अपना जीवन विताते है, बहुत से लोगों को दूध पीने से दस्त लग जाते हैं और बहुतों को कब्जी हो जाती है, इस का हेतु केवल यही है कि–उन को दूध पीने का अभ्यास नही होता है परन्तु ऐसा होने पर भी उन के लिये दूध हानिकारक कभी नही समझना चाहिये, क्योंकि केवल पांच सात दिनतक उक्त अडचल रह कर पीछे वह आप ही शान्त हो जाती है और उन का दूध पीने का अभ्यास पड़ जाता है जिस से आगे को उन की आरोग्यता कायम रह सकती है, यह बिलकुल परीक्षा की हुई बात है इस लिये जहातक हो सके दूध का सेवन सदा करते रहना चाहिये, देखो । पारसी और अंग्रेज आदि श्रीमान् लोग दूध और उस में से निकाले हुए मक्खन मलाई और पनीर आदि पदार्थों का प्रतिदिन उपयोग करते है परन्तु आर्य जाति के श्रीमान् और भाग्यवान् लोग तो शाक राइता और लाल मिर्च आदि के मसालों आदि के शौक में पड़े हुए हैं, अब साधारण गरीब लोगों की तो बात ही क्या कहें ! इस का असली कारण सिर्फ यही है कि–आर्य जातिके लोग इस विद्या को बिलकुल नही समझते हैं इसी प्रकार से दूध की खुराक के विषय में मारवाड़ी प्रजा भी बिलकुल भूली हुई है, जब यह दशा है तो कहिये शरीर की स्थिति कैसे सुधर सकती है ? इस लिये इस देश के भाग्यवानों को उचित है कि–किस्से कहानी की पुस्तकों के पढ़ने तथा इधर उधर की निकम्मी गप्पों के द्वारा अपने समय को व्यर्थ में न गॅवा कर उत्तमोत्तम वैद्यक शास्त्र और पाकविद्या के ग्रन्थों को घण्टे दो घण्टे सदा पढ़ा करें तथा घर में रसोइया भी उसी को रक्खें जो इस विद्या का जाननेवाला हो तथा जिस प्रकार गाड़ी घोड़े आदि सब सामान रखते हैं उसी प्रकार गाय और भैस आदि उपयोगी पशुओं को रखना उचित है, बल्कि गाडी घोडे आदि के खर्च को कम करके इन उपयोगी पशुओं के रखने में अधिक खर्च करना चाहिये, क्योंकि गाड़ी घोड़ों से उतनी भाग्यवानी नही ठहर सकती है जितनी कि गायो और भैसो से ठहर सकती है, क्योंकि इन पशुओं की पालना कर इन के दूध घी और मक्खन आदि बुद्धिवर्धक उत्तमोत्तम पदार्थों के खाने से उन की और उन के लड़कों की बुद्धि स्थिर होकर बढ़ेगी तथा बुद्धि के बढ़ने से श्रीमत्त्व (श्रीमन्ताई वा भाग्यवानी) अवश्य बनी रहेगी, इस के सिवाय यह भी बात है कि–जितनी गायें और भैंसें पृथिवी पर अधिक होंगी उतना ही दूध और घी अधिक सस्ता होगा ।

१–देखो उपासक दशा सूत्र में दश बडे श्रीमान् श्रावकों का अधिकार है, उस मे यह लिखा है कि—कामदेव जी के ८० हजार गायें थीं तथा आनन्द जी के ४० हजार गायें थीं, इस प्रकार से दशों के गोकुल था ॥

विचार कर देखने से प्रतीत होता है कि–इन पशुओं से देश को बहुत ही लाभ पहुँचता है अर्थात् क्या गरीब और क्या अमीर सब का निर्वाह इन्हीं पशुओं से होता है, इस लिये इन पशुओं की पूरी सार सम्भाल और रक्षा कर अपनी आरोग्यता को कायम रखना और देश का हित करना सर्व साधारण का मुख्य कर्त्तव्य है, देखो! जब यह आर्य्यावर्त्त देश पूर्णतया उन्नति के शिखर पर पहुँचा हुआ था तब इस देश में इन पशुओंकी असंख्य कोटियां थीं परन्तु जब से दुर्भाग्य वश इस पवित्र देश की वह दशा न रही और मांसाहारी यवनों का इस पर अधिकार हुआ तब से मांसाहारियों ने इन पशुओं को मार २ कर इस देश को सब तरह से लाचार और निःसत्व कर दिया परन्तु सब जानते हैं कि वर्त्तमान समय श्रीमती बृटिश गवर्नमेंट के अधिकार में है और इस समय कोई किसी के साथ अत्याचार और अनुचित वर्त्ताव नहीं कर सकता है और न कोई किसी पर किसी तरह का दबाव ही डाल सकता है इस लिये इस सुधरे हुए समय में तो आर्य श्रीमन्तों को अपने हिताहित का विचार कर प्राचीन सन्मार्ग पर ध्यान देना ही चाहिये।

दूध में खार तथा खटाई का जितना तत्व मौजूद है उस से अधिक जब खार और खटाई का योग हो जाता है तब वह हानि करता है अर्थात् उस का गुणकारी धर्म नष्ट होजाता है इसलिये विवेक के साथ दूध का उपयोग करना चाहिये।

दूध के विषय में और भी कई बातें समझने की हैं जिन का समझ लेना सर्व साधारण को उचित है, वे ये हैं कि—जैसे दूध में खार तथा खटाई के मिलने से यह फट जाता है (इस बात को प्रायः सब ही जानते हैं) उसी प्रकार यदि खार तथा खटाई के साथ दूध खाया जावे तो वह अवश्य हानि करता है, वैद्यक ग्रन्थों का कथन है कि—यदि दूध को भोजन के समय खाना हो तो भोजन के सब पदार्थों को खा कर पीछे से दूध पीना चाहिये अथवा भोजन के पीछे भात के साथ दूध को खाना चाहिये, हां यदि भोजन में दूध के विरोधी खटाई, मिर्च, तेल, पापड़ और गुड़ आदि पदार्थ न हों तो भोजन के साथ ही में दूध को भी खा लेना चाहिये।

दूध के साथ खाने में बहुत से पदार्थ मित्र का काम करते हैं और बहुत से पदार्थ शत्रु का काम करते हैं, इस का कुछ संक्षिप्त वर्णन किया जाता है:—

दूध के मित्र—दूध में छः रस हैं—इसलिये इन छओं रसों के समान स्वभाववाले (छओं रसों के स्वभाव के तुल्य स्वभाववाले) पदार्थ दूध के अनुकूल अर्थात् मित्रवत् होते हैं, देखो। दूध में खट्टा रस है उस खटाई का मित्र आँवला है, दूध में मीठा रस है उस मीठे रस का मित्र बूरा या मिश्री है, दूध में कडुआ रस है उस कडुए रस का मित्र परवल है, दूध में तीखा रस है उस तीखे रस का मित्र सोंठ तथा अदरख है, दूध में

कषैला रस है उस कषैले रस का मित्र हरड है तथा दूध में खारा रस है उस खारे रस का मित्र सेंधानमक है, इन के सिवाय गेहूं के पदार्थ अर्थात् पूरी और रोटी आदि, चावल; घी, मक्खन, दाख, शहद, मीठे आम के फल, पीपल, काली मिर्च, तथा पाकों में जिन का उपयोग होता है वे पुष्टि और दीपन के सब पदार्थ भी दूध के मित्र वर्ग में है ॥

दूध के अमित्र (शत्रु)—सेंधे नमक को छोड़ कर बाकी के सब प्रकार के खार दूध के गुण को विगाड डालते हैं, इसी प्रकार आँवले के सिवाय सब तरह की खटाई, गुड़, मूँग, मूली, शाक, मद्य, मछली, और मास दूध के सङ्ग मिल कर शत्रु का काम करते है, देखो ! दूध के सङ्ग नमक वा खार, गुड, मूग, मौठ, मछली और मास के खाने से कोढ़ आदि चर्मरोग हो जाते है, दूध के साथ शाक, मद्य और आसव के खाने से पित्त के रोग होकर मरण हो जाता है ॥

ऊपर लिखी हुई वस्तुओं को दूध के साथ खाने पीने से जो अवगुण होता है यद्यपि उस की खवर खानेवाले को शीघ्र ही नहीं मालूम पडती है तथापि कालान्तर में तो वह अवगुण प्रबलरूप से प्रकट होता ही है, क्योंकि सर्वज्ञ परमात्मा ने भक्ष्याभक्ष्य निर्णय में जो कुछ कथन किया है तथा उन्हीं के कथन के अनुसार जैनाचार्य उमास्वाति वाचक आदि के वनाये हुए ग्रन्थों में तथा जैनाचार्य श्री जिनदत्त सूरि जी महाराज के वनाये हुए 'विवेकविलास, चर्चरी, आदि ग्रन्थो में जो कुछ लिखा है वह अन्यथा कभी नहीं हो सकता है, क्योंकि उक्त महात्माओं का कथन तीन काल में भी अबाधित तथा युक्ति और प्रमाणों से सिद्ध हैं, इस लिये ऐसे महानुभाव और परम परोपकारी विद्वानों के वचनों पर सदा प्रतीति रख कर सर्व जीवहितकारक परम पुरुष की आज्ञा के अनुसार चलना ही मनुष्य के लिये कल्याणकारी है, क्योंकि उन का सत्य वचन सदा पथ्य और सब के लिये हितकारी है।

देखो ! सैकड़ों मनुष्य ऊपर लिखे खान पान को ठीक तौर से न समझ कर जब अनेक रोगों के झपाटे में आ जाते हैं तब उन को आश्चर्य होता है कि अरे यह क्या हो गया ! हम ने तो कोई कुपथ्य नहीं किया था फिर यह रोग कैसे उत्पन्न हो गया ! इस प्रकार से आश्चर्य में पड कर वे रोग के कारण की खोज करते हैं तो भी उन को रोग का कारण नहीं मालूम पडता है, क्योंकि रोग के दूरवर्त्ती कारण का पता लगाना बहुत कठिन बात है, तात्पर्य यह है कि—बहुत दिनों पहिले जो इस प्रकार के विरुद्ध खान पान किये हुए होते हैं वे ही अनेक रोगों के दूरवर्त्ती कारण होते है अर्थात् उन का असर शरीर में विष के तुल्य होता है और उन का पता लगना भी कठिन होता है, इस लिये मनुष्यों को जन्मभर दु:ख में ही निर्वाह करना पड़ता है, इस लिये सर्व साधारण को उचित है कि—सयोगविरुद्ध भोजनों को जान कर उन का विष के तुल्य त्याग कर देवें,

क्योंकि देखो ! सदा पथ्य और परिमित (परिमाण के अनुकूल) आहार करनेवालों को भी जो अकस्मात् रोग हो जाता है उस का कारण भी वही अज्ञानता के कारण पूर्व समय में किया हुआ संयोग विरुद्ध आहार ही होता है, क्योंकि वही (पूर्व समयमें किया हुआ संयोगविरुद्ध आहार ही) समय पाकर अपने समवायों के साथ मिलकर झट मनुष्यको रोगी कर देता है, संयोगविरुद्ध आहार के बहुत से भेद हैं—उन में से कुछ भेदों का वर्णन समयानुसार क्रम से आगे किया जायगा ॥

घृत वर्ग ॥

घी के सामान्य गुण—घी रसायन, मधुर, नेत्रों को हितकर, अग्निदीपक, शीत वीर्यवाला, बुद्धिवर्धक, जीवनदाता, शरीर को कोमल करनेवाला, बल कान्ति और वीर्य को बढ़ानेवाला, मलनि सारक (मल को निकालनेवाला), भोजन में मिठास देनेवाला, वायुवाले पदार्थों के साथ खाने से उन (पदार्थों) के वायु को मिटानेवाला, गुमड़ों को मिटानेवाला, जखमी को बल देनेवाला, कण्ठ तथा स्वर का शोधक (शुद्ध करनेवाला), मेद और कफ को बढ़ानेवाला तथा अग्निदग्ध (आग से जले हुए) को लाभदायक है, वातरक्त, अजीर्ण, नशा, शूल, गोला, दाह, शोथ (सूजन), क्षय और कर्ण (कान) तथा मस्तक के रक्तविकार आदि रोगों में फायदेमन्द है, परन्तु साम ज्वर (आम के सहित बुखार) में और सन्निपात के ज्वर में कुपथ्य (हानिकारक) है, सादे ज्वर में बारह दिन वीतने के बाद कुपथ्य नहीं है, बालक और वृद्ध के लिये मतिकूल है, बढ़ा हुआ क्षय रोग, कफ का रोग, आमवात का रोग, ज्वर, हैजा, मलबन्ध, बहुत मदिरा के पीने से उत्पन्न हुआ मदात्यय रोग और मन्दाग्नि, इन रोगों में घृत हानि करता है, साधारण मनुष्यों के प्रतिदिन के भोजन में, थकावट में, क्षीणता में, पाण्डुरोग में और आंख के रोग में ताजा घी फायदेमन्द है, मूर्छा, कोढ़, विष, उन्माद, बादी तथा तिमिर रोग में एक वर्ष का पुराना घी फायदेमन्द है।

श्वास रोग वाले को बकरी का पुराना घी अधिक फायदेमन्द है।

गाय और भैंस आदि के दूध के गुणों में जो २ अन्तर कह चुके हैं वही अन्तर उन के घी में भी समझ लेना चाहिये।

१—यह दूध का तथा संयोगविरुद्ध आहार का (यथेप्सित) कुछ वर्णन किया है तथा कुछ वर्णन संयोगविरुद्ध आहार का (ऊपर लिखी प्रतिज्ञा के अनुसार) आगे किया जायगा इन दोनों का शेष वर्णन वैद्यक ग्रन्थों में देखना चाहिये ॥

२—घी को तपा कर तथा छान कर खाने के उपयोग में लाना चाहिये ॥

३—दूध के विषय जिस २ पशुके दूधमें जो २ गुण कहे हैं वेही गुण उस पशु के घी में भी जानने चाहियें ॥

सब तरह के मल्हमों में पुराना घी गुण करता है किन्तु केवल पुराने घी में भी मल्हम के सब गुण है ।

घी को शास्त्रकारों ने रत्न कहा है किन्तु विचार कर देखा जावे तो यह रत्न से भी अधिक गुणकारी है परन्तु वर्त्तमान समय में शुद्ध और उत्तम घी भाग्यवानों के सिवाय साधारण पुरुषों को मिलना कठिन सा होगया है, इस का कारण केवल उपकारी गाय भैस आदि पशुओं की न्यूनता ही है ॥

गाय का मक्खन—नवीन निकाला हुआ गाय का मक्खन हितकारी है, बलवर्धक है, रंग को सुधारता है, अग्नि का दीपन करता है तथा दस्त को रोकता है, वायु, पित्त, रक्तविकार, क्षय, हरस, अर्दित वायु तथा खासी के रोग में फायदा करता है, प्रातःकाल मिश्री के साथ खाने से यह विशेष कर शिर और नेत्रों को लाभ देता है तथा बालकों के लिये तो यह अमृतरूप है ॥

भैंस का मक्खन—भैस का मक्खन वायु तथा कफ को करता है, भारी है, दाह पित्त और श्रम को मिटाता है, मेद तथा वीर्य को बढ़ाता है[1] ॥

वासा मक्खन खारा तीखा और खट्टा होजानेसे वमन, हरस, कोढ़, कफ तथा मेद को उत्पन्न करता है[2] ॥

दधिवर्ग ॥

दही के सामान्य गुण—दही-गर्म, अग्निदीपक, भारी, पचनेपर खट्टा तथा दस्त को रोकनेवाला है, पित्त, रक्तविकार, शोथ, मेद और कफ को उत्पन्न करता है, पीनस, जुखाम, विषम ज्वर (ठढ का तप), अतीसार, अरुचि, मूत्रकृच्छ्र और कृशता (दुर्बलता) को दूर करता है, इस को सदा युक्ति के साथ खाना चाहिये ।

दही मुख्यतया पाच प्रकार[3] का होता है—मन्द, स्वादु, स्वाद्वम्ल, अम्ल और अत्यम्ल, इन के स्वरूप और गुणों का सक्षेप से वर्णन किया जाता है·—

मन्द—जो दही कुछ गाढ़ा हो तथा मिश्रित (कुछ दूध की तरह तथा कुछ दही की तरह) स्वादवाला हो उस को मन्द दही कहते है, यह–मल मूत्र की प्रवृत्ति को, तीनो दोषों को और दाह को उत्पन्न करता है ॥

स्वादु—जो दही खूब जम गया हो, जिस का स्वाद अच्छी तरह मालूम होता हो, मीठे रसवाला हो तथा अव्यक्त अम्ल रसवाला (जिस का अम्ल रस प्रकट में न मालूम

१–शेष पशुओं के मक्खन के गुणों का वर्णन अनावश्यक समझ कर नहीं किया ॥

२–यह घृत का सक्षेप से वर्णन किया गया है, इस का विशेष वर्णन दूसरे वैद्यक ग्रन्थों में देखना चाहिये ॥

३–वैसे देखा जावे तो मीठा और खट्टा, ये दो ही भेद प्रतीत होते हैं ॥

पड़ता हो) हो यह स्वादु दही कहलाता है, यह-चर्बी मेद तथा कफ को पैदा करता है परन्तु वायु को हरता है, रक्तपित्त में भी फायदा करता है ॥

स्वाद्वम्ल—जो दही खट्टा और मीठा हो, खूब जमा हुआ हो, खाने में थोड़ी सी तुर्सी देता हो उस को स्वाद्वम्ल दही कहते हैं, यह—मध्यम गुणवाला है ॥

अम्ल—जिस दही में मिठास बिलकुल न हो तथा खट्टा स्वाद प्रकट मालूम देता हो उस को अम्ल दही कहते हैं, यह—यद्यपि अग्नि को तो प्रदीप्त करता है परन्तु पित्त कफ और खून को बढ़ाता है और बिगाड़ता है ॥

अत्यम्ल—जिस दही के खाने से दाँत बँध से जावें (खट्टे पड़ जाने के कारण जिन से रोटी आदि भी ठीक रीति से न खाई जा सके ऐसे हो जावें), रोमाञ्च होने लगे (रोंगटे खड़े हो जावें,) अत्यन्त ही खट्टा हो, कण्ठ में जलन हो जावे उस को अत्यम्ल दही कहते हैं, यह दही भी यद्यपि अग्नि को प्रदीप्त करता है परन्तु पित्त और रक्त को बहुत ही बिगाड़ता है ।

इन पाँचों प्रकार के दहियों में से स्वाद्वम्ल दही सब से अच्छा होता है ॥

उपयोग—गर्म किये हुए दूध में जाँवन देकर जो दही बनता है वह कच्चे दूध के जमाये हुए दही की अपेक्षा अधिक गुणकारी है, क्योंकि वह दही रुचिकर्ता पित्त और वायु को मिटानेवाला तथा धातुओं को ताकत देनेवाला है ।

मलाई निकाला हुआ दही दस्त को रोकता है, ठंढा है, वायु को उत्पन्न करता है, हलका है, ग्राही है और अग्नि को प्रदीप्त करता है, इसलिये ऐसा दही पुराने मरोड़े, ग्रहणी और दस्त के रोग में हितकारी है ।

कपड़े से छना हुआ दही बहुत स्निग्ध, वायुहर्त्ता, कफ का उत्पन्न करनेवाला, भारी, शक्तिदायक पुष्टिकारक और रुचिकारक है तथा मीठा होने से यह पित्त को भी अधिक नहीं बढ़ाता है, यह गुण उस दही का है जिसे कपड़े में बांध कर उस का पानी टपका दिया गया हो, ऐसे (पानी टपकाये हुए) दही को मिश्री मिला कर खाने से यह प्यास, पित्त, रक्तविकार तथा दाह को मिटाता है ।

गुड़ डालकर खाया हुआ दही वायु को मिटाता है, पुष्टिकर्त्ता तथा भारी है ।

वैद्यक शास्त्र और धर्मशास्त्र रात्रि को यद्यपि सब ही भोजनों की मनाई करते हैं परन्तु उस में भी दही खाने की तो बिलकुल ही मनाई की है क्योंकि उपयोगी पदार्थों को साथ में मिला कर भी रात्रि को दही के खाने से अनेक प्रकार के महा भयंकर रोग उत्पन्न होते हैं, इस लिये रात्रि को दही का भोजन कभी नहीं करना चाहिये तथा जिन २ ऋतुओं में दही का खाना निषिद्ध है उन २ ऋतुओं में भी दही नहीं खाना चाहिये ।

हेमन्त शिशिर और वर्षा ऋतु में दही का खाना उत्तम है तथा शरद् (आश्विन और कार्त्तिक) ग्रीष्म (ज्येष्ठ और आषाढ) और वसन्त (चैत्र और वैशाख) ऋतु में दही का खाना मना है ।

बहुत से लोग ऋतु आदि का भी कुछ विचार न करके प्रतिदिन दही का सेवन करते है यह महा हानिकारक बात है, क्योंकि ऐसा करने मे रक्तविकार, पित्त, वातरक्त, कोढ, पाण्डु, भ्रम, भयकर कामला (पीलिये का रोग), आलस्य, शोथ, बुढ़ापे में खासी, निद्रा का नाश, पुरुषार्थ का नाश और अल्पायु का होना आदि बहुत सी हानिया हो जाती है ।

क्षय, वादी, पीनस और कफ के रोगियों को खाली दही भूल कर भी कभी नहीं खाना चाहिये, हा यदि उपयोगी पदार्थों को मिलाकर खाया जावे तो कोई हानि की बात नहीं है किन्तु उपयोगी पदार्थों को मिलाकर खाने से लाभ होता है, जैसे–गुड और काली मिर्च को दही में मिला कर खाने से प्रायः पीनस रोग मिट जाता है इत्यादि ॥

दही के मित्र—नमक, खार, घी, शक्कर, बूरा, मिश्री, शहद, जीरा, काली मिर्चें, आँवले, ये सब दही के मित्र है इस लिये इन में से किसी चीज के साथ दही को खाना उचित है, हा इस विषय में यह अवश्य स्मरण रखना चाहिये कि दोष तथा प्रकृति को विचार कर इन वस्तुओं का योग करना चाहिये, इन वस्तुओं के योग का कुछ वर्णन भी करते है–घी के साथ दही वायु को हरता है, आवले के साथ कफ को हरता है, शहद के साथ पाचनशक्ति को बढाता है परन्तु ऐसा करने से कुछ विगाड भी करता है, मिश्री बूरा और कद के साथ दाह, खून, पित्त तथा प्यास को मिटाता है, गुड के साथ ताकत को देता है, वायु को दूर करता है, तृप्ति करता है, नमक जीरा और जल डाल कर खाने से विशेष हानि नहीं करता है परन्तु जिन रोगो मे दही का खाना मना है उन रोगों में तो नमक जीरा और जल मिला कर भी खाने से हानि ही करता है ॥

तक्रवर्ग ॥

छाँछ की जाति और गुण निम्न लिखित है:—

१–घोल—विना पानी डाले तथा दही की थर (मलाई) विना निकाले जो विलोया

१–वीकानेर के ओसवाल लोग अपनी इच्छानुसार प्रतिदिन मनमाना दही का सेवन करते है ओसवाल लोग ही क्या किन्तु उक्त नगर के प्राय सब ही लोग प्रात काल दही मोल लेकर उस के साथ ठढी रोटी से सिरावणी हमेशा किया करते हैं, यह उन के लिये अति हानिकारक बात है ॥

२–परन्तु स्मरण रहे कि–बहुत गर्म करके दही को खाना विप के समान असर करता है ॥

३–यह दही का सक्षेप से वर्णन किया गया, इस का विशेप वर्णन दूसरे वैद्यक ग्रन्थों मे देख लेना चाहिये ॥

४–इसे छाछ, मठा, मट्ठा तथा तक्र भी कहते हैं ॥

५–अधिक पानी डाली हुई, कम पानी डाली हुई तथा विना पानी की छाछ के गुणों मे अन्तर होता है ॥

जावे उसे घोल कहते हैं, इस में मीठा डाल कर खाने से यह कच्चे आम के रस के समान गुण करता है ॥

२–मथित—भर निकालकर जो विलोया जावे उसे मथित कहते हैं, यह वायु पित्त और कफ का हरनेवाला तथा हृद्य (हृदय को प्यारा लगनेवाला) है ॥

३–उदश्वित्—आधा दही तथा आधा जल डाल कर जो विलोया जावे उसे उदश्वित् कहते हैं, यह कफ करता है, ताकत को बढ़ाता है और आम को मिटाता है ॥

४–छछिका (छाछ)—जिस में पानी अधिक डाला जावे तथा विलो कर जिस का मक्खन बिलकुल निकाल लिया जावे उसे छछिका या छाछ कहते हैं, यह हलकी है, पित्त, थकावट और प्यास को मिटाती है, वातनाशक तथा कफ को करनेवाली है, नमक डाल कर इस का उपयोग करने से यह अग्नि को प्रदीप्त करती है तथा कफ को कम करती है ॥

५–तक्र—दही के सेर भर परिमाण में पाव भर पानी डाल कर जो विलोया जावे उसे तक्र कहते हैं, यह दस्त को रोकता है, पचने के समय मीठा है इसलिये पित्त को नहीं करता है, कुछ खट्टा होने से यह उष्णवीर्य है तथा रूक्ष होने से कफ को नष्ट करता है, योगचिन्तामणि तथा श्रीआयुर्वेदार्णव महासंहिता में श्री हेमचन्द्राचार्य ने लिखा है कि–तक्र का यथायोग्य सेवन करनेवाला पुरुष कभी व्यवहार नय से रोगी नहीं होता है और तक्र से दग्ध हुए (जले हुए वा नष्ट हुए) रोग फिर कभी नहीं होते हैं, जैसे स्वर्ग के देवताओं को अमृत सुख देता है उसी प्रकार मृत्युलोक में मनुष्यों के लिये तक्र अमृत के समान सुखदायक है[1] ।

तक्र में जितने गुण होते हैं वे सब उस के आधार रूप दही में से ही आते हैं अर्थात् जिस २ प्रकार के दही में जो २ गुण कहे हैं उस २ प्रकार के दही से उत्पन्न हुए तक्र में भी वे ही गुण समझने चाहियें[2] ॥

तक्रसेवनविधि—वायु की प्रकृतिवाले को तथा वायु के रोगी को खट्टी छाछ में सैंधा नमक डाल कर पीने से लाभ होता है, पित्त की प्रकृतिवाले को तथा पित्त के रोगी को मिश्री डाल कर मीठी छाछ के पीने से लाभ होता है तथा कफ की प्रकृतिवाले को और कफ के रोगी को सज्जक नमक, सोंठ, मिर्च और पीपल का चूर्ण मिला कर छाछ के पीने से बहुत लाभ होता है ।

१–यथा च श्लोकः– न तक्रसेवी व्यथते कदाचित् न तक्रदग्धाः प्रभवन्ति रोगाः ॥ यथा सुराणाममृतं सुखाय तथा नराणां भुवि तक्रमाहुः ॥ १ ॥ इस का अर्थ ऊपर लिखे अनुसार ही है ॥

२–यदि दही खराब हो तो उस का तक्र भी नौगुणकारी होता है ॥

शीतकाल, अग्निमान्द्य (अग्नि की मन्दता), कफसम्बन्धी रोग, मलमूत्र का साफ न उतरना, जठराग्नि के विकार, उदररोग, गुल्म और हरस, इन रोगों में छाछ बहुत ही लाभदायक है।

अकेली छाछ का ही ऐसा प्रयोग है कि–उस से असाध्य संग्रहणी तथा हरस जैसे भयंकर रोग भी अच्छे हो जाते है, परन्तु पूर्ण विद्वान् वैद्य की सम्मति से इन रोगों में छाछ लेने की युक्ति को समझ कर उस का उपयोग करना चाहिये, क्योंकि अम्लपित्त और संग्रहणी ये दोनों रोग प्राय· समान ही मालूम पड़ते हैं तथा इन दोनों को अलग २ पहिचान लेना मूर्ख वैद्य को तो क्या किन्तु साधारण शास्त्रज्ञानवाले वैद्य को भी कठिन पडता है, तात्पर्य यह है कि इन दोनों की ठीक तौर से परीक्षा तो पूर्ण वैद्य ही कर सकता है, इस लिये पूर्ण वैद्य के द्वारा रोग की परीक्षा होकर यदि सग्रहणी का रोग सिद्ध हो जावे तो छाछ को पीना चाहिये, परन्तु यदि अम्लपित्त रोग का निश्चय हो तो छाछ को कदापि नहीं पीना चाहिये, क्योंकि सग्रहणी रोग में छाछ अमृत के तुल्य और अम्लपित्त रोग में विष के तुल्य असर करती है ॥

तक्रसेवननिषेध—जिस के चोट लगी हो उसे, घाववाले को, मल से उत्पन्न हुए शोथ रोगवाले को, श्वास के रोगी को, जिस का शरीर सूख कर दुर्बल हो गया हो उस को, मूर्छा भ्रम उन्माद और प्यास के रोगी को, रक्तपित्तवाले को, राजयक्ष्मा तथा उरःक्षत के रोगी को, तरुण ज्वर और सन्निपात ज्वरवाले को तथा वैशाख जेठ आश्विन और कार्त्तिक मास में छाछ नहीं पीनी चाहिये, क्योंकि उक्त रोगों में छाछ के पीने से दूसरे अनेक रोगों के उत्पन्न होने का सभव होता है तथा उक्त मासों में भी छाछ के पीने से रोगोत्पत्ति की सम्भावना रहती है ॥

१–प्रिय पाठकगण! वैद्य की पूरी बुद्धिमत्ता रोग की पूरी परीक्षा कर लेने में ही जानी जाती है, परन्तु वर्त्तमान समय में उदरार्थी अपठित तथा अर्धदग्ध मूर्ख वैद्य बहुत से देखे जाते हैं, ऐसे लोग रोग की परीक्षा कभी नहीं कर सकते हैं, ऐसे लोग तो प्रतिदिन के अभ्यास से केवल दो चार ही रोगों को तथा उन की ओषधि को जाना करते हैं, इसलिये समान लक्षणवाले अथवा कठिन रोगों का अवसर आ पड़ने पर इन लोगों से अनर्थ के सिवाय और कुछ भी नहीं बन पडता है, देखो! ऊपर लिखे अनुसार अम्लपित्त और सग्रहणी प्राय समान लक्षणवाले रोग हैं, अब विचारिये कि–सग्रहणी के लिये तो छाछ अद्वितीय ओषधि है और अम्लपित्त पर वह घोर विष के तुल्य है, यदि लक्षणो का ठीक निश्चय न कर अम्लपित्त पर छाछ दे दी जावे तो रोगी की क्या दशा होगी, इसी प्रकार से समान लक्षणवाले बहुत से रोग हैं जिनका वर्णन ग्रन्थ के विस्तार के भय से नहीं करना चाहते हैं और न उन के वर्णन का यहा प्रसग ही है, केवल छाछ के प्रसग से यह एक उदाहरण पाठकों को बतलाया है, इस लिये प्रत्येक मनुष्य को उचित है कि–प्रथम योग्य उपायों से वैद्य की पूरी परीक्षा करके फिर उससे रोग की परीक्षा करावे ॥

२–यह तक्र का सक्षेप से वर्णन किया गया, इस का विशेष वर्णन दूसरे वैद्यक ग्रन्थो मे देखना चाहिये ॥

फलवर्ग ॥

इस देश के निवासी लोग जिन २ फलों का उपयोग करते हैं उन सब में मुख्य आम्र (आम) का फल है तथा यह फल अन्य फलों की अपेक्षा प्रायः हितकारी भी है, इस के सिवाय और भी बहुत से फल हैं जो कि अनेक देशों में ऋतु के अनुसार उत्पन्न होते तथा लोगों के उपयोग में आते हैं परन्तु फलों के उपयोग के विषय में भी हमारे बहुत से प्रिय बन्धु उन के (फलों के) गुण और अवगुण से बिलकुल अनभिज्ञ हैं, इस लिये कुछ आवश्यक उपयोग में आनेवाले फलों के गुणों को लिखते हैं —

कच्चे आम—गर्म, खट्टे, रुचिकर तथा ग्राही हैं, पित्त, वायु, कफ तथा खून में विकार उत्पन्न करते हैं, परन्तु कण्ठ के रोग, वायु के प्रमेह, योनिदोष, व्रण (घाव) और अतीसार में लाभदायक (फायदेमन्द) हैं ॥

पके आम—वीर्यवर्धक, कान्तिकारक, तृप्तिकारक तथा मांस और बल को बढ़ाने वाले हैं, कुछ कफकारी हैं इस लिये इन के रस में थोड़ी सी सोंठ डालकर उपयोग में लाना चाहिये ।

आमों की बहुत सी जातियां हैं तथा जाति भेद से इनके स्वाद और गुणों में भी थोड़ा बहुत अन्तर होता है किन्तु सामान्य गुण तो (जो कि ऊपर लिखे हैं) प्रायः सब में समान ही हैं ॥

जामुन—ग्राही (मल को रोकनेवाले), मीठे, कफनाशक, रुचिकर्त्ता, वायुनाशक और प्रमेह को मिटानेवाले हैं, उदर विकार में इन का रस अथवा सिरका लाभदायक है अर्थात् अजीर्ण और मन्दाग्नि को मिटाता है ॥

बेर—बेर यद्यपि अनेक जाति के होते हैं परन्तु मुख्यतया उन के दो ही भेद हैं अर्थात् मीठे और खट्टे, बेर कफकारी तथा बुखार और खांसी को उत्पन्न करते हैं, वैद्यक शास्त्रमें कहा है कि–'' हरीतकी सदा पथ्यं, कुपथ्यं बदरीफलम्'' अर्थात् हरड़ सदा पथ्य है और बेर सदा कुपथ्य है, ।

---

१ इस के संस्कृत में आम्र रसाल सहकार अतिसौरभ और कामाग आदि अनेक नाम हैं, इस भाषा में आम कहते हैं तथा मारवाड़ में आंबा कहते हैं ॥

२–इन को मारवाड़ में केरी अथवा कची केरी कहते हैं ॥

३–मुर्शिदाबाद में एक प्रकार के कच्चे मीठे आम होते हैं तथा इन को वहांवाले कचमीठे आम कहते हैं। बनारस में एक प्रकार का लंगड़ा आम बहुत उत्तम होता है तथा फर्रुखाबाद में आम अनेक प्रकार के होते हैं जैसे–बम्बई, मालदह, फिजली तथा बादशाहनगर बलरूम्बई, अनमाली और गोपालभोग आदि यद्यपि ये सब में सब ही उत्तम होते हैं परन्तु फिजली और गोपालभोग ये दो प्रकार के आम तो अति प्रशंसनीय होते हैं, उक्त नगर में आम बहुतायत से उत्तम होता है अतः सस्ता भी बहुत मिलता है ॥

बेरों में प्रायः जन्तु भी पड़ जाते हैं इसलिये इस प्रकार के तुच्छ फलों को जैनसूत्र-कारने अभक्ष्य लिखा है, अतः इन का खाना उचित नहीं है ॥

अनार—यह सर्वोत्तम फल है, इस की मुख्य दो जातियां है—मीठी और खट्टी, इन में से मीठी जाति का अनार त्रिदोषनाशक है तथा अतीसार के रोग में फायदेमन्द है, खट्टी जाति का अनार वादी तथा कफ को दूर करता है, कावुल का अनार सब से उत्तम होता है तथा कन्धार पेशावर जोधपुर और पूना आदि के भी अनार खाने में अच्छे होते हैं, इस के शर्वत का उष्णकाल में सेवन करने से वहुत लाभ होता है ॥

केला—स्वादु, कषैला, कुछ ठढा, वलदायक, रुचिकर, वीर्यवर्धक, तृप्तिकारक, मांस-वर्धक, पित्तनाशक तथा कफकर्त्ता है, परन्तु दुर्जर अर्थात् पचने में भारी होता है, प्यास, ग्लानि, पित्त, रक्तविकार, प्रमेह, भूख, रक्तपित्त और नेत्ररोग को मिटाता है, भस्मकरोग[1] में इस का फल बहुत ही फायदेमन्द है ॥

आँवला—ईषन्मधुर (कुछ मीठा), खट्टा, चरपरा, कषैला, कडुआ, दस्तावर, नेत्रों को हितकारी, वलवुद्धिदायक, वीर्यशोधक, स्मृतिदाता, पुष्टिकारक तथा त्रिदोषनाशक है, सब फलों में आँवले का फल सर्वोत्तम तथा रसायन है—अर्थात् खट्टा होने के कारण वादी को दूर करता है, मीठा तथा ठढा होने से पित्तनाशक है, रूक्ष तथा कषैला होने से कफ को दूर करता है।

ये जो गुण है वे गीले (हरे) आँवले के हैं, क्योंकि—सूखे आँवले में इतने गुण नहीं होते है, इसलिये जहातक हरा आँवला मिल सके वहातक बाजार में बिकता हुआ सूखा आँवला नहीं लेना चाहिये।

दिल्ली तथा बनारस आदि नगरों में इस का मुरब्बा और अचार भी बनता है परन्तु मुरब्बा जैसा अच्छा बनारस में बनता है वैसा और जगह का नहीं होता है, वहा के आँवले वहुत वडे होते है जो कि सेर भर में आठ तुलते है।

सूखे आँवले में काली मिर्च मिलाकर चैत्र तथा आश्विन मास में भोजन के पीछे उस की फँकी बीकानेर आदि के निवासी मारवाडी लोग प्रायः हरेक रोग में लेते हैं परन्तु उन लोगों को वह अधिक गुण नहीं करता है इस का कारण यह है कि उन लोगों में तेल और लाल मिर्चका उपयोग[2] बहुत ही है किन्तु कभी २ उलटी हानि हो जाती है, यदि हरे अथवा सूखे आँवलों का सेवन युक्ति से किया जावे तो इस के समान दूसरी कोई

१—जिस मे मनुष्य कितना ही खावे परन्तु उसकी भोजन से तृप्ति नहीं होती है उस को भस्मक रोग कहते हैं ॥

२—वहा के लोग मिर्च इतनी डालते हैं कि शाक और दालमे केवल मिर्च ही दृष्टिगत होती है तथा कभी २ मिर्चकाही शाक वना लेते है ॥

औषधि नहीं है, आँवले के सेवन की यद्यपि अनेक युक्तियां हैं परन्तु उन में से केवल एक युक्ति को लिखते हैं, वह युक्ति यह है कि—सूखे आँवले को हरे आँवले के रस की अथवा सूखे आँवले के काथ[1] की एक सौ वार भावना देकर सुखाते रहना चाहिये, इसके बाद उस का सेवन कर ऊपर से दूध पीना चाहिये, ऐसा करने से यह अकथनीय लाभ करता है अर्थात् इस के गुणों की संख्या का वर्णन करने में लेखनी भी समर्थ नहीं है, इस के सेवन से सब रोग नष्ट हो जाते हैं तथा बुढ़ापा बिलकुल नहीं सताता है, इस का सेवन करने के समय में गेहूँ, घी, बूरा, चावल और मूंग की दाल को खाना चाहिये।

इस के कच्चे फल भी हानि नहीं करते हैं तथा इस का मुरब्बा आदि सदा खाया जावे तो भी अति लाभकारी ही है ॥

नारङ्गी (सन्तरा)—मधुर, रुचिकर, शीतल, पुष्टिकारक, सूक्ष्म, जठराग्नि दीपक, हृदय को हितकारी, त्रिदोषनाशक और शूल तथा कृमि का नाशक है, मन्दाग्नि, श्वास, वायु, पित्त, कफ, क्षय, शोष, अरुचि और वमन आदि रोगों में पथ्य है, इस का शर्वत गर्मी में प्रातःकाल पीने से तरावट बनी रहती है तथा अधिक प्यास नहीं लगती है।

नारंगी की मुख्य दो जातियां हैं—खट्टी और मीठी, उन में से खट्टी नारंगी को नहीं खाना चाहिये, इस के सिवाय इस की जँभीरी आदि भी कई जातियां हैं, नागपुर (दक्षिण) का सन्तरा अत्युत्तम होता है ॥

दाख या अंगूर—गीली दाख खट्टी और मीठी होती है तथा इस की काली और सफेद दो जातियां हैं, बम्बई नगर के क्राफर्ड मार्केट में यह हमेशा मनों मिलती है तथा और भी स्थानों में अंगूर की पेटियां बिकती हैं, खट्टी दाख खाने से अवगुण करती है, इस लिये उसे नहीं खाना चाहिये, हरी दाख कफ करती है इस लिये थोड़ा सा सेंधा-नमक लगा कर उसे खाना चाहिये, सब मेवाओं में दाख भी एक उत्तम मेवा है, सूखी मुनक्का अर्थात् काली दाख सब प्रकार की प्रकृतिवाले पुरुषों के अनुकूल और सब रोगों में पथ्य है, वैद्य लोग बीमार को इस के खाने का निषेध नहीं करते हैं, यह मीठी, तृप्ति कारक, नेत्रों को हितकारी, ठंढी श्रमनाशक, सारक (दस्तावर) तथा पुष्टिकारक है, रक्त-विकार, दाह, शोष, मूर्छा, ज्वर, श्वास, खांसी, मद्य पीने से उत्पन्न हुए रोग, वमन, शोष और वातरक्त आदि रोगों में फायदेमन्द है ॥

नींबू—नींबू खट्टे और मीठे दो प्रकार के होते हैं—इन में से मीठा नींबू पूर्व में बहुत होता है, जिस में बड़े को चकोतरा कहते हैं, एफ्रीका देशके जंगबहार सहर में भी मीठे नींबू होते हैं उन को वहांवाले मचूंगा कहते हैं, वहां के ये मीठे नींबू बहुत ही मीठे होते

१—यद्यपि हरे आँवले के रस की ही भावना देनी चाहिये क्योंकि सूखे आँवले के काथ की भावना की अपेक्षा यह (हरे आंवले के रस की भावना) अधिक लाभदायक है ॥

है जिनके सामने नागपुर के सन्तरे भी कुछ नहीं है, इन के अधिक मीठे गुण के कारण ही डाक्टर लोग पित्तज्वर में वहा वहुत देते है, फलों में मीठे नींबू की ही गिनती है किन्तु खट्टे नींबू की नहीं है क्योंकि खट्टे नीबू को वैसे (केवल) कोई नही खाता है किन्तु शाक और दाल आदि में इस का रस डाल कर खाया जाता है तथा डाक्टर लोग सूजन में मसूड़े के दर्द में तथा मुख से खून गिरने में इसे चुसाया करते हैं तथा इस की सिकञ्जिवी को भी जल में डालकर पिलाते है, इस के सिवाय यह अचार और चटनी आदि के भी काम में आता है ॥

नीबू में बहुत से गुण है परन्तु इस के गुणों को लोग बहुत ही कम जानते है अन्य पदार्थों के साथ सयोग कर खाने से यह (खट्टा नींबू) बहुत फायदा करता है ॥

मीठा नींबू—स्वादु, मीठा, तृप्तिकर्त्ता, अतिरुचिकारक और हलका है, कफ, वायु, वमन, खासी, कण्ठरोग, क्षय, पित्त, शूल, त्रिदोष, मलस्तम्भ (मलका रुकना), हैज़ा, आमवात, गुल्म (गोला), कृमि और उदरस्थ कीडों का नाशक है, पेट के जकड़ जाने-पर, दस्त बद होकर वद्ध गुदोदर होने पर, खाने पीनेकी अरुचि होनेपर, पेट में वायु तथा शूल का रोग होने पर, शरीर में किसी प्रकार के विप के चढ़ जाने पर तथा मूर्च्छा होने पर नींबू बहुत फायदा करता है।

बहुत से लोग नीबू के खट्टेपन से डर कर उस को काम में नहीं लाते हैं परन्तु यह अज्ञानता की बात है, क्योंकि नीबू बहुत गुणकारक पदार्थ है, उस का सेवन खट्टेपन से डर कर न करना बहुत भूल की बात है, देखो! ज्वर जैसे तीव्ररोग में भी युक्ति से सेवन करने से यह कुछ भी हानि नहीं करता है किन्तु फायदा ही करता है।

नींबू की चार फांकें कर के एक फाक में सोंठ और सेंधानमक, दूसरी में काली मिर्चे, तीसरी में मिश्री और चौथी फाक में डीका माली भर कर चुसाने से जी मचलाना, वमन, वदहजमी और ज्वर आदि रोग मिट जाते है, यदि प्रातःकाल में सदा गर्म पानी में एक नींबू का रस डालकर पीने का अभ्यास किया जावे तो आरोग्यता बनी रहती है तथा उस में बूरा या मिश्री मिला कर पीने से यकृत् अर्थात् लीवर भी अच्छा बना रहता है।

बहुत से लोग प्रातःकाल चाह (चाय) आदि पीते हैं उस के स्थान में यदि इस के पीने का अभ्यास किया जावे तो बहुत लाभ हो सकता है, क्योंकि चाह आदि की अपेक्षा यह सौ गुणा फायदा पहुँचाता है ॥

नींबू का बाहिरी उपयोग—नहाने के पानी में दो तीन नींबुओं का रस निचोड़ कर उस पानी से नहाने से शरीर अच्छा रहता है अर्थात् चमडी के छिद्र मैल से बद

नहीं होते हैं, यदि मन्द भी हों तो मैल दूर होकर छिद्र खुल जाते हैं तथा ऐसा करने से दाद खाज और फुन्सी आदि चमड़ी के रोग भी नहीं होते हैं।

प्रत्येक मनुष्यको उचित है कि–दाल और शाक आदि नित्य की खुराक में तथा उस के अतिरिक्त भी नींबू को काम में लाया करे, क्योंकि यह अधिक गुणकारी पदार्थ है और सेवन करने से आरोग्यता को रखता है ॥

खजूर—पुष्टिकारक, स्वादिष्ट, मीठी, ठंढी, ग्राही, रक्तशोधक, हृदय को हितकारी और त्रिदोषहर है, श्वास, थकावट, क्षय, विष, प्यास, शोष (शरीर का सूखना) और अम्लपित्त जैसे महाभयंकर रोगों में पथ्य और हितकारक है, इस में अवगुण केवल इतना है कि–यह पचने में भारी है और कृमि को पैदा करती है इस लिये छोटे बालकों को किसी प्रकार की भी खजूर को नहीं खाने देना चाहिये।

खजूर को घी में तलकर खाने से उक्त दोनों दोष कुछ कम हो जाते हैं।

गर्मी की ऋतु में खजूर का पानी कर तथा उस में थोड़ा सा अमिली (इमली) का खट्टा पानी डाल कर सर्बत की तरह बनाकर यदि पिया जावे तो फायदा करता है।

पिण्ड खजूर और सूखी खारक (छुहारा) भी एक प्रकार की खजूर ही है परन्तु उस के गुण में थोड़ासा फर्क है ॥

फालसा, पीलू और करोंदे के फल—ये तीनों पित्त तथा आमवात के नाशक हैं, सब प्रकार के प्रमेह रोग में फायदेमन्द है, उष्ण काल में फालसे का सर्बत सेवन करने से बहुत लाभ होता है, कच्चे फालसे को नहीं खाना चाहिये क्योंकि वह पित्त को उत्पन्न करता है ॥

सीताफल—मधुर, ठंढा और पुष्टिकारक है परन्तु कफ और वायु को उत्पन्न करता है ॥

जामफल[1]—स्वादिष्ट, ठंढा, वृष्य, रुचिकर, वीर्यवर्धक और त्रिदोषहर है परन्तु तीक्ष्ण और भारी है, कफ और वायु को उत्पन्न करता है किन्तु उन्माद रोगी (पागल) के लिये पथ्य है ॥

सकरकन्द—मधुर, रुचिकर, हृदय को हितकारी, शीतल, ग्राही और पित्तहर है, अतीसार रोगी को फायदेमन्द है, इस का मुरब्बा भी उत्तम होता है ॥

अञ्जीर—ठंढी और भारी है, रक्तविकार, दाह, वायु तथा पित्त को नष्ट करती है,

---

१–इस को पूर्व में लकड़ी तथा अमरूद भी कहते हैं, सब से अच्छा अमरूद प्रयाग (इलाहाबाद) का होता है, क्योंकि वहां का अमरूद मीठा सुगंधित अल्प बीजोंवाला और बहुत बड़ा होता है ॥

देशी अञ्जीर को गूलर कहते है, यह प्रमेह को मिटाता है परन्तु इस में छोटे २ जीव होते हैं इस लिये इस को नही खाना चाहिये ॥

असली अञ्जीर कावुल में होती है तथा उस को मुसलमान हकीम वीमारों को वहुत खिलाया करते है ॥

इमली—कच्ची इमली के फल अभक्ष्य है इसलिये उन को कभी उपयोग में नही लाना चाहिये क्योंकि उपयोग में लाने से वे पेट में दाह रक्तपित्त और आम आदि अनेक रोगों को उत्पन्न करते है।

पक्की इमली—वायु रोग में और शूल रोग में फायदेमन्द है, यह वहुत ठढी होने के कारण शरीर के साधों (सन्धियों) को जकड देती है, नसो को ढीला कर देती है इस लिये इस को सदा नही खाना चाहिये।

चीनापट्टन, द्रविड, कर्णाटक तथा तैलग देशवासी लोग इस के रस में मिर्च, मसाला, अरहर (तूर) की दाल का पानी और चावलों का माड डाल कर उस को गर्म कर (उवाल कर) भात के साथ नित्य दोनों वक्त खाते है, इसी प्रकार अभ्यास पड़ जाने से गर्म देशो में और गर्म ऋतु में भी वहुत से लोग तथा गुजराती लोग भी दाल और शाकादि में इस को डाल कर खाते हैं तथा गुजराती लोग गुड़ डाल कर हमेशा इस की कढ़ी वना कर भी खाते है, हैदरावाद आदि नगरो में वीमार लोग भी इमली का कट्ट खाते है, इसी प्रकार पूर्व देशवाले लोग अमचुर की खटाई डाल कर माडिया वना कर सलोनी दाल और भात के साथ खाते है परन्तु निर्भय होकर अधिक इमली और अमचुर आदि खटाई खाना अच्छा नहीं है किन्तु ऋतु तासीर रोग और अनुपान का विचार कर इस का उपयोग करना उचित है क्योंकि अधिक खटाई हानि करती है[3]।

नई इमली की अपेक्षा एक वर्ष की पुरानी इमली अच्छी होती है उस के नमक लगा कर रखना चाहिये जिस से वह खराव न हो।

इमली के शर्वत को मारवाड़ आदि देशों में अक्षयतृतीया के दिन वहुत से लोग बनाकर काम में लाते है यह ऋतु के अनुकूल है।

इमली को भिगोकर उस के गूदे में नमक डाल कर पैरो के तलवों और हथेलियों में मसलने से लगी हुई लू शीघ्र ही मिट जाती है।

१–इसी प्रकार वड और पीपल आदि वृक्षों के फल भी जैनसिद्धान्त मे अभक्ष्य लिखे हैं, क्योंकि इन के फलों में भी जन्तु होवे हैं, यदि इस प्रकार के फलों का सेवन किया जावे तो वे पेट मे जाकर अनेक रोगों के कारण हो जाते हैं ॥

२–इस को अमली, आँवली तथा पूर्व मे चिया और ककोना भी कहते हैं ॥

३–देखो किसी का वचन है कि–"गया मर्द जो खाय खटाई। गई नारि जो खाय मिठाई ॥ गई हाट जॅह मॅडी हथाई, गया वृक्ष जँह वगुला वैठा, गया गेह जॅह मोडा (धूर्त्त साधु) पैठा ॥ १ ॥

नारियल—बहुत मीठा, चिकना, हृदय को हितकारी, पुष्ट, बस्तिशोधक और रक्त पित्तनाशक है, पारेआदि की गर्मी में तथा अम्लपित्त में इस का पानी तथा नारिकेर खण्डपाक बहुत फायदेमन्द है और वीर्यवर्धक है ।

कई देशों में बहुत से लोग नारियल के पानी को उष्ण ऋतु में पीते हैं यह बेशक फायदेमन्द होता है परन्तु इतना अवश्य खयाल रखना चाहिये कि निरन्न (निने, खाली अर्थात् अन्न खाये बिना) कलेजे तथा दिन को निद्रा लेकर उठने के पीछे एक घण्टे तक इस को नहीं पीना चाहिये जो इस बात का खयाल नहीं रक्खेगा उस को जन्म भर पछताना पड़ेगा ॥

खरबूजा तथा मीठे खट्टे काचर—ये भी ककड़ी ही की एक जाति हैं, जो नदी की बालू में पकता है उस को खरबूजा कहते हैं, यह स्वाद में मीठा होता है, लख नऊ के खरबूजे बहुत मीठे होते हैं लोग इस का पन्ना बना कर भी खाते हैं, यह गर्म होता है जिन दिनों में हैजा चलता हो उन दिनों में खरबूजा बिलकुल नहीं खाना चाहिये ।

जो जमीन तथा खेतों में पके उसे ककड़ी और काचर कहते हैं, ककड़ी और काचर मारवाड़ आदि देशों में बहुत उत्पन्न होते हैं, ककड़ी को सुखा कर उस का सूखा शाक भी बनाते हैं उस को खेलरा कहते हैं तथा काचर को सुखाकर उस का जो सूखा शाक बनाते हैं उस को काचरी कहते हैं, इस को दाल या शाक में डालते हैं, यह खाने में स्वादिष्ठ तो होता है तथा लोग इसे प्रायः खाते भी हैं परन्तु गुणों में तो सब फलों की अपेक्षा हलके दर्जे के (अल्प गुणवाले) तथा हानिकारक फल ये ही (ककड़ी और काचर) हैं, क्योंकि ये तीनों दोषों को बिगाड़ते हैं, ये कचे–वायु और कफ को करते हैं किन्तु पकने के बाद तो विशेष (पहिले की अपेक्षा अधिक) कफ तथा वायु को बिगाड़ते हैं ॥

कलिन्द (मतीरा या तरबूज)—इस के गुण शाकवर्ग में पूर्व लिखचुके हैं विशेष कर यह भी गुणों में ककड़ी और काचर के समान ही है ॥

अभ्रक, पारदभस्म (पारे की भस्म) और स्वर्णभस्म, इन तीनों की मात्रा लेते समय ककाराष्टक (ककारादि नामवाले आठ पदार्थ) वर्जित हैं, क्योंकि उक्त मात्राओं के लेते समय ककाराष्टक का सेवन करने से वे उक्त मात्राओं के गुणों को खराब कर देते हैं, ककाराष्टक ये हैं—कोला, केले का कन्द, करौंदा, कांजी, कैर, करेला, ककड़ी और कलिन्द (मतीरा), इस लिये इन आठों वस्तुओं का उपयोग उक्त धातुओं की मात्रा को खाने वाले को नहीं करना चाहिये ॥

१–सुना है कि खरबूजे का पन्ना और चांवल खाते समय यदि गुड़ खा जावे तो प्राणी अवश्य मर ही जाता है, क्योंकि इस का कुछ भी इलाज नहीं है ॥

बादाम, चिरोंजी और पिस्ता—ये तीनों मेवे बहुत हितकारी है, इन को सब प्रकार के पाकों और लड्डू आदि में डाल कर भाग्यवान् लोग खाते है ।

बादाम-मगज को तरावट देता और उसे पुष्ट करता है, इस का तेल सूघने से भी मगज़ में तरावट पहुँचती है और पीनसरोग मिट जाता है ।

ये गुण मीठे बादाम के है किन्तु कड़ुआ बादाम तो विष के समान असर करता है, यदि किसी प्रकार बालक तीन चार कडुए बादामों को खालेवे तो उस के शरीर में विषके तुल्य पूरा असर होकर प्राणों की हानि हो जा सकती है, इस लिये चाख २ कर बादामों का स्वय उपयोग करना और बालकों को कराना चाहिये, बादाम पचने में भारी है तथा कोरा (केवल) बादाम खाने से वह बहुत गर्मी करता है ॥

इक्षुवर्ग[1] ॥

इक्षु (ईख[2])—रक्तपित्तनाशक, बलकारक, वृष्य, कफजनक, स्वादुपाकी, स्निग्ध, भारी, मूत्रकारक और शीतल है ।

ईख मुख्यतया बारह जाति की होती है—पौड्रक, भीरुक, वंशक, शतपोरक, कान्तार, तापसेक्षु, काण्डेक्षु, सूचीपत्र, नैपाल, दीर्घपत्र, नीलपोर और कोशक, अब इन के गुणों को क्रम से कहते हैं—

पौंड्रक तथा भीरुक—सफेद पौडा और भीरुक पौडा वातपित्तनाशक, रस और पाक में मधुर, शीतल, बृहण और बलकर्त्ता है ॥

कोशक—कोशक सञ्ज्ञक पौडा-भारी, शीतल, रक्तपित्तनाशक तथा क्षयनाशक है ॥

कान्तार—कान्तार (काले रंग का पौंडा) भारी, वृष्य, कफकारी, बृहण और दस्तावर है ॥

दीर्घ पौर तथा वंशक—दीर्घ[3] पौर सञ्ज्ञक ईख कठिन और वशक[4] ईख क्षारयुक्त होती है ॥

१-फल और वनस्पति की यद्यपि अनेक जातिया हैं परन्तु यहा पर प्रसिद्ध और विशेष खान पान में आनेवाले आवश्यक पदार्थों के ही गुणदोष सक्षेप से बतलाये हैं, क्योंकि इतने पदार्थों के भी गुणदोष को जो पुरुष अच्छे प्रकार से जान लेगा उस की बुद्धि अन्य भी अनेक पदार्थों के गुण दोषों को जान सकेगी, सब फल और वनस्पतियों के विषय में यह एक बात भी अवश्य ध्यानमें रखनी चाहिये कि-अज्ञात, कीडों से खाया हुआ, जिस के पकने का समय बीत गया हो, विना काल में उत्पन्न हुआ हो, जिस का रस नष्ट हो (सूख) गया हो, जिस में किंचित् भी दुर्गन्धि आती हो और अपक्व (विना पका हुआ), इन सब फलों को कभी नहीं खाना चाहिये ॥

२-इस को गन्ना साठा तथा ऊख भी कहते हैं ॥

३-दीर्घ पौरसञ्ज्ञक अर्थात् बडी २ गाठोंवाला पौंडा ॥

४-इस को बम्बई ईख कहते हैं ॥

शतपोरक[1]—इस के गुण कोशक ईख के समान हैं, विशेषता इस में केवल इतनी है कि—यह किञ्चित् उष्ण क्षारयुक्त और वातनाशक है ॥

तापसेक्षु—मृदु, मधुर, कफ को कुपित करनेवाला, तृप्तिकारक, रुचिप्रद, वृष्य और बलकारक है ॥

काण्डेक्षु[2]—इस के गुण तापसेक्षु के समान हैं, केवल इस में इतनी विशेषता है कि यह वायु को कुपित करता है ॥

सूचीपत्र, नीलपौर, नैपाल और दीर्घपत्रक[3]—ये चारों प्रकार के पौंडे वात कर्त्ता, कफपित्तनाशक, कषैले और दाहकारी हैं ॥

इस के सिवाय अवस्थाभेद से भी ईख के गुणों में भेद होता है अर्थात् बाल (छोटी) ईख—कफकारी, मेदवर्धक तथा प्रमेहनाशक है, युवा (जवान) ईख—वायुनाशक, स्वादु, कुछ तीक्ष्ण और पित्तनाशक है, तथा वृद्ध (पुरानी) ईख—रुधिरनाशक, व्रणनाशक, बल कर्त्ता और वीर्योत्पादक है।

ईख का मूलभाग अत्यन्त मधुर रसयुक्त, मध्यमाग मीठा तथा ऊपरी भाग नुनखरा (नमकीनरस से युक्त) होता है।

दाँतों से चबा कर चूसी हुई ईख का रस रक्तपित्तनाशक, खांड के समान वीर्यवाला, अविदाही (दाह को न करनेवाला) तथा कफकारी है।

सर्वभाग से युक्त कोल्हू में दबाई हुई ईख का रस जन्तु और मैल आदि के संसर्ग से विकृत होता है, एवं उक्त रस बहुत काल पर्यन्त रक्खा रहने से अत्यन्त विकृत हो जाता है इस लिये उस को उपयोगमें नहीं लाना चाहिये क्योंकि उपयोग में लाया हुआ वह रस दाह करता है, मल और मूत्र को रोकता है तथा पचनेमें भी भारी होता है।

ईख का बासा रस भी बिगड़ जाता है, यह रस स्वाद में खट्टा, वातनाशक, भारी, पित्त कफकारक, सुखानेवाला, दस्तावर तथा मूत्रकारक होता है।

अग्निपर पकाया हुआ ईख का रस भारी, स्निग्ध, तीक्ष्ण, वातकफनाशक, गोला नाशक और कुछ पित्तकारक होता है।

इक्षुविकार अर्थात् गुड़ आदि पदार्थ भारी मधुर, बलकारक, स्निग्ध, वातनाशक, दस्तावर, वृष्य, मोहनाशक, शीतल, बृंहण और विषनाशक होते हैं, इक्षुविकारों का सेवन करने से तृषा, दाह मूर्च्छा और रक्तपित्त नष्ट हो जाते हैं ॥

१—शतपोरक अर्थात् बहुत पोरोंवाला ॥

२—इस को किमियागन्धा कहते हैं ॥

३—सूचीपत्र उस को कहते हैं जिस के पत्ते बहुत बारीक होते हैं, नीलपौर उस को कहते हैं जिस की गाँठें नीले रंग की होती हैं, नैपाल उस को कहते हैं जो नेपाल देश में उत्पन्न होता है तथा दीर्घपत्र उसे कहते हैं जिस के पत्ते बहुत लम्बे होते हैं ॥

अब इक्षुविकारों का पृथक् २ संक्षेप से वर्णन करते हैः—

फाणित—कुछ २ गाढा और अधिक भाग जिस का पतला हो ऐसे ईख के पके हुए रस को फाणित अर्थात् राव कहते है, यह—भारी, अभिष्यन्दी, बृंहण, कफकर्त्ता तथा शुक्र को उत्पन्न करता है, इस का सेवन करने से वात, पित्त, आम, मूत्र के विकार और वस्तिदोष शान्त हो जाते हैं ॥

मत्स्यण्डी—किञ्चित् द्रवयुक्त पक्क तथा गाढे ईखके रस को मत्स्यण्डी कहते हैं, यह—भेदक, बलकारक, हलकी, वातपित्तनाशक, मधुर, बृंहण, वृष्य और रक्तदोषनाशक है ॥

गुड़—नया गुड गर्म तथा भारी होता है, रक्तविकार तथा पित्तविकार में हानि करता है, पुराना गुड (एक वर्ष के पीछे से तीन[2] वर्ष तक का) बहुत अच्छा होता है, क्योंकि यह हलका अग्निदीपक और रसायनरूप है, फीकेपन, पाण्डुरोग, पित्त, त्रिदोष और प्रमेह को मिटाता है तथा बलकारक है, दवाओं में पुराना गुड ही काम में आता है, शहद के न होने पर उस के बदले में पुराना गुड़ ही काम दे जाता है, तीन वर्ष के पुराने गुड के साथ अदरख के खाने से कफ का रोग मिट जाता है, हरड़ के साथ इसे खाने से पित्त का रोग मिटता है, सोंठ के साथ खाने से वायु का नाश करता है ।

तीन वर्ष का पुराना गुड़ गुल्म (गोला), बवासीर, अरुचि, क्षय, कास (खासी), छाती का घाव, क्षीणता और पाण्डु आदि रोगों में भिन्न २ अनुपानो के साथ सेवन करने से फायदा करता है, परन्तु ऊपर लिखे रोगों पर नये गुड का सेवन करने से वह कफ, श्वास, खासी, कृमि तथा दाह को पैदा करता है ।

पित्त की प्रकृतिवाले को नया गुड कभी नही खाना चाहिये ।

चूरमा लापसी और सीरा आदि के बनाने में ग्रामीण लोग गुड़ का बहुत उपयोग करते हैं, एवं मजूर लोग भी अपनी थकावट उतारने के लिये रोटी आदि के साथ हमेशा गुड खाया करते है, परन्तु यह गुड़ कम से कम एक वर्ष का तो पुराना अवश्य होना ही चाहिये नही तो आरोग्यता में बाधा पहुँचाये बिना कदापि न रहेगा ।

गुड़ के चुरमा और लापसी आदि पदार्थों में घी के अधिक होने से गुड अधिक गर्मी नही करता है ।

१–देखो इस भारतभूमि मे ईख (साठा) भी एक अतिश्रेष्ठ पदार्थ है–जिस के रस से हृदयविकार दूर होकर तथा यकृत् का सशोधन होकर पाचनशक्ति की वृद्धि होती है, फिर देखो ! इसी के रस से गुड बनता है जो कि अत्यन्त उपयोगी पदार्थ है, क्योंकि गुड ही के सहारे से सब प्रकार के मधुर पदार्थ बनाये जाते हैं ॥

२–तीन वर्ष के पीछे गुड का गुण कम हो जाता है ॥

दुर्बल शरीरवाला, शोष रोगी, जिस के जखम हो वा चोट लगी हो, बवासीर श्वास और मूर्छा का रोगी, मार्ग में चलने से थका हुआ, जिस ने बहुत परिश्रम का काम किया हो, जो गिरने से व्याकुल हो, जिस को किसी ने किसी प्रकार का उपालम्भ (उलाहना वा ताना आदि) दिया हो इस से उस के मन में चिन्ता हो, जिस को किसी प्रकार का नशा वा विष चढ़ा हो, जिस को मूत्रकृच्छ्र वा पथरी का रोग हो, इन मनुष्यों के लिये पुराना गुड़ अति लाभदायक है, इसी प्रकार जीर्ण ज्वर से क्षीण तथा विषम ज्वरवाले पुरुष को पीपल हरड़ सोंठ और अजमोद, इन चारों के साथ अथवा इन में से किसी एक के साथ पुराने गुड़ को देने से उक्त दोनों प्रकार के ज्वर मिट जाते हैं, रक्तपित्त और दाह के रोगी को इस का शर्बत कर पिलाना चाहिये, क्षय और रक्तविकार में गिलोय को घोट कर उस के रस के साथ पुराना गुड़ मिला कर देने से बहुत लाभ पहुँचाता है।

वास्तव में तो पुराना गुड़ ऊपर लिखे रोगों में तथा इन के सिवाय दूसरे भी बहुत से रोगों में बड़ा ही गुणकारी है और अन्य ओषधियों के साथ इस का अनुपान जल्दी ही असर करता है।

गुड़ के समान एक वर्ष के पीछे से तीन वर्ष तक का पुराना शरद भी गुणकारी सम झना चाहिये ॥

खांड़—पित्तनाशक ठंढी और बल देनेवाली है, बनारसी खांड़ आँखों के लिये बहुत फायदेमन्द और वीर्यवर्धक है, खांड़ कफ को करती है इसलिये कफ के रोगों में, रसविकार से उत्पन्न हुए शोथ में, ज्वर में और आमवात आदि कई रोगों में हानि करती है, खाने के उपयोग में खांड़ को न लेकर बूरा को लेना चाहिये ॥

मिश्री और कन्द—नेत्रों को हितकारी, स्निग्ध, धातुवर्धक, मुखप्रिय, मधुर, शीतल, वीर्यवर्धक, बलकारक, सारक (दस्तावर) इन्द्रियों को तृप्त कर्त्ता, हलके और तृषानाशक हैं, एवं क्षत, क्षय, रक्तपित्त, मोह, मूर्छा, कफ, वात, पित्त, दाह और शोष को मिटाते हैं।

ये दोनों पदार्थ बहुत ही साफ किये जाते हैं अर्थात् इन में मैल बिलकुल नहीं रहता है इस लिये समझदार लोगों को दूध आदि पदार्थों में सदा इन्हीं का उपयोग करना चाहिये।

यद्यपि काल्पी की मिश्री को लोग अच्छी बतलाया करते हैं परन्तु मरुस्थल देश के बीकानेर नगर में हलवाई लोग अति उज्ज्वल (उजली, साफ) मिश्री का कूँजा बनाते हैं इस लिये हमारी समझ में ऐसी मिश्री अन्यत्र कहीं भी नहीं बनती है ॥

विशेष वक्तव्य—प्रिय मित्रो ! पूर्वकाल में शर्करा (चीनी) इस देश में इतनी बहुतायत से बनती थी कि भारतवासी लोग उस का मनमाना उपयोग करते थे तो भी

रदेशों में हजारो मन जाती थी, देखो ! सन् १८२६ ई० तक प्रतिवर्ष दो करोड़ रुपये
ी चीनी यहा से परदेश को गई है, ईसवी चौदहवीं शताब्दी (शदी) तक युरोप में इस
ा नाम निशान तक नहीं था इस के पीछे गुड चीनी और मिश्री यहा से वहां को
ाने लगी।

पूर्व समय में यहा हजारों ईख के खेत बोये जाते थे, लकडी के चरखे से ईख का रस निकाला जाता था और पवित्रता से उस का पाक बन कर मधुर शर्करा बनती थी, ठौर २ शर्करा बनाने के कारखाने थे तथा भोले भाले किसान अत्यन्त श्रमपूर्वक शर्करा बना कर अपने २ इष्ट देव को प्रथम अर्पण कर पीछे उस का विक्रय करते थे, अहाहा ! क्या ही सुन्दर वह समय था कि जिस में इस देश के निवासी उस पवित्र मधुर और रसमयी शर्करा का सुस्वाद यथेच्छ लूटते थे और क्या ही अनुकूल वह समय था कि जिस में इस देश की लक्ष्मी स्वरूप स्त्रिया उस पवित्र मधुर और रसमयी शर्करा के उत्तमोत्तम पदार्थ बना कर अपने पति और पुत्रो आदि को आदर सहित अर्पण करती थीं, परन्तु हा । अब तो न वह शुभ समय ही रहा और न वह पवित्र मधुर रसमयी आयुवर्धक और पौष्टिक शर्करा ही रही ! । ।

आज से हजार बारह सौ वर्ष पहिले इस अभागे भारत पर यद्यपि यवनादिकों का असह्य आक्रमण होता रहा तथापि अपवित्र परदेशी वस्तुओं का यहा प्रचार नहीं हुआ, यद्यपि यवन लोग यहां से करोड़ों का धन लेगये परन्तु अपने देश की वस्तुओं की यहा भरमार नहीं कर गये किन्तु यहीं से अच्छी २ चीजें बनवा कर अपने देश को लेगये परन्तु जब से यह देश स्वातन्त्र्य प्रिय न्यायशील बृटिश गवर्नमेंट के हाथ में गया तब से उन के देशों की तथा अन्य देशों की असख्य मनोहर सुन्दर और सस्ती चीजें यहा आकर यह देश उन से व्याप्त होगया, बनी बनाई सुन्दर और सस्ती चीज़ों के मिलते ही हमारे देश के लोग अधिकता से उन को खरीदने लगे और धीरे २ अपने देश की चीजों का अनादर होने लगा, जिस को देख कर बेचारे किसान कारीगर और व्यापारी लोग हतोत्साह होकर उद्योगहीन होगये और देशभर में परदेशी वस्तुओं का प्रचार होगया ।

यद्यपि हमारी न्यायशीला बृटिश गवर्नमेंट ने ऐसी दशा में इस देश के कारीगरों को उत्तेजन देने के लिये तथा देश का व्यापार बढ़ने के लिये सर्कारी दफ्तरों में और प्रत्येक सर्कारी काम में देशी वस्तु के प्रचार करने की आज्ञा देकर इस देश के सौभाग्य को पुनः बढ़ाना चाहा जिस के लिये हम सबों को उक्त न्यायशीला गवर्नमेंट को अनेकानेक धन्यवाद शुद्ध अन्त.करण से देने चाहियें, परन्तु क्या किया जावे हमारे देश के लोग दारिद्र्य से व्याप्त होकर हतोत्साह बनने के कारण उस से कुछ भी लाभ न उठा सके ।

कारीगरी और व्यापार की वस्तुयें तो दूर रहीं किन्तु हमारे खानपान की चीजें भी पर देश कीही पसन्द होने लगीं और बना बनाया पकाया दुग्ध और शर्करा भी परदेश की लेकर सब लोग निर्वाह करने लगे, देखो ! जब मोरस की खांड़ प्रथम यहां थोड़ी २ आने लगी तब उस को देशी चीनी से स्वच्छ और सस्ती देख कर लोग उस पर मोहित होने लगे, आखिरकार समस्त देश उस से व्याप्त हो गया और देशी शक्कर क्रम २ से नामशेष होती गई, नतीजा यह हुआ कि–अब केवल ओषधिमात्र के लिये ही उस का प्रचार होता है ।

इस बात को प्रायः सब ही जान सकते हैं कि–विलायती खांड़ ईख के रस से नहीं बनती है, क्योंकि वहां ईख की खेती ही नहीं है किन्तु बीट नामक कन्द और जुवार की जाति के टटेलों से अथवा इसी प्रकार के अन्य पदार्थों में से उन का सत्व निकाल कर वहां खांड़ बनाई जाती है, उस को साफ करने की रीति "एन्साइक्लोपेडिया ब्रिटानिका" के ४२७ पृष्ठ में इस प्रकार लिखी है—

एक सौ चालीस या एक सौ अड़सठ मन चीनी लोहे की एक बड़ी डेग में डालकर गलाई जाती है, चीनी गलाने के लिये डेग में एक यन्त्र लगा रहता है, साथही गर्म भाफ के कुछ पाइप भी डेग में लगे रहते हैं, जिस से निरन्तर गर्म पानी डेग में गिरता है, यह रस का शीरा नियमित दर्जे तक औटाया जाता है, जब बहुत मैली चीनी साफ की जाती है तब वह खून से साफ होती है, गर्म शीरा रुई और सन की जालीदार थैलियों से छाना जाता है, ये थैलियां बीच २ में साफ की जाती हैं, फिर वह शीरा जान वरों की हड्डियों की राख की ३० से ४० फुटतक गहरी तह से छन कर नीचे रक्खे हुए बर्तन में आता है, इस तरह छनने से शीरे का रंग बहुत साफ और सफेद हो जाता है, ऊपर लिखे अनुसार शीरा बनकर तथा साफ होने के अनन्तर उस की दूसरी वार सफाई इस तरह से की जाती है कि एक चतुष्कोण (चौकोनी) तांबे की डेग में कुछ चूने के पानी के साथ चीनी रक्खी जाती है (जिस में थोड़ा सा बैल का खून डाला जाता है) और प्रति सैकड़े में ५ से २० तक हड्डी के कोयलों का चूरा डाला जाता है इत्यादि, देखो ! यह सब विषय अंग्रेजों ने अपनी बनाई हुई किताबों में लिखा है, बहुत से डाक्टर लोग लिखते हैं कि–इस चीनी के खाने से अनेक रोग उत्पन्न होते हैं इस पर यदि कोई पुरुष यह शङ्का करे कि–विलायत के लोग इसी चीनी को खाते हैं फिर उन को कोई बीमारी क्यों नहीं होती है ! और वहां प्लेग जैसे भयंकर रोग क्यों नहीं उत्पन्न होते हैं ! तो इस का उत्तर यह है कि–वर्त्तमान समय में विलायत के लोग संसारभर में सब से अधिक विज्ञान वेत्ता और अधिकतर विद्वान् हैं (यह बात प्रायः सब को विदित ही है) वे लोग इस शक्कर को छूते भी नहीं हैं किन्तु यहां के लोगों के लिये तो इतनी

उमदा और सफाई के साथ चीनी बनाई जाती है कि उस का यहा एक दाना भी नहीं आता है क्योंकि वह एक प्रकार की मिश्री होती है और वहां पर वह इतनी महँगी विकती है कि उस के यहां आने में गुञ्जाइश ही नहीं है, इस के सिवाय यह वात भी है कि यदि वहा के लोग इस चीनी का सेवन भी करें तो भी उन को इस से कुछ भी हानि नहीं पहुँच सकती है, क्योंकि–विलायत की हवा इतनी शर्द है कि वहा मद्य आदि अत्युष्ण पदार्थों का विशेष सेवन करने पर भी उन (मद्य आदि) की गर्मी का कुछ भी असर नहीं होता है तो भला वहा चीनी की गर्मी का क्या असर हो सकता है, किन्तु भारत वर्ष के समान तो वहा चीनी का सेवन लोग करते भी नहीं है, केवल चाय आदि में ही उस का उपयोग होता है, खाली चीनी का या उस के बने हुए पदार्थों का जिसप्रकार भारतवर्षीय लोग सेवन करते है उस प्रकार वहां के लोग नही करते है और न उन का यह प्रतिदिन का खाद्य और पौष्टिक पदार्थ ही है, इसलिये इस का वहा कोई परिणाम नहीं होता है, यदि भारतवर्ष के समान इस का बुरा परिणाम वहा भी होता तो अवश्य अवतक वहा इस के कारखाने बद हो गये होते, वहा प्लेग भी इसी लिये नहीं होता है कि वह देश यहा के शहर और गॉव की अपेक्षा बहुत स्वच्छ और हवादार है, वहा के लोग एकचित्त है, परस्पर सहायक है, देशहितैषी है तथा श्रीमान् है।

इस बात का अनुभव तो प्राय. सव को होही चुका है कि–हिन्दुस्तान में प्लेग से दूषित स्थान में रहने पर भी कोई भी यूरोपियन आजतक नही मरा, इसी प्रकार श्रीमान् लोग भी प्रायः नही मरते है, परन्तु हिन्दुस्थान के सामान्य लोग विविधचित्त, परस्पर निः-सहाय और देश के अहित हैं, इसलिये आजकल जितने बुरे पदार्थ, बुरे प्रचार और बुरी बातें हैं उन सबों ने ही इस अभागे भारत पर ही आक्रमण किया है।

अव अन्त में हम को सिर्फ इतना ही कहना है कि–अपने हित का विचार प्रत्येक भारतवासी को करके अपने धर्म और शरीर का सरक्षण करना चाहिये, यह अपवित्र चीनी आर्यों के खाने योग्य नहीं है, इसलिये इस का त्याग करना चाहिये, देखो! सरल स्वभाव और मास मद्य के त्यागी को आर्य कहते है तथा उन (आर्यों) के रहने के स्थान को आर्यावर्त्त कहते हैं, इस भरतक्षेत्र में साढ़े पच्चीस देश आर्यों के हैं, गगा सिन्धुके बीच में–उत्तर में पिशोर, दक्षिण में समुद्र काठा तक २४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्त्ती, ९ नारायण, ९ बलदेव, ९ प्रतिनारायण, ११ रुद्र और ९ नारद आदि उत्तम पुरुष इसी आर्यावर्त्त में जन्म लेते है, इसलिये ऐसे पवित्र देश के निवासी महर्षियों के सन्तान आर्य

१–मुक्ति को तो सब ही मनुष्य क्षेत्रों से प्राणी जाता है, लन्दन और अमेरिका तक सूत्रकार के कथन से भरतक्षेत्र माना जा सकता है, देखो! अमेरिका जैन सस्कृत रामायण (रामचरित्र) के कथनानुसार पाताल लका ही है, यह विद्याधरों की वस्ती थी तथा रावण ने वहीं जन्म लिया था॥

लोगों को सदा उसी मार्ग पर चलना उचित है जिसपर चलने से उनके धर्म, यश, सुख, आरोग्यता, पवित्रता और प्राचीन मर्यादा का नाश न हो, क्योंकि इन सब का संरक्षण कर मनुष्य जन्म के फल को प्राप्त करना ही वास्तवमें मनुष्यत्व है ॥

तैलवर्ग ॥

तैल यद्यपि कई प्रकार का होता है–परन्तु विशेषकर मारवाड़ में तिली का और बंगाल तथा गुजरात आदि में सरसों का तेल खाने आदि के काम में आता है, तेल खाने की अपेक्षा जलाने में तथा शरीर के मर्दन आदि में विशेष उपयोग में आता है, क्योंकि उत्तम खान पान के करने वाले लोग तेल को बिलकुल नहीं खाते हैं और वास्तव में घृत जैसे उत्तम पदार्थ को छोड़कर बुद्धि को कम करनेवाले तेल को खाना भी उचित नहीं है, हां यह दूसरी बात है कि तेल सस्ता है तथा मौठ गुवारफली और चना आदि वातल (वातकारक) पदार्थ मिर्च मसाला डाल कर तेल में तंकने से सुस्वाद (लज्जतदार) हो जाते हैं तथा वादी भी नहीं करते हैं, इसने अन्न में यदि तैल खाया जावे तो यह भिन्न बात है परन्तु घृतादि के समान इस का उपयोग करना उचित नहीं है जैसा कि गुजरात में लोग मिठाई तक तेल की बनी हुई खाते हैं और बंगालियों का तो तेल जीवन ही बन रहा है, हां अलबत्ता जोधपुर मेवाड़ नागौर और मेड़ता आदि कई एक राज्यस्थानों में लोग तेल को बहुत कम खाते हैं।

गृहस्थ के प्रतिदिन के आवश्यक पदार्थों में से तेल भी एक पदार्थ है तथा इस का उपयोग भी प्रायः प्रत्येक मनुष्य को करना पड़ता है इस लिये इस की जातियों तथा गुण दोषों का ज्ञान लेना प्रत्येक मनुष्य को अत्यावश्यक है अतः इस की जातियों तथा गुण दोषों का संक्षेप से वर्णन करते हैं —

तिल का तैल—यह तैल शरीर को दृढ़ करनेवाला, बलवर्धक, त्वचा के वर्ण को अच्छा करनेवाला, वातनाशक, पुष्टिकारक, अग्निदीपक, शरीर में शीघ्र ही प्रवेश करने वाला और कृमि को दूर करनेवाला है, कान की योनि की और शिर की शूल को मिटाता है, शरीर को हलका करता है, टूटे हुए, कुचले हुए, दब हुए और कटे हुए हाड़ को तथा अग्नि से जले हुए को फायदेमन्द है।

तेल के मर्दन में जो २ गुण कल्पसूत्र में लिखे हैं वे किसी ओषधि के साथ पके हुए तेल के समझने चाहियें किन्तु खाली तेल में उतने गुण नहीं हैं।

१–जैसे कि मारवाड़ के भुजिये (सेव) बीकानेर में तेल में तलकर बहुत ही अच्छे बनते हैं और वहां के लोग उन्हें बड़ी चाह से खाते हैं, चने और मोठ के धान प्रायः सब ही घरों में तेल में ही बनते हैं और उन्हें गरीब अमीर प्रायः सब ही खाते हैं॥

जिन औषधों के साथ तेल पकाया जावे उन औषधों का उपयोग इस प्रकार करना चाहिये कि–गर्मी अर्थात् पित्त की प्रकृतिवाले के लिये ठंढी और खून को साफ करने-वाली औषधों का तथा कफ और वायु की प्रकृतिवाले के लिये उष्ण और कफ को काटने-वाली औषधों का उपयोग करना चाहिये, नारायण, लक्ष्मीविलास, षड्बिन्दु, चन्दनादि, लाक्षादि, शतपक्व और सहस्रपक्व आदि अनेक प्रकार के तैल इसी तिल के तेल से बनाये जाते है जो प्रायः अनेक रोगो को नष्ट करते हैं, तथा बहुत ही गुणकारक होते है।

यह तैल पिचकारी लगाने के और पीने के काम में भी आता है तथा गरीब लोग इस को खाने तलने और बघारने आदि अनेक कार्यों में वर्त्तते है, यह कान तथा नाक में भी डाला जाता है।

परन्तु इस में ये अवगुण है कि–यह सन्धियों को ढीला कर धातुओं को नर्म कर डालता है, रक्तपित्त रोग को उत्पन्न करता है किन्तु शरीर में मर्दन करने से फायदा करता है, इस के सिवाय शरीर, बाल, चमडी तथा आंखों के लिये भी फायदेमन्द है, परन्तु तिली का या सरसों का खाली तेल खाने से इन चारों को (शरीर आदि को) हानि पहुँचाता है, हेमन्त और शिशिर ऋतु में वायु की प्रकृति वाले को यह सदा पथ्य है॥

सरसों का तेल—दीपन तथा पाक में कटु है, इस का रस हलका है, लेखन, स्पर्श और वीर्य में उष्ण, तीक्ष्ण, पित्त और रुधिर को दूषित करनेवाला, कफ, मेदा, वादी, बवासीर, शिर.पीडा, कान के रोग, खुजली, कोढ़, कृमि, श्वेत कुष्ठ और दुष्ट कृमि को नष्ट करता है॥

राई का तेल—काली और लाल राई के तेल में भी सरसो के तेल के समान ही गुण है किन्तु इस में केवल इतनी विशेषता है कि–यह मूत्रकृच्छ्र को उत्पन्न करता है॥

तुवरी का तेल—तुवरी अर्थात् तोरई के बीजों का तेल–तीक्ष्ण, उष्ण, हलका, ग्राही, कफ और रुधिर का नाशक तथा अग्निकर्त्ता है, एव विष, खुजली, कोढ़, चकते और कृमि को नष्ट करता है, मेददोष और व्रण की सूजन में भी फायदेमन्द है॥

अलसी का तेल—अग्निकर्त्ता, स्निग्ध, उष्ण, कफपित्तकारक, कटुपाकी, नेत्रों को अहित, बलकर्त्ता, वायुहर्त्ता, भारी, मलकारक, रस में स्वादिष्ठ, ग्राही, त्वचा के दोषों का नाशक तथा गाढ़ा है, इसे वस्तिकर्म, तैलपान, मालिस, नस्य, कर्णपूरण और अनुपान विधि में वायु की शान्ति के लिये देना चाहिये॥

कुसुम्भ का तेल—कसूम के बीजों का तेल–खट्टा, उष्ण, भारी, दाहकारक, नेत्रों को अहित, बलकारी, रक्तपित्तकारक तथा कफकारी है॥

खसखस का तेल—बलकर्त्ता, वृष्य, भारी, वातकफहरणकर्त्ता, शीतल तथा रस और पाक में स्वादिष्ठ है ॥

अण्डी का तेल—तीक्ष्ण, उष्ण, दीपन, गिलगिला, भारी, वृष्य, त्वचा को सुधारने वाला, अवस्था का स्थापक, मेधाकारक, कान्तिप्रद, बलवर्द्धक, कसैले रसवाला, सूक्ष्म, योनि तथा शुक्र का शोधक, आमगन्धवाला, रस और पाक में स्वादिष्ठ, कडुआ, चरपरा तथा दस्तावर है, विषमज्वर, हृदयरोग, गुल्म, पृष्ठशूल, गुह्यशूल, वादी, उदररोग, अफरा, अष्ठीला, कमर का रह जाना, वातरक्त, मलसंग्रह, बद, सूजन, और विद्रधि को दूर करता है, शरीर रूपी वन में विचरनेवाले आमवात रूपी गजेन्द्र के लिये तो यह तेल सिंहरूप ही है ॥

राल का तेल—विस्फोटक, घाव, कोढ़, खुजली, कृमि और वातकफज रोगों को दूर करता है ॥[1]

क्षार वर्ग ॥

खानों या जमीन में पैदा हुए खार को लोग सदा खाते हैं, दक्षिण मान्त देश तक के लोग जिस नमक को खाते हैं वह समुद्र के खारी जल से जमाया जाता है, राजपूताने की सांभर झील में भी लाखों मन नमक पैदा होता है, उस झील की यह तासीर है कि—जो वस्तु उस में पड़ जाती है वही नमक बन जाती है, उक्त झील में क्यारियां बनाई जाती हैं, पँचभदरे में भी नमक उत्पन्न होता है तथा वह दूसरे सब नमकों से श्रेष्ठ होता है, बीकानेर की रियासत लूणकरणसर में भी नमक होता है, इस के अतिरिक्त अन्य भी कई स्थान मारवाड़ में हैं जिन में नमक की उत्पत्ति होती है परन्तु सिन्ध आदि देशों में जमीन में नमक की खानें हैं जिन में से खोद कर नमक को निकालते हैं वह सेंधा नमक कहलाता है स्वाद और गुण में यह नमक प्रायः सब ही नमकों से उत्तम होता है इसीलिये वैद्य लोग बीमारों को इसी का सेवन कराते हैं तथा धातु आदि रसों के व्यवहार में भी प्रायः इसी का प्रयोग किया जाता है, इस के गुणों को समझनेवाले बुद्धिमान् लोग सदा खानपान के पदार्थों में इसी नमक को खाते हैं, इंग्लैंड से लीवर पुल सॉल्ट नामक जो नमक आता है उस को डाक्टर लोग बहुत अच्छा बतलाते हैं, खुराक की चीजों में नमक बड़ा ही जरूरी पदार्थ है इस के डालने से भोजन का स्वाद तो बढ़ ही जाता है तथा भोजन पचभी जल्दी जाता है किन्तु इस के अतिरिक्त यह भी निश्चय हो चुका है कि नमक के बिना खाये आदमी का जीवन बहुत समय तक नहीं रह

1—यह संक्षेप से कुछ तैलों के गुणों का वर्णन किया गया है, शेष तैलों के गुण उन की योनि के समान जानने चाहियें अर्थात् जो तैल जिस पदार्थ से उत्पन्न होता है उस तैल में उसी पदार्थ के समान गुण रहते हैं, इस का विस्तार से वर्णन दूसरे वैद्यकग्रन्थों में देखना चाहिये ॥

सकता है, देखो! जो लोग दूध से वर्षों तक निर्वाह कर लेते है उस का कारण यही है कि–दूध में यथावश्यक खार का भाग मौजूद है, खान पान में नमक स्वाद और रुचि को पैदा करता है तथा हाड़ों को मज़बूत करता है।

नमक में यह अवगुण भी है कि नमक तथा खार का स्वभाव वस्तु के सड़ाने अथवा गलाने का है, इसलिये परिमाण से अधिक नमक का सेवन करने से वह शरीर के धातुओंको गला कर विगाड देता है, वहुत से मनुष्यो को यह शौक पड जाता है कि वे भोजन की सब चीजो में नमक अधिक खाते है परन्तु अन्त में इस से हानि होती है।

गहूँ बाजरी और दूध आदि चीजो में यथावश्यक थोड़ा २ खार कुदरती होता है और दाल तथा शाक आदि पदार्थों में ऊपर से डालने से नमक का यथावश्यक भाग पूरा होता है।

हम सब लोगो में क्षार वाले पदार्थ सदा अधिक खाये जाते है जैसे–दाल, शाक, चटनी, राइता, पापड़, खीचिया और अचार आदि, इन सब पदार्थों में नमक होता है इस लिये सब का थोडा २ भाग मिल कर यथावश्यक भाग पूरा हो जाता है, खार वा नमक के अधिक खाने से शरीरमें गर्मी, शरीर का टूटना और धातु का गिरना आदि विकार मालूम होने लगते हैं।

नमक वा खार को भेदक (तोडनेवाला) जानकर बहुत से मूर्ख वैद्य तापतिल्ली आदि पेट की गाठ को मिटाने के लिये बीमारो को अधिक खार खिला देते है उस का नतीजा आगे बहुत बुरा होता है, प्रायः पुरुषों का पुरुषत्व जो नष्ट होता है उस में मुख्य हेतु बहुधा खार का अधिक सेवन ही सिद्ध होता है, इस लिये यह वात सदा खयाल में रखनी चाहिये कि अधिक खार का सेवन वीर्य को नष्ट कर देता है, अतः सब को परिमित ही खार का सेवन करना चाहिये ॥

अब संक्षेप से सब प्रकार के खार और नमकों के गुण दिखलाये जाते हैः—

सेंधा नमक[1]—मीठा, अग्निदीपक, पाचन, लघु, स्निग्ध, रोचक, शीतल, बलकारक, सूक्ष्म, नेत्रों को हितकारी और त्रिदोषनाशक है ॥

सांभर नमक[2]—हलका, वातनाशक, अतिउष्ण, भेदक, पित्तकारक, तीक्ष्णोष्ण, सूक्ष्म और अभिष्यन्दी है तथा पचने के समय चरपरा है ॥

समुद्र नमक[3]—पाक में मधुर, कुछ कड़ु,–मधुर, भारी, दीपन, भेदी अविदाही, कफवर्धक, वायुनाशक, तिक्त, अरूक्ष और अत्यन्त शीतोष्ण नहीं है ॥

१–अत्यन्त सेवन करने से नमक मनुष्य को अन्धा कर देता है ॥

२–यह राजपूताने की साभर झील से पैदा होता है इसी लिये इस का यह नाम पडा है ॥

३–यह नमक समुद्र के जल से बनाया जाता है ॥

विड नमक—क्षारगुणयुक्त, दीपन, हलका, तीक्ष्ण, उष्ण, रूक्ष, रोचक और व्यवायी है, यह कफ और वादी के अनुलोमन है अर्थात् कफ को ऊपर की तरफ से तथा वादी को नीचे की तरफ से निकालता है, एवं विबन्ध, अफरा, विष्टंभ और शरीर गौरव (देह के भारीपन) को मिटाता है ॥

सौवर्चल (काला) नमक—रोचक, भेदक, अग्निदीपक, अत्यन्तपाचक, स्नेहयुक्त, वायुनाशक, विशद, हलका, सूक्ष्म, डकार की शुद्धि करनेवाला तथा पित्त को कम बढ़ानेवाला है, एवं विबंध, अफरा और शूल रोग का नाशक है ॥

रेह का नमक—क्षारगुण युक्त, भारी, कटु, स्निग्ध, शीतल और वायुनाशक है ॥

कचिया नमक—रुचिकारी, कुछ खारा, पित्तकर्त्ता, दाहकारी, कफवातनाशक, दीपन, गुल्मनाशक तथा शूलहर्त्ता है ॥

द्रोणी नमक—पाक में कमगर्म, कमदाहकारी, भेदन, कुछ स्निग्ध, शूलनाशक तथा अल्प पित्तकर्त्ता है ॥

औपर नमक—खारी, कडुआ, वातकफनाशक, दाहकर्त्ता, पित्तकारी, ग्राही तथा मूत्रशोषक (मूत्र का सुखानेवाला) है ॥

चनाखार—अत्यन्त उष्ण, अग्निदीपक तथा दाँतों में हर्ष करनेवाला है, इस का स्वाद खट्टा और नमकीन है तथा यह शूल अजीर्ण और विबन्ध को नष्ट करता है ॥

जवाखार—हलका, स्निग्ध, अतिसूक्ष्म तथा अग्निदीपक है, यह शूल, वादी, आम, कफ, श्वास, गुल्म, गलेका रोग, पाण्डुरोग, बवासीर, संग्रहणी, अफरा, प्लीहा और हृदय रोग को दूर करता है ॥

सज्जीखार—सज्जीखार जवाखार की अपेक्षा अल्प गुणवाला है, परन्तु शूल, और गुल्मरोग में अधिक गुण करता है ॥

सोरा—इस में प्रायः सज्जी के समान गुण हैं, परन्तु इस में इतनी विशेषता है कि यह मूत्रकृच्छ्र को दूर करता है तथा जल को शीतल करता है ॥

नौसादर—यह भी एक प्रकार का तीव्र खार है तथा इस में खारों के समान ही प्राय सब गुण हैं ॥

१—यह नमक हिमालय पर्वत के सखार (खार के सहित) जल से बनाया जाता है ॥
२—यह नमक खारी जमीन में से स्वयं ही प्रकट होता है ॥
३—यह नमक खार स्यन्दन से मिट्टी के बरतनों में प्रकट होता है ॥
४—यह नमक ऊसर भूमि में उत्पन्न होता है ॥
५—सज्जी भी एक प्रकार खार ही है इस को संस्कृत में सर्जिका क्षार और सुवर्चिका कहते हैं ॥
६—यह भी सज्जी का ही एक भेद है ॥
७—ऊंट बैल अथवा घोड़े के गोबर की भस्म को शास्त्रविधि के साथ पकाने से नौसादर प्रकट होता है परन्तु एक नौसादर मनुष्य और सूअर की विष्ठा के द्वारा पंजाब में से निकलता है ॥

सुहागा—अग्निकर्त्ता, रूक्ष कफनाशक, वातपित्तकर्त्ता, कासनाशक, बलवर्धक, स्त्रियों के पुष्प को प्रकट करनेवाला, व्रणनाशक, रेचक तथा मूढ़ गर्भ को निकालने वाला है ॥

मिश्रवर्ग ॥

दाल और शाक के मसाले—कुसग दोष तथा अविद्या से ज्यों २ प्राणियों की विषयवासना बढ़ती गई त्यों २ उस (विषयवासना) को शान्त करने के लिये धातुपुष्टि तथा वीर्यस्तम्भन की औषधों का अन्वेषण करते हुए मूर्ख वैद्यों आदि के पञ्जे में फँस कर अनेक हानिकारक तथा परिणाम में दुःखदायक औषधो का ग्रहण कर मन माने उलटे सीधेमार्ग पर चलने लगे, यह व्यवहार यहा तक बढा और बढ़ता जाता है कि लोग मद्य, अफीम, भाग, माजूम, गॉजा और चरस आदि अनेक महाहानिकारक विषैली चीजों को खाने लगे और खाते जाते है परन्तु विचार कर देखा जावे तो यह सब व्यवहार जीवन की खरावी का ही चिह्न है ।

ऊपर कहे हुए पदार्थों के सिवाय लोगों ने उसी आशा से प्रतिदिन की खुराक में भी कई प्रकार के उत्तेजक स्वादिष्ठ मसालों का भी अत्यन्त सेवन करना प्रारम्भ कर दिया कि जिस से भी अनेक प्रकार की हानिया होचुकी है तथा होती जाती हैं ।

प्राचीन समय के विचारवाले लोग कहते हैं कि जगत् के वार्त्तमानिक सुधार और कला कौशल्य ने लोगों को दुर्बल, निःसत्व और बिलकुल गरीब कर डाला है, देशान्तर के लोग द्रव्य लिये जा रहे हैं, प्राणियों का शारीरिक बल अत्यत घट गया, इत्यादि, विचार कर देखने से यह बात सत्य भी मालूम होती है ।

वर्त्तमान समय के खानपान की तरफ ही दृष्टि डाल कर देखो कि खानपान में स्वादिष्ठता का विचार और बेहद शौकीनपन आदि कितनी खराबियों को कर रहा है और कर चुका है, यद्यपि प्राचीन विद्वानों तथा आधुनिक वैद्य और डाक्टरों ने भी साधारण खुराक की प्रशसा की है परन्तु उन के कथन पर बहुत ही कमलोगों का ध्यान है, देखो। मनुष्यों की प्रतिदिन की साधारण खुराक यही है कि—चावल, घी, गेहूँ, बाजरी और ज्वार आदि की रोटी, मूग, मौठ और अरहर आदि की दाल,

---

१—जहा क्षारद्वय कहे गये हैं वहा सज्जीखार और जवाखार लेने चाहियें, इन में सुहागा के मिलने से क्षारत्रय कहाते हैं, ये मिले हुए भी अपने २ गुण को करते हैं किन्तु मिलने से गुल्म रोग को शीघ्र ही नष्ट करते हैं, पलाश, थूहर, ओंगा (चिरचिरा), इमली, आक और तिलनालका खार तथा सज्जीखार और जवारखार ये आठों मिलने से क्षाराष्टक कहलाते हैं, ये आठों खार अग्नि के तुल्य दाहक हैं तथा शूल और गुल्म-रोग को समूल नष्ट करते हैं ॥

२—जब नैत्यिक तथा सामान्य खानपान में अत्यन्त शौकीनी बढ रही है तो भला नैमित्तिक तथा विशेष व्यवहारों में तो कहना ही क्या है ॥

सामान्य और उपयोगी शाक तथा धनियां, हल्दी, जीरा और नमक आदि मसाले, इन सब पदार्थों का परिमित उपयोग किया जावे, परन्तु व्यसन स्वाद और शौक थोड़ा सा सहारा मिलने से बेहद बढ़ कर परिणाम में अनेक हानियों को करते हैं अर्थात् व्यसनी और शौकीन को सब तरह से नष्ट भ्रष्ट कर देते हैं, देखो! इन से चार बातों की हानि तो प्रत्यक्ष ही दीखती है अर्थात् धन का नाश होता है, शरीर बिगड़ता है, प्रतिष्ठा जाती रहती है और अमूल्य समय नष्ट होता है।

उक्त व्यसन स्वाद और शौक वर्तमान समय में मसालों के सेवन में भी अत्यन्त बढ़े हुए हैं अर्थात् लोग दाल और शाक आदि में बेपरिमाण मसाले डाल कर खाते हैं तथा इस से यह लाभ समझते हैं कि ये मसाले गर्म होने के कारण जठराग्नि को प्रदीप्त करेंगे जिस से पाचनशक्ति बढ़ेगी और खुराक अच्छी तरह से तथा अधिक खाई जावेगी तथा वीर्य में भी गर्मी पहुँचने से उत्तेजन शक्ति बढ़ेगी इत्यादि, परन्तु यह सब उन लोगों का अत्यन्त भ्रम है, क्योंकि–प्रथम तो मसालों में जितनी वस्तुयें डाली जाती हैं वे सब ही सब प्रकृतिवालों के लिये तथा सर्वदा अनुकूल होकर शरीर की आरोग्यता को बनायें रक्खें यह कभी नहीं हो सकता है, दूसरे–मसालों में बहुत से पदार्थ एसे हैं जो कि इन्द्रियों को भड़कानेवाले तथा इन्द्रियों के उत्तेजक होकर भी शरीर के कई अवयवों में बाधा पहुँचाते हैं, तीसरे–मसालों में बहुत से ऐसे पदार्थ हैं जो कि शरीर की बीमारी में दवा के तौर पर दिये जाते हैं, जैसे–छोटी बड़ी इलायची, लौंग, सफेद जीरा, स्याह जीरा, दालचीनी, तेजपात और काली मिर्च आदि, अब यदि प्रतिदिन उन्हीं पदार्थों का अधिक सेवन किया जावे तो वे दवा के समय अपना असर नहीं करते हैं, चौथे—खुराक में सदा गर्म मसालों का खाना अच्छा भी नहीं है, क्योंकि स्वाभाविक जठराग्नि को दूसरे मसालों की बनावटी गर्मी से बढ़ा कर अधिक खुराक का खाना अच्छा नहीं है क्योंकि यह परिणाम में हानि करता है, देखो! एक विद्वान् का कथन है कि–"इलाज और खुराक वे ही अच्छे हैं जिन का परिणाम अच्छा हो अर्थात् जिन से परिणाम में किसी प्रकार की हानि न हो" आहा! यह कैसा अच्छा उपदेशदायक वाक्य है, क्या यह वाक्य सामान्य प्रजा के सदा याद रखने का नहीं है? इसलिये गर्म मसालों तथा अत्यन्त तीक्ष्ण मसालेदार चटनी आदि सब पदार्थों को प्रतिदिन नहीं खाना चाहिये, क्योंकि इन का सदा सेवन करना सब मनुष्यों के लिये कभी एक सदृश हितकारक नहीं होसकता है, यद्यपि यह ठीक है कि गर्म मसाले वा मसालेदार पदार्थ रुचि को अधिक जागृत करते हैं तथा जठराग्नि को भी अधिक तेज करते हैं जिस से खाना अधिक खाया जाता है परन्तु स्मरण रखना चाहिये कि स्वाभाविक जठराग्नि के समान मसालों की गर्मी से उत्पन्न हुई

१–क्योंकि वे मुदत के तौर पर हो जाते हैं ॥

कृत्रिम अग्नि पदार्थों को यथावस्थित (ठीक तौर से) कभी नहीं पचा सकती है, जैसे एञ्जिन में वायलर को अधिक ज़ोर मिलने से वह गाडियों को जोर से तो चलाता है परन्तु वायलर के माप और परिमाण से गर्मी के अधिक बढ़ जाने से अधिक भार को खींचता हुआ वह कभी फट भी जाता है, जैसे अधिक भार को खींचने के लिये वायलर को अधिक गर्मी की आवश्यकता हो यह नियम नहीं है किन्तु अधिक भार को खींचने के लिये बड़े एञ्जिन और बड़े ही वायलर की आवश्यकता है इसीप्रकार जन्म से छोटे कद वाला आदमी दिल में यदि ऐसा विचार करे कि मैं गर्म मसालों या गर्म दवा से अग्नि को तीव्र कर अधिक खुराक को खाकर कद और ताकत में बढ़ जाऊं तो यह उसकी महाभूल है, क्योंकि ऐसा विचार कर यदि वह तदनुसार वर्त्ताव करेगा तो अपनी असली ताकत को भी खो बैठेगा, क्योंकि जैसे अधिक जोर के काम करने के लिये बड़े एञ्जिन और बड़े वायलर को बनाना पडता है उसीप्रकार अधिक ताकत के बढ़ाने के लिये भी सर्वोत्तम दवा के उपयोग, ब्रह्मचर्य व्रत के पालन और उचित वर्त्ताव से चलने आदि की आवश्यकता है अर्थात् इस व्यवहार से स्वाभाविक शक्ति उत्पन्न होती है और स्वाभाविक शक्तिवाला पुरुष महाशक्ति सम्पन्न तथा बड़े कदवाले सन्तान को उत्पन्न कर सकता है, ऐसे मनुष्यको नकली उपचार करने की कोई आवश्यकता नहीं रहती है।

प्रिय पाठकगण! क्या आपने इतिहास में नहीं पढा है कि—हमारे इस देश के राठौर आदि राजा लोग बारह २ वर्ष तक दिल्ली में वादशाह के पास रह कर ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते थे और जब वे लोग ऋतु के समय अपनी पत्नी में गमन करते थे तब उन के अमोघ (निष्फल न जानेवाले) वीर्य से केशरीसिंह, पद्मसिंह, जयसिंह कच्छावा और प्रतापसिंह सिसोदिया जैसे पुरुष सिंह उत्पन्न होतेथे, यद्यपि खुराक उन की साधारण ही थी परन्तु वर्त्ताव अत्युत्तम था।

बहुत से अज्ञ लोग इस कथनसे यह न समझ जावें कि शास्त्रकारो ने गर्म मसालो की अत्यन्त निन्दा की है इसलिये इन को कभी नहीं खाना चाहिये, इस लेख का तात्पर्य केवल यही है कि—देश काल और प्रकृति के द्वारा अपने हिताहित का विचार कर प्रत्येक वस्तु का उपयोग करना चाहिये, क्योंकि जिस को अपने हिताहित का विचार हो जाता है वह पुरुष कभी धोखे में नहीं आता है, तात्पर्य यह है कि गर्म मसालो का निषेध जिस विषय में किया है उसी विषय में उन का निषेध समझना चाहिये तथा जिस विषय में उन का अंगीकार करना लिखा है उसी विषय में उन का अंगीकार करना चाहिये, जैसे—देखो! जिस मनुष्य की अत्यन्त वायु की तासीर हो तो वायु को शरीर में बराबर रखने के लिये खुराक के साथ उस को परिमित गर्म मसाला लेना चाहिये, इसीप्रकार जब मिठाई

१—स्याद्वादपक्षन्याय के देखने से मनुष्य को किसी प्रकार की शङ्का नहीं प्राप्त होती है॥

आदि गरिष्ठ पदार्थ खाने हों तब उन के साथ भी गर्म मसाले और चटनी आदि खाने चाहियें, किन्तु साधारण खुराक में गर्म मसालों का विशेष उपयोग करना आवश्यक नहीं है, यह भी स्मरण रखना चाहिये कि—गरिष्ठ पदार्थों के पचाने के लिये जो गर्म मसाले मिर्चे और चटनी आदि खाये जावें वे भी परिमित ही खाये जावें, किन्तु उचित तो यह है कि—यथाशक्य गरिष्ठ पदार्थों का सेवन ही न किया जावे और यदि किया भी जावे तो खुराक की मात्रा से कम किया जावे।

वर्त्तमान समय में इस देश में शाक और दाल आदि में बहुत मिर्चे, इमली, अचार, चटनी और गर्म मसालों के खाने का रिवाज बहुत ही बढ़ता जाता है, यह बड़ी हानिकारक बात है, इस लिये इस को शीघ्र ही रोकना चाहिये, देखो ! इस हानिकारक व्यवहार का उपयोग करने से शरीर का रस बिगड़ता है, खून गर्म हो जाता है और पित्त बिगड़ कर अपना मार्ग छोड़ देता है, इसी से तरह २ के रोगों का जन्म होता है जिन का वर्णन कहां तक किया जावे।

गर्म प्रकृतिवाले पुरुष को गर्म मसालों का सेवन कभी नहीं करना चाहिये क्यों—कि ऐसा करने से उस को बहुत हानि पहुँचेगी, यदि गर्म मसालों की ओर चित्त चलायमान भी हो तो धनियां जीरा और सैंधानमक, इस मसाले का उपयोग करके क्योंकि यह साधारण मसाला है तथा सब के लिये अनुकूल आ सकता है, यदि चरपरी वस्तु के खाने की इच्छा हो तो काली मिर्चे का सेवन कर लेना चाहिये किन्तु लाल मिर्चे को कभी नहीं खाना चाहिये।

वर्त्तमान समय में लोगों में लाल मिर्चे के खाने का भी प्रचार बहुत बढ़ गया है, यह

१—बहुत से बुभुक्षित ब्राह्मणों आदि को जब मिष्टान्न खाने को मिलता है तब वे औसरों की भांति घर की सदा की खुराक की अपेक्षा दुगुना तथा तिगुना माल खा जाते हैं और ऊपर से धमधमाहट करते हुए घाट साग अचार और चटनी आदि पदार्थों को भी उदर दरी में पधराते हैं, यह बड़ी भूल की बात है, क्योंकि—इस से बहुत हानि होती है अर्थात् ऐसा करने से पाचनशक्ति का ठिकाने रहना अतिकठिन है यदि कोई पेटार्थी ऐसा हिसाब लगावे कि मैं आध सेर अन्न अथवा तर माल का खानेवाला हूँ किन्तु मैं एक रुपये भर गर्म मसाला खाकर सेर भर माल को हजम कर लूंगा तथा दो रुपये भर गर्म मसाला खाकर दो सेर माल को हजम कर लूंगा इसी प्रकार पांच रुपये भर गर्म मसाले से पांच सेर नहीं तो तीन सेर तो अवश्य ही हजम कर लूंगा तो उस का यह त्रैराशिक (त्रिराशिक हिसाब) खुराक के विषय में काम में नहीं आवेगा और यदि वह उक्त हिसाब को सत्य कर वैसा करेगा तो अजीर्ण होकर उसे अवश्य मरना पड़ेगा ॥

२—बीकानेर के ओसवाल और तैलंग देशवाले लोग जितनी लाल मिर्चे खाते हैं उतनी मिर्चे शायद ही कहीं कोई खाता होगा यद्यपि इस समय ओसवालों के यहां मिर्चे के साथ घृत (घी) भी अधिक डालकर खाते हैं जिस से मिर्चे की गर्मी कुछ कम हो जाती है परन्तु वर्तमान में इस (बीकानेर) नगर में ओसवालों में सामान्यतया तिल्ली के चंद की (तैल) ही का वर्ताव बहुत है, इसी प्रकार तैलंग लोग चावल और इमली मिर्चे की चटनी को रूखी (बिना घृत के) ही खाते हैं, मलेबारवाले लोग कच्चे नारियल और थोड़ी सी मिर्चों की चटनी बना कर भात के साथ खाते हैं, घी मिर्चे की गर्मी को शान्त करने वाला है परन्तु वर्तमान में उस के विषय में तो यह कहावत चरितार्थ होने लगी है कि घी का और बूरा का ढूंढ किस ने देखा है ॥

भी अत्यन्त हानिकारक है, वहुत से लोग यह कहते है कि–जितना चरपरापन लाल मिर्च में है उतना दूसरी किसी चीज़ में नहीं है इस लिये चरपरी चीज के खाने की इच्छा से यह (लाल मिर्च) खानी ही पडती है इत्यादि, यह उन लोगों का कथन विलकुल भूल का है, क्योंकि चरपरी चीज के खाने की इच्छावाले लोगो के लिये लाल मिर्चके सिवाय वहुत सी ऐसी चीजें हैं कि जिन से उन की इच्छा पूर्ण हो सकती है, देखो! अदरख काली मिर्च, सोंठ और पीपल आदि वहुत से चरपरे पदार्थ हैं तथा गुणकारक भी है इस लिये जव चरपरे पदार्थ के खाने की इच्छा हो तव इन (अदरख आदि) वस्तुओं का सेवन कर लेना चाहिये, यदि विशेप अभ्यास पड जाने के कारण किसी से लाल मिर्च के विना रहा ही न जावे अथवा लाल मिर्च का जिन को वहुत ही शौक पड़ गया हो उन लोगों को चाहिये कि जयपुर ज़िले की लाल मिर्च के वीजो को निकाल[1] कर रात को एक वा दो मिर्चें जल में भिगो कर प्रातःकाल पीसकर तथा घी मे सेक कर थोड़ी सी खा लेवें।

यह भी स्मरण रखना चाहिये कि–खट्टे[2] रस का तोड़ (दाउन या उतार) नमक है और नमक का तोड खट्टा रस है।

वघार देने के लिये जीरा, हींग, राई और मेथी मुख्य वस्तुयें है तथा वायु और कफ की प्रकृतिवालो के लिये ये लाभदायक भी हैं ॥

अचार और राइता[3]—अचार और राइता पाचनशक्ति को तेज़ करता है परन्तु स्मरण रखना चाहिये कि जो २ पदार्थ पाचनशक्ति को वढाते है और तेज हैं यदि उन का परिमाण वढ़ जावे तो वे पाचनशक्ति को उलटा विगाड़ देते[4] है, वहुत से लोग अचार, राइता, तेल, राई, नमक और मिर्चआदि तेज पदार्थों से जीभ को तहडून कर देते हैं सो यह ठीक नहीं है, ये चीजें हमेशह कम खानी चाहियें, यदि ये खाई भी जावें तो मिठाई आदि तर माल के साथ खानी चाहियें अर्थात् सदा नही खानी चाहियें क्योंकि इन चीजों के सेवन से खून विगड़ जाता है और खून के विगड़ने से मन्दाग्नि होकर शरीर में अनेक रोग हो जाते है, इस लिये इन चीजों से सदा वचकर रहना चाहिये, देखो! मारवाड़ के निवासी और गुजराती आदि लोग इन्हीं के कारण प्रायः वीमार होते

१–लाल मिर्च के वीजों को खानेसे वीर्य को वडा भारी नुकसान पहुँचता है, इसलिये वीजों को विलकुल नहीं खाना चाहिये ॥

२–खट्टे रस में नींवू अमचुर और कोकम खाने के योग्य हैं, परन्तु यदि प्रकृतिके अनुकूल हों तो खाना चाहिये ॥

३–अचार और रायता कई प्रकार का वनता है–उस के गुण उस के उत्पादक पदार्थ के समान जानने चाहियें तथा इन मे मसालों के होने से उन के तीक्ष्णता आदि गुण तो रहते ही हैं ॥

४–विवेकहीन लोग इस वात को नहीं समझते हैं, देखो! इन्हीं चीजों से तो पाचनशक्ति विगडती है और इन्हीं चीजों का सेवन पाचनशक्ति के सुधार के लिये लोग करते हैं ॥

हैं, आगरे तथा दिल्ली से लेकर अटक के देश तक लोग लाल मिर्च को नहीं खाते हैं यदि खाते भी हैं तो बहुत ही युक्ति के साथ खाते हैं ॥

चाय—वर्त्तमान समय में चाय का बहुत ही प्रचार है अर्थात् घर २ में लोग इस को पीते हैं, हमारे देश में पहिले चीन से चाय आती थी परन्तु अब बहुत वर्षों से नीलगिरि और आसाम के जिले में भी चाय पैदा होकर यहां आने लगी है, इस देश में जो चाय बाजारों में बिकती है वह बहुत ही घटिया होती है, चीन जैसी चाय किसी मुल्क में नहीं पैदा होती है अर्थात् आठ आने से लेकर सौ रुपये तक वहां एक रतल की कीमत होती है किन्तु इस से भी अधिक होती है, वैसी अव्वल दर्जे की चाय बाजारों में बिकती हुई यहां कभी नहीं देखी गई और न उस चाय का यहां कोई ग्राहक ही दीख पड़ता है क्योंकि यहां तो 'सस्ता दाम और चोखा माल, का विचार प्रत्येक के हृदय में बस रहा है।

चाय वृक्ष के सुखाये हुए पत्ते हैं, सूख जाने के बाद इन पत्तों को कड़ाहों में गर्म करते हैं तब उन में सुगन्धि और स्वाद अच्छा हो जाता है, यह एक थोड़े ही नशे की चीज है इस लिये सदा पीने से अफीम, गांजा, सुलफा, तमाखू, मद्य, भांग और धतूरे आदि दूसरी नशीली चीजों की तरह अधिक हानि नहीं करती है।

चाय में प्रतिसैंकड़े के हिसाब से गुण करनेवाला भाग एक से छ भाग तक होता है अर्थात् सब से हलकी (घटिया) चाय में एक और सब से बढ़िया चाय में प्रति सैंकड़े में छ गुण कारी भाग हैं, इस में पौष्टिक तत्व प्रतिसैंकड़े में १५ भाग हैं और कब्जी करनेवाला तत्व बहुत ही थोड़ा है।

काली और हरी चाय एक ही वृक्ष की होती है और पीछे बनावट के द्वारा इस के रंग में परिवर्त्तन होता है, चाय के ताजे पत्तों को गर्म कड़ाई में पकाने से अथवा पानी की भाफ से सुलाकर गर्म करने से यह रंग में काली अथवा हरी हो जाती है परन्तु हरी चाय को रंग देने के लिये नीला थोथा अथवा प्रश्यनस्लू नामक जहरीली वस्तु का जो कुछ अंश किसी समय लोग देते हैं उस का असर बहुत खराब होता है।

चाय प्रमाण में बहुत थोड़ी सी पीने से शरीर में सुस्ती पैदा करती है और थोड़ी नींद लाती है परन्तु प्रमाण में अधिक पीने से अंग में गर्मी और फुर्ती आती है तथा नींद का आना बंद हो जाता है।

बहुत से लोग नींद को रोकने के लिये रात को चाय पीते हैं उस से यद्यपि नींद तो नहीं आती है परन्तु बेचैनी पैदा होती है, जो लोग नींद को रोकने के लिये रात को बार २ चाय पीते हैं और नींद को रोकते हैं इस से उन के मगज को बहुत हानि पहुँचती है, जो आदमी अच्छा और पुष्टिकारक खुराक ठीक समय पर खाते हैं वे लोग यदि

१—इस को ब्ल्यू और पाइ भी कहते हैं ॥

परिमाण के अनुसार चाय पीवें तो कुछ हानि नहीं है परन्तु हलका और थोडा भोजनकरने वाले तथा गरीब आदमियों को थोड़ीसी तेज़ चाय पीनी चाहिये क्योंकि हलकी खुराक खानेवाले लोगों को थोडी सी तेज़ चाय नुकसान नहीं करती है, बहुत चाय के पीने से मगज में तथा मगज़ के तन्तुओं में शिथिलता हो जाती है, निर्वलता में अधिक चाय के पीने से भ्रान्ति और भूलने का रोग हो जाता है, लोग यह भी कहते है कि–चाय खून को जला देती है यह बात कुछ सत्यभी मालूम होती है, क्योंकि–चाय अत्यन्त गर्म होती है इसलिये उस से खून का जलना सभव है, चाय को सदा दूध के साथ ही पीना चाहिये क्योंकि दूधके साथ पीनेसे चाय का नशा कम होताहै, पोषण मिलता है तथा वह गर्मी भी कम करती है, बहुत से लोग भोजन के साथ चाय को पीते है सो यह हानिकारक है, क्योंकि उससे पाचनशक्ति में अत्यन्त बाधा पहुॅचती है इसलिये भोजन के पीछे तीन चार घण्टे बीत जानेपर चाय को पीना चाहिये, देखो ! चाय पित्त को बढानेवाली है इसलिये भोजन से तीन चार घण्टे के बाद जो भोजन का भाग पचना बाकी रह गया हो वह भी उस चाय के द्वारा उत्पन्न हुए पित्त से पचकर नीचे उतर जाता है, चाय में थोडा सा गुण यह भी है कि–वह पक्वाशय (होजरी) को तेज करती है, पाचनशक्ति तथा रुचि को पैदा करती है, चमड़ी तथा मूत्राशय पर असर कर पसीने तथा पेशाव को खुलासा लाती है जिस से खून पर कुछ अच्छा असर होता है, शरीर के भागों की शिथिलता और थकावट को दूर कर उन में चेतनता लाती है, परन्तु चाय में नशा होता है इससे वह तनदुरुस्ती मे बाधा पहुँचाती है, ज्यों २ चाय को अधिक देर तक उबाल कर पत्तों का अधिक कस निकाल कर पिया जावे त्यों २ वह अधिक हानि करती है, इस लिये चाय को इस प्रकार बनाना चाहिये कि पतीली में जल को चूल्हे पर चढादिया जावे जब वह (पानी) खूब गर्म होकर उबलने लगे तब चाय के पत्तों को डाल कर कलईदार ढक्कन से ढक देना चाहिये और सिर्फ दो तीन मिनट तक उसे चूल्हेपर चढाये रखना चाहिये, पीछे उतार कर छान कर दूध तथा मीठा मिलाकर पीना चाहिये, अधिक देर तक उबालने से चाय का स्वाद और गुण दोनों जाते रहते हैं, चाय में खाड़ या मिश्री आदि मीठा भी परिमाण से ही डालना चाहिये क्योंकि अधिक मीठा डालने से पेट बिगडता है, बहुत लोग चाय में नीबू का भी कुछ स्वाद देते है उस की रीति यह है कि–कलई या काचके वर्त्तन में नींबू की फाक रख कर ऊपर से चाय का गर्म पानी डाल देना चाहिये, चार पाच मिनट तक वैसा ही रख कर पीछे दूसरे वर्त्तन में छान लेना चाहिये ।

चाय में यद्यपि बहुत फायदा नहीं है परन्तु ससार में शौकीनपने की हवा घर २ में फैलगई है इसलिये चाय का तो सब को एक व्यसन सा होगया है अर्थात् एक दूसरे की देखादेखी सब ही पीने लगे है परन्तु इस से बड़ा नुकसान है क्योंकि लोग चाय में जो

विशेष गुण समझते हैं वे उस में बिलकुल नहीं हैं इसलिये आवश्यकता के समय में दूध और बूरा आदि के साथ इस को थोड़ा सा पीना चाहिये, प्रतिदिन चाय का पीना तो तर माल खानेवाले अंग्रेज और पारसी आदि लोगों के लिये अनुकूल हो सकता है किन्तु जो लोग प्रतिदिन घी का दर्शन तक नहीं कर सकते हैं सिर्फ त्यौहार आदि को जिन को घी का दर्शन होता है उन के लिये प्रतिदिन चाय का पीना महा हानिकारक है, चाय के पीने की अपेक्षा तो यथाशक्य आरोग्यता को कायम रखने के लिये प्रतिदिन स्वयं दूध पीना चाहिये तथा बच्चों को पिलाना चाहिये ॥

काफी—चाय के समान एक दूसरी वस्तु काफी है जो कि अरब स्थान से यहां आती है, चाय और काफी दोनों का गुण प्रायः मिलता हुआ सा है, यह एक वृक्ष का बीज है इस को बुद दाना भी कहते हैं, बहुत से लोग इस के दानों को सेक कर रख छोड़ते हैं और भोजन करने के पीछे सुपारी की तरह चाब कर मुँह को साफ करते हैं, इस के दानों को सेकने से उन में सुगन्ध हो जाती है और वे एक मसालेदार चीज के समान बन जाते हैं, इस के दानों में सिर्फ एक भाग गुणकारी है, एक भाग खट्टा है, बाकी का सबभाग कडुआ और कब्जी करनेवाला है, इस के कच्चे दाने बहुत दिनों तक रह सकते हैं अर्थात् बिगड़ते नहीं हैं परन्तु सेके हुए अथवा दले हुए दानों को बहुत दिनों तक रखने से उन की सुगन्धि तथा स्वाद जाता रहता है।

चाय की अपेक्षा काफी अधिक पौष्टिक तथा शक्तिदायक है परन्तु वह भारी है इस लिये निर्बल और बीमार आदमी को नहीं पचती है, काफी से शरीर में गर्मी और मंदता आती है शीत ऋतु में तथा शीत देशों में यात्रा करते समय यदि काफी पी जावे तो शरीर में गर्मी रहसकती है।

काफी के चूर्ण की भैली बना कर पतीली के उबलते हुए जल में डाल कर पांच सात मिनट तक उसी में रख कर पीछे उतारने से काफी तैयार होजाती है, चाय तथा काफी में बहुत मीठा डाल कर पीने से निर्बल कोठे वाले को अवश्य हानि पहुँचती है इस लिये इन दोनों में थोड़ा सा ही मीठा डाल कर पीना चाहिये।

काफी के पानी में चौथा भाग दूध डालना चाहिये, इन दोनों चीजों को बहुत गर्म पीने से पाचनशक्ति कम पड़ती है तथा धातु में भी हानि पहुँचती है, इस गर्म देश में काफी गर्मी पैदा कर नींद का नाश करती है इसलिये इसे रात को नहीं पीना चाहिये किन्तु आवश्यकता हो तब इसे प्रातःकाल में ही पीना चाहिये, हां यदि किसी कारण से किसी को रात्रि में निद्रा से बचना हो तो भले ही उसे रात में काफी पी लेनी चाहिये, जैसे—किसी ने विष खाया हो तो उस को रात्रि में नींद से बचाने के लिये अर्थात् जागृत (जागता हुआ) रखने के लिये बार २ काफी पिलाया करते हैं।

बहुत स्थूल शरीर वाले तथा बहुत खाने वाले के लिये चाय और काफी का पीना अच्छा है, दुबले तथा निर्बल आदमीको यथाशक्य चाय और काफी को नहीं पीना चाहिये तथा बहुत तेज भी नहीं पीना चाहिये किन्तु अच्छीतरह दूध मिलाकर पीना चाहिये, हलकी रूक्ष और सूखी हुई खुराक के खानेवालो को तथा उपवास, आविल, एकाशन और ऊनोदरी आदि तपस्या करने वालो को चाय और काफी को नहीं पीना चाहिये यदि पियें भी तो बहुत ही थोडी सी पीनी चाहिये, प्रातःकाल में पूड़ी आदि नाश्ते के साथ चाय और काफी का पीना अच्छा है, पेट भर भोजन करने के बाद चार पाच घंटे बीते विना इन को नहीं पीना चाहिये, निर्बल कोठे वाले को बहुत मीठी बहुत सख्त उबाली हुई तथा बहुत गर्म नहीं पीनी चाहिये किन्तु थोडा सा मीठा और दूध डालकर कुए के जल के समान गर्म पीनी चाहिये, इन दोनो के पीने में अपनी प्रकृति, देश, काल और आवश्यकता आदि बातो का भी खयाल रखना चाहिये, वास्तव में तो इन दोनों का भी पीना व्यसन के ही तुल्य है इस लिये जहातक हो सके इन से भी मनुष्य को अवश्य बचना चाहिये ॥

अन्नसाधन—समवाय हेतु में जो २ गुण हैं वे ही गुण उस समवायी कार्य में जानने चाहियें अर्थात् जो २ गुण गेहूँ, चना, मूग, उडद, मिश्री, गुड, दूध और बूरा आदि पदार्थों में है वे ही गुण उन पदार्थों से बने हुए लड्डू, पेड़े, पूडी, कचौरी, मठरी, रबड़ी, जलेबी और मालपुए आदि पदार्थों में जानने चाहियें, हा यह बात अवश्य है कि–किसी २ वस्तु में सस्कार भेद से गुण भेद हो जाता है, जैसे पुराने चावलो का भात हलका होता है परन्तु उन्हीं शालि चावलों के बने हुए चिर वे (सस्कार भेद से) भारी होते है, इसी प्रकार कोई २ द्रव्य योग प्रभाव से अपने गुणो को त्याग कर दूसरे गुणो को धारण करता है, जैसे–दुष्ट अन्न भारी होता है परन्तु वही घीके योग से बनने से हलका और हितकारी हो जाता है।

यद्यपि प्रथम कुछ आवश्यक अन्नों के गुण लिख चुके है तथा उन से बने हुए पदार्थों में भी प्रायः वे ही गुण होते हैं तथापि सस्कार भेद आदि के द्वारा बने हुए तज्जन्य पदार्थों के तथा कुछ अन्य भी आवश्यक पदार्थों का वर्णन यहा सक्षेप से करते हैं:—

भात—अग्निकर्त्ता, पथ्य, तृप्तिकर्त्ता, रोचक और हलका है, परन्तु विना धुले चावलो का भात और विना औटे हुए जल में चावलों को डाल कर पकाया हुआ भात शीतल, भारी, रुचिकर्त्ता और कफकारी है ॥

दाल—विष्टम्भकारी, रूक्ष तथा शीतल है, परन्तु भाड में भुनी हुई दाल के छिलकों को दूर करके बनाई जावे तो वह अत्यन्त हलकी हो जाती है ॥

१–इस के बनाने की विधि पूर्व लिख चुके है ॥

खिचड़ी—वीर्यदाता, बलकर्त्ता, भारी, पित्तकफकर्त्ता, देर में पचनेवाली, बुद्धिकर्त्ता, मूत्रकारक तथा विष्टंभ और मल को उत्पन्न करने वाली है ॥

खीर—देर में पचने वाली, बृंहणी तथा बलवर्द्धक है ॥

सेमंई—धातुओं की तृप्ति करने वाली, बलकारी, भारी, पित्त और वात को नष्ट करने वाली, ग्राही, सन्धि कर्त्ता तथा रुचिकारी है ॥

पूरी—बृंहण, वृष्य, बलकारी, रुचिकर्त्ता, पाक में मधुर, ग्राही और त्रिदोष नाशक है ॥

लप्सी (सीरा)—बृंहण, वृष्य, बलकारक, वातपित्तनाशक, स्निग्ध, कफकारी, भारी, रुचिकर्त्ता और अत्यन्त तृप्ति कर्त्ता है ॥

रोटी—बलकारी, रुचिकर्त्ता, बृंहणी (पुष्टि कर्त्ता), रस और रक्त आदि धातुओं को बढ़ाने वाली, वातनाशक, कफकर्त्ता, भारी और प्रदीप्त अग्निवालों के लिये हित कर्त्ता है ॥

बाटी—बृंहणी, शुक्रकर्त्ता, हलकी, दीपनकर्त्ता, कफकारी तथा बलकर्त्ता है, एवं पीनस, श्वास और कास रोग को दूर करती है ॥

जौ की रोटी—रुचिकर्त्ता, मधुर, विशद और हलकी है, मल, शुक्र और वादी को करती है तथा कफ के रोगों को नष्ट करती है ॥

उड़द की रोटी—कफपित्त नाशक तथा कुछ वायुकारक है ॥

चने की रोटी—रूक्ष, कफ पित्त और रुधिर के विकारों को दूर करनेवाली, भारी, पेट को फुलाने वाली, नेत्रों के लिये अहित तथा शोषक है ॥

घेवर[१]—बलकारी, वृष्य, रुचिकर्त्ता, वातनाशक, उष्णता को बढ़ाने वाली, भारी, बृंहणी और शुक्र को प्रकट करनेवाली है, मूत्र तथा मल का भेदन करती है, स्तनसम्बन्धी दूध, मेद, पित्त और कफ को करती है तथा गुदा का मस्सा, लकवा, वात, श्वास और परिणाम शूल को दूर करती है ॥

पापड़—परम रुचिकारी, दीपन, पाचन, रूक्ष और कुछ २ भारी हैं, परन्तु मूंग के पापड़ हलके और पथ्य होते हैं ॥

कचोरी—तेल की कचोरी–रुचिकर, स्वादु, भारी, स्निग्ध, बलकारी, रक्तपित्त को कुपित करने वाली, नेत्रों के तेज का भेदन करनेवाली, पाक में गर्म तथा वातनाशक है परन्तु घी की बनी हुई कचोरी नेत्रों को हितकारक तथा रक्तपित्त की नाशक होती है ॥

१–ये पूर्वोक्त देशों में श्रावण मास में बहुत बनाई जाती हैं ॥

वरा और मँगोरा—ये दोनो—बलकारक, बृंहण, वीर्यवर्धक, वातरोगहर्त्ता, रुचिकारी, अर्दित वायु (लकवा) के नाशक, मलभेदक, कफकारी तथा प्रदीप्ताग्निवालो के लिये हितकारक है, यदि गाढे दही में भुना हुआ जीरा, हींग, मिर्चे और नमक को मिलाकर वरे और मँगोरो को भिगो दिया जावे तो वे दही वडे और दही की पकोडी कहलाती है, ये दोनो—वीर्यकर्त्ता, बलकारी, रोचक, भारी, विबन्ध को दूर कर्त्ता, दाहकारी, कफकर्त्ता और वातनाशक होते है ॥

उड़द की बड़ी—इन में वरे के समान गुण है तथा अत्यन्त रोचक है ॥

पेठे की बड़ी—इन में भी पूर्वोक्त वडियो के समान गुण है परन्तु इन में इतनी विशेषता है कि ये रक्तपित्तनाशक तथा हलकी है ॥

मूंग की बड़ी—पथ्य, रुचिकारी, हलकी और मूंग की दाल के तुल्य गुणवाली है ॥

कढ़ी—पाचक, रुचिकारी, हलकी, अग्निदीपक, कफ और वादी के विबंध को तोडनेवाली तथा कुछ २ पित्तकोपक है ॥

मीठी मठरी—बृंहण, वृष्य, बलकारी, मधुर, भारी, पित्तवातनाशक तथा रुचिकारी है, यह प्रदीप्ताग्निवालो के लिये हितकारक है, इसी प्रकार मैदा खाड़ और घी से बने हुए पदार्थों (बालूसाई, मैदा के लड्डू और मगद तथा सकर पारे आदि) के गुण मीठी मठरी के समान ही जानने चाहियें ॥

बूंदी के लड्डू—हलके, ग्राही, त्रिदोषनाशक, स्वादु, शीतल, रुचिदायक, नेत्रों के लिये हितकारक, ज्वरहर्त्ता, बलकारी तथा धातुओं की तृप्तिकारक है, ये मूग की बूंदी वाले लड्डूओं के गुण जानने चाहियें ॥

मोतीचूर के लड्डू—बलकर्त्ता, हलके, शीतल, किञ्चित् वातकर्त्ता, विष्टम्भी, ज्वरनाशक, रक्तपित्तनाशक तथा कफहर्त्ता है ॥

जलेबी—पुष्टिकर्त्ता, कान्तिकर्त्ता, बलदायक, रस आदि धातुओं को बढ़ानेवाली, वृष्य, रुचिकारी और तत्काल धातुओं की तृप्तिकारक है ॥

शिखरन (रसाला)—शुक्रकर्त्ता, बलकारक, रुचिकारी, वातपित्त को जीतनेवाली, दीपनी, बृंहणी, स्निग्ध, मधुर, शीतल और दस्तावर है, यह रक्तपित्त, प्यास, दाह और सरेकमा को नष्ट करती है ॥

शर्वत—वीर्य प्रकटकर्त्ता, शीतल, दस्तावर, बलकारी, रुचिकर्त्ता, हलका, स्वादिष्ठ, वातपित्तनाशक तथा मूर्छा, वमन, तृषा, दाह और ज्वर का नाशक है ॥

आम का पना—तत्काल रुचिकर्त्ता, बलकारी तथा शीघ्र ही इन्द्रियों की तृप्ति कारी है ॥

इमली का पना—वातनाशक, किञ्चित् पित्तकफकर्त्ता, रुचिकारी तथा अग्निदीपक है ॥

नींबू का पना—अत्यन्त खट्टा, वातनाशक, अग्निदीपक, रुचिकारी तथा सम्पूर्ण किये हुए आहार का पाचक है ॥

धनिये का पना—यह पित्त के उपद्रवों को शान्त करता है ॥

जौ का सत्तू[1]—शीतल, दीपन, हलका, दस्तावर, कफपित्तनाशक, रूक्ष और लेखन (दुर्बलकरनेवाला) है, इस का पीना बलदायक, वृष्य, बृंहण, भेदक, तृप्तिकर्त्ता, मधुर, रुचिकारी तथा अन्त में बलनाशक है, यह कफ, पित्त, परिश्रम, भूख, प्यास, अण्डवृद्धि और नेत्ररोग को नष्ट करता है तथा दाह से व्याकुल और व्यायाम से श्रान्त (थके हुए) पुरुषों के लिये हितकारी है ॥

चना और जौ का सत्तू—यह कुछ वातकारक है इसलिये इस में बूरा और घी डाल कर इसे खाना चाहिये ॥

शालिसत्तू[2]—अग्निवर्धक, हलका, शीतल, मधुर, ग्राही, रुचिकर्त्ता, पथ्य, बलकारक, शुक्रजनक और तृप्तिकारक है ॥

बहुरी[3]—दुर्जर (कठिनता से पचनेवाला), रूक्ष, तृषा लगानेवाली तथा भारी है, परन्तु प्रमेह कफ और वमन को नष्ट करती है ॥

खील (लाजा)[4]—मधुर, शीतल, हलकी, अग्निदीपक, अल्पमूत्रकर्त्ता, रूक्ष, बलकर्त्ता तथा पित्तनाशक है, मद, कफ, वमन, अतीसार, दाह, रुधिरविकार, प्रमेह, मेद रोग और तृषा को दूर करती है ॥

चिउरा (चिरमुरा)[5]—भारी, वातनाशक तथा कफकर्त्ता हैं, यदि इन को दूध के साथ खाया जावे तो ये बृंहण, वृष्य, बलकारी और दस्त को लानेवाले होते हैं ॥

१—इस को मारवाड़ में सातू कहते हैं, इस के खाने में सात नियमों को ध्यान में रखना चाहिये कि—भोजन कर के इस को न खावे दाँतों से चबाकर न खावे रात्रि में न खावे बहुत न खावे एक जल में दूसरे प्रकार का जल मिलाकर न खावे मिठाई आदि के बिना (केवल सत्तू) न खावे गर्म कर के तथा दूध के साथ न खावे ॥

२—इस को पूर्व में बुंदिया का सत्तू कहते हैं तथा यह शालि चावलों का बनाया जाता है ॥

३—तुषरहित भुने हुए जौओं को बहुरी कहते हैं ॥

४—यह धानों के भूनने से बनती है ॥

५—तुषरहित हरे शालि चावलों को कूट कर बिना छिले हुओं को गर्म ही ओखली में डालकर कूटने से ये तयार होते हैं ॥

तिलकुटा[1]—मलकर्त्ता, वृष्य, वातनाशक, कफपित्तकर्त्ता, बृंहण, भारी, स्निग्ध तथा अधिक मूत्र के उतरने का नाशक है ॥

होला[2]—जिस धान (अन्न) का होला हो उस में उसी धान के समान गुण होते हैं, जैसे–चने के होले चने के समान गुणवाले है, इसी प्रकार से अन्य धान्यों के होलों का भी गुण जान लेना चाहिये ॥

उम्बी[3]—कफकर्त्ता, बलकारी, हलकी और पित्तकफनाशक है ॥

जाली[4]—जीभ के जकड़ने को दूर करनेवाली तथा कण्ठ को शुद्ध करनेवाली है, यदि इस को धीरे २ पिया जावे तो यह रुचि को करती है तथा अग्नि को प्रदीप्त करती है ॥

दुग्ध कूपिका[5]—बलकारी, वातपित्तनाशक, वृष्य, शीतल, भारी, वीर्यकर्त्ता, बृंहणी, रुचिकारी, देहपोषक तथा नेत्रतेजोवर्धक है ॥

ताहरी[6]—बलकारी, वृष्य, कफकारी, बृंहणी, तृप्तिकर्त्ता, रुचिकारी और पित्तनाशक है ॥

नारियल की खीर[7]—स्निग्ध, शीतल, अतिपुष्टिकर्त्ता, भारी, मधुर और वृष्य है तथा रक्तपित्त और वादी को दूर करती है ॥

मण्डक[8]—बृहण, वृष्य, बलकारी, अतिरुचिकारक, पाक में मधुर, ग्राही, हलके और त्रिदोष नाशक हैं ॥

१–तिलों में गुड या शक्कर डालकर कूट डालने से यह तयार होता है, पूर्व के देशों में यह सकटचतुर्थी (सकट चौथ) को प्राय प्रतिगृह में बनाया जाता है ॥

२–फलियों के धान्य आधे भुने हुए हों तथा उन का तृण जल गया हो उन को होला कहते हैं ॥

३–गेहूँ की अधपकी बाल को जो तिनकों की अग्निमे भून लेवे, उसे उम्बी कहते है ॥

४–कच्चे आमो को पीस कर उन मे राई सेंधानमक और भुनी हींग को मिला कर जल मे घोर देवे इस को जाली कहते हैं ॥

५–चावलों का चूर्ण कर उस में गाढा मावा (खोहा) मिला कर कुप्पी से बना लेवे, फिर उन को घी में छोड कर पकावें, फिर उन को निकाल कर बीच में छेद कर मिश्री मिला हुआ गाढा दूध भर देवे और शक्कसे मुख बद करके फिर घी मे पकावे, जव पीले रग की होजावें तब धीमे से निकालकर कपूर मिली चासनी मे तल लेवे, इसको दुग्धकूपिका कहते हैं ॥

६–हलदी मिले घी मे प्रथम उडद की बड़ियों को तथा इन्हीं के साथ धुले हुए स्वच्छ चावलों को लेवे, फिर जितने मे ये दोनों सिद्ध हो जावें उतना जल चढाकर पकावे तथा नमक अदरख और हींग को अनुमान माफिक डाले तो यह ताहरी सिद्ध होती है ॥

७–नारियल की गिरी को चाकू से वारीक कतर कर अथवा घियाकस पर वारीक रगड कर दूध मे खाड और गाय का घी डाल कर मन्दाग्नि से औंटावे तो नारियल की खीर तैयार हो जाती है ॥

८–सफेद गेहुओं को जल मे धोकर ओखली में डालकर मूसल से कूट डाले, फिर इन को धूप में सुखाकर चक्की से पीसकर मैंदा छानने की चालनी मे छानकर मैंदा कर लेवे, फिर इस मैंदा को जल मे कोमल उसन कर खूब मर्दन करे, फिर हाथ से लोई को बढा कर पूडी के समान वेल लेवे, फिर चूल्हे पर औंधे मुख के खपडे पर इस को डाल कर मन्दाग्नि से सेके, ये सिके हुए मण्डक कहलाते हैं ॥

काजी बरा—रुचिकारी, वातनाशक, कफकारक, शीतल तथा शूलनाशक हैं, एवं दाह और अजीर्ण को दूर करते हैं, परन्तु नेत्ररोगी के लिये अहित हैं ॥

इमली के बरे—रुचिकारी, अग्निदीपक तथा पूर्व कहे हुए बरों के समान गुण-वाले हैं ॥

मूंग बरा—मूग के बरे (बड़े) छाछ में परिपक्व करके तैयार किये जावें तो वे हलके और शीतल हैं तथा ये संस्कार के प्रभाव से त्रिदोषनाशक और पथ्य हो जाते हैं ॥

अलीक मत्स्य—खाने में स्वादिष्ठ तथा रुचिकारी हैं, इन को बथुआ के शाक से अथवा रायते से खाना चाहिये ॥

मूग अदरख की बड़ी—रुचिकारक, हलकी, बलकारी, दीपन, धातुओं की वृद्धि करनेवाली, पथ्य और त्रिदोषनाशक हैं ॥

पकौरी—रुचिकारी, विष्टम्भकर्त्ता, बलकारी और पुष्टिकारक हैं ॥

गुझा या गुझियां—बलकारक, बृंहण तथा रुचिकारी हैं ॥

१–एक मिट्टी का घड़ा लेकर उस के भीतर कडुआ तेल चुपड़ देवे फिर उस में स्वच्छ जल भर कर उस में राई, जीरा नमक हींग सोंठ और हलदी इन का चूर्ण डाल कर उड़द के बड़ों को उस जल में भिगो देवे और उस घड़े के मुख को बंद कर किसी एकान्त स्थान में धर देवे बस ३ दिन के बाद खट्टे होने पर उन्हें काम में लावे ॥

२–पकी इमली का औटा कर जल में ही उसे खूब भीजे फिर किसी कपड़े में डालकर उसे छान लेवे तथा उसमें नमक मिर्च जीरा आदि यथायोग्य मिलाकर मंगोड़ियों को भिगो देवे ये इमली के बरे कहलाते हैं ॥

३–उड़द की पिट्ठी में बड़े साबत पानों को लपेट कर युक्ति से कड़ाही में सेंके फिर उन को उतार कर चाकू से कतर लेवे पीछे उन को तेलमें तल लेवे इन को अलीक मत्स्य कहते हैं ॥

४–मूंग से बनी हुई बड़ियों को तेल में तलकर हाथ से चूर कर डाले इसमें भुनी हींग छोटे २ अदरख के टुकड़े मिर्च जीरा नींबू का रस और अजमायन इन सब को युक्ति से मिला कर उस पिट्ठी को कड़ाही में अथवा तवे पर जमावे फिर इस के पोये बनाकर भीतर मसाला भर के उन पोयों को तेल में सिद्ध करे जब सिद्ध जावें तब उतार कर कढ़ी में डाल देवे ॥

५–चने की पिसी छनी दाल को पानी से पीस कर बेसन बना लेवे उस बेसन को उसन कर तथा नमक आदि डाल कर बड़ियां बनाकर घी या तेल में कड़ाई में पकावे इन को पकौड़ी कहते हैं, इन को कढ़ी में भी डालते हैं ॥

६–मैदा और घी को मिलाकर पापड़ी बनाकर घी में सेक लेवे जब सिक जावें तब निकाल कर कूट डाले फिर बारीक चालनी में डालकर छान लेवे, इस में खांड बूरा मिला कर एकजीव कर ले तथा इलायचीदाने बादाम पिस्ता नारियल की गिरी और चिरौंजी आदि डाल देवे फिर मोयन (मोवन) दी हुई मैदा की माठी और पड़ी रोटी बेल कर उस के भीतर इस चूर को भरे और फिर इस की गुझिया बना कर किनारों को गूंथ कर फिर कड़ाई में घी डाल इन को सेक लेवे इन को गूझा या गुझिया कहते हैं, ये होली के त्योहार पर प्रायः घर में बनाये जाते हैं ॥

कपूरनाली[1]—इस में गुझिया वा गूझा के समान गुण है ॥

फेनी[2]—बृंहण, वृष्य, बलकारी, अत्यन्त रुचिकारी, पाक में भी मधुर, ग्राही, और त्रिदोषनाशक है तथा हलकी भी है ॥

मैदा की पूड़ी[3]—इन में भी फेनी के समान सब गुण है ॥

सेव के लड्डू[4]—इन में भी सब गुण फेनी के समान ही हैं ॥

यह सक्षेपें से मिश्रवर्ग का कथन किया गया है, बुद्धिमान् तथा श्रीमानों को उचित है कि–निकम्मे तथा हानिकारक पदार्थों का सेवन न कर के इस वर्ग में कहे हुए उपयोगी पदार्थों का सदैव सेवन किया करें जिस से उन का सदैव शारीरिक और मानसिक बल बढता रहे ॥

यह चतुर्थ अध्याय का वैद्यकभाग निघण्टुनामक पाचवा प्रकरण समाप्त हुआ ॥

१–मोवन दी हुई मैदा को उसन कर लम्बा सम्पुट बनावे, उस में लौंग भीमसेनी कपूर तथा खाड को मिला कर भर देवे, फिर मुख को बद करके घी मे सेक लेवे, इस को कर्पूरनालिका कहते हैं ॥

२–प्रथम मैदा को सान कर उस में घी डालकर लम्बी २ बत्ती सी बनावे, फिर उन को लपेट कर पुन लम्बी बत्ती करे, इस के बाद उन को बेलन से बेलकर पापडी बना लेवे, फिर इन को चाकू से कतर पुन. बेले, फिर इन पर सट्टक का लेपकरे (चावलों का चून घी और जल, इन सब को मिला कर हथेली से मथ डाले, इस को सट्टक कहते हैं) अर्थात् सट्टक से लोई को लपेट कर बेल लेवे अर्थात् उसे गोल चन्द्रमा के आकार कर लेवे, फिर इनको घी मे सेके, घी मे सेकने से उन में अनेक तार २ से हो जावेंगे, फिर उनको चासनी मे पाग लेवे, अथवा सुगन्धित बूरे में लपेट लेवे इन को फेनी कहते हैं ॥

३–मोवन डाली हुई मैदा को उसन के लोई करे, फिर उन को पतली २ बेलकर घी मे छोड देवे, जब सिक जावे तब उतार ले ॥

४–मोवन डाली हुई मैदा के सेव तैयार करके घी मे सेक लेवे, फिर इन के टुकडे कर के खाड मे पाग कर लड्डू बनालेवे ॥

५–इस मिश्रवर्ग में कुछ आवश्यक थोडे से ही पदार्थों का वर्णन किया गया है तथा उन्हीं में से कुछ पदार्थों के बनाने की विधि भी नोट में लिखी गई है, शेप पदार्थों का वर्णन तथा उन के बनाने आदि की विधि, एव उन के गुण दूसरे वैद्यक ग्रन्थों में तथा पाकशास्त्र मे देखना चाहिये, यहा विस्तार के भय से उन सब का वर्णन नहीं किया गया है ॥

छठा प्रकरण—पथ्यापथ्यवर्णन

पथ्यापथ्य का विवरण ॥

१–खानपान के कुछ पदार्थ ऐसे हैं जो कि नीरोग मनुष्यों के लिये सर्व ऋतुओं और सब देशों में अनुकूल आते हैं।

२–कुछ पदार्थ ऐसे भी हैं जो कि कुछ मनुष्यों के अनुकूल और कुछ मनुष्यों के प्रतिकूल आते हैं, एवं एक ऋतु में अनुकूल और दूसरी ऋतु में प्रतिकूल आते हैं, इसी प्रकार एक देश में अनुकूल और दूसरे देश में प्रतिकूल होते हैं।

३–कुछ पदार्थ ऐसे भी हैं जो कि—सब प्रकार की प्रकृतिवालों के लिये सब ऋतुओं में और सब देशों में सदा हानि ही करते हैं।

इन तीनों प्रकार के पदार्थों में से प्रथम संख्या में कहे हुए पदार्थ पथ्य (सब के लिये हितकारी) दूसरी संख्या में कहे हुए पदार्थ पथ्यापथ्य (हितकर्त्ता तथा अहितकर्त्ता अर्थात् किसी के लिये हितकारी और किसी के लिये अहितकारी) और तीसरी संख्या में कहे हुए पदार्थ कुपथ्य अथवा अपथ्य (सब के लिये अहितकारी) कहलाते हैं।

अब इन (तीनों प्रकार के पदार्थों) का क्रम से वर्णन पूर्वाचार्यों के लेख तथा अपने अनुभव के विचारों के अनुसार सक्षेप से करते हैं—

पथ्यपदार्थ ॥

अनाजों में—चावल, गेहूँ, जौ, मूंग, अरहर (तूर), चना, मौठ, मसूर और मटर, ये सब साधारणतया सब के हितकारी हैं अर्थात् ये सब सदा खाये जावें तो किसी प्रकार की भी हानि नहीं करते हैं, हां इस बात का स्मरण अवश्य रखना चाहिये कि—इन सब अनाजों में जुदे २ गुण हैं इस लिये इन के गुणों का और अपनी प्रकृति का विचार कर इन का यथायोग्य उपयोग करना चाहिये।

चनों को यहां पर यद्यपि पथ्य पदार्थों में गिनाया है तथापि इन के अधिक खाने से पेट में वायु भर कर पेट फूल जाता है इस लिये इन को कम खाना चाहिये, चावल एक वर्ष के पुराने अच्छे होते हैं, अरहर (तूर) की दाल को घी डाल कर खाने से बिलकुल वायु को नहीं करती है, मूंग यद्यपि वायु को करती है परन्तु उस की दाल का पानी त्रिदोषहर और भयंकर रोग में भी पथ्य है, इस के सिवाय भिन्न २ देशवाले लोगों को आरम्भ से ही जिन पदार्थों का अभ्यास हो जाता है उन के लिये वे ही पदार्थ पथ्य हो जाते हैं।

१–कोई पदार्थ विशेष किसी के लिये कुछ हानिकारक हो उस की गणना इस में नहीं है ॥

शाकों में—चँदलिये के पत्ते, परवल, पालक, वथुआ, पोथी की भाजी, सूरणकन्द, मेथी के पत्ते, तोरई, भिण्डी और कद्दू आदि पथ्य है।

दूसरे आवश्यक पदार्थों में—गाय का दूध, गाय का घी, गाय की मीठी छाछ, मिश्री, अदरख, ऑवले, सेंधानमक, मीठा अनार, मुनक्का, मीठी दाख और वादाम, ये भी सब पथ्य पदार्थ है।

दूसरी रीति से पदार्थों की उत्तमता इस प्रकार समझनी चाहिये कि—चावलों में लाल, साठी तथा कमोद पथ्य है, अनाजों में गेहूँ और जौ, दालो में मूग और अरहर की दाल, मीठे में मिश्री, पत्तों के शाक में चँदलिया, फलो के शाक में परवल, कन्दशाक में सूरण, नमकों में सेंधा नमक, खटाई में ऑवले, दूधो में गाय का दूध, पानी में वरसात का अधर लिया हुआ पानी, फलों में विलायती अनार तथा मीठी दाख, मसाले में अदरख, धनिया और जीरा पथ्य है, अर्थात् ये सव पदार्थ साधारण प्रकृतिवालों के लिये सब ऋतुओं में और सब देशों में सदा पथ्य है किन्तु किसी २ ही रोग में इन में की कोई २ ही वस्तु कुपथ्य होती है, जैसे—नये ज्वर में बारह दिन तक घी, और इक्कीस दिन तक दूध कुपथ्य होता है इत्यादि, ये सव बातें पूर्वाचार्यों के वनाये हुए ग्रन्थों से विदित हो सकती है किन्तु जो लोग अज्ञानता के कारण उन (पूर्वाचार्यों) के कथन पर ध्यान न देकर निषिद्ध वस्तुओं का सेवन कर वैठते है उन को महाकष्ट होता है तथा प्राणान्त भी हो जाता है, देखो! केवल वातज्वर के पूर्वरूप में घृतपान करना लिखा है परन्तु पूर्णतया निदान कर सकने वाला वैद्य वर्त्तमान समय में पुण्यवानों को ही मिलता है, साधारण वैद्य रोग का ठीक निदान नहीं कर सकते है, प्रायः देखा गया है कि—वातज्वर का पूर्वरूप समझ कर नवीन ज्वर वालों को घृत पिलाया गया है और वे बेचारे इस व्यवहार से पानीझरा और मोतीझरा जैसे महाभयकर रोगों में फँस चुके हैं, क्योकि उक्त रोग ऐसे ही व्यवहार से होते है, इसलिये वैद्यों और प्रजा के सामान्य लोगों को चाहिये कि—कम से कम मुख्य २ रोगों में तो विहित और निषिद्ध पदार्थों का सदा ध्यान रक्खे।

साधारण लोगों के जानने के लिये उन में से कुछ मुख्य २ बातें यहा सूचित करते है.—

नये ज्वर में चिकने पदार्थ का खाना, आते हुए पसीने में और ज्वर में ठंढी तथा मलीन हवा का लेना, मैला पानी पीना तथा मलीन खुराक का खाना, मलज्वर के सिवाय नये ज्वर में बारह दिन से पहिले जुलाब सम्बन्धी हरड़ आदि दवा वा कुटकी चिरायता आदि कडुई कषैली दवा का देना निषिद्ध है, यदि उक्त समय में उक्त निषिद्ध

१–इस को पूर्व में अलता कहते है, यह एक प्रकार का रग होता है॥

पदार्थों का सेवन किया जावे तो सन्निपात तथा मरणप्रद हानि पहुँचती है, रोग समय में निषिद्ध पदार्थों का सेवन कर के भी बच आना तो अग्नि विष और शस्त्र से बच जाने के तुल्य दैवाधीन ही समझना चाहिये ।

वैद्यक शास्त्र में निषेध होने पर भी नये ज्वर में जो पश्चिमीय विद्वान् (डाक्टर लोग) दूध पिलाते हैं इस बात का निश्चय अद्यावधि (आजतक) ठीक तौर से नहीं हुआ है, हमारी समझ में वह (दूध का पिलाना) औषध विशेष का (जिस का वे लोग प्रयोग करते हैं) अनुपान समझना चाहिये, परन्तु यह एक विचारणीय विषय है ।

इसी प्रकार से कफ के रोगी को तथा प्रसूता स्त्री को मिश्री आदि पदार्थ हानि पहुँचाते हैं ॥

पथ्यापथ्य पदार्थ ॥

बाजरी, उड़द, चँवला, कुलथी, गुड़, खांड़, मक्खन, दही, छाछ, भैंस का दूध, घी, आलू, तोरई, कौंदा, करेला, ककोड़ा, गुवार फली, दूधी, कद्दू, कोला, मेथी, मोगरी, मूला, गाजर, काचर, ककड़ी, गोभी, घिया, तोरई, केला, अनन्नास, आम, जामुन, करौंदे, अञ्जीर, नारंगी, नींबू, अमरूद, सकरकन्द, पीलू, गूँदा और तरबूज आदि बहुत से पदार्थों का लोग प्रायः उपयोग करते हैं परन्तु प्रकृति और ऋतु आदि का विचार कर इन का सेवन करना चाहिये, क्योंकि ये पदार्थ किसी प्रकृति वाले के लिये अनुकूल तथा किसी प्रकृतिवाले के लिये प्रतिकूल एवं किसी ऋतु में अनुकूल और किसी ऋतु में प्रतिकूल होते हैं, इसलिये प्रकृति आदि का विचार किये बिना इन का उपभोग करने से हानि होती है, जैसे दही शरद् ऋतु में शत्रु का काम करता है, वर्षा और हेमन्त ऋतु में हित कर है, गर्मी में अर्थात् जेठ वैशाख के महीने में मिश्री के साथ खाने से ही फायदा करता है, एवं ज्वर वाले को कुपथ्य है और अतीसार वाले को पथ्य है, इस प्रकार प्रत्येक वस्तु के स्वभाव को तथा ऋतु के अनुसार पथ्यापथ्य को समझ कर और समझदार पूर्ण वैद्य की या इसी ग्रन्थ की सम्मति लेकर प्रत्येक वस्तु का सेवन करने से कभी हानि नहीं हो सकती है ।

पथ्यापथ्य के विषय में इस चौपाई को सदा ध्यान में रखना चाहिये—

जैसे गुड़ वैशाखे तेल । जेठे पन्थ असाढ़े बेल ॥
सावन दूध न भादों मही । क्वार करेला न कातिक दही ॥
अगहन जीरो पूसे धना । माहे मिश्री फागुन चना ॥
जो यह बारह देय बचाय । ता घर वैद्य कबहुँ न जाये ॥ १ ॥

१-इस का अर्थ स्पष्ट ही है इस लिये नहीं लिखा है ॥

कुपथ्य पदार्थ ॥

दाह करनेवाले, जलानेवाले, गलानेवाले, सडाने के स्वभाववाले और ज़हर का गुण करनेवाले पदार्थ को कुपथ्य कहते हैं, यद्यपि इन पांचों प्रकार के पदार्थों में से कोई पदार्थ बुद्धिपूर्वक उपयोग में लाने से सम्भव है कि कुछ फायदा भी करे तथापि ये सब पदार्थ सामान्यतया शरीर को हानि पहुँचानेवाले ही है, क्योंकि ऐसी चीजें जब कभी किसी एक रोग को मिटाती भी है तो दूसरे रोग को पैदा कर देती हैं, जैसे देखो। खार अर्थात् नमक के अधिक खाने से वह पेट की वायु गोला और गाठ को गला देता है परन्तु शरीर के धातु को विगाड कर पौरुष में बाधा पहुँचाता है।

इन पाचों प्रकार के पदार्थों में से दाहकारक पदार्थ पित्त को विगाड कर अनेक प्रकार के रोगों को उत्पन्न करते है, इमली आदि अति खट्टे पदार्थ शरीर को गला कर सन्धियों को ढीला कर पौरुष को कम कर देते है।

इस प्रकार के पदार्थों से यद्यपि एक दम हानि नही देखी जाती है परन्तु बहुत दिनों-तक निरन्तर सेवन करने से ये पदार्थ प्रकृतिको इस प्रकार विकृत कर देते है कि यह शरीर अनेक रोगों का गृह बन जाता है इस लिये पहले पथ्य पदार्थों में जो २ पदार्थ लिख चुके है उन्ही का सदा सेवन करना चाहिये तथा जो पदार्थ पथ्यापथ्य में लिखे हैं उन का ऋतु और प्रकृति के अनुसार कम वर्त्ताव रखना चाहिये और जो कुपथ्य पदार्थ कहे हैं उन का उपयोग तो बहुत ही आवश्यकता होने पर रोगविशेष में औषध के समान करना चाहिये अर्थात् प्रतिदिन की खुराक में उन (कुपथ्य) पदार्थों का कभी उपयोग नहीं करना चाहिये, इस विषय में यह भी स्मरण रखना चाहिये कि जो पथ्यापथ्य पदार्थ हैं वे भी उन पुरुषो को कभी हानि नही पहुँचाते हैं जिन का प्रतिदिन का अभ्यास जन्म से ही उन पदार्थों के खाने का पड जाता है, जैसे—बाजरी, गुड़, उड़द, छाछ और दही आदि पदार्थ, क्यों—कि ये चीजें ऋतु और प्रकृति के अनुसार जैसे पथ्य है वैसे कुपथ्य भी है परन्तु मारवाड़ देश में इन चारो चीज़ों का उपयोग प्राय. वहा के लोग सदा करते हैं और उन को कुछ नुकसान नहीं होता है, इसी प्रकार पञ्जाबवाले उडद का उपयोग सदा करते है परन्तु उन को कुछ नुकसान नहीं करता है, इस का कारण सिर्फ अभ्यास ही है, इसी प्रकार हानिकारक पदार्थ भी अल्प परिमाण में खाये जाने से कम हानि करते है तथा नही भी करते हैं, दूध यद्यपि पथ्य है तो भी किसी २ के अनुकूल नहीं आता है अर्थात् दस्त लग जाते हैं इस से यही सिद्ध होता है कि—खान पान के पदार्थ अपनी प्रकृति, शरीर का बन्धान, नित्य का अभ्यास, ऋतु और रोग की परीक्षा

आदि सब बातों का विचार कर उपयोग में आने से हानि नहीं करते हैं, क्योंकि देखो ! एक ही पदार्थ में प्रकृति और ऋतु के भेद से पथ्य और कुपथ्य दोनों गुण रहते हैं, इस के सिवाय यह देखा जाता है कि—एक ही पदार्थ रसायनिक संयोग के द्वारा अर्थात् दूसरी चीजों के मिलने से (जिस को तन्त्र कहते हैं उस से) भिन्न गुणवाला हो जाता है अर्थात् उक्त संयोग से पदार्थों का धर्म बदल कर पथ्य और कुपथ्य के सिवाय एक तीसरा ही गुण प्रकट हो जाता है इसलिये जिन लोगों को पदार्थों के हानिकारक होने वा न होने का ठीक ज्ञान नहीं है उन के लिये सीधा और अच्छा मार्ग यही है कि वैद्यक विद्या की आज्ञा के अनुसार चल कर पदार्थों को उपयोग में लावें, देखो ! शहद अच्छा पदार्थ है अर्थात् त्रिदोष को हरता है परन्तु वही गर्म पानी के साथ या किसी अत्युष्ण वस्तु के साथ या गर्म तासीरवाली वस्तु के साथ अथवा सन्निपात ज्वर में देने से हानि करता है, एवं समान परिमाण में घृत के साथ मिलने से विष के समान असर करता है, दूध पथ्य पदार्थ है तो भी मूली, मूंग, क्षार, नमक तथा एरण्ड के सिवाय बाकी तेलों के साथ खाया जाने से अवश्य नुकसान करता है ।

वर्चनों के योग से भी वस्तुओं के गुणों में अन्तर हो जाता है, जैसे—ताँबे और पीतल के वर्चन में खटाई तथा खीर का गुण बदल जाता है, काँसे के वर्चन में घी का गुण बदल जाता है अर्थात् थोड़ी देर तक ही कांसे के वर्चन में रहने से घी नुकसान करता है, यदि सात दिन तक घी कांसे के वर्चन में पड़ा रहे और वह खाया जावे तो वह प्राणी को प्राणान्ततक कष्ट पहुँचाता है ।

दूध के साथ खट्टे फल, गुड़, दही और खिचड़ी आदि के खाने से भी नुकसान होता है ।

प्रिय पाठक गण ! थोड़ा सा विचार करो ! सर्वज्ञ भगवान् ने संयोगी विषों का वर्णन वैद्यक शास्त्र में किया है उस (शास्त्र) के पढ़ने और सुनने के विना मनुष्यों को इन सब बातों का ज्ञान कैसे हो सकता है ? यही वचन सूत्र प्रकीर्णों में भी किया गया है तथा वहां कुपथ्य पदार्थों को ही अभक्ष्य ठहराया है ।

ऊपर कहे हुए कुपथ्यों का फल शीघ्र नहीं मिलता है किन्तु जब अपने २ कारणों को पाकर बहुत से दोष इकट्ठे हो जाते हैं तब वह कुपथ्य दूसरे ही रूप में दिखाई देता है अर्थात् पूर्वकृत कुपथ्य से उत्पन्न हुए फल के कारण को उस समय लोग नहीं समझ सकते हैं, इस लिये कुपथ्य तथा संयोग विरुद्ध पदार्थों से सदा बचना चाहिये, क्योंकि इन के सेवन से अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं ॥

सामान्य पथ्यापथ्य आहार ॥

पथ्यआहार ॥

पुराने चावल, जौ, गेहूँ, मूंग, अरहर (तूर) चना और देशी बाजरी, (गर्म बाजरी थोड़ी), घी, दूध, मक्खन, छाछ, शहद, मिश्री, बूरा, बतासा, सरसों का तेल, गोमूत्र, आकाश का पानी, कुए का पानी और हँसोदक जल, परवल, सूरण, चँदलिया, बथुआ, मेथी, मामालूणी, मूली, मोगरी, कद्दू, घियातोरई, तोरई, करेला, कँकेड़ा, भिण्डी, गोभी, (वालोल थोड़ी) और कच्चे केले का शाक ॥

दाख, अनार, अदरख, आँवला, नीबू, बिजौरा, कवीठ, हलदी, धनिये के पत्ते, पोदीना, हींग, सोंठ, काली मिर्च, पीपर, धनिया, जीरा और सेंधा नमक ॥

हरड़, लायची, केशर, जायफल, तज, सौंफ, नागरवेल के पान, कत्थे की गोली, धनिया, गेहूँ के आटे की रोटी, पूडी, भात, मीठाभात, बूंदिया, मोतीचूर के लड्डू, जलेबी, चूरमा, दिलखुशाल, पूरणपूडी, रबडी, दूधपाक (खीर), श्रीखण्ड (शिखरन), मैदेका सीरा, दाल के लड्डू, घेवर, सकरपारे, बादाम की कतली, घी में तले हुए मौठ के मुजिये (थोड़े), दूध और घी डाले हुए सेव, रसगुल्ला, गुलाबजामुन, कलाकन्द,

कुपथ्यआहार ॥

उडद, चँवला, वाल, मोठ, मटर, ज्वार, मक्का, ककड़ी, काचर, खरबूजा, गुवारफली, कोला, मूली के पत्ते, अमरूद, सीताफल, कटहल, करोंदा, गूँदा, गरमर, अञ्जीर, जामुन, बेर, इमली और तरबूज ॥

भैंस का दूध, दही, तेल, नयागुड, वृक्षों के झुण्ड का पानी, एकदम अधिक पानी का पीना, निराहार ठढा पानी पीना और मैथुन कर के पानी पीना ॥

बासा अन्न, छाछ और दही के साथ खिचडी और खीचडा आदि दाल मिले हुए पदार्थों का खाना, सूर्य के प्रकाश के हुए विनाखाना, अचार, समयविरुद्ध भोजन करना और सब प्रकार के विषों का सेवन ॥

ठढी खीर चासनी और खोवे (मावे) के पदार्थों के सिवाय दूध के सब बासे पदार्थ, गुजरात के चोंटिया लड्डू, केले के लड्डू, रायण के लड्डू, गुलपपडी, तीन मिलावटों की तथा पाच मिलावटों की दालें, कडे कच्चे और गरिष्ठ पदार्थ, मैदे की पूडी, सत्तू, पेडा, वरफी, चावलों का चिडवा, रात्रि का भोजन, दस्त को बन्द करनेवाली चीज, अत्युष्ण अन्नपान, वमन, पिचकारी दे दे कर दस्त कराना[1], चवेने का चावना, पाच घण्टेसे पूर्व ही भोजनपर भोजन करना, बहुत भूखे रहना, भूँख के समय में जलका

१–यद्यपि इस बात को आधुनिक डाक्टर लोग पसन्द करते हैं तथापि हमारे प्राचीन शास्त्रकारों ने सलाई से पेशाब तथा वस्ती (पिचकारी) से दस्त कराना पसन्द नहीं किया है और इसका अभ्यास भी अच्छा नहीं है, हा कोई खास करण हो तो दूसरी बात है ॥

हेसमी (को लेफा पेठा), गुलकन्द, शर्बत, मुरब्बा, चिरोंजी, पिश्ता, दाखों का मीठा तथा चरपरा राइता, पापड़, मूंग और मौठ की बड़ी और सब प्रकार की दाल ॥

प्रकृति ऋतु और देश आदि को विचार कर किया हुआ भोजन तथा रुचि के अनुसार किया हुआ भोजन प्रायः पथ्य (हितकारी) होता है इसलिये प्रकृति आदि का विचार रखना चाहिये इत्यादि ॥

पीना, प्यास के समय में भोजन करना, मात्रा से अधिक भोजन करना, विषमासन से बैठ कर भोजन करना, निद्रा से उठकर तत्काल भोजन करना या जल का पीना, व्यायाम के पीछे शीघ्रही जलका पीना, बाहर से आकर शीघ्रही जल का पीना, भोजन के अन्त में अधिक जल का पीना, भोजन तथा प्यास की इच्छा का रोकना, सूर्योदय से १ घण्टे पूर्व ही भोजन करना तथा अरुचि के पदार्थों का खाना आदि ॥

पथ्यविहार ॥

१–धोये हुए साफ वस्त्रों का पहरना और शक्ति के अनुसार अतर गुलाब जल और केवड़ा जल आदि से वस्त्रों को सुवासित रखना, उष्ण ऋतु में पनड़ी और खस आदि के अतर का तथा शीतकाल में हिना और मसाले आदि का उपयोग करना चाहिये ।

२–बिछौना और पलंग आदि साधनों को साफ और सुघड़ रखना चाहिये ।

३–दक्षिण की हवा का सेवन करना चाहिये ।[1]

४–हाथ, पैर, कान, नाक, मुख और गुह्यस्थान आदि शरीर के अवयवों में मैल का जमाव नहीं होने देना चाहिये ।

५–गर्मी की ऋतु में महीन कपड़े पहरना तथा शीतकाल में गर्म कपड़े पहरना चाहिये ।[2]

६–पांच २ दिन के बाद क्षौर कर्म (हजामत) कराना चाहिये ।[3]

७–प्रतिदिन शक्ति के अनुसार दण्ड बैठक और घोड़े की सवारी आदि कर कुछ न कुछ कसरत करना तथा साफ हवा को खाना चाहिये ।[4]

८–फूल के बजन के हार कुण्डल और अंगूठी आदि गहनों को पहरना चाहिये ।[5]

९–मलमूत्र के वेग को नहीं रोकना चाहिये तथा बलपूर्वक उन के वेग को उत्पन्न नहीं करना चाहिये ।

१–दक्षिण की हवा आरोग्यता को स्थिर रखती है इसलिये इसीका सेवन करना चाहिये ॥

२–ये वर्म कपड़े वजन में ज्यों कम हों त्यों अच्छे होते हैं ॥

३–हजामत कराने से शरीर और मिजाज में नये खून का संचार होता है तथा हर्ष उत्पन्न कर चित्त प्रसन्न होता है ॥

४–यदि घोड़े की सवारी का अभ्यास हो तो उसे करना चाहिये ॥

५–देखो ! आनन्द श्रावक ने कुण्डल और अंगूठी इन दो ही भूषणों का पहरना रक्खा था ॥

१०–मूत्र तथा दस्तआदि का वेग होनेपर स्त्रीगमन नहीं करना चाहिये ।

११–स्त्री सग का बहुत नियम रखना चाहिये ।

१२–चित्त की वृत्ति में सतोगुण और आनंद के रखने के लिये सतोगुणवाला भोजन करना चाहिये ।

१३–दो घडी प्रभात में तथा दो घडी सन्ध्या समय में सब जीवोंपर समता परिणाम रखना चाहिये ।

१४–यथायोग्य समय निकालकर घडी दो घड़ी सद्गुणियों की मण्डली में बैठकर निर्दोष वातों को तथा व्याख्यानों को सुनना चाहिये ।

१५–यह संसार अनित्य है अर्थात् इस के समस्त धनादि पदार्थ क्षणभङ्गुर है इत्यादि वैराग्य का विचार करना चाहिये ।

१६–जिस वर्त्ताव से रोग हो, प्रतिष्ठा और धन का नाश हो तथा आगामी में धन की आमद रुक जावे, ऐसे वर्त्तावको कुपथ्य (हानिकारक) समझ कर छोड देना चाहिये, क्योंकि ऐसे ही निषिद्ध वर्त्ताव के करने से यह भव और परभव भी विगडता है ।

१७–परनिन्दा तथा देवगुरु द्वेष से सदैव वचना चाहिये ।

१८–उस व्यवहार को कदापि नहीं करना चाहिये जो दूसरे के लिये हानि करे ।

१९–देव, गुरु, विद्वान्, माता, पिता तथा धर्म में सदैव भक्ति रखनी चाहिये ।

२०–यथाशक्य क्रोध, मान, माया और लोभआदि दुर्गुणोंसे वचना चाहिये ।

यह पथ्यापथ्य का विचार विवेक विलास आदि ग्रन्थों से उद्धृत कर सक्षेप मात्र में दिखलाया गया है, जो मनुष्य इसपर ध्यान देकर इसी के अनुसार वर्त्ताव करेगा वह इस भव और परभव में सदा सुखी रहेगा ॥

दुर्बल मनुष्य के खाने योग्य खुराक ॥

बहुत से मनुष्य देखने में यद्यपि पतले और इकहरी हड्डी के दीखते है परन्तु शक्तिमान् होते हैं तथा बहुत से मनुष्य पुष्ट और स्थूल होकर मी शक्तिहीन होते है, शरीर की प्रशंसा प्रायः सामान्य (न अति दुर्बल और न अति स्थूल) की की गई है, क्योंकि शरीर का जो अत्यन्त स्थूलपन तथा दुर्बलपन है उसे आरोग्यता नहीं समझनी चाहिये, क्योंकि बहुत दुर्बलपन और बहुत स्थूलपन प्राय' नाताकती का चिन्ह है और इन दोनों के होने से शरीर वेडौल भी दीखता है, इस लिये सब मनुष्यों को उचित है कि–योग्य आहार विहार और यथोचित उपायों के द्वारा शरीर को मध्यम दशा में रक्खें, क्योंकि योग्य आहार विहार और यथोचित उपायों के द्वारा दुर्बल मनुष्य भी मोटे ताज़े और

पुष्ट हो सकते हैं तथा चरबी के बढ़ जाने से स्थूल हुए पुरुष भी पतले हो सकते हैं, अब इस विषय में संक्षेप से कुछ वर्णन किया जाता है —

दुर्बल मनुष्यों की पुष्टि के वास्ते उपाय—दुर्बल मनुष्य को अपनी पुष्टि के वास्ते ये उपाय करने चाहियें कि—मिश्री मिला कर थोड़ा २ दूध दिन में कई बार पीना चाहिये, प्रातःकाल तथा सायंकाल में शक्ति के अनुसार दण्ड बैठक और मुद्गर (मोगरी) फेरना आदि कसरत कर पाचन शक्ति के अनुकूल परिमित दूध पीना चाहिये, यदि कसरत का निर्वाह न हो सके तो प्रातःकाल तथा सन्ध्या को ठढे समय में कुछ न कुछ परिश्रम का काम करना चाहिये अथवा स्वच्छ हवा में दो चार मील तक घूमना चाहिये कि जिससे कसरत हो कर दूध हजम हो जावे तथा हमारे विवेकलब्धि शीलसौभाग्य कार्यालय का शुद्ध वनस्पतियों का बना हुआ पुष्टिकारक चूर्ण[1] दो महीनेतक सेवन करना चाहिये क्योंकि इस के सेवन करने से शरीर में पुष्टि और बहुत शक्ति उत्पन्न होती है, इस के अतिरिक्त—गेहूँ, जौं, मका, चावल और दाल आदि पदार्थों में अधिक पुष्टिकारक तत्त्व मौजूद है इसलिये ये सब पदार्थ दुर्बल मनुष्य के लिये उपयोगी हैं, एवं आलू, केला, आम, सकरकन्द और पनीर, इन सब पुष्टिकारक वस्तुओं का भी सेवन समयानुसार थोड़ा २ करना योग्य है ।

ऊपर लिखे हुए पुष्टिकारक पदार्थ दुर्बल मनुष्य को यद्यपि बलवान् कर देते हैं परन्तु इन के सेवन के समय इन के पचाने के लिये परिश्रम अवश्य करना चाहिये क्योंकि पुष्टिकारक पदार्थों के सेवन के समय उन के पचाने के लिये यदि परिश्रम अथवा व्यायाम न किया जावे तो चरबी बढ़ कर शरीर स्थूल पड़ जाता है और अशक्त हो जाता है ।

जब ऊपर लिखे पदार्थों के सेवन से शरीर दृढ़ और पुष्ट हो जावे तब खुराक को धीरे २ बदल देना चाहिये अर्थात् शरीर की सिर्फ आरोग्यता बनी रहे ऐसी खुराक खाते रहना चाहिये, इस विषय में यह भी स्मरण रखना चाहिये कि इतनी पुष्टिकारक खुराक भी नहीं खानी चाहिये कि जिस से पाचनशक्ति मन्द पड़ कर रोग उत्पन्न हो जावे और न इतना परिश्रम ही करना चाहिये कि जिस से शरीर शिथिल पड़ कर रोगों का आश्रय बन जावे ।

यदि शरीर में कोई रोग हो तो उस समय में पुष्टिकारक खुराक नहीं खानी चाहिये किन्तु औषध आदि के द्वारा जब रोग मिट जावे तथा मन्दाग्नि भी न रहे तब पुष्टिकारक खुराक खानी चाहिये ॥

१—इस के सेवन की विधि का पत्र इस के साथ में ही भेजा जाता है तथा दो महीनों तक सेवन करने योग्य इस (पुष्टिकारक) चूर्ण का मूल्य केवल ५) रुपये मात्र है ॥

स्थूल मनुष्य के खाने योग्य खुराक ॥

सब स्थूल मनुष्य प्रायः शक्तिमान् नहीं होते है किन्तु अधिक रुधिर वाला पुष्ट मनुष्य दृढ़ शरीरवाला तथा बलवान् होता है और केवल मेद चरवी तथा मेद वायु से जिन का शरीर फूल जाता है वे मनुष्य अशक्त होते है, जो मनुष्य घी दूध मक्खन मलाई मीठा और मिश्री आदि वहुत पुष्टिकारक खुराक सदा खाते है और परिश्रम बिलकुल नहीं करते हैं अर्थात् गद्दी तकियों के दास बन कर एक जगह बैठे रहते है वे लोग ऐसे वृथा (शक्तिहीन) पुष्ट होजाते है।

घी और मक्खन आदि पुष्टिकारक पदार्थ जो शरीर की गर्मी कायम रखने और पुष्टि के लिये खाये जाते है वे परिमित ही खाने चाहियें क्योंकि अधिक खाने से वे पदार्थ पचते नहीं है और शरीर में चरवी इकट्ठी हो जाती है, शरीर वेडौल हो जाता है, स्नायु आदि चरवी से रुक कर शरीर अशक्त हो जाता है और चर वी के पड़त पर पड़त चढ़ जाता है।

स्थूल होकर जो शक्तिमान् हो उस की परीक्षा यह है कि—ऐसे पुरुष का शरीर (रक्त के विशेष होने के कारण) लाल, दृढ़, कठिन, गॅठा हुआ और स्थितिस्थापक स्नायुओं के टुकड़ों से युक्त होता है तथा उस पर चरवी का वहुत हलका अस्तर लगा रहता है, किन्तु जो पुरुष स्थूल होकर भी शक्ति हीन होते है उन में ये लक्षण नहीं दीखते है, उन में थोथी चरवी का भाग अधिक बढ़ जाता है जिस से उन को परिश्रम करने में बड़ी कठिनता पड़ती है, वह बढ़ी हुई चरवी तब काम देती है जब कि वह खुराक की तगी अथवा उपवास के द्वारा न्यून हो जाती है, सत्य तो यह है कि शरीर को खूब सूरत और सुडौल रखना चरवी ही का काम है, बढ़ी हुई चरवी से वहुत स्थूलता और श्वास का रोग हो जाता है तथा आखिर कार इस से प्राणान्त तक भी हो जाता है।

मीठा और आटे के सत्व वाला पदार्थ भी परिश्रम न करने वाले मनुष्य के शरीर में चरवी के भाग को बढाता है, इस में बड़ी हानि की बात यह है कि अधिक मेद और चरवी वाले पुरुष को रोग के समय दवा भी बहुत ही कम फायदा करती है और करती भी है तो भाग्ययोग से ही करती है।

साधारण खुराक के उपयोग और शक्त्यनुसार कसरत के अभ्यास से शरीर की स्थूलता मिट जाती है अर्थात् चरवी का वजन कम हो जाता है।

अति स्थूल शरीर वाले मनुष्य को खाने आदि के विषय में जिन २ बातो का खयाल रखना चाहिये उन का सक्षेप से वर्णन करते हैं —

स्थूल मनुष्यों के पतले होने के उपाय—स्थूल मनुष्यों को घी मक्खन और खांड आदि चरबी वाले पदार्थ तथा आटे के सत्व वाले पदार्थ बहुत ही थोड़े खाने चाहियें, पुष्टिवाले पदार्थ अधिक खाने चाहियें, गेहूँ सलगम और नारंगी आदि फल खाने चाहियें, घी, मक्खन, मलाई, तेल, खांड, चरबी वाले अन्न, साबूदाना, चावल, मक्का, पूरणपोळी, कोकम, आम, दाल, केला, बादाम, पिस्ता, नेजा और चिरोंजी आदि मेवे, आलू, सूरण, सकरकन्द और अरबी आदि पदार्थ नहीं खाने चाहियें, अथवा बहुत ही कम खाने चाहियें दूध थोटा खाना चाहिये, यदि चाय और काफी के पीने का अभ्यास हो तो उस में दूध बहुत ही थोड़ा सा डालना चाहिये अथवा नींबू से सुवासित कर के पीना चाहिये ॥

मगज के मज्जा तन्तुओं को दृढ़ करने वाली खुराक ॥

जिस खुराक में आल्व्युमीन नामक सत्व अधिक होता है वह मगज के मज्जा तन्तुओं का पोषण करती है, पौष्टिक तत्ववाली खुराक में आल्व्युमीन का कुछ २ अंश होता है परन्तु सतावर आदि कईएक वनस्पतियों में इस का अंश बहुत ही होता है इस लिये सतावर आदि वनस्पतियों का पाक तथा मुरब्बा बना कर खाना चाहिये, मगज तथा वीर्य की दृढ़ता के लिये वैद्यकशास्त्र में बहुत सी उत्तम वनस्पतियों का खाना बतलाया है उन का उचित विधि से उपयोग करने पर वे पूरा गुण करती हैं, उन में से कुछ वनस्पतियां ये हैं—मूसली, शतावर, असगँध, गोखुरू, कौंच के बीज, आँवला और इंसलाहुली, इन के सिवाय और भी बहुत सी वनस्पतियां हैं जो कि अत्यन्त गुणवाली हैं, जिन का मुरब्बा अथवा लड्डू बना कर खाने से अथवा अवलेह बनाकर चाटने से मगज के मज्जातन्तु दृढ़ और पुष्ट होते हैं, बल बुद्धि और वीर्य बढ़ता है तथा मनसम्बन्धी व्यग्रता और अस्थिरता दूर होती है, इन के सिवाय हमारे विवेकलब्धि शीलसौभाग्य कार्यालय का बना हुआ पुष्टिकारक चूर्ण दूध के साथ लेने से गर्मी आदि मगज के विकारों को दूर कर ताकत देता है तथा वीर्य के बढ़ाने में यह सर्वोत्तम वस्तु है ।

मगज की निर्बलता के समय—गेहूँ, चना, मटर, प्याज, करेला, अरवी, सकरकन्द, अनार और आम आदि पदार्थ पथ्य हैं ॥

स्मरणशक्ति तथा बुद्धि को बढ़ाने वाली खुराक ॥

स्मरणशक्ति तथा बुद्धि मगज से सम्बंध रखती है और उस की शक्ति का मुख्य आधार मन का प्रफुल्लित होना तथा नीरोगता ही है, इसलिये सब से प्रथम तो स्मरणशक्ति तथा बुद्धि के बढ़ाने का यही उपाय है कि—सदा मन को प्रसन्न रखना चाहिये तथा यथायोग्य आहार और विहार के द्वारा नीरोगता को कायम रखना चाहिये, इन

दोनों के होते हुए स्मरणशक्ति तथा बुद्धि के बढ़ाने के लिये दूसरा उपाय करने की कोई आवश्यकता नहीं है, हां दूसरा उपाय तब अवश्य करना चाहिये जब कि रोग आदि किसी कारण से इन में त्रुटि पड गई हो तथा वह उपाय भी तभी होना चाहिये कि जब शरीर से रोग बिलकुल निवृत्त हो गया हो, इस के लिये कुछ सतावर आदि बुद्धिवर्धक पदार्थों का वर्णन प्रथम कर चुके है तथा कुछ यहां भी करतेहै.—

दूध, घी, मक्खन, मलाई और ऑवले के पाक वा मुरब्बे को दवा की रीति से थोड़ा २ खाना चाहिये, अथवा बादाम, पिस्ता, जायफल और चोपचीनी, इन चीजों में से किसी चीज का पाक बना कर घी बूरे के साथ थोड़ा २ खाना चाहिये, अथवा बादाम की कतली लड्डू और शीरा आदि बनाकर भी पाचनशक्ति के अनुसार प्रातः वा सन्ध्या को खाना चाहिये, इन का सेवन करने से बुद्धि तथा स्मरणशक्ति अत्यन्त बढती है, अथवा हमारा बनाया हुआ पुष्टिकारक चूर्ण बुद्धिशक्ति को बहुत ही बढ़ाता है उस का सेवन करना चाहिये, अथवा ब्राह्मी १ मासा, पीपल १ मासा, मिश्री ४ मासे और आँवला १ मासा, इन को पीस तथा छान कर दोनों समय खाना चाहिये, २१ वा ४१ दिन तक इस का सेवन करना चाहिये तथा पथ्य के लिये दूध भात और मिश्री का भोजन करना चाहिये, इन के सिवाय दो देशी साधारण दवायें वैद्यक में कही है जो कि मगज की शक्ति, स्मरणशक्ति तथा बुद्धि के बढ़ाने के लिये अत्यन्त उपयोगी प्रतीत होती है, वे ये है:—

१—एक तोला ब्राह्मी का दूध के साथ प्रतिदिन सेवन करना चाहिये या घी के साथ चाटना चाहिये अथवा ब्राह्मी का घी बना कर पान में या खुराक के साथ खाना चाहिये ।

२—कोरी मालकागनी को वा उस के तेल को ऊपर लिखे अनुसार लेना चाहिये, मालकागनी के तेल के निकालने की यह रीति है कि—२॥ रुपये भर मालकागनी को लेकर उस को ऐसा कूटना चाहिये कि एक एक बीज के दो दो वा तीन तीन फाड़ हो जावें, पीछे एक या दो मिनटतक तवेपर सेकना (भूनना) चाहिये, इस के बाद शीघ्र ही सन के कपड़े में डालकर दबाने के साचे में देकर दबाना चाहिये, बस तेल निकल आवेगा, इस तेल की दो तीन बूंदें नागरबेल के कोरे (कत्थे और चूने के विना) पान पर रखकर खानी चाहियें, इस का सेवन दिन में तीन वार करना चाहिये, यदि तेल न निकल सके तो पाच २ बीज ही पान के साथ खाने चाहियें ।

फासफर्स से मिली हुई हर एक डाक्टरी दवा भी बुद्धि तथा मगज़ के लिये फायदे-मन्द होती है ॥

रोगी के खाने योग्य खुराक ॥

पश्चिमीय विद्वानों ने इस सिद्धान्त का निश्चय, किया है कि—सब प्रकार की खुराक की अपेक्षा साबूदाना, आरारूट और टापीओ का, ये तीन चीजें सब से हलकी और सहज में पचनेवाली हैं अर्थात् जिस रोगमें पाचनशक्ति बिगड़ गई हो उस में इन तीनों वस्तुओं में से किसी वस्तु का खाना बहुत ही फायदेमन्द है।

साबूदाना को पानी वा दूध में सिजा कर तथा आवश्यकता हो तो थोड़ी सी मिश्री डाल कर रोगी को पिलाना चाहिये, इस के बनाने की उत्तम रीति यह है कि—आधे दूध और पानी को पतीली या किसी कलईदार बर्त्तन में डाल कर चूल्हे पर चढ़ा देना चाहिये, जब यह अदहन के समान उबलने लगे तब उस में साबूदाना को डालकर ढक देना चाहिये, जब पानी का भाग जल जावे सिर्फ दूध मात्र शेष रह जावे तब उतार कर थोड़ी सी मिश्री डालकर खाना चाहिये।

साबूदाना की अपेक्षा चावल यद्यपि पचने में दूसरे दर्जे पर हैं[1] परन्तु साबूदाना की अपेक्षा पोषण का तत्त्व चावलों में अधिक है इसलिये रुचि के अनुसार बीमार को वर्ष के पीछे से तीन वर्ष के भीतर का पुराना चावल देना चाहिये अर्थात् वर्षभर के भीतर का और तीन वर्ष के बाद का (पांच छः वर्षों का) भी चावल नहीं देना चाहिये।

आधे दूध तथा आधे पानी में सिजाया हुआ भात बहुत पुष्टिकारक होता है, यद्यपि केवल दूध में सिजायाहुआ भात पूर्व की अपेक्षा भी अधिक पुष्टिकारक तो होता है परन्तु वह बीमार और निर्बल आदमी को पचता नहीं है इस लिये बीमार को दूध में सिजाया हुआ भात नहीं देना चाहिये, बुखार, दस्त, मरोड़ा और अजीर्ण में चावल देना चाहिये, क्योंकि—इन रोगों में चावल फायदा करता है, बहुत पानी में रांधे हुए चावल तथा उन का निकाला हुआ मांड ठंढा और पोषण कारक होता है।

इग्लैंड आदि दूसरे देशों में हैजे की बीमारी में सूप और मांस देते हैं, उस की अपेक्षा इस देश में उक्त रोगी के लिये अनुकूल होने से चावलों का मांड बहुत फायदा करता है, इस बात का निश्चय ठीक रीति से हो चुका है, इस के सिवाय अतीसार अर्थात् दस्तों की सामान्य बीमारी में चावलों का ओसामण दवा का काम देता है अर्थात् दस्तों को बंद कर देता है।

रोगी के लिये विधिपूर्वक बनाई हुई दाल[2] भी बहुत फायदा करती है तथा दालों की

१—अर्थात् साबूदाना की अपेक्षा चावल देर में हजम होते हैं ॥

२—दाल तो आर्य लोगों की नित्य तथा आवश्यक खुराक है, न केवल नित्य ही किन्तु यह नैमित्तिक भी है, देखो ! ऐसा भी जीमनवार (ज्योनार) शायद ही कोई होता होगा जिस में दाल न होती हो विचार कर देखने से यह भी ज्ञात होता है कि—दाल का उपयोग स्वभावतः भी बहुत ही है, क्योंकि—दाल पोषणकारक पदार्थ है अर्थात् इस में पुष्टितत्त्व अधिक है यहांतक कि कई एक दालों में मांस से भी अधिक पुष्टितत्त्व है ॥

यद्यपि अनेक जातियां है परन्तु उन सब में मुख्य मूंग की दाल[1] है, क्योंकि–यह रोगी तथा साधारण प्रकृतिवाले पुरुषों के लिये प्रायः अनुकूल होती है, मसूर की दाल भी हलकी होने से प्राय. पथ्य है, इसलिये इन दोनों में से किसी दाल को अच्छी तरह सिजा कर तथा उस में सेंधानमक, हींग, धनिया, जीरा और धनिये के पत्ते डाल कर पतली दाल अथवा उसका नितरा हुआ जल रोगी तथा अत्यन्त निर्बल मनुष्य को देना चाहिये, क्योंकि उक्त दाल अथवा उस का नितरा हुआ जल पुष्टि करता है तथा दवा का काम देता है ।

वीमार के लिये दूध भी अच्छी खुराक[2] है, क्योंकि–वह पुष्टि करता है तथा पेट में बहुत भार भी नहीं करता है परन्तु दूध को बहुत उवाल कर रोगी को नहीं देना चाहिये, क्योंकि–बहुत उबालने से वह पचने में भारी हो जाता है तथा उस के भीतर का पौष्टिक तत्त्व भी कम हो जाता है, इसलिये दुहे हुए दूध में से वायु को निकालने के लिये अथवा दूध में कोई हानिकारक वस्तु हो उस को निकालने के लिये अनुमान ५ मिनट तक थोड़ासा गर्म कर रोगी को दे देना चाहिये, परन्तु मन्दाग्निवाले को दूध से आधा पानी दूध में डालकर उसे गर्म करना चाहिये, जब जल का तीसरा भाग शेष रह जावे तब ही उतार कर पिलाना चाहिये[3], बहुतसे लोग जलमिश्रित दूध के पीने में हानि होना समझते है परन्तु यह उन की भूल है, क्योकि जलमिश्रित दूध किसी प्रकार की हानि नही करता है ।

डाक्टर लोग निर्बल आदमियों को कॉडलीवर ऑइल नामक एक दवा देते[4] है अर्थात् जिस रोग में उन को ताकतवर दवा वा खुराक के देने की आवश्यकता होती है उस में वे लोग प्राय. उक्त दवा को ही देते हैं, इस के सिवाय क्षय रोग, भूख के द्वारा उत्पन्न हुआ रोग, कण्ठमाला, जिस रोग में कान और नाक से पीप बहता है वह रोग, फेफसे का शोथ (न्यूमोनिया), कास, श्वास (ब्रोनकाइटीस,), फेफसे के पड़त का घाव, खुल खुलिया अर्थात् बच्चे का बड़ा खास और निर्बलता आदि रोगों में भी वे लोग इस दवा को देते हैं, इस दवा में मूल्य के भेद से गुण में भी कुछ भेद रहता है तथा अल्पमूल्य

१–मूग की दाल सर्वोपरि है तथा अरहर (तूर) की दाल भी दूसरे नम्बर पर है, यह पहिले लिख ही चुके हैं अत यदि रोगी की रुचि हो तो अरहर की दाल भी थोडी सी देना चाहिये ॥

२–परन्तु यह किसी २ के अनुकूल नहीं आता है अत जिसके अनुकूल न हो उस को नहीं देना चाहिये परन्तु ऐसी प्रकृतिवाले (जिन को दूध अनुकूल नही आता हो) रोगी प्राय वहुत ही कम होते है ॥

३–मा की अनुपस्थिति मे अथवा मा के दूध न होने पर बच्चे को भी ऐसा ही (जलवाला) दूध पिलाना चाहिये, यह पहिले तृतीयाध्याय मे लिख भी चुके है ॥

४–इस दवा को पुष्ट समझकर उन (डाक्टर) लोगों ने इसे रोग की खुराक मे दाखिल किया है ॥

बाली इस दवा में दुर्गन्धि भी होती है परन्तु बढ़िया में नहीं होती है, इस दवा की बनी हुई टिकियां भी मिलती हैं जो कि गर्म पानी या दूध के साथ सहज में खाई जा सकती हैं ।

इस (ऊपर कही हुई) दवा के ही समान माल्टा नामक भी एक दवा है जो कि अत्यन्त पुष्टिकारक तथा गुणकारी है तथा यह इन्हीं (साधारण) जौं ओं से और जौं-ओं के सदृश ओट नामक अनाज से बनाई जाती है ।

कॉडलीवर ऑइल बीमार आदमी के लिये खुराक का काम देता है तथा हजम भी जल्दी ही हो जाता है ।

उक्त दोनों पुष्टिकारक दवाओं में से कॉडलीवर ऑइल जो दवा है वह आर्य लोगों के लेने योग्य नहीं है, क्योंकि उस दवा का लेना मानो धर्म को तिलाञ्जलि देना है[1] ॥

बीमार के पीने योग्य जल—यद्यपि साफ और निर्मल पानी का पीना तो नीरोग पुरुष को भी सदा उचित है परन्तु बीमार को तो अवश्य ही स्वच्छ जल पीना चाहिये, क्योंकि रोग के समय में मलीन जल के पीने से अन्य भी दूसरे प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं, इस लिये जल को स्वच्छ करने की युक्तियों से खूब स्वच्छ कर अथवा अंग्रेजों की रीतिसे अर्थात् डिस्टीस्ड के द्वारा स्वच्छ कर के अथवा पहिले लिखे अनुसार पानी में तीन उबाल देकर ठढाकर के रोगी को पिलाना चाहिये[2], डाक्टर लोग भी हैजे में तथा सख्त बुखार की प्यास में ऐसे ही (स्वच्छ किये हुए ही) जल में थोड़ा २ बर्फ मिला कर पिलाते हैं ॥

नींबू का पानक—बहुत से बुखारों में नींबू का पानक भी दिया जाता है, इस के बनाने की यह रीति है कि नींबू की फांकें कर तथा मिश्री पीसकर एक काच या पत्थर के बर्तन में दोनों को रख कर उसपर उबलता हुआ पानी डालना चाहिये तथा जब वह ठढा हो जावे तब उसे उपयोग में लाना चाहिये ॥

गोंद का पानी—गोंद का पानी २॥ तोले तथा मिश्री १। तोला, इन दोनों को एक पात्र में रखकर उस पर उबलता हुआ पानी डालकर ठढा हो जाने पर पीने से श्लेष्म अर्थात् कफ हाँफनी और कण्ठ बेल का रोग मिट जाता है ॥

जौं का पानी—छरे हुए (छूटे हुए) जौं एक बड़े चमचे भर (करीब १ छटांक), बूरा दो तीन चिमची भर (करीब १॥ छटांक) तथा थोड़ी सी नींबू की छाल, इन सब

१—क्यों कि यह (कॉडलीवर ऑइल) जो दवा है सो मछली का तेल है ॥

२—देखो ! ज्ञाताकूत्र में लिखा है कि धर्मीपाई का जब सुबुद्धि मन्त्री ने ऐसा स्वच्छ कर राजा जितशत्रु को पिलाया था कि जिस को देख कर और पीकर राजा बड़ा प्रसन्न में हो गया था इस से विदित होता है कि पूर्व समय में भी जल के स्वच्छ करने की अनेक उत्तमोत्तम रीतियां थीं तथा स्वच्छ करके ही जल का उपयोग किया जाता था ॥

को एक वर्त्तन में रख कर ऊपर से उबलता हुआ पानी डाल कर ठंढा हो जाने के बाद छान कर पीने से बुखार, छाती का दर्द और अमूझणी (घबराहट) दूर हो जाती है[1] ॥

यह चतुर्थ अध्याय का पथ्यापथ्यवर्णन नामक छठा प्रकरण समाप्त हुआ ॥

सातवां प्रकरण—ऋतुचर्यावर्णन ॥

ऋतुचर्या अर्थात् ऋतु के अनुकूल आहार विहार ॥

जैसे रोग के होने के बहुत से कारण व्यवहार नय से मनुष्यकृत है उसी प्रकार निश्चय नय से दैवकृत अर्थात् स्वभावजन्य कर्मकृत भी हैं, तत्सम्बन्धी पाच समवायों में से काल प्रधान समवाय है तथा इसी में ऋतुओं के परिवर्त्तन का भी समावेश होता है, देखो ! बहुत गर्मी और बहुत ठढ, ये दोनों कालधर्म के स्वाभाविक कृत्य हैं अर्थात् इन दोनों को मनुष्य किसी तरह नही रोक सकता है, यद्यपि अन्यान्य वस्तुओं के संयोग से अर्थात् रसायनिक प्रयोगों से कई एक स्वाभाविक विषयों के परि वर्त्तन में भी मनुष्य यत् किञ्चित् विजय को पा सकेते हैं परन्तु वह परिवर्त्तन ठीक रीति से अपना कार्य न कर सकने के कारण व्यर्थ रूपसाही होता है किन्तु जो (परिवर्त्तन) कालस्वभाव वश स्वाभाविक नियम से होता रहता है वही सब प्राणियों के हित का सम्पादन करने से यथार्थ और उत्तम है इस लिये मनुष्य का उद्यम इस विषय में व्यर्थ है ।

ऋतु के स्वाभाविक परिवर्त्तन से हवा में परिवर्त्तन[2] होकर शरीर के भीतर की गर्मी शर्दी में भी परिवर्त्तन होता है इसलिये ऋतु के परिवर्त्तन में हवा के स्वच्छ रखने का तथा शरीर पर मलीन हवा का असर न होसके इस का उपाय करना मनुष्य का मुख्य काम है ।

वर्षभर की भिन्न २ ऋतुओं में गर्मी और ठढ के द्वारा अपने आसपास की हवा में तथा हवा के योग से अपने शरीर में जो २ परिवर्त्तन होता है उस को समझ कर उसी के अनुसार आहारविहार के नियम के रखने को ऋतुचर्या कहते हैं ।

हवा में गर्मी और ठढ, ये दो गुण मुख्यतया रहते हैं परन्तु इन दोनों का परिमाण सदा एकसदृश नहीं होता है, क्योंकि—द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के द्वारा उन में (गर्मी और ठढ में) परिवर्त्तन देखा जाता है, देखो । भरतक्षेत्र की पृथ्वी के उत्तर

१–यह पथ्यापथ्य का वर्णन सक्षेप से किया गया है, इस का शेष वर्णन वैद्यकसम्बधी अन्य ग्रन्थों मे देखना चाहिये, क्योंकि ग्रन्थ के विस्तार के भय से यहा अनावश्यक विषय का वर्णन नहीं किया है ॥

२–जैसे विना ऋतु के वृष्टिका बरसा देना आदि ॥

और दक्षिण के किनारे पर स्थित प्रदेशों में अत्यन्त ठंढ पड़ती है, इसी पृथ्वी के गोले की मध्य रेखा के आस पास के प्रदेशों में बहुत गर्मी पड़ती है तथा दोनों गोलार्ध के बीच के प्रदेशों में गर्मी और ठंढ बराबर रहती है, इस रीति से क्षेत्र का विचार करें तो उत्तर ध्रुव के आसपास के प्रदेशों में अर्थात् सेवेरिया आदि देशों में ठंढ बहुत पड़ती है, उस के नीचे के तातार, टीबेट (तिब्बत) और इस हिन्दुस्तान के उत्तरीय भागों में गर्मी और ठंढ बराबर रहती है तथा उस से भी नीचे विषुववृत्त के आसपास के देशों में अर्थात् दक्षिण हिन्दुस्तान और सीलोन (लङ्का) में गर्मी अधिक पड़ती है, एवं ऋतु के परिवर्तन से यहां परिवर्तन भी होता है अर्थात् बारह मास तक एक सदृश ठंढ या गर्मी नहीं रहती है, क्योंकि ऋतु के अनुसार पृथिवी पर ठंढ और गर्मी का पड़ना सूर्य की गति पर निर्भर है, देखो ! भरत क्षेत्र के उत्तर तथा दक्षिण के किनारेपर स्थित देशों में सूर्य कभी सिरे पर सीधी लकीरपर नहीं आता है अर्थात् छः महीने तक वहां सूर्य दिखाई भी नहीं देता है, शेष छः महीनों में इस देश में उदय होते हुए तथा अस्त होते हुए सूर्य के प्रकाश के समान वहां भी सूर्य का कुछ प्रकाश दिखाई देता है, इस का कारण यह है कि—सूर्य के उगने (उदय होने) के १८४ मण्डल[1] हैं उन में से कुछ मण्डल तो पृथिवी के ऊपर आकाशप्रदेश में मेरु के पास से शुरू हुए हैं, कुछ मण्डल लवणसमुद्र में हैं, समभूतल मेरु के पास है, वहां से ७९० योजन ऊपर आकाश में तारामण्डल शुरू हुआ है, ११० योजन में सब नक्षत्र तारामण्डल हैं तथा पृथिवी से ९०० योजन पर इस का अन्त है सूर्य की विमान पृथिवी से चन्द्र की विमान पृथिवी ८० योजन ऊंची है, सब तारे मेरु की प्रदक्षिणा करते हैं और सप्तर्षि (सात ऋषि) के तारे मृगादि ध्रुव की प्रदक्षिणा करते हैं।

देशों की ठंढ या गर्मी सदा समान नहीं रहती है किन्तु उस में परिवर्तन होता रहता है, देखो ! जिस हिमालय के पास वर्तमान में बर्फ गिर कर ठंढा देश बन रहा है यही देश किसी काल में गर्म था[2] इस में बड़ा भारी प्रमाण यह है कि—गर्मी के कारण जब बर्फ गल जाती है तब नीचे से मरे हुए हाथी निकलते हैं, इस बात को सब ही जानते हैं कि—हाथी गर्म देश के बिना नहीं रह सकते हैं, इस से सिद्ध है कि—पहिले यह स्थान गर्म था किन्तु जब ऊपर अचानक बर्फ गिर कर जम गया तब उस की ठंढ से हाथी मर कर नीचे दब गये तथा बर्फ के गलकर पानी हो जाने पर वे उस में उतराने लगे, यदि

१—इन का वर्णन जम्बूद्वीप प्रज्ञप्तिसूत्र में विस्तारपूर्वक किया गया है ॥

२—यह बात अनेक युक्तियों और प्रमाणों से सिद्ध हो चुकी है ॥

३—बर्फ में दबी हुई वस्तु बहुत समय तक बिगड़ती नहीं है इस लिये कुछ समय तक तो वे हाथी उसमें जीते रहे परन्तु पीछे खाने को न मिलने से मर गये परन्तु बर्फ में दबे रहने से उन का शरीर नहीं बिगड़ा और न सड़ा ॥

यह मान भी लिया जावे कि–वहा सदा ही से बर्फ था तथा उसी में हाथी भी रहते थे तो यह प्रश्न उत्पन्न होगा कि बर्फ में हाथी क्या खाते थे ! क्योंकि बर्फ को तो खा ही नहीं सकते है और न बर्फ पर उन के खाने योग्य दूसरी कोई वस्तु ही हो सकती है ! इस का कुछ भी जवाब नही हो सकता है, इस से स्पष्ट है कि वह स्थान किसी समय में गर्म था तथा हाथियों के रहनेलायक वनरूप में था, अब भी मध्य हिन्दुस्तान के समशीतोष्ण देशों में भी सूर्य के समीप होने से अथवा दूर होने से न्यूनाधिक रूप से गर्मी और ठढ पडती है, इसी लिये ऋतुपरिवर्त्तन से वर्ष के उत्तरायण और दक्षिणायन, ये दो अयन गिने जाते है, उत्तरायण उष्णकाल को तथा दक्षिणायन शीतकाल को कहते है ।

पृथिवी के गोले का एक नाम नियत कर उस के बीच में पूर्व पश्चिमसम्बन्धिनी एक लकीर की कल्पना कर उस का नाम पश्चिमीय विद्वानो ने विषुववृत्त रक्खा है, इसी लकीर के उत्तर की तरफ के सूर्य छः महीने तक उष्ण कटिबन्ध में फिरता है तथा छः महीने तक इस के दक्षिण की तरफ के उष्ण कटिबन्ध में फिरता है, जब सूर्य उत्तर की

१–सर्वज्ञ कथित जैनसिद्धान्त मे पृथिवी का वर्णन इस प्रकार है कि–पृथिवी गोल थाल की शकल मे है, उस के चारों तरफ असली दरियाव खाई के समान है तथा जावूद्वीप बीच में है, जिस का विस्तार लाख योजन का है इत्यादि, परन्तु पश्चिमीय विद्वानोंने गेंद या नारगी के समान पृथिवी की गोलाई मानी है, पृथिवी के विस्तार को उन्हों ने सिर्फ पचीस हजार मील के घेरे मे माना है, उन का कथन है कि–तमाम पृथिवी की परिक्रमा ८२ दिन में रेल या बोट के द्वारा दे सकते हैं, उन्हों ने जो कुछ देख कर या दर्याफ्त कर कथन किया या माना है वह शायद कथञ्चित् सत्य हो परन्तु हमारी समझ मे यह बात नहीं आती है किन्तु हमारी समझ में तो यह बात आई हुई है कि–पृथिवी बहुत लम्बी चौडी है, सगर चक्रवर्त्ती के समय मे दक्षिण की तरफ से दरियाव खुली पृथिवी मे आया था जिस से बहुत सी पृथिवी जल मे चली गई तथा दरियाव ने उत्तर में भी इधर से ही चक्कर खाया था, ऋषभदेव के समय मे जो नकशा जम्बूद्वीप भरतक्षेत्र का था वह अब विगड गया है अर्थात् उस की और ही शकल दीखने लगी है, दरियाव के आये हुए जल में वर्फ जम गई है इस लिये अब उस से आगे नहीं जा सकते हैं, इगुलिशमैंन इसी लिये कह देते हे कि पृथिवी इतनी ही है परन्तु धर्मशास्त्र के कथनानुसार पृथिवी बहुत है तथा देशविभाग के कारण उस के मालिक राजे भी बहुत हैं, वर्तमान समय मे बुद्धिमान् अंग्रेज भी पृथिवी की सीमा का खोज करने के लिये फिरते हे परन्तु वे भी वर्फ के कारण आगे नहीं जा सकते हैं, देखो । खोज करते २ जिस प्रकार अमेरिका नई दुनिया का पता लगा, उसी प्रकार कालान्तर मे भी खोज करनेवाले बुद्धिमान् उद्यमी लोगों को फिर भी कई स्थानों के पते मिलेंगे, इस लिये सर्वज्ञ तीर्थंकर ने जो केवल ज्ञान के द्वारा देख कर प्रकाशित किया है वह सब यथार्थ है, क्योंकि इस के सिवाय बाकी के सब पदार्थों का निर्णय जो उन्हों ने कीया हे तथा निर्णय कर उन का कथन किया है जब वे सब पदार्थ सत्यरूप मे दीख रहे हे तथा सत्य है तो यह विषय कैसे सत्य नहीं होगा, जो बात हमारी समझ मे न आवे वह हमारी भूल है इस में आप्त वक्ताओं का कोई दोष नहीं है, भला सोचो तो सही कि–इतनी सी पृथ्वी मे पृथ्वी की गोलाई का मानना प्रमाण से कैसे सिद्ध हो सकता है, हा बेशक भरतक्षेत्र की गोलाई से इस हिसाब को हम न्यायपूर्वक स्वीकार करते हे ॥

तरफ फिरता है तब उत्तर की तरफ के उष्ण कटिबन्ध के प्रदेशों पर उत्तरीय सूर्य की किरणें सीधी पड़ती हैं इससे उन प्रदेशों में सख्त ताप पड़ता है, इसी प्रकार जब सूर्य दक्षिण की तरफ फिरता है तब दक्षिण की तरफ के उष्ण कटिबन्ध के प्रदेशों पर दक्षिण में स्थित सूर्य की किरणें सीधी पड़ती हैं इस से उन प्रदेशों में भी पूर्व लिखे अनुसार सख्त ताप पड़ता है, यह हिन्दुस्थान देश विषुववृत्त अर्थात् मध्यरेखा के उत्तर की तरफ में स्थित है अर्थात् केवल दक्षिण हिन्दुस्थान उष्ण कटिबन्ध में है शेष सब उत्तर हिन्दुस्थान समशीतोष्ण कटिबन्ध में है, उक्त रीति के अनुसार जब सूर्य छ मास तक उत्तरायण होता है तब उत्तर की तरफ ताप अधिक पड़ता है और दक्षिण की तरफ कम पड़ता है तथा जब सूर्य छः मासतक दक्षिणायन होता है तब दक्षिण की तरफ गर्मी अधिक पड़ती है और उत्तर की तरफ कम पड़ती है, उत्तरायण के छ महीने ये हैं—फागुन, चैत, वैशाख, जेठ, असाढ और श्रावण, तथा दक्षिणायन के छ महीने ये हैं—भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक, मृगशिर, पौष और माघ, उत्तरायण के छ महीने क्रम से शक्ति को घटाते हैं और दक्षिणायन के छ महीने क्रम से शक्ति को बढ़ाते हैं, वर्ष भर में सूर्य बारह राशियों पर फिरता है, दो २ राशियों से ऋतु बदलती है इसी लिये एक वर्ष की छः ऋतु स्वाभाविक होती हैं, यद्यपि भिन्न २ क्षेत्रों में उक्त ऋतु एक ही समय में नहीं लगती हैं तथापि इस आर्यावर्त्त (हिन्दुस्थान) के देशों में तो प्रायः सामान्यतया इस क्रम से ऋतुयें गिनी जाती हैं —

वसन्त ऋतु—फागुन और चैत, ग्रीष्म ऋतु—वैशाख और जेठ, प्रावृट् ऋतु—आषाढ और श्रावण, वर्षा ऋतु—भाद्रपद और आश्विन, शरद् ऋतु—कार्तिक और मृगशिर, हेमन्तशिशिर ऋतु—पौष और माघ।

यहां वसन्त ऋतु का प्रारम्भ यद्यपि फागुन में गिना है परन्तु जैनाचार्यों ने चिन्तामणि आदि ग्रन्थों में सङ्क्रान्ति के अनुसार ऋतुओं को माना है तथा शार्ङ्गधर आदि अन्य आचार्यों ने भी सङ्क्रान्ति के ही हिसाब से ऋतुओं को माना है और यह ठीक भी है, उन के मतानुसार ऋतुयें इस प्रकार से समझनी चाहियें.—

> ऋतु ग्रीषम मेषरु वृष जानो। मिथुन कर्क प्रावृट ऋतु मानो ॥
> वर्षा सिंहरु कन्या जानो। शरद ऋतु तुल वृश्चिक मानो ॥
> धनरु मकर हेमन्त जु होय। शिशिर शीत अरु वरसै सोय ॥
> ऋतु वसन्त है कुम्भरु मीन। यहि विधि ऋतु निर्धारन कीन ॥ १ ॥

१–इसी को संक्रान्ति कहते हैं ॥

२–ऋतुओं का क्रम अनेक आचार्यों ने अनेक प्रकार से माना है, यह ग्रन्थान्तरों से ज्ञात हो सकता है ॥

दोहा—ऋतु लगन में आठ दिन, जब होवै उपचार ॥
त्यागि पूर्व ऋतु को अगिल, बरतै ऋतु अनुसार ॥ २ ॥

अर्थात् मेष और वृष की सङ्क्रान्ति में ग्रीष्म ऋतु, मिथुन और कर्क की सङ्क्रान्ति में प्रावृट् ऋतु, सिंह और कन्या की सक्रान्ति में वर्षा ऋतु, तुला और वृश्चिक की सङ्क्रान्ति में शरद् ऋतु, धन और मकर की सङ्क्रान्ति में हेमन्त ऋतु, (हेमन्त ऋतु में जब मेघ बरसे और ओले गिरें तथा शीत अधिक पड़े तो वही हेमन्त ऋतु शिशिर ऋतु कहलाती है) तथा कुम्भ और मीन की सङ्क्रान्ति में वसन्त ऋतु होती है ॥ १ ॥

जब दूसरी ऋतु के लगने में आठ दिन बाकी रहें तब ही से पिछली (गत) ऋतु की चर्या (व्यवहार) को धीरे २ छोड़ना और अगली (आगामी) ऋतु की चर्या को ग्रहण करना चाहिये ॥ २ ॥

यद्यपि ऋतु में करने योग्य कुछ आवश्यक आहार विहार को ऋतु स्वयमेव मनुष्य से करा लेती है, जैसे–देखो । जब ठंढ पड़ती है तब मनुष्य को स्वय ही गर्म वस्त्र आदि वस्तुओं की इच्छा हो जाती है, इसी प्रकार जब गर्मी पड़ती है तब महीन वस्त्र और ठंढे जल आदि वस्तुओंकी इच्छा प्राणी स्वतः ही करता है, इस के अतिरिक्त इङ्गलेंड और काबुल आदि ठंढे देशों में (जहां ठंढ सदा ही अधिक रहती है) उन्हीं देशों के अनुकूल सब साधन प्राणी को स्वय करने पड़ते है, इस हिन्दुस्थान में ग्रीष्म ऋतु में भी क्षेत्र की तासीर से चार पहाड़ बहुत ठंढे रहते है—उत्तर में विजयार्ध, दक्षिण में नीलगिरि, पश्चिम में आबूराज और पूर्व में दार्जिलिंग, इन पहाड़ों पर रहने के समय गर्मी की ऋतु में भी मनुष्यों को शीत ऋतु के समान सब साधनो का सम्पादन करना पड़ता है, इस से सिद्ध है कि–ऋतु सम्बधी कुछ आवश्यक बातों के उपयोग को तो ऋतु स्वय मनुष्य से करा लेती है तथा ऋतुसम्बन्धी कुछ आवश्यक बातों को सामान्य लोग भी थोड़ा बहुत समझते ही है, क्योंकि यदि समझते न होते तो वैसा व्यवहार कभी नहीं कर सकते थे, जैसे देखो । हवा के गर्म से शर्द तथा शर्द से गर्म होने रूप परिवर्त्तन को प्रायः सामान्य लोग भी थोड़ा बहुत समझते है तथा जितना समझते है उसी के अनुसार यथाशक्ति उपाय भी करते है परन्तु ऋतुओं के शीत और उष्णरूप परिवर्तन से शरीर में क्या २ परिवर्त्तन होता है और छःओ ऋतुयें दो २ मास तक वातावरण में किस २ प्रकार का परिवर्तन करती हैं, उस का अपने शरीर पर कैसा असर होता है तथा उस के लिये क्या २ उपयोगी वर्त्ताव (आहार विहार आदि) करना चाहिये, इन बातों को बहुत ही कम लोग

१–इस पर्वत को इस समय लोग हिमालय कहते हैं ॥

२–कालान्तर मे इन पर्वतों की यदि तासीर बदल जावे तो कुछ आश्चर्य नहीं है ॥

समझते हैं इस लिये छःओं ऋतुओं के आहार विहार आदि का संक्षेप से यहां वर्णन करते हैं, इस के अनुसार वर्ताव करने से शरीर की रक्षा तथा नीरोगता अवश्य रह सकेगी —

हेमन्त तथा शिशिर ऋतु में (शीत काल में) खाये हुए पदार्थों से शरीर में रस अर्थात् कफ का सञ्चय होता है, वसन्त ऋतु के लगने पर गर्मी पड़ने का प्रारम्भ होता है इस लिये उस गर्मी से शरीर के भीतर का कफ पिघलने लगता है, यदि उस का शमन (शान्ति का उपाय या इलाज) न किया जावे तो खांसी कफज्वर और मरोड़ा आदि रोग उत्पन्न होजाते हैं, वसन्त में कफकी शान्ति के होने के पीछे ग्रीष्म के सख्त ताप से शरीर के भीतर का आवश्यकरूप में स्थित कफ जलने अर्थात् क्षीण होने लगता है, उस समय में शरीर में वायु अप्रकटरूप से इकट्ठा होने लगता है, इसलिये वर्षा ऋतु की हवा के चलते ही दस्त, वमन, बुखार, वायुज सन्निपातादि कोप, अग्निमान्द्य और रक्तविकारादि वायुजन्य रोग उत्पन्न होते हैं उस वायु को मिटाने के लिये गर्म इलाज अथवा अज्ञानता से गर्म खान पान आदि के करने से पित्त का सञ्चय होता है, उस के बाद शरद् ऋतु के लगते ही सूर्य की किरणें तुला सङ्क्रान्ति में सोलह सौ (एक हजार छः सौ) होने से सख्त ताप पड़ता है, उस ताप के योग से पित्त का कोप होकर पित्त का बुखार, मोती झरा, पानीझरा, पैत्तिक सन्निपात और वमन आदि अनेक उपद्रव होते हैं, इस के बाद ठंढे इलाजों से अथवा हेमन्त ऋतु की ठंढी हवा से अथवा शिशिर ऋतु की तेज ठंढ से पित्त शांत होता है परन्तु उस हेमन्त की ठंढ से खान पान में आये हुए पौष्टिक तत्त्व के द्वारा कफ का सञ्चय होता है वह वसन्त ऋतु में कोप करता है, तात्पर्य यह है कि—हेमन्त में कफ का सञ्चय और वसन्त में कोप होता है, ग्रीष्म में वायु का सञ्चय और भाद्रद् में कोप होता है, वर्षा में पित्त का सञ्चय और शरद् में कोप होता है, यही कारण है कि—वसन्त, वर्षा और शरद्, इन तीनों ही ऋतुओं में रोग की अधिक उत्पत्ति होती है, यद्यपि विपरीत आहार विहार से वायु पित्त और कफ बिगड़ कर सब ही ऋतुओं में रोगों को उत्पन्न करते हैं परन्तु तो भी अपनी २ ऋतु में इन का अधिक कोप होता है और इस में भी उस २ प्रकार की प्रकृतिवालों पर उस २ दोष का अधिक कोप होता है, जैसे वसन्त ऋतु में कफ सबों के लिये उपद्रव करता है परन्तु कफ की प्रकृतिवाले के लिये अधिक उपद्रव करता है, इसी प्रकार से शेष दोनों दोषों का भी उपद्रव समझ लेना चाहिये ॥

१–इस का विस्तारपूर्वक वर्णन दूसरे वैद्यक ग्रन्थों में देख लेना चाहिये ॥

२–इतनी किरणें और किसी संक्रान्ति में नहीं होती हैं यह बात कल्पसूत्र की कल्पकौमुदी टीका में लिखी है इसके सिवाय लोकोक्ति भी है कि "आसोजों की धूप में जोगी हो गये जाट ॥ मामला हो गये ठिकर पर ऐ बन गये भाट" ॥ १ ॥

वसन्त ऋतु का पथ्यापथ्य ॥

पहिले कह चुके है कि–शीत काल में जो चिकनी और पुष्ट खुराक खाई जाती है उस से कफ का सग्रह होता है अर्थात् शीत के कारण कफ शरीर में अच्छे प्रकार से जमकर स्थित होता है, इस के बाद वसन्त की धूप पड़ने से वह कफ पिघलने लगता है, कफ प्रायः मगज छाती और सॉधों में रहता है इस लिये शिर का कफ पिघल कर गले मे उतरता है जिस से जुखाम कफ और खासी का रोग होता है, छाती का कफ पिघलकर होजरी में जाता है जिस से अग्नि मन्द होती है और मरोडा होता है, इस लिये वसन्त ऋतु के लगते ही उस कफ का यत्न करना चाहिये, इस के मुख्य इलाज दो तीन हैं–इस लिये इन में से जो प्रकृति के अनुकूल हो वही इलाज कर लेना चाहियेः—

१–आहार विहार के द्वारा अथवा वमन और विरेचन की ओषधि के द्वारा कफ को निकाल कर शान्ति करनी चाहिये ।

२–जिस को कफ की अत्यन्त तकलीफ हो और शरीर में शक्ति हो उस को तो यही उचित है कि–वमन और विरेचन के द्वारा कफ को निकाल डाले परन्तु बालक वृद्ध और शक्तिहीन को वमन और विरेचन नही लेना चाहिये, हा सोलह वर्षतक की अवस्थावाले बालक को रोग के समय हरड़ और रेवतचीनी का सत आदि सामान्य विरेचन देने में कोई हानि नहीं है परन्तु तेज विरेचन नही देना चाहिये ॥

वसन्त ऋतु में रखने योग्य नियम ॥

१–भारी तथा ठढा अन्न, दिन में नीद, चिकना तथा मीठा पदार्थ, नया अन्न, इन सब का त्याग करना चाहिये ।

२–एक साल का पुराना अन्न, शहद, कसरत, जंगल में फिरना, तैलमर्दन और पैर दबाना आदि उपाय कफ की शान्ति करते हैं, अर्थात् पुरानां अन्न कफ को कम करता है, शहद कफ को तोड़ता है, कसरत, तेल का मर्दन और दबाना, ये तीनों कार्य शरीर के कफ की जगह को छुडा देते हैं, इसलिये इन सब का सेवन करना चाहिये ।

३–रूखी रोटी खाकर मेहनत मजूरी करनेवाले गरीबों का यह मौसम कुछ भी विगाड़ नहीं करता है, किन्तु माल खाकर एक जगह बैठनेवालों को हानि पहुँचाता है, इसी लिये प्राचीन समय में पूर्ण वैद्यों की सलाह से मदनमहोत्सव, रागरंग, गुलाब जल का डालना, अबीर गुलाल आदि का परस्पर लगाना और बगीचों में जाना आदि बातें इस मौसम मे नियत की गई [1]थी कि इन के द्वारा इस ऋतु में मनुष्यों को कसरत प्राप्त हो,

---

१–सवत् १९५८ से सवत् १९६३ तक मैंने बहुत से देशों में भ्रमण (देशाटन) किया था जिस मे इस ऋतु मे यद्यपि अनेक नगरों मे अनेक प्रकार के उत्सव आदि देखने मे आये थे परन्तु मुर्शिदाबाद

जैसा इस ऋतु में हितकारी और परभव सुखकारी महोत्सव कहीं भी नहीं देखा वहां के लोग फाल्गुन सुद में प्रायः १५ दिन तक भगवान् का रथमहोत्सव प्रतिवर्ष किया करते हैं अर्थात् भगवान् के रथ को निकाला करते हैं, रास्ते में भजन गाते हुवे तथा केसर आदि उत्तम पदार्थों के जल से भरी हुई चांदी की पिचकारियां चलाते हुए बगीचों में जाते हैं, वहांपर स्नात्र पूजादि भक्ति करते हैं तथा प्रतिदिन शाम को घेर होती है इत्यादि उक्त धर्मी पुरुषों का इस ऋतु में ऐसा महोत्सव करना अत्यन्त ही प्रशंसा के योग्य है, इस महोत्सव का उपदेश करनेवाले हमारे प्राचीन यति आचार्य ही हुए हैं, उन्हीं का इस भव तथा परभव में हितकारी यह उपदेश आजतक चल रहा है इस बात की बहुत ही हमें खुशी है तथा हम उन पुरुषों को अत्यन्त ही धन्यवाद देते हैं जो आजतक उक्त उपदेश को मान कर उसी के अनुसार वर्त्ताव कर अपने जन्म को सफल कर रहे हैं क्योंकि इस काल के लोग परभव का खयाल बहुत कम करते हैं, प्राचीन समय में जो आचार्य लोगों ने इस ऋतु में अनेक महोत्सव नियत किये थे उन का तात्पर्य केवल यही था कि मनुष्यों का परभव भी सुधरे तथा इस भव में भी ऋतु के अनुसार उत्सवादि में परिश्रम करने से आरोग्यता आदि बातों की प्राप्ति हो यद्यपि वे उत्सव रूपान्तर में अब भी देखे जाते हैं परन्तु लोग उन के तत्त्व को बिलकुल नहीं सोचते हैं और मनमाना वर्त्ताव करते हैं, देखो। कामी पुरुष होली तथा गौर अर्थात् मदनमहोत्सव (होली तथा गौर की उत्पत्ति का हाल ग्रन्थ बढ़ जाने के भय से यहां नहीं लिखना चाहते हैं फिर किसी समय इन का वृत्तान्त पाठकों की सेवा में उपस्थित किया जावेगा) में कैसा २ वर्त्ताव करने लगे हैं इस महोत्सव में वे लोग यद्यपि दाकिये और बड़े आदि कफोच्छेदक पदार्थों को खाते हैं तथा खेल तमाशा आदि करने के बहाने रात को जागना आदि परिश्रम भी करते हैं जिस से कफ घटता है परन्तु होली के महोत्सव में वे लोग कैसे २ महा असभ्य वचन बोलते हैं, यह बहुत ही खराब प्रथा पड़ गई है, बुद्धिमानों को चाहिये कि इस हानिकारक तथा लाज की ही प्रथा को अवश्य छोड़ दें, क्योंकि इन महा असभ्य वचनों के बकने से प्रत्युत कफ जोर होकर शरीर में तथा बुद्धि में खराबी होती है, यह प्राचीन प्रथा नहीं है किन्तु अनुमान ढाई हजार वर्ष से यह नीच चाल वाममार्गी (कूण्डा पन्थी) लोगों के मत भ्रष्टा ने चलाई है तथा भोले लोगों ने इस को मांगलिक मान रक्खा है, क्योंकि उन को इस बात की बिलकुल खबर नहीं है कि यह महा असभ्य वचनों का बकना कूण्डा पन्थियों का मुख्य भजन है, यह कुपथ्य मारवाड़ के लोगों में बहुत ही प्रचलित हो रही है, इस से यद्यपि वहां के लोग अनेक बार अनेक हानियां भी उठा चुके हैं परन्तु अबतक नहीं समझते हैं यह केवल अविद्या देवी का प्रसाद है कि-वर्त्तमान समय में ऋतु के विपरीत अनेक मन कल्पित व्यवहार प्रचलित हो गये हैं तथा एक दूसरे की देखा देखी और भी प्रचलित होते जाते हैं अब तो सचमुच कुए में भांग गिरने की कहावत हो गई है, यथा—

अविद्याऽनेक प्रकार की पद पद मांहि खड़ी। जो जाको उपदेशवादी कूप भांग पड़ी ॥ १ ॥ जिस में भी मारवाड़ की दशा को तो कुछ भी न पूछिये यहां तो मारवाड़ी भाषा की यह कहावत बिलकुल ही ठीक होगई है कि- म्हानें तो ताती जी भावे जी ने अब कोई राम' अर्थात् कोई २ मर्द लोग तो इन बातों को रोकना भी चाहते हैं परन्तु घर की धणियानियों (स्वामिनियों) के सामने बिल्ली से चूहे की तरह उन बातों को करना ही पड़ता है, देखो। वसन्त ऋतु में ठंढा खाना बहुत ही हानि करता है परन्तु यहां शील सातम (शीतला सप्तमी) को सब ही लोग ठंढा खाते हैं गुड़ भी इस ऋतु में महा हानिकारक है उस को भी आसमान के दिन खाते हैं किन्तु एक दिन पहिले ही से गुलराब गुलपपड़ी और पकपकड़ी आदि

इस लिये इस ऋतु के प्राचीन उत्सवों का प्रचार कर उन में प्रवृत्त होना परम आवश्यक है, क्योंकि इन उत्सवों से शरीर नीरोग रहता है तथा चित्त को प्रसन्नता भी प्राप्त होती है ।

पदार्थ बना कर अवश्य ही इस मौसम में खाते हैं, यह वास्तव में तो अविद्या देवी का प्रसाद है परन्तु शीतला देवी के नाम का बहाना है, हे कुलवती गृहलक्ष्मियो ! जरा विचार तो करो कि–दया धर्म से विरुद्ध और शरीर को हानि पहुँचानेवाले अर्थात् इस भव और परभव को बिगाड़नेवाले इस प्रकार के खान पान से क्या लाभ है ? जिस शीतला देवी को पूजते २ तुम्हारी पीढ़ियां तक गुजर गईं परन्तु आज तक शीतला देवी ने तुम पर कृपा नहीं की अर्थात् आज तक तुम्हारे बच्चे इसी शीतला देवी के प्रभाव से काने अन्धे, कुरूप, लूले और लँगड़े हो रहे हैं और हजारों मर रहे हैं, फिर ऐसी देवी को पूजने से तुम्हें क्या लाभ हुआ ? इस लिये इस की पूजा को छोड़कर उन प्रत्यक्ष अंग्रेज देवों को पूजो कि जिन्हों ने इस देवी को माता के दूध का विकार समझ कर उस को रोड़ कर (टीके की चाल को प्रचलित कर) निकाल डाला और बालकों को महा संकट से बचाया है, देखो ! वे लोग ऐसे २ उपकारों के करने से ही आज साहिब के नाम से विख्यात हैं, देखो ! अन्धपरम्परा पर न चलकर तत्त्व का विचार करना बुद्धिमानों का काम है, कितने अफसोस की बात है कि–कोई २ स्त्रियां तीन २ दिन तक का ठंढा (बासा) अन्न खाती हैं, भला कहिये इस से हानि के सिवाय और क्या मतलब निकलता है, स्मरण रक्खो कि ठंढा खाना सदा ही अनेक हानियों को करता है अर्थात् इस से बुद्धि कम हो जाती है तथा शरीर में अनेक रोग हो जाते हैं, जब हम बीकानेर की तरफ देखते हैं तो यहां भी बड़ी ही अन्धपरम्परा दृष्टिगत होती है कि–यहां के लोग तो सवेरे की सिरावणी में प्रायः बालक से लेकर वृद्धपर्यन्त दही और बाजरी की अथवा गेहूँ की बासी रोटी खाते हैं जिस का फल भी हम प्रत्यक्ष ही नेत्रों से देख रहे हैं कि यहां के लोग उत्साह बुद्धि और सद्विचार आदि गुणों से हीन दीख पड़ते हैं, अब अन्त में हमें इस पवित्र देश की कुलवतियों से यही कहना है कि–हे कुलवती स्त्रियो ! शीतला रोग की तो समस्त हानियों को उपकारी डाक्टरों ने बिलकुल ही कम कर दिया है अब तुम इस कुत्सित प्रथा को क्यों तिलांजलि नहीं देती हो ? देखो ! ऐसा प्रतीत होता है कि–प्राचीन समय में इस ऋतु में कफ की और दुष्कर्मों की निवृत्ति के प्रयोजन से किसी महापुरुष ने सप्तमी वा अष्टमी को शीलव्रत पालने और चूल्हे को न सुलगाने के लिये अर्थात् उपवास करने के लिये कहा होगा परन्तु पीछे से उस कथन के असली तात्पर्य को न समझ कर मिथ्यात्व वश किसी धूर्त्त ने यह शीतला का ढंग शुरू कर दिया और वह क्रम २ से पनघट के घाघरे के समान बढ़ता २ इस मारवाड़ में तथा अन्य देशों में भी सर्वत्र फैल गया (पनघट के घाघरे का वृत्तान्त इस प्रकार है कि–किसी समय दिल्ली में पनघट पर किसी स्त्री का घाघरा खुल गया, उसे देखकर लोगों ने कहा कि "घाघरा पड़ गया रे, घाघरा पड़ गया" उन लोगों का कथन दूर खड़े हुए लोगों को ऐसा सुनाई दिया कि–'आगरा जल गया रे, आगरा जल गया, इस के बाद यह बात कर्णपरम्परा के द्वारा तमाम दिल्ली में फैल गई और बादशाह तक के कानों तक पहुँच गई कि 'आगरा जल गया रे, आगरा जल गया, परन्तु जब बादशाहने इस बात की तहकीकात की तो मालूम हुआ कि आगरा नहीं जल गया किन्तु पनघट की स्त्री का घाघरा खुल गया है) हे परममित्रो ! देखो ! संसार का तो ऐसा ढंग है इसलिये सुज्ञ पुरुषों को उक्त हानिकारक बातों पर अवश्य ध्यान देकर उन का सुधार करना चाहिये ॥

४–वसन्तऋतु की हवा बहुत फायदेमन्द मानी गई है इसी लिये शास्त्रकारों का कथन है कि "वसन्ते भ्रमण पथ्यम्" अर्थात् वसन्तऋतु में भ्रमण करना पथ्य है, इस लिये इस ऋतु में प्रातःकाल तथा सायंकाल को वायु के सेवन के लिये दो चार मील तक अवश्य जाना चाहिये, क्योंकि ऐसा करने से वायु का सेवन भी हो जाता है तथा जाने आने के परिश्रम के द्वारा कसरत भी हो जाती है, देखो। किसी बुद्धिमान् का कथन है कि–"सौ दवा और एक हवा" यह बात बहुत ही ठीक है इसलिये आरोग्यता रखने की इच्छावालों को उचित है कि अवश्यमेव प्रातःकाल सदैव दो चार मील तक फिरा करें ॥

ग्रीष्म ऋतु का पथ्यापथ्य ॥

ग्रीष्म ऋतु में शरीर का कफ सूखने लगता है तथा उस कफ की खाली जगह में हवा भरने लगती है, इस ऋतु में सूर्य का ताप जैसा जमीन पर स्थित रस को खींच लेता है उसी प्रकार मनुष्यों के शरीर के भीतर के कफरूप प्रवाही (बहनेवाले) पदार्थों का शोषण करता है इस लिये सावधानता के साथ गरीब और अमीर सब ही को अपनी २ शक्ति के अनुसार इस का उपाय अवश्य करना चाहिये, इस ऋतु में जितने गर्म पदार्थ हैं वे सब अपथ्य हैं यदि उन का उपयोग किया जावे तो शरीर को बड़ी हानि पहुँचती है, इस लिये इस ऋतु में जिन पदार्थों के सेवन से रस न घटने पावे अर्थात् जितना रस सूखे उतना ही फिर उत्पन्न हो जावे और वायु को जगह न मिलसके ऐसे पदार्थों का सेवन करना चाहिये, इस ऋतुमें मधुर रसवाले पदार्थों के सेवन की आवश्यकता है और वे स्वाभाविक नियम से इस ऋतु में प्रायः मिलते भी हैं जैसे–पके आम, फालसे, सन्तरे, नारंगी, ककड़ी नेंबू जामुन और गुलाबजामुन आदि, इस लिये स्वाभाविक नियम से आवश्यकतानुसार उत्पन्न हुए इन पदार्थों का सेवन इस ऋतु में अवश्य करना चाहिये।

मीठे, ठंढे, हलके और रसवाले पदार्थ इस ऋतु में अधिक खाने चाहियें जिन से क्षीण होनेवाले रस की कमी पूरी हो जावे।

गेहूँ, चावल, मिश्री दूध शक्कर जल भरा हुआ तथा मिश्री मिलाया हुआ दही और श्रीखंड[1] आदि पदार्थ खाने चाहियें, ठंढा पानी पीना चाहिये, गुलाब तथा केवड़े के जल का उपयोग करना चाहिये, गुलाब, केवड़ा खस और मोतिये का अतर सूंघना चाहिये।

प्रातःकाल में सफेद और हलका सूती वस्त्र, दस से पांच बजे तक सूती जीन वा गजी का कोई मोटा वस्त्र तथा पांच बजे के पश्चात् महीन वस्त्र पहरना चाहिये, बर्फ

१–श्रीखण्ड के गुण इसी अध्याय के पांचवें प्रकरण में कह चुके हैं, इस के बनाने की विधि भावप्रकाश आदि वैद्यक ग्रन्थो में अथवा पाकशास्त्र म देख लेनी चाहिये ॥

का जल पीना चाहिये, दिन में तहखाने में वा पटे हुए मकान में और रात को ओस में सोना उत्तम है।

ऑवला, सेव और ईख का मुरब्बा भी इन दिनों में लाभकारी है, मैदा का शीरा जिस में मिश्री और घी अच्छे प्रकार से डाला गया हो प्रातःकाल में खाने से बहुत लाभ पहुँचाता है और दिन भर प्यास नहीं सताती है।

ग्रीष्म ऋतु आम की तो फसल ही है सब का दिल चाहता है कि आम खावें परन्तु अकेला आम या उस का रस बहुत गर्मी करता है इस लिये आम के रस में घी दूध और काली मिर्च डाल कर सेवन करना चाहिये ऐसा करने से वह गर्मी नहीं करता है तथा शरीर को अपने रग जैसा वना देता है।

ग्रीष्म ऋतु में क्या गरीब और क्या अमीर सब ही लोग शर्वत को पीना चाहते है और पीते भी है तथा शर्वत का पीना इस ऋतु में लाभकारी भी बहुत है परन्तु वह (शर्वत) शुद्ध और अच्छा होना चाहिये, अत्तार लोग जो केवल मिश्री की चासनी वना कर शीशियो में भर कर बाज़ार में बेंचते हैं वह शर्वत ठीक नहीं होता है अर्थात् उस के पीने से कोई लाभ नहीं हो सकता है इस लिये असली चिकित्सा प्रणाली से वना हुआ शर्वत व्यवहार में लाना चाहिये किन्तु जिन को प्रमेह आदि या गर्मी की वीमारी कभी हुई हो उन लोगों को चन्दन गुलाव केवडे वा खस का शर्वत इन दिनों में अवश्य पीना चाहिये, चन्दन का शर्वत बहुत ठढा होता है और पीने से तवीयत को खुश करता है, दस्त को साफ ला कर दिल को ताकत पहुँचाता है, कफ प्यास पित्त और लोहू के विकारों को दूर करता है तथा दाह को मिटाता है, दो तोले चन्दन का शर्वत दश तोले पानी के साथ पीना चाहिये तथा गुलाव वा केवड़े का शर्वत भी इसी रीति से पीना अच्छा है इस के पीने से गर्मी शान्त होकर कलेजा तर रहता है, यदि दो तोले नीबू का शर्वत दश तोले जल में डाल कर पिया जावे तो भी गर्मी शान्त हो जाती है और भूख भी दुगुनी लगती है, चालीस तोले मिश्री की चासनी में वीस नीवुओं के रस को डाल कर बनाने से नींबू का शर्वत अच्छा बन सकता है, चार तोले भर अनार का शर्वत वीस तोले पानी में डालकर पीने से वह नजले को मिटा कर दिमाग को ताकत पहुँचाता है, इसी रीति से सन्तरा तथा नेचू का शर्वत भी पीने से इन दिनों में बहुत फायदा करता है।

जिस स्थान में असली शर्वत न मिल सके और गर्मी का अधिक जोर दिखाई देता हो तो यह उपाय करना चाहिये कि—पच्चीस वादामों की गिरी निकाल कर उन्हें एक घण्टेतक पानी में भीगने दे, पीछे उन का लाल छिलका दूर कर तथा उन्हें घोट कर

१—परन्तु मन्दाग्निवाले पुरुषों को इसे नहीं खाना चाहिये ॥

एक गिलास भर जल बनावे और उस में मिश्री डाल कर पी जावे, ऐसा करने से गर्मी बिलकुल न सतावेगी और दिमाग को तरी भी पहुँचेगी ।

गरीब और साधारण लोग ऊपर कहे हुए शर्बतों की एवज में इमली का पानी कर उस में खजूर अथवा पुराना गुड़ मिला कर पी सकते हैं, यद्यपि इमली सदा खाने के योग्य वस्तु नहीं है तो भी यदि प्रकृति के अनुकूल हो तो गर्मी की सख्त ऋतु में एक वर्ष की पुरानी इमली का शर्बत पीने में कोई हानि नहीं है किन्तु फायदा ही करता है, गेहूँ के फुलकों (पतली २ रोटियों) को इस के शर्बत में भींज कर (भिगो कर) खाने से भी फायदा होता है, दाह से पीड़ित तथा लू लगे हुए पुरुष के इमली के भीगे हुए गूदे में नमक मिला कर पैरों के तलवों और हथेलियों में मलने से तत्काल फायदा पहुँचता है अर्थात् दाह और लू की गर्मी शान्त हो जाती है ।

इस ऋतु में खिले हुए सुन्दर सुगन्धित पुष्पों की माला का धारण करना या उन को सूंघना तथा सफेद चन्दन का लेप करना भी श्रेष्ठ है ।

चन्दन, केवड़ा, गुलाब, हिना, खस, मोतिया, जुही और पनड़ी आदि के अतरों से बनाये हुए साबुन भी (लगाने से) गर्मी के दिनों में दिल को खुश तथा तर रखते हैं इस लिये इन साबुनों को भी प्रायः तमाम शरीर में स्नान करते समय लगाना चाहिये।

इस ऋतु में स्त्रीगमन १५ दिन में एक बार करना उचित है, क्योंकि इस ऋतु में स्वभाव से ही शरीर में शक्ति कम होजाती है ॥

१—परन्तु ये सब ऋतु के अनुकूल पदार्थ उन्हीं पुरुषों को प्राप्त हो सकते हैं जिन्हों ने पूर्व भव में देव गुरु और धर्म की सेवा की है, इस भव में जिन पुरुषों का मन धर्म में लगा हुआ है और जो उदार स्वभाव हैं तथा वास्तव में उन्हीं का जन्म प्रशंसा के योग्य है, क्योंकि–देखो ! शाल और दुशाले आदि उत्तमोत्तम वस्त्र कड़े और कण्ठी आदि भूषण सब प्रकार के वाहन और मोतियों के हार आदि सर्व पदार्थ धर्म की ही बदौलत लोगों को मिले हैं और मिल सकते हैं, परन्तु अफसोस है कि इस समय उस (धर्म) को मनुष्य बिलकुल भूले हुए हैं, इस समय में तो ऐसी अवस्था हो रही है कि–धनवान् लोग धन के नशे में चूर कर धर्म को बिलकुल ही छोड़ बैठे हैं, वे लोग कहते हैं कि–हमें किसी की क्या परवाह है, हमारे पास धन है इसलिये हम जो चाहें सो कर सकते हैं इत्यादि परन्तु यह उनकी महाभूल है, उन को अज्ञानता के कारण यह नहीं मालूम होता है कि–जिस से हम ने ये सब फल पाये हैं उस को हमें सदा रखना चाहिये और आगे के लिये परलोक का मार्ग साफ करना चाहिये देखो ! जो धनवान् और धर्मवान् होता है उस की दोनों लोकों में प्रशंसा होती है जिन्हों ने पूर्वभव में धर्म किया है उन्हीं को भोजन और वस्त्र आदि की तंगी नहीं रहती है अर्थात् पुण्यवानों को ही खान पान आदि सब बातों का सुभीता है, देखो ! संसार में बहुत से लोग ऐसे भी हैं जिन को खानपान का भी सुख नहीं है, इसलिये संसार में इस से अधिक और क्या तकलीफ होगी अर्थात् उन के दुःख का क्या अन्त हो सकता है कि जिन के लिये रोटी तक का भी ठिकाना नहीं है, आदमी अन्य सब प्रकार के दुःख भुगत सकता है परन्तु रोटी का दुःख किसी से नहीं सहा जाता है, इसी लिये कहा जाता है कि हे भाइयो ! धर्म पर सदा प्रेम रक्खो यही तुम्हारा सच्चा मित्र है ॥

इस ऋतु में अपथ्य—सिरका, खारी तीखे खट्टे और रूक्ष पदार्थों का सेवन, कसरत, धूप में फिरना और अग्नि के पास बैठना आदि कार्य रस को सुखाकर गर्मी को वढ़ाते हैं इस लिये इस ऋतु में इन का सेवन नहीं करना चाहिये, इसी प्रकार गर्म मसाला, चटनिया, लाल मिर्च और तेल आदि पदार्थ सदा ही वहुत खाने से हानि करते है परन्तु इस ऋतु में तो ये (सेवन करने से) अकथनीय हानि करते है इस लिये इस ऋतु में इन सव का अवश्य ही त्याग करना चाहिये॥

वर्षा और प्रावृट् ऋतु का पथ्यापथ्य॥

चार महीने वरसात के होते है, मारवाड तथा पूर्व के देशों में आर्द्रा नक्षत्र से तथा दक्षिण के देशों में मृगशिर नक्षत्र से वर्षा की हवा का प्रारम्भ होता है, पूर्व वीते हुए ग्रीष्म में वायु का सचय हो चुका है, रस के सूख जाने से शक्ति घट चुकी है तथा जठराग्नि मन्द हो गई है, इस दशा में जव जलकणो के सहित वरसाती हवा चलती है तथा मेंह वरसता है तव पुराने जल में नया जल मिलता है, ठढे पानी के वरसने से शरीर की गर्मी भाफ रूप होकर पित्त को विगाड़ती है, ज़मीन की भाफ और खटासवाला पाक पित्त को वढ़ा कर वायु तथा कफ को दवाने का प्रयत्न करता है तथा वरसात का मैला पानी कफ को वढ़ा कर वायु और पित्त को दवाता है, इस प्रकार से इस ऋतु में तीनों दोषों का आपस में विरोध रहता है, इस लिये इस ऋतु में तीनों दोषों की शान्ति के लिये युक्तिपूर्वक आहार विहार करना चाहिये, इस का सक्षेप से वर्णन करते है:—

१–जठराग्नि को प्रदीप्त करनेवाले तथा सव दोषो को वरावर रखनेवाले खान पान का उपयोग करना चाहिये अर्थात् सव रस खाने चाहियें।

२–यदि हो सके तो ऋतु के लगते ही हलका सा जुलाव ले लेना चाहिये।

३–खुराक में वर्षभर का पुराना अन्न वर्त्तना चाहिये।

४–मूग और अरहर की दाल का ओसावण वना कर उस में छाछ डाल कर पीना चाहियें, यह इस ऋतु में फायदेमन्द है।

५–दही में सञ्चल, सेंधा या सादा नमक डाल कर खाना वहुत अच्छा है, क्योंकि इस प्रकार से खाया हुआ दही इस ऋतु में वायु को शान्त करता है, अग्नि को प्रदीप्त करता है तथा इस प्रकार से खाया हुआ दही हेमन्त ऋतु में भी पथ्य है।

१–वहुत से लोग मूर्खता के कारण गर्मी की ऋतु मे दही खाना अच्छा समझते है, सो यह ठीक नहीं है, यद्यपि उक्त ऋतु मे वह खाते समय तो ठढा मालूम होता है परन्तु पचने के समय पित्त को वढा कर कर उलटी अधिक गर्मी करता है, हा यदि इस ऋतु मे दही खाया भी जावे तो मिश्री डाल कर युक्तिपूर्वक खाने से पित्त को शान्त करता है, किन्तु युक्ति के विना तो खाया हुआ दही सव ही ऋतुओं मे हानि करता है॥

६–छाछ, नींबू और कच्चे आम आदि खट्टे पदार्थ भी अन्य ऋतुओं की अपेक्षा इस ऋतु में अधिक पथ्य हैं।

७–इन वस्तुओं का उपयोग भी प्रकृति के अनुसार तथा परिमाण मूजब करने से लाभ होता है अन्यथा हानि होती है।

८–नदी तालाव और कुए के पानी में बरसात का मैला पानी मिल जाने से इन का जल पीने योग्य नहीं रहता है, इस लिये जिस कुए में वा कुण्ड में बरसाती पानी न मिलता हो उस का जल पीना चाहिये।

९–बरसात के दिनों में पापड़, काचरी और अचार आदि खारवाले पदार्थ तथा सुखिये, बड़े, भीजड़े, मेथई, कचोड़ी आदि स्नेहवाले पदार्थ अधिक फायदेमन्द हैं, इस लिये इन का सेवन करना चाहिये।

१०–इस ऋतु में नमक अधिक खाना चाहिये ॥

इस ऋतु में अपथ्य—तलघर में बैठना, नदी या तालाब का गँदला जल पीना, दिन में सोना, धूप का सेवन और शरीर पर मिट्टी लगाकर कसरत करना, इन सब बातों से बचना चाहिये।

इस ऋतु में रूक्ष पदार्थ नहीं खाने चाहियें, क्योंकि रूक्ष पदार्थ वायु को बढ़ाते हैं, ठढी हवा नहीं लेनी चाहिये, कीचड़ और भीगी हुई पृथिवी पर नंगे पैर नहीं फिरना चाहिये, भीगे हुए कपड़े नहीं पहरने चाहियें, हवा और जल की बूंदों के सामने नहीं बैठना चाहिये, घर के सामने कीचड़ और मैलापन नहीं होने देना चाहिये, बरसात का जल नहीं पीना चाहिये और न उस में नहाना चाहिये, यदि नहाने की इच्छा हो तो शरीर में तैल की मालिस कर नहाना चाहिये, इस प्रकार से आरोग्यता की इच्छा रखने वालों को इन चार मासतक (प्रावृट् और वर्षा ऋतु में) वर्ताव करना उचित है ॥

शरद् ऋतु का पथ्यापथ्य ॥

सब ऋतुओं में शरद् ऋतु रोगों के उपद्रव की जड़ है, देखो! वैद्यकशास्त्रकारों का कथन है कि–"रोगाणां शारदी माता पिता तु कुसुमाकरः" अर्थात् शरद् ऋतु रोगों की पैदा करनेवाली माता है और वसन्त ऋतु रोगों को पैदा कर पालनेवाला पिता है, यह सब ही जानते हैं कि–सब रोगों में ज्वर राजा है और ज्वर ही इस ऋतु का मुख्य उपद्रव है, इसलिये इस ऋतु में बहुत ही सँभल कर चलना चाहिये, वर्षा ऋतु में संचित हुआ पित्त इस ऋतु के ताप की गर्मी से शरीर में कुपित होकर बुखार को करता है तथा बरसात के कारण जमीन भीगी हुई होती है इसलिये उस से भी धूप के द्वारा जल की

1–यह कल्पसूत्र की टीका में लिखा है ॥

भाफ उठ कर हवा को विगाडती है, विशेष कर जो देश नीचे है अर्थात् जहा वरसात का पानी भरा रहता है वहा भाफ के अधिक उठने के कारण हवा अधिक विगड़ती है, वस यही जहरीली हवा ज्वर को पैदा करने वाली है, इस लिये शीतज्वर, एकान्तर, तिजारी और चौथिया आदि विषम ज्वरो की यही खास ऋतु है, ये सब ज्वर केवल पित्त के कुपित होने से होते हैं, वहुत से मनुष्यों की सेवा में तो ये ज्वर प्रतिवर्ष आकर हाजिरी देते हैं और वहुत से लोगों की सेवा को तो ये मुद्दततक उठाया करते हैं, जो ज्वर शरीर में मुद्दततक रहता है वह छोडता भी नहीं है किन्तु शरीर को मिट्टी में मिला कर ही पीछा छोड़ता है तथा रहने के समय में भी अनेक कष्ट देता है अर्थात् तिल्ली वढ़ जाती है, रोगी कुरूप हो जाता है तथा जव ज्वर जीर्णरूप से शरीर में निवास करता है तव वह वारवार वापिस आता और जाता है अर्थात् पीछा नहीं छोड़ता है, इस लिये इस ऋतुमें वहुत ही सावधानता के साथ अपनी प्रकृति तथा ऋतु के अनुकूल आहार विहार करना चाहिये[2], इस का सक्षेप से वर्णन इस प्रकार से है कि.—

१–इस ऋतु में यथाशक्य पित्त को शान्त करने का उपाय करना चाहिये, पित्त को जीतने वा शान्त करने के मुख्य तीन उपाय हैः—

(A)–पित्त के शमन करनेवाले खान पान से और दवा से पित्त को दवाना चाहिये।

(B) वमन और विरेचन के द्वारा पित्त को निकाल डालना चाहिये[3]।

(C) फस्त खुलवा कर या जोंक लगवा कर खून को निकलवाना चाहिये[4]।

२–वायु की प्रकृतिवाले को शरद् ऋतु में घी पीकर पित्त की शान्ति करनी चाहिये।

३–पित्त की प्रकृतिवाले को कडुए पदार्थ खानेपीने चाहियें, कडुए पदार्थों में नीम पर की गिलोय, नीम की भीतरी छाल, पित्तपापड़ा और चिरायता आदि उत्तम और गुण-

---

१–इस हवा को अंग्रेजी में मलेरिया कहते हैं तथा इस से उत्पन्न हुए ज्वर को मलेरिया फीवर कहते हैं॥

२–वहुत से प्रमादी लोग इस ऋतु में ज्वरादि रोगों से ग्रस्त होने पर भी अज्ञानता के कारण आहार विहार का नियम नहीं रखते हैं, वस इसी मूर्खता से वे अत्यन्त भुगत २ कर मरणान्त कष्ट पाते हैं ॥

३–यदि वमन और विरेचन का सेवन किया जावे तो उसे पथ्य से करना उचित है, क्योंकि पुरुष का विरेचन (जुलाव) और स्त्री का जापा (प्रसूतिसमय) समान होता है इसलिये पूर्ण वैद्य की सम्मति से अथवा आगे इसी ग्रन्थ में लिखी हुई विरेचन की विधि के अनुसार विरेचन लेना ठीक है, हा इतना अवश्य स्मरण रखना चाहिये कि–जव विरेचन लेना हो तव शरीर में घृत की मालिस करा के तथा घी पीकर तीन पाच या सात दिनतक पहिले वमन कर फिर तीन दिन ठहर कर पीछे विरेचन लेना चाहिये, घी पीने की मात्रा नित्य की दो तोले से लेकर चार तोलेतक की काफी है, इन सव वातों का वर्णन आगे किया जायगा ॥

४–यह तीसरा उपाय तो विरले लोगों से ही भाग्ययोग से वन पडता है, क्योंकि पहिले जो दो उपाय हैं वे तो सहज और सव से हो सकने योग्य हैं परन्तु तीसरा उपाय कठिन अर्थात् सव से हो सकने योग्य नहीं है ॥

कारी पदार्थ हैं, इसलिये इन में से किसी एक चीज की फँकी ले लेना चाहिये, अथवा रात को भिगो कर प्रातःकाल उस का क्वाथ कर (उबाल कर) छान कर तथा ठढा कर मिश्री डालकर पीना चाहिये, इस दवा की मात्रा एक रुपये भर है, इस से ज्वर नहीं आता है और यदि ज्वर हो तो भी चला जाता है, क्योंकि इस दवा से पित्त की शान्ति हो जाती है।

४–पित्त की प्रकृतिवाले के लिये दूसरा इलाज यह भी है कि वह दूध और मिश्री के साथ चावलों को खावे, क्योंकि इस के खानेसे भी पित्त शान्त हो जाता है।

५–पित्त की प्रकृतिवाले को पित्तशामक जुलाब भी ले लेना चाहिये, उस से भी पित्त निकल कर शान्त हो जावेगा, वह जुलाब यह है कि–अमृतसर की हरड़ें अथवा छोटी हरड़ें अथवा निसोतकी छाल, इन तीनों चीजों में से किसी एक चीज की फंकी बूरा मिला कर लेनी चाहिये तथा दाख मात या कोई पतला पदार्थ पथ्य में लेना चाहिये, ये सब साधारण दस्त लानेवाली चीजें हैं।

६–इस ऋतु में मिश्री, बूरा, कन्द, कमोद या साठी चावल, दूध, ऊख, सेंधा नमक (लोहा), गेहूं, जौं और मूंग पथ्य हैं, इस लिये इन को खाना चाहिये।

७–जिस पर दिन में सूर्य की किरणें पड़ें और रात को चन्द्रमा की किरणें पड़ें, ऐसा नदी तथा तालाब का पानी पीना पथ्य है।

८–चन्दन, चन्द्रमा की किरणें, फूलों की मालायें और सफेद वस्त्र, ये भी शरद् ऋतु में पथ्य हैं।

९–वैद्यकशास्त्र कहता है कि–ग्रीष्म ऋतु में दिन को सोना, हेमन्त ऋतु में गर्म और पुष्टिकारक खुराक का खाना और शरद् ऋतु में दूध में मिश्री मिला कर पीना चाहिये, इस प्रकार वर्त्ताव करने से प्राणी नीरोग और दीर्घायु होता है।

१०–रक्तपित्त के लिये जो २ पथ्य कहा है वह २ इस ऋतु में भी पथ्य है ॥

इस ऋतु में अपथ्य—ओस, पूर्व की हवा, क्षार, पेट भर भोजन, दही, खिचड़ी, तेल खटाई, सोंठ और मिर्च आदि तीखे पदार्थ, हिंग, खारे पदार्थ, अधिक चरबीवाले पदार्थ, सूर्य तथा अग्नि का ताप, गरमागरम रसोई, दिन में सोना और भारी खुराक इन सब का त्याग करना चाहिये ॥

१–इस ऋतु में पेट भर भोजन से बहुत हानि होती है वैद्यकशास्त्र में कार्त्तिक वदि आठमी से लेकर मृगशिर के आठ दिन बाकी रहने तक दिनों को यमदंष्ट्रा कहा गया है, जो पुरुष इन दिनों में थोड़ा आहार करता है वही यम की दाढ़ से बचता है ॥

२–शरीर की नीरोगता के लिये उक्त बातों का जो त्याग है वह भी तप है क्योंकि इच्छा का जो रोकना करना (रोकना) है उसी का नाम तप है ॥

हेमन्त और शिशिर ऋतु का पथ्यापथ्य ॥

जिस प्रकार ग्रीष्म ऋतु मनुष्यों की ताकत को खींच लेती है उसी प्रकार हेमन्त और शिशिर ऋतु ताकत की वृद्धि कर देती है, क्योकि सूर्य पदार्थों की ताकत को खींचने वाला और चन्द्रमा ताकत को देने वाला है, शरद् ऋतु के लगते ही सूर्य दक्षिणायन हो जाता है तथा हेमन्त में चन्द्रमा की शीतलता के वढ़ जाने से मनुष्यों में ताकत का वढना प्रारभ हो जाता है, सूर्य का उदय दरियाव में होता है इसलिये वाहर ठढ के रहने से भीतर की जठराग्नि तेज होने से इस ऋतु में खुराक अधिक हज़म होने लगती है, गर्मी में जो सुस्ती और शीतकाल में तेजी रहती है उस का भी यही कारण है, इस ऋतु के आहार विहार का सक्षेप से वर्णन इस प्रकार है:—

१ जिस की जठराग्नि तेज हो उस को इस ऋतु में पौष्टिक खुराक खानी चाहिये तथा मन्दाग्निवाले को हलकी और थोडी खुराक खानी चाहिये, यदि तेज अग्निवाला पुरुष पूरी और पुष्टिकारक खुराक को न खावे तो वह अग्नि उस के शरीर के रस और रुधिर आदि को सुखा डालती है, परन्तु मन्दाग्निवालों को पुष्टिकारक खुराक के खाने से हानि पहुँचती है, क्योंकि ऐसा करने से अग्नि और भी मन्द हो जाती है तथा अनेक रोग उत्पन्न हो जाते ह ।

२—इस ऋतु में मीठे खट्टे और खारी पदार्थ खाने चाहियें, क्योंकि मीठे रस से जब कफ वढ़ता है तब ही वह प्रवल जठराग्नि शरीर का ठीक १ पोषण करती है, मीठे रस के साथ रुचि को पैदा करने के लिये खट्टे और खारी रस भी अवश्य खाने चाहियें ।

३—इन तीनों रसों का सेवन अनुक्रम से भी करने का विधान है, क्योंकि ऐसा लिखा है—हेमन्त ऋतु के साठ दिनों में से पहिले बीस दिन तक मीठा रस अधिक खाना चाहिये, बीच के बीस दिनों में खट्टा रस अधिक खाना चाहिये तथा अन्त के बीस दिनों में खारा रस अधिक खाना चाहिये, इसी प्रकार खाते समय मीठे रस का ग्रास पहिले लेना चाहिये, पीछे नींवू, कोकम, दाल, शाक, राइता, कढ़ी और अचार आदि का ग्रास लेना चाहिये, इस के वाद चटनी, पापड और खीचिया आदि पदार्थ (अन्त में) खाने चाहियें, यदि इस क्रम से न खाकर उलट पुलट कर उक्त रस खाये जावें तो हानि होती है, क्योंकि शरद् ऋतु के पित्त का कुछ अश हेमन्त ऋतु के पहिले पक्षतक में शरीर में रहता है इस लिये पहिले खट्टे और खारे रस के खाने से पित्त कुपित होकर हानि होती है, इस लिये इस का अवश्य स्मरण रखना चाहिये ।

४—अच्छे प्रकार पोपण करनेवाली (पुष्टिकारक) खुराक खानी चाहिये ।

५—स्त्री सेवन, तेल की मालिश, कसरत, पुष्टिकारक दवा, पौष्टिक खुराक, पाक, धूप

का सेवन, ऊन आदि का गर्म कपड़ा, अँगीठी (सिगड़ी) से मकान को गर्म रखना आदि बातें इस ऋतु में पथ्य हैं ॥

हेमन्त और शिशिर ऋतु का प्रायः एक सा ही वर्ताव है, ये दोनों ऋतुयें वीर्य को सुधारने के लिये बहुत अच्छी हैं, क्योंकि इन ऋतुओं में जो वीर्य और शरीर को पोषण दिया जाता है वह बाकी के आठ महीने तक ताकत रखता है अर्थात् वीर्य पुष्ट रहता है ।

यद्यपि सबही ऋतुओं में आहार और विहार के नियमों का पालन करने से शरीर का सुधार होता है परन्तु यह सब ही जानते हैं कि वीर्य के सुधार के विना शरीर का सुधार कुछ भी नहीं हो सकता है, इस लिये वीर्य का सुधार अवश्य करना चाहिये और वीर्य के सुधारने के लिये शीत ऋतु, शीतल प्रकृति और शीतल देश विशेष अनुकूल होता है देखो ! ठंढी तासीर, ठंढी मौसम और ठंढे देश के बसने वालों का वीर्य अधिक दृढ होता है ।

यद्यपि यह तीनों प्रकार की अनुकूलता इस देश के निवासियों को पूरे तौर से प्राप्त नहीं है, क्योंकि यह देश सम शीतोष्ण है तथापि प्रकृति और ऋतु की अनुकूलता तो इस देश के भी निवासियों के भी आधीन ही है, क्योंकि अपनी प्रकृति को ठंढी अर्थात् दृढ़ता और सत्वगुण से युक्त रखना यह बात स्वाधीन ही है, इसी प्रकार वीर्य को सुधारने के लिये तथा गर्भाधान करने के लिये शीतकाल को पसन्द करना भी इन के स्वाधीन ही है, इसलिये इस ऋतु में अच्छे वैद्य वा डाक्टर की सलाह से पौष्टिक दवा, पाक अथवा खुराक के खाने से बहुत ही फायदा होता है ।

जायफल, जावित्री, लौंग, बादाम की गिरी और केशर को मिलाकर गर्म किये हुए दूध का पीना भी बहुत फायदा करता है ।

बादाम की कतली वा बादाम की रोटी का खाना वीर्य पुष्टि के लिये बहुत ही फायदेमन्द है ।

इन ऋतुओं में अपथ्य—जुलाब का लेना, एक समय भोजन करना, बासी रसोई का खाना, तीखे और रूखे पदार्थों का अधिक सेवन करना, खुली जगह में सोना, ठंढे पानी से नहाना और दिनमें सोना, ये सब बातें इन ऋतुओं में अपथ्य हैं, इसलिये इन का त्याग करना चाहिये ॥

यह जो ऊपर छओं ऋतुओं का पथ्यापथ्य लिखा गया है वह नीरोग प्रकृतिवालों के लिये समझना चाहिये, किन्तु रोगी का पथ्यापथ्य तो रोग के अनुसार होता है, यह संक्षेप से आगे लिखेंगे ।

पथ्यापथ्य के विषय में यह अवश्य स्मरण रखना चाहिये कि–देश और अपनी प्रकृति को पहचान कर पथ्य का सेवन करना चाहिये तथा अपथ्य का त्याग करना चाहिये, इस विषय में यदि किसी विशेष वात का विवेचन करना हो तो चतुर वैद्य तथा डाक्टरों की सलाह से कर लेना चाहिये, यह विषय वहुत गहन (कठिन) है, इस लिये जो इस विद्या के जानकार हो उन की संगति अवश्य करनी चाहिये कि जिस से शरीर की आरोग्यता के नियमो का ठीक २ ज्ञान होने से सदा आरोग्यता वनी रहे तथा समयानुसार दूसरो का भी कुछ उपकार हो सके, वैसे भी वुद्धिमानो की सगति करने से अनेक लाभ ही होते हैं ॥

यह चतुर्थ अध्याय का ऋतुचर्यावर्णन नामक सातवा प्रकरण समाप्त हुआ ॥

आठवां प्रकरण—दिनचर्या वर्णन ॥

प्रातःकाल का उठना ॥

यह वात तो स्पष्टतया प्रकट ही है कि–स्वाभाविक नियम के अनुसार सोने के लिये रात और कार्य करने के लिये दिन नियत है, परन्तु यह भी स्मरण रहे कि–प्रात.काल जव चार घड़ी रात वाकी रहे तव ही नींद को छोडकर जागृत हो जाना अव्वल दर्जे का काम है, यदि उस समय अधिक निद्रा आती हो अथवा उठने मे कुछ अडचल मालूम होती हो तो दूसरा दर्जा यह है कि दो घडी रात रहने पर उठना चाहिये और तीसरा दर्जा सूर्य चढ़े वाद उठने का है, परन्तु यह दर्जा निकृष्ट और हानिकारक है, इसलिये आयु की रक्षा के लिये मनुष्यों को रात्रि के चौथे पहर में आलस्य को त्याग कर अवश्य उठना चाहिये, क्योंकि जल्दी उठने से मन उत्साह में रहता है, दिन में काम काज अच्छी तरह होता है, वुद्धि निर्मल रहती है और स्मरणशक्ति तेज रहती है, पढनेवालो के लिये भी यही (प्रात.काल का) समय वहुत श्रेष्ठ है, अधिक क्या कहें इस विषय के लाभो के वर्णन करने में वड़े २ ज्ञानी पूर्वाचार्य तत्त्ववेत्ताओं ने अपने २ ग्रन्थों में लेखनी को खूव ही दौड़ाया है, इस लिये चार घडी के तड़के उठने का सव मनुष्यों को अवश्य अभ्यास डालना चाहिये परन्तु यह भी स्मरण रहे कि विना जल्दी सोये मनुष्य प्रात-काल चार वजे कभी नहीं उठ सकता है, यदि कोई जल्दी सोये उक्त समय में उठ भी ज़ावे तो इस से नाना प्रकार की हानिया होती है अर्थात् शरीर दुर्वल होजाता है, शरीर में आलस्य जान पड़ता है, आखों में जलन सी रहती है, शिर में दर्द रहता है तथा भोजन पर भी ठीक रुचि नहीं रहती है, इस लिये रात को नौ वा दश वजे पर अवश्य

सो रहना चाहिये कि जिस से प्रातःकाल में विना दिक्कत के उठ सके, क्योंकि प्राणी मात्र को कम से कम छः घण्टे अवश्य सोना चाहिये, इस से कम सोने में मस्तक का रोग आदि अनेक विकार उत्पन्न होजाते हैं, परन्तु आठ घण्टे से अधिक भी नहीं सोना चाहिये क्योंकि आठ घंटे से अधिक सोने से शरीर में आलस्य वा भारीपन आन पड़ता है और कार्यों में भी हानि होने से दरिद्रता घेर लेती है, इसलिये उचित तो यही है कि रात को नौ वा अधिक से अधिक दश बजे पर अवश्य सो रहना चाहिये तथा प्रातःकाल चार घड़ी के तड़के अवश्य उठना चाहिये, यदि कारणवश चार घड़ी के तड़के का उठना कदाचित् न निभसके तो दो घड़ी के तड़के तो अवश्य उठना ही चाहिये।

प्रातःकाल उठते ही पहिले स्वरोदय[1] का विचार करना चाहिये, यदि चन्द्र स्वर चलता हो तो बांयां पांव और सूर्य स्वर चलता हो तो दाहिना पांव जमीन पर रख कर थोड़ी देरतक विना ओठ हिलाये परमेष्ठी का स्मरण करना चाहिये, परन्तु यदि सुषुम्णा स्वर चलता हो तो पलँग पर ही बैठे रहकर परमेष्ठी का ध्यान करना ठीक है क्योंकि यही समय योगाभ्यास तथा ईश्वराराधन अथवा कठिन से कठिन विषयों के विचारने के लिये नियत है, देखो! जितने सुजन और ज्ञानी लोग आजतक हुए हैं वे सब ही प्रातःकाल उठते थे परन्तु कैसे पश्चात्ताप का विषय है कि इन सब अकथनीय लाभों का कुछ भी विचार न कर भारतवासी जन करवटें ही लेते २ नौ बजा देते हैं इसी का यह फल है कि वे नाना प्रकार के क्लेशों में सदा फँसे रहते हैं॥

प्रातःकाल का वायुसेवन॥

प्रातःकाल के वायु का सेवन करने से मनुष्य हृष्ट पुष्ट बना रहता है, दीर्घायु और चतुर होता है, उस की बुद्धि ऐसी तीक्ष्ण हो जाती है कि कठिन से कठिन आशय कोभी सहज में ही जान लेता है और सदा नीरोग बना रहता है, इसी (प्रातःकाल के) समय बस्ती के बाहर बागों की शोभा के देखने में बड़ा आनंद मिलता है, क्योंकि इसी समय वृक्षों से जो नवीन और स्वच्छ प्राणप्रद वायु निकलता है वह हवा के सेवन के लिये बाहर जाने वालों की श्वास के साथ उन के शरीर के भीतर जाता है जिस के प्रभाव से मन कली की भांति खिल जाता और शरीर प्रफुल्लित हो जाता है, इसलिये हे प्यारे भ्रातृगणो। हे सुजनो! और हे घर की लक्ष्मियो! प्रातःकाल तड़के जागकर स्वच्छ वायु के सेवन का अभ्यास करो कि जिस से तुम को व्याधिजन्य क्लेश न सहने पड़ें और सदा तुम्हारा मन प्रफुल्लित और शरीर नीरोग रहे, देखो। उक्त समय में बुद्धि भी निर्मल

---

[1] स्वरोदय के विषय में इसी ग्रन्थ के पांचवें अध्याय में वर्णन किया जावेगा वहां इस का सम्पूर्ण विषय देख लेना चाहिये॥

रहती है इसलिये उसके द्वारा उभय लोकसम्बधी कार्यों का विचार कर तुम अपने समय को लौकिक तथा पारलौकिक कार्यों में व्यय कर सफल कर सकते हो।

देखो! प्रातःकाल चिड़िया भी कैसी चुहचुहार्ती, कोयलें भी कू कू करतीं मैना तोता आदि सब पक्षी भी मानु उस परमेष्ठी परमेश्वर के स्मरण में चित्त लगाते और मनुष्यों को जगाते है, फिर कैसे शोक की बातहै कि–हम मनुष्य लोग सब से उत्तम होकर भी पक्षी पखेरू आदि से भी निषिद्ध कार्य करें और उन के जगाने पर भी चैतन्य न हों॥

प्रातःकाल का जलपान॥

ऊपर कहे हुए लाभों के अतिरिक्त प्रातःकाल के उठने से एक यह भी बड़ा लाभ हो सकता है कि–प्रातःकाल उठकर सूर्य के उदय से प्रथम थोडा सा शीतल जल पीने से ववासीर और ग्रहणी आदि रोग नष्ट हो जाते है।

वैद्यक शास्त्रों में इस (प्रातःकाल के) समय में नाक से जल पीने के लिये आज्ञा दी है क्योंकि नाक से जल पीने से बुद्धि तथा दृष्टि की वृद्धि होती है तथा पीनस आदि रोग जाते रहते है॥

शौच अर्थात् मलमूत्र का त्याग॥

प्रातःकाल जागकर आधे मील की दूरी पर मैदान में मल का त्याग करने के लिये जाना चाहिये, देखो! किसी अनुभवी ने कहा है कि–"ओढे सोवै ताजा खावै, पाव कोस मैदान में जावे। तिस घर वैद्य कभी नहिं आवै" इस लिये मैदान में जाकर निर्जीव साफ ज़मीनपर मस्तक को ढांक कर मल का त्याग करना चाहिये, दूसरे के किये हुए मलमूत्र पर मल मूत्र का त्याग नहीं करना चाहिये, क्योंकि ऐसा करने से दाद खाज और सुजाख आदि रोगों के हो जाने का सम्भव है, मलमूत्र का त्याग करते समय बोलना नहीं

१–इस की यह विधि है कि–ऊपर लिखे अनुसार जागृत होकर तथा परमेष्ठी का ध्यान कर आठ अञ्जलि, अर्थात् आध सेर पानी नाक से नित्य पीना चाहिये, यदि नाक से न पिया जासके तो मुंह से ही पीना चाहिये, फिर आध घण्टे तक बाये कर वट से लेट जाना चाहिये परन्तु निद्रा नहीं लेनी चाहिये, फिर मल मूत्र के त्याग के लिये जाना चाहिये, इस (जलपान) का गुण वैद्यक शास्त्रों मे बहुत ही अच्छा लिखा है अर्थात् इस के सेवन से आयु बढता है तथा हरस, शोथ, दस्त, जीर्ण ज्वर, पेट का रोग, कोढ, मेद, मूत्र का रोग, रक्तविकार, पित्तविकार तथा कान आख गले और शिर का रोग मिटता है, पानी यद्यपि सामान्य पदार्थ है अर्थात् सब ही की प्रकृति के लिये अनुकूल है परन्तु जो लोग समय बिताकर अर्थात् देरी कर उठते हैं उन लोगों के लिये तथा रात्रि मे खानपान के त्यागी पुरुषों के लिये एव कफ और वायु के रोगों में सन्निपात मे तथा ज्वर में प्रात काल मे जलपान नहीं करना चाहिये, रात्रि मे जो खान पान के त्यागी पुरुष हैं उन को यह भी स्मरण रखना चाहिये कि जो लाभ रात्रि में खानपान के त्याग मे है उस लाभका हजार वां भाग भी प्रात काल के जलपान मे नहीं है, इसलिये जो रात के खान पान के त्यागी नहीं हैं उन को उषापान (प्रात काल में जलपीना) कर्त्तव्य है॥

चाहिये, क्योंकि इस समय बोलने से दुर्गन्धि मुख में प्रविष्ट होकर रोगों का कारण होती है तथा दूसरी तरफ ध्यान होने से मलादि की शुद्धि भी ठीक रीतिसे नहीं होती है, मलमूत्र का त्याग बहुत बल करके नहीं करना चाहिये ।

मल का त्याग करने के पश्चात् गुदा और लिंग आदि अंगों को जल से खूब धोकर साफ करना चाहिये ।

जो मनुष्य सूर्योदय के पीछे (दिन चढ़ने पर) पाखाने जाते हैं उन की बुद्धि मलीन और मस्तक न्यून बलवाला हो जाता है तथा शरीर में भी नाना प्रकार के रोग हो जाते हैं ।

बहुत से मूर्ख मनुष्य आलस्य आदि में फँस कर मल मूत्र आदि के वेग को रोक लेते हैं, यह बड़ी हानिकारक बात है, क्योंकि–इस से मूत्रकृच्छ्र शिरोरोग तथा पेडू पीठ और पेट आदि में दर्द होने लगता है, केवल इतना ही नहीं किन्तु मल के रोकने से अनेक उदावर्त आदि रोगों की उत्पत्ति होती है, इस लिये मल और मूत्र के वेग को भूल कर भी नहीं रोकना चाहिये, इसी प्रकार छींक डकार हिचकी और अपान वायु आदि के वेग को भी नहीं रोकना चाहिये, क्योंकि इन के वेग को रोकने से भी अनेक रोगों की उत्पत्ति होती है ।

मलमूत्र के त्याग करने के पीछे मिट्टी और जल से हाथ और पाँवों को भी खूब स्वच्छता के साथ धोकर शुद्ध कर लेना चाहिये ॥

मुखशुद्धि ॥

यदि प्रत्याख्यान हो तो उस की समाप्ति होने पर मुख की शुद्धि के लिये नीम, खैर, बबूल, आक, चिरचिरा, आमला, सिरोहा, करञ्ज, बड़, महुआ और मौलसिरी आदि वृक्ष वाले वृक्षों की दाँतोन करे, दाँतोन एक बालिश्त लम्बी और अंगुली के बराबर मोटी होनी चाहिये, उस की छाल में कीड़ा या कोई विकार नहीं होना चाहिये तथा वह गाँठ दार भी नहीं होनी चाहिये, दाँतोन करने के पीछे सेंधानमक, सोंठ और भुना हुआ जीरा, इन तीनोंको पीस तथा कपड़ छान कर रक्खे हुए मञ्जन से दाँतों को माँजना चाहिये, क्योंकि जो मनुष्य दाँतोन नहीं करते हैं उन के मुँह में दुर्गन्ध आने लगती है और जो प्रतिदिन

१–सूर्य का उदय हो चलने से पेट में गर्मी समाकर मल शुष्क हो जाता है उसके शुष्क होने से मगज में खुश्की और गर्मी पहुँचती है, इसलिये मस्तक न्यून बलवाला होजाता है ॥

२–भूख प्यास छींक डकार, मल का वेग मूत्र का वेग अपानवायुका वेग जम्भा (जमुहाई) आँसू, वमन वीर्य (कामोद्भव) श्वास और निद्रा ये १३ वेग शरीर में स्वाभाविक उत्पन्न होते हैं, इसलिये इन के वेग को रोकना नहीं चाहिये क्योंकि इन वेगों के रोकने से उदावर्त आदि अनेक रोग होते हैं, (देखो वैद्यक ग्रन्थों में उदावर्त रोग का प्रकरण) ॥

मञ्जन नहीं लगाते है उन के दाँतों में नाना प्रकार के रोग हो जाते है अर्थात् कभी २ वादी के कारण मसूड़े फूल जाते है, कभी २ रुधिर निकलने लगता है और कभी २ दाँतों में दर्द भी होता है, दाँतो के मलीन होने से मुख की छवि बिगड जाती है तथा मुख में दुर्गन्ध आने से सभ्य मण्डली में (बैठने से) निन्दा होती है, इस लिये दाँतोन तथा मञ्जन का सर्वदा सेवन करना चाहिये, तत्पश्चात् स्वच्छ जल से मुख को अच्छे प्रकार से साफ करना चाहिये परन्तु नेत्रों को गर्म जल से कभी नही धोना चाहिये क्योंकि गर्म जल नेत्रों को हानि पहुँचाता है ॥

दाँतोन करने का निषेध—अजीर्ण, वमन, दमा, ज्वर, लकवा, अधिक प्यास, मुखपाक, हृदयरोग, शीर्ष रोग, कर्णरोग, कंठरोग, ओष्ठरोग, जिह्वारोग, हिचकी और खासी की बीमारीवाले को तथा नशे में दाँतोन नहीं करना चाहिये ॥

दाँतों के लिये हानिकारक कार्य—गर्म पानी से कुल्ले करना, अधिक गर्म रोटी को खाना, अधिक बर्फ का खाना या जल के साथ पीना और गर्म चीज़ खाकर शीघ्र ही ठंढी चीज का खाना या पीना, ये सब कार्य दाँतो को शीघ्र ही बिगाड देते है तथा कमज़ोर कर देते है इस लिये इन से बचना चाहिये ॥

व्यायाम अर्थात् कसरत ॥

व्यायाम भी आरोग्यता के रखने में एक आवश्यक कार्य है, परन्तु शोक वा पश्चात्ताप का विषय है कि भारत से इस की प्रथा बहुत कुछ तो उठ गई तथा उठती चली जाती है, उस में भी हमारे मारवाड़ देश में अर्थात् मारवाड के निवासी जनसमूह में तो इस की प्रथा बिलकुल ही जाती रही ।

आजकल देखा जाता है कि भद्र पुरुष तो इस का नामतक नही लेते है किन्तु वे ऐसे (व्यायाम करनेवाले) जनों को असभ्य (नाशाइस्तह) बतलाते और उन्हें तुच्छ दृष्टि से देखते हैं, केवल यही कारण है कि–जिस से प्रतिदिन इस का प्रचार कम ही होता चला जाता है, देखो ! एक समय इस आर्यावर्त्त देश में ऐसा था कि जिस में महावीर के पिता सिद्धार्थ राजा जैसे पुरुष भी इस अमृतरूप व्यायाम का सेवन करते थे[1] अर्थात् उस समय में यह आरोग्यता के सर्व उपायो में प्रधान और शिरोमणि उपाय गिना जाता था और उस समय के लोग "एक तन दुरुस्ती हजार नियामत" इस वाक्य के तत्त्व को अच्छे प्रकार से समझते थे ।

विचार कर देखो तो मालूम होगा कि मनुष्य के शरीर की बनावट घड़ी अथवा दूसरे यन्त्रों के समान है, यदि घड़ी को असावधानी से पड़ी रहने दें, कभी न झाड़ें फूकें और

१–इस विषय का पूरा वर्णन कल्पसूत्र की लक्ष्मीवल्लभी टीका में किया गया है, वहा देख लेना चाहिये॥

न उस के पुर्जों को साफ करावें तो थोड़े ही दिनों में वह बहुमूल्य घड़ी निकम्मी हो जावेगी, उस के सब पुर्जे बिगड़ जावेंगे और जिस प्रयोजन के लिये वह बनाई गई है वह कदापि सिद्ध न होगा, बस ठीक यही दशा मनुष्य के शरीर की भी है, देखो! यदि शरीर को स्वच्छ और सुथरा बनाये रहें, उस को उमंग और साहस में नियुक्त रक्खें तथा स्वास्थ्य रक्षा पर ध्यान देते रहें तो सम्पूर्ण शरीर का बल यथावत् बना रहेगा और शरीरस्थ प्रत्येक वस्तु जिस कार्य के लिये बनी हुई है उस से वह कार्य ठीक रीति से होता रहेगा परन्तु यदि ऊपर लिखी बातों का सेवन न किया जावे तो शरीरस्थ सब वस्तुयें निकम्मी हो जावेंगी और स्वाभाविक नियमानुकूल रचना के प्रतिकूल फल दीखने लगेगा अर्थात् जिन कार्यों के लिये यह मनुष्य का शरीर बना है वे कार्य उस से कदापि सिद्ध नहीं होंगे।

घड़ी के पुर्जों में तेल के पहुँचने के समान शरीर के पुर्जों में (अवयवों में) रक्त (खून) पहुँचने की आवश्यकता है, अर्थात् मनुष्य का जीवन रक्त के चलने फिरने पर निर्भर है, जिस प्रकार कूर्चिका (कुची) आदि के द्वारा घड़ी के पुर्जों में तेल पहुँचाया जाता है उसी प्रकार व्यायाम के द्वारा शरीर के सब अवयवों में रक्त पहुँचाया जाता है अर्थात् व्यायाम ही एक ऐसी वस्तु है कि जो रक्त की चाल को तेज बना कर सब अवयवों में यथावत् रक्त को पहुँचा देती है।

जिस प्रकार पानी किसी ऐसे वृक्ष को भी जो शीघ्र सूख जानेवाला है फिर हरा भरा कर देता है उसी प्रकार शारीरिक व्यायाम भी शरीर को हरा भरा रखता है अर्थात् शरीर के किसी भाग को निकम्मा नहीं होने देता है, इसलिये सिद्ध है कि—शारीरिक बल और उस की दृढ़ता के रहने के लिये व्यायाम की अत्यन्त आवश्यकता है क्योंकि रुधिर की चाल को ठीक रखनेवाला केवल व्यायाम है और मनुष्य के शरीर में रुधिर की चाल उस नहर के पानी के समान है जो कि किसी बाग में हर पटरी में होकर निकलता हुआ सम्पूर्ण वृक्षों की जड़ों में पहुँच कर तमाम बाग को सींच कर प्रफुल्लित करता है, प्रिय पाठक गण! देखो! उस बाग में जितने हरे भरे वृक्ष और रंग बिरंगे पुष्प अपनी छवि को दिखलाते हैं और नाना भाँति के फल अपनी २ सुन्दरता से मन को मोहित करते हैं यह सब उसी पानी की महिमा है, यदि उस की नालियां न खोली जातीं तो सम्पूर्ण बाग के वृक्ष और बल बूटे मुरझा जाते तथा फूल फल कुम्हलाकर शुष्क हो जाते कि जिस से उस आनंदबाग में उदासी बरसने लगती और मनुष्यों के नेत्रों को जो उन के विलोकन करने अथवा देखने से तरावट व सुख मिलता है उस के स्वप्न में भी दर्शन नहीं होते, ठीक यही दशा शरीररूपी बाग की रुधिररूपी पानी के साथ में समझनी चाहिये, सुजनो! सोचो तो सही कि—इसी व्यायाम के बल से प्राचीन भारतवासी पुरुष नीरोग,

सुडौल, बलवान् और योद्धा हो गये हैं कि जिन की कीर्त्ति आजतक गाई जाती है, क्या किसी ने श्रीकृष्ण, राम, हनुमान्, भीमसेन, अर्जुन और वालि आदि योद्धाओं का नाम नहीं सुना है कि–जिन की ललकार से सिंह भी कोसों दूर भागते थे, केवल इसी व्यायाम का प्रताप था कि भारतवासियों ने समस्त भूमण्डल को अपने आधीन कर लिया था परन्तु वर्त्तमान समय में इस अभागे भारत में उस वीरशक्ति का केवल नाम ही रह गया है।

बहुत से लोग यह कहते है कि–हमें क्या योद्धा वन कर किसी देश को जीतना है वा पहलवान बन कर किसी से मल्लयुद्ध (कुश्ती) करना है जो हम व्यायाम के परिश्रम को उठावें इत्यादि, परन्तु यह उन की बडी भारी भूल है क्योंकि देखो! व्यायाम केवल इसी लिये नहीं किया जाता है कि–मनुष्य योद्धा वा पहलवान बने, किन्तु अभी कह चुके हैं कि–इस से रुधिर की गति के ठीक रहने से आरोग्यता बनी रहती है और आरोग्यता की अभिलाषा मनुष्यमात्र को क्या किन्तु प्राणिमात्र को होती है, यदि इस में आरोग्यता का गुण न होता तो प्राचीन जन इस का इतना आदर कभी न करते जितना कि उन्होने किया है, सत्य पूछो तो व्यायाम ही मनुष्य का जीवन रूप है अर्थात् व्यायाम के विना मनुष्य का जीवन कदापि सुस्थिर दशा में नही रह सकता है, क्योंकि देखो! इस के अभ्यास से ही अन्न शीघ्र पच जाता है, भूख अच्छे प्रकार से लगती है, मनुष्य शर्दी गर्मी का सहन कर सकता है, वीर्य सम्पूर्ण शरीर में रम जाता है जिससे शरीर शोभायमान और बलयुक्त हो जाता है, इन बातों के सिवाय इस के अभ्यास से ये भी लाभ होते है कि–शरीर में जो मेद की वृद्धि और स्थूलता हो जाती है वह सब जाती रहती है, दुर्वल मनुष्य किसी कदर मोटा हो जाता है, कसरती मनुष्य के शरीर में प्रति-समय उत्साह बना रहता है और वह निर्भय हो जाता है अर्थात् उस को किसी स्थान में भी जाने में भय नहीं लगता है, देखो! व्यायामी पुरुष पहाड, खोह, दुर्ग, जगल और सग्रामादि भयकर स्थानों में बेखटके चले जाते है और अपने मन के मनोरथों को सिद्ध कर दिखलाते और गृहकार्यों को सुगमता से कर लेते है और चोर आदि को घर में नहीं आने देते है, बल्कि सत्य तो यह है कि–चोर उस मार्ग होकर नही निकलते है जहा व्यायामी पुरुष रहता है, इस के अभ्यासी पुरुष को शीघ्र बुढ़ापा तथा रोगादि नहीं होते हैं, इस के करने से कुरूप मनुष्य भी अच्छे और सुडौल जान पड़ते है, परन्तु जो मनुष्य दिन में सोते, व्यायाम नहीं करते तथा दिनभर आलस्य में पड़े रहते है उन को अवश्य प्रमेह आदि रोग हो जाते है, इस लिये इन सब बातों को विचार कर सब मनुष्यों को

१–इन महात्मा का वर्णन देखना हो तो कलिकाल सर्वज्ञ जैनाचार्य श्री हेमचन्द्रसूरिकृत सस्कृत रामायण को देखो॥

अवश्य स्वयं व्यायाम करना चाहिये तथा अपने सन्तानों को भी प्रतिदिन व्यायाम का अभ्यास कराना चाहिये जिस से इस भारत में पूर्ववत् वीरशक्ति पुनः आ जावे ।

व्यायाम करने में सदा देश काल और शरीर का बल भी देखना उचित है क्योंकि इस से विपरीत दशामें रोग हो जाते हैं ।

कसरत करने के पीछे तुरंत पानी नहीं पीना चाहिये, किन्तु एक दो घण्टे के पीछे कुछ बलदायक भोजन का करना आवश्यक है जैसे—मिश्रीसंयुक्त गायका दूध वा बादाम की कतली आदि, अथवा अन्य किसी प्रकार के पुष्टिकारक लड्डू आदि जो कि देश काल और प्रकृति के अनुकूल हों खाने चाहियें ॥

व्यायाम का निषेध—मिश्रित वातपित्त रोगी, बालक, वृद्ध और अजीर्णी मनुष्यों को कसरत नहीं करनी चाहिये, शीतकाल और वसन्तऋतु में अच्छे प्रकार से तथा अन्य ऋतुओं में थोड़ा व्यायाम करना योग्य है, अति व्यायाम भी नहीं करना चाहिये क्योंकि अत्यन्त व्यायाम के करने से तृषा, क्षय, तमक, श्वास, रक्तपित्त, श्रम, ग्लानि, कास, ज्वर और छर्दि आदि रोग हो जाते हैं ॥

तैलमर्दन ॥

तेल का मर्दन करना भी एक प्रकार की कसरत है तथा लाभदायक भी है इसलिये प्रतिदिन प्रातःकाल में स्नान करने से पहिले तेल की मालिश करानी चाहिये, यदि कसरत करने वाला पुरुष कसरत करने के एक घंटे पीछे शरीर में तेल का मर्दन कर वाया करे तो इस के गुणों का पार नहीं है, तेल के मर्दन के समय में इस बात का भी स्मरण रहना चाहिये कि—तेल की मालिश सब से अधिक पैरों में करानी चाहिये, क्योंकि पैरों में तेल की अच्छी तरह से मालिश कराने से शरीर में अधिक बल आता है, तेल के मर्दन के गुण इस प्रकार हैं —

१—तेल की मालिश नीरोगता और दीर्घायु की करने वाली तथा ताकत को बढ़ाने वाली है ।

२—इस से चमड़ी सुहावनी हो जाती है तथा चमड़ी का रूखापन और खतरा जाता रहता है तथा अन्य भी चमड़ी के नाना प्रकार के रोग जाते रहते हैं और चमड़ी में नया रोग पैदा नहीं होने पाता है ।

३—शरीर के सांधे नरम और मजबूत हो जाते हैं ।

४—रस और खून के बंद हुए मार्ग खुल जाते हैं ।

५—जमा हुआ खून गतिमान् होकर शरीर में फिरने लगता है ।

६—खून में मिली हुई वायु के दूर हो जाने से वायु से आनेवाले रोग रुक जाते हैं ।

१—थोड़े दिनों तक निरन्तर तेल की मालिश करने से उस का फायदा आप ही मालूम होने लगता है ॥

७–जीर्णज्वर तथा ताज़े खून से तपाहुआ शरीर ठढा पड़ जाता है।

८–हवा में उड़ते हुए जहरीले तथा चेपी (उड़कर लगनेवाले) रोगोंके जन्तु तथा उन के परमाणु शरीर में असर नहीं कर सकते है।

९–नित्य कसरत और तेल का मर्दन करनेवाले पुरुष की ताकत और कान्ति वढ़ती है अर्थात् पुरुषार्थ का प्राप्त होता है।

१०–ऋतु तथा अपनी प्रकृति के अनुसार तेल में मसाले डालकर तैयार करके उस तेल की मालिश कराई जावे तो वहुत ही फायदा होता है, तेल के वनाने की मुख्य चार रीतिया हैं, उन में से प्रथम रीति यह है कि–पातालयंत्र से लौंग मिलावा और जमालगोटे का रसनिकाल कर तेल में डाल कर वह तेल पकाया जावे, दूसरी रीति यह है कि–तेल में डालने की यथोचित दवाइयों को उकाल कर उन का रस निकालकर तेल में डाल के वह (तेल) पकाया जावे, तीसरी रीति यह है कि–घाणी में डालकर फूलों की पुट देकर चमेली और मोगरे आदि का तेल वनाया जावे तथा चौथी रीति यह है कि–सूखे मसालो को कूट कर जल में आर्द्र (गीला) कर तेल में डाल कर मिट्टी के वर्तन का मुख वंद कर दिन में धूप में रक्खे तथा रात को अन्दर रक्खे तथा एक महीने के वाद छान कर काम में लावे।

वैद्यक शास्त्रों में दवाइयों के साथ में सव रोगों को मिटाने के लिये न्यारे २ तैल और घी के बनाने की विधिया लिखी है, वे सव विधिया आवश्यकता के अनुसार उन्हीं ग्रन्थों में देख लेनी चाहियें, ग्रन्थ के विस्तार के भय से यहा उन का वर्णन नही करते है।

तेलमर्दन की प्रथा मलवारदेश तथा वंगदेश (पूर्व) में अभीतक जारी है परन्तु अन्य देशों में इस की प्रथा बहुत ही कम दीखती है यह वडे शोक की वात है, इस लिये सुजन पुरुषों को इस विषय में अवश्य ध्यान देना चाहिये।

दवा का जो तेल वनाया जाता है उस का असर केवल चार महीने तक रहता है पीछे वह हीनसत्त्व होजाताहै अर्थात् शास्त्र में कहा हुआ उस का वह गुण नहीं रहता है।

सामान्यतया तिली का सादा तेल सब के लिये फायदेमन्द होता है तथा शीतकाल में सरसों का तेल फायदेमन्द है।

शरीर में मर्दन कराने के सिवाय तेल को शिर में डाल कर तालुए में रमाना तथा कान में और नाक में भी डालना जरूरी है, यदि सव शरीर की मालिश प्रतिदिन न वन

१–परन्तु मिलावे आदि वस्तुओं का तेल निकालते समय पूरी होशियारी रखनी चाहिये॥

२–सुलसा श्राविका के चरित्र मे लक्षपाक तैल का वर्णन आया है तथा कल्पसूत्र की टीका में राजा सिद्धार्थ की मालिश के विषय मे शतपाक सहस्रपाक और लक्षपाक तैलों का वर्णन आया है तथा उन का गुण भी वर्णन किया गया है॥

सके तो पैरों की पींडियों और हाथ पैरों के तलवों में तो अवश्य मसलाना चाहिये तथा शिर और कान में डालना तथा मसलना चाहिये, यदि प्रतिदिन तेल का मर्दन न बन सके तो अठवाड़े में तो एकवार अवश्य मर्दन करवाना चाहिये और यदि यह भी न बन सके तो शीतकाल में तो अवश्य इस का मर्दन करवाना ही चाहिये।

तेल का मर्दन कराने के बाद चने के आटे से अथवा आंवले के चूर्ण से चिकनाहट को दूर कर देना चाहिये ॥

सुगन्धित तैलों के गुण ॥

चमेली का तेल—इस की तासीर ठंढी और तर है।

हिने का तेल—यह गर्म होता है, इस लिये जिन की बादीकी प्रकृति होवे इस को लगाया करें, चौमासेमें भी इस का लगाना आनन्ददायक है।

अरगजे का तेल—यह गर्म होता है तथा उमगन्ध होता है अर्थात् इस की खुशबू तीन दिनतक केशों में बनी रहती है।

गुलाब का तेल—यह ठंढा होता है तथा जितनी सुगन्धि इस में होती है उतनी दूसरे में नहीं होती है, इस की खुशबू ठंढी और तर होती है।

केवड़े का तेल—यह बहुत उत्तम हृदयप्रिय और ठंढा होता है।

मोगरे का तेल—यह ठंढा और तर है।

नींबू का तेल—यह ठंढा होता है तथा पित्तकी प्रकृतिवालों के लिये फायदे मन्द है ॥

स्नान ॥

तैलादि के मर्दन के पीछे स्नान करना चाहिये, स्नान करने से गर्मी का रोग, हृदय का ताप, रुधिर का कोप और शरीर की दुर्गन्ध दूर होकर कान्ति तेज बल और प्रकाश बढ़ता है, क्षुधा अच्छे प्रकार से लगती है, बुद्धि चैतन्य हो जाती है, आयु की वृद्धि होती है, सम्पूर्ण शरीर को आराम मालूम पड़ता है, निर्मलता तथा मार्ग का खेद दूर होता है और

१–इन सब तैलों को उत्तम बनाने की रीति को वे ही जानते हैं जो प्रतिसमय इन को बनाया करते हैं, क्योंकि तिलों में फूलों को बसा कर बड़े परिश्रम से फुलेल बनाया जाता है, दो रुपये सेर के भाव का सुगन्धित तेल साधारण होता है, तीन चार पांच सात और दश रुपये सेर के भाव का भी लेना चाहो तो मिल सकता है, परन्तु उस की ठीक पहिचान का करना प्रत्येक पुरुष का काम नहीं है अर्थात् बहुत कठिन है, यदि सेरभर चमेली के तेल में एक तोले भर केवड़े का अत्तर डाल दिया जावे तो वह तेल बहुत खुशबूदार हो जायगा तथा उस से सारा मकान महक उठेगा, इसी प्रकार सेरभर चमेली के तेल में एक तोले भर चमेली का अत्तर हिने के तेल में हिने का अत्तर अरगजे के तेल में अरगजे का अत्तर गुलाब के तेल में गुलाब का अत्तर और मोगरे के तेल में मोगरे का अत्तर डाल दिया जावे तो ये तेल अत्यन्त ही खुशबूदार हो जावेंगे ॥

आलस्य पास तक नहीं आने पाता है, देखो! इस बात को तो सब ही लोग जानते हैं कि–शरीर में सहस्रों छिद्र हैं जिन में रोम जमे हुए हैं और वे निष्प्रयोजन नहीं हैं किन्तु सार्थक हैं अर्थात् इन्हीं छिद्रों में से शरीर के भीतर का पानी (पसीना) तथा दुर्गन्धित वायु निकलता है और बाहर से उत्तम वायु शरीर के भीतर जाता है, इस लिये जब मनुष्य स्नान करता रहता है तब वे सब छिद्र खुले और साफ रहते हैं परन्तु स्नान न करने से मैल आदि के द्वारा जब ये सब छिद्र बंद हो जाते हैं तब ऊपर कही हुई क्रिया भी नहीं होती है, इस क्रिया के बद हो जाने से दाद, खाज, फोड़ा और फुंसी आदि रोग होकर अनेक प्रकार का क्लेश देते हैं, इस लिये शरीर के स्वच्छ रहने के लिये प्रतिदिन स्वयं स्नान करना योग्य है तथा अपने बालकों को भी नित्य स्नान कराना उचित है।

स्नान करने में निम्नलिखित नियमों का ध्यान रखना चाहियेः—

१–शिर पर बहुत गर्म पानी कभी नहीं डालना चाहिये, क्योंकि ऐसा करने से नेत्रोंको हानि पहुँचती है।

२–बीमार आदमी को तथा ज्वर के जाने के बाद जबतक शरीर में ताकत न आवे तबतक स्नान नहीं करना चाहिये, उस में भी ठढे जल से तो भूल कर भी स्नान नहीं करना चाहिये।

३–बीमार और निर्बलपुरुष को भूखे पेट नहीं नहाना चाहिये अर्थात् चाह और दूध आदि का नास्ता कर एक घंटे के पीछे नहाना चाहिये।

४–शिर पर ठढा जल अथवा कुए के जल के समान गुनगुना जल, शिर के नीचे के धड़ पर सामान्य गर्म जल और कमर के नीचे के भाग पर सुहाता हुआ तेज़ गर्म जल डालना चाहिये।

५–पित्त की प्रकृतिवाले जवान आदमी को ठंढे पानी से नहाना हानि नहीं करता है किन्तु लाभ करता है।

६–सामान्यतया थोडे गर्म जल से स्नान करना प्रायः सब ही के अनुकूल आता है।

७–यदि गर्म पानी से स्नान करना हो तो जहा बाहर की हवा न लगे ऐसे बंद मकानमें कन्धों से स्नान करना उत्तम है, परन्तु इस बात का ठीक २ प्रबन्ध करना सामान्य जनों के लिये प्रायः असम्भवसा है, इस लिये साधारण पुरुषों को यही उचित है कि–सदा शीतल जल से ही स्नान करने का अभ्यास डालें।

८–जहातक हो सके स्नान के लिये ताजा जल लेना चाहिये क्योंकि ताज़े जल से स्नान करने से बहुत लाभ होता है परन्तु वह ताजा जल भी स्वच्छ होना चाहिये।

९–स्नान के विषय में यह अवश्य ध्यान में रखना चाहिये कि तरुण तथा नीरोग पुरुषों को शीतल जल से तथा बुड्ढे दुर्बल और रोगी जनों को गुनगुने जल से स्नान करना चाहिये।

१०–शरीर को पीठी उबटन वा साबुन लगा कर रगड़ २ के खूब धोना चाहिये पीछे स्नान करना चाहिये ।

११–स्नान करने के पश्चात् मोटे निर्मल कपड़े से शरीर को खूब पोंछना चाहिये कि जिस से सम्पूर्ण शरीर के किसी भाग में तरी न रहे ।

१२–गर्भिणी स्त्री को तेल लगाकर स्नान नहीं करना चाहिये ।

१३–नेत्ररोग, मुखरोग, कर्णरोग, अतीसार, पीनस तथा ज्वर आदि रोगवालों को स्नान नहीं करना चाहिये ।

१४–स्नान करने से प्रथम अथवा प्रातःकाल में नेत्रों में ठंढे पानी के छींटे देकर धोना बहुत लाभदायक है ।

१५–स्नान करने के बाद घंटे दो घण्टेतक द्रव्यभाव से ईश्वर की भक्ति को ध्यान लगाकर करना चाहिये, यदि अधिक न बन सके तो एक सामायिक को तो शास्त्रोक्त नियमानुसार गृहस्थों को अवश्य करना ही चाहिये, क्योंकि जो पुरुष इतना भी नहीं करता है वह गृहस्थाश्रम की पङ्क्तिमें नहीं गिना जा सकता है अर्थात् वह गृहस्थ नहीं है किन्तु उसे इस (गृहस्थ) आश्रम से भी भ्रष्ट और पतित समझना चाहिये ॥

पैर धोना ॥

पैरों के धोने से थकावट जाती रहती है, पैरों का मैल निकल जाने से स्वच्छता आ जाती है, नेत्रों को तरावट तथा मन को आनंद प्राप्त होता है, इस कारण जब कहीं से चलकर आया हो वा जब आवश्यकता हो तब पैरों को धोकर पोंछ डालना चाहिये, यदि सोते समय पैर धोकर शयन करे तो नींद अच्छे प्रकार से आजाती है ॥

भोजन ॥

प्यारे मित्रो ! यह सब ही जानते हैं कि–अन्न के ही भोजन से प्राणी बढ़ते और जीवित रहते हैं इस के बिना न तो प्राणी जीवित ही रह सकते हैं और न कुछ कर ही सकते हैं, इसी लिये चतुर पुरुषों ने कहा है कि–प्राण अन्नमय हैं यद्यपि भोजन का रिवाज भिन्न २ देशों के भिन्न २ पुरुषों का भिन्न २ है इसलिये यहां पर उस के लिखने की कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती है तथापि यहां पर संक्षेप से शास्त्रीय नियम के अनुसार सामान्यतया सर्व हितकारी जो भोजन है उस का वर्णन किया जाता है:—

१–आजकल बहुत से शौकीन लोग चर्बी से बने हुए खुशबूदार साबुन को लगा कर स्नान करते हैं परन्तु धर्म से भ्रष्ट होने की तरफ बिलकुल ख्याल नहीं करते हैं, यदि साबुन लगाकर नहाना हो तो उत्तम देशी साबुन लगाकर नहाना चाहिये क्योंकि देशी साबुन में चर्बी नहीं होती है ॥

२–इस जल को अंग्रेजी में आइवाश कहते हैं, क्योंकि इस से अंग धोया जाता है अंग्रेजी भाषा: पढ़ो का अभ्यास होता है ॥

जो भोजन स्वच्छ और शास्त्रीय नियम से बना हुआ हो, वल बुद्धि आरोग्यता और आयु का वढानेवाला तथा सात्त्विकी (सतो गुण से युक्त) हो, वही भोजन करना चाहिये, जो लोग ऐसा करते है वे इस जन्म और पर जन्म में धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप मनुष्य जन्म के चारों फलो को प्राप्त कर लेते है और वास्तव में जो पदार्थ उक्त-गुणो से युक्त है उन्हीं पदार्थों को भक्ष्य भी कहा गया है, परन्तु जिस भोजन से मन बुद्धि शरीर और धातुओं में विषमता हो उस को अभक्ष्य कहते है, इसी कारण अभक्ष्य भोजन की आज्ञा शास्त्रकारो ने नहीं दी है।

भोजन मुख्यतया तीन प्रकार का होता है जिस का वर्णन इस प्रकार है:—

१–जो भोजन अवस्था, चित्त की स्थिरता, वीर्य, उत्साह, वल, आरोग्यता और उप-शमात्मक (शान्तिस्वरूप) सुख का वढाने वाला, रसयुक्त, कोमल और तर हो, जिस का रस चिरकालतक ठहरनेवाला हो तथा जिस के देखने से मन प्रसन्न हो, उस भोजन को सात्त्विक भोजन कहते है अर्थात् इस प्रकार के भोजन के खाने से सात्त्विक भाव उत्पन्न होता है।

२–जो भोजन अति चर्परा, खट्टा, खारी, गर्म, तीक्ष्ण, रूक्ष और दाहकारी है, उस को राजसी भोजन कहते है अर्थात् इस प्रकार के भोजन के खाने से राजसी भाव उत्पन्न होता है।

३–जो भोजन वहुत काल का बना हुआ हो, अतिठढा, रूखा, दुर्गन्धि युक्त, वासा तथा जूठा हो, उस भोजन को तामसी भोजन कहा है अर्थात् इस प्रकार के भोजन के खाने से तमोगुणी भाव उत्पन्न होता है, इस प्रकार के भोजन को शास्त्रों में अभक्ष्य कहा है, इस प्रकार के निषिद्ध भोजन के सेवन से विषूचिका आदि रोग भी हो जाते है ॥

भोजन के नियम ॥

१–भोजन वनाने का स्थान (रसोईघर) हमेशा साफ रहना चाहिये तथा यह स्थान अन्य स्थानों से अलग होना चाहिये अर्थात् भोजन वनाने की जगह, भोजन करने की जगह, आटा दाल आदि सामान रखने की जगह, पानी रखने की जगह, सोने की जगह, बैठने की जगह, धर्मध्यान करने की जगह तथा स्नान करने की जगह, ये सव स्थान अलग २ होने चाहियें तथा इन स्थानों में चादनी भी वाधना चाहिये कि जिस से मकड़ी और गिलहरी आदि जहरीले जानवरों की लार और मल मूत्र आदि के गिरने से पैदा होनेवाले अनेक रोगों से रक्षा रहे।

२–रसोई वनाने के सब वर्तन साफ रहने चाहियें, पीतल और तावे आदि धातु के वासन में खटाई की चीज विलकुल नहीं वनानी चाहिये और न रखनी चाहिये, मिट्टी का वासन सब से उत्तम होता है, क्योंकि इस में खटाई आदि किसी प्रकार की कोई वस्तु कभी नहीं विगड़ती है।

३—भोजन का बनानेवाला (रसोइया) वैद्यक शास्त्र के नियमों का जाननेवाला तथा उसी नियम से भोजन के सब पदार्थों का बनानेवाला होना चाहिये, सामान्यतया रसोई बनाने का कार्य गृहस्थों में स्त्रियों के ही आधीन होता है इसलिये स्त्रियों को भोजन बनाने का ज्ञान अच्छे प्रकार से होना आवश्यक है।

४—भोजन करने का स्थान भोजन बनाने के स्थान से अलग और हवादार होना चाहिये, उस को अच्छे प्रकार से सफेदी से पुतवाते रहना चाहिये तथा उस में नाना प्रकार की सुगन्धित मनोहर और अनोखी वस्तुयें रक्खी रहनी चाहियें जिन के देखने से नेत्रों को आनंद तथा मन को हर्ष प्राप्त होवे।

५—भोजन बनाने के सब पदार्थ (आटा दाल और मसाले आदि) अच्छी तरह चुने बीने (साफ किये हुए) हों तथा ऋतु के अनुकूल हों और उन पदार्थों को ऐसा पकाना चाहिये कि न तो अधकचे रहें और न विशेष जलने पावें, क्योंकि अधकचा तथा जला हुआ भोजन बहुत हानि करता है, उस में भी मन्दाग्निवालों के लिये तो उक्त (अध कचा तथा जलाहुआ) भोजन विष के समान है।

६—भोजन सदा नियत समय पर करना उचित है, क्योंकि ऐसा करने से भोजन ठीक समय पर पचकर भूख को लगाता है, भोजन करने के बाद पांच घंटे तक फिर भोजन नहीं करना चाहिये, एवं अधूरी भूख में तथा अजीर्ण में भी भोजन नहीं करना चाहिये, इस के सिवाय हैजा और सन्निपात में तो दोष के पके विना (जबतक वातादि दोष पक नजावें तबतक) भोजन करना मानो मौत की निशानी है, अच्छी तरह से भूख लगने के बाद भूख को मारना भी नहीं चाहिये, क्योंकि भूख लगने के बाद न खाने से विना ईंधन की अग्नि के समान शरीर की अग्नि बुझ जाती है, इस लिये प्रतिदिन नियमित समय पर ही भोजन करना अतिउत्तम है।

७—भोजन करने के समय मन प्रसन्न रहे ऐसा यत्न करना चाहिये अर्थात् मन में खेद ग्लानि और क्रोध आदि विकार किसी प्रकार नहीं होने चाहियें, चारों ओर से गोल तथा एक गज लम्बी और एक बालिश्त ऊंची एक चौकी को सामने रख कर उस के ऊपर यथायोग्य सम्पूर्ण पदार्थों से सज्जित थाल को रख कर मुनि को देने की भावना भावे, पश्चात् आनंदपूर्वक भोजन करे, भोजन में प्रथम सेंधा नमक लगा कर अदरख के दश बीस टुकड़े खाना बहुत अच्छा है, भोजन भी सीधे आसन से बैठ कर करना चाहिये

१—ऊपर कही हुई दोनों बातों में सावधान रहना चाहिये नहीं तो अवश्य हानि होती है॥

२—जैसे किसी कुण्डमें जली हुई अग्नि को जब दूसरी लकड़ी नहीं मिलती है तब वह अग्नि उस लकड़ी को जला कर बुझ जाती है, इसी प्रकार से आहार के न मिलने से शरीर की अग्नि बुझ जाती है॥

३—घर आदि की उत्तम करनेवाली वस्तु को नहीं देखना चाहिये और न कोई ऐसी बात सुननी वा करनी चाहिये॥

अर्थात् झुक कर नहीं करना चाहिये, क्योंकि झुक कर भोजन करने से पेठ के दबे रहने के कारण पक्वाशय की धमनी निर्बल हो जाती है और उस के निर्बल होने मे भोजन ठीक समय पर नहीं पचता है इस लिये सदा छाती को उठा कर भोजन करना चाहिये।

८–भोजन करते समय न तो अति विलम्ब और न अति शीघ्रता ही करनी चाहिये अर्थात् अच्छी तरह से धीरे २ चवा २ कर खाना चाहिये, क्योंकि अच्छी तरह से धीरे २ चवा २ कर न खाने से भोजन के पचने में देरी लगती है तथा वह हानि भी करता है, भोजन के चवाने के विषय में डाक्टरों का यह सिद्धान्त है कि जितने समय में २५ की गिनती गिनी जा सके उतने समय तक एक ग्रास को चवा कर पीछे निगलना चाहिये।

९–भोजन करने के समय माता, पिता, भाई, पाककर्त्ता, वैद्य, मित्र, पुत्र तथा स्वजनों (सम्बन्धियो) को समीप में रखना उचित है, इन के सिवाय किसी भिन्न पुरुष को भोजन करने के समय समीप में नहीं रहने देना चाहिये, क्योंकि किसी २ मनुष्य की दृष्टि महाखराव होती है, भोजन करने के समय में वार्त्तालाप करना भी अनुचित है, क्योंकि एक इन्द्रिय से एक समय में दो कार्य ठीक रीति से नहीं हो सकते है, किन्तु दोनों अधूरे ही रह जाते हैं, अतः एक समय में एक इन्द्रिय से एक ही काम लेना योग्य है, हा मित्र आदि लोग भोजन समय में उत्तम प्रसन्न करने वाली तथा प्रीतिकारक वातों को सुनाते जावें तो अच्छी वात है, यह भी स्मरण रहे कि–भोजन करने में जो रस अधिक होता है उसी के तुल्य दूसरे रस भी बन जाते हैं, भोजन करते समय रोटी और रोट आदि कड़े पदार्थों को प्रथम घी से खाना चाहिये पीछे दाल और शाक आदि के साथ खाना चाहिये, पित्त तथा वायु की प्रकृतिवाले पुरुष को मीठे पदार्थ भोजन के मध्य

१–वहुत से लोग इस कहावत पर आरूढ हैं कि–"स्त्री का नहाना और पुरुष का खाना" तथा इस का अर्थ ऐसा करते है कि स्त्री जैसे फुर्त्ती से नहा लेती है वैसे ही पुरुष को फुर्त्ती के साथ भोजन कर लेना चाहिये, परन्तु वास्तव में इस कहावत का यह अर्थ नहीं है जैसा कि वे समझ रहे हैं, क्योंकि आजकल की मूर्खा स्त्रिया जो स्नान करती हैं वह वास्तव मे स्नान ही नहीं है, आजकल की स्त्रियों का तो स्नान यह है कि उन्होंने नग्न होकर शरीर पर पानी डाला और तत्काल घाघरा पहना, वस स्नान हो गया, अव अविद्या देवी के उपासकों ने यह समझ लिया कि स्त्री का नहाना और पुरुष का खाना समान समय मे होना चाहिये, परन्तु उन को कुछ तो अक्ल से भी खुदा को पहचानना चाहिये (कुछ तो वुद्धि से भी सोचना चाहिये) देखो! प्रथम लिख आये हैं कि–स्नान केवल शरीर के मैल को साफ करने के लिये किया जाता है तो यह स्नान (कि स्त्री ने शरीर पर पानी डाला और तत्काल घाघरा पहना) क्या वास्तव में स्नान कहा जा सकता है? कभी नहीं, क्योंकि कहिये इस स्नान से क्या लाभ है! इस लिये यद्यपि यह कहावत तो ठीक है परन्तु अविद्या देवी के उपासकों ने इस का अर्थ उलटा कर लिया है, इस का असली मतलव यह है कि–जैसे स्त्री एकान्त में वैठकर धीरे २ नहाती है अर्थात् सम्पूर्ण शरीर का मैल दूर करती है उसी प्रकार से पुरुष भी एकान्त मे वैठ कर स्थिरता के साथ अर्थात् खूव चवा २ कर भोजन करे॥

में खाने चाहियें, पीछे दाल भात आदि नरम पदार्थों को खाकर अन्त में दूध या छाछ आदि पतले पदार्थों को खाना चाहिये, मन्दाग्निवाले के लिये उड़द आदि पदार्थ स्वभाव से ही भारी होते हैं तथा मूंग, मोठ, चना और अरहर, ये सब परिमाण से अधिक खाने आने से भारी होते हैं, मिस्से की पूड़ी वा रोटी भी मन्दाग्निवाले को बहुत हानि पहुँचाती है अर्थात् पेट में मल और वायु को बढ़ाती है तथा इस के सिवाय अतीसार और संग्रहणी के भी होने में कोई आश्चर्य नहीं होता है, दलाहुआ अन्न बनाने के फेर फार से भारी हो जाता है, जैसे गेहूँ का दलिया रांधा जावे तो वह वैसा भारी नहीं होता है जैसी कि लापसी भारी अर्थात् गरिष्ठ होती है।

१०—भोजन के समय में पहिले पानी के पीने से अग्नि मन्द होजाती है, बीच २ में थोड़ा २ एकाध वार जल पीने से वह (जल) घी के समान फायदा करता है, भोजन के अन्त में आचमनमात्र (तीन घूट) जल पीना चाहिये, इस के बाद जब प्यास लगे तब जल पीना चाहिये, ऐसा करने से भोजन अच्छीतरह पच जाता है, भोजन के अन्त में अधिक जल पीने से अन्न हजम नहीं होता है, भोजन को खूब पेटभर कर (गलेतक) कभी नहीं करना चाहिये, देखो ! शार्ङ्गधर का कथन है कि—जब भोजन अच्छी तरह से पचता है तब तो उस का रस हो जाता है तथा वह (रस) शरीर का पोषण करने में अमृत के तुल्य होता है और जब भोजन अच्छी तरह से नहीं पचता है तब रस न होकर आम हो जाता है और वह आम विष के तुल्य होता है इस लिये मनुष्यों को अग्नि के बल के अनुसार भोजन करना चाहिये।

११—बहुत से पदार्थ अत्यन्त गुण कारी हैं परन्तु दूसरी चीज के साथ मिलने से वे हानिकारी हो जाते हैं तथा उन की हानि मनुष्यों को एकदम नहीं मालूम होती है किन्तु उस के बीज शरीर में छिपे हुए अवश्य रहते हैं, जैसे ग्रीष्म ऋतु में जंगल के अन्दर जमीन में देखा जावे तो कुछ भी नहीं दीखता है परन्तु जल के बरसने पर नाना प्रकार के बीजों के अङ्कुर निकल आते हैं, इसी प्रकार ऊपर कहेहुए पदार्थों के खाने से एकदम हानि नहीं मालूम होती है किंतु वे इकट्ठे होकर किसी समय एकदम अपना ज़ोर दिखा देते हैं, जो २ पदार्थ दूध के साथ में मिलने से विरोधी हो जाते हैं उन को

१—कहा है कि—'अन्नमशनस्य सव्यं पानस्य कुमारयस्य दो भागे वायु पविचारणार्थं चतुर्थं भुन्जा ॥ १ ॥ अर्थात् बुद्धि के द्वारा कल्पना कर के अपने उदर के चार भाग करने चाहियें उन में से दो भागों को तो अन्न से भरना चाहिये एक भाग को पानी से भरना चाहिये तथा एक भाग को खाली रखना चाहिये कि जिस से उच्छ्वास और निश्वास सुखपूर्वक आता जाता रहे ॥

२—बहुत से लोग ग्रीष्म ऋतु में दो दिन की कसर एक ही वख्त में निकाल लेते हैं, यह अविद्या देवी की कृपा है, इन का फल उन को अवश्य ही मिलता है ॥

तो हम दूध के प्रकरण में पहिले लिख चुके है, शेप कुछ पदार्थों को यहां लिखते है—केला और छाछ, केला और दही, दही और उष्ण पदार्थ, घी और शेहद समान भागमें तथा शहद और पानी वरावर वज़न में, ये सव पदार्थ सङ्गदोप से अत्यन्त हानिकारक हो जाते है अर्थात् विप के तुल्य होजाते है, एवं वासा अन्न फिर गर्म करने से अत्यन्त हानि करता है, इस के सिवाय–गर्म पदार्थ और वर्षा के जल के साथ शहद, खिचड़ी के साथ खीर, वेल के फल के साथ केला, कासे के पात्र में दशदिनतक रक्खा रहा हुआ घी, जल के साथ घी और तेल, तथा पुनः गर्म किया हुआ काढ़ा, ये सव ही पदार्थ हानि कारक है, इसलिये इन का त्याग करना चाहिये ।

१२–सायंकाल का भोजन दो घड़ी दिन शेप रहने पर ही कर लेना चाहिये तथा शाम को हलका भोजन करना चाहिये किन्तु रात्रि में भोजन कभी नहीं करना चाहिये, क्योंकि जैन सिद्धान्त में तथा वैद्यक शास्त्रो में रात्रिभोजन का अत्यंत निपेघ किया है, इस का कारण सिर्फ यही है कि–रात्रि को भोजन करने में भोजन के साथ छोटे २ जन्तुओं के पेट मे चले जाने के द्वारा अनेक हानियों की सम्भावना रहती है, देखो ! रात्रि में भोजन के अन्दर यदि लाल तथा काली चीटिया खाने में आजावें तो बुद्धि भ्रष्ट होकर पागलपन होता है, जुयें से जलोदर, काटे तथा केश से स्वरभंग तथा मकडी से पित्ती के ददोड़े, दाह, वमन और दस्त आदि होते है, इसी प्रकार अनेक जन्तुओ से वदहज़मी आदि अनेक रोगो के होने की सम्भावना रहती है, इस लिये रात्रि का भोजन अन्धे के भोजन के समान होता है, (प्रश्न) वहुत से महेश्वरी वैश्यों से सुना है कि हमारे शास्त्रों में एक सूर्य में दो वार भोजन का करना मना है इसलिये दूसरे समय का भोजन रात्रि में ही करना उचित है, (उत्तर) मालूम होता है कि–उन (वैश्यों) को उन के पोप और स्वार्थी गुरुओं ने अपने स्वार्थ के लिये ऐसा वहका दिया है और वेचारे भोले भाले महेश्वरी वैश्यों ने अपने शास्त्रों को तो देखा नहीं, न देखने की उन में शक्ति है इस लिये पोप लोगों से सुन कर उन्हों ने रात्रि में भोजन करने का प्रारम्भ कर दिया, देखो ! हम उन्हीं के शास्त्रों का प्रमाण रात्रिभोजन के निषेध में देते है–यदि अपने शास्त्रो पर विश्वास हो तो उन महेश्वरी वैश्यों को इस भव और पर भव में दुःखकारी रात्रिभोजन को त्याग देना चाहिये—

१–शेप सयोग विरुद्ध पदार्थों का वर्णन दूसरे वैद्यक ग्रन्थों में देखना चाहिये ॥

२–यद्यपि घी और शहद तथा शहद और जल प्राय दवा आदि के काम मे लिया जाता है और वह वहुत फायदेमन्द भी है परन्तु वरावर होने से हानि करता है, इस लिये इन दोनों को समान भाग मे कभी नहीं लेना चाहिये ॥

देखो ! महा भारत ग्रन्थ में लिखा है कि—

मद्यमांसाशनं रात्रौ, भोजनं कन्दभक्षणम् ॥
ये कुर्वन्ति वृथा तेषां, तीर्थयात्रा जपस्तपः ॥ १ ॥

अर्थात् जो पुरुष मद्य पीते हैं, मांस खाते हैं, रात्रि में भोजन करते हैं और कन्द को खाते हैं उन की तीर्थयात्रा, जप और तप सब वृथा है ॥ १ ॥ मार्कण्डेयपुराण का वचन है कि—

अस्तंगते दिवानाथे, आपो रुधिरमुच्यते ॥
अन्नं मांससमं प्रोक्तं, मार्कण्डेयमहर्षिणा ॥ १ ॥

अर्थात् दिवानाथ (सूर्य) के अस्त होने के पीछे जल रुधिर के समान और अन्न मांस के समान कहा है, यह वचन मार्कण्डेय ऋषि का है ॥ १ ॥ इसी प्रकार महाभारत ग्रन्थ में पुनः कहा गया है कि—

चत्वारि नरकद्वारं, प्रथमं रात्रिभोजनम् ॥
परस्त्री गमनं चैव, सन्धानानन्तकायकम् ॥ १ ॥
ये रात्रौ सर्वदाहारं, वर्जयन्ति सुमेधसः ॥
तेषां पक्षोपवासस्य, फलं मासेन जायते ॥ २ ॥
नोदकमपि पातव्यं, रात्रावत्र युधिष्ठिर ॥
तपस्विनां विशेषेण, गृहिणां ज्ञानसम्पदाम् ॥ ३ ॥

अर्थात्—चार कार्य नरक के द्वाररूप हैं—प्रथम—रात्रि में भोजन करना, दूसरा—पर स्त्री में गमन करना, तीसरा—संधाना (आचार) खाना और चौथा—अनन्त काय अर्थात् अनन्त जीववाले कन्द मूल आदि वस्तुओं को खाना ॥ १ ॥ जो बुद्धिमान् पुरुष एक महीनेतक निरन्तर रात्रिभोजन का त्याग करते हैं उन को एक पक्ष के उपवास का फल प्राप्त होता है ॥ २ ॥ इस लिये हे युधिष्ठिर ! ज्ञानी गृहस्थ को और विशेष कर तपस्वी को रात्रि में पानी भी नहीं पीना चाहिये ॥ ३ ॥ इसी प्रकार से सब शास्त्रों में रात्रिभोजन का निषेध किया है परन्तु ग्रन्थ के विस्तार के भय से अब विशेष प्रमाणों को नहीं लिखते हैं, इसलिये बुद्धिमानों को उचित है कि—सब प्रकार के खाने पीने के पदार्थों का कभी भी रात्रि में उपयोग न करें, यदि कभी वैद्य कठिन रोगादि में भी कोई दवा या खुराक को रात्रि में उपयोग के लिये बतलावे तो भी यथा शक्य उसे रात्रि में नहीं लेना चाहिये किन्तु सोने से दो तीन घण्टे पहिले ही ले लेना चाहिये, क्योंकि धन्य पुरुष वे ही हैं जो कि सूर्य की साक्षी से ही खान पान करके अपने व्रत का निर्वाह करते हैं ।

१—पृथिवी के नीचे जो वस्तु उत्पन्न होती है उसे कन्द कहते हैं, जैसे—आलू, मूली कांदा और गाजर आदि ॥

१३–एक थाली वा पत्तल में अधिक मनुष्यो को भोजन करना योग्य नही है, क्योंकि–प्रत्येक मनुष्य का स्वभाव पृथक् २ होता है, देखो ! कोई चाहता है कि मैं दाल भात को मिला कर खाऊँ, किसी की रुचि इस के विरुद्ध होती है, इसी प्रकार अन्य जनों का भी अन्य प्रकार का ही स्वभाव होता है तो इस दशा में साथ में खानेवाले सब ही लोगों को अरुचि से भोजन करना पड़ता है और भोजन में अरुचि होने से अन्न अच्छे प्रकार से नहीं पचता है, साथ में खाने के द्वारा अरुचि के उत्पन्न होने से बहुधा मनुष्य भूखे भी उठ बैठते है और बहुतों को नाना प्रकार के रोग भी हो जाते है, इस के सिवाय प्रत्येक पुरुष के हाथ वारंवार मुँह में लगते है फिर भोजनों में लगते हैं, इस कारण एक के रोग दूसरे में प्रवेश कर जाते है, इस के अतिरिक्त यह भी एक बडी ही विचारणीय बात है कि यदि कुटुम्ब का दूरदेशस्थ (जो दूर देश में रहता है वह) कोई एक सम्बंधी पुरुष गुप्तरूप से मद्य वा मास का सेवन करता है अथवा व्यभिचार में लिप्त है तो एक साथ खाने पीने से अन्य मनुष्यों की भी पवित्रता में धव्वा लग जाता है, शास्त्रों में जूठे भोजन का करना महापाप भी कहा है और यह सत्य भी है क्योकि इस से केवल शारीरिक रोग ही उत्पन्न नहीं होते हैं किन्तु यह बुद्धि को अशुद्ध कर उस के सम्पूर्ण बल का भी नाश कर देता है, प्रत्यक्ष में ही देख लीजिये कि–जो मनुष्य जूठा भोजन खाते है उन के मस्तक गन्दे (मलीन) होते हैं कि जिस से उन में सोच विचार करने का स्वभाव बिलकुल ही नहीं रहता है, इस का कारण यही है कि जूठा भोजन करने से स्वच्छता का नाश होता है और जहा स्वच्छता वा शुद्धता नहीं है वहां भला शुद्धबुद्धि का क्या काम है, जूठा खाने वालों की बुद्धि मोटी हो जाने से उन में सभ्यता[2] भी नहीं देखी जाती है, इन्ही कारणो से धर्मशास्त्रों में भी जूठाखाने का अत्यन्त निषेध किया है, इसलिये आर्य पुरुषो का यही धर्म है कि–चाहें अपना लड़का ही क्यो न हो उस को भी जूठा भोजन न दें और न उस का जूठा आप खावें, सत्य तो यह है कि जूठ और झूठ, इन दोनों का बाल्यावस्था से ही त्याग कर देना उचित है अर्थात् बचपन से ही झूठ वचन और जूठे भोजन से घृणा करना उचित है, बहुधा देखा जाता है कि– हमारे स्वदेशीय बन्धु (जो न तो धर्मशास्त्रो का ही अवलोकन करते हैं और न कभी उन को किसी विद्वान् से सुनते है वे) अपने छोटे २ बच्चों को अपने साथ में भोजन कराने में उन का जूठा आप खाने में तथा अपना पिया हुआ पानी उन्हें पिलाने में बडा ही लाड़ समझते है, यह अत्यत ही शोक का विषय है कि वे महानिन्दित कर्म को लाड़ प्यार वा अपना धर्म कार्य समझें तथा उन (बच्चों) की बुद्धि का नाश मार कर उन के

१–सिर्फ यही हेतु है कि कोढी को कोई भी अपने साथ मे भोजन नहीं कराता है ॥

२–क्योंकि सभ्यता शुद्धबुद्धि का फल है, उन की बुद्धि शुद्ध न होने से उन के पास सभ्यता कहा ?

सर्वस्व का सत्यानाश कर दें और तिस पर भी उन के परम हितैषी कहलावें, हा शोक ! हा शोक ! ! हा शोक ! ! !

१४—भोजन करने के बाद मुख को पानी के कुल्ले कर साफ कर लेना चाहिये तथा दाँतों की पिमटी आदि से दाँतों और मसूढ़ों में से जूठन को बिलकुल निकाल डालना चाहिये, क्योंकि खुराक का अंश मसूढ़ों में वा दाँतों की जड़ में रह जाने से मुख में दुर्गन्धि आने लगती है तथा दाँतों का और मुख का रोग भी उत्पन्न हो जाता है ।

१५—भोजन करने के पीछे सौ कदम टहलना चाहिये, क्योंकि ऐसा करने से अन्न पचता और आयु की वृद्धि होती है, इस के पीछे थोड़ी देर तक पलंग पर लेटना चाहिये, इस से अंग पुष्ट होता है, परन्तु लेटकर नींद नहीं लेनी चाहिये, क्योंकि नींद के लेने से रोग उत्पन्न होते हैं, इस विषय में यह भी स्मरण रहे कि प्रातःकाल को भोजन करने के पश्चात् पलंगपर बायें और दहिने करवट से लेटना चाहिये परन्तु नींद नहीं लेनी चाहिये तथा सायंकाल को भोजन करने के पश्चात् टहलना परम लाभदायक है ।

१६—भोजन करने के पश्चात् मेज़, स्टूल, तिपाई और कुर्सी आदि पर बैठने, नींद लेने, आग के सन्मुख बैठने, धूप में चलने, दौड़ने, घोड़े वा ऊंट आदि की सवारी पर चढ़ने तथा कसरत करने आदि से नाना प्रकार के दोष उत्पन्न होते हैं, इसलिये भोजन के पश्चात् एक घण्टे वा इस से भी कुछ अधिक समयतक ऐसे काम नहीं करने चाहियें ।

१७—भोजन के पाचन के लिये किसी चूर्ण को खाना वा शर्बत आदि को पीना उचित नहीं है, क्योंकि ऐसा करने से वैसा ही अभ्यास पड़ जाता है और वैसा अभ्यास पड़ जावे पर चूर्ण आदि के सेवन किये बिना अन्न का पाचन ही नहीं होता है, कुछ समयतक ऐसा अभ्यास रहने से जठराग्नि की स्वाभाविक तेजी न रहने से आरोग्यता में अन्तर पड़ जाता है।

१८—भोजन के समय में अत्यन्त पानी का पीना, बिना पचे भोजन पर भोजन करना, बिना भूख के खाना, भूख का मारना, आधसेर के स्थान में सेर भर खाना तथा अत्यंत न्यून खाना आदि कारणों से अजीर्ण तथा मन्दाग्नि आदि रोग उत्पन्न हो जाते हैं, इसलिये इन बातों से बचते रहना चाहिये ।

१९—पथ्यापथ्य वर्णन में तथा ऋतुचर्या वर्णन में जो कुछ भोजन के विषय में लिखा गया है उस का सदैव ख्याल रखना चाहिये ॥

१—हा भारत ! तेरे पवित्र मत में नाना प्रकार के पाखण्ड जन्म गये हैं, क्योंकि—इस देश में बहुधा ऐसे मत चल गये हैं कि—जिन में गृहस्थ पुरुषों और स्त्रियों को गुरु का झूठा खाना भी धर्म का अङ्ग मान्य गया है और बतलाया गया है और जिस से निरक्षर भक्तजन गुरु महाराज का झूठा परसाद (प्रसाद) वा जूठा पानी भी अमृत के समान मान कर बेचारे भोले स्त्री पुरुष पीते हैं, हे मित्रगण ! भला अब तो सोचो समझो और सावधान हो ! तुम इस अविद्यारूपी गाढ़ निद्रा में कबतक पड़े सोते रहोगे !

२—भोजन का विशेष वर्णन भोजन पाकविद्या आदि ग्रन्थों में किया गया है, वहां देख लेना चाहिये ॥

मुख सुगन्ध ॥

पहिले कह चुके हैं कि भोजन के पश्चात् पानी के कुलें करके मुख को साफ कर लेना चाहिये तथा दाँतों और मसूड़ों को भी खूब शुद्ध कर लेना चाहिये, आजकल इस देश में भोजन के पश्चात् मुख सुगन्ध के लिये अनेक वस्तुओं का उपयोग किया जाता है, सो यदि मुख को पानी आदि के द्वारा ही विलकुल साफ कर लिया जावे तो दूसरी वस्तु के उपयोग की कोई आवश्यकता नहीं रहती है, क्योंकि मुखसुगन्ध का प्रयोजन केवल मुख को साफ रखने का है, जब जलादि के द्वारा मुख और दाँत आदि विलकुल साफ हो गये तो सुपारी तथा पान चवाने आदि की कोई आवश्यकता नहीं है, हा यदि कभी विशेष रुचि वा आवश्यकता हो तो वस्तुविशेष का भी उपयोग कर लेना चाहिये परन्तु उस की आदत नहीं डालनी चाहिये ।

मुखसुगन्ध के लिये अपने देश में सुपारी पान और इलायची आदि मुख्य पदार्थ हैं, परन्तु इस समय में तो घर घर (प्रति गृह) चिलम हुक्का और सिगरेट ही प्रधानता के साथ वर्त्ताव में आते हुए देखे जाते है, पूर्व समय में इस देशवाले पुरुष इन में वड़ा ऐव समझते थे, परन्तु अव तो विछौने से उठते ही यही हरिभजनरूप वन गया है तथा इसी को अविद्या देवी के उपासकों ने मुखवासक भी ठहरा रक्खा है, यह उन की महा अज्ञानता है, देखो ! मुखवास का प्रयोजन तो केवल इतना ही है कि डाढ़ों तथा दाँतों में यदि कोई अन्न का अश रह गया हो तो किसी चावने की चीज के चावने से उस के साथ में वह अन्न का अंश भी चावा जाकर साफ हो जावे तथा वह (चावने की) चीज खुशवूदार और फायदेमन्द हो तो मुँह सुवासित भी हो जावे तथा थूक को पैदा करने वाली हो तो वह थूक होजरी में जाकर खाये हुए पदार्थ के पचाने में भी सहायक हो जावे, इसी लिये तो उक्त गुणों से युक्त नागर वेल के पान, कत्था, चूना, केसर, कस्तूरी, सुपारी, इलायची और भीमसेनी कपूर आदि पदार्थ उपयोग में लिये[1] जाते है, परन्तु तमाखू, गाजा, सुलफा और चडूले[2] से मुख की जैसी सुवास होती है वह तो ससार से छिपी नहीं है, यद्यपि तमाखू में थूक की पैदा करने का सभाव तो है परन्तु वह थूक ऐसा निकृष्ट होता है कि भीतर पहुँचते ही भीतर स्थित तमाम खाये पिये को उसीवख्त निकाल कर वाहर ले आता है, इस के विषय में जो बुद्धिमानों का यह कथन है कि—"इस को खावे उसका घर और मुँह भ्रष्ट, इस को पिये उसका जन्म और मुँह भ्रष्ट, इस को सूंघे उस के कपड़े भ्रष्ट[3]" सो यह वात बिलकुल ही सत्य है तथा इस का अनुभव भी प्रायः

१–प्रत्याख्यान (पच्चक्खाण) भाष्य की टीका में द्विविधाहार (दुविहार) के निर्णय में मुखवास का भी वर्णन है ॥

२–चडूल अर्थात् चण्डू (कहना तो इसे चण्डूल ही चाहिये) ॥

३–दक्षिण के लोग पान के साथ तमाखू खाते हैं, उन का भी यही हाल है ॥

सब ही को होगा, तमाखू के कदरदान (कदर करनेवाले) बड़े आदमी तमाखू का रस थूकने के लिये पीकदान रखते हैं परन्तु हम को बड़ा आश्चर्य होता है कि जिस तमाखू के थूक को वे जठराग्नि का उपयोगी समझते हैं उस को निरर्थक क्यों जाने देते हैं ?

अब जो लोग मुखवास के लिये प्रायः सुपारी का सेवन करते हैं उस के विषय में भी संक्षेप से लिख कर पाठकगण को उस के हानि लाभ दिखलाते हैं —

सुपारी मुखवास के लिये एक अच्छी चीज है परन्तु इसे बहुत ही थोड़ा खाना चाहिये, क्योंकि इस का अधिक खाना हानि करता है, पूर्व तथा दक्षिण में स्त्री पुरुष छालियों को तथा बीकानेर आदि मारवाड़ देशस्थ नगरों में कत्थे में उबाली हुई चिकनी सुपारियों को सेरों खा जाते हैं, इस से परिणाम में हानि होती है, यद्यपि इस का सेवन स्त्रियों के लिये तो फिर भी कुछ अच्छा है परन्तु पुरुषों को तो नुकसान ही करता है, सुपारी में शरीर के सांधों को तथा धातु को ढीला करने का स्वभाव है, इस लिये खास कर पुरुषों को इस का अधिक खाना कभी भी उचित नहीं है, इस लिये आवश्यकता के समय भोजन करने के बाद इस का जरा सा टुकड़ा मुख में डालकर चाबना चाहिये तथा उस का थूक निगल जाना चाहिये परन्तु मुख में चबाहुआ उस का फूचट (गुद्दा) थूक देना चाहिये, सुपारी का आधा टुकड़ा कंठ को बिगाड़ता है।

पानें का सेवन यदि किया जावे तो वह ताजा और मुँह में गर्मी न करे ऐसा होना चाहिये, किन्तु व्यसनी बन कर जैसा मिले वैसा ही चाब लेने से उलटी हानि होती है तथा सब दिन पानों को चाबते रहना जंगलीपन भी समझा जाता है, बहुत पान खाने से वह आंख और शरीर का तेज, बाल, दाँत, जठराग्नि, कान, रूप और ताकत को नुकसान पहुँचाता है, इसलिये थोड़ा खाना ठीक है।

पानों के साथ में जो कत्थे और चूने का उपयोग किया जाता है उस में भी किसी तरह की दूसरी चीजकी मिलावट नहीं होनी चाहिये तथा इन दोनों को पानों में ठीक २ (न्यूनाधिक नहीं) लगाना चाहिये।

पान और सुपारी के सिवाय—इलायची, लौंग और तज भी मुख सुगन्धि की चीजें हैं, इन में से इलायची तर गर्म है और फायदेमन्द होती है परन्तु इसे भी अधिक नहीं खाना चाहिये तज और लौंग वायु और कफ की प्रकृतिवाले को थोड़ी २ खानी चाहिये।

१—नागर और सन्चरे भामपुर के उत्तम होते हैं ॥

२—शीतकाल में बंगला पान फायदा करता है ॥

३—पान खानेवालों को यदि इन सब बातों का भी ज्ञान न हो तो उन को पान खाने का अभ्यास रखना ही व्यर्थ है ॥

४—खाने में छोटी (सफेद) इलायची का उपयोग करना चाहिये ॥

मुखसुगन्धि की सव चीजो में से धनियां और सौंफ, ये दो चीजें अधिक लाभदायक मानी गई है, क्योंकि ये दीपन पाचन हैं, स्वादिष्ट है, कठ को सुधारती है और किसी प्रकार का विकार नहीं करती है!

इस प्रकार भोजन क्रिया से निवृत्त होकर तथा थोडी देर तक विना निद्रा के विश्राम लेकर मनुष्य को अपने जीवन निर्वाह के उद्यम में प्रवृत्त होना चाहिये परन्तु वह उद्यम भी न्याय और धर्म के अनुकूल होना चाहिये अर्थात् उस उद्यम के द्वारा परापमान तथा पर हानि आदि कभी नहीं होना चाहिये, इस के सिवाय मनुष्य को दिन भर में क्रोध आदि दुर्गुणों का त्याग कर मन और इन्द्रियों को प्रसन्न करनेवाले रूप, रस, गन्ध और स्पर्श आदि विषयों का सेवन करना चाहिये, दिन में कदापि स्त्री सेवन नहीं करना चाहिये, दिन के चार वा पाच वजे (ऋतु के अनुसार) व्यावहारिक कार्यों से निवृत्त होकर थोडी देर तक विश्राम लेकर शौच आदि से निवृत्त हो जावे, पीछे यथायोग्य भोजन आदि कार्य करे भोजन के पश्चात् मील दो मील तक (समयानुसार) वायु सेवन के लिये अवश्य जावे, वायु के सेवन से लौट कर सायकाल सम्बधी यथावश्यक धर्म ध्यान आदि कार्य करे इस से निवृत्त होने के पश्चात् दिनचर्या का कोई कार्य अवशिष्ट नहीं रहता है किन्तु केवल निद्रारूप कार्य शेष रहता है।

जीवन की स्थिरता तथा नीरोगता के लिये निद्रा भी एक वहुत ही आवश्यक पदार्थ है इस लिये अब निद्रा वा शयन के विषय में लिखते है.—

शयन वा निद्रा ॥

मनुष्य की आरोग्यता के लिये अच्छी तरह से नींद का आना भी एक मुख्य कारण है परन्तु अच्छी तरह से नींद के आने का सहज उपाय केवल परिश्रम है, देखो! जो लोग दिन में परिश्रम नही करते है किन्तु आलसी होकर पड़े रहते हैं उन को रात्रि में अच्छी तरह

१–इन दोनों के सिवाय जो मुख सुगन्धि के लिये दूसरी चीजों का सेवन किया जाता है उन मे देश काल और प्रकृति के विचार से कुछ न कुछ दोप अवश्य रहता है, उन में भी तमाखू आदि कई पदार्थ तो महाहानिकारक हैं, इस लिये उन से अवश्य वचना चाहिये, हा आवश्यकता हो तो ऊपर लिखे सुपारी आदि पदार्थों का उपयोग अपनी प्रकृति और देश काल आदि का विचार कर अल्प मात्रा मे कर लेना चाहिये ॥

२–मन और इन्द्रियों को प्रसन्न करनेवाले रूपादि विषयों के सेवन से भोजन का परिपाक ठीक होने से आरोग्यता वनी रहती है ॥

३–दिन में स्त्री सेवन से आयु घटती है तथा बुद्धि मलीन हो जाती है ॥

४–शौच आदि मे प्रात काल के लिये कहे हुए नियमों का ही सेवन करे ॥

५–रात्रिभोजन का निषेध तो अभी लिख ही चुके हैं ॥

६–इस कार्य का मुख्य सम्बध रात्रिचर्या से है किन्तु रात्रिचर्यारूप यही कार्य है परन्तु यहां रात्रिचर्या को पृथक् न लिखकर दिनचर्या में ही उस का समावेश कर दिया गया है ॥

से नींद नहीं आती है, इस के अतिरिक्त परिमित तथा प्रकृति के अनुकूल आहार विहार से भी नींदका अनिष्ट (बहुत बड़ा) सम्भव है, देखो ! जो लोग शाम को अधिक भोजन करते हैं उन को प्रायः स्वप्न आया करते हैं अर्थात् पक्की नींद का नाश होता है, क्योंकि मनुष्य को स्वप्न तब ही आते हैं जब कि उस के मगज में आल जंजाल रहते हैं और मगज को पूरा विश्राम नहीं मिलता है इसलिये मनुष्यमात्र को उचित है कि अपनी शक्ति के अनुसार शारीरिक तथा मानसिक परिश्रमों को करे और अपने आहार विहार को भी अपनी प्रकृति तथा देश काल आदि का विचार कर करता रहे जिस से निद्रा में विघात न होवे क्योंकि निद्रा के विघात से भी कालान्तर में अनेक भयंकर हानियां होती हैं निद्रा में विघात न होने अर्थात् ठीक नींद आने का लक्षण यही है कि मनुष्य को शयनावस्था में स्वप्न न आवें क्योंकि स्वप्न दशा में चित्त की स्थिरता नहीं होती है किन्तु चञ्चलता रहती है।

स्वप्नों के विषय में अर्थात् किस प्रकार का स्वप्न कब आता है और क्यों आता है इस विषय में भिन्न २ शास्त्रों तथा भिन्न २ आचार्यों की भिन्न २ सम्मति है एवं स्वप्नों के फल के विषय में भी पृथक् २ सम्मति है, इन के विषय का प्रतिपादक एक स्वप्नशास्त्र भी है जिस में स्वप्नों का शुभाशुभ आदि बहुतसा फल लिखा है, उक्त शास्त्र के अनुसार वैद्यक ग्रन्थों में भी स्वप्नों का शुभाशुभ फल माना है, देखो ! वाग्भट्ट ने रोगप्रकरण में शकुन और स्वप्नों का फल एक अलग प्रकरण में रोग के साध्यासाध्य के जानने के लिये लिखा है, उस विषय को ग्रन्थ के बढ़ जाने के भय से अधिक नहीं लिख सकते हैं, परन्तु प्रसङ्गवश पाठकों के ज्ञानार्थ संक्षेप से इस का वर्णन करते हैं —

स्वप्नविचार ॥

१–अनुभूत वस्तु का जो स्वप्न आता है, उसे असत्य समझना चाहिये अर्थात् उस का कुछ फल नहीं होता है।

२–सुनी हुई बात का भी स्वप्न असत्य ही होता है।

३–देखी हुई वस्तु का जो स्वप्न आता है वह भी असत्य है।

४–शोक और चिन्ता से आया हुआ भी स्वप्न असत्य होता है।

५–प्रकृति के विकार से भी स्वप्न आता है जैसे–पित्त प्रकृति वाला मनुष्य पानी, फूल, अन्न, भोजन और रत्नों को स्वप्न में देखता है तथा हरे पीले और लाल रंग की वस्तुओं

१–जैन सिद्धान्त में स्वभावस्थित दर्शनावरणी कर्मजन्य नींद को अच्छी नींद माना है ॥

२–निद्राविघातजन्य हानियों का वर्णन अनेक ग्रन्थों में किया गया है इस लिये यहां पर उन हानियों का वर्णन नहीं करते हैं ॥

३–इस शास्त्र को निमित्त शास्त्र कहते हैं ॥

को अधिक देखता है, तमाम रात सैकडो बाग वगीचों और फ़ुहारों की शैर करता रहता है, परन्तु इसे भी असत्य समझना चाहिये, क्योंकि प्रकृति के विकार से उत्पन्न होने के कारण यह कुछ भी लाभ और हानि को नहीं कर सकता है।

६–वायु की प्रकृतिवाला मनुष्य स्वप्न में पहाड़ पर चढ़ता है, वृक्षों के शिखर पर जा बैठता है और मकान के ठीक ऊपर जाकर सरक जाता है, कूदना, फादना, सवारी पर चढ़ कर हवा खाने को जाना और आकाश में उड़ना आदि कार्य उस को स्वप्न में अधिक दिखलाई देते हैं, इसे भी पूर्ववत् असत्य समझना चाहिये, क्योंकि प्रकृति के विकार से उत्पन्न होने से इस का भी कुछ फलाफल नहीं होता है।

७–स्वप्न वह सच्चा होता है जो कि धर्म और कर्म के प्रभाव से आया हो, वह चाहे शुभ हो अथवा अशुभ हो, उस का फल अवश्य होता है।

८–रात्रि के प्रथम प्रहर में देखा हुआ स्वप्न बारह महीने में फल देता है, दूसरे प्रहर में देखा हुआ स्वप्न नौ महीने में फल देता है, तीसरे प्रहर में देखा हुआ स्वप्न छः महीने में फल देता है और चौथे प्रहर में देखा हुआ स्वप्न तीन महीने में फल देता है, दो घड़ी रात बाकी रहने पर देखा हुआ स्वप्न दश दिन में और सूर्योदय के समय में देखा हुआ स्वप्न उसी दिन अपना फल देता है।

९–दिन में सोते हुए पुरुष को जो स्वप्न आता है वह भी असत्य होता है अर्थात् उस का कुछ फल नहीं होता है।

१०–अच्छा स्वप्न देखने के बाद यदि नींद खुल जावे तो फिर नहीं सोना चाहिये किन्तु धर्मध्यान करते हुए जागते रहना चाहिये।

११–बुरा स्वप्न देखने के बाद यदि नींद खुल जावे और रात अधिक बाकी हो तो फिर सो जाना अच्छा है।

१२–पहिले अच्छा स्वप्न देखा हो और पीछे बुरा स्वप्न देखा हो तो अच्छे स्वप्न का फल मारा जाता है (नहीं होता है), किन्तु बुरे स्वप्न का फल होता है, क्योंकि बुरा स्वप्न पीछे आयाहै।

१३–पहिले बुरा स्वप्न देखा हो और पीछे अच्छा स्वप्न देखा हो तो पिछला ही स्वप्न फल देता है अर्थात् अच्छा फल होता है, क्योंकि पिछला अच्छा स्वप्न पहिले बुरे स्वप्न के फल को नष्ट कर देता है।

१–अच्छा स्वप्न देखने के बाद जागते रहने की इस हेतु आज्ञा है कि सो जाने पर फिर कोई बुरा स्वप्न आकर पहिले अच्छे स्वप्न के फल को न विगाड डाले ॥

२–परन्तु अफसोस तो इस बात का है कि भले वा बुरे स्वप्न की पहचान भी तो सब लोगों को नहीं होती है ॥

यह स्वप्नों का संक्षेप से वर्णन किया गया, अब प्रसगानुसार निद्रा के विषय में कुछ आवश्यक नियमों का वर्णन किया जाता है —

१–पूर्व अथवा दक्षिण की तरफ सिर करके सोना चाहिये ।

२–सोने की जगह साफ एकान्त में अर्थात् गड़बड़ या शब्द से रहित और हवादार होनी चाहिये ।

३–सोने के बिछौने भी साफ होने चाहियें, क्योंकि मलीन जगह और मलीन बिछौने पर सोने से माकड़ आदि अनेक जन्तु सताते हैं जिस से नींद में बाधा पहुँचती है और मलीनता के कारण अनेक रोग भी उत्पन्न हो जाते हैं ।

४–चौमासे में जमीन पर नहीं सोना चाहिये, क्योंकि इस से सर्दी आदि के अनेक विकार होते हैं और जीवजन्तु के काटने आदि का भी भय रहता है ।

५–चूने के गछ पर सोना वायु और कफ की प्रकृतिवाले को हानि करता है ।

६–पलँग आदि पर सदा मुलायम बिछौने बिछा कर सोना चाहिये ।

७–केवल उष्ण तासीर वाले को खुली जगह में ग्रीष्म ऋतु में ही सोना चाहिये परन्तु जिन देशों में ओस गिरती है उन में तो खुली जगह में या खुली चांदनीमें नहीं सोना चाहिये, एवं जिस स्थान में सोने से शरीर पर हवा का अधिक झपाटा (झकोरा) सामने से लगता हो उस स्थान में नहीं सोना चाहिये ।

८–सोने के कमरे के दर्वाजे तथा खिड़कियों को बिलकुल बद कर के कभी नहीं सोना चाहिये, किन्तु एक या दो खिड़कियां अवश्य खुली रखनी चाहियें जिस से ताजी हवा आती रहे ।

९–बहुत पढ़ने आदि के अभ्यास से, बहुत विचार से, नशा आदि के पीने से, अथवा अन्य किसी कारण से यदि मन उचका हुआ (अस्थिर) हो तो तुर्त नहीं सोना चाहिये ।

१०–सोने के पहिले सिर को ठंढा रखना चाहिये, यदि गर्म हो तो ठंढे जल से धो डालना चाहिये ।

११–पैरों को सोने के समय सदा गर्म रखना चाहियें, यदि पैर ठंढे हों तो तलुओं को तेल से मलवा कर गर्म पानी में रख कर गर्म कर लेना चाहिये ।

१–स्वप्नों का पूरा वर्णन देखना हो तो हमारे बनाये हुए स्वप्न निमित्त रत्नाकर नामक ग्रंथ में देखो (उस का मूल्य १) रुपया मात्र है ॥

२–देखो ! घाघरों ने कहा है कि– 'उत्तम सूवे दाबरे, मध्य दमाके बाट ॥ बिन मारे मर जायगा जो सेठ चखेगा खाट ॥ १ ॥

३–हमेशा ही (सोने के अतिरिक्त भी) सिर को ठंढा और पैरों को गर्म रखना चाहिये ॥

१२–बहुत देर से तथा बहुत देरतक नहीं सोना चाहिये, किन्तु जल्दी सोना चाहिये तथा जल्दी उठना चाहिये।

१३–बहुत पेटभर खाकर तुर्त नहीं सोना चाहिये।

१४–ससार की सब चिन्ता को छोड़ कर चार शरणा लेकर चारों आहारों का त्याग करना चाहिये और यह सोचना चाहिये कि जीता रहा तो सूर्योदय के बाद खाना पीना बहुत है, चौरासी लाख जीवयोनि से अपने अपराध की माफी माग कर सोना चाहिये।

१५–सात घटे की नींद काफी होती है, इस से अधिक सोना दरिद्रों का काम है।

इस प्रकार रात्रि के व्यतीत होने पर प्रातःकाल चार बजे उठकर पुनः पूर्व लिखे अनुसार सब वर्त्ताव करना चाहिये ॥

यह चतुर्थ अध्याय का दिनचर्यावर्णन नामक आठवा प्रकरण समाप्त हुआ ॥

नवां प्रकरण—सदाचारवर्णन ॥

सदाचार का स्वरूप ॥

यद्यपि सद्विचार और सदाचार, ये दोनो ही कार्य मनुष्य को दोनो भवो में सुख देते है परन्तु विचार कर देखने से ज्ञात होता है कि इन दोनों में सदाचार ही प्रबल है, क्योंकि सद्विचार सदाचार के आधीन है, देखो सदाचार करनेवाले (सदाचारी) पुण्यवान् पुरुष को अच्छे ही विचार उत्पन्न होते है और दुराचार करनेवाले (दुराचारी) दुष्ट पापी पुरुष को बुरे ही विचार उत्पन्न होते हैं, इसी लिये सत्य शास्त्रों में सदाचार की बहुत ही प्रशसा की है तथा इस को सर्वोपरि माना है, सदाचार का अर्थ यह है कि—मनुष्य दान, शील, व्रत, नियम, भलाई, परोपकार दया, क्षमा, धीरज और सन्तोष के साथ अपने सर्व व्यापारों को कर के अपने जीवन का निर्वाह करे।

१–इस के हानि लाभ पूर्व इस प्रकरण की आदि में लिख चुके है ॥

२–यह दिनचर्या का वर्णन सक्षेप से किया गया है, इस का विस्तारपूर्वक ओर अधिक वर्णन देखना हो तो वैद्यक के दूसरे ग्रन्थों मे देख लेना चाहिये, इस दिनचर्या मे स्त्री प्रसग का वर्णन ग्रन्थ के विस्तार के भय से नहीं लिखा गया है तथा इस के आवश्यक नियम पूर्व लिख भी चुके हैं अत पुन यहा पर उस का वर्णन करना अनावश्यक समझ कर भी नहीं लिखा हे ॥

३–इस ग्रन्थ के इसी अध्याय के छठे प्रकरण मे लिखे हुए पथ्य विहार का भी समावेश इसी प्रकरण मे हो सकता है ॥

४–क्योंकि "बुद्धि कर्मानुसारिणी" अर्थात् बुद्धि और विचार, ये दोनो कर्म के अनुसार होते हैं अर्थात् मनुष्य जैसे भले वा बुरे कार्य करेगा वैसे ही उस के बुद्धि और विचार भी भले वा बुरे होंगे, यही शास्त्रीयसिद्धान्त है ॥ ५–इसी प्रकार के वर्त्ताव का नाम श्रावकव्यवहार भी है ॥

२ चोरी—दूसरा व्यसन चोरी है, इस व्यसनवाले का कोई भी विश्वास नहीं करता है और उस को जेलखाना अवश्य देखना पड़ता है जिस (जेलखाने) को इस भव का नरक कहने में कोई हर्ज नहीं है।

३ परस्त्रीगमन—तीसरा व्यसन परस्त्रीगमन है, यह भी महाभयानक व्यसन है, देखो! इसी व्यसन से रावण जैसे प्रतापी शूर वीर राजा का भी सत्यानाश हो गया तो दूसरो की तो क्या गिनती है, इस समय भी जो लोग इस व्यसन में संलग्न है उन को कैसी २ कठिन तकलीफें उठानी पड़ती है जिन को वे ही लोग जान सकते है।

४ वेश्यागमन—चौथा व्यसन वेश्यागमन है, इस के सेवन से भी हज़ारों लाखो वर्बाद होगये और होते हुए दीख पड़ते है, देखो! ससार में तन धन और प्रतिष्ठा, ये तीन पदार्थ अमूल्य समझे जाते है परन्तु इस महाव्यसन से उक्त तीनो पदार्थों का नाश होता है, आहा! श्रीभर्तृहरि महाराज ने कैसा अच्छा कहा है कि—"यह वेश्या तो

१–इन का इतिहास इस प्रकार है कि–उज्जयिनी नगरी मे सकलविद्यानिपुण और परम शूर राजा भर्तृहरि राज्य करता था, उस के दो भाई थे, जिन मे से एक का नाम विक्रम था (सवत् इसी विक्रम राजा का चल रहा है) और दूसरे का नाम सुभट वीर्य था, इन दो भाइयों के सिवाय तीसरी एक छोटी वहिन भी थी जिसका सम्बन्ध गौड (वगाल) देश के सार्वभौम राजा त्रैलोक्यचन्द्र के साथ हुआ था, इस भर्तृहरि राजा का पुत्र गोपीचद नाम से ससार मे प्रसिद्ध है, यह भर्तृहरि राजा प्रथम युवावस्था मे अति विषयलम्पट था, उस की यह व्यवस्था थी कि उस को एक निमेष भी स्त्री के विना एक वर्ष के समान मालूम होता था, उस के ऐसे विषयासक्त होने के कारण यद्यपि राज्य का सव कार्य युवा राजा विक्रम ही चलाता था परन्तु यह भर्तृहरि अत्यन्त दयाशील था और अपनी समस्त प्रजा मे पूर्ण अनुराग रखता था, इसी लिये प्रजा भी इस में पितृतुल्य प्रेम रखती थी, एक दिन का जिक्र है कि–उस की प्रजा का एक विद्वान् ब्राह्मण जगल मे गया और वहा जाकर उस ने एक ऋषि से मुलाकात की तथा ऋषि ने प्रसन्न होकर उस ब्राह्मण को एक अमृतफल दिया और कहा कि इस फल को जो कोई खावेगा उसे जरा नहीं प्राप्त होगी अर्थात् उसे बुढापा कभी नहीं सतावेगा और शरीर मे शक्ति वनी रहेगी, ब्राह्मण उस फल को लेकर अपने घर आया और विचारने लगा कि यदि मैं इस फल को खाऊ तो मुझे यद्यपि जरा (वृद्धावस्था) तो प्राप्त नहीं होगी परन्तु मैं महादरिद्र हू यदि मैं इस फल को खाऊ तो दरिद्रता से और भी वहुत समयतक महा कष्ट उठाना पडेगा और निर्धन होने से मुझ से परोपकार भी कुछ नहीं वन सकेगा, इस लिये जिस के हाथ से अनेक प्राणियों की पालना होती है उस भर्तृहरि राजा को यह फल देना चाहिये कि जिस से वह वहुत दिनोंतक राज्य कर प्रजा को सुखी करता रहे, यह विचार कर उस ने राजसभा मे जाकर उस उत्तम फल को राजा को अर्पण कर दिया और उस के गुण भी राजा को कह सुनाये, राजा उस फल को पाकर वहुत प्रसन्न हुआ और ब्राह्मण को वहुत सा द्रव्य और सम्मान देकर विदा किया, तदनन्तर स्त्री मे अत्यन्त प्रीति होने के कारण राजा ने यह विचार किया कि यह फल अपनी परम प्यारी स्त्री को देऊ तो ठीक हो क्योंकि वह इस को खाकर सदा यौवनवती और लावण्ययुक्त रहेगी, यह विचार कर वह फल राजा ने अपनी स्त्री को दे दिया, रानी ने अपने मन मे विचार किया कि मैं रानी हूँ मुझ को किसी वात की तकलीफ नहीं है फिर मुझ को वुढापा क्या तकलीफ दे सकता है, ऐसा विचार कर उस ने उस फल को अपने यार कोतवाल को दे दिया (क्योंकि उस की कोतवाल से यारी थी) उस

सुन्दरता रूपी ईन्धन से प्रचण्ड रूप धारण किये हुए जलती हुई कामाग्नि है और कामी पुरुष उस में अपने यौवन और धन की आहुति देते हैं" पुनः भी उक्त महात्मा ने कहा है कि—"वेश्या का अधरपल्लव यदि सुन्दर हो तो भी उस का चुम्बन कुलीन पुरुष को नहीं करना चाहिये, क्योंकि यह (वेश्या का अधरपल्लव) तो ठग, चोर, दास, नट और जारों के थूकने का पात्र है" इसके विषय में वैद्यक शास्त्र का कथन है कि—वेश्या की योनि सुजाख और गर्मी आदि चेपी रोगों का जन्मस्थान है, और विचार कर देखा जावे तो यह बात बिलकुल सत्य है और इस की प्रमाणता में खासा उदाहरण प्रत्यक्ष ही दीख पड़ते हैं कि— वेश्यागमन करनेवालों के ऊपर कहे हुए रोग प्रायः हो ही जाते हैं जिनकी परसादी उन की विवाहिता स्त्री और उन के सन्तानों तक को मिलती है, इसका कुछ वर्णन आगे किया जायगा।

५ मद्यपान—पांचवां व्यसन मद्यपान है, यह भी व्यसन महाहानिकारक है, मद्य के पीने से मनुष्य बेसुध हो जाता है और अनेक प्रकार के रोग भी इस से हो जाते हैं, डाक्टर लोग भी इस की मनाई करते हैं—उनका कथन है कि—मद्य पीनेवालों के

फल को लेकर कोतवाल ने विचारा कि–मेरे हाथ में राजा की रानी है और सब प्रकार का माल भी पाता हूं मेरा सुखमय लोक बना कर रक्खी इसलिये अपनी प्यारी भगवत्कला वेश्या को यह फल दे दूं, ऐसा विचार कर कोतवाल ने वह अमृत फल उसी वेश्या को जाकर दे दिया यह भगवत्कला वेश्या भी विचार करने लगी कि मुझ को अच्छे २ पदार्थ खान को मिलते हैं मगर का कोतवाल मेरे हाथ में है मेरा बुढ़ापा क्या कर सकता है इस लिये इस उत्तम फल को मैं भर्तृहरि राजा को भेंट कर दूं तो अच्छा है ऐसा विचार कर उस ने दर्बार में जाकर वह फल राजा को भेंट किया और उस फल के पूर्वोक्त गुण कहे राजा फल को देख अत्यन्त आश्चर्य करने लगा और मन में विचार ने लगा कि इस फल को तो मैं ने अपनी रानी को दिया था यह फल इस वेश्या के पास कैसे पहुंचा! आखिरकार तलाश कर ने पर राजा को सब हाल मालूम हो गया और उस के मालूम होने पर राजा को उसी समय अत्यन्त वैराग्य पैदा हुआ जिस से वह स्त्री और राज्यलक्ष्मी आदि सब कुछ छोड़कर वन में चला गया देखो! उस समय उस ने यह श्लोक कहा है कि–यां चिन्तयामि सततं मयि सा विरक्ता। साप्यन्यमिच्छति जनं स जनोऽन्यसक्तः ॥ अस्मत्कृते च परिशुष्यति काचिदन्या। धिक् तां च तं च मदनं च इमां च मां च ॥ १ ॥ इस श्लोक का अर्थ यह है कि जिस प्रियतमा अपनी स्त्री को मैं निरन्तर प्राणों से भी अधिक प्रिय मानता हूं वह मुझ से विरक्त हो कर अन्य पुरुष की इच्छा करती है और वह (अन्य पुरुष) दूसरी स्त्री पर आसक्त है तथा वह (अन्य स्त्री) मुझ पर प्रसन्न है इस लिये मेरी प्रिया को (जो अन्य पुरुष से प्रीति रखती है) धिक्कार है उस अन्य पुरुष को (जो ऐसी रानी को पाकर भी अन्य स्त्री अर्थात् वेश्या पर आसक्त है) धिक्कार है उस अन्य स्त्री को (जो मुझ पर प्रसन्न है) धिक्कार है तथा मुझ को और इस कामदेव को भी धिक्कार है ॥ १ ॥ यह राजा बड़ा पण्डित था इस ने भर्तृहरिशतक नामक ग्रन्थ बनाया और उस के प्रारम्भ में ऊपर लिखा हुआ श्लोक रक्खा है इस ग्रन्थ के तीन शतक हैं अर्थात् पहिला नीतिशतक दूसरा शृंगारशतक और तीसरा वैराग्यशतक है यह ग्रन्थ देखने के लायक है इस में जो शृंगारशतक है वह लोगों को विषय वासना में फंसाने के लिये नहीं है किन्तु वह शृंगार के ज्ञान का यथार्थ स्वरूप दिखलाता है जिस से उस में

कलेजे में चालनी के समान छिद्र हो जाते है और वे लोग आधी उम्र में ही प्राण त्याग करते है, इस के सिवाय धर्मशास्त्र ने भी इस को दुर्गति का प्रधान कारण कहा है।

६ मांस खाना—छठा व्यसन मांसभक्षण है, यह नरक का देनेवाला है, इस के भक्षण से अनेक रोग उत्पन्न होते है, देखो! इस की हानियो को विचार कर अव यूरोप आदि देशों में भी मास न खाने की एक सभा हुई है उस सभा के डाक्टरों ने और सभ्यों ने वनस्पति का खाना पसन्द किया है तथा प्रत्येक स्थान में वह सभा (वेजेटरियन सुसाइटी) मास-भक्षण के दोषों और वनस्पति के गुणों का उपदेश कर रही है।

७ शिकार खेलना—सातवा महा व्यसन शिकार खेलना है, इस के विषय में धर्म-शास्त्रों में लिखा है कि— इस के फन्दे में पड़ कर अनेक राजे महाराजों ने नरकादि दुःखों को पाया है, वर्त्तमान समय में वहुत से कुलीन राजे महाराजे भी इस दुर्व्यसन में संलग्न हो रहे है, यह वडे ही शोक की वात है, देखो! राजाओं का मुख्य धर्म तो यह है कि सव प्राणियों की रक्षा करें अर्थात् यदि शत्रु भी हो और शरण में आ जावे तो उस को न मारें, अव विचारना चाहिये कि वेचारे मृग आदि जीव तृण खाकर अपना जीवन विताते है उन अनाथ और निरपराध पशुओं पर शस्त्र का चलाना और उन को मरण जन्य असह्य दु ख का देना कौन सी बहादुरी का काम है? अलवत्ता प्राचीन समयके आर्य राजा लोग सिंहकी शिकार किया करते थे जैसा कि कल्पसूत्र की टीका में वर्णन है कि—त्रिपृष्ठ वासुदेव जगल में गया और वहा सिंह को देखकर मन में विचारने लगा कि न तो यह रथपर चढ़ा हुआ है, न इस के पास शस्त्र है और न शरीर पर

१–मनु जी ने अपने वनाये हुए धर्मशास्त्र (मनुस्मृति) में मासभक्षण के निषेध प्रकरण में मांस शब्द का यह अर्थ दिखलाया है कि जिस जन्तु को मैं इस जन्ममें खाता हू वही जन्तु मुझ को पर जन्म मे खावेगा, उक्त महात्मा के इस शब्दार्थ से मासभक्षकों को शिक्षा लेनी चाहिये॥

२–वासुदेव के वल का परिमाण इस प्रकार समझना चाहिये कि वारह आदमियों का वल एक वैल में होता है, दश वैलों का वल एक घोडे मे होता है, वारह घोडों का वल एक भैंसे में होता है, पाच सौ भैंसों का वल एक हाथी में होता है, पाच सौ हाथियों का वल एक सिंह में होता है, दो सौ सिंहों का वल एक अष्टापद (जन्तुविशेष) में होता है, दो सौ अष्टापदों का वल एक वलदेव मे होता है, दो वलदेवों का वल एक वासुदेव में होता है, नौ वासुदेवों का वल एक चक्रवर्त्ती मे होता है, दश लाख चक्रवर्त्तियों का वल एक देवता मे होता है, एक करोड देवताओ का वल एक इन्द्र में होता है और तीन काल के इन्द्रों का वल एक अरिहन्त मे होता है, परन्तु वर्त्तमान समय में ऐसे वलधारी नहीं हैं, जो अपने वल का घमण्ड करते हैं वह उन की भूल है, पूर्व समय मे आदमियों मे और पशुओं मे जैसी ताकत होती थी अव वह नहीं होती है, पूर्व काल के राजे भी ऐसे वलवान् होते थे कि यदि तमाम प्रजा भी वदल जावे तो अकेले ही उस को वश में ला सकते थे, देखो! ससार मे शक्ति भी एक वडी अपूर्व वस्तु है जो कि पूर्वपुण्य से ही प्राप्त होती है॥

कवच ही है, इस लिये मुझको भी उचित है कि मैं भी रथ से उतर कर शस्त्र छोड़ कर और कवच को उतार कर इस के साथ युद्ध कर इसे जीतूं, इस प्रकार मन में विचार कर रथ से उतर पड़ा और शस्त्र तथा कवच का त्याग कर सिंह को दूर से ललकारा, जब सिंह नजदीक आया तब दोनों हाथों से उस के दोनों ओठों को पकड़ कर जीर्ण वस्त्र की तरह चीर कर जमीन पर गिरा दिया परन्तु इतना करने पर भी सिंह का जीव शरीर से न निकला तब राजा के सारथि ने सिंह से कहा कि—हे सिंह! जैसे तू मृग राज है उसी प्रकार तुझ को मारनेवाला यह नरराज है, यह कोई साधारण पुरुष नहीं है, इस लिये अब तू अपनी वीरता के साहस को छोड़ दे, सारथि के इस वचन को सुन कर सिंह के प्राण चले गये।

वर्त्तमान समय में जो राजा आदि लोग सिंह का शिकार करते हैं वे भी अनेक छल बल कर तथा अपनी रक्षा का पूरा प्रबंध कर छिपकर शिकार करते हैं, बिना शस्त्र के तो सिंह की शिकार करना दूर रहा किन्तु समक्ष में ललकार कर तलवार या गोली के चलानेवाले भी आर्यावर्त्त भर में दो चार ही नरेश होंगे।

धर्मशास्त्रों का सिद्धान्त है कि जो राजे महाराजे अनाथ पशुओं की हत्या करते हैं उन के राज्य में प्रायः दुर्भिक्ष होता है, रोग होता है तथा वे सन्तानरहित होते हैं, इत्यादि अनेक कष्ट इस भव में ही उन को प्राप्त होते हैं और पर भव में नरक में जाना पड़ता है, विचार करने की बात है कि— यदि हमको दूसरा कोई मारे तो हमारे जीव को कैसी तकलीफ मालूम होती है, उसी प्रकार हम भी जब किसी प्राणी को मारें तो उस को भी वैसा ही दुःख होता है, इसलिये राजे महाराजों का यही मुख्य धर्म है कि अपने २ राज्य में प्राणियों को मारना बंद कर दें और स्वयं भी उक्त व्यसन को छोड़ कर पुत्रवत् सब प्राणियों की तन मन धन से रक्षा करें, इस संसार में जो पुरुष इन बड़े सात व्यसनों से बचे हुए हैं उन को धन्य है और मनुष्यजन्म का पाना भी उन्हीं का सफल समझना चाहिये, और भी बहुत से हानिकारक छोटे २ व्यसन इन्हीं सात व्यसनों के अन्तर्गत हैं, जैसे-१-कौड़ियों से तो जुए को न खेलना परन्तु अनेक प्रकार का फाटका (चांदी आदिका सट्टा) करना, २-भई चीजों में पुरानी और नकली चीजों का बेचना, कम तोलना, दगाबाजी करना, ठगाई करना (यह सब चोरी ही है), ३-अनेक प्रकार का नशा करना, ४-घर का असबाब चाहें बिक ही जावे परन्तु गोठ गूँगाकर नित्य मिठाई खाये बिना नहीं रहना, ५-रात्रि को बिना खाये चैन का न पड़ना, ६-इधर उधर की चुगली करना, ७-सत्य न बोलना आदि, इस प्रकार अनेक तरह के व्यसन हैं, जिन के फन्दे में पड़ कर उन से पिण्ड छुड़ाना कठिन हो जाता है, जैसा कि किसी कवि ने कहा है कि-"डांकण मन्त्र अफीम रस। तस्कर ने जूआ॥ पर घर रीझी

का मणी, ये छूटसी मूआ" ॥ १ ॥ यद्यपि कवि का यह कथन बिलकुल सत्य है कि ये बातें मरने पर ही छूटती है तथापि इन की हानि को समझकर जो पुरुष सच्चे मन से छोडना चाहे वह अवश्य छोड सकता है, इस लिये व्यसनी पुरुष को चाहिये कि यथाशक्य व्यसन को धीरे २ कम करता जावे, यही उस (व्यसन) के छूटने का एक सहज उपाय है तथा यदि आप व्यसन में पड़ कर उस से निकलने में असमर्थ हो जावे तो अपनी सन्तति का तो उस से अवश्य बचाव रक्खे जिस से भावी में वह तो दुर्दशा में न पडे ।

इन पूर्व कहे हुए सात महा व्यसनों के अतिरिक्त और भी बहुत से कुव्यसन है जिन से बचना बुद्धिमानों का परम धर्म है, हे पाठक गणो ! यदि आप को अपनी शारीरिक उन्नति का, सुखपूर्वक धन को प्राप्त करने का तथा उस की रक्षा का ध्यान है, एव धर्म के पालन करने की, नाना आपत्तियों से बचने की तथा देश और जाति को आनन्द मगल में देखने की अभिलाषा है तो सदा अफीम, चण्डू, गाजा, चरस, धतूरा और भांग आदि निकृष्ट पदार्थों से बचिये, क्योंकि ये पदार्थ परिणाम में बहुत ही हानि करते हैं, इसी लिये धर्मशास्त्रो में इन के त्याग के लिये अनेकशः आज्ञा दी गई है, यद्यपि इन पदार्थों के सेवन करने वालोंकी दुर्दशा को बुद्धिमानोंने देखा ही होगा तथापि सर्व साधारण के जानने के लिये इन पदार्थों के सेवन से उत्पन्न होनेवाली हानियों का सक्षेप से वर्णन करते हैं:—

अफीम—अफीम के खाने से बुद्धि कम हो जाती है तथा मगज़ में खुश्की बढ़ जाती है, मनुष्य न्यूनबल तथा सुस्त हो जाता है, मुख का प्रकाश कम हो जाता है, मुखपर स्याही आ जाती है, मास सूख जाता है तथा खाल मुरझा जाती है, वीर्यका बल कम हो जाता है, इस का सेवन करनेवाले पुरुष घटोंतक पीनेक[1] में पड़े रहते हैं, उन को रात्रि में नींद नहीं आती है और प्रातःकाल में दिन चढ़ने तक सोते है जिस से आयु कम हो जाती है, दो पहर को शौच के लिये जाकर वहा (शौचस्थान मे) घण्टों तक बैठे रहते है, समय पर यदि अफीम खाने को न मिले तो आखो में जलन पडती है तथा हाथ पैर ऐंठने लगते है, जाडे के दिनों में उनको पानी से ऐसा डर लगता है कि वे स्नानतक नहीं करते है इस से उन के शरीर में दुर्गंध आने लगती है, उन का रंग पीला पड़ जाता है तथा खासी आदि अनेक प्रकार के रोग हो जाते हैं ।

चण्डू—इस के नशे से भी ऊपर लिखी हुई सब हानिया होती है, हा इस में इतनी विशेषता और भी है कि इस के पीने से हृदय में मैल जम जाता है जिस

१—पीनक मे पडने पर उन लोगों को यह भी सुध बुध नहीं रहती है कि हम कहा है, ससार किधर है और समार मे क्या हो रहा है ॥

कवच ही है, इस लिये मुझको भी उचित है कि मैं भी रथ से उतर कर शस्त्र छोड़ कर और कवच को उतार कर इस के साथ युद्ध कर इसे जीतूं, इस प्रकार मन में विचार कर रथ से उतर पड़ा और शस्त्र तथा कवच का त्याग कर सिंह को दूर से ललकारा, जब सिंह नजदीक आया तब दोनों हाथों से उस के दोनों ओठों को पकड़ कर जीर्ण वस्त्र की तरह चीर कर जमीन पर गिरा दिया परन्तु इतना करने पर भी सिंह का जीव शरीर से न निकला तब राजा के सारथि ने सिंह से कहा कि—हे सिंह! जैसे तू मृगराज है उसी प्रकार तुझ को मारनेवाला यह नरराज है, यह कोई साधारण पुरुष नहीं है, इस लिये अब तू अपनी वीरता के साहस को छोड़ दे, सारथि के इस वचन को सुन कर सिंह के प्राण चले गये।

वर्तमान समय में जो राजा आदि लोग सिंह का शिकार करते हैं वे भी अनेक छल बल कर तथा अपनी रक्षा का पूरा प्रबंध कर छिपकर शिकार करते हैं, बिना शस्त्र के तो सिंह की शिकार करना दूर रहा किन्तु समक्ष में ललकार कर तलवार या गोली के चलानेवाले भी आर्यावर्त भर में दो चार ही नरेश होंगे।

धर्मशास्त्रों का सिद्धान्त है कि जो राजे महाराजे अनाथ पशुओं की हत्या करते हैं उन के राज्य में प्रायः दुर्भिक्ष होता है, रोग होता है तथा वे सन्तानरहित होते हैं, इत्यादि अनेक कष्ट इस भव में ही उन को प्राप्त होते हैं और पर भव में नरक में जाना पड़ता है, विचार करने की बात है कि— यदि हमको दूसरा कोई मारे तो हमारे जीव को कैसी तकलीफ मालूम होती है, उसी प्रकार हम भी जब किसी प्राणी को मारें तो उस को भी वैसा ही दुःख होता है, इसलिये राजे महाराजों का यही मुख्य धर्म है कि अपने २ राज्य में प्राणियों को मारना बंद कर दें और स्वयं भी उक्त व्यसन को छोड़ कर पुत्रवत् सब प्राणियों की तन मन धन से रक्षा करें, इस संसार में जो पुरुष इन बड़े सात व्यसनों से बचे हुए हैं उन को धन्य है और मनुष्यजन्म का पाना भी उन्हीं का सफल समझना चाहिये, और भी बहुत से हानिकारक छोटे २ व्यसन इन्हीं सात व्यसनों के अन्तर्गत हैं, जैसे—१—कौड़ियों से तो जुए को न खेलना परन्तु अनेक प्रकार का फाटका (चांदी आदि का सट्टा) करना, २—नई चीजों में पुरानी और नकली चीजों का बेचना कम तोलना, दगाबाजी करना, ठगाई करना (यह सब चोरी ही है), ३—अनेक प्रकार का नशा करना, ४—घर का असबाब चाहें बिक ही जावे परन्तु मोल मँगाकर नित्य मिठाई खाये बिना नहीं रहना, ५—रात्रि को बिना खाये चैन का न पड़ना, ६—इधर उधर की चुगली करना, ७—सत्य न बोलना आदि, इस प्रकार अनेक तरह के व्यसन हैं, जिन के फन्दे में पड़ कर उन से पिण्ड छुड़ाना कठिन हो जाता है, जैसा कि किसी कवि ने कहा है कि—'हाकम मात्र अफीम रस। तस्कर ने जूआ॥ पर घर रीझी

का मणी, ये छूटसी मूआ" ॥ १ ॥ यद्यपि कवि का यह कथन बिलकुल सत्य है कि ये बातें मरने पर ही छूटती हैं तथापि इन की हानि को समझकर जो पुरुष सच्चे मन से छोड़ना चाहे वह अवश्य छोड़ सकता है, इस लिये व्यसनी पुरुष को चाहिये कि यथाशक्य व्यसन को धीरे २ कम करता जावे, यही उस (व्यसन) के छूटने का एक सहज उपाय है तथा यदि आप व्यसन में पड़ कर उस से निकलने में असमर्थ हो जावे तो अपनी सन्तति का तो उस से अवश्य बचाव रक्खे जिस से भावी में वह तो दुर्दशा में न पडे ।

इन पूर्व कहे हुए सात महा व्यसनों के अतिरिक्त और भी बहुत से कुव्यसन है जिन से बचना बुद्धिमानों का परम धर्म है, हे पाठक गणो ! यदि आप को अपनी शारीरिक उन्नति का, सुखपूर्वक धन को प्राप्त करने का तथा उस की रक्षा का ध्यान है, एवं धर्म के पालन करने की, नाना आपत्तियों से बचने की तथा देश और जाति को आनन्द मगल में देखने की अभिलाषा है तो सदा अफीम, चण्डू, गाजा, चरस, धतूरा और भाग आदि निकृष्ट पदार्थों से बचिये, क्योंकि ये पदार्थ परिणाम में बहुत ही हानि करते हैं, इसी लिये धर्मशास्त्रो में इन के त्याग के लिये अनेकशः आज्ञा दी गई है, यद्यपि इन पदार्थों के सेवन करने वालोंकी दुर्दशा को बुद्धिमानोंने देखा ही होगा तथापि सर्व साधारण के जानने के लिये इन पदार्थों के सेवन से उत्पन्न होनेवाली हानियों का संक्षेप से वर्णन करते है:—

अफीम—अफीम के खाने से बुद्धि कम हो जाती है तथा मगज़ में खुश्की बढ़ जाती है, मनुष्य न्यूनबल तथा सुस्त हो जाता है, मुख का प्रकाश कम हो जाता है, मुखपर स्याही आ जाती है, मास सूख जाता है तथा खाल मुरझा जाती है, वीर्यका बल कम हो जाता है, इस का सेवन करनेवाले पुरुष घंटोंतक पीनक[1] में पड़े रहते हैं, उन को रात्रि में नींद नही आती है और प्रात.काल में दिन चढ़ने तक सोते है जिस से आयु कम हो जाती है, दो पहर को शौच के लिये जाकर वहा (शौचस्थान में) घण्टो तक बैठे रहते है, समय पर यदि अफीम खाने को न मिले तो आखों में जलन पड़ती है तथा हाथ पैर ऐंठने लगते है, जाडे के दिनों में उनको पानी से ऐसा डर लगता है कि वे स्नानतक नहीं करते है इस से उन के शरीर में दुर्गंध आने लगती है, उन का रग पीला पड़ जाता है तथा खासी आदि अनेक प्रकार के रोग हो जाते है ।

चण्डू—इस के नशे से भी ऊपर लिखी हुई सब हानिया होती है, हा इस में इतनी विशेषता और भी है कि इस के पीने से हृदय में मैल जम जाता है जिस

१—पीनक मे पडने पर उन लोगों को यह भी सुध बुध नहीं रहती है कि हम कहा हैं, ससार किधर है और संसार मे क्या हो रहा है ॥

से हृदयसम्बंधी अनेक महाभयंकर रोग उत्पन्न हो जाते हैं तथा हृदय निर्बल हो जाता है ।

गांजा, चरस, धतूरा और भांग—इन चारों पदार्थों के भी सेवन से खांसी और दमा आदि अनेक हृदय रोग हो जाते हैं, मगज में विक्षिप्तता को स्थान मिलता है, विचारशक्ति, स्मरणशक्ति और बुद्धि का नाश होता है, इन का सेवन करनेवाला पुरुष सभ्य मण्डली में बैठने योग्य नहीं रहता है तथा अनेक रोगों के उत्पन्न होने से इन का सेवन करनेवालों को आधी उम्रमें ही मरना पड़ता है ।

तमाखू—मान्यवरो ! वैद्यक ग्रन्थों के देखने से यह स्पष्ट प्रकट होता है कि तमाखू संखिया से भी अधिक नशादार और हानिकारक पदार्थ है अर्थात् किसी वनस्पति में इस के समान वा इस से अधिक नशा नहीं है ।

डाक्टर टेलर साहब का कथन है कि—"जो मनुष्य तमाखू के कारखानों में काम करते हैं उन के शरीरमें नाना प्रकार के रोग हो जाते हैं अर्थात् थोड़े ही दिनों में उन के शिर में दर्द होने लगता है, जी मचलाने लगता है, बल घट जाता है, सुस्ती घेरे रहती है, भूख कम हो जाती है और काम करने की शक्ति नहीं रहती है" इत्यादि ।

बहुत से वैद्यों और डाक्टरोंने इस बातको सिद्ध कर दिया है कि इस के धुएँ में जहर होता है इसलिये इस का धुआं भी शरीर की आरोग्यता को हानि पहुँचाता है अर्थात् जो मनुष्य तमाखू पीते हैं उन का जी मचलाने लगता है, कय होने लगती है, हिचकी उत्पन्न हो जाती हैं, श्वास कठिनता से लिया जाता है और नाड़ी की चाल धीमी पड़ जाती है, परन्तु जब मनुष्य को इस का अभ्यास हो जाता है तब ये सब बातें सेवन के समय में कम मालूम पड़ती हैं परन्तु परिणाम में अत्यन्त हानि होती है ।

डाक्टर स्मिथ का कथन है कि—तमाखू के पीने से दिल की चाल पहिले तेज और फिर धीरे २ कम हो जाती है ।

वैद्यक ग्रन्थों से यह स्पष्ट प्रकाशित है कि—तमाखू बहुत ही जहरीली (विषैली) वस्तु है, क्योंकि इस में नेकोशिया कार्बानिक एसिड और मगनेशिया आदि वस्तुयें मिली रहती हैं जो कि मनुष्य के दिल को निर्बल कर देती हैं कि जिस से खांसी और दम आदि नाना प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं, आरोग्यता में अन्तर पड़ जाता है, दिल पर कीट अर्थात् मैल जम जाता है, तिल्ली का रोग उत्पन्न होकर चिरकालतक ठहरता है तथा प्रतिसमय में जी मचलाता रहता है और मुख में दुर्गन्ध बनी रहती है, अब बुद्धि से विचारने की यह बात है कि लोग मुसलमान तथा ईसाई आदि से तो बड़ा ही परहेज करते हैं परन्तु बाह री तमाखू ! तेरी प्रीति में लोग धर्म कर्म की भी कुछ सुध और परवाह न कर सब ही से परहेज को छोड़ देते हैं, देखो ! तमाखू के बनाने

वाले मुसलमान लोग अपने ही वर्त्तनों में उसे बनाते है और अपने ही घडों का पानी डालते है उसी को सब लोग मजे से पीते है, इस के अतिरिक्त एक ही चिलम को हिन्दू मुसलमान और ईसाई आदि सब ही लोग पीते है कि जिस से आपस में अवखरात (परमाणु) अदल बदल हो जाते है तो अब कहिये कि हिन्दू तथा मुसलमान या ईसाइयों में क्या अन्तर[2] रहा, क्या इसी का नाम शौच वा पवित्रता है ?

प्रिय सुजनो ! केवल पदार्थविद्या के न जानने तथा वैद्यकशास्त्र पर ध्यान न देने के कारण इस प्रकार की अनेक मिथ्या वार्तों में फँसे हुए लोग चले जाते है जिस से सब के धर्म कर्म तथा आरोग्यता आदि में अन्तर पड गया और प्रतिदिन पडता जाता है, अतः अब आप को इन सब हानिकारक बातो का पूरा २ प्रबन्ध करना योग्य है कि जिस से आप के भविष्यत् (होनेवाले) सन्तानों को पूर्ण सुख तथा आनन्द प्राप्त हो ।

हे विद्वान् पुरुषो ! और हे प्यारे विद्यार्थियो ! आपने स्कूलो में पदार्थविद्या को अच्छे प्रकार से पढ़ा है इसलिये आप को यह बात अच्छे प्रकार से मालूम है और हो सकती है कि तमाखू में कैसे २ विषैले पदार्थ मिश्रित है और आप लोगो को इस के पीने से उत्पन्न होनेवाले दोष भी अच्छे प्रकार से प्रकट है अतः आप लोगों का परम कर्त्तव्य है कि इस महानिकृष्ट हुके के पीने का स्वयं त्याग कर अपने भाइयो को भी इस से बचावें क्योंकि सत्य विद्याका फल परोपकार[3] ही है ।

इस के अतिरिक्त यह भी सोचने की बात है कि तमाखू आदि के पीने की आज्ञा किसी सत्यशास्त्र में नहीं पाई जाती है किन्तु इस का निषेध ही सर्व शास्त्रों में देखा जाता है, देखो—

[4]तमाखुपत्रं राजेन्द्र, भज माज्ञानदायकम् ॥
तमाखुपत्रं राजेन्द्र, भज माज्ञानदायकम् ॥ १ ॥

अर्थात् हे राजेन्द्र ! अज्ञान को देनेवाले तमाखुपत्र (तमाखू के पत्ते) का सेवन मत करो किन्तु ज्ञान और लक्ष्मी को देनेवाले उस आखुपत्र अर्थात् गणेश देव का सेवन करो ॥ १ ॥

१–तमाखू बनाते समय उन का पसीना भी उमी मे गिरता रहता है, इत्यादि अनेक मलीनतायें भी तमाखू मे रहती हैं ॥

२–देखो ! जिस चिलम को प्रथम एक हिन्दू ने पिया तो कुछ उस के भीतर अवखरात गर्मी के कारण अवश्य चिलम मे रह जावेंगे फिर उसी को मुसलमान और ईसाई ने पिया तो उस के भी अवखरात गर्मी के कारण उस चिलम मे रह गये, फिर उमी चिलम को जब ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्यादि ने पिया तो कहिये अब परस्पर मे क्या भेद रह गया ?

३–इसी प्रकार देशी पाठशालाओं तथा कालिजों के शिक्षको को भी योग्य है कि वे कदापि इस हुक्के को न पियें कि जिन की देखादेखी सम्पूर्ण विद्यार्थी भी चिलम का दम लगाने लगते हैं ॥

४–यह सुभाषितरत्नभाडागार के प्रारभ मे श्लोक है ॥

धूम्रपानरतं विप्रं, सत्कृत्य ददाति य ॥
दाता स नरकं याति, ब्राह्मणो ग्रामशूकरः ॥ २ ॥

अर्थात् जो मनुष्य तमाखू पीनेवाले ब्राह्मण का सत्कार कर उस को दान देता है वह (दाता) पुरुष नरक को जाता है और वह ब्राह्मण ग्राम का शूकर (सुअर) होता है ॥ २ ॥ इसी प्रकार शार्ङ्गधर वैद्यक ग्रन्थ में लिखा है कि—"**बुद्धिं लुम्पति यद्द्रव्यं मदकारि तदुच्यते**" अर्थात् जो पदार्थ बुद्धि का लोप करता है उस को मदकारी कहते हैं ।

ऊपर के कथन से स्पष्ट है कि तमाखू आदि का पीना महाहानिकारक है परन्तु वर्तमान में लोग शास्त्रों से तो बिलकुल अनभिज्ञ हैं अतः उन को पदार्थों के गुण और दोष विदित नहीं हैं, दूसरे—देशभर में इन कुव्यसनों का अत्यन्त प्रचार बढ़ रहा है जिस से लोग प्रायः उसी तरफ को झुक जाते हैं, तीसरे—कुव्यसनी लोगों ने भोले लोगों को बहकाने और फँसाने के लिये इन निकृष्ट वस्तुओंके सेवन की प्रशंसा में ऐसी २ कपोलकल्पित कवितायें रचडाली हैं जिन्हें सुनकर वे बेचारे भोले पुरुष उन वाक्यों को मानो शास्त्रीय वाक्य समझ कर बहक जाते और फँस जाते हैं अर्थात् उन्हीं निकृष्ट पदार्थों का सेवन करने लगते हैं, देखिये ! इन कुव्यसनी लोगों की कविता की तरफ दृष्टि डालिये और विचारिये कि इन्हों ने भोले भाले लोगों के फँसाने के लिये कैसी माया रची है:—

अफीमैं—**गज गाहण शाहण गर्दा, हाथ या देण हमल्ल ॥**
मतवालां पौरष चढे, आयो मीत अमल्ल ॥ १ ॥

१—यह पद्मपुराण का वाक्य है ॥

२—तात्पर्य यह है कि मदकारी पदार्थ बुद्धि का लोप करता है ॥

३—आजकल राजपूतों में अफीम बड़ी ही जरूरी चीज समझी जाती है अर्थात् इस की जरूरत सन्तान के पैदा होने सगाई, ब्याह, ब्याई और गमी आदि प्रत्येक मौके पर उन को होती है, इन अवसरों में वे लोग अफीम को बांटते हैं और मनुहार कर के लोगों को पिलाते हैं उन लोगों में सब से बढ़ कर बात यह है कि किसी आदमी से चाहे कितनी ही अदावत हो परन्तु जब उस के हाथ से अफीम ले ली तो बस उसी दम सफाई हो जावेगी राजपूत लोग अफीम के नशे को मद बजाजी कहते हैं अर्थात् मद के नशे से इसे अच्छा मानते हैं और इस का बहुत बखान भी करते हैं यद्यपि अफीम का प्रचार उत्तर पश्चिम मारवाड़ में और मद्य का प्रचार पूर्व में अधिक है तथापि प्रायः शरीर और धामीरदार शेष सब से ही बिगड़ते और मरते हैं क्योंकि ये लोग इस का पीना बचपन से ही भोले व्यक्तियों की दारुण संगति में पड़ कर सीख जाते हैं, फिर—लोभी डाडी ढोली और भाट आदि मद्य की तारीफ के गीत बना २ कर उन के नशे को प्रतिदिन बढ़ाते रहते हैं, ऐसी कि मद्य की महिमा कुछ ऊपर लिख कर बतलाई है, इस का प्रचार केवल किसी देशविशेष में ही हो यह बात नहीं है किन्तु संपूर्ण आर्यावर्त्त में यही दशा हो रही है इस लिये बुद्धिमानों का यही कर्त्तव्य है कि अपने और समस्त देश के हिताहित का विचार कर इन कुव्यसनों को दूर करें ॥

हुक्का—अस चढ़ना अस उचकना, नित खाना खिर गोश ॥
जगमांही जीनाजिते, पीना चम्मर पोश ॥ १ ॥
शिरपर बँधा न सेहरा, रण चढ़ किया न रोस ॥
लाहा जग में क्या लिया, पिया न चम्मर पोस ॥ २ ॥
हुक्का हरि को लाड़लो, राखे सब को मान ॥
भरी सभा में यों फिरे, ज्यों गोपिन में कान ॥ ३ ॥

मद्य—दारू पियो रंग करो, राता राखो नैंण ॥
वेरी थांरा जलमरे, सुख पावेला सैंण ॥ १ ॥
दारू दिल्ली आगरो, दारू बीकानेर ॥
दारू पीयो साहिवा, कोई सौ रुपियां रो सेर ॥ २ ॥
दारू तो भक भक करे, सीसी करे पुकार ॥
हाथ पियालो धन खड़ी, पीयो राजकुमार ॥ ३ ॥

गांजा—जिस ने न पी गांजे की कली। उस लड़के से लड़की भली॥१॥

भांग—घोट छांण घट में धरी, उठत लहर तरङ्ग ॥
विना मुक्त वैकुण्ठ में, लिया जात है भङ्ग ॥ १ ॥
जो तू चाहै मुक्त को, सुण कलियुग का जीव ॥
गंगोदक मे छाण कर, भंगोदक कूं पीव ॥ २ ॥
भंग कहै सो वावरे, विजया कहैं सो कूर ॥
इसका नाम कमलापती, रहे नैन भर पूर ॥ ३ ॥

तमाखू-कृष्ण चले वैकुण्ठ को, राधा पकड़ी बांहि ॥
यहां तमाखू खायलो, वहां तमाखू नांहि ॥ १ ॥ इत्यादि ।

प्रिय सुजन पुरुषो ! विचारशीलों का अब यही कर्त्तव्य है कि वैद्यशास्त्र आदिसे निषिद्ध तथा महा हानिकारक इन कुव्यसनों का जड़मूल से ही नाश कर दें अर्थात् स्वय इन का त्याग कर दूसरों को भी इन की हानिया समझा कर इन का त्याग करने की शिक्षा दें, क्योंकि इन से ऊपर कही हुई हानियो के सिवाय कुछ ऐसी भी हानिया होती हैं जिन से मनुष्य किसी काम का ही नहीं रहता है देखिये। जो पुरुप जितना इन नशों को पीता है उतनी ही उसकी रुचि और भी अधिक वढ़ती जाती है जिस से उस का फिर इन व्यसनो से निकलना कठिन हो कर इन्हीं में जीवन का त्याग करना पड़ता है, दूसरे–इन में रुपया तथा समय भी व्यर्थ जाता है, तीसरे–इन के सेवन से वहुधा मनुप्य पागल भी हो जाते है और वहुतसे मर भी जाते है, चौथे–छोटे २ मनुष्यों में भी नशेवाजो की प्रतिष्ठा नहीं रहती है फिर भला वड़े लोगों में तो ऐसों को कौन पूंछता है, अतः समझदार लोगों को इन की ओर दृष्टि भी नहीं डालनी चाहिये ॥

सर्वहितकारी कर्त्तव्य ॥

शरीर की आरोग्यता रखने की जो २ मुख्य बातें हैं उन सब का जानना और उन्हीं के अनुसार चलना मनुष्यमात्र को योग्य है, इस विषय में आवश्यक बातों का संग्रह संक्षेप से इस ग्रन्थमें कर दिया गया है, अब विचारणीय विषय यह है कि—शरीर की आरोग्यता के लिये जो २ आवश्यक नियम हैं वे सब ही सामान्य प्रजा जनों के आधीन नहीं हैं किन्तु उन में से कुछ नियम स्वाधीन हैं तथा कुछ नियम पराधीन हैं, देखो! आरोग्यताजन्य सुख के लिये प्रत्येक पुरुष को उचित आहार और विहार की आवश्यकता है इस लिये उस के नियमों को समझ कर उन की पाबन्दी रखना यह प्रत्येक पुरुष का धर्म है क्योंकि आहार और विहार के आवश्यक नियम प्रत्येक पुरुष के स्वाधीन हैं परन्तु नगरों की सफाई और आवश्यक प्रबन्धों का करना कराना आदि आवश्यक नियम प्रत्येक पुरुष के आधीन नहीं हैं किन्तु ये नियम सभा के लोगों के तथा सर्कार के नियत किये हुए शहर सफाई खाते के अमलदारों के आधीन हैं, इसलिये इन को चाहिये कि प्रजा के आरोग्यताजन्य सुख के लिये पूरी २ निगरानी रक्खें तथा जो २ आरोग्यता के आवश्यक उपाय प्रजा के आधीन हैं उन पर प्रजा को पूरा ध्यान देना चाहिये, क्योंकि उन उपायों के न जानने से तथा उन पर पूरा ध्यान न देने से अज्ञान प्रजाजन अनेक उपद्रवों और रोगों के कारणों में फँस जाते हैं, इसलिये आरोग्यता के आवश्यक उपायों का जानना प्रत्येक छोटे बड़े मनुष्य का मुख्य कार्य है, क्योंकि इन के न जानने से बड़ी हानि होती है, देखो! कभी २ एक मनुष्य की ही अज्ञानता से हजारों लाखों मनुष्यों की जान को जोखम पहुँच जाती है, परन्तु यह सब ही जानते हैं कि साधारण पुरुष उपदेश और शिक्षा के विना कुछ भी नहीं सीख सकते हैं और न कुछ जान सकते हैं, इसलिये अज्ञान प्रजाजनों को आहार और विहार आदि आरोग्यता की आवश्यक बातों से विज्ञ करना मुख्यतया विद्वान् वैद्य डाक्टर और सर्कार का मुख्य कर्त्तव्य है अर्थात् लोग आरोग्यता के द्वारा सुखी रहें इस प्रकार के सद्भाव को हृदय में रखनेवाले वैद्य और डाक्टरों को वैद्यक विद्या का अवश्य उद्धार करना चाहिये अर्थात् वैद्य और डाक्टरों को उचित है कि वे रोगों की उत्पत्ति के कारणों को खोज २ कर जाहिर करें, उन कारणों को हटावें और वे कारण फिर न प्रकट हो सकें, इस का पूरा प्रबंध करें और उन कारणों के हटाने के योग्य उपायों से प्रजाजनों को विज्ञ करें तथा प्रजाजनों को चाहिये कि उन आवश्यक उपायों को समझ कर उन्हीं के अनुसार वर्त्ताव करें उस से विरुद्ध कदापि न चलें, क्योंकि उस से विरुद्ध चलने से नियमों की पाबन्दी जाती रहती है और प्रबन्ध व्यर्थ जाता है, देखो! म्यूनीसिपल कमेटी के अधिकारी आदि जन बड़े २ रास्तों में गली कूंचों में तथा सब मुहल्लों में आकर तथा खोज कर चाहें जितनी सफाई रक्खें परन्तु

जब तक प्रजा जन अपने २ घर आंगन में इकट्ठी हुई रोगों को पैदा करनेवाली मलीनता को नहीं हटावेंगे तथा आहार विहार के आवश्यक स्वाधीन नियमों को नहीं जानेंगे तथा उन्हीं के अनुसार वर्त्ताव नहीं करेंगे तबतक शहर की सफाई और किये हुए आवश्यक प्रबन्धों से कुछ भी फल नहीं निकल सकेगा ।

वर्त्तमान में जो आरोग्यता में बाधा पड़ रही है और सब आवश्यक नियम और प्रबन्ध अस्थिरवत् हो रहे हैं उस का कारण यही है कि इस समय में अज्ञान लोग अधिक हैं अर्थात् पढ़े लिखे भी बहुत से पुरुष शरीर रक्षा के नियमों से अनभिज्ञ हैं, यदि इस पर कोई पुरुष यह प्रश्न करे कि अब तो स्कूलों में अनेक विद्यायें और अनेक कलायें सिखलाई जाती हैं जिन के सीखने से लोगों का अज्ञान दूर हो रहा है फिर आप कैसे कहते हैं कि वर्त्तमान समय में अज्ञान लोग अधिक हैं ? तो इस का उत्तर यह है कि—वर्त्तमान समय में स्कूलों में जो अनेक विद्यायें और अनेक कलायें सिखलाई जाती हैं यह तो तुम्हारा कहना ठीक है परन्तु शरीर संरक्षण की शिक्षा स्कूलो में पूरे तौर से नहीं दी जाती है, इसीलिये हम कहते हैं कि पढ़े लिखे भी बहुत से पुरुष शरीर रक्षाके नियमो से अनभिज्ञ हैं, देखो ! मारवाड़ में जो विद्या के पढ़ाने का क्रम है उसे तो हम पहिले लिखही चुके हैं कि उन की पढाई शिक्षा के विषय में खाख धूल भी नहीं है, अब गुजराती, बंगला, मराठी और अंग्रेजी पाठशालाओं की तरफ दृष्टि डालिये तो यही ज्ञात होगा कि उक्त पाठशालाओ में तथा उक्त भाषाओं की पुस्तकों में जिस क्रम से कसरत, हवा, पानी और प्रकाश आदि का विषय पढ़ाने के लिये नियत किया गया है वह क्रम ऐसा है कि छोटे २ बालको की समझ में वह कभी नहीं आ सकता है, क्योंकि वह शिक्षा का क्रम अति कठिन है तथा संक्षेप में वर्णित है अर्थात् विस्तार से वह नहीं लिखा गया है, देखो ! थोडे वर्ष पूर्व अंग्रेज़ी के पांचवें धोरण में सी-नेटरी प्रायमर अर्थात् आरोग्यविद्याका प्रवेश किया गया था परन्तु उस का फल अबतक कुछ भी नहीं दीख पडता है, इस का कारण यही प्रतीत होता है कि उस का प्रारंभ वर्ष के अन्तिम दिनों में कक्षा में होता है और परीक्षा करनेवाले पुरुष अमुक २ विषय के प्रश्नों को प्रायः पूछते हैं इस बात का खयालकर शिक्षक और माष्टर लोग मुख्य २ विषयों के प्रश्नों को घोखा २ के कण्ठाग्र करा देते हैं अर्थात् सब विषयों को याद नही कराते हैं, परन्तु इस में माष्टरों का कुछ भी दोष नही है, क्योंकि दूसरे जो मुख्य २ विषय नियत हैं उन्हीं को सिखाने के लिये जब शिक्षकों को काफी समय नहीं मिलता है तो भला जो विषय गौण पक्ष में नियत किये है उनपर शिक्षक पुरुष पूरा ध्यान कब दे सकते हैं, ऐसी दशा में सर्कार को ही इस विषय में ध्यान देकर इस विद्या को उन्नति देनी चाहिये अर्थात् इस आरोग्यप्रद वैद्यक विद्या को सर्व विद्याओं में शिरोमणि समझ

सर्वहितकारी कर्त्तव्य ॥

शरीर की आरोग्यता रखने की जो २ मुख्य बातें हैं उन सब का जानना और उन्हीं के अनुसार चलना मनुष्यमात्र का काम है, इस विषय में आवश्यक बातों का वर्णन संक्षेप से इस प्रकरण में कर दिया गया है, अब विचारणीय विषय यह है कि-शरीर की आरोग्यता के लिये जो २ आवश्यक नियम हैं वे सब ही राजा व प्रजा जनों के आधीन नहीं हैं किन्तु उन में से कुछ नियम स्वाधीन हैं तथा कुछ नियम पराधीन हैं, देखो! आरोग्यताजन्य सुख के लिये प्रत्येक पुरुष को उचित आहार और विहार की आवश्यकता है इस लिये उस के नियमों को समझ कर उन की पाबन्दी रखना यह प्रत्येक पुरुष का काम है क्योंकि आहार और विहार के आवश्यक नियम प्रत्येक पुरुष के स्वाधीन हैं परन्तु नगरों की सफाई और आवश्यक भवनों का करना कराना आदि आवश्यक नियम प्रत्येक पुरुष के आधीन नहीं हैं किन्तु ये नियम राजा के लोगों के तथा सर्कार के नियत किये हुए शहर सफाई आदि के अमलदारों के आधीन हैं, इसलिये इन को चाहिये कि प्रजा के आरोग्यताजन्य सुख के लिये पूरी २ निगरानी रक्खें तथा जो २ आरोग्यता के आवश्यक उपाय प्रजा के आधीन हैं उन पर प्रजा को पूरा ध्यान देना चाहिये, क्योंकि उन उपायों के न जानने से तथा उन पर पूरा ध्यान न देने से अज्ञान प्रजाजन अनेक उपद्रवों और रोगों के कारणों में फँस जाते हैं, इसलिये आरोग्यता के आवश्यक उपायों का जानना प्रत्येक छोटे बड़े मनुष्य का मुख्य काम है, क्योंकि इन के न जानने से बड़ी हानि होती है, देखो! कभी २ एक मनुष्य की ही असावधानता से हजारों लाखों मनुष्यों की जान को जोखम पहुंच जाती है, परन्तु यह सब ही जानते हैं कि साधारण पुरुष उपदेश और शिक्षा के बिना कुछ भी नहीं सीख सकते हैं और न कुछ जान सकते हैं, इसलिये अज्ञान प्रजाजनों को आहार और विहार आदि आरोग्यता की आवश्यक बातों से विज्ञ करना मुख्यतया विद्वान्, वैद्य डाक्टर और सर्कार का मुख्य कर्तव्य है अर्थात् लोग आरोग्यता के द्वारा सुखी रहें इस प्रकार के सद्भाव का प्रबन्ध में रहनेवाले वैद्य और डाक्टरों को वैद्यक विद्या का अवश्य उद्धार करना चाहिये अर्थात् वैद्य और डाक्टरों को उचित है कि वे रोगों की उत्पत्ति के कारणों को खोज २ कर जाहिर करें, उन कारणों को हटावें और वे कारण फिर न प्रकट हो सकें, इस का पूरा प्रबंध करें और उन कारणों के हटाने के योग्य उपायों से प्रजाजनों को विज्ञ करें तथा प्रजाजनों को चाहिये कि उन आवश्यक उपायों को समझ कर उन्हीं के अनुसार बर्ताव करें उस से विरुद्ध कदापि न चलें, क्योंकि उस से विरुद्ध चलने से नियमों की पाबन्दी जाती रहती है और अनर्थ खड़ा होता है, देखो! म्यूनीसिपाल्टी कमेटी के अधिकारी आदि जन बड़े २ रास्तों में गली कूचों में तथा सब स्थलों में जाकर तथा खोज कर चाहे जितनी सफाई रक्खें परन्तु

जब तक प्रजा जन अपने २ घर आंगन में इकट्ठी हुई रोगों को पैदा करनेवाली मलीनता को नहीं हटावेंगे तथा आहार विहार के आवश्यक स्वाधीन नियमों को नहीं जानेंगे तथा उन्हीं के अनुसार वर्त्ताव नहीं करेंगे तबतक शहर की सफाई और किये हुए आवश्यक प्रबन्धों से कुछ भी फल नहीं निकल सकेगा ।

वर्त्तमान में जो आरोग्यता में वाधा पड़ रही है और सब आवश्यक नियम और प्रबन्ध अस्थिरवत् हो रहे हैं उस का कारण यही है कि इस समय में अज्ञान लोग अधिक हैं अर्थात् पढ़े लिखे भी बहुत से पुरुष शरीर रक्षा के नियमों से अनभिज्ञ हैं, यदि इस पर कोई पुरुष यह प्रश्न करे कि अब तो स्कूलों में अनेक विद्यायें और अनेक कलायें सिखलाई जाती हैं जिन के सीखने से लोगों का अज्ञान दूर हो रहा है फिर आप कैसे कहते हैं कि वर्त्तमान समय में अज्ञान लोग अधिक हैं ? तो इस का उत्तर यह है कि—वर्त्तमान समय में स्कूलों में जो अनेक विद्यायें और अनेक कलायें सिखलाई जाती हैं यह तो तुम्हारा कहना ठीक है परन्तु शरीर संरक्षण की शिक्षा स्कूलों में पूरे तौर से नहीं दी जाती है, इसीलिये हम कहते हैं कि पढ़े लिखे भी बहुत से पुरुष शरीर रक्षाके नियमों से अनभिज्ञ हैं, देखो ! मारवाड़ में जो विद्या के पढ़ाने का क्रम है उसे तो हम पहिले लिखही चुके हैं कि उन की पढ़ाई शिक्षा के विषय में खाख धूल भी नहीं है, अब गुजराती, बंगला, मराठी और अंग्रेज़ी पाठशालाओं की तरफ दृष्टि डालिये तो यही ज्ञात होगा कि उक्त पाठशालाओ में तथा उक्त भाषाओं की पुस्तकों में जिस क्रम से कसरत, हवा, पानी और प्रकाश आदि का विषय पढ़ाने के लिये नियत किया गया है वह क्रम ऐसा है कि छोटे २ बालकों की समझ में वह कभी नहीं आ सकता है, क्योंकि वह शिक्षा का क्रम अति कठिन है तथा संक्षेप में वर्णित है अर्थात् विस्तार से वह नहीं लिखा गया है, देखो ! थोड़े वर्ष पूर्व अंग्रेजी के पांचवें धोरण में सीनेटरी प्रायमर अर्थात् आरोग्यविद्याका प्रवेश किया गया था परन्तु उस का फल अबतक कुछ भी नहीं दीख पड़ता है, इस का कारण यही प्रतीत होता है कि उस का प्रारंभ वर्ष के अन्तिम दिनों में कक्षा में होता है और परीक्षा करनेवाले पुरुष अमुक २ विषय के प्रश्नों को प्रायः पूछते हैं इस बात का खयालकर शिक्षक और मास्टर लोग मुख्य २ विषयों के प्रश्नों को घोखा २ के कण्ठाग्र करा देते हैं अर्थात् सब विषयों को याद नही कराते है, परन्तु इस में मास्टरों का कुछ भी दोष नहीं है, क्योंकि दूसरे जो मुख्य २ विषय नियत हैं उन्हीं को सिखाने के लिये जब शिक्षको को काफी समय नही मिलता है तो भला जो विषय गौण पक्ष में नियत किये है उनपर शिक्षक पुरुष पूरा ध्यान कब दे सकते हैं, ऐसी दशा में सर्कार को ही इस विषय में ध्यान देकर इस विद्या को उन्नति देनी चाहिये अर्थात् इस आरोग्यप्रद वैद्यक विद्या को सर्व विद्याओं में शिरोमणि समझ

कर धारण में मुख्य विषय के तरीके पर नियत करना चाहिये, हमारे इस कथन का यह प्रयोजन नहीं है कि श्रीमती सरकार का क्लास में नियत कर के सम्पूर्ण ही वैद्यक विद्या की शिक्षा देनी चाहिये किन्तु हमारे कथन का प्रयोजन यही है कि कम से कम हवा, पानी, खुराक, सफाई और कसरत आदि के गुण दोषोंकी आवश्यक शिक्षा तो अवश्य देनी ही चाहिये जिन के बर्ताव से प्रतिदिन ही मनुष्य को काम पड़ता है, इस के लिये सहज उपाय यही है कि पाठशालाओं में पढ़ाने के लिये नियत की हुई पुस्तकों के पाठों में पहिले तो इस विद्या के सामान्य नियम बतलाये जावें जो कि सरल और उपयोगी हों तथा जिन के समझने में विद्यार्थियों को अधिक परिश्रम न पड़े, पीछे इस (विद्या) के सूक्ष्म विषयों को उन्हीं पुस्तकों के पाठों में प्रविष्ट करना चाहिये ।

वर्तमान में जो इस विद्या की कुछ बातें स्कूलों में पढ़ी पढ़ाई भी जाती हैं उन्हें गौण जानकर उन पर पूरे तौर से न तो कुछ ध्यान दिया जाता है और न वे बातें ही ऐसी हैं कि पाठकों के चित्तपर अपना कुछ प्रभाव डाल सकें इसलिये उन का पढ़ना पढ़ाना बिलकुल व्यर्थ जाता है, देखो ! स्कूल का एक विद्वान् विद्यार्थी भी (जिस ने इस विद्या की यह शिक्षा पाई है तथा दूसरों को भी शिक्षा के देने का अधिकारी हो गया है कि साफ पानी पीना चाहिये, साफ वस्त्र पहरने चाहियें तथा प्रकृति के अनुकूल खुराक खानी चाहिये) घर में जाकर प्रतिदिन उपयोग में आनेवाली वस्तुओं के भी गुण और दोष को न जान कर उन का उपयोग करता है, भला कहिये यह कितनी अज्ञानता है, क्या स्कूल में शिक्षा के पाने का यही फल है ? स्कूल का पदार्थ विद्या का वेत्ता एक विद्यार्थी यदि यह नहीं जानता है कि मूली और दूध तथा मूंग की दाल और दूध मिश्रित कर खाने से शरीर में थोड़ा २ जहर प्रतिदिन इकट्ठा होकर भविष्यत् में क्या २ बिगाड़ करता है तो उस के पदार्थविद्या के पढ़ने से क्या लाभ है ? भला सोचो तो सही कि ऊपर लिखी हुई एक छोटीसी बात का भी वह विद्यार्थी जब कि स्वप्न में भी नहीं जानता है तो आरोग्यता के विशेष नियमों को वह क्यों कर जान सकता है; वा कैसे उन के जानने का अधिकारी हो सकता है ? स्कूल के उच्च कक्षा के विद्यार्थी भी जो कि आकाश के ग्रहों और तारों की गति के तथा उन के परिवर्तन के नियमों को कण्ठाग्र पढ़ जाते हैं ऋतुओं के परिवर्तन में शरीर में क्या २ परिवर्तन होता है उस के लिये किस २ आहार विहार की संभाल रखनी चाहिये इत्यादि बातों को बिलकुल नहीं जानते हैं, इसी प्रकार सूर्य और चन्द्रमा के ग्रहण के कारण को तथा उन के आकर्षण से समुद्रों में होनेवाले ज्वार भाट (उतार चढ़ाव) के नियम को तो वे (विद्यार्थी) समझ सकेंगे परन्तु इस ग्रहण का शरीर पर कैसा असर होता है और उस के आकर्षण से शरीर में

१–जिन के विषय में हम पहिले लिख चुके हैं ॥

किस प्रकार की न्यूनाधिकता होती है इन बातो का ज्ञान उन विद्यार्थियों को कुछ भी नहीं होता है, सिर्फ यही कारण है कि वैद्यक शास्त्र के नियमों का ज्ञान उन्हें न होने से वे स्वय उन नियमों का पालन नहीं करते है तथा दूसरों को नियमों का पालन करते हुए देखकर उन का उलटा उपहास करते हैं, जैसे देखो ! द्वितीया, पञ्चमी, अष्टमी, एकादशी, चतुर्दशी, पूर्णमासी और अमावस, इन तिथियो में उपवास और व्रत नियम का करना वैद्यक विद्या के आधार से बुद्धिमान् आचार्यों ने धर्म रूप में प्रविष्ट किया है, इस के असली तत्त्व को न समझ कर वे इस का हास्य कर अपनी विशेष अज्ञानता को प्रकट करते हैं, इसी प्रकार भाद्रपद में पित्त के सञ्चित हो चुकने से उस के कोप का समय समीप आता है इस लिये सर्वज्ञ ने पर्यूषण पर्व को स्थापन किया जिस में तेला[1] उपवासादि करना होता है तथा इस की समाप्ति होने पर पारणे[2] में लोग मीठा रस और दूध आदि पदार्थों को खाते है जिन के खाने से पित्त की बिलकुल शान्ति हो जाती है, देखो ! चरक ने दोषों को पकाने के लिये लघन को सर्वोपरि पथ्य लिखा है उस में भी पित्त और कफ के लिये तो कहना ही क्या[3] है, इसी नियम को लेकर आश्विन (आसोज) सुदि सप्तमी वा अष्टमी से जैन धर्म वाले नौ दिन तक आंबिल[4] करते है तथा मन्दिरों में जाकर दीप और धूप आदि सुगन्धित वस्तुओ से स्नात्र अष्टप्रकारी और नवपदादि पूजा करते हैं जिस से शरद् ऋतु की हवा भी साफ होती है, क्योंकि इस ऋतु की हवा बहुत ही ज़हरीली होती है, शरीर में जो पित्त से रक्तसम्बधी विकार होता है वह भी आंबिल के तँप से शान्त हो जाता है, इसी प्रकार वसन्त ऋतु की हवा को शुद्ध करने के लिये भी चैत्र सुदि सप्तमी वा अष्टमी से लेकर नौदिन तक यही (पूर्वोक्त तप) विधिपूर्वक किया जाता है जिस के पूजासम्बन्धी व्यवहार से हवा साफ होती है तथा उक्त तप से कफ की भी शान्ति होती है, इसी प्रकार से जो २ पर्व बाधे गये है वे सब वैद्यक विद्या के आश्रय से ही धर्मव्यवस्था प्रचारार्थ उस सर्वज्ञ के द्वारा आदिष्ट (कथित) है, एव अन्य मतों में भी देखने से वही व्यवस्था प्रतीत होती है जिस का वर्णन अभी कर चुके हैं, देखो । आश्विन के कृष्ण पक्ष में ब्राह्मणों ने जो श्राद्धभोजन चलाया है वह भी वैद्यक विद्या से सम्बध

१–तेला उपवास अर्थात् तीन दिन का उपवास ॥

२–उपवास अथवा व्रत नियम के समाप्त होने पर प्रकृत्यनुसार उपयोज्य वस्तु के उपयोग को पारण कहते हैं ॥

३–अर्थात् पित्त और कफ के पकने के लिये तथा उन की शान्ति के लिये तो लघन ही मुख्य उपाय है ॥

४–आंबिल तप उसे कहते हैं जिस मे सब रसो का त्याग कर चावल, गेहूँ, चना मूग और उडद इन पाच अन्नो मे से केवल एक अन्न निमक के विना ही सिजाया हुआ खाया जाता है और गर्म कियाहुआ जल पिया जाता है ॥

रसता है अर्थात् श्राद्ध में खीर दूध और मीठा खाया जाता है जिस के खाने से पित्त शान्त हो जाता है, तात्पर्य यह है कि प्राचीन विद्वानों और बुद्धिमानों ने जो २ व्यवहार ऋतु आदि के आहार विहार को विचार कर प्रवृत्त किये हैं वे सब ही मनुष्यों के लिये परम लाभदायक हैं परन्तु उन के नियमों को ठीक रीति से न जानना तथा नियमों के जाने विना उन का मनमाना वर्ताव करना कभी लाभदायक नहीं हो सकता है ।

अत्यन्त शोक के साथ लिखना पड़ता है कि यद्यपि प्राचीन सर्व व्यवहारों को पूर्वाचार्यों ने बड़ी दूरदर्शिता के साथ वैद्यक विद्या के नियमों के अनुसार बांधा था कि जिन से सर्व साधारण को आरोग्यता आदि सुखों की प्राप्ति हो परन्तु वर्तमान में इतनी अविद्या बढ़ रही है कि लोग उन प्राचीन समय के पूर्वाचार्यों के बांधे हुए सब व्यवहारों के असली तत्त्व को न समझ कर उन में भी मनमाना अनुचित व्यवहार करने लगे हैं जिस से सुख के बदले उलटी दुःख की ही प्राप्ति होती है, अत: सुजनों का यह कर्त्तव्य है कि इस ओर अवश्य ध्यान देकर वैद्यक विद्या के नियमों के अनुसार बांधे हुए व्यवहारों के तत्त्व को खूब समझ कर उन्हीं के अनुसार सर्व वर्ताव करें तथा दूसरों को भी उन की शिक्षा देकर उन में प्रवृत्त करें कि जिस से देश का कल्याण हो तथा सर्वसाधारण की हितसिद्धि होने से उभय लोक के सुखों की प्राप्ति हो ॥

यह चतुर्थ अध्याय का सदाचारवर्णन नामक नवां प्रकरण समाप्त हुआ ॥

१—परन्तु महा शोक का विषय है कि वर्तमान समय में अविद्या के कारण इस (श्राद्ध) में केवल एक मद मात्र पड़ता है अर्थात् प्रमाण मर्यादापूर्वक श्राद्ध की क्रिया वर्तमान में नहीं होती है इस लिये इस से लाभ की अपेक्षा हानि अधिक होती है क्यों। वैद्यकशास्त्रानुसार इस ऋतु में खीर का भोजन उत्तम है, क्योंकि खीर का भोजन पित्तनाशी और गर्म है परन्तु भारी भोजन की गये खाते हैं फिर रोगी। श्राद्ध में लोभीजनों ब्राह्मण पेट भर भर कर गले तक पराया माल खा जाते हैं और शरद् ऋतु में अधिक भोजन का करना मानों यम की डाढ़ में जाना है, फिर यह भी देखा गया है कि एक एक ब्राह्मण के आठ २ दश २ निमन्त्रण आते हैं और वे अज्ञानता से दक्षिणा के लोभ से सब जगह भोजन करते ही जाते हैं किन्तु यह नहीं समझते हैं कि अध्यशन (भोजन पर भोजन करना) सब रोगों का मूल है, यद्यपि पूर्व लिखे अनुसार श्राद्ध पक्षनिर्माण का प्रयोजन वैद्यक विद्या के अनुकूल ही होगा कि श्राद्ध में मधुर पदार्थों के सेवन से पित्त की शान्ति हो और बुद्धिमान् पुरुष इस पर ध्यान देने से इस के उक्त प्रयोजन को समझ सकते हैं और मान भी सकते हैं परन्तु वर्तमान समय में जो श्राद्ध में आचरण हो रहा है वह तो मनुष्य को रोगी बनाने का पूरा साधन है इस में कोई सन्देह नहीं है क्यों कि शरद् ऋतु में गरिष्ठ भोजन का पेट भर भर कर अत्यन्त खाना मानो प्राण को गुम करना है और बहुत से लोग इस के फल को पाते भी हैं परन्तु तो भी चेतन नहीं है और न यह विचारते हैं कि श्राद्ध का असली प्रयोजन क्या है ॥

दशवा प्रकरण—रोगसामान्य कारण ॥

रोग का विवरण ॥

आरोग्यता की दशा में अन्तर पड जाने का नाम रोग है परन्तु नीरोगावस्था और रोगावस्था के वीच की मर्यादा की कोई स्पष्ट पहिचान नहीं है कि–इन दोनों के वीच की दशा कैसी है और उस में क्या २ असर है, इस लिये इन दोनों अवस्थाओं का भी पूरा २ वर्णन करना कुछ कठिन वात है, देखो। आदमी को जरा भी खवर नहीं पड़ती है और वह एक दशा से धीरे २ दूसरी दशा में जा गिरता है अर्थात् नीरोगावस्था से रोगावस्था में पहुँच जाता है।

हमारे पूर्वाचार्यों ने इन दोनो अवस्थाओं का वर्णन यथाशक्य अच्छा किया है, उन्हीं के लेखानुसार हम भी पाठकों को इन के स्वरूप का बोध कराने के लिये यथाशक्ति चेष्टा करते हैं–देखो! नीरोगावस्था की पहिचान पूर्वाचार्यों ने इस प्रकार से की है कि–सव अंगों का काम स्वाभाविक रीति से चलता रहे–अर्थात् फेफसे से श्वासोच्छ्वास अच्छी तरह चलता रहे, होजरी तथा आँतों में खुराक अच्छी तरह पचता रहे, नसों में नियमानुसार रुधिर फिरता रहे, इत्यादि सव क्रियायें ठीक २ होती रहें, मल और मूत्र आदि की प्रवृत्ति नियमानुसार होती रहे तथा मन और इन्द्रिया स्वस्थ रह कर अपने २ कार्यों को नियमपूर्वक करते रहें, इसी का नाम नीरोगावस्था है, तथा शरीर के अङ्ग स्वाभाविक रीति से अपना २ काम न कर सकें अर्थात् श्वासोच्छ्वास में अड़चल मालूम हो वा दर्द हो, रुधिर की गति में विषमता हो, पाचन क्रिया में विघ्न हो, मन और इन्द्रियों में ग्लानि रहे, मल और मूत्र आदि वेगों की नियमानुसार प्रवृत्ति न हो, इसी प्रकार दूसरे अगों की यथोचित प्रवृत्ति न हो, इसी का नाम रोगावस्था है अर्थात् इन वातों से समझ लेना चाहिये कि आरोग्यता नहीं है किन्तु कोई न कोई रोग हुआ है, इस के सिवाय जव किसी आदमी के किसी अवयव में दर्द हो तो भी रोग का होना समझा जाता है- विशेष कर दाहयुक्त रोगों में, अथवा रोग की आरम्भावस्था में आदमी नरम हो जाता है, किसी प्रकार का दर्द उत्पन्न हो जाता है, शरीर के अवयव थक जाते हैं, शिर में दर्द होता है और भूँख नहीं लगती है, जव ऐसे लक्षण मालूम पड़ें तो समझ लेना चाहिये कि कोई रोग हो गया है, जव शरीर में रोग उत्पन्न हो जाय तव मनुष्य को उचित है कि–काम काज और परिश्रम को छोड़ कर रोग के हटाने की चेष्टा करे अर्थात् उस (रोग) को आगे न बढ़ने दे और उस के हेतु का निश्चय कर उस का योग्य उपाय करे, क्योंकि आरोग्यता का वना रहना ही जीव की स्वाभाविक स्थिति है और रोग का होना

निकृति है, परन्तु सब ही जानते और मानते हैं कि असातावेदनी नामक कर्म का जब उदय होता है तब चाहे आदमी कितनी ही सम्भाल क्यों न रक्खे परन्तु उस से भूल हुए विना कदापि नहीं रहती है (अवश्य भूल होती है) किन्तु जबतक सातावेदनी कर्म के योग से आदमी कुदरती नियम के अनुसार चलता है और जबतक शरीर को साफ हवा पानी और खुराक का उपयोग मिलता है तबतक रोग के आने का भय नहीं रहता है, यद्यपि आदमी का कभी न चूकना एक असम्भव बात है (मनुष्य चूके विना कदापि नहीं बच सकता है) तथापि यदि विचारशील आदमी शरीर के नियमों को अच्छे प्रकार समझ कर उन्हीं के अनुसार बर्ताव करे तो बहुत से रोगों से अपने शरीर को बचा सकता है ॥

रोग के कारण ॥

इस बात का सब्दा सब को अवश्य ध्यान रखना चाहिये कि कारण के विना रोग कदापि नहीं हो सकता है और रोग के कारण को ठीक २ जाने विना उस का अच्छे प्रकार से इलाज भी नहीं हो सकता है, इस बात को यदि आदमी अच्छी तरह समझ ले तो वह अभ्यन्तर (आन्तरिक) विचारशील होकर अपने रोग की परीक्षा को स्वयं ही कर सकता है और रोग की परीक्षा कर लेने के बाद उस का इलाज कर लेना भी स्वाधीन ही है, देखो! जब रोग का कारण निवृत्त हो जावेगा तब रोग कैसे रह सकता है? क्योंकि अज्ञानता से होचुकी हुई भूल को ज्ञान[1] से सुधारनेपर स्वाभाविक नियम ही अपना काम कर के फिर असली दशा में पहुंचा देता है, क्योंकि जीव का स्वरूप अव्याबाध (विशेष बाधा से रहित अर्थात् अव्यापात) है इसलिये शरीर में रोग के कारणों को रोकनेवाली स्वाभाविक शक्ति स्थित है, दूसरे—पुण्य के फलों के करने से भी सातावेदनी कर्म में भी रोग को रोकने की स्वाभाविक शक्ति है, इस लिये रोग के अनेक कारण तो उद्यम के विना ही स्वाभाविक क्रिया से दूर हो जाते हैं, क्योंकि एक दूसरे के विरोधी होने से रोग और स्वाभाविक शक्ति का, सातावेदनी और असातावेदनी कर्म का तथा निश्चयनय से जीव और कर्म का परस्पर शरीर में सदा झगड़ा रहता है, जब सातावेदनी कर्म की जीत होती है तब रोग को उत्पन्न करनेवाले कारणों का कुछ भी असर नहीं होता है किन्तु जब असातावेदनी कर्म की जीत होती है तब रोग के कारण

१—ज्ञान अर्थात् ज्ञान की बड़ी महिमा है क्योंकि ज्ञान से ही सब कुछ हो सकता है देखो! भगवती सूत्र में लिखा है कि— "ज्ञानी जिस कर्म को श्वासोच्छ्वास में तोड़ता है उस कर्म को अज्ञानी करोड़ वर्ष तक बड़ भोग करके भी नहीं तोड़ सकता है" ॥

२—क्योंकि रोग का निदान आदि ठीक रीति से समझ में आजाने पर रोग की चिकित्सा कर लेना कुछ भी कठिन बात नहीं है ॥

अपना असर कर उसी समय रोग को उत्पन्न कर देते हैं, देखो ! पुण्य के योग से वलवान् आदमी के शरीर में रोग के कारणों को रोकनेवाली शातावेदनी कर्म की शक्ति अधिक हो जाती है परन्तु निर्वल आदमी के शरीर में कम होती है इस लिये वलवान् आदमी वहुत ही कम तथा निर्वल आदमी वार २ वीमार होता है।

जीव की स्वाभाविक शक्ति ही शरीर में ऐसी है कि उस से रोगोत्पत्ति के पश्चात् उपाय के विना भी रोग दव जाता वा चला जाता है, इस के अनेक उदाहरण शरीर में प्रायः देखे जाते है जैसे—आख में जव कोई तृण आदि चला जाता है तव शीघ्र ही अपने आप पानी झर झर कर वह (तृण आदि) वह कर वाहर निकल पड़ता है, यदि कभी रात में वह (तृण आदि) आख में पड जाता है तो प्रातःकाल स्वयं ही कीचड़ (आख के मैल) के साथ निकल जाता है और आख विना इलाज किये ही अच्छी हो जाती है, कभी २ जव अधिक भोजन कर लेनेपर पेट में वोझा हो जाता है तथा दर्द होने लगता है तव प्रायः स्वय ही (अपने आप ही) अर्थात् ओषधि के विना ही वमन और दस्त होकर वह (वोझा और दर्द) मिट जाता है, यदि कोई इस वमन और दस्त को रोक देवे तो हानि होती है, क्योंकि जीव के साथ सम्वंध रखनेवाली जो शातावेदनी कर्म की शक्ति है वह पेट के भीतरी वोझे और दर्द को मिटाने के लिये वमन और दस्त की क्रिया को पैदा करती है, शरीरपर फोड़े, फफोले और छोटी २ गुमडिया होकर अपने आप ही मिट जाती हैं तथा जुखाम, शर्दी गर्मी और खासी होकर प्रायः इलाज के विना (अपने आप ही) मिट जाती है और इन के कारण उत्पन्न हुआ वुखार भी अपने आप ही चला जाता है, तात्पर्य यही है कि—अशातावेदनी कर्म तो जीव के साथ प्रदेशवन्ध में रहता है और वह अलग है किन्तु शातावेदनी कर्म जीव के सर्व प्रदेशों में सम्वद्ध है, इस लिये ऊपर लिखी व्यवस्था होती है, जैसे—पक्की दीवारपर सूखे चूने की वा धूल की मुट्ठी के डालने से वह (सूखा चूना वा धूल) थोड़ा सा रह जाता है, वाकी गिर जाता है, वाकी रहा वह हवा के झपट्टे से अलग हो जाता है, इसी क्रम से वह रोग भी स्वतः मिट जाता है, इस से यह सिद्ध हुआ कि जीव के साथ कर्मों के चार वन्ध है अर्थात् प्रकृति-वन्ध, स्थितिवन्ध, अनुभागवध और प्रदेशवन्ध, इन चारों वन्धों को लड्डू के दृष्टान्त से समझ लेना चाहिये—देखो ! जैसे सोंठ के लड्डू की प्रकृति अर्थात् स्वभाव तीक्ष्ण (तीखा) होता है, इस को प्रकृतिवन्ध कहते हैं, वह लड्डू महीने भरतक अथवा वीस दिनतक निज स्वभाव से रहता है इस के वाद उस में वह स्वभाव नही रहता है, इस को स्थिति-वंध अर्थात् अवधि (मुद्दत) वन्ध कहते है, छटाक भर का, आधपाव का अथवा पाव भर का लड्डू है, इत्यादि परिमाण आदि को अनुभागवध कहते है, जिन २ पदार्थों के परमाणुओं को इकट्ठा कर के वह लड्डू वाधा गया है उस में स्थित जो पदार्थों के प्रदेश

हैं उन को प्रदेशबंध कहते हैं, प्रकृतिबन्ध के विषय में इतना और भी जान लेना चाहिये कि—जैसे ज्ञानावरणी कर्म का स्वभाव आंखपर पट्टी बांधने के समान है उसी प्रकार भिन्न २ कर्मों का भिन्न २ स्वभाव है, इन्हीं कर्मों के सम्बंध के अनुकूल प्रदेशबंध के द्वारा उत्पन्न हुआ रोग साध्य तथा कष्टसाध्यतक होता है और स्थितिबंधवाला रोग साध्य, असाध्य और कष्टसाध्यतक होता है, इसी प्रकार अनेक दर्द कर्मस्वभावद्वारा अर्थात् स्वभाव से (बिना ही परिश्रम के) मिट जाते हैं परन्तु इस से यह नहीं समझ लेना चाहिये कि सब ही दर्द और रोग विना परिश्रम और बिना इलाज के अच्छे हो जावेंगे, क्योंकि कर्मस्वभावजन्य कारणों में अन्तर होता है, देखो! थोड़ी अज्ञानता से जब थोड़ा सा कष्ट अर्थात् अल्प बुखार सर्दी और पेट का दर्द आदि होता है तब तो यह शरीर में एक दो दिनतक गर्मी सर्दी दस्त और वमन आदि की थोड़ी सी तकलीफ देकर अपने आप मिट जाता है परन्तु बड़ी अज्ञानता से बड़ा कष्ट होता है अर्थात् बड़े २ रोग उत्पन्न होकर बहुत दिनोंतक ठहरते हैं तथा उन के कारणों को यदि न रोका जावे तो वे रोग गम्भीर रूप धारण करते हैं ।

पहिले कह चुके हैं कि—रोग के दूर करने का सब से पहिला उपाय रोग के कारण को रोकना ही है, क्योंकि रोग के कारण की रुकावट होने से रोग आप ही शान्त हो जायगा, जैसे यदि किसी को अजीर्ण से बुखार आ जावे और वह एक दो दिनतक लंघन कर लेवे अथवा मूंग की दाल का पतलासा पानी अथवा अन्य कोई लघु हलका पथ्य लेवे तो वह (अजीर्णजन्य ज्वर) शीघ्र ही चला जाता है परन्तु रोग के कारण को समझे विना यदि रोग की निवृत्ति के अनेक उपाय भी किये जावें तो भी रोग बढ़ जाते हैं, इस से सिद्ध है कि रोग के कारण को समझ कर तदनुकूल पथ्य करना जितना लाभदायक होता है उतनी लाभदायक ओषधि कदापि नहीं हो सकती है, क्योंकि देखो! पथ्य के न करनेपर ओषधि से कुछ भी लाभ नहीं होता है तथा पथ्य करने पर ओषधि की भी कोई आवश्यकता नहीं रहती है, इस बात का सदा ही ध्यान रखना चाहिये कि ओषधि रोग को नहीं मिटाती है किन्तु केवल रोग के मिटाने में सहायक मात्र होती है ।

ऊपर जिस का वर्णन कर चुके हैं वह रोग को मिटानेवाली जीव की स्वाभाविक शक्ति निश्चयनय से शरीर में रातदिन अपना काम करती ही रहती है, उस को जब सानुकूल

१—जैसे सोंठ का स्वभाव वायु और कफ के हरने का है ॥

२—जैसे भिन्न २ वस्तु का भिन्न २ स्वभाव पित्त के वायु के और कफ के हरने का है ॥

३—कर्मों का स्वरूप और विस्तारपूर्वक देखना हो तो कर्मप्रतिपादक ग्रन्थों में देखो ॥

४—जैसा कि वैद्यक ग्रन्थों में लिखा है कि—"पथ्ये सति गदार्त्तस्य किमौषधनिषेवणैः ॥ पथ्येऽसति गदार्त्तस्य किमौषधनिषेवणैः ॥ १ ॥" अर्थात् पथ्य के करने पर रोग से पीड़ित पुरुष को औषध सेवन की क्या आवश्यकता है और पथ्य के न करनेपर रोग से पीड़ित पुरुष को औषध सेवन से क्या लाभ है ॥ १ ॥

आहार और विहार मिलता है तथा सहायक औषधि का संसर्ग होता है तब शीघ्र ही संयोगरूप प्रमत्न के द्वारा कर्म विशेषजन्य रोगपर जीव की जीत होती है अर्थात् शाताकर्म असाताकर्म को हटाता है, यह व्यवहारनय है, जो वैद्य वा डाक्टर ऐसा अभिमान रखते हैं कि रोग को हम मिटाते है उन का यह अभिमान विलकुल झूठा है, क्योंकि काल और कर्म से वडे २ देवता भी हार चुके हैं तो मनुष्य की क्या गणना है? देखो! पांच समवायों में से मनुष्य का एक समवाय उद्यम है, वह भी पूर्णतया तब ही सिद्ध होता है जब कि पहिले को चारों समवाय अनुकूल हो, हा वेशक यद्यपि कई एक वाहरी रोग काट छाट के द्वारा योग्य उपचारो से शीघ्र अच्छे हो सकते है तथापि शरीर के भीतरी रोगों पर तो रोगनाशिका (रोग का नाश करनेवाली) स्वाभाविकी (स्वभावसिद्ध) शक्ति ही काम देती है, हा इतनी वात अवश्य है कि–उस में यदि दवा को भी समझ बूझकर युक्ति से दिया जावे तो वह (ओपधि) उस स्वभाविकी शक्ति की सहायक हो जाती है परन्तु यदि विना समझे बूझे दवा दी जावे तो वह (दवा) उस स्वाभाविकी शक्ति की क्रिया को बन्द कर लाभ के वदले हानि करती है, इन ऊपर लिखी हुई बातों से यदि कोई पुरुष यह समझे कि–जब ऐसी व्यवस्था है तो दवा से क्या हो सकता है? तो उस का यह पक्ष भी एकान्तनय है और जो कोई पुरुष यह समझे कि दवा से अवश्य ही रोग मिटता है तो उस का यह भी पक्ष एकान्तनय है, इस लिये स्याद्वाद का स्वीकार करना ही कल्याणकारी है, देखो! जीव की स्वाभाविक शक्ति रोग को मिटाती है यह निश्चयनय की वात है, किन्तु व्यवहारनय से दवा और पथ्य, ये दोनों मिलकर रोग को मिटाते हैं, व्यवहार के साधे विना निश्चय का ज्ञान नहीं हो सकता है इस लिये स्वाभाविक शक्तिरूप शातावेदनी कर्मको निर्वल करनेवाले कई एक कारण अशाताकर्म के सहायक होते है अर्थात् ये कारण शरीर को रोग के असर के योग्य कर देते है और जब शरीर रोग के असर के योग्य हो जाता है तब कई एक दूसरे भी कारण उत्पन्न होकर रोग को पैदा कर देते है।

रोग के मुख्यतया दो कारण होते हैं–एक तो दूरवर्त्ती कारण और दूसरे समीपवर्त्ती कारण, इन में से जो रोग के दूरवर्त्ती कारण है वे तो शरीर को रोग के असर के योग्य कर देते हैं तथा दूसरे जो समीपवर्त्ती कारण है वे रोग को पैदा कर देते हैं अब इन दोनों प्रकार के कारणों का सक्षेप से कुछ वर्णन करते हैं:—

सर्वज्ञ भगवान् श्रीऋषभदेव पूर्व वैद्यने रोग के कारणों के अनेक भेद अपने पुत्र हारीत[1] को बतलाये थे, जिन में से मुख्य तीन कारणों का कथन किया था, वे तीनों कारण

१–इन्हों ने हारीतसहिता नामक एक बहुत बडा वैद्यक का ग्रन्थ वनाया था, परन्तु वह वर्त्तमान मे पूर्ण उपलब्ध नहीं होता है, इस समय जो हारीतसहिता नाम वैद्यक का ग्रन्थ छपा हुआ उपलब्ध (प्राप्त) होता है वह इन का वनाया हुआ नहीं हैं किन्तु किसी दूसरे हारीत का वनाया हुआ है ॥

ये हैं—आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक, इन में से आध्यात्मिक कारण उन्हें कहते हैं कि जो कारण स्वकृत पाप कर्म के योग से माता पिता के रज वीर्य के विकार से तथा अपने आहार विहार के अयोग्य वर्ताव से उत्पन्न होकर रोगों के कारण होते हैं, इस प्रकार के कारणों में ऊपर कहे हुए निश्चय और व्यवहार, इन दोनों नयों को सर्वत्र जान लेना चाहिये, शस्त्र का जखम और जहरीले जन्तु से उत्पन्न हुआ जखम आदि अनेकविध रोगोत्पादक (रोगों को उत्पन्न करनेवाले) कारणों को तथा आगन्तुक कारणों को आधिभौतिक कारण कहते हैं, इन सब में निश्चयनय में तो पूर्व बद्ध कर्मोदय तथा व्यवहारनय में आगन्तुक कारण मानने चाहियें, हवा, जल, गर्मी, ठंढ और ऋतुपरिवर्त्तन आदि जो रोगों के स्वाभाविक कारण हैं उन्हें आधिदैविक कारण कहते हैं, इन कारणों में भी पूर्वोक्त दोनों ही नय समझने चाहियें।

इन्हीं त्रिविध कारणों को पुनः दूसरे प्रकार से तीन प्रकार का बतलाया है जिन का वर्णन इस प्रकार है —

स्वकृत—बहुत से रोग प्रत्येक मनुष्य के शरीर में अपनी ही भूलों से होते हैं, इस प्रकार के रोगों के कारणों को स्वकृत कहते हैं।

२–परकृत—बहुत से रोग अपने पड़ोसी की, अपनी जाति की, अपने सम्बंधी की अथवा अन्य किसी दूसरे मनुष्य की भूल से अपने शरीर में होते हैं, इस प्रकार के रोगों के कारणों को परकृत कहते हैं।

३–दैवकृत वा स्वभावजन्य—बहुत से रोग स्वाभाविक प्रकृति के परिवर्त्तन से शरीर में होते हैं, जैसे–ऋतु के परिवर्त्तन से हवा और मनुष्यों की प्रकृति में विकार होकर रोगों का उत्पन्न होना आदि, इस प्रकार के रोगों के कारणों को दैवकृत अथवा स्वभावजन्य कहते हैं।

यद्यपि रोग के कारणों के ये तीन भेद ऊपर कहे गये हैं परन्तु वास्तव में तो मनुष्यकृत और दैवकृत, ये दो ही भेद हो सकते हैं, क्योंकि रोगों के सब ही कारण इन दोनों भेदों में अन्तर्गत हो सकते हैं, इन दोनों प्रकार के कारणों में से मनुष्यकृत कारण उन्हें कहते हैं कि–जो कारण प्रत्येक आदमी अथवा आदमियों के समुदाय के द्वारा मिल कर बांधे हुए व्यवहारों से उत्पन्न होते हैं, इन मनुष्यकृत कारणों के भेद संक्षेप से इस प्रकार हो सकते हैं:—

१–क्योंकि मा बाप के रज वीर्य का विकार गर्भावस्था में गर्भिणी स्त्री का विरुद्ध वर्ताव और जन्म होने के पीछे माता आदि का अयोग्य आहार और विहार का करना कराना आदि कारण जीव के पूर्वकृत पाप के उदय से होकर दुःखरूप व्याधि को पैदा करते हैं ॥

१–प्रत्येक मनुष्यकृत कारण—प्रत्येक मनुष्य अपनी भूल से आहार विहार की अपरिमाणता से और नियमों के उल्लंघन करने से जिन रोग वा मृत्यु को प्राप्त होने के कारणों को उत्पन्न करे, इन को प्रत्येक मनुष्यकृत कारण कहते हैं।

२–कुटुम्बकृत कारण—कुटुम्ब में प्रचलित विरुद्ध व्यवहारों से तथा निकृष्ट आचारों से जो रोगोत्पत्ति के कारण होते है, इन को कुटुम्बकृत कारण कहते हैं।[1]

३–जातिकृत कारण—निकृष्ट प्रथा से तथा जाति के खोटे व्यवहारो से जो रोगोत्पत्ति के कारण होते है, इन्हें जातिकृत कारण कहते है, देखो! वहुत सी जातियों में वालविवाह आदि कैसी २ कुरीतिया प्रचलित है, ये सब रोगोत्पत्ति के दूरवर्त्ती कारण हैं, इसी प्रकार वोहरे आदि कई एक जातियों में बुरखे (पड़दा विशेप) का प्रचार है जिस से उन जातियों की स्त्रिया निर्वल और रोगिणी हो जाती है, इत्यादि रोगोत्पत्ति के अनेक जातिकृत कारण है जिन का वर्णन ग्रन्थविस्तारभय से नहीं करते है।

४–देशकृत कारण—वहुत से देशों की आव हवा (जल और वायु) के प्रतिकूल होने से अथवा वहा के निवासियों की प्रकृति के अनुकूल न होने से जो रोगोत्पत्ति के कारण होते हैं, इन्हें देशकृत कारण कहते हैं।

५–कालकृत कारण—वाल्य, यौवन और वृद्धत्व (बुढ़ापा) आदि भिन्न २ अवस्थाओं में तथा छः ऋतुओं में जो २ वर्त्ताव करना चाहिये उस २ वर्त्ताव के न करने से अथवा विपरीत वर्त्ताव के करने से जो रोगोत्पत्ति के कारण होते है, इन्हें कालकृत कारण कहते है।

६–समुदायकृत कारण—मनुष्यों का भिन्न २ समुदाय एकत्रित होकर ऐसे नियमों को वाधे जो कि शरीर संरक्षण से विरुद्ध होकर रोगोत्पत्ति के कारण हों, इन्हें समुदायकृत कारण कहते हैं।

७–राज्यकृत कारण—राज्य के जो नियम और प्रवध मनुष्यो की तासीर और जल वायु के विरुद्ध होकर रोगोत्पत्ति के कारण हों, इन्हें राज्यकृत कारण कहते हैं।

८–महाकारण—जिस से सव सृष्टि के जीव मृत्यु के भय में आ गिरें, इस प्रकार का कोई व्यवहार पैदा होकर रोगोत्पत्ति वा मृत्यु का कारण हो, इस प्रकार के कारण को महाकारण कहते हैं, अत्यन्त ही शोक का विषय है कि–यह कारण वर्त्तमान समय में प्रायः सर्व जातियों में इस आर्यावर्त्त में देखा जाता है, जैसे–देखो! ब्रह्मचर्य और गर्भाधान

१–इस का अनुभव वहुत पुरुषों को हुआ ही होगा कि–अनेक कुटुम्वों में वडे २ व्यसनों और दुराचारों के होने से उन कुटुम्वों के लोग रोगी वन जाते हैं ॥

२–जिन कारणों से पुरुपजाति तथा स्त्रीजाति की पृथक् २ हानि होती है वे भी (कारण) इन्हीं कारणों के अन्तर्गत हैं ॥

आदि सोलह संस्कार आदि व्यवहार वर्त्तमान समय में कैसे अधोदशापन्न (नीच दशा को पहुँचे हुए) हैं, जिन को पूर्वाचार्य तो शारीरिक उन्नति के शिखरपर ले जाने के कारण समझ कर धर्म की आवश्यक क्रियाओं में गिनते थे, परन्तु अब वर्त्तमान समय में उन का प्रचार शायद विरले ही स्थानों में होगा, इस का कारण यही है कि–वर्त्तमान समय में राज्यकृत अथवा जातिकृत न तो ऐसा कोई नियम ही है और न लोगों को इन बातों का ज्ञान ही है, इस से लोग अपने हिताहित को न विचार कर मनमाना वर्त्ताव करने लगे हैं, जिस का फल पाठकगण नेत्रों से प्रत्यक्ष ही देख रहे हैं कि मनुष्यगण तनक्षीण, मन मलीन, द्रव्यरहित और पुत्र तथा परिवार आदि से रहित हो गये हैं, इन सब दुःखों का कारण केवल न करने योग्य व्यवहार का करना ही है, इस सर्व हानि को व्यवहारनय की अपेक्षा समझना चाहिये, इसी को–दैव कहो, चाहे कर्म कहो, चाहे भवितव्यता कहो।

१–गृहस्थ धर्म के जो सोलह संस्कार हैं उन की विधि "आचारदिनकर" नामक संस्कृत ग्रन्थ में विस्तारपूर्वक लिखी है, उन संस्कारों के नाम ये हैं—गर्भाधान पुंसवन जन्म सूर्यचन्द्रदर्शन क्षीराशन षष्ठीपूजन शुचिकर्म, नामकरण अन्नप्राशन कर्णवेध केशवपन उपनयन विद्यारम्भ विवाह, व्रतारोप और अन्त्यकर्म इन सोलह संस्कारों की विधि बहुत बड़ी है अतः उस का वर्णन यहां पर नहीं किया जा सकता है परन्तु पाठकों के ज्ञानार्थ हम यहां पर सिर्फ इतना ही लिखते हैं कि कौन २ सा संस्कार किस २ समय कराया जाता है—१–गर्भाधान—यह संस्कार गर्भ रहने के बाद पांचवें महीने में कराया जाता है। २–पुंसवन—यह संस्कार गर्भवती के आठवें महीने में कराया जाता है। ३–जन्म–यह संस्कार सन्तान के जन्म समय में कराया जाता है अर्थात् जन्म समय में योग्य ज्योतिषी को बुला कर सन्तान के जन्मग्रहों को स्पष्ट कराना तथा उस ज्योतिषी को रुपया श्रीफल और मोहर आदि (जो कुछ देना उचित समझा जावे वा जैसी अपनी श्रद्धा और शक्ति हो) देना। ४–सूर्यचन्द्रदर्शन–यह संस्कार जन्मदिन से दो दिन व्यतीत होने पर (तीसरे दिन) कराया जाता है। ५–क्षीराशन–यह संस्कार भी सूर्यचन्द्रदर्शन संस्कार के ही दिन अथवा उस के दूसरे दिन कराया जाता है इस संस्कार में बालक को स्तनपान कराया जाता है–(पहिले लिख चुके हैं कि–जन्मकाल से तीन दिन तक प्रसूता स्त्री का दूध विकार युक्त रहता है इस लिये उन दिनोंमें औषधि के द्वारा अथवा गाय के दूध से बालक का रक्षण करना ठीक है किन्तु जो लोग इस में जल्दी करते हैं उन के बालकों के कई प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं, यह संस्कार भी हमारे उसी कथन की पुष्टि करता है)। ६–षष्ठीपूजन–यह संस्कार जन्म से छठे दिन कराया जाता है। ७–शुचिकर्म–यह संस्कार जन्म समय से दश दिन व्यतीत होने के बाद (ग्यारहवें दिन) कराया जाता है। ८–नामकरण– यह संस्कार भी शुचिकर्म संस्कार के दिन ही कराया जाता है। ९–अन्नप्राशन–यह संस्कार लड़के का छः महीने के बाद और लड़की का पांच महीने के बाद कराया जाता है। १०–कर्णवेध–यह संस्कार तीसरे पांचवें वा सातवें वर्ष में कराया जाता है, ११–केशवपन–यह संस्कार यथोचित समय में कराया जाता है, इस संस्कार में बालक के केश उताराये जाते हैं, इसे मुण्डनसंस्कार भी कहते हैं। १२–उपनयन–यह संस्कार आठ वर्ष की अवस्था के पीछे कराया जाता है। १३–विद्यारम्भ–यह संस्कार पांचवें वर्ष में कराया जाता है। १४–विवाह–यह संस्कार उस समय में कराया जाता है वा कराया जाना चाहिये जब कि स्त्री और पुरुष इस संस्कार के योग्य अवस्थावाले हो जावें क्योंकि जैसे कच्चा फल खाने से लाभकारी नहीं होता है तथा हानि भी करता है उसी प्रकार कच्ची अवस्था में विवाह का होना भी कुछ लाभ नहीं पहुँचाता है, प्रत्युत अनेक हानियों को करता है। १५–व्रतारोप–यह संस्कार वह है जिस में स्त्री पुरुष

पहिले जो हम ने पांच समवाय रोग होने के कारण लिखे हैं—वे सब कारण (पांच समवाय) निश्चय और व्यवहारनय के विना नहीं होते है, इन में से विजुली या मकान आदि के गिरनेद्वारा जो मरना या चोट का लगना है, वह भवितव्यता समवाय है तथा यह समवाय सब ही समवायों में प्रधान है, गर्मी और ठंढ के परिवर्त्तन से जो रोग होता है उस में काल प्रधान है, प्लेग और हैजा आदि रोगों के होने में बंधे हुए समुदायी कर्म को प्रधान समझना चाहिये, इस प्रकार पांचों समवायों के उदाहरणों को समझ लेना चाहिये, निश्चयनय के द्वारा तो यह जाना जाता है कि उस जीव ने वैसे ही कर्म बांधे थे तथा व्यवहारनय से यह जाना जाता है कि—उस जीव ने अपने उद्यम और आहार-विहार आदि को ही उस प्रकार के रोग के होने के लिये किया है, इस लिये यह जानना चाहिये कि—निश्चयनय तो जानने के योग्य और व्यवहारनय प्रवृत्ति करने के योग्य है, देखो! बहुत से रोग तो व्यवहारनय से प्राणी के विपरीत उपचार और वर्त्तावों

व्रत का ग्रहण करते हैं। १६—अन्तकर्म—इस संस्कार का दूसरा नाम मृत्युसंस्कार भी है, क्योंकि यह संस्कार मृत्युसमय में किया जाता है, इस संस्कार के अन्त में जीवात्मा अपने किये हुए कर्मों के अनुसार अनेक योनियों को तथा नरक और स्वर्ग आदि को प्राप्त होता है, इस लिये मनुष्य को चाहिये कि—अपनी जीवनावस्था में कर्मफल को विचार कर सदा शुभ कर्म ही करता रहे, देखो! संसार में कोई भी ऐसा नहीं है जो मृत्यु से बचा हो, किन्तु इस (मृत्यु) ने अपने परम सहायक कर्म के योग से सब ही को अपने आधीन किया है, क्योंकि जितना आयु कर्म यह जीवात्मा पूर्व भव से बांध लाया है उस का जो पूरा हो जाना है इसी का नाम मृत्यु है, यह आयु कर्म अपने पुण्य और पाप के योग से सब ही के साथ बंधा है अर्थात् क्या राजा और क्या रंक, सब ही को अवश्य मरना है और मरने के पश्चात् इस जीवात्मा के साथ यहां से अपने किये हुए पाप और पुण्य के सिवाय कुछ भी नहीं जाता है अर्थात् संसार की सकल सामग्री यहीं पड़ी रह जाती है, देखो! इस संसार में असंख्य राजे महाराजे और बादशाह आदि ऐश्वर्यपात्र हो गये परन्तु यह पृथ्वी और पृथ्वीस्थ पदार्थ किसी के साथ न गये, किन्तु केवल सब लोग अपनी २ कमाई का भोग कर रवाना हो गये, इसी तत्वज्ञानसम्बन्धिनी बात को यदि कोई अच्छे प्रकार सोच लेवे तो वह घमण्ड और परहानि आदि को कभी न करेगा तथा धीरे २ शुभ कर्मों के योग से उस के पुण्य की वृद्धि होती जावेगी जिस से उस के अगले भव भी सुधरते जावेंगे अर्थात् अगले भवों में वह सर्व सुखों से सम्पन्न होगा, परन्तु जो पुरुष इस तत्वसम्बन्धिनी बात को न सोच कर अशुभ कर्मों में प्रवृत्त रहेगा तो उन अशुभ कर्मों के योग से उस के पाप की वृद्धि होती जावेगी जिस से उस के अगले भव भी विगड़ते जावेंगे अर्थात् अगले भवों में वह सर्व दुःखों से युक्त होगा, तात्पर्य यही है कि—मनुष्य के किये हुए पुण्य और पाप ही उस को उत्तम और अधम दशा में ले जाते हैं तथा संसार में जो २ न्यूनाधिकतायें तथा भिन्नतायें दीख पड़ती हैं वे सब इन्हीं के योग से होती हैं, देखो! सब से अधिक बलवान् और ऐश्वर्यवान् बड़ा राजा चक्रवर्त्ती होता है, उस की शक्ति इतनी होती है कि—यदि तमाम संसार भी बदल जावे तो भी वह अकेला ही सब को सीधा (काबू में) कर सकता है, अर्थात् एक तरफ तमाम संसार का बल और एक तरफ उस अकेले चक्रवर्त्ती का बल होता है तो भी वह उसे वश में कर लेता है, यह उस के पुण्य का ही प्रभाव है कहिये इतना बड़ा पद पुण्य के विना कौन पा सकता है? तात्पर्य यही है कि—जिस ने पूर्व भव में तप किया है, देव गुरु और धर्म की सेवा की है तथा परोपकार करके धर्म की वुद्धि का विस्तार किया है उसी को धर्मज्ञता और राज्यपदवी मिल सकती है, क्योंकि राज्य और सुख का मिलना पुण्य का ही फल है,

से ही होते हैं, काल का तो स्वभाव ही वर्तने का है इस लिये कभी शीत और कभी गर्मी का परिवर्त्तन होता ही है, अतः अपनी प्रकृति, पदार्थों के स्वभाव और ऋतुओं के स्वभाव के अनुसार बर्ताव करना तथा उसी के अनुकूल आहार और विहार का उपचार करना प्राणी के हाथ में है, परन्तु कर्म अति विचित्र है, इस लिये कुदरती कारणों से जो रोग के कारण पैदा होते हैं वे कर्मवश विरले ही आदमियों के शरीर में रोगोत्पत्ति करते हैं, वातावरण में जो २ परिवर्त्तन होता है वह तो रोग तथा रोग के कारणों को दूर करनेवाला है परन्तु उस में भी अपने कर्म के वश कोई प्राणी रोगी हो जाते हैं, इस लिये ऋतुओं का जो परिवर्त्तन है वह वातावरण अर्थात् हवा की शुद्धि से ही सम्बन्ध रखता है परन्तु उस से भी जो पुरुष रोगी हो जाते हैं उन के लिये तो इन विकारों को दैवकृत भी मान सकते हैं, इसलिये वास्तव में तो यही उचित प्रतीत होता है कि-हर किस्म के रोगों को पहिचान कर ही उन का यथोचित इलाज करना चाहिये, यही इस ग्रन्थ की सम्मति है ॥

यदि मनुष्य पुण्य (धर्म) न करे तो उस के लिये दुःखागार (दुःख का घर) नरक गति तैयार है, भाइ! इस संसार की अनित्यता को तथा कर्मगति के चमत्कार को देखो कि जिन के घर में नव निधान और चौदह रत्न मौजूद थे सोलह हजार देवता जिन के यहां नौकर थे बत्तीस हजार मुकुटधारी राजे जिन का मुजरा करते थे जिन के यहां रूप सूरत रानियां चौरासी लाख घोड़े हाथी रथ दीवान नायबदीवान अष्ट निधान चौपरिये प्रधान चमर, बाग बगीचे राजधानी रत्नों की खानें सोना चांदी और लोहे की खानें दास दासी, नाटक मण्डली पाकशास्त्र के ज्ञाता रसोइये मिश्री तम्बोली मोसमूद, चाकर एक अमूल्य तोपें मसालची म्हावे पानकी और आराम के आवनेवाले निमित्तिये सदा हाजिर रहते थे कभी बेंगर, मेवे और वादशाहजादे जिन की सेवा में हर वक्त उपस्थित रहते थे और जिन की पालियों में भी अमूल्य रत्न झलझलाया करते थे वे भी चले गये तो भला दूसरों की गिनती को कौन करे! सोचो तो सही कि जब चक्रवर्तीसरीखे इस संसार में न रहे तो औरों की क्या कथा है! चक्रवर्ती के चमत्कार और ऐश्वर्य की तरफ देखो कि-लाख योजन का लम्बा चौड़ा जम्बूद्वीप है, उस में दक्षिण दिशा की तरफ भारतवर्ष नामक एक सब से छोटा टुकड़ा है, इस के यदि बड़े विभागों को गिनें तो छः खण्ड होते हैं, चक्रवर्ती उन छःओं खण्डों का मालिक होता है, वासुदेव तीन खण्ड का मालिक होता है, वासुदेव से छोटा माण्डलिक राजा होता है, उस से छोटा मुकुटबन्ध होता है और उस से भी छोटा छत्रपति होता है, इस प्रकार से नीचे उतरते २ यह भी मानना ही पड़ता है कि-सामन्तराज ठाकुर जागीरदार और सर्दार आदि भी अपनी पृथ्वी के राजा ही हैं, इसी प्रकार दीवान और नायबदीवान यद्यपि राजा नहीं हैं किन्तु राजा के नौकर हैं परन्तु तथापि सामान्य प्रजा के लिये तो वे भी राजा के ही तुल्य हैं, देखो! गवर्नर कलक्टर और गवर्नर आदि हाकिम भी यद्यपि राजा नहीं हैं किन्तु राजा के भेजे हुए अधिकारी हैं परन्तु तथापि बड़ों के भेजे हुए होने से वे भी राजा के ही तुल्य माने जाते हैं यह सब न्यूनाधिकता केवल पुण्य और पाप की न्यूनाधिकता से ही होती है, इस बात को सदा ध्यान में रखकर सब अधिकारियों को उचित है कि न्याय के ही मार्गपर चलें अन्याय के मार्ग का सर्वथा त्यागकर दूसरों से भी त्याग करावें देखो! पुण्य के प्रताप से एक समय वह था कि भारत राज्य के राजों को अनार्य देश के राज मुजरा करते थे परन्तु पुण्य की हीनता से आज वह समय है कि अनार्य देश के राज्य को आर्यदेश के राजे मुजरा करते हैं तात्पर्य यह है कि जब जिस का सितारा तेज होता है तब उसी का जोर शोर चारों ओर फैल जाता है, इसी लिये कहा

रोग के दूरवर्त्ती कारण ॥

देखो ! घर में रहनेवाले बहुत से मनुष्यों में से किसी एक मनुष्य को विषूचिका (हैजा वा कोलेरा) हो जाता है, दूसरों को नहीं होता है, इस का कारण यही है कि–रोगोत्पत्ति के करनेवाले जो कारण हैं वे आहार विहार के विरुद्ध वर्त्ताव से अथवा माता-पिता की ओर से सन्तान को प्राप्त हुई शरीर की प्राकृतिक निर्बलता से जिस आदमीका शरीर जिन २ दोषों से दब जाता है उसी के रोगोत्पत्ति करते हैं क्योंकि वे दोष शरीर को उसी रोग विशेष के उत्पन्न होने के योग्य बना कर उन्ही कारणों के सहायक हो जाते हैं इसलिये उन्ही २ कारणों से उन्हीं २ दोष विशेषवाला शरीर उन्हीं २ रोग विशेषों के ग्रहण करने के लिये प्रथम से ही तैयार रहता है, इस लिये वह रोग विशेष उसी एक आदमी के होता है किन्तु दूसरे के नहीं होता है, जिन कारणों से रोग की उत्पत्ति नही होती है परन्तु वे (कारण) शरीर को निर्बल कर उस को दूसरे रोगोत्पादक कारणों का स्थानरूप बना देते है वे रोग विशेष के उत्पन्न होने के योग्य बनानेवाले कारण कहलाते है, जैसे देखो ! जब पृथ्वी में वीज को बोना होता है तब पहिले पृथ्वी को जोतकर तथा खाद आदि डाल कर तैयार कर लेते है पीछे वीज को बोते हैं, क्योंकि जब पृथ्वी वीज के बोने के योग्य हो जाती है तब ही तो उस में बोया हुआ वीज उगता

जाता है कि–यह जीवात्मा जैसा २ पुण्य परभव में करता है वैसा २ ही उस को फल भी प्राप्त होता है, देखो ! मनुष्य यदि चाहे तो अपनी जीवित दशा मे धन्यवाद और सुख्याति को प्राप्त कर सकता है, क्योंकि धन्यवाद और सुख्याति के प्राप्त करने के सब साधन उस के पास विद्यमान हैं अर्थात् ज्यों ही गुणों की वृद्धि की त्यों ही मानो धन्यवाद और सुख्याति प्राप्त हुई, ये दोनों ऐसी वस्तुयें हैं कि इन के साधनभूत शरीर आदि का नाश होनेपर भी इन का कभी नाश नहीं होता है, जैसे कि तेल में फूल नहीं रहता है परन्तु उस की सुगन्धि वनी रहती है, देखो ! ससार में जन्म पाकर अलवत्तह सब ही मनुष्य प्राय. मानापमान सुख दु ख और हर्ष शोक आदि को प्राप्त होते हैं परन्तु प्रशसनीय वे ही मनुष्य हैं जो कि सम भाव से रहते हैं, क्योंकि सुख दु ख और हर्ष शोकादि वास्तव मे शत्रुरूप हैं, उन के आधीन अपने को कर देना अत्यन्त मूर्खता है, वहुत से लोग जरा से सुख से इतने प्रसन्न होते हैं कि फूले नहीं समाते हैं तथा जरा से दु ख और शोक से इतने घवडा जाते हैं कि जल में डूव मरना तथा विप खाकर मरना आदि निकृष्ट कार्य कर वैठते हैं, यह अति मूर्खों का काम है, भला कहो तो सही क्या इस तरह मरने से उन को स्वर्ग मिलता है ? कभी नहीं, किन्तु आत्मघातरूप पाप से बुरी गति होकर जन्म जन्म में कष्ट ही उठाना पडेगा, आत्मघात करनेवाले समझते हैं कि ऐसा करने से ससार में हमारी प्रतिष्ठा वनी रहेगी कि अमुक पुरुप अमुक अपराध के हो जाने से लज्जित होकर आत्मघात कर मर गया, परन्तु यह उन की महा मूर्खता है, यदि अच्छे लोगों की शिक्षा पाई है तो याद रक्खो कि इस तरह से जान को खोना केवल वुरा ही नहीं किन्तु महापाप भी है, देखो ! स्थानागसूत्र के दूसरे स्थान मे लिखा है कि–क्रोध, मान, माया और लोभ कर के जो आत्मघात करना है वह दुर्गति का हेतु है, अज्ञानी और अव्रती का मरना वालमरण में दाखिल है, ज्ञानी और सर्व विरति पुरुप का मरना पण्डित मरण है, देशविरति पुरुप का मरना वालपण्डित मरण है और आराधना करके अच्छे ध्यान मे मरना अच्छी गति के पाने का सूचक है ॥

है, इसीप्रकार बहुत से दोषरूप कारण शरीर को ऐसी दशा में ले आते हैं कि वह (शरीर) रोगोत्पत्ति के योग्य बन जाता है, पीछे उत्पन्न हुए नवीन कारण शीघ्र ही रोग को उत्पन्न कर देते हैं, यद्यपि शरीर को रोगोत्पत्ति के योग्य बनानेवाले कारण बहुत से हैं परन्तु ग्रन्थ के विस्तार के भय से उन सब का वर्णन नहीं करना चाहते हैं–किन्तु उन में से कुछ मुख्य २ कारणों का वर्णन करते हैं—१–माता पिता की निर्बलता। २–निज कुटुम्ब में विवाह। ३–बालकपन में (कच्ची अवस्था में) विवाह। ४–सन्तान का बिगड़ना। ५–अवस्था। ६–जाति। ७–जीविका वा वृत्ति (व्यापार)। ८–प्रकृति (तासीर)। बस शरीर को रोगोत्पत्ति के योग्य बनानेवाले ये ही आठ मुख्य कारण हैं, अब इन का संक्षेप से वर्णन किया जाता है —

१–माता पिता की निर्बलता—यदि गर्भ रहने के समय दोनों में से (माता पिता में से) एक का शरीर निर्बल होगा तो बालक भी अवश्य निर्बल ही उत्पन्न होगा, इसी प्रकार यदि पिता की अपेक्षा माता अधिक अवस्थावाली होगी अथवा माता की अपेक्षा पिता बहुत ही अधिक अवस्थावाला होगा (स्त्री की अपेक्षा पुरुष की अवस्था ड्योढ़ी तथा दूनीतक होगी तबतक तो जोड़ा ही गिना जावेगा परन्तु इस से अधिक अवस्थावाला यदि पुरुष होगा) तो वह जोड़ा नहीं किन्तु कुजोड़ा गिना जायगा इस कुजोड़े से भी उत्पन्न हुआ बालक निर्बल होता है और निर्बलता जो है वही बहुत से रोगों का मूल कारण है।

२–निज कुटुम्ब में विवाह—यह भी निर्बलता का एक मुख्य हेतु है, इस लिये वैद्यक शास्त्र आदि में इस का निषेध किया है, न केवल वैद्यक शास्त्र आदि में ही इस का निषेध किया है किन्तु इस के निषेध के लौकिक कारण भी बहुत से हैं परन्तु उन का वर्णन ग्रन्थ के बढ़ जाने के भय से यहांपर नहीं करना चाहते हैं। हां उन में से दो तीन कारणों को तो अवश्य ही दिखलाना चाहते हैं–देखिये:—

१–देखो ! इसी लिये युगादि भगवान् श्रीऋषभदेव ने प्रजा को बलवती करने के लिये युगल धर्म को दूर किया था अर्थात् पूर्व समय में युगल जोड़ों से मैथुन होता था इस लिये उस समय में न तो प्रजा की वृद्धि ही थी और न वे कोई पुरुषार्थ का काम ही कर सकते थे किन्तु वे तो केवल पूर्व बद्ध पुण्य का फल कल्पवृक्षों से भोगते थे उस समय कल्पवृक्ष का नाश होता हुआ देख कर प्रभु ने पुरुषार्थ बढ़ाने के लिये दूसरों २ की सन्तति से विवाह करने की आज्ञा दी तब सब लोग एक के साथ जन्मे हुए जोड़े का दूसरे के साथ जन्मे हुए जोड़े से विवाह करने लगे यही मनु में भी ऐसी ही आज्ञा है परन्तु ब्रह्मर्षि की बनाई हुई उसी मनु में ऐसा लिखा है कि–जो माता के सपिण्ड में न हो और पिता के गोत्र में न हो ऐसी कन्या के साथ उत्तम जातिवाले पुरुष को विवाह करना चाहिये इत्यादि, परन्तु वास्तव में तो यही [illegible] है यह लोकनीति के अनुकूल होने से माननीय है ॥

१–संस्कृत भाषा में बेटीका नाम दुहिता रक्खा है और उस का अर्थ ऐसा होता है कि–जिस के दूर[1] ब्याहे जाने से सब का हित होता है ।

२–प्राचीन इतिहासो से यह बात अच्छे प्रकार से प्रकट है और इतिहासवेत्ता इस बात को भलीभाँति से जानते भी है कि इस आर्यावर्त्त देश में पूर्व समय में पुत्री के विवाह के लिये स्वयंवर मण्डप की रचना की जाती थी अर्थात् स्वयंवर की रीति से विवाह किया जाता था और उस के वास्तविक तत्त्वपर विचार कर देखने से यह बात मालूम होती है कि वास्तव में उक्त रीति अति उत्तम थी, क्योंकि उस में कन्या अपने गुण कर्म और स्वभावादि के अनुकूल अपने योग्य वर का वरण (स्वीकार) कर लेती थी कि जिस से आजन्म वे (स्त्री पुरुष) अपनी जीवनयात्रा को सानन्द व्यतीत करते थे, क्योंकि सब ही जानते और मानते है कि स्त्री पुरुष का समान स्वभावादि ही गृहस्थाश्रम के सुख का वास्तविक (असली) कारण है ।

३–ऊपर कही हुई रीति के अतिरिक्त उस से उतर कर (घट कर) दूसरी रीति यह थी कि वर और कन्या के माता पिता आदि गुरुजन वर और कन्या की अवस्था, रूप, विद्या आदि गुण, सद्वर्त्ताव और स्वभावादि बातों का विचार कर अर्थात् दोनों में, उक्त बातों की समानता को देखकर उन का विवाह कर देते थे, इस से भी वही अभीष्ट सिद्ध होता था जैसा कि ऊपर लिख चुके है अर्थात् दोनों (स्त्री पुरुष) गृहस्थाश्रम के सुख को प्राप्त कर अपने जीवन को विताते थे ।

४–ऊपर कही हुई दोनों रीतियाँ जब नष्टप्राय हो गई अर्थात् स्वयंवर की रीति बन्द होगई[2] और माता पिता आदि गुरुजनों ने भी वर और कन्या के रूप, अवस्था, गुण, कर्म और स्वभावादि का मिलान करना छोड़ दिया[3], तब परिणाम में होनेवाली हानि

१–जैसा कि निरुक्त ग्रन्थ मे 'दुहिता' शब्द का व्याख्यान है कि–"दूरे हिता दुहिता" इस का भावार्थ ऊपर लिखे अनुसार ही है, विचार कर देखा जावे तो एक ही नगर मे बसनेवाली कन्या से विवाह होने की अपेक्षा दूर देश में बसनेवाली कन्या से विवाह होना सर्वोत्तम भी प्रतीत होता है, परन्तु खेद का विषय है कि–बीकानेर आदि कई एक नगरों में अपने ही नगर मे विवाह करने की रीति प्रचलित हो गई है तथा उक्त नगरों मे यह भी प्रथा है कि स्त्री दिनभर तो अपने पितृगृह (पीहर) मे रहती है और रात को अपने श्वशुर गृह (सासरे) में रहती है और यह प्रथा खासकर वहा के निवासी उत्तम वर्णों मे अधिक है, परन्तु यह महानिकृष्ट प्रथा है, क्योंकि इस से गृहस्थाश्रम को बहुत हानि पहुँचती है, इस बुरी प्रथा से उक्त नगरों को जो २ हानियाँ पहुँच चुकी हैं और पहुँच रही हैं उन का विशेष वर्णन लेखके बढने के भय से यहा नहीं करना चाहते हैं, बुद्धिमान् पुरुष स्वय ही उन हानियों को सोचलेंगे ॥

२–कन्नौज के महाराज जयचन्द्रजी राठौर ने अपनी पुत्री के विवाह के लिये स्वयवरमण्डप की रचना करवाई थी अर्थात् स्वयवर की रीति से अपनी पुत्री का विवाह किया था, बस उस के बाद से प्रायः उक्त रीती से विवाह नहीं हुआ अर्थात् स्वयवर की रीती उठ गई, यह बात इतिहासों से प्रकट है ॥

३–द्रव्य के लोभ आदि अनेक कारणों से ॥

की सम्भावना को विचार कर अनेक बुद्धिमानों ने वर और कन्या के गुण आदि का विचार उन के जन्मपत्रादिपर रक्खा अर्थात् ज्योतिषी के द्वारा जन्मपत्र और ग्रहगोचर के विचार से उन के गुण आदि का विचार करवा कर तथा किसी मनुष्य को भेज कर वर और कन्या के रूप और अवस्था आदि को जान कर उन (ज्योतिषी आदि) के कहदेने पर वर और कन्या का विवाह करने लगे, बस तब से यही रीति प्रचलित हो गई, जो कि अब भी प्रायः सर्वत्र देखी जाती है ।

अब पाठक गण प्रथम सख्या में लिखे हुए दुहिता शब्द के अर्थ से तथा दूसरी संख्या से चौथी संख्या पर्यन्त लिखी हुई विवाह की तीनों रीतियों से भी (लौकिक कारणों के द्वारा) निश्चय कर सकते हैं कि इन ऊपर कहे हुए कारणों से क्या सिद्ध होता है, केवल यही सिद्ध होता है कि निजकुटुम्ब में विवाह का होना सर्वथा निषिद्ध है, क्योंकि–देखो ! दुहिता शब्द का अर्थ तो स्पष्ट कह ही रहा है कि–कन्या का विवाह दूर होना चाहिये, अर्थात् अपने ग्राम वा नगर आदि में नहीं होना चाहिये, अब विचारो ! कि–जब कन्या का विवाह अपने ग्राम वा नगर आदि में भी करना निषिद्ध है तब भला निज कुटुम्ब में व्याह के विषय में तो कहना ही क्या है ! इस के अतिरिक्त विवाह की जो उत्तम मध्यम और अधम रूप ऊपर तीन रीतियाँ कही गई हैं वे भी घोषणा कर साफ २ बतलाती हैं कि–निज कुटुम्ब में विवाह कदापि नहीं होना चाहिये, देखो !

१–अर्थात् स्वभाव समान और गुण आदि का विचार न करने पर विरुद्ध स्वभाव आदिके कारण वर और कन्या को गृहस्थाश्रम का सुख नहीं प्राप्त होगा इत्यादि हानि की सम्भावना को विचार कर ॥

२–परन्तु महाशोक का विषय है कि–वर और कन्या के माता पिता आदि गुरु जन अब इस अति साधारण तीसरे दर्जे की रीति का भी द्रव्य लोभादि से परित्याग करते चले जाते हैं अर्थात् वर्तमान में प्रायः देखा जाता है कि–श्रीमान् (धनवान) लोग अपने समान अथवा अपने से भी अधिक केवल द्रव्यपात्र घर देखते हैं, दूसरी बातों (लड़के का लड़की से छोटा होना आदि हानिकारक भी बातों) को बिलकुल ही नहीं देखते हैं, इस का कारण यह है कि द्रव्यपात्र घराने में सम्बन्ध होने से वे संसार में अपनी नामवरी को चाहते हैं (कि अमुक के सम्बन्धी अमुक बड़े सेठजी हैं इत्यादि) अब श्रीमान् लोगों के सिवाय जो साधारण जन हैं उन को तो बड़ों को देखकर वैसा करना ही है अर्थात् वे यह चाहने लगे कि हमारी कन्या बड़े घर में न जावे अथवा हमारे लड़के का सम्बन्ध बड़े घर में न होवे तात्पर्य यह है कि–गुण और स्वभावादि सब बातों का विचार छोड़कर द्रव्य की ओर देखने लगे यहाँतक कि ज्योतिषी जी आशीर्वाद को भी द्रव्य का लोभ देकर अपने पक्ष में करने लगे अर्थात् उन से भी अपना ही मनोरथ कर वाने लगे इस के सिवाय लोभादि के कारण जो विवाह के विषय में कन्याविक्रय आदि अनेक हानियाँ हो चुकी हैं और होती जाती हैं उन को पाठक गण अच्छे प्रकार से जानते ही हैं अत उन को लिखकर इस ग्रन्थ का विस्तार करना नहीं चाहते हैं, किन्तु यहाँ पर तो "निजकुटुम्ब में विवाह कदापि नहीं होना चाहिये" इस विषय को लिखते हुए प्रसंगवशात् यह इतना आवश्यक समझ कर लिखा गया है । आशा है कि–पाठक गण हमारे इस लेख से यथार्थ तात्पर्य्य समझ गये होंगे ॥

स्वयंवर की रीति से विवाह करने में यह होता था कि—निजकुटुम्ब से भिन्न (किन्तु देश की प्रथा के अनुसार स्वजातीय) जन देश देशान्तरों से आते थे और उन सब के गुण आदि का श्रवण कर कन्या ऊपर लिखे अनुसार सब बातों में अपने समान पति का स्वयं (खुद) वरण (स्वीकार) कर लेती थी, अब पाठकगण सोच सकते हैं कि—यह (स्वय-वर की) रीति न केवल यही बतलाती है कि—निज कुटुम्ब में विवाह नहीं होना चाहिये किन्तु यह रीति दुहिता शब्द के अर्थ को और भी पुष्ट करती है (कि कन्या का स्वग्राम वा स्वनगर आदि में विवाह नहीं होना चाहिये) क्योंकि यदि निज कुटुम्ब में विवाह करना अभीष्ट वा लोकसिद्ध होता अथवा स्वग्राम वा स्वनगरादि में ही विवाह करना योग्य होता तो स्वयवर की रचना करना ही व्यर्थ था, क्योंकि वह (निज कुटुम्ब में वा स्वग्रामादि में) विवाह तो विना ही स्वयवर रचना के कर दिया जा सकता था, क्योंकि अपने कुटुम्ब के अथवा स्वग्रामादि के सब पुरुषों के गुण आदि प्रायः सब को विदित ही होते हैं, अब स्वयवर के सिवाय जो दूसरी और तीसरी रीति लिखी है उस का भी प्रयो-जन वही है कि जो ऊपर लिख चुके है, क्योंकि—ये दोनो रीतिया स्वयंवर नहीं तो उस का रूपान्तर वा उसी के कार्य को सिद्ध करनेवाली कही जा सकती है, इन में विशेषता केवल यही है कि—पति का वरण कन्या स्वय नहीं करती थी किन्तु माता पिता के द्वारा तथा ज्योतिषी आदि के द्वारा पति का वरण कराया जाता था, परन्तु तात्पर्य वही था कि—निज कुटुम्ब में तथा यथासम्भव स्वग्रामादि में कन्या का विवाह न हो।

ऊपर लिखे अनुसार शास्त्रीय सिद्धान्त से तथा लौकिक कारणों से निजकुटुम्ब में विवाह करना निषिद्ध है अतः निर्बलता आदि दोषों के हेतु इस का सर्वथा परित्याग करना चाहिये ॥

३—**बालकपन में विवाह**—प्यारे सुजनो! आप को विदित ही है कि इस वर्त्त-मान समय में हमारे देश में ज्वर, शीतला, विषूचिका (हैजा) और प्लेग आदि अनेक रोगों की अत्यन्त ही अधिकता है कि जिन से इस अभागे भारत की यह शोचनीय कु-दशा हो रही है जिस का स्मरण कर अश्रुधारा बहने लगती है और दुःख विसराया भी नहीं जाता है, परन्तु इन रोगों से भी बढ़ कर एक अन्य भी महान् भयकर रोग ने इस जीर्ण भारत को घर दबाया है, जिस को देख व सुनकर वज्रहृदय भी दीर्ण होता है, तिस पर भी आश्चर्य तो यह है कि उस महा भयकर रोग के पञ्जे से शायद कोई ही भारतवासी रिहाई पा चुका होगा, यह ऐसा भयकर रोग है कि—ज्यों ही वह (रोग) शिर पर चढ़ा त्योंही (थोड़े ही दिनों में) वह इस प्रकार थोथा और निकम्मा कर देता है कि जिस प्रकार गेहूँ आदि अन्न में घुन लगने से उस का सत निकल कर उस की अत्यन्त कुदशा हो जाती है कि जिस से वह किसी काम का नहीं रहता है, फिर देखो।

दूसरे रोगों से तो व्यक्तिविशेष (किसी खास) को ही हानि पहुँचती है परन्तु इस भय कर रोग से समूह का समूह ही वरन उस से भी अधिक जाति जनसंख्या व देश जन संख्या ही निकम्मी होकर कुदशा को प्राप्त हो जाती है, सुजनो ! क्या आप को मालूम नहीं है कि यह वही महाभयानक रोग है कि जिस से मनुष्य की सुरत भयावनी तथा नाक कान और आंख आदि इन्द्रियां थोड़े ही दिनों में निकम्मी हो जाती हैं, उस में विचारशक्ति का नाम तक नहीं रहता है, उस को उत्साह और साहस के स्वप्न में भी दर्शन नहीं होते हैं, सच पूँछो तो जैसे ज्वर के रहने से तिल्ली आदि रोग हो जाते हैं उसी प्रकार वरन उस से भी अधिक इस महाभयकर रोग के होने से प्रमेह, निर्बलता, वीर्यविकार, अफरा, दमा, खांसी और क्षय आदि अनेक रोग उत्पन्न होते हैं जिन से शरीर की चमक दमक और शोभा जाती रहती है तथा मनुष्य आलसी और क्रोधी बन जाता है तथा उस की बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है, तात्पर्य किसन का यही है कि इसी महा भयंकर रोग ने इस भारत को बिलकुल ही चौपट कर दिया, इसी ने लोगों को सभ्य से असभ्य, राजा से रंक (फकीर) और दीर्घायु से अल्पायु बना दिया, भाइयो ! कहां तक गिनावें सब प्रकार के सुख और वैभव को इसी ने छीन लिया।

हमारे पाठकगण इस बात को सुनकर अपने मन में विचार करने लगे होंगे कि वह कौन सा महान् रोग बला के समान है तथा उस के नाम को सुनने के लिये अत्यन्त विकल होते होंगे, सो हे सज्जनो ! इस महान् रोग को तो आप जैसे सुजन तो क्या किन्तु सब ही जन जानते हैं, क्योंकि प्रतिदिन आप ही सभों के गृहों में इस का निवास हो रहा है, देखो ! कौन ऐसा भारतवर्षीय जन है जो कि वर्तमान समय में इस से न सताया गया हो, जिस ने इस के पापड़ों को न बेला हो, जो इस के दुःखों से घायल होकर न तड़फड़ाता हो, यह वह मीठी मार है कि जिस के लगते ही मनुष्य अपने आप ही सब सुखों की पूर्णाहुति देकर मियांमिट्ठू बन जाते हैं, इस पर भी तुर्रा यह है कि जब यह रोग किसी गृह में प्रवेश करने को होता है तब दो तीन चार अथवा छ मास पहिले ही अपने आगमन की सूचना देता है, जब इस के आगमन के दिन निकट आते हैं तब तो यह उस गृह को पूर्णरूप से स्वच्छ कराता है, उस गृह के निवासियों का ही नहीं किन्तु उन से सम्बन्ध रखनेवालों को भी कपड़े लत्ते सुधर पहिनाता है, इस के आगमन की खबर को सुनकर गृह में मंगलाचार होते हैं, इधर उधर से भाई बन्धु आते हैं यह सब कुछ तो होता ही है किन्तु जिस रात्रि को इन महारोग का आगमन होता है उस रात्रि को सम्पूर्ण नगर में धूमधाम मच जाता है और उस गृह में तो ऐसा उत्साह होता है कि जिस का पारावार ही नहीं है पधार्, दवाजा पर नौबत झड़ती है, रण्डियां नाच २ कर मुबारक बादें देती हैं, धूप गान और आतिशबाजी चलती है, पण्डित जन मन्त्रों

का उच्चारण करते है, फिर सब लोग मिल कर अत्यन्त हर्ष के साथ उस महारोग को एक उस नादान भोली मूर्त्ति से चपेट देते है कि जिस के शिरपर मौर होता है, इस के बाद उस के दूसरे ही दिन प्रातःकाल होते ही सब स्थानों में इस के उस गृह में प्रवेश होने की घोषणा (मुनादी) हो जाती है।

पाठक गण ! अब तो यह महान् रोग आप को प्रत्यक्ष प्रकट हो गया, कहिये तो सही यह किस धूमधाम से आता है ? क्या २ खेल खिलाता है ? कैसे २ नाच नचाता है ? किस प्रकार सब को बेहोश कर देता है कि उस गृह के लोग तो क्या किन्तु अड़ोसीपड़ोसीतक इस के कौतुक में वशीभूत हो जाते है। सच पूछो तो इस रोग का ऐसे गाजे बाजे के साथ में घर में दखल होता है कि जिस में किसी प्रकार की रोक टोक नहीं होती है वरन यह कहना भी यथार्थ ही होगा कि सब लोग मिलकर आप ही उस महारोग को बुलाते है कि जिस का नाम "बाल्यविवाह" (न्यून अवस्था का विवाह) है।

पाठक गण ऊपर के वर्णन से समझ गये होंगे कि—जो २ हानियां इस भारत वर्ष में हुई है उन का मूल कारण यही बाल्यावस्था का विवाह है, इस के विषय में वर्त्तमान समय के अच्छे २ बुद्धिमान् डाक्टर लोग भी पुकार २ कर कहते है कि—ऐसे विवाहो से कुछ लाभ नहीं है किन्तु अनेक हानियां होती है, देखिये ! डाक्टर डियूडविस्मिथ साहब (साबिक प्रिन्सिपिल मेडिकल कालेज कलकत्ता) का वचन है कि—"न्यून अवस्था के विवाह की रीति अत्यन्त अनुचित है, क्योंकि इस से शारीरिक तथा आत्मिक बल जाता रहता है, मन की उमग चली जाती है—फिर सामाजिक बल कैसा ?"

डाक्टर नीबीमन कृष्ण बोष का वचन है कि—"शारीरिक बल के नष्ट होने के जितने कारण है उन सब में मुख्य कारण न्यून अवस्था का विवाह जानो, यही मस्तक के बल की उन्नति का रोकनेवाला है"।

मिसस पी. जी. फिफसिन (लेडी डाक्टर मुम्बई) का कथन है कि—"हिन्दुओं की स्त्रियो में रुधिरविकार तथा चर्मदूषण आदि बीमारियो के अधिक होने का कारण बाल्य-विवाह ही है, क्योंकि इस से सन्तान शीघ्र उत्पन्न होती है, फिर उस को उस दशा में दूध पिलाना पड़ता है जब कि माता की रगें दृढ़ नहीं होती है, जिस से माता दुर्बल होकर नाना प्रकार के रोगों में फँस जाती है"।

डाक्टर महेन्द्रलाल सर्कार एम डी का वचन है कि—"बाल्यावस्था का विवाह अत्यन्त बुरा है, क्योंकि इस से जीवन की उन्नति की बहार लुट जाती है तथा शारीरिक उन्नति का द्वार बन्द हो जाता है"।

उक्त डाक्टर साहब ने किसी समय सभा के बीच में यह भी वर्णन किया था कि—मैं अपनी तीस वर्ष की परीक्षा से यह कह सकता हूँ कि—फी सदी २५ स्त्रिया बाल्यावस्था के

विवाह के हेतु से मरती है तथा फी सदी दो मनुष्य इसी से ऐसे हो जाते हैं कि जिन को सदा रोग घेरे रहते हैं और वे आधे आयु में ही मरते हैं ।

प्रिय सज्जनो ! इस के अतिरिक्त अपने शास्त्रों की तरफ तथा प्राचीन इतिहासों की तरफ भी ज़रा दृष्टि दीजिये कि विवाह का क्या समय है और वह किस प्रयोजन के लिये किया जाता है—आर्ष (ऋषिप्रणीत) ग्रन्थोंपर दृष्टि डालने से यह बात स्पष्ट प्रकट होती है कि विवाह का मुख्य प्रयोजन सन्तान का उत्पन्न करना है और उस का (सन्तानोत्पत्ति का) समय शास्त्रकारों ने इस प्रकार कहा है कि:—

स्त्रियां षोडशवर्षायां, पञ्चविंशतिहायनः ॥
बुद्धिमानुद्यमं कुर्यात्, विशिष्टसुतकाम्यया ॥ १ ॥

अर्थ—पचीस वर्ष की अवस्थावाले (जवान) बुद्धिमान् पुरुष को सोलह वर्ष की स्त्री के साथ सुपुत्र की कामना से समोग करना चाहिये ॥ १ ॥

तदा हि प्राप्तवीर्यौ तौ, सुतं जनयतः परम् ॥
आयुर्बलसमायुक्तं, सर्वेन्द्रिय समन्वितम् ॥ २ ॥

अर्थ—क्योंकि–उस समय दोनों ही (स्त्री पुरुष) परिपक्व (पके हुए) वीर्य से युक्त होने से आयु बल तथा सर्व इन्द्रियों से परिपूर्ण पुत्र को उत्पन्न करते हैं ॥ २ ॥

न्यूनषोडशवर्षाया, न्यूनाब्दपञ्चविंशतिः ॥
पुमान् य जनयेद् गर्भं, स प्रायेण विपद्यते ॥ ३ ॥
अल्पायुर्बलहीनो वा, दारिद्र्योपद्रुतोऽथवा ॥
कुष्ठादि रोगी यदि वा, भवेद्वा विकलेन्द्रियः ॥ ४ ॥

अर्थ—यदि पचीस वर्ष से कम अवस्थावाला पुरुष–सोलह वर्ष से कम अवस्थावाली स्त्री के साथ सम्भोग कर गर्भाधान करे तो वह गर्भ प्राय गर्भाशय में ही नाश को प्राप्त हो जाता है ॥ ३ ॥

अथवा वह सन्तति अल्प आयुवाली, निर्बल, दरिद्री, कुष्ठ आदि रोगों से युक्त, अथवा विकलेन्द्रिय (अपांग) होती है ॥ ४ ॥

शास्त्रों में इस प्रकार के वाक्य अनेक स्थानों में लिखे हैं जिन का कहांतक वर्णन करें ।

प्रियमित्रो ! अपने और देश के शुभचिन्तको ! अब आप से यही कहना है कि–यदि आप अपने सन्तानों को सुखी देखना चाहते हो तथा परिवार और देश की उन्नति को चाहते हो तो सब से प्रथम आप का यही कर्तव्य होना चाहिये कि–अनेक रोगों के मूल कारण इस बाल्यावस्था के विवाह की कुरीति को बंद कर शास्त्रोक्त रीति को प्रचलित

१—ये सब श्लोक जैनाचार्य श्रीजिनदत्तसूरिकृत "विवेकविलास" के प्रथम उल्लास में लिखे हैं ॥

कीजिये, यही आप के पूर्व पुरुषों की सनातन रीति है इसी के अनुसार चलकर प्राचीन काल में तुल्य गुण कर्म और स्वभाव से युक्त स्त्री पुरुष शास्त्रानुसार स्वयम्वर[1] में विवाह कर गृहस्थाश्रम के आनन्द को भोगते थे, बाल्यावस्था में विवाह होने की यह कुरीति तो इस भारत वर्ष में मुसलमानों की बादशाही होने के समय से चली है, क्योंकि मुसलमान लोग हिन्दुओं की रूपवती अविवाहिता कन्याओं को जबरदस्ती से छीन लेते थे[2] किन्तु विवाहिताओं को नहीं छीनते थे, क्योंकि मुसलमानों की धर्मपुस्तक के अनुसार विवाहिता कन्याओं का छीनना अधर्म माना गया है[3], बस हिन्दुओं ने "मरता क्या न करता" की कहावत को चरितार्थ किया क्योंकि उन्हों ने यही सोचा कि अब बाल्य विवाह के बिना इन (मुसलमानों) से बचने का दूसरा कोई उपाय नहीं है, यह विचार कर छोटे २ पुत्रों और पुत्रियों का विवाह करना प्रारम्भ कर दिया, बस तब से आजतक वही रीति चल रही है, परन्तु प्रियमित्रो! अब वह समय नहीं है अब तो न्यायशीला श्रीमती बृटिश गवर्नमेंट का वह न्याय राज्य है कि जिस में सिंह और बकरी एक घाट पर पानी पीते है, कोई किसी के धर्मपर आक्षेप नहीं कर सकता है और न कोई किसी को विना कारण छेड वा सता सकता है, इस के सिवाय राज्यशासकों की अति प्रशसनीय बात यह है कि–वे परस्त्री को बुरी दृष्टि से कदापि नहीं देखते है, जब वर्त्तमान ऐसा शुभ समय है तो अब भी हमारे हिन्दू (आर्य) जनों का इन कुरीतियों को न सुधारना बड़े ही अफ़सोस का स्थान है।

इस के सिवाय एक विचारणीय विषय यह है कि–जिस समय जिस वस्तु की प्राप्ति की मन में इच्छा होती है उसी समय उस के मिलने से परम सुख होता है किन्तु विना समय के वस्तु के मिलने से कुछ भी उत्साह और उमग नहीं होती है और न किसी

१–स्वयवररूप विवाह परम उत्तम विवाह है, इस मे यह होता था कि कन्या का पिता अपनी जाति के योग्य मनुष्यों को एक तिथिपर एकत्रित होने की सूचना देता था और वे सब लोग सूचना के अनुसार नियमित तिथिपर एकत्रित होवे थे तथा उन आये हुए पुरुषों मे से जिसको कन्या अपने गुण कर्म और स्वभाव के अनुकूल जान लेती थी उसी के गले मे जयमाला (वरमाला) डाल कर उस से विवाह करती थी, बहुधा यह भी प्रथा थी कि स्वयवरों मे कन्या का पिता कोई प्रण करता था तथा उस प्रण को जो पुरुष पूर्ण कर देता था तब कन्या का पिता अपनी कन्या का विवाह उसी पुरुष से कर देता था, इन सब बातों का वर्णन देखना हो तो कलिकाल सर्वज्ञ श्रीहेमचन्द्राचार्यकृत सस्कृत रामायण तथा पाण्डवचरित्र आदि ग्रन्थों को देखो॥

२–इतिहासों से सिद्ध है कि आर्यावर्त्त के बहुत से राजाओं की भी कन्याओं के डोले यवन बादशाहों ने लिये है, फिर भला सामान्य हिन्दुओं की तो क्या गिनती है॥

३–क्योंकि विवाहिता कन्यापर दूसरे पुरुष का (उसके स्वामी का) हक़ हो जाता है और इन के मत का यह सिद्धान्त है कि दूसरे के हक़ में आई हुई वस्तु का छीनना पाप है॥

४–सचमुच यही गृहस्थाश्रमका प्रथम पाया भी है॥

प्रकार का आनन्द ही आता है, जिस प्रकार भूख के समय में सूखी रोटी भी अच्छी जान पड़ती है परन्तु भूख के विना मोहनभोग को खाने को भी जी नहीं चाहता है, इसी प्रकार योग्य अवस्था के होनेपर तथा स्त्री पुरुष को विवाह की इच्छा होनेपर दोनों को आनन्द प्राप्त होता है किन्तु छोटे २ पुत्र और पुत्रियों का उस दशा में जब कि उन को न तो कामाग्नि ही सताती है और न उन का मन ही उधर को जाता है, विवाह कर देने से क्या लाभ हो सकता है? कुछ भी नहीं, किन्तु यह विवाह तो विना भूख के खाये हुए भोजन के समान अनेक हानियां ही करता है।

हे सुजनो! इन ऊपर कही हुई हानियों के सिवाय एक बहुत बड़ी हानि यह होती है कि जिस के कारण इस भारत में चारों ओर हाहाकार मच रहा है तथा जिससे उसके निर्मल यश में धब्बा लग रहा है, वह बुरी बाल विधवाओं का समूह है कि जिन की आहें इस भारत के घाव पर और भी नमक डाल रही हैं, हा प्रभो! वह कौन सा ऐसा घर है जिस में विधवाओं के दर्शन नहीं होते हैं, उसपर भी वे भोली विधवायें कैसी हैं कि जिन के दूध के दाँततक नहीं गिरे हैं, न उन को अपने विवाह की कुछ सुध बुध है और न वे यह जानती हैं कि हमारी चूड़ियां क्योंकर फूटी हैं, हमारे ऊपर पैदा होते ही कौन सा वज्रपात हो गया है, इसपर भी तुर्रा यह है कि–जब वे बेचारी तरुण होती हैं तब कामानल (कामाग्नि) के प्रबल होनेपर उन का नियोग भी नहीं होता है। भला सोचिये तो सही कि कामानल के दुःसह तेज का सहन कैसे हो सकता है? सिर्फ यही कारण है कि हजारों में से दश पांच ही सुन्दर आचरणवाली होती हैं, नहीं तो प्रायः नाना लीलायें रचती हैं कि जिन से निष्कलंक कुलवालों के भी शिर से लज्जा की पगड़ी गिर जाती है, क्या उस समय कुलीन पुरुषों की मूछें उन के मुँहपर शोभा देती हैं? नहीं कभी नहीं, उन के यौवन का मद एकदम उतर जाता है, उन की प्रतिष्ठापर भी इस प्रकार छार पड़ जाती है कि–दश आदमियों में ऊँचा मुँह कर के उन को बोलने की भी ताकत नहीं रहती है, सत्य तो यह है कि–मातापिता इस जल्दी हुई चिताको अपनी छातीपर देख २ कर हाड़ों का सांचा बन जाते हैं, इन सब क्लेशों का कारण बाल्यावस्था का विवाह ही है, देखो! भारत में विधवाओं की संख्या वर्त्तमान में इतनी है कि जितनी अन्य किसी देश में नहीं पाई जाती, क्योंकि अन्यत्र बाल्यावस्था में विवाह नहीं होता है, देखो! पूर्वकाल में जब इस भारत में बाल्यावस्था में विवाह नहीं होता था तब यहां विधवाओं की गणना (संख्या) बहुत ही न्यून थी।

बाल्यावस्था के विवाह से हानि का प्रत्यक्ष प्रमाण और दृष्टान्त यही है कि–देखो! जब किसी खेत में गेहूँ आदि अन्न को बोते हैं तो जमने के पीछे दश पांच दिन में बहुत से मर जाते हैं, एक महीने के पीछे बहुत कम मरते हैं, दो चार महीने के पीछे

अत्यन्त ही कम मरते ह, इस के पश्चात् वचे हुए चिरस्थायी हो जाते है, इसी प्रकार जन्म से पांच वर्षतक जितने वालक मरते है उतने पाच से दश वर्षतक नहीं मरते है, दश से पन्द्रह वर्षतक उस से भी वहुत कम मरते हैं, इस का हेतु यही है कि वाल्यावस्था में दॉतों का निकलना तथा शीतला आदि अनेक रोग प्रकट होकर वालकों के प्राणघातक होते है।

समझने की वात है कि—जव किसी पेड की जड मजवूत हो जाती है तो वह वडी २ ऑधियों से भी वच जाता है किन्तु निर्वल जडवाले वृक्षों को आधी आदि तूफान समूल उखाड़ डालते है, इसी प्रकार वाल्यावस्था में नाना भाति के रोग उत्पन्न होकर मृत्युकारक हो जाते हैं परन्तु अधिक अवस्था में नहीं होते है, यदि होते भी है तो सौ में पाच को ही होते है।

अव इस ऊपर के वर्णन से प्रत्यक्ष प्रकट है कि—यदि वाल्यावस्था का विवाह भारत से उठा दिया जावे तो प्राय. वालविधवाओं का यूथ (समूह) अवश्य कम हो सकता है तथा ये सव (ऊपर कहे हुए) उपद्रव मिट सकते है, यद्यपि वर्त्तमान में इस निकृष्ट प्रथा के रोकने में कुछ दिक्कत अवश्य होगी परन्तु वुद्धिमान् जन यदि इस के हटाने के लिये पूर्ण प्रयत्न करें तो यह धीरे २ अवश्य हट सकती है अर्थात् धीरे २ इस निकृष्ट प्रथा का अवश्य नाश हो सकता है और जव इस निकृष्ट प्रथा का विलकुल नाश हो जावे गा अर्थात् वाल्यविवाह की प्रथा विलकुल उठ जावे गी तव निस्सन्देह ऊपर लिखे सव ही उपद्रव शान्त हो जावेंगे और महादुःख का एक मात्र हेतु विधवाओं की संख्या भी अति न्यून हो जावेगी अर्थात् नाममात्र को रह जावेगी (ऐसी दशा में विधवा विवाह वा नियोग विषयक चर्चा के प्रश्नके भी उठने की कोई आवश्यकता नहीं रहेगी कि जिस का नाम सुनकर साधारण जन चकित से रह जाते है) क्योंकि देखो! यह निश्चयपूर्वक माना जा सकता है कि—यदि शास्त्रानुसार १६ वर्ष की कन्या के साथ २५ वर्ष के पुरुष का विवाह होने लगे तो सौ स्त्रियों में से शायद पॉंच स्त्रियाँ ही मुश्किल से विधवा हो सकती है (इस का हेतु विस्तारपूर्वक ऊपर लिख ही चुके है कि वाल्यावस्था में रोगों से विशेष मृत्यु होती है किन्तु अधिकावस्था में नहीं इत्यादि) और उन पॉंच विधवाओं में से भी तीन विधवायें योग्य समय में विवाह होने के कारण अवश्य सन्तानवती माननी पड़ेगी अर्थात् विवाह होने के वाद दो तीन वर्ष में उन के वालवच्चे हो जावेंगे पीछे वे विधवा होगी ऐसी दशा में उन के लिये वैधव्ययातना अति कष्टदायिनी नहीं हो सकती है, क्योंकि—सन्तान के होने के वाद यदि कुछ समय के पीछे पतिका मरण भी हो जावे तो वे स्त्रियाँ उन वच्चों की भावी आशापर उन के लालन पालन में अपनी आयु को सहज में व्यतीत कर सकती हैं और उन को उक्त दशा में

विधवापन की तकलीफ विशेष नहीं हो सकती है, बस इस हिसाब से सौ विवाहिता स्त्रियों में से केवल दो विधवायें ऐसी दीख पड़ेंगी कि जो सन्तानहीन तथा निराश्रयवत् होंगी अर्थात् जिन का कुछ अन्य प्रबन्ध करने की आवश्यकता रहेगी।

इस लिये सब उच्च वर्ण (ऊंची जाति)वालों को उचित है कि स्वयंवर की रीति से विवाह करने की प्रथा को अवश्य प्रचलित करें, यदि इस समय किसी कारण से उक्त रीति का प्रचार न हो सके तो आप खुद गुण कर्म और स्वभाव को मिलाकर उसी प्रकार कार्य को कीजिये कि जिस प्रकार आप के प्राचीन पुरुष करते थे।

देखिये ! विवाह होने से मनुष्य गृहस्थ हो जाते हैं और उन को प्रायः गृहस्थोपयोगी सब ही प्रकार के पदार्थों की आवश्यकता होती है तथा वे सब पदार्थ धन ही से प्राप्त होते हैं और धन की प्राप्ति विद्या आदि उत्तम गुणों से ही होती है तथा विद्या आदि उत्तम गुणों के प्राप्त करने का समय केवल बाल्यावस्था ही है, अतः यदि बाल्यावस्था में विवाह कर सन्तान को बन्धन में डाल दिया जावे तो कहिये विद्या आदि उत्तम गुणों की प्राप्ति कब और कैसे हो सकती है तथा विद्या आदि उत्तम गुणों के अभाव में धन की प्राप्ति कैसे हो सकती है और उस के बिना आवश्यक गृहस्थोपयोगी पदार्थों की अनुपलब्धि (अप्राप्ति) से गृहस्थाश्रम में पूर्ण सुख कैसे प्राप्त हो सकता है ! सत्य तो यह है कि—बाल्यावस्था में विवाह का कर देना मानो सब आश्रमों को और उन के सुखों को नष्ट कर देना है, इसी कारण से तो प्राचीन काल में विद्याध्ययन के पश्चात् विवाह होता था, शास्त्रकारों ने भी यही आज्ञा दी है कि—प्रथम अच्छे प्रकार से विद्याध्ययन कर फिर विवाह कर के गृह में वास करें, क्योंकि विद्या, जितेन्द्रियता और पुरुषार्थ के प्राप्त हुए बिना गृहस्थाश्रम का पालन नहीं किया जा सकता है और जिस ने इन (विद्या आदि) को प्राप्त नहीं किया वह पुरुष धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को भी नहीं सिद्ध कर सकता है ॥

१—माता पिता को उचित है कि जब अपने पुत्र और पुत्री युवावस्था को प्राप्त हो जावें तब उन के योग्य कन्या और वर के ब्रह्मचर्य की विद्या आदि सद्गुणों की तथा उन के धर्माचरण की अच्छे प्रकार से परीक्षा करके ही उन का विवाह करें इस की विधि शास्त्रकारों ने इस प्रकार कही है कि—१—लड़के की अवस्था २५ वर्ष की तथा लड़की की अवस्था सोलह वर्ष की होनी चाहिये। २—ऊँचाई में लड़की लड़के के कन्धे के बराबर होनी चाहिये अथवा इस से भी कुछ कम होनी चाहिये अर्थात् लड़के से लड़की ऊँची नहीं होनी चाहिये। ३—दोनों के शरीर सम होने चाहियें। ४—दोनों या तो विद्वान् होने चाहियें अथवा दोनों ही मूर्ख होने चाहियें ॥

पुत्रीके गुण—१—जिस के शरीर में कोई रोग न हो। २—जिस के शरीर में दुर्गन्ध न आती हो। ३—जिस के शरीरपर बड़े २ बाल न हों तथा मूँछ के बाल भी न हों। ४—जो बहुत बकवाद करनेवाली न हो। ५—जिस का शरीर टेढ़ा न हो तथा अंगहीन भी न हो। ६—जिस का शरीर कोमल हो परन्तु दृढ़ हो। ७—जिस की वाणी मधुर हो ८—जिस का वर्ण पीला न हो। ९ जो भूरे नेत्रवाली न हो। १०—जिस

४–सन्तान का विगड़ना—बहुत से रोग ऐसे है जो कि पूर्व क्रम से सन्तानो के हो जाते है अर्थात् माता पिता के रोग बच्चों को हो जाते है, इस प्रकार के रोगों में मुख्य २ ये रोग है–क्षय, दमा, क्षिप्तचित्तता (दीवानापन), मृगी, गोला, हरस (मस्सा), सुजाख, गर्मी, आख और कान का रोग तथा कुष्ठ इत्यादि, पूर्वक्रम से सन्तान में होनेवाले बहुत से रोग अनेक समयों में वृद्धि को प्राप्त होकर जब सर्व कुटुम्ब का संहार कर डालते हैं उस समय लोग कहते है कि–देखो ! इस कुटुम्ब पर परमेश्वर का कोप हो गया है परन्तु वास्तव में तो परमेश्वर न तो किसी पर कोप करता है और न किसी पर प्रसन्न होता है किन्तु उन २ जीवो के कर्म के योग से वैसा ही सयोग आकर उपस्थित हो जाता है क्योंकि क्षय और क्षिप्तचित्तता रोग की दशा में रहा हुआ जो गर्भ है वह भी क्षय रोगी तथा क्षिप्तचित्त (पागल) होता है, यह वैद्यकशास्त्र का नियम है, इसलिये चतुर पुरुषों को इस प्रकार के रोगों की दशा में विवाह करने तथा सन्तान के उत्पन्न करने से दूर रहना चाहिये ।

किसी २ समय ऐसा भी होता है कि–सन्तान के होनेवाले रोग एक पीढ़ी को छोड़ कर पोते के हो जाते हैं ।

सन्तान के होनेवाले रोगों से युक्त वालक यद्यपि अनेक समयों में प्रायः पहिले तनदुरुस्त दीखते है परन्तु उन की उस तनदुरुस्ती को देखकर यह नही समझना चाहिये कि वे नीरोग है, क्योंकि ऐसे बालकों का शरीर रोग के लायक अथवा रोग के लायक होने की दशा में ही होता है, ज्योंही रोग को उत्तेजन देनेवाला कोई कारण बन जाता है त्यों ही उन के शरीर में शीघ्र ही रोग दिखलाई देने लगता है, यद्यपि सन्तान के होनेवाले रोगों का ज्ञान होने से तथा बचपन में ही योग्य सम्भाल रखने से भी सम्भव है कि उस रोग की बिलकुल जड़ न जावे तो भी मनुष्य का उचित उद्यम उस को कई दर्जों में कम कर सकता तथा रोक भी सकता है ॥

का नाम शास्त्रानुसार हो, जैसे–यशोदा, सुभद्रा, विमला, सावित्री आदि । ११–जिस की चाल हस वा हथिनी के तुल्य हो । १२–जो अपने चार गोत्रों मे की न हो । १३–मनस्मृति आदि धर्म शास्त्रों मे कन्या के नाम के विपय मे कहा है कि–"नर्क्षवृक्षनदी नाम्नीं, नान्त्यपर्वतनामिकाम् ॥ न पक्ष्यहिप्रेष्यनाम्नीं, न च मीपणनामिकाम् ॥ १ ॥" अर्थात् कन्या नक्षत्र नामवाली न हो, जैसे–रोहिणी, रेवती इत्यादि, वृक्ष नामवाली न हो, जैसे–चम्पा, तुलसी आदि, नदी नामवाली न हो, जैसे–गगा, यमुना, सरस्वती आदि अन्त्य (नीच) नामवाली न हो, जैसे–चाण्डाली आदि, पर्वत नामवाली न हो, जैसे–विन्ध्याचला, हिमालया आदि, पक्षी नामवाली न हो, जैसे–कोकिला, मैना, हसा आदि, सर्प नामवाली न हो, जैसे–सर्पिणी, नागी, व्याली आदि, प्रेष्य (भृत्य) नामवाली न हो, जैसे–दासी किङ्करी आदि, तथा भीषण (भयानक) नामवाली न हो, जैसे–भीमा, भयकरी, चण्डिका आदि, क्योंकि ये सब नाम निषिद्ध हैं अतः कन्याओं के ऐसे नाम ही नहीं रखने चाहिये) ।

५–अवस्था—शरीर को रोग के योग्य बनानेवाले कारणों में से एक कारण अवस्था भी है, देखो! बचपन में शरीर की गर्मी के कम होने से ठंढ जल्दी असर कर जाती है, उस की योग्य सम्भाल न रखने से थोड़ीसी ही देर में हाँफनी, दम, खाँसी और कफ आदि के अनेक रोग हो जाते हैं।

जवानी (युवावस्था) में रोगों को रोकनेवाली ताकतवाली शक्ति की मजबूती के होने से शरीर को रोग के योग्य बनानेवाले कारणों का जोर थोड़ा ही रहता है।

तीसरी वृद्धावस्था में शरीर फिर निर्बल पड़ जाता है और यह निर्बलता वृद्ध मनुष्य के शरीर को वार २ रोग के योग्य बनाती है॥

६–जाति—विचार कर देखा जावे तो पुरुषजाति की अपेक्षा स्त्रीजाति का शरीर रोग के असर के योग्य अधिक होता है, क्योंकि स्त्रीजाति में कुछ न कुछ अज्ञान, विचार से हीनता और हठ अवश्य होता है, इस लिये यह आहार विहार में हानि लाभ का कुछ भी विचार नहीं रखती है, दूसरे—उस के शरीर के बन्धेज नाजुक होने से गर्भ

प्यारे सुजनो! विवाह के विषय में शास्त्रानुसार इन बातों का विचार अवश्यमेव करना चाहिये क्योंकि इन बातों का विचार न करने से जन्मभरतक दुःख भोगना पड़ता है तथा गृहस्थाश्रम सुखों की हानि हो जाती है, देखो! उत्तम कुल वृक्ष के तुल्य है, उस की सम्पत्ति शाखाओं के सदृश है तथा पुत्र मूलरूप है जैसे मूल के नष्ट होने से वृक्ष कभी कायम नहीं रह सकता है उसी प्रकार अयोग्य विवाह के द्वारा पुत्र के नष्ट भ्रष्ट होने से कुल का नाश हो जाता है इसलिये जो पुरुष अपने पुत्र और पुत्रियों को सदा सुखी रखना चाहें वे सुखरूपी तत्त्व का विचार कर शास्त्रानुसार उचित विधि से विवाह करें क्योंकि जो ऐसा करेंगे वे ही लोग कुलरूपी वृक्ष की वृद्धिरूपी फल फूल और पत्तों को देख सकते हैं, बल्कि उन पुत्रों की सन्तान भी नहीं किन्तु उस का योग्य विवाह ही कुलरूपी वृक्ष का मूल है इस लिये जैसे वृक्ष की रक्षा के लिये उस के मूल की रक्षा करनी पड़ती है उसी प्रकार कुल की रक्षा के लिये योग्य विवाह की सँभाल और रक्षा करनी चाहिये जैसे जिस वृक्ष का मूल दृढ़ होगा तो वह बड़े २ प्रचण्ड वायु के झपट्टे से भी कभी नहीं गिर सकता परन्तु यदि मूल ही निर्बल हुआ तो हवा के जरा ही झटके से उखड़ कर गिर जावेगा इसी प्रकार जो पुत्र सपूत वा गुणवान् होगा तथा उस का योग्य विवाह होगा तो धन तथा कुल की प्रतिदिन उन्नति होगी ऐसे प्रकार से बाप दादे का नाम तथा यश फैलेगा और नाना भांति के सुख तथा आनन्द की वृद्धि होगी क्योंकि गुणवान् और उत्तम आचरणवाले एक ही सुपुत्र से सम्पूर्ण कुल इस प्रकार शोभित और प्रकाशित हो जाता है जैसे चन्दन के एक ही वृक्ष से तमाम वन सुगन्धित रहता है परन्तु यदि पुत्र कुपूत वा कुलक्षण हुआ तो वह अपने तन मन धन मान और कीर्ति आदि को धूल में मिला देगा इस लिये विवाह में धन आदि की अपेक्षा लड़के के गुण कर्म और स्वभाव आदि का मिलाना अत्यन्त उचित है क्योंकि धन तो इस संसार में बादल की छाया के समान है, प्रतिष्ठा पदार्थ के रेत के सदृश और कुल केवल नाम के लिये है, इस कारण मूलपर सदा ध्यान करने से परम सुख मिल सकता है अन्यथा कदापि नहीं, देखो! किसी ने सत्य कहा है कि—"एक हि साधे सब सधे सब साधे सब जाय॥ जो तू सींचे मूल को फूलै फलै अघाय" ॥ १ ॥ अतः वर और कन्या के ऊपर लिखे हुए गुणों को मिला कर विवाह करना उचित है जिस से उन दोनों की प्रकृति सदा एक सी रहे, क्योंकि यही सुख का मूल है, देखो! किसी कवि ने कहा है कि—"प्रकृति मिले मन मिलत है, अन मिल ते न मिलाय ॥

स्थान में वार २ परिवर्त्तन (उथलपुथल) हुआ करता है, इसलिये स्त्री का निर्वल शरीर रोग के योग्य होता है, वर्त्तमान में स्त्रीजाति की उत्पत्ति पुरुषजाति से तिगुनी दीखती है तथा स्त्रीजाति पुरुषजाति की अपेक्षा अधिक मरती है, यही कारण है कि–एक एक पुरुष तीन २ चार २ तक विवाह किया करते है ॥

दूध दही से जमत है, काजी से फटि जाय" ॥ १ ॥ ऊपर लिखी हुई वातों के मिलाने के अतिरिक्त यह भी देखना उचित है कि जो लडका ज्वारी, मद्यप (शरावी), वेश्यागामी (रण्डीवाज) और चोर आदि न हो किन्तु पढा लिखा, श्रेष्ठ कार्यकर्त्ता और धर्मात्मा हो उसी से कन्या का विवाह करना चाहिये, नहीं तो कदापि सुख नहीं होगा, परन्तु अत्यन्त शोक का विषय है कि–वर्तमान समय मे इस उत्तम परिपाटी पर कुछ भी ध्यान न देकर केवल कुभ मीन आदि का मिलान कर वर कन्या का विवाह कर देते है, जिस का फल यह होता है कि उत्तम गुणवती कन्या का विवाह दुर्गुण वाले वर के साथ अथवा उत्तम गुणवाले पुत्र का विवाह दुर्गुणवाली कन्या के साथ हो जाने से घरों में प्रतिदिन देवासुरसग्राम मचा रहता है, इन सव हानियों के अतिरिक्त जव से भारत में वालहत्या के मुख्य हेतु वालविवाह तथा वृद्धविवाह का प्रचार हुआ तव से एक और भी खोटी रीति का प्रचार हो गया है और वह यह है कि लडकी के लिये वर खोजने के लिये–नाई, वारी, धीवर, भाट और पुरोहित आदि भेजे जाते हैं, यह कैसे शोक की वात है कि–अपनी प्यारी पुत्री के जन्मभर के सुख दु ख का भार दूसरे परम लोभी, मूर्ख, गुणहीन, स्वार्थी और नीच पुरुषों पर डाल दिया जाता है, देखो ! जव कोई पुरुष एक पैसे की हाडी को भी मोल लेता है तो उस को खूव ठोक वजा कर लेता है परन्तु अफसोस है कि इस कार्य पर कि जिस पर अपने आत्मजों का सुख निर्भर है किञ्चित् भी ध्यान नहीं दिया जाता है, सुजनो ! यह कार्य ऐसा नहीं है कि इस को सामान्य वुद्धिवाला मनुष्य कर सके किन्तु यह कार्य तो ऐसे मनुष्य के करने का है कि जो विद्वान् तथा निर्लोभ हो और ससार को खूव देखे हुए हो, क्या आप इन नाई वारी भाट और पुरोहितों को नहीं जानते हैं कि ये लोग केवल एक एक पैसे पर प्राण देते हैं, फिर उन की वुद्धि की क्या तारीफ करें, उन की वुद्धि का तो साधारण नमूना यही है कि चार सभ्य पुरुषों में वैठ कर वे वात तक का कहना भी नहीं जानते हैं, न तो वे कुछ पढे लिखे ही होते हैं और न विद्वानों का ही सग किये हुए होते हैं फिर भला वे लोभरहित और वुद्धिमान् कहा से हो सकते हैं, देखो ! ससार में लोभ से वचना अति कठिन काम है क्योंकि यह वडा प्रवल ग्रह है, इस ने वडे २ विद्वान् तथा महात्माओं को भी सताया है तथा सताता है, इसी लोभ मे आकर औरगजेव ने अपने पिता और भ्राता को भी मार डाला था, लोभ के ही कारण आजकल भाई भाइयो मे भी नहीं वनती है, फिर भला उन का क्या कहना है कि जो दिन रात धन ही की लालसा मे लगे रहते हैं और उस के लिये लोगों की झूठी खुशामदें करते हैं, उन की तो साक्षात् यह दशा देखी गई है कि चाहें लडका काला और कुवडा आदि कैसा ही क्यों न हो किन्तु जहा लडके के पिता ने उन से मुट्ठी गर्म करने का प्रण किया वा खूव आवभगत से उन को लिया त्यों ही वे लोग लडकी वाले से आकर लडके की तथा कुल की वहुत ही प्रशसा करते हैं अर्थात् सम्वध करा ही देते हैं, परन्तु यदि लड़केवाला उन की मुट्ठी को गर्म नहीं करता है तथा उन की आवभक्ति नहीं करता है तो चाहें लडका

७—जीविका वा वृत्ति—बहुत सी जीविकायें वा वृत्तियें (रोजगार) भी ऐसी हैं जो कि शरीर को रोग के योग्य बनानेवाले कारण बन जाती हैं, जैसे देखो! सब दिन बैठ कर काम करनेवालों, आंख को बहुत परिश्रम देनेवालों, कलेजा और फेफसा दबा रहे इस प्रकार बैठकर काम करने वालों, रंग का काम करने वालों, पारा तथा फास

कैसा ही उत्तम क्यों न हो तो भी वे लोग आकर उसकी बाबत से बहुत अप्रशंसा तथा निन्दा कर देते हैं जिस के कारण परस्पर सम्बन्ध नहीं होता है और यदि दैवयोग से सम्बंध हो भी जाता है तो पति पत्नियों में परस्पर प्रेम नहीं रहता है क्योंकि वे (वर और कन्या) भाट आदि के द्वारा एक दूसरे की निन्दा सुने हुए होते हैं, इन्हीं अप्रबन्धों और परस्पर के द्वेष के कारण बहुधा मनुष्य नाना प्रकार की कुचालों में पड़ गये और उन्हों ने अपनी अर्धांगिनी रूप बहुतेरी बालिकाओं को जीते जी रंडापे का स्वाद चखा दिया इधर नाई बारी और पुरोहित आदि के कुचरे का तो रोना है ही परन्तु उधर एक महान् शोक का स्थान और भी है कि माता पिता आदि भी न पुत्र को देखते हैं और न पुत्री को देखते हैं, हां यदि आंखें खोल कर देखते हैं तो यही देखते हैं कि कितना रुपया पास है और क्या २ माल टाल है किन्तु पुत्र और पुत्री चाहे चोर और ज्वारी क्यों न हो चाहे समस्त धन को दो ही दिन में उड़ा दे और चाहें अपनी अपने फूहरपन से उस को पति के वास्ते जेलखाना ही क्यों न बना दे परन्तु इस की उन्हें कुछ भी चिन्ता नहीं होती है, बस पूछो तो यही कहा जा सकता है कि वे विवाह को पुत्र के साथ नहीं करते धन के साथ करते हैं, जब उन की कोई बुराई प्रकट होती है तब कहते हैं कि हम क्या करें हमारे यहां तो सदा से ऐसा ही होता चला आता है, प्रिय महाशयो! देखिये! इधर माता पिता आदि की तो यह लीला है, अब उधर शास्त्रकार क्या कहते हैं—शास्त्रकारों का कथन है कि—चाहें पुत्र और पुत्री मरणपर्यन्त कुमारे (अविवाहित) ही क्यों न रहें परन्तु असदृश अर्थात् परस्परविरुद्ध गुण कर्म और स्वभाव वालों का विवाह नहीं करना चाहिये इत्यादि, देखिये। प्राचीन काल में आप के पुरुषा लोग इसी शास्त्रोक्त आज्ञा के अनुसार अपने पुत्र और पुत्रियों का विवाह करते थे जिस का फल यह था कि उस समय में यह गृहस्थाश्रम स्वर्गधाम की शोभा को दिखला रहा था शास्त्रकारों की यह भी सम्मति है कि जो स्त्री पुरुष विद्या और अच्छी शिक्षा से युक्त एक दूसरे को अपनी इच्छा से पसन्द कर विवाह करते हैं वे ही उत्तम सन्तानों को उत्पन्न कर सदा प्रसन्न रहते हैं, इस कथन का मुख्य तात्पर्य यही है कि—इन ऊपर कहे हुए गुणों में जिस स्त्री से जिस पुरुष को और जिस पुरुष से जिस स्त्री को अधिक आनन्द मिले उन्हीं को परस्पर विवाह करना चाहिये (देखो! श्रीपाल राजा का प्राकृत चरित्र उस में इस का वर्णन आया है) शास्त्रकार यह भी पुकार २ कर कहते हैं कि—अति उत्तम विवाह वही है कि जिस में गुण कर्म और स्वभाव आदि गुणों से युक्त कन्या और वर का परस्पर सम्बन्ध हो तथा कन्या से वर का बल और आयु दूना वा ड्योढ़ा तो अवश्य हो परन्तु अफसोस का विषय तो यह है कि—समाज को आज कल न कोई देखता और न कोई पूछता ही है, फिर इस दशा में शास्त्रों और शास्त्रकारों की सम्मति प्रत्येक विषय में कैसे मालूम हो सकती है! बस यही कारण है कि—विवाहविषय में शास्त्रीय सिद्धान्त ज्ञात न होने से अनेक प्रकार की कुरीतियां प्रचलित हो गई और होती जाती हैं, जिन का वर्णन करते हुए अतिखेद होता है, देखिये! विवाह के विषय में एक यह और भी बड़ी भारी कुरीति प्रचलित है कि

फरस की चीजो के बनानेवालो, पत्थर को घड़नेवालों, धातुओं का काम करनेवालो (लुहार, कसेरे, ठठेरे और सुनार आदिको) कोयले की खान को खोदने वाले मजूरो, कपड़े की मिल में काम करनेवाले मजूरो, बहुत बोलनेवालो, बहुत फूकनेवालो और रसोई का काम प्रतिदिन करनेवालो का तथा इसी प्रकार के अन्य धन्धे (रोजगार) करनेवालो का शरीर रोग के योग्य हो जाता है तथा इन की आयु भी परिमाण से कम हो जाती है ॥

८–**प्रकृति**—प्रकृति (सभाव वा मिजाज) भी शरीर को रोग के योग्य बनानेवाला कारण है, देखो ! किसी का मिजाज ठढा, किसी का गर्म, किसी का वातल और

बहुधा उत्तम २ जातियों में विवाह ठेके पर होता है अर्थात् सगाई करने से पूर्व इकरार (करार) हो जाता है कि–हम इतनी बडी बरात लावेंगे और इतने रुपये आप को खर्च करने पडेंगे इत्यादि, उधर बेटी वाले वर के पिता से करार करा लेते हैं कि तुम को इतना गहना बींदणी को चढाना पडेगा, यह तो बडे २ श्रीमन्तों का हाल देखने में आता है, अब बाकी रह गये हजारिये और गरीब गृहस्थ लोग, सो इन में भी बहुत से लोग रुपया लेकर कन्या का विवाह करते हैं तथा रुपये के लोभ मे पड कर ऐसे अन्धे बन जाते हैं कि वर की आयु आदि का भी कुछ विचार नहीं करते हैं अर्थात् वर चाहें साठ वर्ष का बुड्ढा क्यों न हो तो भी रुपये के लोभ से अपनी अबोध (अज्ञान वा भोली) बालिका को उस जर्जर के गले से बाध कर उस के लिये दु खागार का द्वार खोल देते है, सत्य तो यह है कि जब से यहा कन्याविक्रय की कुरीति प्रचलित हुई तब ही से इस भारतवर्ष का सत्यानाश हो गया है, हे प्रभो! क्या ऐसे निर्दयी माता पिता भी कन्या के माता पिता कहे जा सकते हैं? जो कि केवल रुपये की तरफ देखते हैं और इस बात पर बिलकुल ध्यान नहीं देते हैं कि दो वर्ष के बाद यह बुड्ढा मर जायगा और हमारी पुत्री विधवा होकर दु खसागर मे गोते मारेगी या हमारे कुल को कलङ्कित करेगी, इस कुरीति के प्रचार से इस देश में जो २ हानिया हो चुकी हैं और हो रही हैं उन का वर्णन करने मे हृदय विदीर्ण होता है तथा विस्तृत होने से उन का वर्णन भी पूरे तौर पर यहा नहीं कर सकते हैं और न उन के वर्णन करने की कोई आवश्यकता ही है क्योंकि इस की हानिया प्राय सुजनों को विदित ही हैं, अब आप से यहा पर यही निवेदन करना है कि हे प्रिय मित्रो! आप लोग अपनी २ जाति मे इस बुरी रीति को बिलकुल ही उठा देने (नेस्तनाबूद करने) का पूरा २ प्रतिबन्ध कीजिये, क्योंकि यदि इस (बुरी रीति) को जड (मूल) से न उठा दिया जावेगा तो कालान्तर में अत्यन्त हानि की सम्भावना है, इस लिये इस कुरीतिको उठा देना और इन निम्न लिखित कतिपय बातों का भी ध्यान रखना आप का मुख्य कर्त्तव्य है कि जिस से दोनों तरफ किसी प्रकार का क्लेश न हो और मन न बिगडे, जैसा कि इस समय हमारे देश मे हो रहा है, जिस के कारण भारत की प्रतिष्ठारूपी पताका भी छिन्न भिन्न हो गई है तथा उत्तम २ वर्णवालों को भी नीचा देखना पडता है, इस विषय में ध्यान रखने योग्य ये बातें हैं— १–बरात में बहुत भीड नहीं ले जानी चाहिये। २–बखेर या लूट की चाल को उठाना चाहिये। ३–बागबहारी मे फजूल खर्ची नहीं करनी चाहिये। ४–आतिशबाजी मे रुपये को व्यर्थ में नही फूकना चाहिये। ५–रण्डियों का नाच कराना मानो अशुभ मार्ग की प्रवृत्ति करना है, इस लिये इस को भी

किसी का मिश्र होता है, मिश्रित प्रकृतिवालों में से कोई २ पुरुष दो प्रकृति की प्रधानतावाले तथा कोई २ तीनों प्रकृतियों की प्रधानतावाले भी होते हैं।

गर्म मिजाजवाला मनुष्य प्रायः शीघ्र ही क्रोध तथा बुखार के आधीन हो जाता है, ठंढे मिजाजवाला मनुष्य प्रायः शीघ्र ही सर्दी कफ और दम आदि रोगों के आधीन हो जाता है, एवं वायु प्रकृतिवाला मनुष्य प्रायः शीघ्र ही बादी के रोगों के आधीन हो जाता है।

यद्यपि मूल में तो यह प्रकृतिरूप दोष होता है परन्तु पीछे जब उस प्रकृति को बिगाड़नेवाले आहार विहार से सहायता मिलती है तब उसी के अनुसार रोगोत्पत्ति हो जाती है, इसलिये प्रकृति को भी शरीर को रोग के योग्य बनानेवाले कारणों में गिनते हैं॥

जला देना चाहिये। बुद्धिमान् जन यद्यपि इन पांचों ही कुरीतियों के फल को अच्छे प्रकार से जानते ही होंगे तथापि साधारण पुरुषों के ज्ञानार्थ इन कुरीतियों की हानियों का संक्षेप से वर्णन करते हैं:—

बरात में बहुत भीड़भाड़ का ले जाना—प्रथम तो यही विचार करना चाहिये कि बरात को खूब ठाठ बाट से ले जाने में दोनों तरफ के लोगों को क्लेश होता है और यथायोग्य प्रबन्ध तथा आदर सत्कार नहीं बन पड़ता है, इस के सिवाय इधर उधर का धन भी बहुत खर्च हो जाता है, अतः बहुत धूमधाम से बरात को ले जाने की कोई आवश्यकता नहीं है, बरन थोड़ी सी बरात को अच्छे सज्जन के साथ ले जाना अति उत्तम है, क्योंकि थोड़ी सी बरात का दोनों तरफ वाले उत्तम खान पान आदि से अच्छे प्रकार से सत्कार कर अपनी शोभा को कायम रख सकते हैं इस के सिवाय यह भी विचार की बात है कि—इस कार्य में विशेष धन का लगाना वृथा ही है, क्योंकि यह कोई चिरस्थायी कार्य तो है ही नहीं सिर्फ दो दिन की बात है, अधिक बरात के ले जाने में नेकनामी की प्राप्ति कम आशा हो ती है किन्तु बदनामी की ही सम्भावना रहती है क्योंकि यह प्रत्यक्ष की बात है कि समर्थ पुरुष को भी बहुत से लोगों का उन्हीं इच्छा के अनुसार पूरा २ प्रबन्ध करने में कठिनता पड़ती है, बस जहां बरातियों के आदर सत्कार में जरा त्रुटि हुई तो शीघ्र ही बराती जन यही कहते हैं कि अमुक पुरुष की बरात में गये थे वहां खाने पीने तक का भी कुछ प्रबन्ध नहीं था सब लोग भूखों के मारे मरते थे पानी तक तथा घास भी समय पर नहीं मिलता था इधर सेठजी के जाने के समय तो बड़ी धीप धाप (लम्बे चौड़े) करते थे परन्तु यहां तो हम उनके कमबख्ती ही में बैठे रहे इत्यादि कहिये यह कितना तमाशा का स्थान है। एक तो धन जावे और दूसरे कुयश हो इस में क्या फायदा है? इस लिये बुद्धिमानों को थोड़ी ही सी बरात ले जाना चाहिये।

बखेर या लूट—बखेर का करना तो सर्व प्रकार ही महा हानिकारक कार्य है, देखो! बखेर का नाम सुनकर दूर २ के भंगी आदि नीच जाति के लोग तथा छोटे लड़के अपाहज कँगले और दुर्बल आदि इकट्ठे होते हैं, क्योंकि लालच बुरी बला है इधर नगर निवासियों में से सब ही छोटे बड़े छत और अटारियों पर तथा बाजारों में इकट्ठे होकर झुके से झुक जाते हैं, बखेर करनेवाले वहां पर मुट्ठियां अधिक मारते हैं जहां स्त्रियों तथा मनुष्यों का समूह अधिक होते हैं, उन मुट्ठियों के लगने से हजारों की पुरुष

रोग को उत्पन्न करनेवाले समीपवर्त्ती कारण ॥

रोगको उत्पन्न करनेवाले समीपवर्त्ती कारणों में से मुख्य कारण अठारह है और वे ये है–हवा, पानी, खुराक, कसरत, नींद, वस्त्र, विहार, मलीनता, व्यसन, विषयोग, रस-विकार, जीव, चेप, ठंढ, गर्मी, मनके विकार, अकस्मात् और दवा, ये सब पृथक् २ अनेक रोगों के कारण हो जाते है, इन में से मुख्य सात वातें है जिन को अच्छे प्रकार से उपयोग में लाने से शरीर का पोषण होकर तनदुरुस्ती वनी रहती है तथा इन्हीं वस्तुओं का आवश्यकता से कम अधिक अथवा विपरीत उपयोग करने से शरीर में अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते है ।

और वाल वच्चे तले ऊपर गिरते हैं कि जिस से अवश्य ही दश वीस लोगों के चोट लगती है तथा एक आध मर भी जाते है, उस समय में लोभवश आये हुए वेचारे अन्धे लूले और लॅंगडे आदि की तो अत्यन्त ही दुर्दशा होती है और ऐसी अन्धाधुन्धी मचती है कि कोई किसी की नहीं सुनता है, इधर तो ऊपर से मुट्ठी धडाधड चली आती है तथा वह दूर की मुट्ठी जिस किसी की नाक वा कान मे लगती है वह वैसा ही रह जाता है, उधर लुच्चे गुडे लोग स्त्रियों की ऐसी कुदशा देख उनकी नथ आदि में हाथ मार कर भागते है कि जिस से उन वेचारियों की नथ आदि तो जाती ही है किन्तु नाक आदि भी फट जाती है, यह तो मार्ग की दशा हुई–अव आगे वढिये–लूट का नाम सुनकर समधी के दर्वाजे पर भी झुडके झुण्ड लग जाते हैं और जव वहा रुपयों की मुट्ठी चलती है उस समय लूटनेवालों को वेहोसी हो जाती है और तले ऊपर गिरने से वहुत से लोग कुचल जाते हैं, किसी के दात टूटते हैं, किसी के हाथ पैर टूटते हैं, किसी के मुख आदि अगों से खून वहता है और कोई पडा २ सिसकता है इत्यादि जो २ वहा दुर्दशा होती है वह देखने ही से जानी जाती है, भला वतलाइये तो इस वखेर से क्या लाभ है कि जिस में ऐसे २ कौतुक हों तथा धन भी व्यर्थ में जावे ? देखो ! वखेर मे जितना रुपया फेंका जाता है उस मे से आधे से अधिक तो मिट्टी आदि मे मिल जाता है, वाकी एक तिहाई हट्टे कट्टे भगी आदि नीचों को मिलता है जिस को पाकर वे लोग खूव मास और मद्य का खान पान करते हैं तथा अन्य वुरे कामों में भी व्यय करते हैं, शेष रहा सो अन्य सामान्य जनों को मिलता है, परन्तु लूले लँगडे और अपाहिजों के हाथ में तो कुछ भी नहीं आता है, वरन् उन वेचारों का तो काम हो जाता है अर्थात् अनेकों के चोटें लग जाती हैं, इस के अतिरिक्त किन्हीं २ के पहुँची, छल्ला, नथुनी और अगुठी आदि भूषण जाते रहते हैं इस दशामे चाहे पानेवाले कुछ लोग तो सेठजीकी प्रशसा भी करें परन्तु वहुधा वे जन कि जिन के चोट लग जाती है या जिन की कोई चीज जाती रहती है सेठजी तथा लालाजी के नाम को रोते ही हैं, जिन मनुष्यों को कुछ भी नहीं मिलता है वे यही कहते हैं कि सेठजी ने वखेर का तो नाम किया था, कहीं २ कुछ पैसे फेंकते थे, ऐसे फेंकने से क्या होता है, वह कजूस क्या वखेर करेगा इत्यादि, देखिये ! यह कैसी वात है–एक तो रुपये गमाना और दुसरे वदनामी कराना, इस लिये वखेर की प्रथा को अवश्य वन्द कर देना चाहिये, हा यदि सेठजी के हृदय मे ऐसी ही उदारता हो तथा द्रव्य खर्चकर नामवरी ही लेना चाहते हों तो लूले और लॅंगडों के लिये सदावर्त्त आदि जारी कर देना चाहिये ।

इन अठारहों विषयों में से बहुत से विषयों का विवरण हम विस्तारपूर्वक पहिले भी कर चुके हैं, इसलिये यहां पर इन अठारहों विषयों का वर्णन संक्षेप से इस प्रकार से किया जायगा कि इन में से प्रत्येक विषय से कौन २ से रोग उत्पन्न होते हैं, इस वर्णन से पाठक गणों को यह बात ज्ञात हो जायगी कि शरीर को अनेक रोगों के योग्य बनानेवाले कारण कौन २ से हैं।

१—**हवा**—अच्छी हवा रोग को मिटाती है तथा खराब हवा रोग को उत्पन्न करती है, खराब हवा से मलेरिया अर्थात् विषम जीर्ण ज्वर नामक बुखार, दस्त, मरोड़ा, हैजा, कामला, आधाशीसी, शिर का दुखना (दर्द), मन्दाग्नि और अवीर्य आदि रोग उत्पन्न होते हैं।

बहुत ठंढी हवा से खांसी, कफ, दम, सिसकना, शोथ और सन्निवायु आदि रोग उत्पन्न होते हैं।

बाग बहारी अर्थात् फूल दड़ी—बाग बहारी की भी वर्तमान समय में यह चर्चा है कि—ऐकेन काकम् और अवरख (मोडल) के फूलों के स्थान में (यद्यपि ये भी फजूल खर्ची में कुछ कम नहीं थे) हुई मोट चांदी सोने की कलोरियां बादाम छुवारे और मिसरियों की तस्तरियें बनाने की नौबत आ पहुंची। यों तो सब ही लोग अपने रुपये और माल की रक्षा करते हैं परन्तु हमारे देशभाई अपने धन को आंखों के सामने खड़े होकर खुशी से लुटवा देते हैं और हजारों खर्च कर के भी कुछ यश नहीं उठाते हैं, हां यह तो अलबत्तामेव सुनने में आता है कि अमुक अमुक आ साहूकार की बरात में फूलदड़ी जलाने को हरतरह बचाई थी परन्तु न बची जलनेवालेके सामने तक न पहुंचने पाई कि फूल उड़ी लुट गई, अब प्रथम तो यही विचार करने का स्थान है कि विवाह के कार्य की प्रसन्नता के पहिले लुटने की अशुभ वाणी का मुंह से निकलना (कि अमुक की फूल उड़ी लुट गई) कैसा बुरा है। इसके सिवाय इस में कभी २ लट्ठ भी चल जाते हैं, जब टोपी तथा पगड़ी उतर जाती है तब वह फूल हाथ में आता है मानो लूटनेवालों की प्रतिष्ठा के जाने पर कुछ मिलता है, आपस में दंगा हो जाने से बहुधा मैजिस्ट्रेट तक भी नौबत पहुंचती है सब से बड़ी शोचनीय बात यह है कि विवाह जैसे शुभ कार्य के आरम्भ ही में लूट का सब सामान करना पड़ता है।

आतिशबाजी—आतिशबाजी से न तो कोई सांसारिक ही काम है और न पारलौकिक ही है, वरन् बड़ों के उपार्जन किये हुए धन को क्षणमात्र में जला कर राख की ढेरी का बना देना है, इस में भीड़भाड़ भी इतनी हो जाती है कि एक एक के ऊपर दब दब गिरते हैं एक इधर दौड़ता है एक उधर दौड़ता है इस से वहां तक धक्कमधक्का मच जाती है कि—बहुधा लोग बेदम हो जाते हैं तमाशा यह होता है कि—किसी के पैर की उंगली पिची किसी की टांगी टूटी किसी की आंखों तथा मूंछ का सफाया हुआ किसी का दुपट्टा तथा किसी का अंगरखा जल गया तथा किसी २ के हाथ पांव सुन्न पड़े इस से बहुधा मकानों के छप्परों में भी आग लग जाती है कि जिस से चारों ओर हाहाकार मच जाता है और उस से अन्यत्र भी आग लगने के द्वारा बहुधा अनेक हानियां हो जाती हैं, कभी २ मनुष्य तथा पशु भी

बहुत गर्म हवा से जलन, रूखापन, गर्मवायु, प्रमेह, प्रदर, भ्रम, अँधेरी, चक्कर, भँवर आना, वातरक्त, गलत्कुष्ठ, शील, ओरी, पिंडलियों का कटना, हैज़ा और दस्त आदि रोग उत्पन्न होते हैं ॥

२-**पानी**—निर्मल (साफ) पानी के जो लाभ हैं वे पहिले लिख चुके हैं उन के लिखने की अब कोई आवश्यकता नहीं है ।

खराब पानी से-हैज़ा, कृमि, अनेक प्रकार का ज्वर, दस्त, कामला, अरुचि, मन्दाग्नि, अजीर्ण, मरोडा, गलगण्ड, फीकापन और निर्बलता आदि अनेक रोग उत्पन्न होते हैं ।

अधिक खारवाले पानी से-पथरी, अजीर्ण, मन्दाग्नि और गलगण्ड आदि रोग होते हैं।

सड़ी हुई वनस्पति से अथवा दूसरी चीजों से मिश्रित (मिले हुए) पानी से दस्त, शीत ज्वर, कामला और तापतिल्ली आदि रोग होते हैं ।

मरे हुए जन्तुओं के सड़े हुए पदार्थ से मिले हुए पानी से हैजा, अतीसार तथा दूसरे भी भयकर और जहरीले बुखार उत्पन्न होते हैं ।

जल कर प्राणों को त्यागते हैं, इस के अतिरिक्त इस निकृष्ट कार्य से हवा भी विगड जाती है कि जिस से प्राणी मात्र की आरोग्यता मे अन्तर पड जाता है, इस से द्रव्य का नुकसान तो होता ही है किन्तु उस के साथ में महारम्भ (जीवहिंसाजन्य अपराध) भी होता है, तिस पर भी तुर्रा यह है कि-घर वालों को कामों की अधिकता से घर फूक के भी तमाशा देखने की नौबत नहीं पहुँचती है ।

रण्डी (वेश्या) का नाच—सत्य तो यह है कि-रण्डियों के नाच ने इस भारत को गारत कर दिया है, क्योंकि तबला और सारगी के विना भारत वासियों को कल ही नहीं पडती है, जब यह दशा है तो वरात मे आने जाने वालों के लिये वह सञ्जीवनी क्यों न हो। समधी तथा समधिन का भी पेट उस के विना नहीं भरता है, ज्यों ही वरात चली त्यों ही विषयी जन विना बुलाये चलने लगते हैं, वेश्या को जो रुपया दिया जाता है उस का तो सत्यानाश होता ही है किन्तु उस के साथ में अन्य भी बहुत सी हानियों के द्वार खुल जाते हैं, देखो ! नाच ही मे कुमार्गी मित्र उत्पन्न हो जाते हैं, नाच ही में हमारे देश के धनाढ्य साहूकार लज्जा को तिलाञ्जलि देते हैं, नाच ही मे वेश्याओं को अपनी शिकार के फाँसने तथा नौ जवानों का सत्यानाश मारने का समय (मौका) हाथ लगता है, बाप बेटे भाई और भतीजे आदि सब ही छोटे बडे एक महफिल में बैठकर लज्जा का परदा उठा कर अच्छे प्रकार से घूरते तथा अपनी आखों को गर्म करते हैं वेश्या भी अपने मतलब को सिद्ध करने के लिये महफिलों मे ठुमरी, टप्पा, बारहमासा और गजल आदि इश्क के द्योतक रसीले रागों को गाती है, तिस पर भी तुर्रा यह है कि-ऐसे रसीले रागों के साथ मे तीक्ष्ण कटाक्ष तथा हाव भाव भी इस प्रकार बताये जाते हैं कि जिन से मनुष्य लोट पोट हो जाते हैं तथा खूब सूरत और शृगार किये हुए नौ जवान तो उस की सुरीली आवाज और उन तीक्ष्ण कटाक्ष आदि से ऐसे घायल हो जाते हैं कि फिर उन को सिवाय इश्क वस्ल यार के और कुछ भी नहीं सूझता है, देखिये ! किसी महात्मा ने कहा है कि—

धातुओं के योग से मिले हुए पानी से (जिस में पारा सोमल और सीसा आदि विषैले पदार्थ गलकर मिले रहते हैं उस जलसे) भी रोगों की उत्पत्ति होती है ॥

२–खुराक—शुद्ध, अच्छी, प्रकृति के अनुकूल और ठीक तौर से सिजाई हुई खुराक के खाने से शरीर का पोषण होता है तथा अशुद्ध, सड़ी हुई, बासी, बिगड़ी हुई, कच्ची, रूखी, बहुत ठंढी, बहुत गर्म, भारी, मात्रा से अधिक तथा मात्रा से न्यून खुराक के खाने से बहुत से रोग उत्पन्न होते हैं, इन सब का वर्णन संक्षेप से इस प्रकार है¹—

१–सड़ी हुई खुराक से—कृमि, हैजा, वमन, कुष्ठ (कोढ़), पित्त तथा दस्त आदि रोग होते हैं।

---

१ दर्शनात् हरते चित्तं स्पर्शनात् हरते बलम्।
मैथुनात् हरते वीर्यं वेश्या प्रत्यक्षराक्षसी ॥ १ ॥

अर्थात् दर्शन से चित्त को छूने से बल को और मैथुन से वीर्य को हर लेती है अतः वेश्या प्रत्यक्ष राक्षसी ही है ॥ १ ॥ यद्यपि सब ही जानते हैं कि इस राक्षसी वेश्या ने हजारों घरों को धूल में मिला दिया है तिस पर भी तो बाप और बेटे को साथ में बैठ कर भी कुछ नहीं सूझता है, क्यों उस की आंख कभी कि चकनाचूर हो जाते हैं, प्रतिष्ठा तथा जवानी को खोकर बदनामी का टीका मथे में लगाते हैं, देखो ! हजारों लोग इश्क के नशे में चूर होकर अपना घर बार बेचकर दो २ दानों के लिये मारे २ फिरते हैं, बहुत से नादान लोग बन ठना २ कर इन की भेंट चढ़ाते हैं और उनके मातापिता दो २ दानों के लिये मारे २ फिरते हैं, सच पूछो तो इस कुकर्म से उन की जो २ दुर्दशा होती है वह सब अपनी करनी का ही निकृष्ट फल है, क्योंकि वे ही प्रत्येक उत्सव अर्थात् बालकजन्म नामकरण मुण्डन सगाई और विवाह में तथा इन के सिवाय जन्माष्टमी रामलीला रासलीला होली दिवाली दशहरा और वसन्तपञ्चमी आदि पर बुला २ कर अपने भी जवानों को उन राक्षसियों की रसभरी आवाज तथा मधुरी आंखें दिखलाते हैं कि जिस से वे बहुधा रण्डीबाज हो जाते हैं तथा उन को आतशक और सुजाक आदि बीमारियां घेर लेती हैं, जिन की आग में वे सदा भुनते रहते हैं तथा उन की परछाहीं अपनी औलाद को भी देकर निराश छोड़ जाते हैं, बहुतसे मूर्ख जन रण्डियों के नाज नखरे तथा बनाव शृङ्गार आदि पर ऐसे मोहित हो जाते हैं कि घर की विवाहिता स्त्रियों के पास तक नहीं जाते हैं तथा उन (विवाहिता स्त्रियों) पर नाना प्रकार के दोष रखकर मुँह से बोलना भी अच्छा नहीं समझते हैं, वे बेचारी दुःख के कारण रातदिन रोती रहती हैं, यह भी अनुभव किया गया है कि—बहुधा जो स्त्रियां महफिल का नाच देख लेती हैं उन पर इस का ऐसा बुरा असर पड़ता है कि—जिस से घर के घर उजड़ जाते हैं, क्योंकि जब वे देखती हैं कि—सम्पूर्ण महफिल के लोग उस रण्डी की ओर टकटकी लगाये हुए उस के नाज और नखरों को सह रहे हैं यहांतक कि जब वह थूकने का इरादा करती है तो एक आदमी पीकदान लेकर हाजिर होता है, इसी प्रकार यदि पान खाने की जरूरत हुई तो भी मिहमत आज तथा अदब के साथ उपस्थित किया जाता है, इस के सिवाय वह सुख नीचे से ऊपरतक सोने और चांदी के आभूषणों तथा अतलस गुलबदन और कमख्वाब आदि बहुमूल्य वस्त्रों के पैशवाज को एक एक दिन में चार २ दफे

२–कच्ची खुराक से–अजीर्ण, दस्त, पेट का दुखना और कृमि आदि रोग होते है।
३–रूखी खुराक से–वायु, शूल, गोला, दस्त, कब्ज़ी, दम और श्वास आदि रोग उत्पन्न होते हैं।
४–वातल खुराक से–शूल, पेट में चूक, गोला तथा वायु आदि रोग उत्पन्न होते है।
५–वहुत गर्म खुराक से–खासी, अम्लपित्त (खट्टी वमन), रक्तपित्त (नाक और मुख आदि छिद्रों से रुधिर का गिरना) और अतीसार आदि रोग उत्पन्न होते है।
६–वहुत ठढी खुराक से–खासी, श्वास, दम, हांफनी, शूल, शर्दी और कफ आदि रोग उत्पन्न होते है।

नई २ किस्म के वदलती है तथा अतर और फुलेल की लपटें उस के पास से चली आती हैं वस इन्हीं सव वातों को देखकर उन विद्याहीन स्त्रियो के मन मे एक ऐसा वुरा असर पट जाता है कि जिस का अन्तिम (आखिरी) फल यह होता है कि वहुधा वे भी उसी नगर में खुल्लमखुल्ला लज्जा को त्याग कर रण्डी वन कर गुलछर्रे उडाने लगती हैं और कोई २ रेल पर सवार होकर अन्य देशों में जाकर अपने मन की आशा को पूर्ण करती है, इस प्रकार रण्डी के नाच से गृहस्थों को अनेक प्रकार की हानियां पहुचती हैं, इस के अतिरिक्त यह कैसी कुप्रथा चल रही है कि–जव दर्वाजों पर रण्डियां गाली गाती हैं और इधर से (घर की स्त्रियों के द्वारा) उस का जवाव होता है, देखिये! उस समय कैसे २ अपशव्द वोले जाते हैं कि–जिन को सुन कर अन्यदेशीयलोगों का हँसते २ पेट फूल जाता है और वे कहते हैं कि इन्हों ने तो रण्डियों को भी मात कर दिया, धिक्कार है ऐसी सास आदि को। जो कि मनुष्यों के सम्मुख (सामने) ऐसे २ शव्दों का उच्चारण करें! अथवा रण्डियों से इस प्रकार की गालियों को सुनकर भाई वन्धु माता और पिता आदि की किञ्चित् भी लज्जा न करें और गृह के अन्दर घूघट वनाये रखकर तथा ऊची आवाज से वात भी न कह कर अपने को परम लज्जावती प्रकट करें! ऐसी दशा में सच पूछो तो विवाह क्या मानो परदे वाली स्त्रियों (शर्म रखनेवाली स्त्रियों) को जान वूझकर वेशर्म वनाना है, इस पर भी तुर्रा यह है कि–खुश होकर रण्डियों को रुपया दिया जाता है (मानो घर की लज्जावती स्त्रियों को निर्लज्ज वनाने का पुरस्कार दिया जाता है), प्यारे सुजनो! इन रण्डियों के नाच के ही कारण जव मनुष्य वेश्यागामी (रण्डीवाज) हो जाते हैं तो वे अपने धर्म कर्म पर भी धता भेज देते है, प्राय आपने देखा होगा कि जहां नाच होता है वहा दश पाच तो अवश्य मुड ही जाते हैं, फिर जरा इस वात को भी सोचो कि जो रुपया उत्सवों और खुशियों मे उन को दिया जाता है वे उस रुपये से वकराईद मे जो कुछ करती हैं वह हत्या भी रुपया देनेवालों के ही शिर पर चढती है, क्योंकि–जव रुपया देनेवालों को यह वात प्रकट है कि यदि इन के पास रुपया न होगा तो ये हाथ मलमल कर रह जावेंगी और हत्या आदि कुछ भी न कर सकेंगी–फिर यह जानते हुए भी जो लोग उन्हें रुपया देते हैं तो मानो वे खुद ही उन से हत्या करवाते है, फिर ऐसी दशा मे वह पाप रुपया देनेवालों के शिर पर क्यों न चढेगा? अव कहिये कि यह कौन सी वुद्धिमानी है कि रुपया खर्च करना और पाप को शिर पर लेना! प्यारे सुजनो! इस वेश्या के नृत्य से विचार कर देखा जावे तो उभयलोक के सुख नष्ट होते है और इस के समान कोई भी कुत्सित प्रथा नहीं है, यद्यपि वहुत से लोग इस दुष्कर्म की हानियां

७—भारी खुराक से—अपची, दस्त, मरोड़ा और बुखार आदि रोग उत्पन्न होते हैं ।

८—मात्रा से अधिक खुराक से—दस्त, अजीर्ण, मरोड़ा और ज्वर आदि रोग उत्पन्न होते हैं ।

९—मात्रा से न्यून खुराक से—क्षय, निर्बलता, चेहरे और शरीर का फीकापन और बुखार आदि रोग उत्पन्न होते हैं ।

इस के सिवाय मिट्टी से मिली हुई खुराक से—पाण्डु रोग होता है, बहुत मसालेदार खुराक से—यकृत् (कलेजा अर्थात् लीवर) बिगड़ता है और बहुत उपवास के करने से शूल और वायुजन्य रोग आदि उत्पन्न होकर शरीर को निर्बल कर देते हैं ॥

को अच्छे प्रकार से जानते भी हैं तो भी इस को नहीं छोड़ते हैं, संसार की अनेक बदनामियों को सिर पर उठाते हैं तो भी इस से मुख नहीं मोड़ते हैं, इस कुरीति की जो कुछ निकृष्टता है उस को पूरे तौर से क्या बतलावें किन्तु यह मुजरा तथा उस का सर्व सामान ही बतलाता है, देखो ! जब मुजरा होता है तब वेश्या गाती है तब यह उपदेश मिलता है कि—

सवैया—सुन बालके बोल कुवाक्य एवैं धन जात है व्यर्थ सदा तिन को ।
एक रांड मुख्य नचावत है, नहिं आवत लाज जरा तिनको ॥
मिरदंग भनै धिक है धिक है, सुरताल पुछै किन को किन को ।
तब उत्तर रांड बतावत है, धिक है इन को इन को इन को ॥ १ ॥

एक समय का प्रसंग है कि—किसी भाग्यवान् वैश्य के यहां एक ब्राह्मण ने भागवत की कथा बांची तब उस वैश्य ने कथा पर केवल तीस रुपये चढ़ाये परन्तु उसी भाग्यवान् के यहां जब पुत्र का विवाह हुआ तो उस ने वेश्या को बुलाई और उसे सात सौ रुपये दिये उस समय उस ब्राह्मण ने कहा है कि—

दोहा—उलटी गति गोपाल की घट गई विस्वा बीस ॥
रामजनी को सात सौ भगवतराम को तीस ॥ १ ॥

प्रियवरो ! अब अन्त में आप से यही कहना है कि—यदि आप के विचार में भी ऊपर कही हुई सब बातें ठीक हों तो शीघ्र ही भारतसन्तान के उद्धार के लिये वेश्या के नाच कराने की प्रथा को अवश्य त्याग दीजिये अन्यथा (इस का त्याग न करने से) सम्मति देने के द्वारा आप भी दोषी अवश्य होंगे क्योंकि—किसी विषय का खण्डन न करना सम्मति रूप ही है ॥

भांड—वेश्या के नृत्य के समान इस देश में भांडों के कौतुक कराने की भी प्रथा पड़ रही है, इस का भी कुछ वर्णन करना चाहते हैं, सुनिये—ज्योंही वेश्याओं के नाच से निश्चिन्त हुए त्योंही भांडों का अक्खड़ बखेड़ा के मेंमनों की भांति भांति २ की बोली बोलता हुआ निकल पड़ा अब क्या तालियां बजने कोई किसी की झुकी हुई खोपड़ी में चपत जमाता है, कोई पशु की भांति चिल्लाता है, एक कहता है कि मिया जी ! दूसरा कहता है कुछ तात्पर्य यह है कि ये लोग अनेक प्रकार के कौतुक मचाते हैं तथा ऐसी २ नकलें बनाते और सुनाते हैं कि जवानी पेठनी और बाबू जी आदि की मसीदा में पानी पड़ जाता है, ऐसे २ शब्दों का उच्चारण करते हैं कि जिन के लिखने में भी लेखनीको तो लज्जा आती

८-कसरत—कसरत से होनेवाले लाभों का वर्णन पहिले कर चुके है तथा उस का विधान भी लिख चुके है, उसी नियम के अनुसार यथाशक्ति कसरत करने से वहुत लाभ होता है, परन्तु वहुत मेहनत करने से तथा आलसी होकर वैठे रहने से वहुत से रोग होते है, अर्थात् वहुत परिश्रम करने से वुखार, अजीर्ण, ऊरुस्तम्भ (नीचे के भाग का रह जाना) और श्वास आदि रोगो के होने की सभावना होती है तथा आलसी होकर वैठे रहने से—अजीर्ण, मन्दाग्नि, मेदवायु और अशक्ति आदि रोग होते है, भोजन कर कसरत करने से—कलेजे को हानि पहुॅचती है, भारी अन्न खाकर कसरत करने से—आम-वात का प्रकोप होता है ।

कसरत दो प्रकार की होती है—एक शारीरिक (शरीर की) और दूसरी मानसिक (मन की), इन दोनों कसरतों को पूर्व लिखे अनुसार अपनी शक्ति के अनुसार ही करना चाहिये, क्योंकि हद्द से अधिक शारीरिक कसरत तथा परिश्रम करने से हृदय में व्याकुलता (धड़धड़ाहट) होती है, नसो में रुधिर वहुत शीघ्र फिरता है, श्वासोच्छ्वास

है परन्तु उस सभा के वैठनेवाले जो सभ्य कहलाते हैं कुछ भी लज्जा नहीं करते हैं, वरन प्रसन्न चित्त होकर हॅसते २ अपना पेट फुलाते और उन्हे पारितोपिक प्रदान करते हैं, प्यारे सुजनो! इन्हीं व्यर्थ वातों के कारण भारत की सन्तानों का सत्यानाश मारा गया, इस लिये इन मिथ्या प्रपञ्चों का शीघ्र ही त्याग कर दीजिये कि जिन के कारण इस देश का पटपड हो गया, कैसे पश्चात्ताप का स्थान है कि—जहा प्राचीन समय मे प्रत्येक उत्सव मे पण्डित जनों के सत्योपदेश होते थे वहा अव रण्डी तथा लौंडों का नाच होता है तथा भाति २ की नकलें आदि तमाशे दिखलाये जाते हैं जिन से अशुभ कर्म वॅधता है, क्योंकि धर्मशास्त्रों मे लिखा है कि—नकल करने से तथा उसे देखकर खुश होने से वहुत अशुभ कर्म वधता है, हा शोक! हा शोक!! हा शोक!!! इस के सिवाय थोडा सा वृत्तान्त और भी सुन लीजिये और उसे सुनने से यदि लज्जा प्राप्त हो तो उसे छोडिये, वह यह है कि—विवाह आदि उत्सवों के समय स्त्रियों मे वाजार, गली, कूचे तथा घर मे फूहर गालियों अथवा गीतों के गाने की निकृष्ट प्रथा अविद्या के कारण चल पडी है तथा जिस से गृहस्थाश्रम को अनेक हानिया पहुच चुकी हैं और पहुॅच रही हैं, उसे भी छोडना आवश्यक है, इस लिये आप को चाहिये कि इस का प्रवन्ध करें अर्थात् स्त्रियों को फूहर गालिया तथा गीत न गाने देवें, किन्तु जिन गीतों मे मर्यादा के शब्द हो उन को कोमल वाणी से गाने दें, क्योंकि युवतियों का युवावस्था मे निर्लज्ज शब्दों का मुख से निकालना मानो वारूद की चिनगारी का छोडना है, इस के अतिरिक्त इस व्यवहार से स्त्रियों का स्वभाव भी विगड जाता है, चित्त विकारों से भर जाता है और मन विषय की तरफ दौडने लगता है फिर उस का साधना (कावू मे रखना) अत्यन्त ही कठिन वरन दुस्तर हो जाता है, इस लिये उचित है कि मन को पहिले ही से विषयरस की तरफ न झुकने देवे तथा यौवन रूपी मदवाले के हाथ मे विपयरस रूपी हथियार देके अपने हितकारी सद्गुणों का नाश न करावें, यदि मन को पहिले ही से इस से न रोका जावेगा तो फिर उस का रुकना अति कठिन हो जावेगा ।

बहुत जोर से चलता है जिस से मगज तथा फेफसे आदि आवश्यक भागों पर अधिक दबाव होने से तत्सम्बन्धी रोग होता है, भँवर आते हैं, कानों में आवाज होती है, आँखों में अँधेरा छा जाता है, भूख मारी जाती है, अजीर्ण होता है, नींद नहीं आती है तथा बेचैनी होती है तथा शक्ति से बढ़कर मानसिक कसरत करने से मनुष्य के मगज में जुस्सा भर जाता है जिस से बेहोशी हो जाती है तथा कभी २ मृत्यु भी हो जाती है, मानसिक विपरीत परिश्रम करनेसे अर्थात् चिन्ता फिक्र आदि से अंग सन्तप्त हो जाते हैं,

---

इस के सिवाय विवाह के विषय में एक बात और भी अवश्य ध्यान में रखने योग्य है कि दोनों ओर से ऐसा कोई काम नहीं होना चाहिये कि जिस से आपस में प्रेम न रहे जैसे कि—बहुधा लोग बरातों में डेरे बाग और पड़े से आदि तनिक २ सी बातों में ऐसे झगड़े खड़ा देते हैं कि जिन से समधियों के मन में अन्तर पड़ जाता है कि जिस के कारण माल देने पर भी आनन्द नहीं आता है, यह बात बिलकुल सच है कि—प्रेम के बिना सर्वस्व मिलने पर भी प्रसन्नता नहीं होती है अतः प्रीतिपूर्वक प्रत्येक कार्य को करना चाहिये कि जिस से दोनों ही तरफ प्रशंसा हो और धर्म भी व्यर्थ न हो समझ सोचने की बात है कि—दो सम्बन्धियों में से जब एक की बुराई हुई तो क्या वह अपना सम्बन्धी नहीं है ? क्या उस की बदनामी से अपनी बदनामी नहीं हुई ? सच पूछो तो जो लोग इस बात पर ध्यान नहीं देते हैं उन सम्बन्धियों पर पता भेजना उचित है, क्योंकि विवाह का समय आपस में आनन्द तथा प्रेमरस के बरसाने और मृदु मधुर वार्तालाप करने का है, किन्तु एक दूसरे के विपरीत कीचड़ रच कर युद्ध का सामान इकट्ठा कर लेने का यह समय नहीं है, इस लिये जो लोग ऐसा करते हैं यह उन की सर्वथा मूर्खता की बात है, अतः दोनों को एक दूसरे की भलाई का तन मन से विचार कर कामों को कर के यश का लेना उचित है, दोनों सम्बन्धियों को यह भी उचित है कि—जो मनुष्य मन से दोनों की फूट उपजाना चाहते हैं तथा बाहर से बहुत ही चिकनी चुपड़ी करते हैं उन की बातों पर कदापि ध्यान न दें क्योंकि इस संसार में दूसरे को खुशामद आदि के द्वारा निरन्तर प्रसन्न करने के लिये प्रिय बोलनेवाले प्रशंसक लोग बहुत हैं परन्तु जो वचन सुनने में चाहे अप्रिय ही हो परन्तु वास्तव में कल्याण करनेवाला हो उस के बोलने वाले तथा सुनने वाले पुरुष दुर्लभ हैं, देखो ! बहुधा दुष्ट धूर्त तथा क्षुद्र लोग सामने तो हाँ में हाँ मिलाते हैं और पीछे बुराई निकालकर बतलाते हैं परन्तु सत्पुरुष तो मुँह पर प्रत्येक वस्तु के गुण और दोषों का वर्णन करते हैं और परोक्ष में प्रशंसा ही करते हैं, इन बातों को विचार कर दोनों समधियों को योग्य है कि—दोनों समक्ष में मिलकर प्रत्येक बात का साम निर्णय कर जो दोनों के लिये लाभदायक हो उसी का अंगीकार करें जिस से दोनों आनन्द में रहें क्योंकि यही विवाह और सम्बन्ध का मुख्य फल है।

विवाह की रीति जो इस समय बिगड़ रही है वह प्रसङ्गवश पाठकों को संक्षेप से बतला दी गई, यदि इस का पूरे तौर से वर्णन कर इस के दोष और गुण बतलाये जावें तो इसी विषय का एक ग्रन्थ बन जावे परन्तु बुद्धिमान् पुरुष सङ्केतमात्र से ही तत्त्व को समझ लेते हैं अतः अतिसंक्षेप से ही इस विषय का वर्णन किया है आशा है कि पाठक गण इतने ही कथन से अपने हिताहित का विचार कर अशुभ और अहित कुमार्ग का त्याग कर शुभ और हितकारक सन्मार्ग का अवलम्बन करेंगे ॥

शरीर में निर्वलता अपना घर कर लेती है, इसी प्रकार शक्ति से वाहर पढ़ने लिखने तथा वाचने से, वहुत विचार करने से और मन पर वहुत दवाव डालने से कामला, अजीर्ण, वादी और पागलपन आदि रोग उत्पन्न होते है।

स्त्रियों को योग्य कसरत के न मिलने से—उनका शरीर फीका, नाताकत और रोगी रहता है, गरीव लोगों की स्त्रियों की अपेक्षा द्रव्यपात्र तथा ऐश आराम में सलग्न लोगों की स्त्रिया प्रायः सुख में अपने जीवन को व्यतीत करती है तथा विना परिश्रम किये दिनभर आलस्य में पडी रहती हैं, इस से वहुत हानि होती है, क्योंकि—जो स्त्रिया सदा वैठी रहा करती है उन के हाथ पाव ठडे, चेहरा फीका, शरीर तपाया हुआ सा तथा दुर्वल, वादी से फूला हुआ मेद, नाड़ी निर्वल, पेट का फूलना, वदहजमी, छाती में जलन, खट्टी डकार, हाथ पैरो में कापनी, चसका और हिष्टीरिया आदि अनेक प्रकार के दुःखदायी रोग तथा ऋतुधर्मसम्बन्धी भी कई प्रकार के रोग होते हैं, परन्तु ये सव रोग उन्हीं स्त्रियो के होते है जो कि शरीर की पूरी २ कसरत नहीं करती है और भाग्यमानी के घमण्ड में आकर दिन रात पडी रहती है ॥

५-**नींद**—आवश्यकता से अधिक देर तक नींद के लेने से रुधिर की गति ठीक रीति से नहीं होती है, इस से शरीर में चर्वीका भाग जम जाता है, पेट की दूद (तोंद) वाहर निकलती है, (इसे मेदवायु कहते है), कफ का जोर होता है, जिस से कफ के कई एक रोगों के होने की सम्भावना हो जाती है तथा आवश्यकता से थोड़ी देरतक (कम) नींद के लेने से शूल, ऊरुस्तम्भ और आलस्य आदि रोग हो जाते है।

वहुत से मनुष्य दिन में निद्रा लिया करते हैं तथा दिन में सोने को ऐश आराम समझते हैं परन्तु इस से परिणाम में हानि होती है, जैसे—क्रोध, मान, माया और लोभ आदि आत्मशत्रुओ (आत्मा के वैरियों) को थोडा सा भी अवकाश देने से वे अन्तःकरण पर अपना अधिकार अधिक २ जमाने लगते है और अन्त में उसे वश मे कर लेते हैं उसी प्रकार दिन में सोने की आदत को भी थोड़ा सा अवकाश देने से वह भी भाग और अफीम आदि के व्यसन के समान चिपट जाती है, जिस का परिणाम यह होता है कि यदि किसी दिन कार्यवश दिन में सोना न वन सके तो शिर भारी हो जाता है, पैर टूटने लगते है और जमुहाइया आने लगती है, इसी तरह यदि कभी विवश होकर काम में लग जाना पड़ता है तो अन्त करण सोलह आने के वदले आठ आने मात्र काम (आधा काम) करने योग्य हो जाता है, यद्यपि अत्यन्त निर्वल और रोगग्रस्त मनुष्य के लिये वैद्यकशास्त्र दिन में सोने की भी आज्ञा देता है परन्तु स्वस्थ (नीरोग) मनुष्य के लिये तो वह (वैद्यक शास्त्र) ऐसा करने (दिन में सोने) का सदा विरोधी है।

गर्मी की ऋतु में जब अधिक गर्मी पड़ती है तब शरीर का जलमय तत्त्व और बाहरी गर्मी शरीर के भीतरी भागों पर अपना प्रभाव दिखलाने लगती है उस समय दिन में भी थोड़ी देरतक सोना बुरा नहीं है परन्तु तब भी नियम से ही सोना चाहिये, बहुत से लोग उस समय में ग्यारह बजे से लेकर सायंकाल के पांच बजे तक सोते रहते हैं, सो यह वे अनुचित आचरण ही करते हैं, क्योंकि उस समय में भी दिन का अधिक सोना हानि ही करता है।

इस के सिवाय दिन में सोने से एक हानि और भी है और वह यह है कि–रात्रि में अवश्य ही सोकर विश्राम लेने की आवश्यकता है परन्तु वह दिनका सोना रात्रि की निद्रा में बाधा डालता है जिस से हानि होती है।

बहुत से मनुष्य भी इस बात को स्वीकार करते हैं कि दिन में सोकर उठने के बाद उन का शरीर मिट्टीसा और कुछ ज्वर आजाने के समान निर्माल्य (कुमलाया हुआ सा) हो जाता है।

दिन में अच्छीतरह सोकर उठनेवाले मनुष्य के मुख की मुद्रा को देखकर लोग उस से प्रश्न करते हैं कि क्या आज आप की तबीयत अच्छी नहीं है? परन्तु उत्तर यही मिलता है कि–नहीं, तबीयत तो अच्छी है परन्तु सोकर उठा हूँ, इस से आंखें लाल दिखलाई देती होंगी, अब कहिये कि दिन का सोना सुखकर हुआ कि हानिकर?

दिन में सोने से शरीर के सब धातु खास कर विकृत और विषम बन जाते हैं तथा शरीर के दूसरे भी कई भीतरी भागों में विकार उत्पन्न होता है।

कुछ मनुष्यों का यह कथन है कि–हम को सुख मिलता है इसलिये हम दिन में सोते हैं, परन्तु उन की यह दलील चलने योग्य नहीं है, क्योंकि मुख्य बात तो यह है कि उन के ऊपर आलस्य सवार होता है और उन्हें लेटते ही निद्रा आ जाती है, परन्तु स्मरण रखना चाहिये कि दिन की निद्रा स्वाभाविक निद्रा नहीं है, किन्तु वैकारिक अर्थात् विकार को उत्पन्न करनेवाली है, देखो! दिन में सोने वालों में से मनुष्यों का अधिक भाग इस बात को स्वीकार करेगा कि दिन में सोने से उन्हें बहुत से विकृत स्वप्न आते हैं, कहिये इस से क्या सिद्ध होता है? इसलिये बुद्धिमानों को सदा दिन में सोने के व्यसन को अपने पीछे नहीं लगाना चाहिये।

यह भी स्मरण रखना चाहिये कि–जिस प्रकार दिन में सोने से हानि होती है उसी प्रकार रात्रि में जागना भी हानिकर होता है, परन्तु उपवास के अन्त में रात्रि का जागना हानि नहीं करता है, किन्तु नियमित आहार कर के जागना हानि करनेवाला है, रात्रि में जागने से सब से प्रथम अजीर्ण रोग उत्पन्न होता है, अब सोचने की बात है कि–साधारण और अनुकूल आहार ही जब रात्रि में जागने से नहीं पचता है तो अनुकूलता

पर ध्यान देने के बदले केवल स्वाद ही पर चलनेवाले और मात्रा के अनुसार खाने के बदले खूब डाट कर ठूसनेवाले मनुष्य यदि रात्रि में जागने से अजीर्ण रोग में फँस जांय तो इस में आश्चर्य ही क्या है ?

जो लोग दिन में सोकर रात्रि को बारह बजेतक जागते रहते है तथा जो दिन में तो इधर उधर फिरते रहते हैं और रात्रि में काम करके बारह बजेतक जागते है, वे जानबूझ कर अपने पैरों में कुल्हाडी मारते है और अपनी आयु को घटाते है, किन्तु जो रात्रि में सुख से सोने वाले हैं वे ही दीर्घजीवी गिने जा सकते है, देखो ! पहिले यहां के लोगों में ऐसी अच्छी प्रथा प्रचलित थी कि प्रातःकाल उठकर अपने स्नेहियों से कुशल प्रश्न पूछते समय यही प्रश्न किया जाता था कि रात्रि सुखनिद्रा में व्यतीत हुई ? इस शिष्टाचार से क्या सिद्ध होता है यही कि लोग रात्रि में सुख से निद्रा लेते है वे ही दीर्घजीवी होते है।

निद्रा को रोकने से शिर में दर्द हो जाता है, जमुहाइया आने लगती हैं, शरीर टूटने लगता है, काम में अरुचि होती है और आखें भारी हो जाती है।

देखो ! निद्रा का योग्य समय रात्रि है, इसलिये जो पुरुष रात्रि में निद्रा नहीं लेता है वह मानो अपने जीवन के एक मुख्य पाये को निर्बल करता है, इस में कुछ भी सन्देह नहीं है ॥

६–**वस्त्र**—देश और काल के अनुसार वस्त्रों का पहनना उचित होता है, क्योंकि वह भी शरीररक्षा का एक उत्तम साधन है, परन्तु बडे ही शोक का विषय है कि–वर्तमान समय में बहुत ही कम लोग इन बातों पर ध्यान देते है अर्थात् सर्वसाधारण लोग इन बातों पर जरा भी ध्यान नहीं देते है और न वस्त्रों के पहरने के हानिलाभों को सोचते हैं किन्तु जो जिस के मन में आता है वह उसी को पहनता है।

वस्त्र पहरने में यह भी देखा जाता है कि लोग देश काल और प्रकृति आदि का कुछ भी विचार न करके एक दूसरे की देखा देखी वस्त्र पहरने लगते हैं, जैसे देखो ! आज कल इस देश में काला कपड़ा बहुत पहिना जाता है परन्तु इस का पहनना देश और काल दोनों के विपरीत है, देखिये ! यह देश उष्ण है और काली वस्तु में गर्मी अधिक घुस जाती है तथा वह बहुत देरतक बनी रहती है, इस पर भी यह खूबी कि ग्रीष्म ऋतु में भी काले वस्त्र को पहनते हैं, उन का ऐसा करना मानो दुःखों को आप ही बुलाना है, क्योंकि सर्वदा काले वस्त्र का पहरना इस उष्णता प्रधान देश के वासियों को अयोग्य और हानिकारक है, इस के पहरने से उन के रस रक्त और वीर्य में गर्मी अधिक पहुँचती है, जिस से स्वच्छ और अनुकूल भोजन के खाने पर भी धातु की क्षीणता और

१–नाटक के देखने के शौकीन लोगों को भी आयु को ही घटानेवाले जानो ॥

रक्तविकार आदि रोग उन्हें घेरे रहते हैं, देखो! इस समय इस देश में बहुत ही कम पुरुष ऐसे निकलेंगे कि जिन को धातुसम्बन्धी किसी प्रकार की बीमारी नहीं है नहीं तो जिधर जाइये उधर यही रोग फैला हुआ दीख पड़ता है, अत सब मनुष्यों को अपने प्राचीन पुरुषोंके सदृश वैद्यक शास्त्र के कथनानुसार तथा ऋतु और देश के अनुकूल श्वेताम्बर (सफेद वस्त्र) पीताम्बर (पीले वस्त्र) और रक्ताम्बर (लाल वस्त्र) आदि भांति २ के वस्त्र पहरने चाहियें।

इस के सिवाय यह भी स्मरण रखना चाहिये कि—वस्त्र को मैला नहीं रखना चाहिये, बहुधा देखा जाता है कि—लोग बहुमूल्य वस्त्रों को तो पहनते हैं परन्तु उन की स्वच्छता पर ध्यान नहीं देते हैं, इस कारण उन को शरीर की स्वच्छता से भी कुछ लाभ नहीं होता है, अत उचित यही है कि अपनी शक्ति के अनुसार पहना हुआ कपड़ा चाहे अधिक मूल्य का हो चाहे कम मूल्य का हो उस को आठवें दिन उतार कर दूसरा स्वच्छ वस्त्र पहना जावे कि जिससे स्वच्छताजन्य लाभ प्राप्त हो, क्योंकि मलीन कपड़े से दुर्गन्ध निकलता है जिस से आरोग्यता में हानि होती है, दूसरे पुरुष भी ऐसे पुरुषों से घृणा करते हैं तथा उन की सर्व सज्जनों में निन्दा होती है।

निर्मल वस्त्रों के धारण करने से कान्ति यश और आयु की वृद्धि होती है, अलक्ष्मी का नाश होता है, चित्त में हर्ष रहता है तथा मनुष्य श्रीमानों की सभा में जाने के योग्य होता है।

तंग वस्त्र भी नहीं पहरना चाहिये क्योंकि तग वस्त्र के पहरने से छाती तथा कलेजे (लीवर) पर दबाव पड़ने से ये अवयव अपने काम को ठीक रीति से नहीं करते हैं, इस से रुधिर की गति मन्द हो जाती हैं और रुधिर की गति के मन्द होने से श्वास की नली का तथा कलेजे का रोग उत्पन्न होता है।

इस के अतिरिक्त अति सुर्ख और भीगे हुए कपड़ों को भी नहीं पहरना चाहिये, क्यों कि इस प्रकार के वस्त्र के पहरने से कई प्रकार की हानि होती है।

इन सब बातों के उपरान्त यह भी आवश्यक है कि अपन देश के वस्त्रों को सब कामों में लाना योग्य है, जिस से यहां के शिल्प में उन्नति हो और यहां का रुपया भी बाहर को न जावे, देखो! हमारे भारत देश में भी बड़े २ उत्तम और दृढ वस्त्र बनते हैं, यदि सम्पूर्ण देशभाइयों की इस ओर दृष्टि हो जावे तो फिर देखिये भारत में कैसा धन बढ़ता है, जो सर्व सुखों की जड़ है॥

७—विहार[1]—विहार शब्द से इस स्थानपर स्त्री पुरुषों के खानगी (प्राइवेट) व्यापार (भोग) का मुख्यतया समावेश समझना चाहिये, यद्यपि विहार के दूसरे भी

१—विहार अथवा स्त्रीविहार को अंग्रेजी में "कोहेबिटेशन" कहते हैं॥

अनेक विषय हैं परन्तु यहां पर तो ऊपर कहे हुए विषय का ही सम्बध है, स्त्री विहा मेंर इन बातों का विचार रखना अतिआवश्यक है कि वयोविचार, रूपगुणविचार, कालविचार, शारीरिक स्थिति, मानसिक स्थिति, पवित्रता और एकपत्नीव्रत, अब इन के विषय में सक्षेप से क्रम से वर्णन किया जाता है:—

१–**वयोविचार**–इस विषय में मुख्य वात यही है कि–लगभग समान अवस्थावाले स्त्रीपुरुषों का सम्बध होना चाहिये, अथवा लडकी से लडके की अवस्था ड्योढ़ी होनी चाहिये, बालविवाह की कुचाल बन्द होनी चाहिये, जबतक यह कुचाल वद न हो तबतक समझदार मातापिता को अपनी पुत्रियों को १६ वर्ष की अवस्था के होने के पहिले श्वसुरगृह (सासरे) को नही भेजना चाहिये।

समान अवस्था का न होना स्त्रीपुरुष के विराग और अप्रीति का कारण होता है और विराग ही इस ससार के व्यापार में शारीरिक अनीति "कार्पोरियलरिग्युलेरिटी" को जन्म देता है।

२० से २५ वर्षतक का लडका और १६ वर्ष की लड़की ससारधर्म में प्रवृत्त होने के लिये योग्य गिने जाते है, इस से जितनी अवस्था कम हो उतना ही शारीरिक नीति "कार्पोरियलरिग्युलेरिटी" का भग होना समझना चाहिये।

ससारधर्म के लिये पुरुष के साथ योग होने में लड़की की १२ वर्ष की अवस्था बहुत न्यून है, यद्यपि हानिविशेष का विचार कर सर्कार ने अपने नियम में १२ वर्ष की अवस्था नियत की है परन्तु उस सीमा को क्रम २ से बढा कर १६ वर्षतक लाकर नियत करानी चाहिये।

२–**रूपगुणविचार**–रूप तथा गुण की असमानता भी अवस्था की असमानता के समान खराबी करती है, क्योंकि इन की समानता के विना शारीरिक धर्म "कार्पोरियल ला" के पालन में रस (आनन्द) नहीं उपजता है तथा उस की शारीरिक नीति "कार्पोरियलरिग्युलेरिटी" के अर्थात् शारीरिक कर्तव्यो के उल्लङ्घन का कारण उत्पन्न होता है।

अवस्था, रूप और गुण की योग्यता और समानता का विचार किये विना जो माता पिता अपने सन्तानों के बन्धन लगा देते हैं उस से किसी न किसी प्रकार से शारीरिक धर्म की हानि होती है, जिस का परिणाम ब्रह्मचर्य का भग अर्थात् व्यभिचार है।

३–**कालविचार**–वैद्यकशास्त्र की आज्ञा है कि–"ऋतौ भार्यामुपेयात्" अर्थात् ऋतुकाल[1] में भार्या के पास जाना चाहिये, क्योंकि स्त्री के गर्भ रहने का काल यही है, ऋतुकाल के दिवसों में से दोनों को जो दिन अनुकूल हो ऐसा एक दिन पसन्द करके

१–जिस दिन रजस्वला स्त्री को ऋतुस्राव हो उस दिन से लेकर १६ रात्रितक समय को ऋतु अथवा ऋतुकाल कहते हैं, यह पहिले ही लिख चुके है॥

स्त्री के पास जाना चाहिये, किन्तु ऋतुकाल के विना वारवार नहीं जाना चाहिये, क्योंकि ऋतुकाल के बीत जाने पर अर्थात् ऋतुस्राव से १६ दिन बीतने के बाद जैसे दिन के अस्त होने से कमल संकुचित होकर बंद हो जाते हैं उसी प्रकार स्त्री का गर्भाशय संकुचित होकर उस का मुख बंद हो जाता है, इस लिये ऋतुकाल के पीछे गर्भाधान के हेतु से संयोग करना अत्यन्त निरर्थक है, क्योंकि उस समय में गर्भाधान हो ही नहीं सकता है किन्तु अमूल्य वीर्य ही निष्फल जाता है जो कि (वीर्य ही) शरीर में अद्भुत शक्ति है, प्राय यह अनुमान किया गया है कि एक समय के वीर्यपात में २॥ तोले वीर्य के बाहर गिरने का सम्भव होता है, यद्यपि क्षीणवीर्य और विषयी पुरुषों में वीर्य की कमी होने से उन के शरीर में से इतने वीर्य के गिरने का सम्भव नहीं होता है तथापि जो पुरुष वीर्य का यथोचित रक्षण करते हैं और नियमित रीति से ही वीर्य का उपयोग करते हैं उन के शरीर में से एक समय के समागम में २॥ तोले वीय बाहर गिरता है, अब यह विचारणीय है कि यह २॥ तोले वीर्य कितनी खुराक में से और कितने दिनों में बनता होगा, इस का भी विद्वानों ने हिसाब निकाला है और वह यह है कि ८० रतल खुराक में से २ रतल रुधिर बनता है और २ रतल रुधिर में से २॥ तोला वीर्य बनता है, इस से स्पष्ट है कि-दो ! मन खुराक जितने समय में खाई जावे उतने समय में २॥ रुपये भर नया वीर्य बनता है, इस सर्व परिगणन का सार (मतलब) यही है कि दो मन खाई हुई खुराक का सत्व एक समय के स्त्री समागम में निकल जाता है, अब देखो ! यदि तन्दुरुस्त मनुष्य प्रतिदिन सामान्यतया १॥ वा २ रतल की खुराक खावे तो ४० दिन में ८ रतल खुराक खा सकता है, इस हिसाब से यह सिद्ध होता है कि-यदि ४० दिवस में एक वार वीर्य का व्यय हो तबतक तो हिसाब बराबर रह सकता है परन्तु यदि उक्त समय (४० दिवस) से पूर्व अर्थात् थोड़े २ समय में वीर्य का खर्च हो तो अन्त में शरीर का क्षय अर्थात् हानि होने में कोई सन्देह ही नहीं है, परन्तु बड़े ही शोक का स्थान है कि जिस तरह लोग द्रव्यसम्बंधी हिसाब रखते हैं तथा अत्यन्त कृपणता (कञ्जूसी) करते हैं और द्रव्य का संग्रह करते हैं उस प्रकार शरीर में स्थित वीर्यरूप सर्वोत्तम द्रव्य का कोई ही लोग हिसाब रखते हैं, देखो ! द्रव्यसम्बन्धी स्थिति में तो गृहस्थों में से बहुत ही थोड़े दिवाला निकालते हैं परन्तु वीर्यसम्बन्धी व्यवहार में तो पुरुषों का विशेष भाग दिवालियों का धन्धा करता है अर्थात् आय की अपेक्षा व्यय विशेष करते हैं और अन्त में युवावस्था में ही निर्बल बन कर पुरुषत्व (पुरुषार्थ) से हीन हो बैठते हैं।

ऊपर जो ऋतुकाल का समय ऋतुस्नान के दिन से सोलह रात्रि लिख चुके हैं उन में से जितने दिनतक रक्तस्राव होता रहे उतने दिन छोड़ देने चाहियें अर्थात् ऋतुस्राव के

दिन ऋतुकाल में नहीं गिनने चाहियें, ऋतुस्राव के प्रायः तीन दिन गिने जाते हैं अर्थात् नीरोग स्त्री के तीन दिनतक ऋतुस्राव रहता है, चौथे दिन स्नान करके रजस्वला शुद्ध हो जाती है, ये (ऋतुस्राव के) दिन स्त्रीसग में निषिद्ध हैं अर्थात् ऋतुस्राव के दिनों में स्त्रीसंग कदापि नहीं करना चाहिये, जो पुरुष मन तथा इन्द्रियों को वश में न रख कर रजस्वला स्त्री से सगम करता है (जिस के रक्तस्राव होता हो उस स्त्री से समागम करता है) तो उस की दृष्टि आयु तथा तेज की हानि होती है और अधर्म की प्राप्ति होती है, इस के सिवाय रजस्वला से समागम करने से गर्भस्थिति की संभावना नहीं होती है अर्थात् प्रथम तो उस समय में समागम करने से गर्भ ही नहीं रहता है यदि कदाचित् गर्भ रहे भी तो प्रथम के दो दिन में जो गर्भ रहता है वह नहीं जीता है और तीसरे दिन जो गर्भ रहता है वह अल्पायु तथा विकृत अगवाला होता है ।

रजोदर्शन के दिन से लेकर सोलह रात्रि पर्यन्त रात्रियों में चौथी रात्रि से लेकर सोलहवीं रात्रिपर्यन्त ऋतुकाल अर्थात् गर्भाधान का जो समय है उस में भी सम रात्रिया प्रधान हैं अर्थात् चौथी, छठी, आठवीं, दशवीं, बारहवीं, चौदहवीं तथा सोलहवीं रात्रिया उत्तम हैं और इन में भी क्रम से उत्तरोत्तर रात्रिया उत्तम गिनी जाती हैं ।

पूर्णमासी, अमावस्या, प्रातःकाल, सन्ध्याकाल, पिछली रात्रि, मध्य रात्रि और मध्याह्नकाल में स्त्रीसयोग नहीं करना चाहिये, क्योंकि इस से जीवन का क्षय होता है ।

गर्भवती से पुरुष को कभी संयोग नही करना चाहिये, क्योंकि गर्भावस्था में जिस चेष्टा के अनुसार व्यापार किया जाता है उसी चेष्टा के गुणो से युक्त बालक उत्पन्न होता है और बड़ा होने पर वह बालक विषयी और व्यभिचारी होता है ।

विहार के विषय में ऋतु का भी विचार करना आवश्यक है अर्थात् जो ऋतु विहार के लिये योग्य हो उसी में विहार करना चाहिये, विहार के लिये गर्मी की ऋतु बिलकुल प्रतिकूल है तथा शीत ऋतु में पौष और माघ, ये दो महीने विशेष अनुकूल हैं परन्तु किसी भी ऋतु में विहार का अतियोग (अत्यन्त सेवन) तो परिणाम में हानि ही करता है, यह बात अवश्य लक्ष्य (ध्यान) में रखनी चाहिये ।

४–**शारीरिक स्थिति**—जिस समय में स्त्री वा पुरुष के शरीर में कोई व्याधि (रोग), त्रुटि (कसर) अथवा बेचैनी हो उस में विहार का त्याग कर देना चाहिये अर्थात् स्त्री की रोगावस्था आदि में पुरुष को और पुरुष की रोगावस्था आदि में स्त्री को अपने मन को वश में रखकर ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिये, किन्तु ऐसे समय में तो विहारसम्बन्धी विचार भी मन में नहीं लाना चाहिये, क्योंकि रोगावस्था आदि में विहार करने से अवश्य शरीर में विकार उत्पन्न हो जाता है तथा यदि कदाचित् ऐसे समय में गर्भस्थिति हो जावे तो स्त्री और गर्भ दोनों का जीव जोखम में पड़ जाता है ।

बहुत से रोगों में प्रायः विहार (विषयभोग) की इच्छा कम होने के बदले अधिक हो जाती है, जैसे–क्षयरोगी को वारंवार विहार की इच्छा हुआ करती है, यह इच्छा स्वाभाविक नहीं है किन्तु यह (उक्त) रोग ही इस इच्छा को जन्म देता है इस लिये क्षय रोगी को सावधानी रखनी चाहिये ।

विहार के विषय में परस्पर की शारीरिक शक्ति का भी विचार करना चाहिये, क्योंकि यह बहुत ही आवश्यक बात है, स्त्री पुरुष को इस विषय में लम्पट बन कर केवल स्वार्थी नहीं होना चाहिये, तात्पर्य यह है कि पुरुष को स्त्री की शक्ति का और स्त्री को पुरुष की शक्ति का विचार करना चाहिये, यदि स्त्री पुरुष के जोड़े में एक तो विशेष बलवान् हो और दूसरा विशेष निर्बल हो तो यह अनुचित खराबी का मूल है, परन्तु यदि भाग्ययोग से ऐसा ही जोड़ा बँध जावे तो पीछे परस्पर के हित का विचार क्या नहीं करना चाहिये अर्थात् अवश्य करना चाहिये ।

बहुत से विचाररहित मूर्ख पुरुष विहार के विषय में स्त्रीजातिपर अपने हक का दावा करते हैं और ऐसे विचार के द्वारा दावे का अनुचित उपयोग कर के स्त्री को लाचार कर परवश करते हैं, सो यह अत्यन्त अनुचित है, क्योंकि देखो ! स्त्री पुरुष का परस्पर व्यापार एक शारीरिक धर्म है और धर्म में एकतरफी हक का सवाल नहीं रहता है किन्तु दोनों बराबर हकदार हैं और परस्पर के सुख के लिये दोनों दम्पती धर्म में बँधे हुए हैं इस लिये स्त्री और पुरुष को परस्पर की शक्ति तथा अनुकूलता का अवश्य विचार करना चाहिये ।

५–मानसिक स्थिति—दोनों में से यदि किसी का मन चिन्ता, श्रम, शोक, क्रोध और भय से व्याकुल हो रहा हो तो ऐसे प्रतिकूल समय में विहार सम्बन्धी कोई भी चेष्टा नहीं करनी चाहिये, परन्तु अत्यन्त खेद का विषय है कि–वर्तमान समय में स्त्री पुरुष इस विषय का बहुत ही कम विचार करते हैं ।

इच्छा के विना बलात्कार से किया हुआ काम सन्तोषदायक नहीं होता है और अर्थ दोष शारीरिक तथा मानसिक विकार का कारण होता है, इस लिये इच्छा के विना जो विहार किया जाता है वह निष्फल होता है और उलटा शरीर को बिगाड़ता है, इस लिये इस बात को दोनों पक्षों में ध्यान में रखना चाहिये, यह भी स्मरण रहे कि स्त्री की इच्छा के विना स्त्रीगमन करने में और हाथ से वीर्यपात करने में बिलकुल फर्क नहीं है, इस लिये हाथ के द्वारा वीर्यपात की क्रिया को भी भूलकर भी नहीं करना चाहिये, इच्छा के विना सयोग करने से काम की शान्ति नहीं होती है किन्तु उलटी काम की वृद्धि ही

१–इस निकृष्ट व्यापार के द्वारा अनेक हानियां होती हैं जिन का कुछ वर्णन आगे पाँचवें प्रकरण में वायु रोग के वर्णन में किया जायगा ॥

होती है और ऐसा होने से यह बड़ी हानि होती है कि स्त्री का रज जिस समय पक्क होना चाहिये उस की अपेक्षा शीघ्र ही अर्धपक्क (अधपका) होकर गर्भाशय में प्रविष्ट हो जाता है और वहा पुरुष के वीर्य के प्रविष्ट होने से कच्चा गर्भ बँध जाता है।

६-**पवित्रता**—विहार के विषय में पवित्रता अथवा शारीरिक शुद्धि का विचार रखना भी बहुत ही आवश्यक बात है, क्योंकि स्त्री पुरुषों के गुप्त अंगो की व्याधि प्राय स्थानिक अपवित्रता और मलीनता से ही उत्पन्न होती है, इतना ही नहीं किन्तु यह स्थानिक मलीनता इन्द्रियो को विकारी (विकार से युक्त) बनाती है, परन्तु बड़े ही सन्ताप की बात है कि—इस प्रकार की बातो की तरफ लोगो का बहुत ही कम ध्यान देखा जाता है, इसी का जो कुछ परिणाम हो रहा है वह प्रत्यक्ष ही दीख रहा है कि—चादी, सुज़ाख और गर्मी जादि अनेक दुष्ट और मलीन व्याधियो से शायद कोई ही भाग्यवान् जोड़ा बचा हुआ देखा जाता है, कहिये यह कुछ कम खेद की बात है ?

शरीर के अवयवो पर मैल जम कर चमडी को चञ्चल कर देता है और अज्ञान मनुष्य इस चञ्चलता का खोटा खयाल और खोटा उपयोग करने को उस्कराते है, इस लिये स्त्री पुरुषों को अपने शरीर के अवयवो को निरन्तर पवित्र और शुद्ध रखने के लिये सदा यत्न करना चाहिये, यद्यपि ऊपरी विचार से यह बात साधारण सी प्रतीत होती है परन्तु परिणाम का विचार करने से यह बड़े महत्त्वकी बात समझी जा सकती है, क्योंकि पवित्रता शारीरिक धर्म का एक मुख्य सद्गुण "गुडकालिटी" है, इसी लिये बहुत से धर्मवालों ने पवित्रता को अपने २ धर्म में मिला कर कठिन नियमों को नियत किया है, इस का गम्भीर वा मुख्य हेतु इस के सिवाय दूसरा कोई भी नहीं हो सकता है कि पवित्रता ही सब सद्गुणो और सद्धर्मों का मूल है।

७-**एकपत्नीव्रत**—अपनी विवाहिता पत्नी के साथ ही सम्बन्ध रखने को एकपत्नीव्रत कहते है, विचार कर देखा जावे तो यह (एकपत्नीव्रत) भी ब्रह्मचर्य का एक मुख्य अग और गृहस्थाश्रम का प्रधान भूषण है, जो पुरुष एकपत्नीव्रत का पालन करते है वे निस्सन्देह ब्रह्मचारी है और जो स्त्रिया एकपतिव्रत का पालन करती हैं वे निस्सन्देह ब्रह्मचारिणी है, स्त्री के लिये एक ही पुरुष का और पुरुष के लिये एक ही स्त्री का होना जगत् में सब से बड़ी नीति है और इसी पर शारीरिक और व्यावहारिक आदि सर्व प्रकार की उन्नति निर्भर है।

इस नियम के उल्लघन करने से अर्थात् व्यभिचार से न केवल व्यावहारिक नीति का ही भग होता है किन्तु शारीरिक नीति और आरोग्यता की भी हानि होती है इस लिये इस महाहानिकारक विषय को अवश्य छोडना चाहिये, इस विषय का यदि अच्छे प्रकार

से वर्णन किया जावे तो एक ग्रन्थ बन सकता है, इस लिये संक्षेप से ही पाठकों को इस विषय का दृष्टान्त है —

यदि विवाहित स्त्री पुरुष ऊपर लिखी हुई बातों को लक्ष्य में रख कर उन्हीं के अनुसार बर्ताव करें तो वे नीरोगशरीरवाले और दीर्घायु हो सकते हैं तथा सद्गुणों से युक्त सन्तति को भी उत्पन्न कर सकते हैं और विचार कर देखा जावे तो ब्रह्मचर्य के पालन करने का प्रयोजन भी यही है, आहार विहार में नियमित और अनुकूलतापूर्वक रहना एक सर्वोत्तम और परमावश्यक नियम है तथा इसी नियम के पालन करने का नाम ब्रह्मचर्य है, ब्रह्मचर्य के विषय में एक विद्वान् अंग्रेज ने कुछ वर्णन किया है उस का दिग्दर्शन करना आवश्यक समझ कर उस का संक्षिप्त अनुवाद यहां लिखते हैं, उक्त विद्वान् का कथन है कि—"यह निश्चित बात है कि—ब्रह्मचर्यव्रत के नियम की अज्ञानता वा उस के उल्लंघन के कारण वीर्य का अनुचित उपयोग होने से खोटे परिणाम निकलते हैं, क्योंकि बहुत से लोग इस नियम को जानते भी हैं तो भी जान बूझ कर उलटी रीति से बर्ताव करते हैं किन्तु बहुत से लोग तो इस नियम से अत्यन्त अनभिज्ञ ही देखे जाते हैं, मनुष्य के तन और मन के साथ में सम्बन्ध रखनेवाला तथा उस के कल्याण सुख और जीवन के जय का करनेवाला ब्रह्मचर्य व्रत ही है, इस लिये इस विषय में जो कुछ विचार किया जावे अथवा दलील दी जाय वह वास्तविक है, ब्रह्मचर्यव्रतधारी अथवा ब्रह्मचारी वही गिना जा सकता है जो कि शरीरबल और सुन्दर स्त्री आदि सब सामग्री के उपस्थित होने पर भी प्रकाशक ज्ञान से अपने मन को वश में रखता है, इच्छापूर्वक स्त्रीसंग से अत्यन्त अलग रहने के लिये जो दृढ़ निश्चय किया जाता है उसे प्रयोग (अमल) में लाने के लिये इच्छापूर्वक स्त्रीसंग नहीं करना चाहिये, किन्तु ऋतुदान के समय प्रतिज्ञा के अनुसार स्त्रीसंग करना उचित है, इस नियम के पालन करनेवाले गृहस्थ को ब्रह्मचारी कहते हैं, इसलिये यही परम उचित कर्तव्य है कि—प्रजा (सन्तान) के उत्पन्न करने के लिये ही स्त्रीसंग करना ठीक है, अन्यथा नहीं ॥

८—मलीनता—इस में सन्देह नहीं है कि मलीनता बहुत से रोगों को उत्पन्न करती है, क्योंकि घर के भीतर की तथा आसपास की मलीनता खराब हवा को उत्पन्न करती है और उस हवा से अनेक रोगों के उत्पन्न होने की सम्भावना होती है, देखो! शरीर की मलीनता से चमड़ी के बहुत से रोग हो जाते हैं, जैसे—खुजली, खुजली और गुमड़े आदि, इन के सिवाय मैल से चमड़ी के छेद रुक जाते हैं, छेदों के रुक जाने से पसीने का निकलना बंद हो जाता है, पसीने के निकलने के बन्द होने से रुधिर ठीक तौर से शुद्ध नहीं हो सकता है और रुधिर के ठीक तौर से शुद्ध न होने से अनेक रोग हो जाते हैं ॥

९–**व्यसन**—व्यसनों के सेवन से अनेक महाकष्टकारी रोग उत्पन्न हो जाते हैं, जिन का कुछ वर्णन तो पहिले कर चुके है तथा कुछ यहा भी करते है—मद्य, ताडी, अफीम, भाग, तमाखू, तवाखीर, चाय और काफी आदि व्यसनो की बहुत सी चीजें है, यद्यपि इन चीजों में से कई एक चीजें रोगपर दवा के तरीके से योग्य रीति से वर्तने से फायदा करती है परन्तु ये सव ही चीजे यदि थोड़े दिनोतक लगातार उपयोग में लाई जावे तो इन का व्यसन पड जाना है और जब ये चीजें व्यसन के तरीके से नित्य ही प्रयोग में लाई जाती है तब इन से पृथक् २ अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते है, जैसे–मद्य के व्यसन से रसविकार, वदहजमी, वमन (उलटी), दस्त की कब्जी, खट्टापन, मन्दाग्नि और मगज की खराबी होती है, आलस्य, दीर्घसूत्रता (टिल्लडपन), असाहस (हिम्मत हारना), भीरुता (डरपोकपन) और निर्बुद्धिता (बुद्धि का नाश) आदि मद्य पीनेवाले के खास लक्षण है, मद्य से फफसे की भयकर बीमारी, यकृत् अर्थात् लीवर का सकोच, यकृत् का पकना, क्षय, मधुप्रमेह और गुर्दे का विकार आदि अनेक बड़े २ भयंकर रोग उत्पन्न होते है, मद्य का पीना शरीर में विषपान के समान असर करता है तथा बुद्धि को बिगाड़ता है ।

ताडी के व्यसन से पेशाव के गुर्दे का रोग, मन्दाग्नि, अफरा और दस्त आदि रोग होते है तथा ताड़ी का पीना बुद्धि को भ्रष्ट करता है ।

अफीम के व्यसन से आलस्य, बुद्धि की न्यूनता और क्षिप्तचित्तता (पागलपन) आदि उत्पन्न होते है, विशेष क्या लिखें इस व्यसन से शरीर बिलकुल नष्ट भ्रष्ट (बरबाद) हो जाता है ।

भाग के व्यसन से बुद्धि तथा चतुराई का नाश होता है, मनुष्यत्व (आदमियत) का नाश होकर पशुत्व (पशुपन अर्थात् हैवानी) प्राप्त होता है, स्मरणशक्ति घट जाती है, विचारशक्ति का नामतक नहीं रहता है, चक्कर आता है, मन खराव होता है तथा आयु घट जाती है ।

तमाखू के व्यसन से अर्थात् तमाखू के चावने से–पाचन शक्ति मन्द पडती है, वदहजमी रहती है, इस के खाने से पहिले तो कुछ चेतनता सी होती है परन्तु पीछे सुस्ती आती है, हाथ पैर ढीले हो जाते हैं, मन की चञ्चलता तथा चेतनता कम हो जाती है तथा विचारशक्ति भी कम हो जाती है, इस के अधिक खाने से विष के समान असर होता है अर्थात् जीवन को जोखम में गिरना पडता है ।

तमाखू के पीने से–छाती में दाह, श्वास तथा कफ का रोग उत्पन्न होता है ।

१–दवा एक दूत इस का मित्र है, यदि शरीर के अनुकूल हो तो तैयार कर देता है ॥

तमाखू के सूंघने से–मलीनता होती है, कपड़े खराब होते हैं तथा अनेक प्रकार के रोग भी उत्पन्न होते हैं।

चाय और काफी के व्यसन से भी नशे के पीने के समान हानि होती है, क्योंकि इस में भी थोड़ा २ नशा होता है, यह अधिक गर्म और रूक्ष होने के कारण रूखी और कम खुराक खानेवाले गरीब लोगों को बहुत हानि पहुँचाती है तथा इस के सेवन से मगज और उस के ज्ञानतन्तु निर्बल हो जाते हैं ॥

१०–विषयोग—पहिले लिख चुके हैं कि यदि अभक्ष्य वस्तु खाने पीने में आ जावे अथवा परस्पर (एक से दूसरा) विरुद्ध पदार्थ खाने में आ जावे तो वह शरीर में विष के समान हानि करता है, इस के सिवाय जो अनेक प्रकार के विष हैं वे भी पेट में जाकर हानि करते हैं, एक प्रकार की विषैली (विषभरी) हवा भी होती है जिस से बुखार, पाण्डु और मरोड़ा आदि रोग होते हैं।

शीशे और तांबे के पेट में जाने से चूंक हो जाती है, बत्सनाग (सिंगिया) के पेट में जाने से मूर्च्छा तथा दाह होता है और सोमल तथा रसकपूर के पेट में जाने से दस्त के बन्धन खुल जाते हैं, तात्पर्य यह है कि सब ही प्रकार के विष पेट में जाकर हानि ही करते हैं ॥

११–रसविकार—दस्त, पेशाब, पसीना, थूक और पित्त आदि पदार्थ रुधिर से उत्पन्न होते हैं तथा इन सबों को शरीर का रस कहते हैं, यह रस जब आवश्यकता से न्यून वा अधिक होकर शरीर में रहता है तब हानि करता है, जैसे–यदि पसीना न निकले तो भी हानि करता है और यदि आवश्यकता से अधिक निकले तो भी हानि करता है, इसी तरह दस्त आदि के विषय में भी समझ लेना चाहिये, यदि पेशाब कम हो तो पेशाब के रास्ते से जो हानिकारक अंश बाहर निकलना चाहिये वह निकल नहीं सकता है तथा खून में जमा हो जाता है और अनेक हानियों को करता है, यदि पेशाब का होना बिलकुल ही बन्द हो जावे तो प्राणी शीघ्र ही मर जाता है, देखो! हैजा और मरी रोग में प्रायः[1] पेशाब रुक कर ही मृत्यु होती है, बहुत पसीना, बहुत दिनों का अतीसार, मस्सा, नाक से गिरता हुआ खून तथा स्त्रियों का प्रदर इत्यादि बहते हुए प्रवाह का एक दम बन्द कर देने से हानि होती है, पित्त के बढ़ने से पित्त के रोग होते हैं और लहू रस के संचय से सांधों में दर्द हो जाता है ॥

१२–जीव—जीव अर्थात् कृमि वा जन्तु से कण्ठमाला, बाल रुक, वमन, मृगी, अतीसार तथा चमड़ी के अनेक रोग उत्पन्न होते हैं ॥

१–इस का भी सांधों का व्यसन हो पड़ जाता है ॥

१३-**चेप**—चेपीहवा से अथवा दूसरे मनुष्य के स्पर्श से बहुत सी बीमारिया होती हैं, जैसे-उपदश (गर्मी का रोग), वातरक्त, गलितकुष्ठ, प्रमेह, सुजाख, प्रदर, टाई-फाइड तथा टाईफस नामक ज्वर (शील ओरी), हैजा, न्युन्योनिक प्लेग (अग्निरोहणी) और विस्फोटक आदि, इन के सिवाय और भी खाज दाद आदि रोग चेप से होते है ॥

१४-**ठंढ**—शरीर की गर्मी जब कम होती है तब उस को ठंढ कहते है, बहुत ठंढ से अर्थात् शर्दी से ज्वर, मरोड़ा, चूंक, मूत्रपिण्डका शोथ, सन्धिवात अर्थात् गॅठिया, मधुप्रमेह, हृदयरोग, फेफसे का शोथ, दम, क्षय और खासी आदि रोग उत्पन्न होते है ॥

१५-**गर्मी**—शरीर की स्वाभाविक गर्मी से जब अधिक गर्मी बढ़ जाती है तब ज्वर, वातरक्त, यकृत्, रक्तपित्त, गर्मी की खासी, पिंडलियों का ऐंठना और अतीसार आदि रोग होते हैं, कठिन धूप की गर्मी से मगज की बीमारी, कठिन ज्वर, हैजा, शीतला और मरोड़ा आदि रोग उत्पन्न होते है, एवं शरीर पर फुनसियें और फफोले आदि चमड़ी की भी व्याधिया हो जाती हैं, जिस प्रकार विस्फोटक आदि दुष्टरोग दुष्टस्पर्श से उत्पन्न हुए गर्मी के विष से होते है उसी प्रकार गर्म पदार्थों के खाने से बढ़ी हुई गर्मी से भी इस प्रकार के रोग होते है ॥

१६-**मन के विकार**—मन के विकारों से भी बहुत से रोग होते है, जैसे-देखो ! बहुत क्रोध से ज्वर और वातरक्त आदि बीमारिया हो जाती है, बहुत भय से मूर्छा, कामला, चूक, गुल्म, दस्त और अजीर्ण आदि रोग होते है, बहुत चिन्ता से अजीर्ण, कामला, मधुप्रमेह, क्षय और रक्तपित्त आदि रोग होते है ॥

१७-**अकस्मात्**—गिर जाने, कुचल जाने, डूब जाने और विष खाजाने आदि अनेक अकस्मात् कारणो से भी अनेक रोग होते हैं ॥

१८-**दवा**—यद्यपि दवा रोगों को मिटाती है अथवा मिटाने में सहायता करती है परन्तु युक्ति के विना अज्ञानता से ली हुई वा दी हुई दवा से कुछ भी लाभ नहीं होता है अथवा इस प्रकार से ली हुई दवा एक रोग को दवा कर दूसरे को उत्पन्न कर देती है तथा भूल से दी हुई दवा से मनुष्य मर भी जाता है, इस लिये इन सब बातों को अपनी गफलत में अथवा अकस्मात्वर्ग में गिनते हैं, परन्तु लेभग्गू[1] नीम हकीम और मूर्ख वैद्य अपने अल्पज्ञान से अथवा लोभ से अथवा रोगी पर पूरी दया न रखने के कारण बे-पर्वाही से चिकित्सा करने से सैकडों रोगों के कारणरूप हो जाते हैं, देखो ! हजारों मनुष्य इन लेभग्गुओं के हाथ से मारे जाते है, हजारों मनुष्य इन के हाथ से कष्ट पाते हैं, इन बातो का कुछ दृष्टान्तों के द्वारा खुलासा वर्णन करते हैं.—

१-कहीं मे कोई तथा कहीं से कोई बात ले उडनेवाले को लेभग्गू कहते है ॥

शरीर में वायु के बढ़ जाने का मुख्य कारण ठंढ अर्थात् सर्दी ही है परन्तु कभी २ शरीर में बहुत गर्मी के बढ़ जाने से भी वायु जोर किया करती है, अब देखो ! शरीर में जब गर्मी के बढ़ने से वायु का जोर बढ़ जाता है और रोगी तथा दूसरे भी सब लोग बादी की पुकार करते हैं (सब कहते हैं कि बादी है बादी है) उस की चिकित्सा के लिये यदि कोई मान्य वैद्य आकर गर्मी की निवृत्ति के द्वारा वायु की निवृत्ति करता है तब तो ठीक ही है परन्तु जब कोई मूर्ख वैद्य चिकित्सा करने के लिये आता है तो वह भी सर्दी से बादी की उत्पत्ति समझ कर गर्म दवा देता है जिस से महाहानि होती है, दूसरी यह है कि यदि कदाचित् कोई बुद्धिमान् वैद्य यह कहे कि यह रोग गर्मी के द्वारा उत्पन्न हुई बादी से है इस लिये यह गर्म दवा से नहीं मिटेगा किन्तु ठंढी दवा से ही मिटेगा, तो उस रोगी के घरवाले सब ही उस पुरुष वैद्य को मूर्ख ठहरा देते हैं और उस की बतलाई हुई दवा को मञ्जूर नहीं करते हैं किन्तु मनमानी गर्म दवाइयां देते हैं जिन से गर्मी अधिक बढ़ कर रोग को असाध्य कर देती है, जैसे—पित्तसम्बंधी भयंकर गर्मी से उत्पन्न हुए बादीझरे में वृद्ध स्त्रियें और मूर्ख वैद्य दो २ लौंगों को कुल्हिये (कुल्हड़े) में छौंक २ कर दिलाते हैं जिस से रोगी प्रायः मर ही जाता है, हां सौ में से शायद कोई एक दीर्घायु ही बचता है, यदि बच भी जाता है तो उस को यह अत्यन्त गर्मी जन्मभर तक सताती रहती है, इसी प्रकार गर्मी के द्वारा जब कभी वायु का विकार होकर पुरुषत्व का नाश होता है, उपदंश, और सुजाख से अथवा भय और चिन्ता से बहुत से आदमियों का मगज फिर जाता है विभारवायु हो जाता है, पागलपन हो जाता है तब ऐसे रोगों पर भी अज्ञान लोग और ज्ञान से हीन ऊंट वैद्य आंखें बन्द कर एकदम गर्म दवा दिये जाते हैं जिस से बीमारी का घटना तो दूर रहा उलटी वायु अधिक बढ़ जाती है जिस से रोगी के और भी खराबी उत्पन्न होती है, क्योंकि इस प्रकार के रोग प्रायः मगज के खाली पड़ जाने से तथा धातु के नाश से होते हैं, इस लिये इन रोगों में तो जब मगज और धातु सुधरे तब ही वायु मिटकर लाभ हो सकता है, इसी लिये मगज को पुष्ट करनेवाला, तरावट लानेवाला और शीतल इलाज इन रोगों में बतलाया गया है, परन्तु मूर्ख वैद्य इन बातों को कहां से जानें ?

अज्ञान वैद्य बहुत जुलाब के अयोग्य शरीरवाले को बहुत जुलाब दे देते हैं जिस से वमन और मरोड़ का रोग हो जाता है, आंत तथा खून टूट पड़ता है और कई बार आंतें काम न देकर असफल हो जाती हैं, जिस से रोगी मर जाता है ॥

एक रोग दूसरे रोग का कारण ॥

जैसे बहुत से रोग आहार विहार के विरुद्ध बर्ताव से स्वतन्त्रतया होते हैं उसी प्रकार दूसरे रोगों से भी अन्य रोग पैदा होते हैं, जैसे बहुत खाने से अथवा अपनी

प्रकृति के प्रतिकूल अथवा बहुत गर्म वा बहुत ठढे पदार्थ के खाने से जठराग्नि विगडती है, वैसे ही अधिक विषय सेवन से भी शरीर का सत्त्व कम होकर पाचनशक्ति मन्द पड़ती है, इस मन्दाग्नि का यदि शीघ्र ही इलाज न किया जावे तो इस (मन्दाग्नि) से क्रम से अनेक रोग पैदा होते हैं, जैसे देखो:—

१–मन्दाग्नि से अजीर्ण होता है, अजीर्ण से दस्त होते है, दस्तों से मरोड़ा होता है, मरोड़े से सग्रहणी होती है, सग्रहणी से मस्सा (हरस) होता है, मस्सा से पेट का दर्द अफरा और गुल्म (गोले) का रोग होता है।

२–**शर्द गर्मी (जुखाम)**—यद्यपि यह एक छोटा सा रोग है तथा तीन चार दिनतक रह कर आप से ही मिट जाता है परन्तु किसी २ समय जब यह शरीर में जकड जाता है तो बड़े २ भयकर रोगों का कारण बन जाता है, जैसे–इस में खाने पीने की हिफाजत न रहने से दोष बढ़ कर खासी होती है और कफ बढ़ता है, उस से फेफसे में हरकत पहुचकर आखिरकार क्षय रोग के चिह्न प्रकट होते हैं तथा पीनसरोग भी जुखाम से ही होता है।

३–**अजीर्ण**—अजीर्ण भी एक ऐसा साधारण रोग है कि वह मनुष्यों को प्रायः बना रहता है तथा वह आप ही सहज और साधारण उपाय से मिट भी जाता है, हां यह बात अवश्य है कि जहातक शरीर में ताकत रहती है वहातक तो इस की अधिक हरकत नहीं मालूम पडती है परन्तु नाताकत मनुष्य के लिये साधारण भी अजीर्ण बड़े २ रोगों का कारण बन जाता है, जैसे देखो [1] अजीर्ण से मरोड़ा होता है, मरोड़े से सग्रहणी जैसे असाध्य रोग की उत्पत्ति होती है तथा हैजे और मरी को बुलानेवाला भी अजीर्ण ही है।

इस में बडी भयकरता यह है कि यदि इस का इलाज न किया जावे तो यह (अजीर्ण) जीर्ण रूप पकड़ता है और शरीर में सदा के लिये घर बना लेता है।

अजीर्ण से प्राय बहुत से रोग होते हैं जिन में से मुख्य रोग ये है—कृमि, बुखार, चूक, दस्त की कब्जी आदि।

४–**बुखार**—बुखार से तिल्ली, जीर्णज्वर, शोथ, अरुचि, कास, श्वास, वमन और अतीसार आदि।

५–**कृमि**—कृमि रोग से हिचकी, हृदय का रोग, हिष्टीरिया, शिर का दर्द, छींक, दस्त, वमन और गुमडे आदि रोग होते हैं।

६–**धातुविकार**—धातुविकार से असाध्य क्षय रोग होता है, यदि उस का उपाय

१–इस को अंग्रेजी में डिसपेप्सिया कहते हैं॥

न किया जावे तो उस से मगज की वायु, विचारवायु अथवा भ्रम हो जाता है, बुद्धि का नाश हो जाता है और मनुष्य पागल के समान बन जाता है।

७–खांसी—यद्यपि यह एक साधारण रोग है परन्तु उस का उपाय न करने से उस की वृद्धि होकर राजयक्ष्मा हो जाता है।

८–मदात्यय[1]—इस रोग से अजीर्ण, दाह और पागलपन का असाध्य रोग होता है।

९–उपदंश या गर्मी—उपदंश अर्थात् दुष्ट स्त्री आदि से उत्पन्न हुई गर्मी के रोग से विस्फोटक, गांठ, वातरक्त, रक्तपित्त, हरस, भगन्दर, नासूर और गँठिया आदि रोग होते हैं।

१०–सुजाख—सुजाख होकर प्रमेह हो जाता है, उस (प्रमेह) से वदगांठ, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात और प्रमेहपिटिका (छोटी २ फुनसियां) आदि रोग तथा उपदंश सम्बधी भी सब प्रकार के रोग होते हैं ॥

यह चतुर्थ अध्याय का रोग सामान्यकारण नामक दसवां प्रकरण समाप्त हुआ ॥

ग्यारहवां प्रकरण—त्रिदोषजरोगवर्णन ॥

त्रिदोपज अर्थात् वात पित्त और कफ से उत्पन्न होनेवाले रोगों का समय ॥

आयवैद्यक शास्त्र के अनुसार यह सिद्ध है कि—सब ही रोगों की जड़ वात पित्त और कफ ही हैं, जबतक ये तीनों दोष बराबर रहते हैं अथवा अपनी स्वाभाविक स्थिति में रहते हैं तबतक शरीर नीरोग गिना जाता है[2] परन्तु जब इन में से कोई एक अथवा दो वा तीनों ही दोष अपनी २ मर्यादा को छोड़ कर उलटे मार्गपर चलते हैं तब बहुत से रोग उत्पन्न होते हैं।

ये तीनों दोष किस प्रकार से अपनी मर्यादा को छोड़ते हैं तथा उन से कौन २ से रोग प्रकट होते हैं इस विषय का संक्षेप से वर्णन करते हैं—

१–बहुत शराब के पीने से जो रोग होता है उस को मदात्यय कहते हैं ॥

२–जैसा कि वैद्यक ग्रन्थों में लिखा है कि—"दोषाः समत्वमारोग्यं [illegible] विषमत्वं" अर्थात् त्रय (त्रिदोषों अर्थात् वात पित्त और कफ) का जो समान रहना है वही आरोग्यता है और उन की जो न्यूनाधिकता है वही रोगता है ॥

वायु के कोप के कारण ॥

अपान वायु के, दस्त के और पेशाब के वेग को रोकना, तिक्त तथा कषैले रसवाले पदार्थों का खाना, बहुत ठंढे पदार्थों का खाना, रात्रि को जागरण करना, बहुत स्त्रीसंग (मैथुन) करना, बहुत परिश्रम करना, बहुत खाना, बहुत मार्ग चलना, अधिक बोलना, भय करना, रूखे पदार्थों का खाना, उपवास करना, बहुत खारी कडुए तथा तीखे पदार्थों का खाना, बहुत हिचके खाना और सवारी पर बैठ कर यात्रा करना, इत्यादि कार्य वायु को कुपित करने में कारण होते है।

इन के सिवाय-बहुत ठंढ में, बरसात की भीगी हुई जमीन में, बरसते समय में, स्नान करने के पीछे, पानी पीने के पीछे, दिन के पिछले भाग में, खाये हुए भोजन के पचने के पीछे और जोर से पवन (हवा) चल रहा हो उस समय में शरीर में वायु जोर करता है तथा शरीर में ८० प्रकार के रोगों को उत्पन्न करता है, उन ८० प्रकार के रोगों के नाम ये हैः—

१-**आक्षेपवायु**—इस रोग में शरीर की नसों में हवा भरकर शरीर को इधर उधर फेंकती है।

२-**हनुस्तम्भ**—इस रोग में ठोडी वादी से जकड़ कर टेढ़ी हो जाती है।

३-**ऊरुस्तम्भ**—इस रोग में वादी से जघा अकड़ कर चलने की शक्ति कम हो जाती है।

४-**शिरोग्रह**—इस रोग में शरीर की नसों में वादी भर कर शिर को जकड देती और पीडा करती है।

५-**बाह्यायाम**—इस रोग में पीठ की रगों में वादी भर कर शरीर को धनुष के समान झुका देती है।

६-**अन्तरायाम**—इस रोग में छाती की तरफ से शरीर कमान के समान बांका (टेढा) हो जाता है।

७-**पार्श्वशूल**—इस रोग में पसवाड़ों की पसलियों में चसके चलते हैं।

८-**कटिग्रह**—इस रोग में वादी कमर को पकड़ के जकड देती है।

९-**दण्डापतानक**—इस रोग में वादी शरीर को लकड़ी की तरह सीधा ही जकड़ देती है।

१०-**खल्ली**—इस रोग में वायु भर कर पैर, हाथ, जाघ, गोडे और पींडियों का कम्पन करती है।

११-**जिह्वास्तम्भ**—इस रोग में वादी जीभ की नसों को पकड़ कर बोलने की शक्ति को बन्द कर देती है।

१२-**अर्दित**—इस रोग में मुख का आधा भाग टेढा होकर जीभ का लोचा बँधता है और करडा (सख्त) हो जाता है।

१३–**पक्षाघात**—इस रोग में आधे शरीर की नसों का शोषण हो कर गति की रुकावट हो जाती है।

१४–**क्रोष्टुशीर्षक**—इस रोग में गोडों में वादी खून को पकड़ कर कठिन सूजन[1] को पैदा करती है।

१५–**मन्यास्तम्भ**—इस रोग में गर्दन की नसों में वायु कफ को पकड़ कर गर्दन को जकड़ देती है।

१६–**पङ्गु**—इस रोग में कमर तथा जांघों में वादी घुस कर दोनों पैरों को निकम्मा कर देती है।

१७–**कलायखञ्ज**—इस रोग में चलते समय शरीर में कम्पन होता है तथा पैर टेढ़े पड़ जाते हैं।

१८–**तूनी**—इस रोग में पक्वाशय में चिनग पैदा होकर गुदा और उपस्थ (पेशाब की इन्द्रिय) में आती है।

१९–**प्रतितूनी**—इस रोग में तूनी की पीड़ा नीचे को उतर कर पीछे नाभि की तरफ जाती है।

२०–**खञ्ज**—इस रोग में पङ्गु (पांगले) के समान सब लक्षण होते हैं, परन्तु विशेषता केवल यही है कि–यह रोग केवल एक पैर में होता है, इस लिये इस रोगवाले को लँगड़ा कहते हैं।

२१–**पादहर्ष**—इस रोग में पैर में केवल झनझनाहट होती है तथा पैर शून्य जैसा हो जाता है।

२२–**गृध्रसी**—इस रोग में कटि (कमर) के नीचे का भाग (जांघ) और पैर आदि) जकड़ जाता है।

२३–**विश्वाची**—इस रोग में हथेली तथा अंगुलियां जकड़ जाती हैं और हाथ से काम नहीं होता है।

२४–**अपबाहुक**—इस रोग में हाथों की नाड़ी जकड़ कर हाथ दूखते (दर्द करते) रहते हैं।

२५–**अपतानक**[2]—इस रोग में वादी हृदय में आकर दृष्टि को स्तब्ध (रुकी हुई) करती है, ज्ञान और संज्ञा (चेतनता) का नाश करती है और कण्ठ से एक विलक्षण (अजीब) तरह की आवाज निकलती है, जब यह वायु हृदय से अलग हटती है तब रोगी का सुख मालूम होती है (होश आता है), इस रोग में हिष्टीरिया (उन्माद) के समान चिह्न वार २ होते तथा मिट जाते हैं।

१–यह सूजन शृगाल के शिर के समान होती है इसी लिये इस को क्रोष्टुशीर्षक (शृगाल का शिर) कहते हैं॥

२–इस को कोई २ धानुस्तम्भ भी कहते हैं॥

२६-**व्रणायाम**—इस रोग में चोट अथवा ज़खम से उत्पन्न हुए व्रण (घाव) में वादी दर्द करती है।

२७-**व्यथा**—इस रोग में पैरों में तथा घुटनों में चलते समय दर्द होता है।

२८-**अपतन्त्रक**—इस रोग में पैरों में तथा शिर में दर्द होता है, मोह होता है, गिर पडता है, शरीर धनुप कमान की तरह वाका हो जाता है, दृष्टि स्तब्ध होती है तथा कबूतर की तरह गले में शब्द होता है।

२९-**अंगभेद**—इस रोग में सब शरीर टूटा करता है।

३०-**अंगशोष**—इस रोग में वादी सब शरीर के खून को सुखा डालती है तथा शरीर को भी सुखा देती है।

३१-**मिनमिनाना**—इस रोग में मुँह से निकलनेवाला शब्द नाक से निकलता है, इसे गूगापन कहते है।

३२-**कल्लता**—इस रोग में हिचक २ कर तथा रुक २ कर थोडा २ बोला जाता है तथा बोलने में उबकाई खाता है।

३३-**अष्ठीला**—इस रोग में नाभि के नीचे पत्थर के समान गाठ होती है।

३४-**प्रत्यष्ठीला**—इस रोग में नाभि के ऊपर पेट में गाठ तिरछी होकर रहती है।

३५-**वामनत्व**—इस रोग में गर्भ में प्राप्त होकर जब वादी गर्भविकार को करती है तब बालक वामन होता है।

३६-**कुब्जत्व**—इस रोग में पीठ और छाती में वायु भर कर कूबड़ निकाल देती है।

३७-**अंगपीड़**—इस रोग में सब शरीर में दर्द होता है।

३८-**अंगशूल**—इस रोग में सब शरीर में चसके चलते हैं।

३९-**संकोच**—इस रोग में वादी नसो को सकुचित कर शरीर को अकड देती है।

४०-**स्तम्भ**—इस रोग में वादी से सब शरीर ग्रस्त हो जाता है।

४१-**रूक्षपन**—इस रोग में वादी के कोप से शरीर रूखा और निस्तेज हो जाता है।

४२-**अंगभंग**—इस रोग में ऐसा प्रतीत होता है कि-मानो वादी से शरीर टूट जायगा।

४३-**अंगविभ्रम**—इस रोग में शरीर का कोई भाग लकड़ी के समान जड हो जाता है।

४४-**मूकत्व**—इस रोग में बोलने की नाडी में वादी के भर जाने से जबान बन्द हो जाती है।

४५-**विड्ग्रह**—इस रोग में आँतो में वायु भर कर दस्त और पेशाब को रोक देती है।

१३–पक्षाघात—इस रोग में आधे शरीर की नसों का शोषण हो कर गति की रुकावट हो जाती है।

१४–क्रोष्टुशीर्षक—इस रोग में गोडों में वादी खून को पकड़ कर कठिन सूजन को पैदा करती है[1]।

१५–मन्यास्तम्भ—इस रोग में गर्दन की नसों में वायु कफ को पकड़ कर गर्दन को जकड़ देती है।

१६–पङ्गु—इस रोग में कमर तथा जांघों में वादी घुस कर दोनों पैरों को निकम्मा कर देती है।

१७–कलायखञ्ज—इस रोग में चलते समय शरीर में कम्पन होता है तथा पैर टेढ़े पड़ जाते हैं।

१८–तूनी—इस रोग में पक्वाशय में चिनग पैदा होकर गुदा और उपस्थ (पेशाब की इन्द्रिय) में जाती है।

१९–प्रतितूनी—इस रोग में तूनी की पीड़ा नीचे को उतर कर पीछे नाभि की तरफ जाती है।

२०–खञ्ज—इस रोग में पंगु (पांगले) के समान सब लक्षण होते हैं, परन्तु विशेषता केवल यही है कि–यह रोग केवल एक पैर में होता है, इस लिये इस रोगवाले को लँगड़ा कहते हैं।

२१–पादहर्ष—इस रोग में पैर में केवल झनझनाहट होती है तथा पैर शून्य जैसा हो जाता है।

२२–गृध्रसी—इस रोग में कटि (कमर) के नीचे का भाग (जांघ) और पैर आदि) जकड़ जाता है।

२३–विश्वाची—इस रोग में हथेली तथा अंगुलियां जकड़ जाती हैं और हाथ से काम नहीं होता है।

२४–अपबाहुक—इस रोग में हाथों की नाड़ी जकड़ कर हाथ दूखते (दर्द करते) रहते हैं।

२५–अपतानक—इस रोग में वादी हृदय में आकर दृष्टि को स्तब्ध (रुकी हुई) करती है, ज्ञान और संज्ञा (चेतनता) का नाश करती है और कण्ठ से एक विलक्षण (अजीब) तरह की आवाज निकलती है, जब यह वायु हृदय से अलग हटती है तब रोगी को संज्ञा प्राप्त होती है (होश आता है), इस रोग में हिष्टीरिया (उन्माद)[2] के समान चिह्न बार २ होते तथा मिट जाते हैं।

१–यह सूजन शृगाल के शिर के समान होती है इसी लिये इस को क्रोष्टुशीर्षक (शृगाल का शिर) कहते हैं ॥
२–इस को कोई २ वायगोला मस्सी भी कहते हैं ॥

६९–**आध्मान**—इस रोग में वायु के कोप से नाभि के नीचे अफरा हो जाता है।

७०–**प्रत्याध्मान**—इस रोग में हृदयके नीचे और नाभि के ऊपर अफरा हो जाता है।

७१–**शीतता**—इस रोग में वायु से शरीर ठढा पड जाता है।

७२–**रोमहर्ष**—इस रोग में वादी के कोप से शरीर के रोम खड़े हो जाते हैं।

७३–**भीरुत्व**—इस रोग में वायु के कोप से भय लगता रहता है।

७४–**तोद**—इस रोग में शरीर में सुई के चुभाने के समान व्यथा प्रतीत होती है।

७५–**कण्डू**—इस रोग में वादी से शरीर में खाज चला करती है।

७६–**रसाज्ञता**—इस रोग में रसो का स्वाद नहीं मालूम होता है।

७७–**शब्दाज्ञता**—इस रोग में वादी के कोप से कानो से शब्द सुनाई नही देता है।

७८–**प्रसुप्ति**—इस रोग में वायु के कोप से स्पर्श का ज्ञान नहीं होता है।

७९–**गन्धाज्ञता**—इस रोग में वायु के कोप से गध का ज्ञान नहीं होता है।

८०–**दृष्टिक्षय**—इस रोग में दृष्टि में वायु अपना प्रवेश कर देखने की शक्ति को कम कर देती है[1]।

सूचना—वायु के कोप से शरीर में ऊपर कहे हुए रोगो में से एक अथवा अनेक रोगों के लक्षण स्पष्ट दिखलाई देते है, उन (लक्षणो) से निश्चय हो सकता है कि यह रोग वादी का है, खून और वादी का भी निकट सम्बंध है इस लिये वादी खून में मिल कर बहुत से खून के विकारों को पैदा करती है, अत. ऐसे रोगों में खून की शुद्धि और वायु की शान्ति करने वाला इलाज करना चाहिये ॥

पित्त के कोप के कारण ॥

बहुत गर्म, तीखे, खट्टे, रूखे और दाहकारी पदार्थों के खाने पीने से, मद्य आदि नशों के व्यसन से, बहुत उपवास करने से, क्रोध से, अति मैथुन से, बहुत शोक से, बहुत धूप और अग्नि तेज आदि के सेवन से, इत्यादि आहार विहार से पित्त का कोप होता है, जिस से पित्तसम्बन्धी ४० रोग होते हैं, जिन के नाम ये है:—

१–**धूमोद्गार**—इस रोग में धुएँ के समान जली हुई डकार आती है।

२–**विदाह**—इस रोग में शरीर में बहुत जलन होती है।

३–**उष्णाङ्गत्व**—इस रोग में शरीर हरदम गर्म रहता है।

४–**मतिभ्रम**—इस रोग में शिर (मगज़) सदा घूमा करता है।

१–वायु से उत्पन्न होने वाले इन ८० प्रकार के रोगों का यहा पर कथन कर दिया है परन्तु स्मरण रखना चाहिये कि अनेक आचार्यों ने कई रोगों के नामान्तर (दूसरे नाम) लिखे हैं तथा उन के लक्षण भी और ही लिखे हैं, परन्तु सख्या में कोई भेद नहीं है अर्थात् रोग सख्या सब ही के मत में ८० ही है, यही विषय पित्त और कफ से उत्पन्न होनेवाले रोगों के विषय मे भी समझना चाहिये ॥

४६–पच्छविद्कता—इस रोग में वादी से दस्त बहुत करड़ा आता है।

४७–अतिजृम्भा—इस रोग में बादी से उबासी अर्थात् जँभाई बहुत आती हैं।

४८–प्रत्युद्गार—इस राग में बादी के कोप से डकारें बहुत आती हैं।

४९–अन्त्रकूजन—इस रोग में बादी के कोप से आँतों में कूजन (कुर २ की आवाज) बार २ होती है।

५०–वातप्रवृत्ति—इस रोग में बादी के जोर से अधोवायु (अपान वायु) बहुत निकलती है।

५१–स्फुरण—इस रोग में बादी के जोर से आँख अथवा हाथ आदि कोई अंग फरकता है।

५२–शिरापूर्ण—इस रोग में बादी से सब नसें और शिरायें भर जाती हैं।

५३–कम्पवायु—इस रोग में वायु से सब अंग अथवा शिर काँपा करता है।

५४–कार्श्य—इस रोग में बादी के कोप से शरीर प्रतिदिन (दिन पर दिन) दुबला होता जाता है।

५५–श्यामता—इस रोग में बादी से शरीर काला पड़ता जाता है।

५६–प्रलाप—इस रोग में बादी से मनुष्य बहुत बकता और बोलता रहता है।

५७–क्षिप्रमूत्रता—इस रोग में बादी से थम २ में (थोड़ी २ देर में) पेशाब उतरा करती है।

५८–निद्रानाश—इस रोग में बादी से नींद नहीं आती है।

५९–स्वेदनाश—इस रोग में बादी पसीने के छिद्रों (छेदों) को बन्द कर पसीने को बन्द कर देती है।

६०–दुर्बलत्व—इस रोग में वायु के कोप से शरीर की शक्ति जाती रहती है।

६१–बलक्षय—इस रोग में बादी के कोप से शक्ति का बिलकुल ही नाश हो जाता है।

६२–शुक्रप्रवृत्ति—इस रोग में बादी के कोप से शुक्र (वीर्य) बहुत गिरा करता है।

६३–शुक्रकार्श्य—इस रोग में वायु धातु में मिलकर धातु को सुखा देती है।

६४–शुक्रनाश—इस रोग में वायु से धातु का बिलकुल ही नाश हो जाता है।

६५–अनवस्थितचित्तता—इस रोग में वायु मगज में जाकर चित्त को अस्थिर कर देती है।

६६–काठिन्य—इस रोग में वायु के कोप से शरीर करड़ा हो जाता है।

६७–विरसास्यता—इस रोग में वायु के कोप से मुँह में रस का स्वाद बिलकुल नहीं रहता है।

६८–कषायवक्त्रता—इस रोग में बादी के कोप से मुँह में कषैले रस का स्वाद रहता है।

३६–**उष्णमूत्रत्व**—इस रोग में पेशाव गर्म आता है।

३७–**उष्णमलत्व**—इस रोग में दस्त गर्म उतरता है।

३८–**तमोदर्शन**—इस रोग में आखों में अँधेरी आती है।

३९–**पित्तमण्डलदर्शन**—इस रोग में पीले मण्डल (चक्कर) दीखते है।

४०–**निःसरत्व**—इस रोग में वमन और दस्त में पित्त निकलता है।

सूचना—पित्त के कोप से शरीर में उक्त रोगो में से एक अथवा अनेक रोगों के लक्षण दिखलाई देते है, उन को खूब समझ कर रोगों का इलाज करना चाहिये, क्योंकि बहुधा देखा गया है कि–मतिभ्रम, तिक्तास्यता, स्वेदस्राव, क्लम, अरति, अल्पनिद्रता, गात्रसाद, भिन्नविट्कता और तमोदर्शन आदि बहुत से पित्त के रोगों को साधारण मनुष्य अपनी समझ के अनुसार वायु के रोग गिनकर (मान कर) उन के मिटाने के लिये गर्म इलाज किया करते हैं, उस से उलटा रोग बढ़ता है, इसी प्रकार बहुत से रोग बाहर से वायु के से (वायुजन्य रोगों के समान) दीखते हैं परन्तु असल में निश्चय करने पर वे (रोग) पित्त के (पित्तजन्य) ठहरते है (सिद्ध होते है), एवं बहुत से रोग बाहरी लक्षणों से पित्त तथा गर्मी के मालूम देते है परन्तु असल में निश्चय करने पर वे रोग वायु से उत्पन्न हुए सिद्ध होते है, इस लिये रोगों के कारणों के खोजने में बहुत विचार-शक्ति और सूक्ष्म बुद्धि से जाच करने की आवश्यकता है ॥

कफ के कोप के कारण ॥

गुड़, शक्कर, बूरा और मिश्री आदि मीठे पदार्थों के खाने से, घी और मक्खन आदि चिकने पदार्थों के खाने से, केला और भैंस का दूध आदि भारी पदार्थों के खाने से, ठढे और भारी पदार्थों के अधिक खाने से, दिन में सोने से, अजीर्ण में भोजन करने से, विना मेहनत के खाली बैठे रहने से, शीतकाल में अधिक ठंढे पानी के पीने से और वसन्त ऋतु में नये अन्न के खाने से, इत्यादि आहार विहार से शरीर में कफ बढ़ कर बहुत से रोगों को उत्पन्न करता है, जिन में से मुख्यतया कफ के २० रोग हैं, जिन के नाम ये हैं—

१–**तन्द्रा**—इस रोग में आखो में मिंचाव सा लगा रहता है।

२–**अतिनिद्रता**—इस रोग में नींद बहुत आती है।

३–**गौरव**—इस रोग में शरीर भारी रहता है।

४–**मुखमाधुर्य**—इस रोग में मुँह मीठा २ सा लगता है।

५–**मुखलेप**—इस रोग में मुँह में चिकनापन सा रहता है।

६–**प्रसेक**—इस रोग में मुँह से लार गिरती रहती है।

५–कान्तिहानि—इस रोग में शरीर के तेज का नाश होता है।
६–कण्ठशोष—इस रोग में कण्ठ (गला) सूख जाता है।
७–मुखशोष—इस रोग में मुँह में शोष हो जाता है।
८–अल्पशुक्रता—इस रोग में धातु (वीर्य) कम हो जाता है।
९–तिक्तास्यता—इस रोग में मुँह कडुआ रहता है।
१०–अम्लवक्त्रत्व—इस रोग में मुँह खट्टा रहता है।
११–स्वेदस्राव—इस रोग में पसीना बहुत आता है।
१२–अङ्गपाक—इस रोग में शरीर पक जाता है।
१३–क्लम—इस रोग में ग्लानि तथा अशक्ति (कमजोरी) रहती है।
१४–हरितवर्णत्व—इस रोग में शरीर का रंग हरा दीखता है।
१५–अतृप्ति—इस रोग में भोजन करने पर भी तृप्ति नहीं होती है।
१६–पीतकायता—इस रोग में शरीर का रंग पीला दीखता है।
१७–रक्तस्राव—इस रोग में शरीर के किसी स्थान से खून गिरता है।
१८–अङ्गदरण—इस रोग में शरीर की चमड़ी फटती है।
१९–लोहगन्धास्यता—इस रोग में मुँह में से लोह के समान गन्ध आती है।
२०–दौर्गन्ध्य—इस रोग में मुँह तथा शरीर से दुर्गन्ध निकलती है।
२१–पीतमूत्रत्व—इस रोग में पेशाब पीला उतरता है।
२२–अरति—इस रोग में पदार्थों पर अप्रीति रहती है।
२३–पीतविट्कता—इस रोग में दस्त पीला आता है।
२४–पीतावलोकन—इस रोग में आँखों से पीला दीखता है।
२५–पीतनेत्रता—इस रोग में आँखें पीली हो जाती हैं।
२६–पीतदन्तता—इस रोग में दाँत पीले हो जाते हैं।
२७–शीतेच्छा—इस रोग में ठंढे पदार्थ की वाञ्छा रहती है।
२८–पीतनखता—इस रोग में नख पीले हो जाते हैं।
२९–तेजोद्वेष—इस रोग में सूर्य आदि का तेज सहा नहीं जाता है।
३०–अल्पनिद्रता—इस रोग में नींद थोड़ी आती है।
३१–कोप—इस रोग में क्रोध (गुस्सा) बढ़ जाता है।
३२–गात्रसाद—इस रोग में शरीर में पीड़ा होती है।
३३–भिन्नविट्कत्व—इस रोग में दस्त पतला आता है।
३४–अन्धता—इस रोग में आँख से नहीं दीखता है।
३५–उष्णोच्छ्वासत्व—इस रोग में श्वास गर्म निकलता है।

विचार कर रोग की परीक्षा करना, शकुन के द्वारा रोग की परीक्षा इस प्रकार से होती है कि–जिस समय वैद्य को बुलाने के लिये दूत जावे उसी समय मकान से निकलते ही उस को गर्म शकुन का होना शुभ होता है, सौम्य तथा ठढा शकुन होवे तो वह अच्छा नहीं होता है इत्यादि, स्वरोदय के द्वारा रोग की परीक्षा इस प्रकार से होती है कि–जब दूत वैद्य के पास पहुंचे तब वैद्य स्वरोदय देखे, वह भी भरीहुई दिशा में देखे, यदि दूत बैठ कर या खडा रह कर प्रश्न करे तो सजीव दिशा समझे, यदि उस समय वैद्य के अग्नितत्त्व चलता हो तो पित्त वा गर्मी का रोग समझे, रोगी के वायुतत्त्व चलता हो तो वायु का रोग समझे, इत्यादि तत्त्वों का विचार करे, यदि खाली दिशा में बैठ कर प्रश्न हो वा सुषुम्ना नाडी चलती हो तो रोगी मर जाता है, आकाशतत्त्व में वैद्य को यश नहीं मिलता है, यदि वैद्य के चन्द्र स्वर चलता हो पीछे उस में पृथिवी और जलतत्त्व चले तथा उस समय रोगीके घर जावे तो वैद्य को अवश्य यश मिलेगा, दवा देते समय वैद्य के सूर्य स्वर का होना इसी तरह पुन वैद्य को मकान से निकलते ही ठढे और सौम्यशकुन का होना अच्छा होता है परन्तु गर्म शकुन का होना अच्छा नहीं है, इत्यादि।

इस प्रकार से स्वप्न शकुन और स्वरोदय के द्वारा परीक्षा करने से वैद्य इस बात को निमित्त शास्त्र के द्वारा अच्छी तरह जान सकता है कि–रोगी जियेगा या बहुत दिनोतक भुगतेगा अथवा आराम हो जायगा इत्यादि।

यद्यपि इन तीनों विषयों का कुछ यहा पर विशेष वर्णन करना आवश्यक था परन्तु ग्रंथ के बढ़ जाने के भय से यहा विशेष नहीं लिख सकते हैं किन्तु यहा पर तो अब रोग परीक्षा के जो लोकप्रसिद्ध मुख्य उपाय है उन का विस्तारसहित वर्णन करते हैं:—

रोगपरीक्षा के लोकप्रसिद्ध मुख्य चार उपाय है—प्रकृतिपरीक्षा, स्पर्शपरीक्षा, दर्शनपरीक्षा और प्रश्नपरीक्षा, इन में से प्रकृतिपरीक्षा में यह देखा जाता है कि रोगी की प्रकृति वायुप्रधान है, वा पित्तप्रधान है, वा कफप्रधान है, अथवा रक्तप्रधान है, (इस विषय का वर्णन प्रकृति के स्वरूप के निर्णय में किया जावेगा), स्पर्शपरीक्षा में रोगी के शरीर के भिन्न २ भागों की हाथ के स्पर्श से तथा दूसरे साधनों से जाच की जाती है, इस परीक्षा का भी वर्णन आगे विस्तार से किया जावेगा, यह स्पर्शपरीक्षा हाथ से तथा थर्मामीटर (उष्णतामापक नली) से और स्टेथोस्कोप (हृदय तथा श्वास नली की क्रिया के जानने की भुगली) आदि दूसरे भी साधनों से हो सकती है, नाड़ी, हृदय, फेफसा तथा चमड़ी, ये सब स्पर्शपरीक्षा के अंग हैं, दर्शनपरीक्षा में यह वर्णन है कि–रोगी के शरीर को अथवा उस के जुदे २ अवयवों को केवल दृष्टि के द्वारा देखने मात्र से रोग

१–स्वरोदय का कुछ वर्णन आगे (पञ्चमाध्याय में) किया जायगा, वहा इस विषय को देख लेना चाहिये॥
२–अष्टाङ्ग निमित्त के यथार्थ ज्ञान को जो कोई पुरुष झूठा समझते हैं यह उन की मूर्खता है॥

७–श्वेतावलोकन—इस रोग में सब वस्तुयें सफेद दीखती हैं।
८–श्वेतविट्कत्व—इस रोग में दस्त सफेद रँग का उतरता है।
९–श्वेतमूत्रता—इस रोग में पेशाब श्वेत (सफेद) उतरता है।
१०–श्वेतांगवर्णता—इस रोग में शरीर का रंग सफेद हो जाता है।
११–उष्णेच्छा—इस रोग में अति गर्म पदार्थ के खाने की इच्छा होती है।
१२–तिक्तकामता—इस रोग में कडुई चीज की इच्छा होती है।
१३–मलाधिक्य—इस रोग में दस्त अधिक होकर उतरता है।
१४–शुक्रबाहुल्य—इस रोग में वीर्य का अधिक उत्पन्न होता है।
१५–बहुमूत्रता—इस रोगमें पेशाब बहुत आता है।
१६–आलस्य—इस रोग में आलस्य बहुत आता है।
१७–मन्दबुद्धित्व—इस रोग में बुद्धि मन्द हो जाती है।
१८–तृप्ति—इस रोग में थोड़ा सा खाने से ही तृप्ति हो जाती है।
१९–घर्घरवाक्यता—इस रोग में आवाज घर्घर होकर निकलती है।
२०–अचैतन्य—इस रोग में चेतनता जाती रहती है।

सूचना—कफ का कोप होने से शरीर में से उक्त रोगोंमेंसे एक अथवा अनेक रोगों के जब लक्षण दीख पड़ें तब उन को खूब सोच समझ कर रोगों का इलाज करना चाहिये।

कफ के रोगों में जो श्वेतावलोकन तथा श्वेतविट्कत्व रोग गिनाये गये हैं उन का तात्पर्य यह नहीं है कि सब वस्तुयें बर्फ के समान सफेद दीखें तथा बर्फ के समान सफेद दस्त आवें, किन्तु उन का तात्पर्य यही है कि आरोग्यता की दशा में जैसा रंग दीखता था तथा जिस रंग का दस्त आता था वैसा रंग न दीख कर तथा उस रंग का दस्त न होकर पूर्व की अपेक्षा अधिक श्वेत दीखता है तथा अधिक श्वेत दस्त आता है॥

यह चतुर्थ अध्याय का त्रिदोषज रोगवर्णन नामक ग्यारहवां प्रकरण समाप्त हुआ॥

बारहवां प्रकरण—रोगपरीक्षाप्रकार॥

रोग की परीक्षा के आवश्यक क्रम या प्रकार॥

रोग की परीक्षा के बहुत से प्रकार हैं—उन में से तीन प्रकार निमित्त शास्त्र के द्वारा माने जाते हैं, जो कि ये हैं—लग्न, शकुन और स्वरोदय, लग्न के द्वारा रोग की परीक्षा इस प्रकार से होती है कि—रोगी को या उस के किसी सम्बन्धी को या उस के चिकित्सक (रोगी की चिकित्सा करने वाले) वैद्य को जो लग्न आवे उस का शुभाशुभ फल

विचार कर रोग की परीक्षा करना, शकुन के द्वारा रोग की परीक्षा इस प्रकार से होती है कि–जिस समय वैद्य को बुलाने के लिये दूत जावे उसी समय मकान से निकलते ही उस को गर्म शकुन का होना शुभ होता है, सौम्य तथा ठंढा शकुन होवे तो वह अच्छा नही होता है इत्यादि, स्वरोदय के द्वारा रोग की परीक्षा इस प्रकार से होती है कि–जब दूत वैद्य के पास पहुंचे तब वैद्य स्वरोदय देखे, वह भी भरीहुई दिशा में देखे, यदि दूत बैठ कर या खडा रह कर प्रश्न करे तो सजीव दिशा समझे, यदि उस समय वैद्य के अग्नितत्त्व चलता हो तो पित्त वा गर्मी का रोग समझे, रोगी के वायुतत्त्व चलता हो तो वायु का रोग समझे, इत्यादि तत्त्वों का विचार करे, यदि खाली दिशा में बैठ कर प्रश्न हो वा सुषुम्ना नाडी चलती हो तो रोगी मर जाता है, आकाशतत्त्व में वैद्य को यश नही मिलता है, यदि वैद्य के चन्द्र स्वर चलता हो पीछे उस में पृथिवी और जलतत्त्व चले तथा उस समय रोगीके घर जावे तो वैद्य को अवश्य यश मिलेगा, दवा देते समय वैद्य के सूर्य स्वर का होना इसी तरह पुन· वैद्य को मकान से निकलते ही ठढे और सौम्यशकुन का होना अच्छा होता है परन्तु गर्म शकुन का होना अच्छा नहीं है, इत्यादि[1]।

इस प्रकार से स्वप्न शकुन और स्वरोदय के द्वारा परीक्षा करने से वैद्य इस बात को निमित्त शास्त्र के द्वारा अच्छी तरह जान सकता है कि–रोगी जियेगा या बहुत दिनोंतक भुगतेगा अथवा आराम हो जायगा इत्यादि[2]।

यद्यपि इन तीनों विषयों का कुछ यहा पर विशेष वर्णन करना आवश्यक था परन्तु ग्रंथ के बढ़ जाने के भय से यहा विशेष नहीं लिख सकते है किन्तु यहा पर तो अब रोग परीक्षा के जो लोकप्रसिद्ध मुख्य उपाय है उन का विस्तारसहित वर्णन करते हैं:—

रोगपरीक्षा के लोकप्रसिद्ध मुख्य चार उपाय हैं—प्रकृतिपरीक्षा, स्पर्शपरीक्षा, दर्शनपरीक्षा और प्रश्नपरीक्षा, इन में से प्रकृतिपरीक्षा में यह देखा जाता है कि रोगी की प्रकृति वायुप्रधान है, वा पित्तप्रधान है, वा कफप्रधान है, अथवा रक्तप्रधान है, (इस विषय का वर्णन प्रकृति के स्वरूप के निर्णय में किया जावेगा), स्पर्शपरीक्षा में रोगी के शरीर के भिन्न २ भागों की हाथ के स्पर्श से तथा दूसरे साधनों से जाच की जाती है, इस परीक्षा का भी वर्णन आगे विस्तार से किया जावेगा, यह स्पर्शपरीक्षा हाथ से तथा थर्मामीटर (उष्णतामापक नली) से और स्टेथोस्कोप (हृदय तथा श्वास नली की क्रिया के जानने की भुगली) आदि दूसरे भी साधनो से हो सकती है, नाड़ी, हृदय, फेफसा तथा चमड़ी, ये सब स्पर्शपरीक्षा के अंग है, दर्शनपरीक्षा में यह वर्णन है कि–रोगी के शरीर को अथवा उस के जुदे २ अवयवों को केवल दृष्टि के द्वारा देखने मात्र से रोग

१–स्वरोदय का कुछ वर्णन आगे (पञ्चमाध्याय में) किया जायगा, वहा इस विषय को देख लेना चाहिये ॥
२–अष्टाङ्ग निमित्त के यथार्थ ज्ञान को जो कोई पुरुष झूठा समझते हैं यह उन की मूर्खता है ॥

का बहुत कुछ निर्णय हो सकता है इस परीक्षा में बहुत से दर्शनीय दूसरे भी विषय आ जाते हैं, जैसे—रूप अर्थात् चेहरे का देखना, त्वचा (चमड़ी), नेत्र, जीभ, मल (दस्त) और मूत्र आदि के रंग को देखना तथा उन के दूसरे चिह्नों को देखना, इत्यादि। इन सब के दर्शन से भी रोगपरीक्षा हो सकती है, प्रश्नपरीक्षा में यह होता है कि—रोगी की हकीकत को सुन कर तथा पूछ कर आवश्यक बातों का ज्ञान होकर रोग का ज्ञान हो जाता है, अब इन चारों परीक्षाओं का विशेष वर्णन किया जाता है —

प्रकृतिपरीक्षा ॥

आर्यवैद्यक शास्त्र के मुख्यतया वर्णनीय विषय वात पित्त और कफ, ये तीन ही हैं और इन्हीं पर वैद्यक शास्त्र का आधार है, नाड़ीपरीक्षा में भी ये ही तीनों उपयोगी हैं, इस लिये इन तीनों विषयों का विचार पहिले किया जाता है—

नाड़ी आदि की परीक्षा के विषय पर आने से पहिले यह जानना परम आवश्यक है कि प्रत्येक दोषे वाली प्रकृति का क्या २ स्वरूप होता है, क्योंकि प्रत्येक मनुष्य को अपनी २ प्रकृति (तासीर) से वाकिफ होना बहुत ही जरूरी है, देखो ! हमारी प्रकृति शान्त है अथवा तामसी (तमोगुण से युक्त) है इस बात को तो प्रायः सब ही मनुष्य आप भी जानते हैं तथा उन के सहवासी (साथ में रहनेवाले) इष्ट मित्र भी जानते हैं, परन्तु वैद्यकशास्त्र के नियम के अनुसार हमारी प्रकृति वात की है, वा पित्त की है, वा कफ की है, वा रक्त की है, अथवा मिश्र (मिलीहुई) है, इस बात को बहुत थोड़े ही पुरुष जानते हैं, इस के न जानने से खान पान के पदार्थों के सामान्य गुण और दोषों का ज्ञान होने पर भी उस से कुछ लाभ नहीं उठा सकते हैं, क्योंकि प्रत्येक मनुष्य जब अपनी प्रकृति को जान लेता है तब इस के बाद खान पान के पदार्थों के सामान्य–गुण दोष को जान कर तथा अपनी प्रकृति के अनुसार उन का उपयोग कर अपनी आरोग्यता को कायम रख सकता है तथा रोग हो जाने पर उन का इलाज भी स्वयं ही कर सकता है।

प्रकृति की परीक्षा में इतनी विशेषता है कि—इस का ज्ञान होने से दूसरी भी बहुत सी परीक्षायें सामान्यतया जानी जा सकती हैं, देखो ! यह सब ही जानते हैं कि—सब आदमियों में वात पित्त कफ और खून अवश्य होते हैं परन्तु वे (वात आदि) सब के समान नहीं होते हैं अर्थात् किसी के शरीर में एक प्रधान होता है शेष गौण (अप्रधान) होते हैं, किसी के शरीर में दो प्रधान होते हैं शेष गौण होते हैं, अब इस में यह जान लेना चाहिये कि जिस मनुष्य का जो दोष प्रधान होता है उसी दोष के नाम से उसकी

१–इस को यहां पर उचित समझ कर प्रकृतिपरीक्षा नाम रख दिया है ॥

२–वात पित्त और कफ इन्हीं तीनों का नाम दोष है क्योंकि ये ही विकृत होकर शरीर को दूषित करते हैं ॥

प्रकृति पहचानी और मानी जाती है, यह भी स्मरण रहे कि–प्रकृति प्रायः मनुष्यों की पृथक् २ होती है, देखो ! यह प्रत्यक्ष ही देखा जाता है कि–एक वस्तु एक प्रकृतिवाले को जो अनुकूल आती है वह दूसरे को अनुकूल नहीं आती है, इस का मुख्य हेतु यही है कि–प्रकृति में भेद होता है, इस उदाहरण से न केवल प्रकृति में ही भेद सिद्ध होता है किन्तु वस्तुओं के स्वभाव का भी भेद सिद्ध होता है ।

जब मनुष्य स्वय अपनी प्रकृति को नहीं जान सकता है तब खान पान की वस्तु प्रकृति की परीक्षा कराने में सहायक हो सकती है, इस का दृष्टान्त यही हो सकता है कि–जिस समय दूसरी किसी रीति से रोग की परीक्षा नहीं हो सकती है तब चतुर वैद्य वा डाक्टर ठढे वा गर्म इलाज के द्वारा रोग का बहुत कुछ निर्णय कर सकते है तथा खान पान के पदार्थों के द्वारा प्रकृति की परीक्षा भी कर लेते हैं, जैसे–जब रोगी को गर्म वस्तु अनुकूल नहीं आती है तो समझ लिया जाता है कि इस की पित्त की प्रकृति है, इसी प्रकार ठंढी वस्तु के अनुकूल न आने से वायु की वा कफ की प्रकृति समझ ली जाती है ।

प्रकृति के मुख्य चार भेद हैं—वातप्रधान, पित्तप्रधान, कफप्रधान और रक्तप्रधान, इन चारों का परस्पर मेल होकर जब मिश्रित (मिले हुए) लक्षण प्रतीत होते है तब उसे मिश्रप्रकृति कहते हैं, अब इन चारों प्रकृतियों का वर्णन क्रम से करते है:—

वातप्रधान प्रकृति के मनुष्य—वातप्रधान प्रकृति के मनुष्य के शरीर के अवयव बड़े होते हैं परन्तु विना व्यवस्था के अर्थात् छोटे बडे और बेडौल होते है, उस का शिर शरीर से छोटा या बडा होता है, ललाट मुख से छोटा होता है, शरीर सूखा और रूखा होता है, उस के शरीर का रंग फीका और रक्तहीन (विना खून का) होता है, आखें काले रग की होती हैं, बाल मोटे काले और छोटे होते हैं, चमडी तेजरहित तथा रूखी होती है परन्तु स्पर्श का ज्ञान जल्दी कर लेती है, मास के लोचे करड़े होते हैं परन्तु बिखरे हुए होते है, इस प्रकृतिवाले मनुष्य की गति जल्दी चञ्चल और कापती हुई होती है, रुधिर की गति परिमाणरहित होती है इसलिये किसी का यदि शिर गर्म होता है तो हाथ पैर ठढे होते हैं और किसी का यदि शिर ठढा होता है तो हाथ पैर गर्म होते है, मन यद्यपि काम करने में प्रबल होता है परन्तु चञ्चल अर्थात् अस्थिर होता है, यह पुरुष काम और क्रोध आदि वैरियों के जीतने में अशक्त होता है, इस को प्रीति अप्रीति तथा भय जल्दी पैदा होता है, इस की न्याय और अन्याय के विचार करने में सूक्ष्मदृष्टि होती है परन्तु अपने न्याययुक्त विचार को अपने उपयोग में लाना उस को कठिन होता है, यह सब जीवन को अस्थिर अर्थात् चचल वृत्ति से गुजारता है, सब कामों में जल्दी करता है, उस के शरीर में रोग बहुत जल्दी आता है तथा उस (रोग)

का मिटना भी कठिन होता है, यह रोग का सहन भी नहीं कर सकता है, उस का रोग समय में चौगुना कष्ट दिखाई देता है, दूसरी प्रकृतिवाले का शरीर और मन ज्यों २ अवस्था आती जाती है त्यों २ शिथिल और मन्द पड़ता जाता है परन्तु वायुप्रधान प्रकृतिवाले का मन अवस्था के बढ़ने पर करड़ा और मजबूत होता जाता है, इस प्रकृतिवाले मनुष्य के अजीर्ण, मलकोष्ठ और अतीसार (दस्त) आदि पेट के रोग, शिर का दर्द, चसका, वातरक्त, फेफसे का वरम, क्षय और उन्माद आदि रोगों के होने का अधिक सम्भव होता है, इस प्रकृतिवाले मनुष्य की आयु शक्ति और धन थोड़ा होता है, इस प्रकृति के मनुष्य को तीखे चटपेट गमागम तथा खारी पदार्थों पर अधिक प्रीति होती है तथा खट्टे मीठे और ठंढे पदार्थों पर अप्रीति (अरुचि) होती है ॥

पित्तप्रधान प्रकृति के मनुष्य—पित्तप्रधान प्रकृति के मनुष्य के शरीर के सब अंग और उपांग खूब सूरत होते हैं, उस के शरीर के बन्धान अच्छे तथा मांस के छाने ढीले होते हैं, शरीर का रंग पिङ्गल होता है, बाल थोड़े करवरे होते हैं तथा जल्दी सफेद हो जाते हैं, शरीर पर थोड़ी २ फुनसियां हुआ करती हैं, उस को भूख प्यास जल्दी लगती है, उस के मुख शिर और बगल में से दुर्गन्ध आया करती है, इस प्रकृति का मनुष्य बुद्धिमान् और क्रोधी होता है, उस की आंख पेशाब तथा दस्त का रंग पीला होता है, वह साहसी उत्साही तथा क्लेश करने पर सहने की शक्तिवाला होता है, उस की आयु शक्ति द्रव्य और ज्ञान मध्यम दाब हैं, इस प्रकृतिवाले को अजीर्ण पित्त और हरस आदि रोगों के होने का अधिक सम्भव होता है, उस को मीठे तथा खट्टे रस पर अधिक प्रीति होती है तथा तीखे और खारी रस पर रुचि कम होती है ॥

कफप्रधानप्रकृति के मनुष्य—कफ प्रधानप्रकृति के मनुष्य का शरीर रमणीक भरा हुआ तथा मजबूत होता है, शरीर का तथा सब अवयवों का रंग सुन्दर होता है, चमड़ी कोमल होती है, बाल रमणीक होते हैं, रंग स्वच्छ होता है, उस की आंखें चिलकती (चमकती) हुई सफेद तथा भूसर रंग की होती हैं, दांत मैले तथा सफेद होते हैं, उस का स्वभाव गम्भीर होता है, उस में बल अधिक होता है, उसे नींद अधिक आती है, वह आहार थोड़ा करता है, उस की विचारशक्ति कोमल होती है, बोलने की शक्ति थोड़ी होती है, स्मरणशक्ति और विवेकबुद्धि अधिक होती है, उस के विचार न्याययुक्त होते हैं तथा व्यवहार अच्छे होते हैं, उस के शरीर की शक्ति से मन की शक्ति अधिक होती है, उस के शरीर की चाल मन्द होती है परन्तु मजबूत होती है, इस प्रकृति का मनुष्य प्रायः साफदिल धनवान् और लम्बीउम्रवाला होता है, उस के सामान्य कारण से रोग हो जाता है, कफ के रोग रस की वृद्धि होती है, उस का शरीर भारी और मदवाला होता है, उस के द्वारा अशक्ति बढ़ती है, उस का शरीर बहुत स्थूल होता

है, पेट की तोंद छिटक पड़ती है, उस के हाथ और सांधे वड़े तथा स्थूल होते है, मास के लोचे ढीले होते है, उस का चेहरा विरस और फीका होता है, उस का शरीर जैसा ऊपर से स्थूल दीखता है वैसी अन्दर ताकत नहीं होती है, निर्वलता; शोथ, जलवृद्धि और हाथी के समान पैरों का होना आदि इस प्रकृति के मुख्य रोग है, इस प्रकृतिवाले को तीखे और खारी पदार्थों पर अधिक प्रीति होती है तथा मीठे पदार्थों पर रुचि कम होती है ॥

रक्तप्रधान धातु के मनुष्य—वात पित्त और कफ, इन तीन प्रकृतियों के सिवाय जिस मनुष्य में रक्त अधिक होता है उस के ये लक्षण है—शरीर की अपेक्षा शिर छोटा होता है, मुँह चपटा तथा चौकोन होता है, ललाट वडा तथा वहुतों का पीछे की ओर से ढालू होता है, छाती चौड़ी गम्भीर और लम्वी होती है, खड़े रहने से नाभि पेटकी सपाटी के साथ मिल जाती है अर्थात् न वाहर और न अन्दर दीखती है, चरवी थोडी होती है, शरीर पुष्ट तथा खून से भरा हुआ खूवसूरत होता है, वाल नरम पतले और आटेदार होते है, चमड़ी करड़ी होती है तथा उस में से मास के लोचे दिखलाई देते हैं, नाड़ी पूर्ण और ताकतवर होती है, दाँत मजवूत तथा पीलापन लिये हुए होते है, पीने की चीज पर वहुत प्रीति होती है, पाचनशक्ति प्रवल होती है, मेहनत करने की शक्ति वहुत होती है, मानसिक वृत्ति कोमल तथा वुद्धि स्वाभाविक (स्वभावसिद्ध) होती है, इस प्रकार का मनुष्य सहनशील, सन्तोषी, लोगों का उपकार करनेवाला, वोलने में चतुर, सरलभाषी और साहसी होता है, वह हरदम न तो काम में लगा रहना चाहता है और न घर में वैठ कर समय को व्यर्थ में विताना चाहता है, इस मनुष्य के दाह, फेफसे का वरम, नजला, दाहज्वर; खून का गिरना, कलेजे का रोग और फेफसे का रोग होना अधिक सम्भव होता है, वह धूप का सहन नहीं कर सकता है ॥

यद्यपि जुदी २ प्रकृति की पहिचान करना कठिन है, क्योंकि वहुत से मनुष्यों की मूल प्रकृति दो दो दोषों से मिली हुई भी होती है तथा दोनों दोषों के लक्षण भी मिले हुए होते हैं तथापि एक प्रकृति के लक्षणों का ज्ञान होने के वाद लक्षणों के द्वारा दूसरी प्रकृति का जान लेना कुछ भी कठिन नहीं है।

यदि मनुष्य सूक्ष्म विचार कर देखे तो उस को यह भी मालूम हो जाता है कि— मेरी प्रकृति में अमुक दोष प्रधान है तथा अमुक दोष गौण अथवा कम है, इस प्रकार से जव प्रकृति की परीक्षा हो जाती है तव रोग की परीक्षा, उस का उपाय तथा पथ्यापथ्य का निर्णय आदि सव वातें सहज में वन सकती है, इस लिये वैद्य वा डाक्टर को सव से प्रथम प्रकृति की परीक्षा करनी चाहिये, क्योंकि यह अत्यावश्यक वात है।

१—सर्व साधारण को प्रकृति की परीक्षा इस ग्रन्थ के अनुसार प्रथम करनी चाहिये क्योंकि इस मे प्रकृति के लक्षणों का अच्छे प्रकार से वर्णन किया है, देखो! परिश्रम और यत्न करने से कठिनसे कठिन कार्य भी हो जाते हे, यदि लक्षणों के द्वारा प्रकृतिपरीक्षा मे सन्देह रहे तो रोगी से पूछ कर भी वैद्य वा डाक्टर परीक्षा कर सकते हैं ॥

दोष के और प्रकृति के आपस में कुछ सम्बन्ध है या नहीं ? यह एक बहुत ही आवश्यक प्रश्न है, इस का उत्तर यही है कि–दोष का प्रकृति के साथ अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध है अर्थात् जिस मनुष्य की प्रकृति में जो दोष प्रधान होता है वही दोष उस मनुष्य की प्रकृति कहा जाता है और बहुधा उस मनुष्य के उसी दोष के कोप से रोग होता है, जैसे–यदि कोई रोगी पुरुष वायुप्रधानप्रकृति का है तो उस के ज्वर आदि जो कोई रोग होगा वह (रोग) वायुरूप दोष के साथ विशेष सम्बन्ध रखनेवाला होगा, इसी प्रकार पित्त और कफ आदि के विषय में भी समझना चाहिये ।

अब स्याद्वादमत के अनुसार इस विषय में दूसरा पक्ष दिखलाते हैं—रोग सदा शरीर की मूल प्रकृति के ही अनुसार होता हो यही एकान्त निश्चय नहीं है, क्योंकि अनेक समयों में ऐसा भी होता है कि–रोगी की मूलप्रकृति पित्त की होती है और रोग का कारण वायु होता है, रोगी की प्रकृति वायु की होती है और रोग का कारण पित्त होता है, इस प्रकार बहुत से रोग ऐसे हैं जो कि प्रकृति से बिलकुल सम्बन्ध नहीं रखते हैं तो भी रोगी के रोग की परीक्षा करने में और उस का इलाज करने में रोगी की प्रकृति का ज्ञान होना बहुत ही उपयोगी है ॥

स्पर्शपरीक्षा ॥

शरीर के किसी भाग पर हाथ से अथवा दूसरे यन्त्र (औज़ार) से स्पर्श कर के दर्याफ्त करना कि इस के शरीर में गर्मी की; सर्दी की; खून की तथा श्वासोच्छ्वास की क्रिया कितने अन्दाजन है, इसी को स्पर्शपरीक्षा मानी है, इस परीक्षा में नाड़ीपरीक्षा, त्वचापरीक्षा, थर्मामेटर (शरीर की गर्मी मापने की नली) और स्टेथोस्कोप (छाती में लगाकर भीतरी विकार को दर्याफ्त करने की नली) का समावेश होता है ।

स्पर्शपरीक्षा का सब से पहिला तथा अच्छा साधन तो हाथ ही है, क्योंकि रोग की परीक्षा में हाथ बहुत सहायता देता है, देखो ! शरीर गर्म है, या ठंढा है, सुँहाला है, या खरखरा है, शरीर के अन्दर का अमुक भाग नरम है, पोला है, या कठिन है, या अन्दर के भाग में गांठ है, अथवा शोथ है, इत्यादि सब बातें हाथ के द्वारा स्पर्श करने से शीघ्र ही मालूम होजाती हैं, नाड़ीपरीक्षा भी हाथ से ही होती है जो कि रोग की परीक्षा का उत्तम साधन है, क्योंकि नाड़ी के देखने से शरीर में कितनी गर्मी या सर्दी है तथा कौन सा दोष कितने अंश में कुपित है इत्यादि बातों का ज्ञान शीघ्र ही हो जा सकता है, देखो ! अनुभवी वैद्य और हकीम अपने अनुभव और अभ्यास से शरीर की गर्मी को केवल नाड़ी पर अंगुलियां रखकर निस्सन्देह कह देते हैं अर्थात् थर्मामेटर जितना काम करता है लगभग उतना ही काम उन का चतुर हाथ और अनुभववाली अंगुलियां कर सकती हैं।

१–सब कुछ तो दोष का ही नाम तो प्रकृति है ॥

कुछ समय पूर्व स्पर्शपरीक्षा केवल हाथ के द्वारा ही होती थी परन्तु अब अन्वेषण (ढूँढ़ वा खोज) करनेवाले चतुर लोगों ने हाथ का काम दूसरे साधनों से भी लेना शुरू कर दिया है अर्थात् शरीर की गर्मी का माप करने के लिये बुद्धिमानों ने जो थर्मोमेटर यन्त्र बनाया है वह अत्यन्त प्रशसनीय है, क्योंकि इस साधन से एक साधारण आदमी भी स्वयमेव शरीर की गर्मी वा ज्वर की गर्मी का माप कर सकता है, हा इतनी त्रुटि इस में अवश्य है कि इस यन्त्र से केवल शरीर की साधारण गर्मी मालूम होती है किन्तु इस से दोषों के अंशांश का कुछ भी बोध नहीं होता है, इस लिये इस में चतुर वैद्यों के हाथ कई दर्जे इस की अपेक्षा प्रबल जानने चाहियें, बाकी तो रोगपरीक्षा में यह एक सर्वोपरि निदान है, इसी प्रकार हृदय में खून की चाल तथा श्वासोच्छ्वास की क्रिया को जानने के लिये स्टेथोस्कोप नाम की नली भी बुद्धिमान् पश्चिमीय विद्वानों ने बनाई है, यह भी हाथ का काम करती है तथा कान को सहायता देती है, इस लिये यह भी प्रशसा के योग्य है, तात्पर्य यह है कि–स्पर्शपरीक्षा चाहे हाथ से की जावे चाहे किसी यन्त्रविशेष के द्वारा की जावे उस का करना अत्यावश्यक है, क्योंकि रोगपरीक्षा का प्रधान कारण स्पर्शपरीक्षा है, अतः क्रम से स्पर्श परीक्षा के अंगों का वर्णन संक्षेप से किया जाता है.—

नाड़ीपरीक्षा—हृत्पिण्ड की गति के द्वारा हृदय में से खून बाहर धक्का खाकर धोरी नसों में जाता है, इस से उन नसो में खटका हुआ करता है और उन्ही खटकों से खून का न्यूनाधिक होना तथा वेग से फिरना मालूम होता है, इसी को नाडीज्ञान कहते है, इस नाड़ीज्ञानसे रोग की भी कुछ परीक्षा हो सकती है, यद्यपि किसी भी धोरी नस के ऊपर अगुली के रखने से नाडीपरीक्षा हो सकती है तथापि रोगका अधिक निश्चय करने के लिये हाथ के अंगूठे के नीचे नाडी को देखते हैं, हाथ के पहुँचे के आगे दो कठिन डोरी के समान नसें है, गोरी चमडीवाले तथा पतले शरीरवाले पुरुषों के ये रगें स्पष्ट दिखाई देती है, उन में से अंगूठे की तरफ की डोरी के समान जो नाडी है उसपर बाहर की तरफ हाथ की दो वा तीन अगुलियों के रखने से अँगुली के नीचे खट २ होता हुआ शब्द मालूम पड़ता है, उन्हीं खटकों को नाडी का ठनाका तथा चाल कहते हैं, नाड़ी की इसी धीमी वा तेज चाल के द्वारा चतुर वैद्य अंगुलिया रखकर शरीर की गर्मी शर्दी रुधिर की गति तथा ज्वर आदि बातों का ज्ञान कर सकता है।

नाडीपरीक्षा की साधारण रीति यह है कि–एक घड़ी को सामने रख कर एक हाथ से नाडी को देखना चाहिये अर्थात् हाथ की दो या तीन अगुलियो को नाडीपर रखकर यह देखना चाहिये कि नाडी एक मिनट में कितने ठपके देती है, एक साधारण पुरुष की नाडी एक मिनट में ११० ठपके दिया करती है, क्योंकि हृदय में शुद्ध खून का

एक हौद है वह एक मिनट में ११० वार ढीला तथा तंग होता है और खून को धक्का मारता है परन्तु नीरोग शरीर में अवस्था के भेद से नाड़ी की गति भिन्न २ होती है, जिसका वर्णन इस प्रकार है—

संख्या ।	अवस्थाभेद ।	एक मिनटमें नाड़ी की गति का क्रम ॥
१	बालक के गर्भस्थ होनेपर ॥	१४० से १५० वार ॥
२	तुरत जन्मे हुए बालक की नाड़ी ॥	१३० से १४० वार ॥
३	पहिले वर्ष में ॥	११५ से १३० वार ॥
४	दूसरे वर्ष में ॥	१०० से ११५ वार ॥
५	तीसरे वर्ष में ॥	९५ से १०५ वार ॥
६	चार से सात वर्षतक ॥	९० से १०० वार ॥
७	आठ से चौदह वर्षतक ॥	८० से ९० वार ॥
८	पन्द्रह से इक्कीस वर्षतक ॥	७५ से ८५ वार ॥
९	बाईस से पचास वर्षतक ॥	७० से ७५ वार ॥
१०	बुढापे में ॥	७५ से ८० वार ॥

नाड़ीज्ञान में समझने योग्य बातें—१–हमारे कुछ शास्त्रों में तथा आधुनिक ग्रन्थों में नाड़ी का हिसाब पलों पर लिखा है, उस हिसाब से इस हिसाब में थोड़ा सा फर्क है, यह हिसाब जो लिखा गया है वह विद्वान् डाक्टरों का निश्चय किया हुआ है परन्तु बहुत प्राचीन वैद्यक ग्रन्थों में नाड़ीपरीक्षा कहीं भी देखने में नहीं आती है, इस से यह निश्चय होता है कि—यह परीक्षा पीछे से देशी वैद्यों ने अपनी बुद्धि के द्वारा निकाली है तथा उस को देखकर यूरोपियन विद्वान् डाक्टरों ने पूर्वोक्त हिसाब लगाया है, परन्तु यह हिसाब सर्वत्र ठीक नहीं मिलता है, क्योंकि जाति और स्थिति के भेद से इस में फर्क पड़ता है, देखो ! ऊपर के कोठे में नीरोग बड़े आदमी की नाड़ी की चाल एक मिनट में ७० से ७५ वारतक धड़कती है परन्तु इतनी ही अवस्थावाली नीरोग स्त्री की नाड़ी की चाल धीमी होती है अर्थात् पुरुष की अपेक्षा स्त्री की नाड़ी की चालें दश बारह कम होती हैं, इसी प्रकार स्थिति के भेद से भी नाड़ी की गति में भेद होता है, देखो ! खड़े हुए पुरुष की अपेक्षा बैठे हुए पुरुष की नाड़ी की चाल धीमी होती है और नींद में इस से भी अधिक धीमी होती है, एवं कसरत करने, दौड़ने, चलने तथा परिश्रम का काम करते हुए पुरुष की नाड़ी की चाल बढ़ जाती है, इस से स्पष्ट है कि नाड़ी की गति का कोई निश्चित हिसाब नहीं है किन्तु इस का यथार्थ ज्ञान अनुभवी पुरुषों के अनुभव पर ही निर्भर है। २–चतुर वैद्य वा हकीम को दोनों हाथों की नाड़ी देखनी चाहियें, क्योंकि कभी २ एक हाथ की डोरी नस अपनी हमेशा की जगह को छोड़ कर

हाथ के पीछे की तरफ से अंगूठे के नीचे के साधे के आगे चली जाती है उस से नाड़ी देखनेवाले के हाथ में नहीं लगती है तब देखनेवाला घवड़ाता है परन्तु यदि शरीर में खून फिरता होगा तो एक हाथ की नाडी हाथ में न लगी तो भी दूसरे हाथ की नाडी तो अवश्य ही हाथ में लगेगी, इस लिये दोनो हाथो की नाडी को देखना चाहिये। ३–हाथ पर अथवा हाथ के पहुँचे पर कोई पट्टी डोरा वा वाजूवंद आदि वॅधा हुआ हो तो नाडी का ठीक ज्ञान नहीं होता है, क्योंकि बाधने से धोरी नस में खून ठीक रीति से आगे नहीं चल सकता है, इसलिये वन्धन को खोल कर नाड़ी देखनी चाहिये। ४–यदि हाथ को शिर के नीचे रख कर सोता हो तो हाथ को निकाल कर पीछे नाड़ी को देखना चाहिये। ५–डरपोक आदमी किसी डर से वा डाक्टर को देख कर जब डर जाता है तब उस की नाड़ी जलदी चलने लगती है इस लिये ऐसे आदमी को दम दिलासा देकर उस का दिल ठहरा कर अथवा वातों में लगाकर पीछें नाडी को देखना चाहिये, क्योंकि ऐसा करने पर ही नाडी के देखने से ठीक रीति से नाडी का ज्ञान होगा। ६–आदमी को वैठाकर वा सुलाकर उस की नाडी को देखना चाहिये। ७–परिश्रम किये हुए पुरुष की तथा मार्ग में चलकर तुरत आये हुए पुरुष की नाड़ी को थोड़ीदेरतक वैठने देकर पीछे देखना चाहिये। ८–वहुत खूनवाले पुरुष की नाड़ी वहुत जलदी और जोर से चलती है। ९–प्रातःकाल से सन्ध्यासमय की नाडी धीमी चलती है[1]। १०–भोजन करने के वाद नाडी का वेग वढ़ता है तथा मद्य चाह और तमाखू आदि मादक और उत्तेजक वस्तु के खाने के पीछे भी नाडी की चाल वढ़ जाती है।

इस प्रकार जब नीरोग मनुष्यों की नाडी में भी भिन्न २ स्थितियों और भिन्न २ समयों में अन्तर मालूम पड़ता है तो वीमारों की नाडी में अन्तर के होने में आश्चर्य ही क्या है, इस लिये नाडीपरीक्षा में इन सब वातों[2] को ध्यान में रखना चाहिये।

नाड़ी में दोषों का ज्ञान—नाडी में दोषो के जानने के लिये इस दोहे को कण्ठ रखना चाहिये—

तर्जनि मध्य अनामिका, राखु अंगुली तीन ॥
कर अँगूठ के मूल सों, वात पित्त कफ चीन ॥ १ ॥

अर्थात् हाथ में अँगूठे के मूल से तर्जनी[3] मध्यमा[4] और अनामिका[5], ये तीन अंगुलियां

१–क्योंकि दिनभर कार्य कर चुकने से सन्ध्यासमय मनुष्य श्रान्त (थका हुआ) हो जाता है और श्रान्त पुरुष की नाडी का धीमा होना स्वाभाविक ही है ॥

२–जिन को ऊपर लिख चुके हैं ॥

३–तर्जनी अर्थात् अगूठे के पासवाली अगुली ॥

४–मध्यमा अर्थात् वीच की अगुली ॥

५–अनामिका अर्थात् कनिष्ठिका (छगुनिया) के पासवाली अगुली ॥

नाड़ी परीक्षामें लगानी चाहियें और उन से क्रम से वात पित्त और कफ को पहिचानना चाहिये ॥

नाड़ीपरीक्षा का निषेध—जिन २ समयों में और जिन २ पुरुषों की नाड़ी नहीं देखनी चाहिये, उन के स्मरणार्थ इन दोहों को कण्ठ रखना चाहिये—

> तुरत नहाया जो पुरुष, अथवा सोया होय ॥
> क्षुधा तृषा जिस को लगी, या तपसी जो कोय ॥ १ ॥
> व्यायामी अरु थकित तन, इन में जो कोउ आहि ॥
> नाड़ी देखे वैद्य जन, समुझि परै नहिं ताहि ॥ २ ॥

अर्थात् जो पुरुष शीघ्र ही स्नान कर चुका हो, शीघ्र ही सोकर उठा हो, जिस को भूख वा प्यास लगी हो, जो तपश्चर्या में लगा हो, जो शीघ्र ही व्यायाम (कसरत) कर चुका हो और जिस का शरीर परिश्रम के द्वारा थक गया हो, इतने पुरुषों की नाड़ी उक्त समयों में नहीं देखनी चाहिये, यदि वैद्य वा डाक्टर इन में से किसी पुरुष की नाड़ी देखेगा तो उस को उक्त समयों में नाड़ी का ज्ञान यथार्थ कभी नहीं होगा।

स्मरण रखना चाहिये कि नाड़ीपरीक्षा के विषय में चरक सुश्रुत तथा विद्वान् ब्राह्मणों के बनाये हुए प्राचीन वैद्यक ग्रन्थों में कुछ भी नहीं लिखा है, इसी प्रकार प्राचीन जैन गुरु (वैद्य) पण्डित वाग्भट्ट ने भी नाड़ीपरीक्षा के विषय में अष्टाङ्गहृदय (वाग्भट्ट) में कुछ भी नहीं लिखा है, तात्पर्य यही है कि—प्राचीन वैद्यक ग्रन्थों में नाड़ीपरीक्षा नहीं है किन्तु पिछले बुद्धिमान् वैद्योंने यह युक्ति निकाली है जैसा कि हम प्रथम लिख चुके हैं, हां बेशक श्रीमज्जैनाचार्य हर्षकीर्तिसूरिकृत योगचिन्तामणि आदि कई एक प्रामाणिक वैद्यक ग्रन्थों में नाड़ीपरीक्षा का वर्णन है, उस को हम यहां भाषा छन्द में प्रकाशित करते हैं—

१—तात्पर्य यह है कि तर्जनी अंगुली के नीचे जो नाड़ी का उपका हो उस से वात की गति को पहिचाने मध्यमा अंगुलि के नीचे जो नाड़ी का ठपका हो उस से पित्त की गति को पहिचाने तथा अनामिका अंगुलि के नीचे जो नाड़ी का ठपका हो उस से कफ की गति को पहिचाने देखो वैद्यक शास्त्रों में नाड़ीपरीक्षा का यही क्रम (जो ऊपर कहा गया है) लिखा है, क्योंकि उक्त शास्त्रों का यही सिद्धान्त है कि—अंगूठे के मूल में जो तर्जनी आदि तीन अंगुलियां बराबर रक्खी जाती हैं उन में से प्रथम (तर्जनी) अंगुली के नीचे वायु की नाड़ी है, दूसरी (मध्यमा) अंगुली के नीचे पित्त की नाड़ी है तथा तीसरी (अनामिका) अंगुलि के नीचे कफ की नाड़ी है, जिस प्रकार उक्त तीनों अंगुलियों के द्वारा उक्त तीनों दोषों की गति का बोध होता है उसी प्रकार से उक्त अंगुलियों के ही द्वारा मिश्रित दोषों की गति का भी बोध हो सकता है, जैसे—वातपित्त की नाड़ी तर्जनी और मध्यमा के नीचे चलती है, वातकफ की नाड़ी अनामिका और तर्जनी के नीचे चलती है, पित्तकफ की नाड़ी मध्यमा और अनामिका के नीचे चलती है तथा सन्निपात की नाड़ी तीनों अंगुलियों के बीच चलती है ॥

दोहा—वात वेग पर जो चलै, सांप जोंक ज्यों कोय ॥
पित्तकोप पर सो चले, काक मेंडुकी होय ॥ १ ॥
कफ कोपे तव हंसगति, अथवा गति कापोत ॥
तीन दोष पर चलत सो, तित्तर लव ज्यों होत ॥ २ ॥
टेढ़ी ह्वै उछलत चलै, वात पित्त पर नारि ॥
टेढ़ी मन्दगती चलै, वात सलेषम कारि ॥ ३ ॥
प्रथम उछल पुनि मन्दगति, चले नाड़ि जो कोय ॥
तौ जानो तिस देह में, कोप पित्त कफ होय ॥ ४ ॥

सोरठा—कवहुँ मन्दगति होय, नारी सो नाड़ी चले ॥
कवहुँ शीघ्र गति सोय, दोष दोय तव जानिये ॥ ५ ॥

दोहा—ठहर ठहर कर जो चले, नाड़ी मृत्यु दिखात ॥
पति वियोग ते ज्यों प्रिया, शिर धूनत पछितात ॥ ६ ॥
अति हि क्षीणगति जो चले, अति शीत तर होय ॥
तौ पति की गति नाश की, प्रकट दिखावत सोय ॥ ७ ॥
काम क्रोध उद्वेग भय, वसैं चित्त जिह चार ॥
ताहि वैद्य निश्चय धरै, चलत जलद गति नार ॥ ८ ॥

छप्पय—धातु क्षीण जिस होय मन्द वा अगनी या की ।
तिस की नाड़ी चलत मन्द ते मन्दतरा की ॥

१–दोहों का सक्षेप में अर्थ—वातवेगवाली नाडी साप और जोंक के समान टेढी चलती है, पित्तवेगवाली नाडी–काक और मेंडुकी के समान चलती है ॥ १ ॥ कफवेगवाली नाडी–हस और कवूतर के समान चलती है, तीनों दोपोंवाली अर्थात् सन्निपातवेगवाली नाडी–तीतर तथा लव (वटेर) के समान चलती है ॥ २ ॥ वातपित्तवेगवाली नाडी—टेढी तथा उछलती हुई चलती है, वातकफवेगवाली नाडी—टेढी तथा मन्द २ चलती है ॥ ३ ॥ प्रथम उछले पीछे मन्द २ चले तो शरीर मे पित्त कफ का कोप जानना चाहिये ॥ ४ ॥ कभी मन्द २ चले तथा कभी शीघ्र गति से चले, उस नाडी को दो दोपोंवाली समझना चाहिये ॥ ५ ॥ जो नाडी ठहर २ कर चले, वह मृत्युको सूचित करती है, जैसे कि पति के वियोग से स्त्री शिर धुनती और पछताती है॥६॥ जो नाडी अत्यन्त क्षीणगति हो तथा अत्यत शीत हो तो वह स्वामी (रोगी) के नाश की गति को दिखलाती है ॥ ७ ॥ जिस के हृदय मे काम क्रोध उद्वेग और भय होते हैं उस की नाडी शीघ्र चलती है, यह वैद्य निश्चय जान ले ॥ ८ ॥ जिस की धातु क्षीण-हो अथवा जिस की अग्नि मन्द हो उस की नाडी अति मन्द चलती है, जो नाडी तप्त और भारी चलती हो उस से रुधिर का विकार समझना चाहिये, भारी नाडी सम चलती है, वलवती नाडी स्थिर रूप से चलती है, भूख से युक्त पुरुष की नाडी चपल तथा भोजन किये हुए पुरुष की नाडी स्थिर होती है ॥ ९ ॥

चपल तौन तन चलत जान सी भारी नारी।
ताहि वैद्य मन धरें तौन सी रुधिर बुखारी॥
भारी नाड़ी सम चले स्थिरा चलचली जान।
क्षुधावन्त नाड़ी चपल स्थिरा तृप्तिमय मान॥ ९॥

१–वायु की नाड़ी—साँप तथा जोंक की तरह बांकी (टेढ़ी) चलती है।

२–पित्त की नाड़ी—कौवा वा मेंडक की तरह कूदती हुई शीघ्र चलती है।

३–कफ की नाड़ी—हंस कबूतर मोर और मुर्ग की तरह धीरे २ चलती है।

४–वायुपित्त की नाड़ी—सांप की तरह टेढ़ी तथा मेंडक की तरह कूदती हुई चलती है।

५–वातकफ की नाड़ी—सांप की तरह टेढ़ी तथा हंस की तरह धीरे २ चलती है।

६–पित्तकफ की नाड़ी—कौए की तरह कूदती तथा मोर की तरह मंद चलती है।

७–सन्निपात की नाड़ी—लकड़ी चहरने की करवत की तरह वा तीतर पक्षी की तरह चलती २ अटक जाती है, फिर चलती है फिर अटकती है, अथवा दो तीन कुदके मार कर फिर अटक जाती है, इस प्रकार त्रिदोष (सन्निपात) की नाड़ी विचित्र होती है॥

विशेष विवरण—१–धीमी पड़ कर फिर सरसर (शीघ्र २) चलने लगे उस नाड़ी को दो दोषों की जाने। २–जो नाड़ी अपना स्थान छोड़ दे, जो नाड़ी ठहर २ कर चले, जो नाड़ी बहुत क्षीण हो तथा जो नाड़ी बहुत ठंढी पड़ जावे, यह चार तरह की नाड़ी प्राणघातक है। ३–बुखार की नाड़ी गर्म होती है तथा बहुत जल्द चलती है। ४–चिन्ता तथा डर की नाड़ी मन्द पड़ जाती है। ५–कामज्वर और क्रोधज्वर की नाड़ी जल्दी चलती है। ६–जिस का खून बिगड़ा हो उस की नाड़ी गर्म तथा पत्थर के समान जड़ और भारी होती है। ७–आम के दोष की नाड़ी बहुत भारी चलती है। ८–गर्भवती की नाड़ी गहरी पुष्ट और हलकी चलती है। ९–मन्दाग्नि धातुक्षीणता और नींद से युक्त तथा नींद से तुरत उठे हुए आलसी और सुखी, इन सब की नाड़ी स्थिर चलती है। १०–अतिक्षुधायुक्त की नाड़ी चंचल चलती है। ११–जिसको बहुत दस्त लगते हों उस की नाड़ी बहुत जल्दी चलती है। १२–भोजन के बाद नाड़ी धीमी चलती है। १३–जो नाड़ी टूट २ कर चले, क्षण में धीमी तथा क्षण में जल्दी चले, बहुत जल्दी चले, लकड़ के समान कड़ी, स्थिर और टेढ़ी चले बहुत गर्म चले तथा अपने ठिकाने पर चलती २ मन्द हो जावे, ये सब तरह की नाड़ियां मरणकाल के चिन्ह को दिखानेवाली हैं॥

डाक्टरों के मत से नाड़ीपरीक्षा—हमारे बहुत से देशी मनुष्य तथा भोले वैद्यजन ऐसा कहते है कि—"डाक्टर लोगो को नाडी का ज्ञान नहीं होता है और वे नाड़ी को देखते भी नहीं है" इत्यादि, सो उन का यह कथन केवल मूर्खता का है, क्योकि डाक्टर लोग नाडी को देखते है तथा नाडीपरीक्षा पर ही अनेक बातो का आधार समझते है, जिस तरह से बहुत से तवीब नाडीपरीक्षा में बहुत गहरे उतरते है (बहुत अनुभवी होते हैं) और नाडी पर ही बहुत सा आधार रख नाड़ीपरीक्षा के अनुभव से अनेक बातें कह देते है और उन की वे बातें मिल जाती है तथा जैसे देशी वैद्य जुदे २ वेगों की—नाड़ी के वायु की पित्त की कफ की और त्रिदोष की इत्यादि नाम रखते है, इसी तरह डाक्टरी परीक्षा में जल्दी, धीमी, भरी, हलकी, सख्त, अनियमित और अन्तरिया, इत्यादि नाम रक्खे गये है तथा जुदे २ रोगो में जो जुदी २ नाड़ी चलती है उस की परीक्षा भी वे लोग करते है, जिस का वर्णन सक्षेप से इस प्रकार है:—

१—**जल्दी नाड़ी**—नीरोगस्थिति में नाडी के वेग का परिमाण पूर्व लिख चुके है, नीरोग आदमी की दृढ़ अवस्था की नाड़ी की चाल ७५ से ८५ वारतक होती है, परन्तु बीमारी में वह चाल बढ़ कर १०० से १५० वारतक हो जाती है, इस तरह नाडी का वेग बहुत बढ जाता है, इस को जल्दी नाडी कहते हैं, यह नाडी क्षयरोग, लू का लगना और दूसरी अनेक प्रकार की निर्बलताओं में चलती है, झडपवाली नाडी के सग हृदय का धवकारा बहुत जोर से चलता है और नाडी की चाल हृदय के धवकारों पर ही विशेष आधार रखती है, इस लिये ज्यों २ नाडी की चाल जल्दी २ होती जाती है त्यों २ रोग का ज़ोर बहुत बढता जाता है और रोगी का हाल बिगडता जाता है, बुखार की नाडी भी जल्दी होती है तथा ज्वरार्त्त (ज्वर से पीडित) रोगी का अग गर्म रहता है, एव सादा बुखार, आन्तरिक ज्वर, सन्निपात ज्वर, सांधों का सख्त दर्द, सख्त खासी, क्षय, मगज़, फेफसा, हृदय, होजरी और आतें आदि मर्म स्थानों का शोथ, सख्त मरोडा, कलेजे का पकना, आंख तथा कान का पकना, प्रमेह और सख्त गर्मी की टाकी आदि रोगों की दशा में भी जल्दी नाडी ही देखी जाती है।

२—**धीमी नाड़ी**—नीरोगावस्था में जैसी नाड़ी चाहिये उस की अपेक्षा मन्द चाल से चलनेवाली नाडी को धीमी नाडी कहते है, जैसे—ठढ, श्रान्ति, क्षुधा, दिलगीरी, उदासी, मगज की कई एक बीमारिया (जैसे मिरगी वेशुद्धि आदि) और तमाम रोगों की अन्तिम दशा में नाडी बहुत धीमी चलती है।

३–भरी नाड़ी—जिस प्रकार नाड़ीपरीक्षा में अंगुलियों को नाडी का वेग अर्थात् चाल मालूम देती है उसी प्रकार नाडी का वजन अथवा कद भी मालूम होता है, यह वजन अथवा कद जब आवश्यकता से अधिक बढ़ जाता है तब उस को भरी नाड़ी अथवा बड़ी नाड़ी कहते हैं, जैसे—खून के भराव में, पौरुष की दशा में, बुखार में तथा वरम में नाड़ी भरी हुई मालूम देती है, इस भरीहुई नाड़ी से ऐसी हालत मालूम होती है कि शरीर में खून पूरा और बहुत है, जिस प्रकार नदी में अधिक पानी के आने से पानी का जोर बढ़ता है उसी प्रकार खून के भराव से नाड़ी भरीहुई लगती है।

४–हलकी नाड़ी—थोड़े खूनवाली नाड़ी को छोटी या हलकी कहते हैं, क्योंकि अंगुलि के नीचे ऐसी नाड़ी का कद पतला अर्थात् हलका लगता है, जिन रोगों में किसी द्वार से खून बहुत चला गया हो या जाता हो ऐसे रोगों में, बहुत से पुराने रोगों में, हैजे में तथा रोग के जाने के बाद निर्बलता में नाड़ी पतली सी मालूम देती है, इस नाड़ी से ऐसा मालूम हो जाता है कि इस के शरीर में खून कम है या बहुत कम हो गया है, क्योंकि नाड़ी की गति का मुख्य आधार खून ही है, इस लिये खून के ही वजन से नाड़ी के ४ वर्ग किये जाते हैं—भरीहुई, मध्यम, छोटी वा पतली और बेमालूम, खून के विशेष जोर में भरीहुई, मध्यम खून में मध्यम तथा थोड़े खून में छोटी या पतली नाड़ी होती है, एवं हैजे के रोग में खून बिलकुल नष्ट होकर नाड़ी अंगुली के नीचे कठिनता से मालूम पड़ती है उस को बेमालूम नाड़ी कहते हैं।

५–सख्त नाड़ी—जिस धोरी नस में होकर खून बहता है उस के भीतरी पड़त की तांतों में सकुचित होने की शक्ति अधिक हो जाती है, इस लिये नाड़ी सख्त चलती है, परन्तु जब वही सकुचित होने की शक्ति कम हो जाती है तब नाड़ी नरम चलती है, इन दोनों की परीक्षा इस प्रकार से है कि नाड़ीपर तीन अंगुलियों को रख कर ऊपर की (तीसरी) अंगुलि से नाड़ी को दबाते समय यदि बाकी की (नीचे की) दो अंगुलियों को धड़का लगे तो समझना चाहिये कि नाड़ी सख्त है और दोनों अंगुलियों को धड़का न लगे तो नाड़ी को नरम समझना चाहिये।

६–अनियमित नाड़ी—नाड़ी की परिमाण के अनुकूल चाल में यदि उस के दो ठनकों के बीच में एक सदृश समयविभाग चला जावे तो उसे नियमित नाड़ी (कायदे के अनुसार चलनेवाली नाड़ी) जानना चाहिये, परन्तु जिस समय कोई रोग हो और नाड़ी नियमविरुद्ध (बेकायदे) चले अर्थात् समय विभाग ठीक न चलता हो (एक ठनका जल्दी आवे और दूसरा अधिक देरतक ठहर कर आवे) उस नाड़ी को अनियमित नाड़ी समझना चाहिये, जब ऐसी (अनियमित) नाड़ी चलती है तब

प्रायः इतने रोगों की शंका होती है—हृदय का दर्द, फेफसे का रोग, मगज़ का रोग, सन्निपातज्वर, सुवा रोग और शरीर का अत्यन्त सड़ना, इस नाड़ी से उक्त रोगों के सिवाय अन्य भी कई प्रकार के अत्यन्त भयकर स्थितिवाले रोगों की सम्भावना रहती है।

७–**अन्तरिया नाड़ी**—जिस नाड़ी के दो तीन ठनके होकर वीच में एकाध ठनके जितनी नागा पडे अर्थात् ठवका ही न लगे, फिर एकदम दो तीन ठवके होकर पूर्ववत् (पहिले की तरह) नाडी वद पड़ जावे और फिर वारंवार यही व्यवस्था होती रहे वह अन्तरिया नाड़ी कहलाती है, जव हृदय की वीमारी में खून ठीक रीति से नहीं फिरता है तव वडी धोरी नस चौडी हो जाती है और मगज का कोई भाग विगड जाता है तव ऐसी नाड़ी चलती है ॥

डाक्टर लोग प्रायः नाड़ी की परीक्षा में तीन वातों को ध्यान में रखते है वे ये हैं—

१–नाड़ी की चाल जल्दी है या धीमी है। २–नाडी का कद वड़ा है या छोटा है। ३–नाड़ी सख्त है या नरम है।

खूनवाले जोरावर आदमी के वुखार में, मगज के शोथ में कलेजे के रोग में और गँठियावायु आदि रोगों में जल्दी, वहुत वडी और सख्त नाड़ी देखने में आती है, ऐसी नाड़ी यदि वहुत देरतक चलती रहे तो जान को जोखम आ जाती है, जव वुखार के रोग में ऐसी नाड़ी वहुत दिनोंतक चलती है तव रोगी के वचने की आशा थोड़ी रहती है, हा यदि नाडी की चाल धीरे २ कम पड़ती जावे तो रोगी के सुधरने की आशा रहती है, प्रायः यह देखा गया है कि—फश्त खोलने से, जोंक लगाने से, अथवा अपने आप ही खून का रास्ता होकर जब वढ़ा हुआ खून निकल जाता है तो नाड़ी सुधर जाती है, निर्वल आदमी को जव वुखार आता है अथवा शरीरपर किसी जगह सूजन आ जाती है तव उतावली छोटी और नरम नाड़ी चलती है, जव खून कम होता है, आतों में शोथ होता है तथा पेट के पड़दे पर शोथ होता है तव जल्दी छोटी और सख्त नाड़ी चलती है, यह नाड़ी यद्यपि छोटी तथा महीन होती है परन्तु बहुत ही सख्त होती है, यहातक कि अंगुलि को तार के समान महीन और करड़ी लगती है, ऐसी नाड़ी भी खून का जोर वतलाती है॥

नाडी के विषय में लोगों का विचार—केवल नाड़ी के देखने से सब रोगों की सम्पूर्ण परीक्षा हो सकती है ऐसा जो लोगों के मनों में हद से ज्यादा विश्वास जम गया है उस से वे लोग प्रायः ठगाये जाते हैं, क्योंकि नाड़ी के विषय में झूंठा फाका मारने-वाले धूर्त वैद्य और हकीम अज्ञानी लोगों को अपने वचनजाल में फँसाकर उन्हें मन माना ठगते हैं, इन धूर्त्तोंने यहातक लीला फैलाई है कि जिस से नाड़ीपरीक्षा के विषय

में अनेक अद्भुत और असम्भव बातें प्रायः सुनी जाती हैं, जैसे—हाथ में कच्चा सूत का तागा बांधकर सब हाल कह देना इत्यादि, ऐसी बातों में सत्य किञ्चिन्मात्र भी नहीं होता है किन्तु केवल झूठ ही होता है, इस लिये सुजनों को उचित है कि धूर्तों के बनावटी जाल से बचकर नाड़ीपरीक्षा के यथार्थ तत्त्व को समझें।

इस ग्रन्थ में जो नाड़ीपरीक्षा का विवरण किया है वह नाड़ीज्ञान के सच्चे अभिलाषियों और अभ्यासियों के लिये बहुत उपयोगी है, क्योंकि इस ग्रन्थ में किये हुए विवरण के अनुसार कुछ समयतक अभ्यास और अनुभव होने से नाड़ीपरीक्षा के सूक्ष्म विचार और रोगपरीक्षा की बहुत सी आवश्यक कूंचियां भी मिल सकती हैं, इस लिये विद्वानों की लिखीहुई नाड़ीपरीक्षा अथवा उन्हीं के सिद्धान्त के अनुकूल इस ग्रन्थ में वर्णित नाड़ीपरीक्षा का ही अभ्यास करना चाहिये किन्तु नाड़ीपरीक्षा के विषय में जो धूर्तों ने अत्यन्त झूठी बातें प्रसिद्ध कर रक्खी हैं उनपर बिलकुल ध्यान नहीं देना चाहिये, देखो! धूर्तों ने नाड़ीपरीक्षा के विषय में कैसी २ मिथ्या बातें प्रसिद्ध कर रक्खी हैं कि रोगी ने छ महीने पहिले अमुक साग खाया था, कल अमुक ने ये २ चीजें खाई थीं, इत्यादि, कहिये ये सब गप्पें नहीं तो और क्या हैं?

बहुत से हकीमसाहबों ने और वैद्यों ने नाड़ी की हद्द से ज्यादा महिमा बढा रक्खी है तथा असम्भव और घड़ीहुई गप्पों को लोगों के दिलों में जमा दी हैं, ऐसे भोले लोगों का जब कभी डाक्टरी चिकित्साके द्वारा रोग का मिटना कठिन होता है अथवा देरी लगती है तब वे मूर्ख लोग डाक्टरों की बेवकूफी को प्रकट करने लगते हैं और कहते हैं कि—"डाक्टरों को नाड़ीपरीक्षा का ज्ञान नहीं है" पीछे वे लोग देशी वैद्य के पास आकर कहते हैं कि—"हमारी नाड़ी को देखो, हमारे शरीर में क्या रोग है, हम वैद्य उसी को समझते हैं कि—जो नाड़ी देखकर रोग को बतला देवे" ऐसी दशा में जो सत्यवादी वैद्य होता है वह तो सत्य २ कह देता है कि—"भाइयो! नाड़ीपरीक्षा से तुम्हारी प्रकृति की कुछ बातों को तो हम समझ लेंगे परन्तु तुम अपनी जबान से आसिरतक जो २ हकीकत बीती है और जो हकीकत है वह सब साफ २ कह दो कि किस कारण से रोग हुआ है, रोग कितने दिनों का हुआ है, क्या २ दवा की थी और क्या २ पथ्य खाया पिया था, क्योंकि तुम्हारा यह सब हाल विदित होने से हम रोग की परीक्षा कर सकेंगे" यद्यपि विद्वान् तथा चतुर वैद्य नाड़ी को देखकर रोगी के शरीर की स्थिति का बहुत कुछ अनुमान तो सर्व कर सकते हैं तथा वह अनुमान प्रायः सच्चा भी निकलता है तथापि वे (विद्वान् वैद्य) नाड़ीपरीक्षा पर अतिशय श्रद्धा रखनेवाले अज्ञान लोगों के सामने अपनी परीक्षा देकर आपनी कीमत नहीं करना चाहते हैं, परन्तु

१—अर्थात् केवल नाड़ी देखकर सब वृत्तान्त कह कर ॥ २—कीमत अर्थात् बेकदरी ॥

ऐसे भोले तथा नाडीपरीक्षापर ही परम श्रद्धा रखनेवाले जब किन्ही धूर्त चालाक और पाखण्डी वैद्यों के पास जाते है तो वे (वैद्य) नाडी देखकर बड़ा आडम्बर रचकर दो बातें वायु की दो बातें पित्त की तथा दो बातें कफ की कह कर और पाच[1] पच्चीस बातों की गप्पें इधर उधर की हकालते[2] है, उस समय उनकी बातों में से थोडी बहुत बातें रोगी के बीतेहुए अहवालों[3] से मिल ही जाती है तब वे भोले अज्ञान तथा अत्यन्त श्रद्धा रखनेवाले बेचारे रोगीजन उन ठगो से अत्यन्त ठगाते है और मन में यह जानते हैं कि–संसार भर में इन के जोडे[4] का कोई हकीम नही है, बस इस प्रकार वे विद्वान् वैद्यों और डाक्टरोंको छोड़कर ढोंगी तथा धूर्त वैद्यों के जाल में फँस जाते है।

प्रिय पाठकगण! ऐसे धूर्त वैद्यों से बचो! यदि कोई वैद्य तुम्हारे सामने ऐसा घमण्ड करे कि–मैं नाडी को देखकर रोग को बतला सकता हूँ तो उस की परीक्षा पहिले तुम ही कर डालो, बस उस का घमण्ड उतर जावेगा, उस की परीक्षा सहज में ही इस प्रकार हो सकती है कि–पाच सात आदमी इकट्ठे हो जाओ, उन में से आधे मनुष्य जीमलो (भोजन करलो) तथा आधे भूखे रहो, फिर घमण्डी वैद्य को अपने मकान पर बुलाओ चाहे तुम ही उस के मकान पर जाओ और उस से कहो कि–हम लोगों में जीमे हुए कितने है और भूखे कितने हैं? इस बात को आप नाडी देखकर बताइये, बस इस विषय में वह कुछ भी न कह सकेगा और तुम को उस की परीक्षा हो जावेगी अर्थात् तुम को यह विदित हो जावेगा कि जब यह नाडी को देखकर एक मोटी सी भी इस बात को नहीं बता सका तो फिर रोग की सूक्ष्म बातों को क्या बतला सकता है।[5]

बड़े ही शोक का विषय है कि–वर्तमान समय में वैद्यो की योग्यता और अयोग्यता तथा उन की परीक्षा के विषयमें कुछ भी ध्यान नहीं दिया जाता है, गरीबों और साधारण लोगों की तो क्या कहें आजकल के अज्ञान भाग्यवान् लोग भी विद्वान् और मूर्ख वैद्य की परीक्षा करनेवाले बहुत ही थोड़े (आटे में नमक के समान) दिखलाई देते हैं, इस लिये सर्व साधारण को उचित है कि–नाड़ीपरीक्षा के यथार्थतत्त्व को समझें और उसी के अनुसार बर्ताव करें, मूर्ख वैद्यों पर से श्रद्धा को हटावें तथा उन के मिथ्याजाल में न फँसें, नाड़ी देखने का जो कायदा हमने आर्यवैद्यक तथा डाक्टरी

१–पाच पच्चीस अर्थात् बहुतसी ॥

२–हकालते हैं अर्थात् हाकते हैं ॥

३–अहवालों अर्थात् हकीकतों यानी हालों ॥

४–जोडे का अर्थात् बराबरी का ॥

५–यद्यपि एक विद्वान् अनुभवी वैद्य जिस पुरुपकी नाडी पहिले भी देखी हो उस पुरुपकी नाडी को देखकर उक्त बात को अच्छे प्रकार से बतला सकता है क्योंकि पहिले लिख चुके हैं कि भोजन करने के बाद नाडी का वेग बढ़ता है इत्यादि, परन्तु धूर्त और मूर्ख वैद्य को इन बातों की खबर कहाँ ॥

मत से लिखा है उसे वाचकवृन्द अच्छीतरह समझें तथा इस बात का निश्चय करें कि रोग पेट में है, सिर में है, नाक में है, वा कान में है, इत्यादि बातें पूर्णतया नाड़ी के देखने से कभी नहीं मालूम पड़ सकती हैं, हां वेशक अनुभवी चिकित्सक रोगी की नाड़ी, चेहरा, आंख, चेष्टा और बात चीत आदि से रोगी की बहुत कुछ हकीकत को जान सकता है तथा रोगी की विशेष हकीकत को सुने विना भी बाहरी जांच से रोगी का मुख्य स्वरूप कह सकता है परन्तु इस से यह नहीं समझ लेना चाहिये कि वैद्य न सब परीक्षा नाड़ी के द्वारा ही कर ली है और हमेशा नाड़ीपरीक्षा सधी ही होती है, जो लोग नाड़ीपरीक्षा पर हद्दसे ज्यादा विश्वास रखकर ठगाते हैं उन से हमारा इतना ही कहना है कि केवल (एकमात्र) नाड़ीपरीक्षा से रोग का कभी आजतक न तो निश्चय हुआ न होगा और न हो सकता है, इस लिये विद्वान् वैद्य वा डाक्टरपर पूर्ण विश्वास रखकर उनकी यथार्थ आज्ञा को मानना चाहिये ।

यह भी स्मरण रहे कि—बहुत से वैद्य और डाक्टर लोग रोगी की प्रकृति पर बहुत ही थोड़ा खयाल करते हैं किन्तु रोग के बाहरी चिह्न और हकीकत पर विशेष आधार रख कर इलाज किया करते हैं, परन्तु इसतरह रोगी का अच्छा होना कठिन है, क्योंकि कोई रोगी ऐसे होते हैं कि वे अपने शरीर की पूरी हकीकत खुद नहीं जानते और इसी लिये वे उसे बतला भी नहीं सकते हैं, फिर देखो ! अचेतना और सन्निपात जैसे महा भयंकर रोगों में, एवं उन्माद, मूर्च्छा और मृगी आदि रोगों में रोगी के कहेहुए लक्षणों से रोग की पूरी हकीकत कभी नहीं मालूम हो सकती है, उस समय में नाड़ीपरीक्षा पर विशेष आधार रखना पड़ता है तथा रोगी की प्रकृतिपर इलाज का बहुत आश्रय (आसरा) लेना होता है और प्रकृति की परीक्षा भी नाड़ी आदि के द्वारा अनेक प्रकार से होती है, डाक्टर लोग जो अँगुली लेकर हृदय का धड़का देखते हैं वह भी नाड़ी-परीक्षा ही है क्योंकि हाथ के पहुँचे पर नाड़ी का जो ठमका है वह हृदय का धड़का और खून के प्रवाह का आखिरी धड़का है, शरीर में जिस २ जगह धोरी नस में खून उछलता है वहां २ अंगुलि के रखने से नाड़ीपरीक्षा हो सकती है, परन्तु जब खून के फिरने में कुछ भी फर्क होता है तब पहिली धोरी नसों के अन्त भाग को खून का पोषण मिलना बंद होता है, अन्य सब नाड़ियों को छोड़ कर हाथ के पहुँचे की नाड़ी की ही जो परीक्षा की जाती है उस का हेतु यह है कि—हाथ की जो नाड़ी है वह धोरी नस का किनारा है, इस लिये पहुँचे पर की नाड़ी का धबकारा अंगुलि को स्पष्ट मालूम देता है, इस लिये ही हमारे पूर्वाचार्यों ने नाड़ीपरीक्षा करने के लिये पहुँचे पर की नाड़ी को ठीक २ जगह ठहराई है, पैरों में गिरिये के पास भी यही नाड़ी देखी जाती है क्योंकि यहां भी धोरी नस का किनारा है, (प्रश्न) स्त्री की नाड़ी बायें हाथ की देखते हैं और

पुरुष की नाडी दहिने हाथ की देखते है, इस का क्या कारण है? (उत्तर) धर्मशास्त्र तथा निमित्तादि शास्त्रों में पुरुष का दहिना अंग और स्त्री का वायां अंग मुख्य माना गया है, अर्थात् निमित्तशास्त्र सामुद्रिक में उत्तम पुरुष और स्त्री के जो २ लक्षण लिखे हैं उन में स्पष्ट कहा है कि–पुरुष के दहिने अंग में और स्त्री के वांयें अंग में लक्षणो को देखना चाहिये, इसी प्रकार जो २ अंग प्रस्फुरण (अगों का फडकना) आदि अंग सम्बन्धी शकुन माने गये है वे पुरुष के दहिने अग के तथा स्त्री के वायें अग के गिने जाते हैं, तात्पर्य यह है कि लक्षण आदि सब ही वातो में पुरुष से स्त्री में ठीक विपरीतता मानी जाती है, इसी लिये सस्कृत भाषा में स्त्री का नाम वामा है, अतः पुरुष का दहिना अग प्रधान है और स्त्री का वाया अग प्रधान है, इस लिये पुरुष के दहिने हाथ की और स्त्री की वायें हाथ की नाडी देखने की रीति है, वाकी तो दोनों हाथो में धोरी नस का किनारा है और वैद्यक शास्त्र में दोनो हाथो की नाडी देखना लिखा है। (प्रश्न) हम ने वहुत से वैद्यो के मुख से सुना है कि–नाभिस्थान में वहुत सी नाड़ियो का एक गुच्छा कछुए के आकार का वना हुआ है, वह पुरुष के सुलटा (सीधा) और स्त्री के उलटा मुख कर के रहता है इस लिये पुरुष के दहिने हाथ की और स्त्री के वाये हाथ की नाड़ी देखी जाती है। (उत्तर) इस वात की चर्चा मासिकपत्रो में अनेक वार छप चुकी है तथा इस वात का निश्चय हो चुका है कि–नाभिस्थान में नाडियों का कोई गुच्छा नहीं है, इस के सिवाय डाक्टर लोग (जो कि शरीर को चीरने फाडने का काम करते है तथा शरीर की रग रग से पूरे विज्ञ (वाकिफ) है) कहते है कि–"यह वात विलकुल गलत है" भला कहिये कि ऐसी दशा में नाभिस्थान में नसो के गुच्छे का होना कैसे माना जा सकता है? इस लिये वुद्धिमानों को अव इस असत्य वात को छोड देना चाहिये, क्योंकि प्रत्यक्ष में प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती है[1] ॥

त्वचापरीक्षा—त्वचा के स्पर्श से शरीर की गर्मी शर्दी तथा पसीने आदि की परीक्षा होती है, इस का सक्षेप से वर्णन इस प्रकार है—

१–**दोष युक्त चमड़ी**—वायुरोगवाले की चमड़ी ठंढी, पित्तरोगवाले की गर्म और कफरोगवाले की भीगी होती है, यद्यपि यह नियम सर्वत्र नहीं होता है तथापि प्राय ये (ऊपर लिखे) लक्षण होते है।

२–**गर्म चमड़ी**—पित्त और सव प्रकार के वुखारो में चमडी गर्म होती है, चमडी की उष्णता से भी वुखार की गर्मी माल्रम हो जाती है परन्तु अन्तर्वेगी (जिस का वेग भीतर ही हो ऐसे) ज्वर में वुखार अन्दर ही होता है इस लिये वाहर की चमडी वहुत गर्म नहीं होती है किन्तु साधारण होती है, इस अवस्था (दशा)

१–'प्रत्यक्षे किम्प्रमाणम्' इति न्यायात् ॥

में चमड़ी की परीक्षा में वैद्य लोग प्रायः धोखा खा जाते हैं, ऐसे अवसर पर नाड़ीपरीक्षा के द्वारा अथवा थर्मामेटर के द्वारा अन्तर (अन्दर) की गर्मी जानी जा सकती है, कभी २ ऐसा भी होता है कि-ऊपर से तो चमड़ी तपती हुई तथा बुखार सा मालूम देता है परन्तु अन्दर बुखार नहीं होता है।

३-**ठंढी चमड़ी**—बहुत से रोगों में शरीर की चमड़ी ठंढी पड़ जाती है, जैसे-बुखार के उतर जाने के बाद निर्बलता (नाताकती) में, दूसरी बीमारियों से उत्पन्न हुई निर्बलता में, हैजे में तथा बहुत से पुराने रोगों में चमड़ी ठंढी पड़ जाती है, जब कभी किसी सख्त बीमारी में शरीर ठंढा पड़ जावे तो पूरी जोखम (खतरा) समझनी चाहिये।

४-**सूखी चमड़ी**—चमड़ी के छेदों में से सदा पसीना निकलता रहता है उस से चमड़ी नरम रहती है परन्तु जब कईएक रोगों में पसीना निकलना बन्द हो जाता है तब चमड़ी सूखी और खरखरी हो जाती है, बुखार के प्रारम्भ में पसीना निकलना बन्द हो जाता है इस लिये बुखारवाले की तथा वादी के रोगवाले की चमड़ी सूखी होती है।

५-**भीगी चमड़ी**—आवश्यकता से अधिक पसीना आने से चमड़ी भीगी रहती है, इस के सिवाय कई एक रोगों में भी चमड़ी ठंढी और भीगी रहती है और ऐसे रोगों में रोगी को पूरा डर रहता है, जैसे-सन्निपात (गँठिया) में चमड़ी गर्म और भीगी रहती है तथा हैजे में ठंढी और भीगी रहती है, निर्बलतामें पसीना ठंढा और भीगा अंग जोखम को जाहिर करता है, यदि कभी रातको पसीना हो चमड़ी भीगी रहे और निर्बलता (नाताकती) बढ़ती जावे तो क्षयके चिह्न समझकर जल्दी ही सावधान हो जाना चाहिये॥

थर्मामेटर—शरीर में कितनी गर्मी है, इस बात का ठीक माप थर्मामेटर से हो सकता है, थर्मामेटर काच की नली में नीचे पारे से भराहुआ गोल पपोटा (काच का गोल बल्ब) होता है, इस पारेवाले बल्ब को मुँह में जीभ के नीचे या बगल में पांच मिनटतक रख कर पीछे बाहर निकाल कर देखते हैं, उस के अन्दर का पारा शरीर की गर्मी से ऊपर चढ़ता है तथा सर्दी से नीचे उतरता है, अच्छे तनदुरुस्त आदमी के शरीर की गर्मी साधारणतया ९८ से १०० डिग्री के बीच में रहती है, बहुतों के शरीर में मध्यम गर्मी ९८ से ९९ होती है और बाहर की गर्मी अथवा परिश्रम से उस में कुछ २ बढ़ोतरी (वृद्धि) होती है तब पारा १०० तक चढ़ता है, नींद में और सम्पूर्ण शान्ति के समयों में एकाध डिग्री गर्मी कम होती है, रोग में शरीर की गर्मी विशेष चढ़ाव और उतार करती है और शरीर की स्वाभाविक गर्मी से पारा अधिक उतर जाता

है वा चढ़ जाता है, सादे बुखार में वह पारा १०१ से १०२ तक चढ़ता है, सख्त बुखार में १०४ तक चढ़ता है और अधिक भयंकर बुखारमें १०५ से लेकर आखिरकार १०६३ तक चढता है, शरीर के किसी मर्मस्थान में शोथ (सूजन) और दाह होता है तब बुखार की गर्मी बढ़कर १०८ तक अथवा इस से भी ऊपर चढ़ जाती है, ऐसे समय में रोगी प्रायः बचता नहीं है, स्वाभाविक गर्मी से दो डिग्री गर्मी बढ़ जाती है और उस से जितना भय होता है उस की अपेक्षा एक डिग्री भी गर्मी जब कम हो जाती है उस में अधिक भय रहता है, हैजे में जब शरीर अन्त में ठंढा पड जाता है तब शरीर की गर्मी घट कर अन्त में ७७ डिग्री पर जाकर ठहरती है, उस समय रोगी का बचना कठिन हो जाता है, जबतक १०४ डिग्री के अन्दर बुखार होता है वहाँतक तो डर नहीं है परन्तु उस के आगे जब गर्मी बढती है तब यह समझ लिया जाता है कि रोग ने भयङ्कर रूप धारण कर लिया है, ऐसा समझ कर बहुत जल्दी उस का उचित इलाज करना चाहिये, क्योंकि साधारण दवा से आराम नहीं हो सकता है, इस में गफलत करने से रोगी मर जाता है, जब स्वाभाविक गर्मी से एक डिग्री गर्मी बढ़ती है तब नाडी के स्वाभाविक ठबकों से १० ठबके बढ़ जाते है, बस नाडी के ठबकों का यही क्रम समझना चाहिये कि एक डिग्री गर्मी के बढने से नाड़ी के दश दश ठबके बढ़ते है, अर्थात् जिस आदमी की नाडी आरोग्यदशा में एक मिनट में ७५ ठबके खाती हो उस की नाड़ी में एक डिग्री गर्मी बढ़ने से ८५ ठबके होते हैं तथा दो डिग्री गर्मी बढ़ने से बुखार में एक मिनट में ९५ बार धड़के होते है, इसी प्रकार एक एक डिग्री गर्मी के बढ़ने के साथ दश दश ठबके बढ़ते जाते है, जब बगल भीगी होती है अथवा हवा या जमीन भीगी होती है तब थर्मामेटर से शरीर की गर्मी ठीक रीति से नहीं जानी जा सकती है, इस लिये जब बगल में थर्मामेटर लगाना हो तब बगल का पसीना पोंछ कर फिर थर्मामेटर लगाकर पांच मिनट तक दबाये रखना चाहिये, इस के बाद उसे निकालकर देखना चाहिये, जिस प्रकार थर्मामेटर से शरीर की गर्मी प्रत्यक्ष दीखती है तथा उसे सब लोग देख सकते हैं उस प्रकार नाड़ीपरीक्षा से शरीर की गर्मी प्रत्यक्ष नही दीखती है और न उसे हर एक पुरुष देख सकता है ॥

इस यन्त्र में बड़ी खूबी यह है कि-इस के द्वारा शरीर की गर्मी के जानने की क्रिया को हर एक आदमी कर सकता है इसी लिये बहुत से भाग्यवान् इस को अपने घरों में रखते है और जो नहीं रखते हैं उन को भी इसे अवश्य रखना चाहिये[1] ॥

१-प्रिय मित्रो ! देखो !! इस ग्रन्थ की आदि में हम विद्या को सब से बढ कर कह चुके हैं, सो आप लोग प्रत्यक्ष ही अपनी नजर से देख रहे हैं परन्तु शोक का विषय है कि-आप लोग उस तरफ कुछ भी ध्यान नहीं देते हैं, विद्या के महत्त्व को देखिये कि थर्मामेटर की नली में केवल दो पैसे का सामान है, परन्तु बुद्धिमान् और विद्याधर यूरोपियन अपनी विद्या के गुण से उस का मूल्य पाच रुपये लेते हैं, जिन्हों ने इस को निकाला था वे कोट्यधिपति (करोड़पति) हो गये, इसी लिये कहा जाता है कि-'लक्ष्मी विद्या की दासी है, ॥

स्टेथोस्कोप—इस यन्त्र से फेफसा, श्वास की नली, हृदय तथा पसलियों में होती हुई क्रिया का बोध होता है, यद्यपि इस के द्वारा जिस प्रकार उक्त विषय का बोध होता है उस का वर्णन करना कुछ आवश्यक है परन्तु इस के द्वारा जांचने की क्रिया का ज्ञान ठीक रीति से अनुभवी डाक्टरों के पास रह कर सीखने से तथा अपनी बुद्धि के द्वारा उस का सब वर्ताव देखने ही से हो सकता है, इस लिये यहां उस के अधिक वर्णन करने की आवश्यकता नहीं समझी गई ॥

दर्शनपरीक्षा ॥

आंख से देख कर जो रोगी की परीक्षा की जाती है उसे यहां दर्शनपरीक्षा के नाम से लिखी है, इस परीक्षा में जिह्वा, नेत्र, आकृति (चेहरा), त्वचा, मूत्र और मल की परीक्षा का समावेश समझना चाहिये, इन का संक्षेपतया क्रम से वर्णन किया जाता है—

जिह्वापरीक्षा—जिह्वा की दशा से गले होजरी और आँतों की दशा का ज्ञान होता है, क्योंकि जिह्वा के ऊपर का बारीक पड़त गले होजरी और आँतों के भीतरी बारीक पड़त के साथ जुड़ा हुआ और एक सदृश (एकरस अर्थात् अत्यन्त) मिला हुआ है, इस के सिवाय जिह्वापरीक्षा के द्वारा दूसरे भी कई एक रोग जाने जा सकते हैं, क्योंकि जीभ के गीलेपन रंग और ऊपरी मैल से रोगों की परीक्षा हो सकती है, आरोग्यदशा में जीभ भीगी और अच्छी होती है तथा उस की अनी ऊपर से कुछ लाल होती है, अब इस की परीक्षा के नियमों का कुछ वर्णन करते हैं—

भीगी जीभ—अच्छी हालत में जीभ थूक से भीगी रहती है परन्तु बुखार में जीभ सूखने लगती है, इस लिये जब जीभ भीगी हुई हो तो समझ लेना चाहिये कि बुखार नहीं है, इसी प्रकार हर एक रोग में जीभ सूख कर जब फिर भीगनी शुरू हो जावे तो समझ लेना चाहिये कि रोग अच्छा होनेवाला है, यद्यपि रोग दशा में जल के पीने से एक बार तो जीभ गीली हो जाती है परन्तु जो बुखार होता है तो तुरत ही फिर भी सूख जाती है ॥

सूखी जीभ—बहुत से रोगों में आवश्यकता के अनुसार शरीर में रस उत्पन्न नहीं होता है और रस की कमी से उसी कदर थूक भी थोड़ा पैदा होता है इस से जीभ सूख जाती है और रोगी को भी जीभ सूखी हुई मालूम देती है, उस समय रोगी कहता है कि—मेरा सब मुँह सूख गया, इस प्रकार की जीभ पर अंगुलि के लगाने से भी वह सूखी और करड़ी मालूम पड़ती है, बुखार, शीतला, ओरी तथा दूसरे भी तमाम चेपी बुखारों में, होजरी तथा आँतों के रोगों में और बहुत जोर के बुखार में जीभ सूख जाती है अर्थात् ज्यों २ बुखार अधिक होता है त्यों २ जीभ अधिक सूखती है, जीभ का करड़ा होना मौत की निशानी है ॥

लाल जीभ—जीभ की अनी तथा उस का किनारे का भाग सदा कुछ लाल होता है परन्तु यदि सब जीभ लाल हो जावे अथवा उस का अधिक भाग लाल हो जावे तो शीतला, मुखपाक, मुँह का आना, पेट का शोथ तथा सोमल विष का खाना, इतने रोगों का अनुमान होता है, बुखार की दशा में भी जीभ अनीपर तथा दोनों तरफ कोरपर अधिक लाल हो जाती है ॥

फीकी जीभ—शरीर में से बहुत सा खून निकलने के पीछे अथवा बुखार तिल्ली और इसी प्रकार की दूसरी बीमारियों में भी शरीर में से रक्तकणो के कम हो जाने से जैसे चेहरा तथा चमड़ी फीकी पड़ जाती है उसी प्रकार जीभ भी सफेद और फीकी पड़ जाती है ॥

मैली जीभ—कई रोगों में जीभपर सफेद थर आ जाती है उसी को मैली जीभ कहते हैं, बहुत सख्त बुखार में, सख्त सन्धिवात में, कलेजे के रोग में, मगज़ के रोग में और दस्त की कब्जी में जीभ मैली हो जाती है, इस दशा में जीभ की अनी और दोनों तरफ की कोरो से जब जीभ का मैल कम होना शुरू हो जावे तो समझ लेना चाहिये कि रोग कम होना शुरू हुआ है, परन्तु यदि जीभ के पिछले भाग की तरफ से मैल की थर कम होना शुरू हो तो जानना चाहिये कि रोग धीरे २ घटेगा अभी उस के घटने का आरंभ हुआ है, यदि जीभ के ऊपर की थर जल्दी साफ हो जावे और जीभ का वह भाग लाल चिलकता हुआ और फटा हुआसा दीखे तो समझना चाहिये कि बीच में कोई स्थान सड़ा है वा उस में जखम हो गया है, क्योंकि जीभ का इस प्रकार का परिवर्त्तन खराबी के चिह्नों को प्रकट करता है, बहुत दिनों के बुखार में जीभ की थर भूरी अथवा तमाखू के रग की होती है और जीभ के ऊपर बीच में चीरा पड़ता है वह भी बड़ी भयकर बीमारी का चिह्न है, पित्त के रोग में जीभ पर पीला मैल जमता है।

काली जीभ—कई एक रोगों में जीभ जामूनी रग की (जामून के रंग के समान रंगवाली) या काले रग की होती है, जैसे दम श्वास और फेफसे के साथ सम्बध रखनेवाले खासी आदि रोगों में जब श्वास लेने में अड़चल (दिक्कत) पड़ती है तब खून ठीक रीति से साफ नहीं होता है इस से जीभ काली झाखी अथवा आसमानी रग की होती है, स्मरण रहे कि—कई एक दूसरे रोगों में जब जीभ काले रग की होती है तब रोगी के बचने की आशा थोड़ी रहती है।

काँपती हुई जीभ—सन्निपात में, मगज के भयकर रोग में तथा दूसरे भी कई एक भयंकर वा सख्त रोगों में जीभ काँपा करती है, यहाँ तक कि वह रोगी के

अधिकार (क़ाबू) में नहीं रहती है अर्थात् जब उसे बाहर निकालता है तब भी वह काँपती है, इस प्रकार काँपती हुई जीभ अत्यन्त निर्बलता और मद की निशानी है।

सामान्यपरीक्षा—बहुत से रोगों की परीक्षा करने में जीभ दर्पणरूप है अर्थात् जीभ की भिन्न २ दशा ही भिन्न २ रोगों को सूचित कर देती है, जैसे-देखो! जीभ पर सफेद मैल जमा हो तो पाचनशक्ति में गड़बड़ समझनी चाहिये, जो मोटी और सूजी हुई हो तथा दाँतों के नीचे आ जाने से जिस में दाँतों का चिह्न बन जावे ऐसी जीभ होजरी तथा आँतों में दाह के होने पर होती है, जीभ पर मीठा तथा पीले रंग का मैल हो तो पित्तविकार जानना चाहिये, जीभ में कालापन तथा भूरे रंग का पड़त खराब बुखार के होने पर होता है, जीभ पर सफेद मैल का होना साधारण बुखार का चिह्न है, सूखी, मैलवाली, काली और काँपती हुई जीभ इक्कीस दिनों की अवधिवाले भयंकर सन्निपातज्वर का चिह्न है, एक तरफ झोला करती हुई जीभ आधी जीभ में बादी आने का चिह्न है, जब जीभ बड़ी कठिनता तथा अत्यन्त परिश्रम से बाहर निकले और रोगी की इच्छा के अनुसार अन्दर न जावे तो समझना चाहिये कि रोगी बहुत ही शक्तिहीन और दुर्दशापन्न (दुर्दशा को प्राप्त) हो गया है, बहुत भारी रोग हो और उस में फिर जीभ काँपने लगे तो बड़ा डर समझना चाहिये, हैजा, होजरी और फेफड़े की बीमारी में जब जीभ सीसे के रंग के समान झाँसी दिखलाई देवे तो खराब चिह्न समझना चाहिये, यदि कुछ आसमानी रंग की जीभ दिखलाई देवे तो समझना चाहिये कि खून की चाल में कुछ अवरोध (रुकावट) हुआ है, मुँह पक जावे और जीभ सीसे के रंग के समान हो जावे तो यह मृत्यु के समीप होने का चिह्न है, वायु के दोष से जीभ खरदरी फटी हुई तथा पीली होती है, पित्त के दोष से जीभ कुछ २ लाल तथा कुछ काली सी पड़ जाती है, कफ के दोष से जीभ सफेद भीगी हुई और नरम होती है, त्रिदोष से जीभ कटियाली और सूखी होती है तथा मृत्युकाल की जीभ खरखरी, अन्दर से भरी हुई, फेनवाली, लकड़ी के समान करड़ी और गतिरहित हो जाती है[1]।

नेत्रपरीक्षा—रोगी के नेत्रों से भी रोग की परीक्षा होती है जिसका विवरण इस प्रकार है—वायु के दोष से नेत्र रूक्ष, निस्तेज, धूम्रवर्ण (धुएँ के समान धूसर रंगवाले), चपल तथा दाहवाले होते हैं, पित्त के दोष से नेत्र पीले, दाहवाले और दीपक आदि के तेज को न सह सकनेवाले होते हैं, कफ के दोष से नेत्र भीगे, सफेद, नरम, मन्द,

१—देशी वैद्यकशास्त्र की अपेक्षा यहाँ पर हम ने डाक्टरी मतानुसार जिह्वापरीक्षा अधिक विस्तार से लिखी है ॥

निस्तेज, तन्द्रायुक्त, कृष्ण और जड़[1] होते है, त्रिदोप (सन्निपात) के नेत्र भयंकर, लाल, कुछ काले और मिचे हुए होते[2] है।

आकृतिपरीक्षा—आकृति (चेहरा) के देखने से भी वहुत से रोगों की परीक्षा हो सकती है, प्रातःकाल में रोगी की आकृति तेजरहित विचित्र और झाकने से काली दीखती हो तो वादी का रोग समझना चाहिये, यदि आकृति पीली मन्द और शोथयुक्त दीखे तो पित्त का रोग समझना चाहिये, यदि आकृति मन्द और तेलिया (तेल के समान चिकनी) दीखे तो कफ का रोग समझना चाहिये, स्वाभाविक नीरोगता की आकृति शान्त स्थिर और सुखयुक्त होती है, परन्तु जव रोग होता है तव रोग से आकृति फिर (वदल) जाती है तथा उस का स्वरूप तरह २ का दीखता है, रात दिन के अभ्यासी वैद्य आकृति को देख कर ही रोग को पहिचान सकते है, परन्तु प्रत्येक वैद्य को इस (आकृति) के द्वारा रोग की पहिचान नहीं हो सकती है।

आकृति की व्यवस्था का वर्णन सक्षेप से इस प्रकार हैः—

१–**चिन्तायुक्त आकृति**—सख्त वुखार में, वड़े भयकर रोगो की प्रारम्भदशा में, हिचकी तथा खैचातान के रोगों में, दम तथा श्वास के रोग में, कलेजे और फेफसे के रोग में, इत्यादि कई एक रोगों में आकृति चिन्तायुक्त अथवा चिन्तातुर रहती है।

२–**फीकी आकृति**—वहुत खून के जाने से, जीर्ण ज्वर से, तिल्ली की वीमारी से, वहुत निर्वलता से, वहुत चिन्ता से, भय से तथा भर्त्सना से, इत्यादि कई कारणों से खून के भीतरी लाल रजःकणो के कम हो जाने से आकृति फीकी हो जाती है, इसी प्रकार ऋतुधर्म में जव स्त्री का अधिक खून जाता है अथवा जन्म से ही जो शक्तिहीन वाधेवाली स्त्री होती है उस का वालक वारवार दूध पीकर उस के खून को कम कर देता है और उस को पुष्टिकारक भोजन पूर्णतया नहीं मिलता है तो स्त्रियों की भी आकृति फीकी हो जाती है।

३–**लाल आकृति**—सख्त वुखार में, मगज़ के शोथ में तथा लू लगने पर लाल आकृति हो जाती है, अर्थात् आखें खून के समान लाल हो जाती हैं और गालों

१–जड अर्थात् क्रियारहित ॥

२–इसी विपय का वर्णन किसी विद्वान् ने दोहों में किया है, जो कि इस प्रकार है—वातनेत्र रूखे रहें, धूम्रज रग विकार ॥ झमकें नहि चञ्चल खुले, काले रग विकार ॥ १ ॥ पित्तनेत्र पीले रहें, नीले लाल तपेह ॥ तप्त धूप नहिं दृष्टि दिक, लक्षण ताके येह ॥ २ ॥ कफज नेत्र ज्योतीरहित, चिट्टे जलभर ताहि ॥ भारे वहुता हि प्रभा, मन्द दृष्टि दरसाहि ॥ ३ ॥ काले खुले जु मोह सों, व्याकुल अरु विकराल ॥ रूखे कवहूँ लाल हों, त्रैदोपज समभाल ॥ ४ ॥ तीन तीन दोपहि जहाँ, त्रैदोपज सो मान ॥ दो २ दोप लखे जहाँ, द्वन्द्वज तहाँ पिछान ॥ ५ ॥ इन दोहों का अर्थ सरल ही है इस लिये नहीं लिखते हैं ॥

पर गुलाबी रंग मालूम होता है तथा गाल उपसे हुए मालूम होते हैं, जब आकृति लाल हो उस समय यह समझना चाहिये कि खून का सिर की तरफ तथा मगज में अधिक जोश चला है।

४–फूली हुई आकृति—पाण्डु निवलता जीर्णज्वर और जलोदर आदि रोगों में आकृति फूली हुई अर्थात् ओभरवाली होती है, आंख की ऊपर की चमड़ी चढ़ जाती है, गाल में अंगुलि के दबाने से गड्ढा पड़ जाता है तथा आकृति सूजी हुई दीखती है।

५–अन्दर खुड़ी बैठी हुई आकृति—जैसे वृक्ष की शाखा के पत्ते तथा छिल्कों के छीलने के बाद शाखा सूखी हुई मालूम होती है इसी प्रकार कई एक भयंकर रोगों की अन्तिम अवस्था में रोगी की आकृति वैसी ही हो जाती है, देखो! हैजे में मरने के समय जो आकृति बनती है वह माय इसी प्रकार की होती है, इस दशा में ललाट में सल, आंख के कोये अन्दर घुसे हुए, आंख में गड्ढे पड़े हुए, नाक अनीदार, कनपटी के आगे गड्ढे पड़े हुए, गाल बैठे हुए, होठों पर सल पड़े हुए तथा आकृति का रंग आसमानी होता है, ऐसे लक्षण जब दिखलाई देने लगें तो समझ लेना चाहिये कि रोगी का जीना कठिन है॥

त्वचापरीक्षा—जैसे त्वचा के स्पर्शसे गर्मी और ठंढ की परीक्षा होती है उसी प्रकार त्वचा के रंग से तथा उस में निकली हुई कुछ चट्टों और गांठों आदि से शरीर के दोषों का कुछ अनुमान हो सकता है, शीतला ओरी और अचपड़ा (आकड़ा काकड़ा) आदि रोगों में पहिले बुखार आता है उस बुखार को लोग नासमझी से पहिले सादा बुखार समझ लेते हैं परन्तु फिर त्वचा का रंग लाल हो जाता है तथा उस पर महीन २ दाने निकल आते हैं वे ही उक्त रोगों की पहिचान करा सकते हैं इस लिये उन्हें अच्छी तरह से देखना चाहिये, यदि शरीर पर कोई स्थान लाल हो अथवा कहीं पर सूजन हो तो उसे खून के जोर से अथवा पित्त के विकार से समझना चाहिये, जिस की त्वचा का रंग काला पड़ता जावे उस के शरीर में वायु का दोष समझना चाहिये, जिस के शरीर का रंग पीला पड़ता जावे उस के शरीर में पित्त का दोष समझना चाहिये, जिस के शरीर का रंग गोरा और सफेद पड़ता जावे उस के शरीर में कफ का दोष समझना चाहिये तथा जिस के शरीर की त्वचा का रंग बिलकुल सूखा होकर अन्दर चीरा २ सा दिखाई देवे तो समझ लेना चाहिये कि खून बिगड़ गया है अथवा तप गया है, लोग इसे गर्मी कहते हैं, जब त्वचा तक खून नहीं पहुँचता है तब त्वचा नर्म और रूखी पड़ जाती है, यदि त्वचा का रंग तांबे के रंग के समान (तामड़ा) हो तो समझ लेना चाहिये कि रक्तपित्त तथा वातरक्त का रोग है, यदि त्वचा पर काले

चट्टे और धब्बे पडें तो समझ लेना चाहिये कि इस को ताज़ी और अच्छी खुराक नहीं मिली है इस लिये खून विगड गया है, इसी तरह से एक प्रकार के चट्टे और विस्फोटक हों तो समझ लेना चाहिये कि इस को गर्मी का रोग है, हैज़े की निकृष्ट बीमारी में त्वचा तथा नखों का रंग आसमानी और काला पड़ जाता है और यही उस के मरने की निशानी है इस तरह त्वचा के द्वारा वहुत से रोगों की परीक्षा होती है।

मूत्रपरीक्षा—नीरोग आदमी के मूत्र का रंग ठीक सूखी हुई घास के रग के समान होता है, अर्थात् जिस तरह सूखी हुई घास न तो नीली, न पीली, न लाल, न काली और न सफेद रग की होती है किन्तु उस में इन सव रगों की छाया झलकती रहती है, वस उसी प्रकार का रग नीरोग आदमी के मूत्र का समझना चाहिये, मूत्र के द्वारा भी वहुत से रोगों की परीक्षा हो सकती है, क्योकि मूत्र खून में से छूट कर निकला हुआ निरुपयोगी (विना उपयोग का) प्रवाही (वहनेवाला) पदार्थ है, क्योंकि खून को शुद्ध करने के लिये मूत्राशय मूत्र को खून में से खींच लेता है, परन्तु जव शरीर में कोई रोग होता है तव उस रोग के कारण खून का कुछ उपयोगी भाग भी मूत्र में जाता है इस लिये मूत्र के द्वारा भी वहुत से रोगों की परीक्षा हो सकती है, इस मूत्रपरीक्षा के विषय में हम यहा पर योगचिन्तामणिशास्त्र से तथा डाक्टरी ग्रन्थों से डाक्टरों की अनुभव की हुई विशेप वातों के विवरणके द्वारा अष्टविध (आठ प्रकार की) परीक्षा लिखते हैं:—

१—वायुदोषवाले रोगी का मूत्र वहुत उतरता है और वह वादल के रग के समान होता है।

२—पित्तदोषवाले रोगी का मूत्र कसूँभे के समान लाल, अथवा केसूले के फूल के रग के समान पीला, गर्म, तेल के समान होता है तथा थोडा उतरता है।

३—कफ के रोगी का मूत्र तालाव के पानी के समान ठंढा, सफेद, फेनवाला तथा चिकना होता है।

४—मिले हुए दोपोंवाला मूत्र मिलेहुए रग का होता है[1]।

५—सन्निपात रोग में मूत्र का रग काला होता है।

६—खून के कोपवाला मूत्र चिकना गर्म और लाल होता है।

७—वातपित्त के दोषवाला मूत्र गहरा लाल अथवा किरमची रंग का तथा गर्म होता है।

१—जैसे वातपित्त के रोग मे वादल के रग के ममान तथा लाल वा पीला होता है, वातकफ के रोग में वादल के रग के समान तथा सफेद होता है तथा पित्तकफ के रोग में लाल वा पीला तथा सफेद रंग का होता है, इस का वर्णन न० ७ से ८ तक आगे किया भी गया है॥

८—वातकफ दोषवाले का मूत्र सफेद तथा बुद्बुदाकार (बुल्बुले की शकल का) होता है।

९—कफपित्तवाले रोगी का मूत्र लाल होता है परन्तु गदला होता है।

१०—अजीर्ण रोगी का मूत्र चांवलों के धोवन के समान होता है।

११—नये बुखारवाले का मूत्र किरमची रंग का होता है तथा अधिक उतरता है।

१२—मूत्र करते समय यदि मूत्र की लाल धार हो तो बड़ा रोग समझना चाहिये, काली धार हो तो रोगी मर जाता है, मूत्र में बकरी के मूत्र के समान गन्ध आवे तो अजीर्ण रोग समझना चाहिये।

१३—**मूत्रपरीक्षा के द्वारा रोग की साध्यासाध्यपरीक्षा**—रोग साध्य (सहज में मिटनेवाला) है, अथवा कष्टसाध्य (कठिनता से मिटनेवाला) है, अथवा असाध्य (न मिटनेवाला) है, इस की संक्षेप से परीक्षा लिखते हैं—प्रातःकाल चार घड़ी के तड़के रोगी को उठाकर उस के मूत्र को एक काच के सफेद प्याले में लेना चाहिये परन्तु मूत्र की पहिली और पिछली धार नहीं लेनी चाहिये अर्थात् बिचली (बीचकी) धार लेनी चाहिये तथा उस को स्थिर (बिना हिलाये डुलाये) रहने देना चाहिये, इस के बाद सूर्य की धूप में घण्टे भर तक उसे रख के पीछे उस में एक घास के तृण (तिनके) से धीरे से तेल की बूंद डालनी चाहिये, यदि वह तेल की बूंद डालते ही मूत्रपर फैल जावे तो रोग को साध्य समझना चाहिये, यदि बूंद न फैले अर्थात् ऊपर ज्यों की त्यों पड़ी रहे तो रोग को कष्टसाध्य समझना चाहिये तथा यदि वह बूंद अन्दर (मूत्र के तले) बैठ जावे अथवा अन्दर जाकर फिर ऊपर आकर कुण्डाले की तरह फिरने लगे अथवा बूंद में छेद २ पड़ जावें अथवा वह बूंद मूत्र के संग मिल जावे तो रोग को असाध्य जानना चाहिये।

दूसरी रीति से परीक्षा इस प्रकार भी की जाती है कि—यदि तालाब, हंस, छत्र, चमर, तोरण, कमल, हाथी, इत्यादि चिह्न दीखें तो रोगी बच जाता है, यदि तलवार, दण्ड, कमान, तीर, इत्यादि शस्त्रों के चिह्न उस बूंद के हो जावें तो रोगी मर जाता है, यदि बूंद में बुद्बुदे उठें तो देवता का दोष जानना चाहिये इत्यादि, यह सब मूत्रपरीक्षा योग चिन्तामणि ग्रन्थ में लिखी है तथा इन में से कई एक बातें अनुभव सिद्ध भी हैं क्योंकि केवल ग्रन्थ के बांचने से ही परीक्षा नहीं हो सकती है, देखो! बुद्धिमानों ने यह सिद्धान्त किया है कि—इल्म का करता उस्ताद और अनकरता शागिर्द होता है, ग्रन्थ के बांचने से केवल वायु पित्त कफ खून तथा मिले हुए दोषों आदि की परीक्षा मूत्र के देखने से हो सकती है, किन्तु उस में जो २ विशेषतायें हैं वे तो नित्य के अभ्यास और बुद्धि के दौड़ाने से ही ज्ञात हो सकती हैं॥

डाक्टरी मत से मूत्रपरीक्षा—रसायनशास्त्र की रीति से मूत्रपरीक्षा की डाक्टरोने अच्छी छानवीन (खोज) की है इस लिये वह प्रमाण करने (मानने) योग्य है, उनके मतानुसार मूत्र में मुख्यतया दो चीजे है—युरिआ और एसिड, इनके सिवाय उस में नमक, गन्धक का तेजाव, चूना, फासफरिक (फासफर्स) एसिड, मेगनेशिया, पोटास और सोडा, इन सव वस्तुओं का भी थोडा २ तत्त्व और वहुत सा भाग पानी का होता है, मूत्र में जो २ पदार्थ है सो नीचे लिखे कोष्ठ से विदित हो सकते है:—

	मूत्र में स्थित पदार्थ ॥	मूत्र के १००० भागोमें ॥	
	पानी ॥	९५६॥।	भाग ॥
	युरिया ॥	१४॥	भाग ॥
शरीर के वसारे से पैदा	यूरिक एसिड ॥	०	०
होनेवाली चीज़ें ॥	चरवी, चिकनाई, आदि ॥	०	०
खार ॥	नमक ॥	७।	भाग ॥
,,	फासफरिक एसिड ॥	२	,,
,,	गन्धक का तेजाव ॥	१॥।	,,
,,	चूना ॥	०॥	,,
,,	मेगनेशिया ॥	०।	,,
,,	पोटास ॥	१॥।	,,
,,	सोडा ॥	वहुत थोडा ॥	

मूत्र में यद्यपि ऊपर लिखे पदार्थ है परन्तु आरोग्यदशा में मूत्र में ऊपर लिखी हुई चीज़ें सदा एक वजन में नहीं होती है, क्यो कि खुराक और कसरत आदि पर उनका होना निर्भर है, मूत्र मे स्थित पदार्थों को पक्के रसायनशास्त्री (रसायनशास्त्र के जानने-वाले) के सिवाय दूसरा नही पहिचान सकता है और जव ऐसी (पक्की) परीक्षा होती है तभी मूत्र के द्वारा रोगों की भी पक्की परीक्षा हो सकती है। हमारे देशी पूर्वाचार्य इस रसायन विद्यामें वड़े ही प्रवीण थे तभी तो उन्होंने वीस जाति के प्रमेहो में शर्करा-प्रमेह और क्षीरप्रमेह आदि की पहिचान की है, वे इस विषय में पूर्णतया तत्त्ववेत्ता थे यह वात उनकी की हुई परीक्षा से ही सिद्ध होती है।

वहुत से लोग डाक्टरों की इस वर्तमान परीक्षा को नई निकाली हुई समझकर आश्चर्य में रह जाते हैं, परन्तु यह उनकी परीक्षा नई नहीं है किन्तु हमारे पूर्वाचार्यों के ही गूढ़ रहस्य से खोज करने पर इन्होंने प्राप्त की है, इस लिये इस परीक्षा के विषयमें उनकी कोई तारीफ नहीं है, हा अलवतह उनकी वुद्धि और उद्यम की तारीफ करना हरएक गुणग्राही मनुष्य का काम है, यद्यपि मूत्र को केवल आखो से देखने से उस में स्थित

अनेक चीजों की न्यूनाधिकता ठीक रीति से मालूम नहीं होती है तथापि मूत्र के आने से तथा मूत्र के पतलेपन वा मोटेपन से कई एक रोगों की परीक्षा अच्छी तरह से जाँच करने से हो सकती है ।

नीरोग आदमी को सब दिन में (२४ घण्टे में) सामान्यतया २॥ रतल मूत्र होता है तथा जब कभी पतला पदार्थ कमती वा बढ़ती खानेमें आ जाता है तब मूत्र में भी घट बढ़ होती है, ऋतुके अनुसार भी मूत्र के होने में फर्क पड़ता है, जैसे देखो ! शीत काल की अपेक्षा उष्णकाल में मूत्र थोड़ा होता है ।

मूत्राशय का एक रोग होता है जिस को मूत्राशय का अल्बन्दर कहते हैं, यह रोग मूत्राशय में विकार होने से आल्ब्युमेन नामक एक आवश्यक तत्त्व के मूत्रमार्गद्वारा खून में से निकल जाने से होता है, मूत्र में आल्ब्युमेन है वा नहीं इस बात की जांच करने से इस रोग की परीक्षा हो सकती है, इसी तरह मूत्र सम्बन्धी एक दूसरा रोग मधुममेह (मीठा मूत्र) नामक है, इस रोगमें मूत्रमार्ग से मीठे का अधिक भाग मूत्रमें आता है और वह मीठे का भाग मूत्र को साधारणतया आंख से देखने से यद्यपि नहीं मालूम होता है (कि इसमें मीठा है वा नहीं) तथापि अच्छी तरह परीक्षा करने से तो वह मीठा भाग जान ही लिया जाता है, इस के जानने की एक साधारण रीति यह भी है कि मीठे मूत्र पर हजारों चीटियां लग जाती हैं ।

मूत्र में खार भी जुदा २ होता है और जब वह परिमाण से अधिक वा कम आता है तथा स्टटस (एसिड) का भाग जब अधिक जाता है तो उस से भी अनेक रोग उत्पन्न होते हैं, मूत्र में आनेवाले इन पदार्थों की जब अच्छी तरह परीक्षा हो जाती है तब रोगों की भी परीक्षा सहज में ही हो सकती है ॥

मूत्र में आनेवाले पदार्थों की परीक्षा—मूत्रकी परीक्षा अनेक प्रकार से की जाती है अर्थात् कुछ बातें तो मूत्र को आंख से देखने से ही मालूम होती हैं, कुछ चीजें रसायनिक प्रयोग के द्वारा देखने से मालूम होती हैं और कुछ पदार्थ सूक्ष्मदर्शक यन्त्र के द्वारा देखने से मालूम पड़ते हैं, इन तीनों प्रकारों से परीक्षा का कुछ विषय यहां लिखा जाता है ।

१—आंखों से देखने से मूत्र के जुदे २ रंग की पहिचान से जुदे २ रोगों का अनुमान कर सकते हैं, नीरोग पुरुष का मूत्र पानी के समान साफ और कुछ पीलास पर (पीलेपन से युक्त) होता है, परन्तु मूत्र के साथ जब खून का भाग जाता है तब मूत्र लाल अथवा काला दीखता है, यह भी स्मरण रखना चाहिये कि कई एक दवाओं के खाने से भी मूत्र का रंग बदल जाता है, ऐसी दशा में मूत्रपरीक्षाद्वारा रोग का निश्चय

१-इसे अंग्रेजी में ब्राइट्स डिजीज कहते हैं ॥

नही करलेना चाहिये यदि मूत्रको थोडी देरतक रखने से उस के नीचे किसी प्रकार का जमाव हो जावे तो समझ लेना चाहिये कि—खार, खून, पीप तथा चर्वी आदि कोई पदार्थ मूत्र के साथ जाता है, मूत्र के साथ जब आल्व्युमीन और शक्कर जाता है तो उस की परीक्षा आखों के देखने से नहीं होती है इस लिये उस का निश्चय करना हो तो दूसरी रीति से करना चाहिये, इसी प्रकार यद्यपि मूत्र के साथ थोडा बहुत खार तो मिला हुआ होता ही है तो भी जब वह परिमाण से अधिक जाता है तब मूत्र को थोडी देरतक रहने देने से वह खार मूत्र के नीचे जम जाता है तब उस के जाने का ठीक निश्चय हो जाता है, रोग की परीक्षा करना हो तब इन निम्नलिखित बातो का खयाल रखना चाहिये:—

१—मूत्र धुँएके रगके समान हो तो उस में खून का सम्भव होता है।

२—मूत्र का रग लाल हो तो जान लेना चाहिये कि—उस में खटास (एसिड) जाता है।

३—मूत्र के ऊपर के फेन यदि जल्दी न बैठें तो जान लेना चाहिये कि उस में आल्व्युमीन अथवा पित्त है।

४—मूत्र गहरे पीले रग का हो तो उस में पित्त का जाना समझना चाहिये।

५—मूत्र गहरा भूरा या काले रग का हो तो समझना चाहिये कि—रोग प्राणघातक है।

६—मूत्र पानी के समान बहुत होता हो तो मधुप्रमेह की शङ्का होती है, हिस्टीरिया के रोगमें भी मूत्र बहुत होता है, मूत्रपर हजारों चीटिया लगें तो समझ लेना चाहिये कि मधुप्रमेह है।

७—यदि मूत्र मैला और गदला हो तो जान लेना चाहिये कि उस में पीप जाता है।

८—मूत्र लाल रंग का और बहुत थोडा होता हो तो कलेजे के, मगज़ के और बुखार के रोग की शंका होती है।

९—मूत्र में खटास अधिक जाता हो तो समझना चाहिये कि पाचनक्रिया में बाधा पहुँची है।

१०—कामले (पीलिये) में और पित्त के प्रकोप में मूत्र में बहुत पीलापन और हरापन होता है तथा किसी समय यह रग ऐसा गहरा हो जाता है कि काले रग की शका होती है, ऐसे मूत्र को हिलाकर देखने से अथवा थोड़ा पानी मिलाकर देखने से मूत्र का पीलापन मालूम हो सकता है।

२—रसायनिक प्रयोग से मूत्र में स्थित भिन्न २ वस्तुओं की परीक्षा करने से कई एक बातों का ज्ञान हो सकता है, इस का वर्णन इसप्रकार है:—

१—इस का नियम भी यही है कि—जब मूत्र बहुत आता है तब वह पानी के समान ही होता है॥

१-पित्त—यद्यपि मूत्र के रंग के देखने से पित्त का अनुमान कर सकते हैं परन्तु रसायनिक रीति से परीक्षा करने से उस का ठीक निश्चय हो जाता है, पित्त के जानने के लिये रसायनिक रीति यह है कि—मूत्र की थोड़ी सी बूंद को कांच के प्याले में अथवा रकेबी में डाल कर उस में थोड़ा सा नाइट्रिक एसिड डालना चाहिये, दोनों के मिलने से यदि पहिले हरा फिर आसमानी और पीछे लाल रंग हो जावे तो समझ लेना चाहिये कि मूत्र में पित्त है।

२-युरिक एसिड—यूरिक एसिड आदि मूत्र के यद्यपि स्वाभाविक तत्त्व हैं परन्तु ये भी जब अधिक जाते हों तो उन की परीक्षा इस प्रकार से करनी चाहिये कि-मूत्र को एक रकेबी में डाल कर गर्म करे, पीछे उस में नाइट्रिक एसिड की थोड़ी सी बूंद डाल देवे, यदि उस में पासे बँध जावें तो जान लेना चाहिये कि मूत्र में यूरिया अधिक है तथा मूत्र को रकेबी में डाल कर उस में नाइट्रिक एसिड डाला जावे पीछे उसे तपाने से यदि उस में पीले रंग का पदार्थ हो जावे तो जानलेना चाहिये कि मूत्र में यूरिक एसिड जाता है।

३-आल्ब्युमीन—आल्ब्युमीन एक पौष्टिक तत्त्व है, इसलिये जब वह मूत्र के साथ में जाने लगता है तब शरीर कमजोर हो जाता है, इस के जाने की परीक्षा इस रीति से करनी चाहिये कि मूत्र की परीक्षा करने की एक नली (ट्युब) होती है, उस में दो तीन रुपये भर मूत्र को लेना चाहिये, पीछे उस नली के नीचे मोमबत्ती को जला कर उस से मूत्र को गर्म करना चाहिये, जब मूत्र उबलने लगे तब उस के अन्दर खारेके तेजाब की थोड़ी सी बूंदें डाल देनी चाहियें, इस की बूंदों से मूत्र बादलों की तरह धुंधला हो जावेगा और वह धुंधला हुआ मूत्र जब ठहर जावेगा तब उस में यदि आल्ब्युमीन होगा तो नीचे बैठ जावेगा और आँखों से दीखने लगेगा परन्तु मूत्र के गर्म करने से अथवा गर्म कर उस में खारे के तेजाब की बूंदें डालने से यदि वह मूत्र धुंधला न होवे अथवा धुंधला होकर धुंधलापन मिट जावे तो समझ लेना चाहिये कि मूत्र में आल्ब्युमीन नहीं जाता है, इस परीक्षा से गर्म किये हुए और नाइट्रिक एसिड मिले हुए मूत्र में जमा हुआ पदार्थ क्षार होगा तो वह फिर भी मूत्र में मिल जायगा और आल्ब्युमीन होगा तो वैसे का वैसा ही रहेगा।

४-ड्युगर अर्थात् शक्कर—जब मूत्र में अधिक वा कम शक्कर जाती है तब उस रोग को मधुप्रमेह का भयङ्कर रोग[1] है, इस रोग कहते कहते में मूत्र बहुत मीठा सफेद

---

[1] १-डायबटीज इस का दूसरा नाम डायबिटीज (मधु) का रोग जानना परन्तु आम लोगों को तो प्रमेह नही ही जाननी चाहिये ॥

तथा पानी के समान होता है और उस में शहद के समान गन्ध आती है, इस रोग में रसायनिक रीति से परीक्षा करने से शकर का होना ठीक रीति से जाना जा सकता है, इस की परीक्षा की यह रीति है कि–यदि शकर की शङ्का हो तो फिर मूत्र को गर्म कर छान लेना चाहिये ऐसा करने से यदि उस में आल्व्युमीन होगा तो अलग हो जावेगा, पीछे मूत्र को काच की नली में लेकर उस में आधा लीकर पोटास अथवा सोडा डालना चाहिये, पीछे नीलेथोथे के पानी की थोड़ी सी बूंदें डालनी चाहियें परन्तु नीलेथोथे की बूँदें बहुत ही होशियारी से (एक बूँद के पीछे दूसरी बूँद) डालना चाहिये तथा नली को हिलाते जाना चाहिये, इस तरह करने से वह मूत्र आसमानी रग का तथा पारदर्शक (जिस में आर पार दीखे ऐसा) हो जाता है, पीछे उस को खूब उबालना चाहिये, यदि उस में शकर होगी तो नली के पेंदे में नारगी के रग के समान लाल पीले पदार्थ का जमाव होकर ठहर जावेगा तथा स्थिर होने के बाद वह कुछ लाल और भूरे रग का हो जावेगा, यदि ऐसा न हो तो समझ लेना चाहिये कि मूत्र में शकर नहीं जाती है।

५–**खार और खटास (एसिड और आल्कली क्षार)**—मूत्र में खार का भाग जितना जाना चाहिये उस से अधिक जाने से रोग होता है, खार के अधिक जाने की परीक्षा इस प्रकार होती है कि–हलदी का पानी करके उस में सफेद ब्लार्टिंग पेपर (स्याही चूसनेवाला कागज़) भिगाना चाहिये, फिर उस कागज़ को सुखाकर उस में का एक टुकडा लेकर मूत्र में भिगा देना चाहिये, यदि मूत्र में खार का भाग अधिक होगा तो इस पीले कागज़ का रग बदल कर नारगी अथवा बादामी रग हो जायगा, फिर इस कागज को पीछे किसी खटाई में भिगाने से पूर्व के समान पीला रग हो जावेगा।

यह खार की परीक्षा की रीति कह दी गई, अब अधिक खटास जाती हो[3] उस की परीक्षा लिखते है—एक प्रकार का लीटमस पेपर बना हुआ तैयार आता है उसे लेना चाहिये, यदि वह न मिल सके तो ब्लार्टिंगपेपर को लेकर उसे कोबिज के रस में भिगाना चाहिये, फिर उसे सुखा लेना चाहिये, तब उस का आसमानी रग हो जावेगा, उस कागज का टुकडा लेकर मूत्र में भिगाना चाहिये, यदि मूत्र में खटास अधिक होगा तो उस कागज का रग भी अधिक लाल हो जावेगा और यदि खटास कम होगा तो

१–डाक्टर लोग हलदी का टिंक्चर लेते हैं ॥

२–इस प्रकार की मूत्रपरीक्षा के लिये बना हुआ भी टरमेरिक पेपर इगलैंड से आता है, यदि वह न होवे तो हलदी में भिगाया हुआ ही पूर्वोक्त (पहिले कहा हुआ) कागज लेना चाहिये ॥

३–अधिक खटास के जाने से भी शरीर मे अनेक प्रकार के रोग हो जाते हैं ॥

कागज का रंग भी कम अल होगा, तात्पर्य यह है की खटास की न्यूनाधिकता के समान ही कागज के लाल रंग की भी न्यूनाधिकता होगी ॥

३–सूक्ष्मदर्शक यन्त्र के द्वारा जो मूत्रपरीक्षा की जाती है उस में ऊपर लिखी हुई दोनों रीतियों में से एक भी रीति के करने की आवश्यकता नहीं होती है अर्थात् न तो आँखोंके द्वारा ध्यान के साथ देखकर मूत्र के रँग आदि की जाँच करनी पड़ती है और न रसायनिक परीक्षा के द्वारा अनेक रीतियों से मूत्र में स्थित अनेक पदार्थों की जाँच करनी पड़ती है, किन्तु इस रीतिसे मूत्र के रँग आदि की तथा मूत्र में स्थित और मूत्र के साथ जानेवाले पदार्थों की जाँच अतिसुगमता से हो जाती है, परन्तु हाँ इस (सूक्ष्म दर्शक) यन्त्र के द्वारा मूत्र में स्थित पदार्थों की ठीक तौर से जाँच कर लेना प्रायः उन्हीं के लिये सुगम है जिन को मूत्र में स्थित पदार्थों का स्वरूप ठीक रीति से मालूम हो, क्योंकि मिश्रित पदार्थ में स्थित वस्तुविशेष (खास चीज) का ठीक निश्चय कर लेना सहज वा सर्वसाधारण का काम नहीं है, यद्यपि यह बात ठीक है कि–सूक्ष्मदर्शक यन्त्र से मूत्र में मिश्रित तथा सूक्ष्म पदार्थ भी उत्कटरूप से प्रतीत होने लगता है तथापि यह तो मानना ही पड़ेगा कि–उस पदार्थ के स्वरूप को न जाननेवाला पुरुष उस का निश्चय कैसे कर सकता है, जैसे–दृष्टान्त के लिये यह कहा जा सकता है कि–आल्व्युमीन के स्वरूप को जो नहीं जानता है वह सूक्ष्मदर्शक यन्त्र के द्वारा मूत्र में स्थित आल्व्युमीन को देख कर भी उस का निश्चय कैसे कर सकता है, तात्पर्य केवल यही है कि सूक्ष्मदर्शक यन्त्र के द्वारा वे ही लोग मूत्र में स्थित पदार्थों का निश्चय सहज में कर सकते हैं जो कि उन (मूत्र में स्थित) पदार्थों के स्वरूप को ठीक रीति से जानते हों।

यह तो प्रायः सब ही जानते और मानते हैं कि–वर्तमान समय में अपने देश के वैद्यों की अपेक्षा डाक्टर लोग शरीर के आभ्यन्तर (भीतरी) भागों, उन की क्रियाओं और उन में स्थित पदार्थों से विशेष विज्ञ (जानकार) हैं, क्योंकि उन को शरीर के आभ्यन्तर भागों के देखने भालने आदि का प्रतिदिन काम पड़ता है, इसलिये यह कहा जा सकता है कि–डाक्टर लोग सूक्ष्मदर्शक यन्त्र के द्वारा मूत्रपरीक्षा को अच्छे प्रकार से कर सकते हैं।

पहिले कह चुके हैं कि–इस (सूक्ष्मदर्शक) यन्त्र के द्वारा जो मूत्रपरीक्षा होती है वह मूत्र में स्थित पदार्थों के स्वरूप के ज्ञान से विशेष सम्बन्ध रखती है, इस लिये सर्व साधारण लोग इस परीक्षा का नहीं कर सकते हैं, क्योंकि मूत्र में स्थित सब पदार्थों के स्वरूप का ज्ञान होना सर्वसाधारण के लिये अतिदुस्तर (कठिन) है, अतः सूक्ष्मदर्शक यन्त्र के द्वारा जब मूत्रपरीक्षा करनी वा करानी हो तब डाक्टरों से करानेमी चाहिये, अर्थात् डाक्टरों से मूत्रपरीक्षा करा के मूत्र में जानेवाले पदार्थों की न्यूनाधिकता (कमी वा ज्यादती) का निश्चय कर तदनुकूल उचित उपाय करना चाहिये।

ऊपर लिखे अनुसार मूत्र में स्थित सब पदार्थों के स्वरूप का ज्ञान यद्यपि सर्वसाधारण के लिये अति दुस्तर है और उन सब पदार्थों के स्वरूप का वर्णन करना भी एक अति कठिन तथा विशेषस्थानापेक्षी (अधिक स्थान की आकांक्षा रखनेवाला) विषय है अतः उन सब का वर्णन ग्रन्थ के विस्तार के भय से नहीं लिख सकते हे परन्तु तथापि संक्षेप से कुछ इस परीक्षा के विषय में तथा मूत्र में स्थित अत्यावश्यक कुछ पदार्थों के स्वरूप के विषय में गृहस्थों के लाभ के लिये लिखते हैं:—

१–पहिले कह चुके हैं कि–नीरोग मनुष्य के मूत्र का रँग ठीक सूखी हुई घास के रंग के समान होता है, तथा उस में जो खार और खटास आदि पदार्थ यथोचित परिमाण में रहते हैं उन का भी वर्णन कर चुके हैं, इस लिये सूक्ष्मदर्शक यन्त्र के द्वारा मूत्रपरीक्षा करनेपर नीरोग मनुष्य का मूत्र ऊपर लिखे अनुसार (उक्त रँग से युक्त तथा यथोचित खार आदि के परिमाण से युक्त) ऊपर से स्पष्टतया न दीखने पर भी उक्त यन्त्र से साफ तौर से दीख जाता है ।

२–वात, पित्त, कफ, द्विदोष (दो २ मिले हुए दोष) तथा सन्निपात (त्रिदोष) दोषवाले, एवं अजीर्ण और ज्वर आदि विकारवाले रोगियों का मूत्र पहिले लिखे अनुसार उक्त यन्त्र से ठीक दीख जाता है, जिस से उक्त दोषों वा उक्त विकारों का निश्चय स्पष्टतया हो जाता है ।

३–मूत्र में तैल की बूँद के डालने से दूसरी रीति से जो मूत्रपरीक्षा तालाब, हंस, छत्र, चमर और तोरण आदि चिह्नों के द्वारा रोग के साध्यासाध्यविचार के लिये लिख चुके हैं वे सब चिह्न स्पष्ट न होने पर भी इस यन्त्र से ठीक दीख जाते हैं अर्थात् इस यन्त्र के द्वारा उक्त चिह्न ठीक २ मालूम होकर रोग की साध्यासाध्यपरीक्षा सहज में हो जाती है ।

४–पहिले कह चुके हैं कि–डाक्टरों के मत से मूत्र में मुख्यतया दो चीजें हैं—युरिआ और एसिड, तथा इन के सिवाय–नमक, गन्धक का तेजाब, चूना, फासफरिक (फासफर्स) एसिड, मेगनेशिया, पोटास और सोडा, इन सब वस्तुओं का भी थोड़ा २ तत्त्व और बहुत सा भाग पानी का होता है[1], अतः इस यन्त्र के द्वारा मूत्रपरीक्षा करने पर उक्त पदार्थों का ठीक २ परिमाण प्रतीत होजाता है, यदि न्यूनाधिक परिमाण हो तो पूर्व लिखे अनुसार विकार वा हानि समझ लेनी चाहिये, इन पदार्थों में से गन्धक का तेजाब, चूना, पोटास तथा सोडा, इन के स्वरूप को प्रायः मनुष्य जानते ही हैं अत. इस यन्त्र के द्वारा इन के परिमाणादि का निश्चय कर सकते हैं, शेष आवश्यक पदार्थों का स्वरूप आगे कहा जायगा ।

१–इन सब पदार्थों के परिमाण का विवरण पहिले ही लिख चुके हैं ॥

५-इस यन्त्र के द्वारा मूत्र को देखने से यदि उस (मूत्र) के नीचे कुछ जमाव सा मालूम पड़े तो समझ लेना चाहिये कि-क्षार, खून, रसी (पीप) तथा चर्बी आदि का भाग मूत्र के साथ आता है, इन में भी विशेषता यह है कि-क्षार का भाग अधिक होने से मूत्र फटा हुआ सा, खून का भाग अधिक होने से धूम्रवर्ण, रसी (पीप) का भाग अधिक होने से मैल और गदलेपन से युक्त तथा चर्बी का भाग अधिक होने से चिकना और चर्बी के कतरों से युक्त दीख पड़ता है ।

६-मूत्र में खटास का भाग अधिक होने से यह (मूत्र) रक्तवर्ण का (लाल रँग का) तथा पित्त का भाग अधिक होने से पीत वर्ण का (पीले रँग का) और फेनों से हीन इस यन्त्र के द्वारा स्पष्टतया (साफ तौर से) दीख पड़ता है ।

७-मूत्र में शक्कर के भाग का जाना इस यन्त्र के द्वारा प्राय सब ही जान सकते हैं, क्योंकि शक्कर का स्वरूप सब ही को विदित है ।

८-इस यन्त्र के द्वारा परीक्षा करने से यदि मूत्र-फेनरहित, अतिश्वेत (बहुत सफेद अर्थात् अण्डे की सफेदी के समान सफेद), स्निग्ध (चिकना), पौष्टिक तत्त्व से युक्त, औंटे के रस के समान रसदार, पोस्त के तेल के समान स्निग्ध तथा नारियल के गूदे के समान स्निग्ध (चिकने) पदार्थ से संघट्ट (गुथा हुआ), गाढ़ा तथा रक्त (खून) की कान्ति (चमक) से युक्त दीख पड़े तो जान लेना चाहिये कि-मूत्र में आल्ब्यूमीन है, इस प्रकार आल्ब्युमीन का निश्चय हो जाने पर मूत्राशय के जलन्धर का भी निश्चय हो सकता है, जैसा कि पहिले लिख चुके हैं ।

९-इस यन्त्र के द्वारा देखने पर यदि मूत्र में जमाये हुए पौधे की राख के समान, वा कड़ाई में भूने हुए पदार्थ के समान कोई पदार्थ दीखे अथवा सोडे की राख

१-इस का कुछ वर्णन आगे नहीं संख्या में किया जायगा ॥

२-यह शब्द दो प्रकार का है-जिन में से एक का उच्चारण आल्ब्युम्मन है, यह लाटिन तथा फ्रेञ्च भाषा का शब्द है, इस को अंग्रेजी भाषा में अलब्यूमन भी कहते हैं, जिस का अर्थ सफेद है, इस शब्द के तीन अर्थ हैं-१-अण्डे की सफेदी २-पल्वेरिस कल्लेषात्मक भाग जो कि बहुत से पौधों के बीजके परदे में इकट्ठा रहता है परन्तु गर्भ में मिला नहीं रहता है यह अन्न अर्थात् गेहूं और इसी किस्म के दूसरे अन्नों में आटे का हिस्सा होता है, पोस्त के दाने में रोगनी (तेल का) हिस्सा होता है और नारियल में गूदेदार हिस्सा होता है, ३-यह रसायन के नियम से वही वस्तु है जो कि आल्ब्युमीन है (जिस का अर्थ अभी आगे कहते हैं) दूसरे शब्द का उच्चारण आल्ब्युमीन है, यह भाग द्रव तथा चिपचिपा पदार्थ होता है जो कि खास आवश्यक (जरूरी) भाग अण्डे का होता है और लोहू का पतला होता है और यह दूसरे हैवानी भागों में पाया जाता है यह चाहे द्रव हो और चाहे रस हो, इस के सिवाय यह पौधों में भी पाया जाता है, यह पानी में घुल जाता है तथा गर्मी और दूसरी रासायनिक रीतियों से जम जाता है ॥

सी दीख पड़े अथवा तेजावी सोडा वा तेजावी पोटास दीख पड़े तो जान लेना चाहिये कि मूत्र में खार और खटास (आलकेली खार और एसिड) है ।

यह सक्षेप से सूक्ष्मदर्शक यन्त्र के द्वारा मूत्रपरीक्षा कही गई है, इस के विषय में यदि विशेष हाल जानना हो तो डाक्टरी ग्रन्थों से वा डाक्टरों से पूँछ कर जान सकते है॥

मलपरीक्षा—मल से भी रोग की बहुत कुछ परीक्षा हो सकती है तथा रोग के साध्य वा असाध्य की भी परीक्षा हो सकती है, इस का वर्णन इस प्रकार है:—

१–वायुदोषवाले का मल–फेनवाला, रूखा तथा धुएँके रग के समान होता है और उस में चौथा भाग पानी के सदृश होता है ।

२–पित्तदोषवाले का मल–हरा, पीला, गन्धवाला, ढीला तथा गर्म होता है ।

३–कफदोषवाले का मल–सफेद, कुछ सूखा, कुछ भीगा तथा चिकना होता है ।

४–वातपित्तदोषवाले का मल–पीला और काला, भीगा तथा अन्दर गाठोंवाला होता है ।

५–वातकफदोषवाले का मल–भीगा, काला तथा पपोटेवाला होता है ।

६–पित्तकफदोषवाले का मल–पीला तथा सफेद होता है ।

७–त्रिदोषवाले का मल–सफेद, काला, पीला, ढीला तथा गाठोवाला होता है ।

८–अजीर्णरोगवाले का मल–दुर्गन्धयुक्त और ढीला होता है ।

९–जलोदररोगवाले का मल–बहुत दुर्गन्धयुक्त और सफेद होता है ।

१०–मृत्युसमय को प्राप्त हुए रोगी का मल–बहुत दुर्गन्धयुक्त, लाल, कुछ सफेद, मास के समान तथा काला होता है ।

यह भी स्मरण रखना चाहिये कि जिस रोगी का मल पानी में डूब जावे वह रोगी बचता नहीं है ।

इस के अतिरिक्त मलपरीक्षा के विषय में निम्नलिखित बातों का भी जानना अत्यावश्यक है जिन का वर्णन सक्षेप से किया जाता है:—

१–इस शब्द का प्रयोग बहुवचन मे होता है अर्थात् अलकलिस वा अलकलीज, इस को फ्रेंच भाषा मे अल्कली भी कहते हैं, यह एक प्रकार का खार पदार्थ है, इस शब्द के कोषकारों ने कई अर्थ लिखे हैं, जैसे–पौधे की राख, कढाई में भूनना, वा भूनना, सोडे की राख, तेजावी सोडा तथा तेजावी पोटास इत्यादि, इस का रासायनिक स्वरूप यह है कि–यह तेजावी असली चीजों में से है, जैसे–सोडा, पोटास, गोंदविशेष और सोडे की किस्म का एक तेज तेजाब, इस का मुख्य गुण यह है कि–यह पानी और अलकोहल (विष) मे मिल जाता है तथा तेल और चर्बी से मिल कर साबुन को बनाता है और तेजाब से मिलकर नमक को बनाता है या उसे मातदिल कर देता है, एव बहुत से पौधों की जर्दी (पीलेपन) को भूरे रग की कर देता है और काई वा पौधे के लाल रंग को नीला कर देता है ॥

१–**पतला दस्त**—अपची से अथवा संग्रहणी के रोग से पतले दस्त होते हैं, यदि मल में खुराक का कच्चा भाग दीखे तो समझना चाहिये कि–अन्न का पाचन ठीक रीतिसे नहीं होता है, आँतों में पित्तके पड़ने से भी मल पतला और नरम आता है, अतीसार और हैजे में दस्त पानी के समान पतला आता है, यदि क्षय रोग में विनाकारण ही पतला दस्त आवे तो समझ लेना चाहिये कि रोगी नहीं बचेगा।

२–**करड़ा दस्त**—नित्य की अपेक्षा यदि करड़ा दस्त आवे तो कब्जियत की निशानी समझनी चाहिये, हरस के रोगी को सदा सख्त दस्त आता है तथा उस में प्रायः सफरे का भाग छिल जाने से उस म से खून आता है, पेट में अथवा सफरे में वादी के रहने से सदा दस्त की कब्जी रहती है, यदि कलेजे में पित्त की क्रिया ठीक रीति से न होवे तथा आवश्यकता के अनुसार पित्तकी उत्पत्ति न हो अथवा मल को आगे धकेलने के लिये आँतों में तंग और ढीले होने की यथावश्यक (जितनी चाहिये उतनी) शक्ति न होवे तो दस्त करड़ा आता है।

३–**खूनवाला दस्त**—यदि दस्तके साथ में मिला हुआ खून आता हो अथवा आम गिरती हो तो समझ लेना चाहिये कि मरोड़ा हो गया है, हरस रोग में तथा रक्तपित्त रोग में खून दस्त से अलग गिरता है, अर्थात् दस्त के पहिले वा पीछे धार होकर गिरता है।

४–**अधिक खून व पीपवाला दस्त**—यदि दस्त के मार्ग से खून बहुत गिरे तथा पीप एक दम से आने लगे तो समझ लेना चाहिये कि फस्वा पककर आँतों में फूटा है।

५–**मांस के धोवन के समान दस्त**—यदि दस्त धोये हुए मांस के पानी के समान आवे तथा उस में चाहे कुछ खून भी हो वा न हो परन्तु काले छीलों के समान हो और उस में बहुत दुर्गन्ध हो तो समझना चाहिये कि आँतें सड़ने लगी हैं।

६–**सफेद दस्त**—यदि दस्त का रंग सफेद हो तो समझना चाहिये कि कलेजे में से पित्त यथावश्यक (चाहिये जितना) आँतों में नहीं आता है, प्रायः कामला पित्ताशय तथा कलेजे के रोग में ऐसा दस्त आता है।

७–**सफेद कांजी के समान या चाँवलों के धोवन के समान दस्त**—हैजे में तथा बड़े (अत्यन्त) अजीर्ण में दस्त सफेद कांजी के समान अथवा चाँवलों के धोवन के समान आता है।

८-**काला वा हरा दस्त**—यदि काला अथवा हरा दस्त आवे तो समझना चाहिये कि कलेजे में रोग तथा पित्त का विकार है[1]।

प्रश्नपरीक्षा ॥

रोगी से कुछ हकीकत के पूछने से भी रोगों की विज्ञता (जानकारी) होती है और ऐसी विज्ञता पहिले लिखी हुई परीक्षाओं से भी नहीं हो सकती है[2], यद्यपि कई समयों में ऐसा भी होता है कि-रोगी से पूछने से भी रोग का यथार्थ हाल नहीं मालूम होता है और ऐसी दशा में उस के कथन पर विशेष विश्वास भी रखना योग्य नहीं होता है, परन्तु इस से यह नहीं मान लेना चाहिये कि-रोगी से हकीकत का पूछना ही व्यर्थ है, किन्तु रोगी से पूछ कर उस की सब अगली पिछली हकीकत को तो अवश्य जानना ही चाहिये, क्योंकि पूछने से कभी २ कोई २ नई हकीकत भी निकल आती है, उस से रोग की उत्पत्ति के कारण का पता मिल सकता है और रोग की उत्पत्ति के कारण का अर्थात् निदान का ज्ञान होना वैद्यों के लिये चिकित्सा करने में बहुत ही सहायक[3] है, इस लिये रोगी से वारवार पूछ २ कर खूब निश्चय कर लेना चाहिये, केवल इतना ही नहीं किन्तु बहुत सी बातों को रोगी के पास रहनेवालों से अथवा सहवासियों से पूछ के निश्चय करना चाहिये, जैसे-यदि रोगी को वमन (उलटी) होता है तो वमन के कारण को पूछ कर उस कारण को वन्द करना चाहिये, ऐसा करने से वमन को वन्द करने की कोई आवश्यकता नहीं रहती[4] है, जैसे यदि पित्त से वमन होता हो पित्त को दवाना चाहिये, यदि अजीर्ण से होता हो तो अजीर्ण का इलाज करना चाहिये, तथा यदि होजरी की हरकत से होता हो तो उस ही का इलाज करना चाहिये, तात्पर्य यह है कि-वमन के रोग में वमन के कारण का निश्चय करने के लिये वहुत पूछ ताछ करने की आवश्यकता है, इसी प्रकार से सब रोगों के कारणों का निश्चय सब से प्रथम करना चाहिये, ऐसा न करने से चिकित्सा का कुछ भी फल नहीं होता[5] है, देखो! यदि बुखार अजीर्ण से आया हो और उस का इलाज दूसरा किया जावे तो वह आराम नहीं हो सकता है, इसलिये पहिले इस का निश्चय करना चाहिये कि बुखार अजीर्ण से हुआ है अथवा और किसी

१-परन्तु स्मरण रहे कि आँवला गूगुल तथा लोहे से बनी हुई दवाओं के खाने से दस्त काला आता है, इस लिये यदि इन में से कोई कारण हो तो काले दस्त से नहीं डरना चाहिये ॥

२-क्योंकि दूसरी परीक्षाओं से कुछ न कुछ सन्देह रह जाता है परन्तु रोगी से हकीकत पूछ लेने से रोग का ठीक निश्चय हो जाता है ॥

३-सहायक ही नहीं किन्तु यह कहना चाहिये कि-निदान का जानना ही चिकित्सा का मुख्य आधार है ॥

४-क्योंकि वमन के कारण को वन्द कर देनेसे वमन आप ही वन्द हो जाता है ॥

५-कारण का निश्चय किये विना केवल चिकित्सा ही निष्फल हो जाती हो यही नहीं किन्तु ऐसी चिकित्सा दूसरे रोगों का कारण वन जाती है ॥

कारण से हुआ है, इस का निश्चय जैसे दूसरे लक्षणों आदि से होता है उसी प्रकार रोगी ने दो तीन दिन पहिले क्या किया था, क्या खाया था, इत्यादि बातों के पूछने से शीघ्र ही निश्चय हो जाता है।

बहुत से रोग चिन्ता, भय, क्रोध और कामविकार आदि मनःसम्बन्धी कारणों से भी पैदा होते हैं और शरीर के लक्षणों से उन का ठीक २ ज्ञान नहीं होता है, इसलिये रोगों में हकीकत के पूछने की बहुत ही आवश्यकता है, उदाहरण के लिये पाठकगण जान सकते हैं कि–शिर का दुखना एक साधारण रोग है परन्तु उस के कारण बहुत से हैं, जैसे–शिर में गर्मी का होना, दस्त की कब्जी, चक्षु का आना और ज्वर आदि कई कारणों से शिर दुखा करता है, अब शिर दुखने के कारण का ठीक निश्चय न करके यदि दूसरा इलाज किया जावे तो कैसे आराम हो सकता है ? फिर शिर दुखने के कारणों को तलाश करने में यद्यपि नाड़ीपरीक्षा भी कुछ सहायता देती है परन्तु यदि किसी प्रकार से रोग के कारण का पूर्ण अनुभव हो जावे तो शेष किसी परीक्षा से कोई काम नहीं है और रोग के कारण का अनुभव होने में केवल रोगी से सब हाल का पूछना प्रधान साधन है, जैसे देखो ! शिर के दर्द में यदि रोगी से पूछ कर कारण का निश्चय कर लिया जावे कि तेरा शिर किस तरह से और कब से दुखता है इत्यादि, इस प्रकार कारण का निश्चय हो जाने पर इलाज करने से शीघ्र ही आराम हो सकता है, परन्तु कारण का निश्चय किये बिना चिकित्सा करने से कुछ भी लाभ नहीं हो सकता है, जैसे देखो ! यदि ऊपर लिखे कारणों में से किसी कारण से शिर दुखता हो और उस कारण को न समझ कर अमोनिया सुँघाया जावे तो उस से बिलकुल फायदा नहीं हो सकता है, फिर देखो ! दाँत के तथा कान के रोग से भी शिर अत्यन्त दुखने लगता है, इस बात को भी विरले ही लोग समझते हैं, इसी प्रकार कान के बहने से भी शिर दुखता है, इस बात को रोगी तो स्वप्न में भी नहीं जान सकता है, हां यदि वैद्य कान के दुखने की बात को पूछे अथवा रोगी अपने आप ही वैद्य को अव्वल से आखीर तक अपनी सब हकीकत सुनाते समय कान के बहने की बात को भी कह देवे तो कारण का ज्ञान हो सकता है।

बहुत से अज्ञान लोग वैद्य की आबरू (प्रतिष्ठा) और परीक्षा लेने के लिये हाथ लम्बा करते हैं और कहते हैं कि–"आप देखो ! नाड़ी में क्या रोग है ?" परन्तु ऐसा कभी भूल कर भी नहीं करना चाहिये, किन्तु आप को ही अपनी सब हकीकत साफ २ कह देनी चाहिये, क्योंकि केवल नाड़ी के द्वारा ही रोग का निश्चय कभी नहीं हो सकता है, किन्तु रोग के निश्चय के लिये अनेक परीक्षाओं की आवश्यकता होती है, इसी प्रकार वैद्य को भी चाहिये कि केवल नाड़ी के देखनेका आडम्बर रखकर रोगी को भ्रम में न डाले और न उसे डरावे किन्तु उस से धीरज से पूछ २ कर रोग की असली पहिचान

करे, यदि रोग की ठीक परीक्षा कराने के लिये कोई नया वा अज्ञान (अजान) रोगी आ जावे तो उस को थोड़ी देर तक बैठने देना चाहिये, जब वह स्वस्थ (तहेदिल) हो जावे तब उस की आकृति, आँखें और जीभ आदि परीक्षणीय (परीक्षा करने के योग्य) अङ्गों को देखना चाहिये, इस के बाद दोनों हाथों की नाड़ी देखनी चाहिये, तथा उस के मुख से सब हकीकत सुननी चाहिये, पीछे उस के शरीर का जो भाग जांचने योग्य हो उसे देखना और जाचना चाहिये, रोगी से हकीकत पूछते समय सब बातों का खूब निश्चय करना चाहिये अर्थात् रोगी की जाति, वृत्ति (रोज़गार), रहने का ठिकाना, आयु, व्यसन, भूतपूर्व रोग (जो पहिले हो चुका है वह रोग), विधिसहित पूर्वसेवित औषध (क्या २ दवा कैसे २ ली, क्या २ खाया पिया ? इत्यादि), औषधसेवन का फल (लाभ हुआ वा हानि हुई इत्यादि), इत्यादि सब बातें पूँछनी चाहियें ।

इन सब बातों के सिवाय रोगी के मा बाप का हाल तथा उन की शरीरसम्बन्धिनी (शरीर की) व्यवस्था (हालत) भी जाननी चाहिये, क्योंकि बहुत से रोग माता पिता से ही पुत्रों के होते है ।

यद्यपि स्वरपरीक्षा से भी रोगी के मरने जीने कष्ट रहने तथा गर्मी शर्दी आदि सब बातों की परीक्षा होती है परन्तु वह यहां ग्रन्थ के बढ़ जाने के भय से नहीं लिखी है, हां स्वरोदय के विषय में इस का भी कुछ वर्णन किया है, वहा इस विषय को देखना चाहिये ।

साध्यासाध्यपरीक्षा बल के द्वारा भी होती है, इस के सिवाय मृत्यु के चिह्न सक्षेप से कालज्ञान में लिखे है, जैसे—कानों में दोनों अंगुलियों के लगाने से यदि गडागडाहट न होवे तो प्राणी मर जाता है, आख को मसल कर अँधेरे में खोले, यदि बिजुली का सा झबका न होवे तथा आख को मसल कर मींचने से रंग २ का (अनेक रंगों का) जो आकाश से बरसता हुआ सा दीखता है वह न दीखे तो मृत्यु जाननी चाहिये, छाया-पुरुष से अथवा काच में देखने से यदि मस्तक आदि न दीखें तो मृत्यु जाननी चाहिये, यदि चैतसुदि ४ को प्रातःकाल चन्द्रस्वर न चले तो नौ महीने में मृत्यु जाननी चाहिये,

---

१—बहुत से धूर्त वैद्य अपना महत्त्व दिखलाने के लिये रोगी का हाल आदि कुछ भी न पूँछकर केवल नाडी ही देखते हैं (मानो सर्वसाधारण को वे यह प्रकट करना चाहते हैं कि हम केवल नाडी देखकर ही रोग की सर्व व्यवस्था को जान सकते है) तथा नाडी देखकर अनेक झूठी सच्ची बातें बना कर अपना प्रयोजन सिद्ध करने के लिये रोगी को बहका दिया करते हैं, परन्तु सुयोग्य और विद्वान् वैद्य ऐसा कभी नहीं करते हैं ॥

२—यदि कोई हो तो ॥

३—भूतपूर्व रोग का पूछना इस लिये आवश्यक है कि—उस का भी विचार कर ओषधि दी जावे, क्योंकि उपदश आदि भूतपूर्व कई रोग ऐसे भी हैं कि जो कारणसामग्री की सहायता पाकर फिर भी उत्पन्न हो जावे हैं—इस लिये यदि ऐसे रोग उत्पन्न होचुके हों तो चिकित्सा मे उन के पुनरुत्पादक कारण को बचाना पडता है ॥

इत्यादि, यह सब विवरण ग्रन्थ के बढ़ जाने के भय से यहां नहीं लिखा है, हां सार का सो कुछ वर्णन आगे (पञ्चमाध्याय में) लिखा ही जावेगा—यह संक्षेप से रोगपरीक्षा और उस के आवश्यक प्रकारों का कथन किया गया ॥

यह चतुर्थ अध्याय का रोगपरीक्षाप्रकार नामक बारहवां प्रकरण समाप्त हुआ ॥

तेरहवां प्रकरण—औषध प्रयोग ॥

औषधों का संग्रह ॥

जंगल में उत्पन्न हुई जो अनेक वनस्पतियां बाजार में बिकती हैं तथा अनेक दवायें जो धातुओं के संसर्ग से तथा उन की भस्म से बनती हैं इन्हीं सबों का नाम औषध (दवा) है, परन्तु इस ग्रन्थ में जो २ वनस्पतियां संगृहीत की गई हैं अथवा जिन २ औषधों का संग्रह किया गया है वे सब साधारण हैं, क्योंकि जिस औषध के बनाने में बहुतज्ञान, चतुराई, समय और धन की आवश्यकता है उस औषध का शास्त्रोक्त (शास्त्र में कहा हुआ) विधान और रस आदि विद्याशाला के सिवाय अन्यत्र यथावस्थित (ठीक २) बन सकना असम्भव है, इस लिये जिन औषधों को साधारण वैद्य तथा गृहस्थ खुद बना सकें अथवा बाजार से मंगा कर उपयोग में ला सकें उन्हीं औषधों का संक्षेप से यहां संग्रह किया गया है तथा कुछ साधारण अंग्रेजी औषधों के भी नुसखे लिखे हैं कि जिन का यथोचित माप सर्वत्र किया जाता है ।

इन में से प्रथम कुछ शास्त्रोक्त औषधों का विधान लिखते हैं—

अरिष्ट और आसव—यानी पतला अथवा पतले प्रवाही पदार्थ में औषध को डाल कर उसे मिट्टी के बर्तन में भर के कपड़मिट्टी से उस बर्तन का मुँह बन्द कर एक वा दो पखवाड़े तक रक्खा रहने दे, जब उस में खमीर पैदा हो जावे तब उसे काम में लावे, औषधों को उबाले बिना रहने देने से आसव तैयार होता है और उबाल कर तथा दूसरे औषधों को पीछे से डाल कर रस छोड़ते हैं तब अरिष्ट तैयार होता है ।

१—अर्थात् वनस्पतियों और धातुओं से चिकित्सार्थ बने हुए पदार्थों का समावेश औषध शब्द में हो जाता है ॥

२—विद्याशाला शब्द से यहां यह स्थान समझना चाहिये कि जहां वैद्यकविद्या का नियमानुसार पठन पाठन होता हो तथा उसी के नियम के अनुसार सब औषधियां ठीक २ तैयार की जाती हों ॥

३—जैसे कुमार्यासव द्राक्षासव आदि ॥

४—जैसे अमृतारिष्ट आदि ॥

जहा औषधों का वजन न लिखा हो वहा इस परिमाण से लेना चाहिये कि—अरिष्ट के लिये उबालने की दवा ५ सेर, शहद ६। सेर, गुड़ १२॥ सेर और पानी ३२ सेर[1], इसी प्रकार आसव के लिये चूर्ण १। सेर लेना चाहिये तथा शेष पदार्थ ऊपर लिखे अनुसार लेने चाहियें।

इन दोनों के पीने की मात्रा ४ तोला है[2]।

मद्य—इसे यन्त्र पर चढ़ा कर अर्क टपकाते हैं, उसे मद्य (स्पिरिट) कहते है।

अर्क—औषधो को एक दिन भिगाकर यन्त्र[3] पर चढ़ा के भभका खींचते है, उसे अर्क[4] कहते हैं।

अवलेह—जिस वस्तु का अवलेह[5] बनाना हो उस का स्वरस लेना चाहिये, अथवा काढ़ा[6] बना कर उस को छान लेना चाहिये, पीछे उस पानी को धीमी आच से गाढ़ा पड़ने देना चाहिये, फिर उस में शहद गुड़ शक्कर अथवा मिश्री तथा दूसरी दवायें भी मिला देना चाहिये, इस की मात्रा आधे तोले से एक तोले तक है।

कल्क[7]—गीली वनस्पति को शिलापर पीस कर अथवा सूखी ओषधि को पानी डाल कर पीस कर लुगँदी कर लेनी चाहिये, इस की मात्रा एक तोले की है।

क्वाथ[8]—एक तोले ओषधि में सोलह तोले पानी डाल[9] कर उसे मिट्टी वा कलई के पात्र (वर्तन) में उकालना (उबालना) चाहिये, जब अष्टमाश (आठवा भाग) शेष रहे तब उसे छान लेना चाहिये, प्रायः उकालने की ओषधि का वजन एक समय के लिये ४

१–परन्तु कई आचार्यों का यह कथन है कि–अरिष्ट मे डालने के लिये प्रक्षेपवस्तु ४० रुपये भर, शहद २०० रुपये भर, गुड ४०० रुपये भर तथा द्रव पदार्थ १०२४ रुपये भर होना चाहिये ॥

२–यह पूर्णअवस्थावाले पुरुष के लिये मात्रा है, किन्तु न्यूनावस्था वाले के लिये मात्रा कम करनी पडती है, जिस का वर्णन आगे किया जावेगा, (इसी प्रकार सर्वत्र समझना चाहिये) ॥

३–यन्त्र कई प्रकार के होते हैं, उन का वर्णन दूसरे वैद्यक ग्रन्थों मे देख लेना चाहिये ॥

४–दयाधर्मवालों के लिये अर्क पीने योग्य अर्थात् भक्ष्य पदार्थ है परन्तु अरिष्ट और आसव अभक्ष्य हैं, क्योंकि जो बाईस प्रकार के अभक्ष्य के पदार्थों के खाने से बचता है उसे ही पूरा दयाधर्म का पालनेवाला समझना चाहिये ॥

५–जो वस्तु चाटी जावे उसे अवलेह कहते हैं ॥

६–तात्पर्य यह है कि यदि गीली वनस्पति हो तो उस का स्वरस लेना चाहिये परन्तु यदि सूखी ओषधि हो तो उस का काढा बना लेना चाहिये ॥

७–इस को मुसलमान वैद्य (हकीम) लऊक कहते हैं तथा सस्कृत मे इस का नाम कल्क है ॥

८–इस को उकाली भी कहते हैं ॥

९–तात्पर्य यह है कि ओषधि से १६ गुना जल डाला जाता है–परन्तु यह जल का परिमाण १ तोले से लेकर ४ तोले पर्यन्त औषध के लिये समझना चाहिये, चार तोले से उपरान्त कुडव पर्यन्त औषध मे आठगुना जल डालना चाहिये और कुडव से लेकर प्रस्थ (सेर) पर्यन्त औषध मे चौगुना ही जल डालना चाहिये ॥

तोले है, यदि क्वाथ को थोड़ा सा नरम करना हो तो चौथा हिस्सा पानी रखना चाहिये, एक बार उकाल कर छानने के पीछे जो कूचा रह जावे उस को दूसरी बार (फिर भी शाम को) उकाला जावे तथा छान कर उपयोग में लाया जावे उसे परकाथ (दूसरी उकाली) कहते हैं, परन्तु शाम को उकाले हुए क्वाथ का बासा कूचा दूसरे दिन उपयोग में नहीं लाना चाहिये, हां प्रातःकाल का कूचा उसी दिन शाम को उपयोग में लाने में कोई हर्ज नहीं है।

निर्बल रोगी को क्वाथ का अधिक पानी नहीं देना चाहिये।

नवीन ज्वर में पाचन क्वाथ (दोषों को पकानेवाला क्वाथ) देना हो तो अर्द्धावशेष (आधा बाकी) रख कर देना चाहिये।

कुटकी आदि कटु पदार्थों का क्वाथ ज्वर में देना हो तो ज्वर के पकने[1] के बाद देना चाहिये।

स्मरण रहे कि—क्वाथ करने के समय बर्तन पर ढक्कन देना (ढांकना) नहीं चाहिये, क्योंकि ढक्कन देकर (ढांक कर) बनाया हुआ क्वाथ फायदे के बदले बड़ा भारी नुकसान करता है।

कुरला[2]—दवा को उकाल कर उस पानी के अथवा रात को भिगोये हुए ठंढे हिम के अथवा फिटकड़ी और नीलाथोथा आदि को पानी में डाल कर उस पानी के मुखपाक आदि (मुँह का पक जाना अथवा मसूड़ों का फूलना आदि) रोगों में कुरले[3] किये जाते हैं।

ऊपर कहे हुए रोगों में त्रिफला, रांग, जिलकँटा, चमेली के पत्ते, दूध, घी और शहद, इन में से किसी एक वस्तु से कुरले करने से भी फायदा होता है।

गोली[4]—किसी दवा को अथवा सत्त्व को शहद, नीँबू का रस, अदरख का रस, पान का रस, गुड़, अथवा गूगुल[5] की चासनी में डाल कर छोटी २ गोलियां बनाई जाती हैं, पीछे इन का यथावश्यक उपयोग होता है।

१—ज्वर के पकने का समय यह है कि—वातिक ज्वर सात दिन में पैत्तिक ज्वर दश दिन में तथा श्लैष्मिक ज्वर बारह दिन में पकता है ॥

२—कुरले को संस्कृत में गण्डूष कहते हैं ॥

३—कुरले के ४ भेद हैं—स्नेहन (चिकनाहट करनेवाला) शमन (शान्ति करनेवाला) शोधन (साफ करनेवाला) और रोपण (रसादि धातुओं की भरती करके घाव को पूरा करनेवाला) वात की पीड़ा में स्नेहन पित्त की पीड़ा में शमन कफ की पीड़ा में शोधन तथा घाव आदि में रोपण कुरले किये जाते हैं, (इन का विधान वैद्यक ग्रन्थों में विस्तारपूर्वक देख लेना चाहिये) ॥

४—इन को संस्कृत में गुटिका कहते हैं तथा बड़ी २ गोलियों को मोदक कहते हैं ॥

५—गूगुल को यदि शोधना हो तो त्रिफला के क्वाथ में शोधना चाहिये तथा शिलाजीत भी इसी से शुद्ध होता है ॥

घी तथा तेल—जिन २ औषधों का घी अथवा तेल बनाना हो उन का स्वरस लेना चाहिये, अथवा औषधों का पूर्वोक्त कल्क लेना चाहिये, उस से चौगुना घी अथवा तेल लेना चाहिये, घी तथा तेल से चौगुना पानी, दूध, अथवा गोमूत्र लेना चाहिये और सूखे औषध को १६ गुने पानी में उकाल कर चतुर्थांश रखना चाहिये, क्वाथ से चौगुना घी तथा तेल होना चाहिये, गीले औषधों का कल्क बना कर ही डालना चाहिये, पीछे सब को उकालना चाहिये, उकालने से जब पानी जल जावे तथा औषध का भाग पक्का (लाल) हो जावे तथा घी अलग हो जावे तब उतार कर ठंढा कर छान लेना चाहिये।

इन के सिद्ध हो जाने की पहिचान यह है कि—तेल में जब झागों का आना बंद हो जावे तब उसे तैयार समझकर झट नीचे उतार लेना चाहिये तथा घी में जब झाग आ जावें त्योंही झट उसे उतार लेना चाहिये[2]।

इन के सिवाय वस्तुओं के तेल घाणी में तथा पातालयन्त्रादि से निकाले जाते है जिस का जानना गुरुगम तथा शास्त्राधीन है, इस घृत तथा तेल की मात्रा चार तोले की है।

चूर्ण—सूखे हुए औषधों को इकट्ठा कर अथवा अलग २ कूटकर तथा कपड़छान कर रख छोड़ना चाहिये, इस की मात्रा आधे तोले से एक तोले तक की है।

धुआँ वा धूप—जिस प्रकार अङ्गार में दवा को सुलगा कर धूप दे कर घर की हवा साफ की जाती है उसी प्रकार कई एक रोगों में दवा का धुआ चमड़ी को दिया जाता है, इस की रीति यह है कि—अगारे पर दवाको डालकर उसे खाट (चार पाई) के नीचे रख कर खाटपर बैठ कर मुँह को उघाड़े (खुला) रखना चाहिये और सब शरीर को कपडे से खाट समेत चारों तरफसे इस प्रकार ढकना चाहिये कि धुआँ बाहर न निकलने पावे किन्तु अगपर लगता रहे।

धूम्रपान—जैसे दवा का धुआं शरीर पर लिया जाता है उसी प्रकार दवा को हुक्के

१—तात्पर्य यह है कि—गिलोय आदि मृदु पदार्थों मे चौगुना जल डालना चाहिये, सोंठ आदि सूखे पदार्थों मे आठगुना जल डालना चाहिये तथा देवदारु आदि वहुत दिन के सूखे पदार्थों में सोलह गुना जल डालना चाहिये ॥

२—इन की दूसरी परीक्षा यह भी है कि स्नेह का पाक करते २ जब कल्क अंगुलियों मे मींडने से वत्ती के समान हो जावे और उस कल्क को अग्नि मे डालने से आवाज न हो अर्थात् चटचटावे नहीं तब जानना चाहिये कि अब यह स्नेह (घृत अथवा तेल) सिद्ध हो गया है ॥

३—यदि चूर्ण में गुड मिलाना हो तो समान भाग डालें, खाड डालनी हो तो दूनी डालें तथा चूर्ण मे यदि हींग डालनी हो तो घृत मे भून कर डालनी चाहिये, ऐसा करने से यह उत्क्लेद नहीं करती है, यदि चूर्ण को घृत या शहद में मिला कर चाटना हो तो उन्हें (घृत वा शहद को) चूर्ण से दूने लेवे, इसी प्रकार यदि पतले पदार्थ के साथ चूर्ण को लेना हो तो वह (जल आदि) चौगुना लेना चाहिये ॥

में भरकर फिरग तथा गठिया आदि रोगों में मुँह से वा नाक से पीते हैं, इसे धूम्रपान[1] कहते हैं ।

नस्य[2]—नाक में घी तेल तथा चूर्णकी सूँघनी की जाती है उस को नेस कहते हैं ।

पान—किसी दवा को ३२ गुने अथवा उस से भी अधिक पानी में उकाल कर आधा पानी बाकी रक्खा जावे तथा उसे पिया जावे इसे पान कहते हैं ।

पुटपाक—किसी हरी वनस्पति को पीस कर गोला बना कर उस को बड़ (बरगद) या एरण्ड अथवा जामुन के पत्ते में लपेट कर ऊपर कपड़मिट्टी का थर दे कर बन कण्डों को सुलगा कर निर्धूम होनेपर उस में रख देना चाहिये, जब गोले की मिट्टी लाल हो जावे तब उसे निकाल कर तथा मिट्टी को दूर कर रस निचोड़ लेना चाहिये, परन्तु यदि वनस्पति सूखी हो तो जल में पीस कर गोला कर लेना चाहिये, इस रस को पुटपाक कहते हैं, इस के पीने की मात्रा दो से चार तोले तक की है ।

पञ्चाङ्ग—मूल (जड़), पत्ते, फल, फूल तथा छाल, इस को पञ्चाङ्ग कहते हैं ।

फलवर्ती[3]—योनि अथवा गुदा के अन्दर दवा की मोटी बत्ती दी जाती है तथा इस में घी या दवाका तेल अथवा साबुन आदि भी लगाया जाता है ।

फांट[4]—एक भाग दवा के चूर्ण को आठ भाग गर्म पानी में कुछ घंटोंतक भिगा कर उस पानी को दवा के समान पीना चाहिये, ठंढे पानी में १२ घण्टेतक भीगने से भी फांट[5] तैयार होता है, इस की मात्रा ५ तोले से १० तोले तक है ।

बस्ति[6]—पिचकारी में कोई प्रवाही दवा भर कर मल वा मूत्र के स्थान में दवा चढ़ाई जाती है, इस का नाम बस्ति है, यह खाने की दवा के समान फायदा करती है ।

१–धूम्रपान छः प्रकार का है–शमन बृंहण रेचन कासघ्न वमन और व्रणधूपन इन का विधान और उपयोग दूसरे वैद्यक ग्रन्थों में देख लेना चाहिये–थका हुआ डरपोक दुःखिया जिस को तत्काल बस्तिविधि कराई गई हो रेचन लिया हुआ रात्रि में जागा हुआ प्यासा दाह से पीड़ित जिस का तालु सूख रहा हो उदररोगी जिस का मस्तक तप्त हो तिमिररोगी छर्दिवाला अफारे से पीड़ित उर:क्षत वाला प्रमेह से पीड़ित पाण्डुरोगी गर्भवती स्त्री रूक्ष और क्षीण जिस ने दूध मद्य घृत और शहद का उपयोग किया हो जिस ने भात दही आदि का उपयोग किया हो बालक, वृद्ध और कृश इत्यादि प्राणियों को धूम्रपान नहीं करना चाहिये ॥

२–नस्य के सब भेद और उन का विधान आदि दूसरे वैद्यक ग्रन्थों में देखना चाहिये क्योंकि नस्य का विधान बहुत विस्तृत है ॥

३–इस की मोटाई अंगूठे के समान होनी चाहिये ॥

४–कोई आचार्य चौगुने जल में भिगाने को लिखते हैं ॥

५–इस को कोई आचार्य हिम कहते हैं तथा इसी जल को छः से नवगुने से मन्थ कहलाता है ॥

६–बस्ति के सब भेद तथा उन का विधान आदि दूसरे वैद्यक ग्रन्थों में देख लेना चाहिये क्योंकि इस का बहुत विस्तार है ॥

भावना—दवा के चूर्ण को दूसरे रस के पिलाने को (दूसरे रस में भिगाकर शुष्क करने को) भावना कहते है, एकवार रस में घोट कर या भिगा कर सुखाले, इस को एक भावना कहते है, इसी प्रकार जितनी भावनायें देनी हो उतनी देते चले जावें।

बाफ—बाफ कई प्रकारसे ली जाती है, बहुत सी सेंक और बांधने की दवायें भी बफारे का काम देती हैं, केवल गर्म पानी की अथवा किसी चीज को डाल कर उकाले हुए पानी की बाफ सॅकड़े मुखवाले वर्त्तन से लेनी चाहिये, इस की विधि पहिले लिख चुके है।

बन्धेरण—किसी वनस्पति के पत्ते आदि को गर्म कर शरीर के दुखते हुए स्थान पर बॉधने को बन्धेरण कहते है।

मुरब्बा—हरड़ आँवला तथा सेव आदि जिस चीज़ का मुरब्बा बनाना हो उस को उबाल कर तथा धो कर दुगुनी या तिगुनी खाड या मिश्री की चासनी में डुबा कर रख छोड़ना चाहिये, इसे मुरब्बा कहते हैं।

मोदक—बड़ी गोली को मोदक कहते है, मेथीपाक तथा सोंठपाक आदि के मोदक गुड़ खाड़ तथा मिश्री आदि की चासनी में बाँधे जाते हैं।

मन्थ—दवा के चूर्ण को दवा से चौगुने पानी मे डाल कर तथा हिला कर या मथ-कर छान कर पीना चाहिये, इसे मन्थ कहते है।

यवागू—कांजी–अनाज के आटे को छ:गुने पानी में उकाल कर गाढ़ा कर के उतार लेना चाहिये।

लेप—सूखी हुई दवा के चूर्ण को अथवा गीली वनस्पति को पानी में पीस कर लेप किया जाता है, लेप दोपहर के समयमें करना चाहिये ठढी वख्त नही करना चाहिये, परन्तु रक्त पित्त, सूजन, दाह और रक्तविकार में समय का नियम नहीं है।

१–जितने रस मे सब चूर्ण डूब जावे उतना ही रस भावना के लिये लेना चाहिये, क्योंकि यही भावना का परिमाण वैद्यों ने कहा है॥

२–इस का मुख्य प्रयोजन पसीना लाने से है कि पसीने के द्वारा दोष शरीर मे से निकले॥

३–यदि कोई कड़ी वस्तु हो तो फिटकड़ी आदि के तेजाब से उसे नरम कर लेना चाहिये॥

४–मधुपक्व हरड आदि को भी मुरब्बा ही कहते हैं॥

५–अभयादि मोदक आदि मोदक कई प्रकार के होते हैं॥

६–लेप के दो भेद हैं–प्रलेप और प्रदेह, पित्तसम्बधी शोथ मे प्रलेप तथा कफसम्बधी शोथ मे प्रदेह किया जाता है, (विधान वैद्यक ग्रन्थों मे देखो)॥

७–रात्रि में लेप नहीं करना चाहिये परन्तु दुष्ट व्रणपर रात्रि मे भी लेप करने मे कोई हानि नहीं है, यह भी स्मरण रखना चाहिये कि प्राय लेपपर लेप नहीं किया जाता है॥

लपड़ी या पोल्टिस—गेहूँ का आटा, अलसी, नींव के पत्ते तथा कांदा आदि को जल में पीस कर अथवा गर्म पानी में मिला कर लपटी बना कर शोथ (सूजन) तथा गुमड़े आदिपर बांधना चाहिये, इसे लपड़ी वा पोल्टिस कहते हैं।

सेंक—सेंक कई प्रकार से किया जाता है—कोरे कपड़े की तह से, रेत से, ईंट से, गर्म पानी से भरी हुई कांच की शीशी से और गर्म पानी में डुबाकर निचोड़े हुए फलालैन वा ऊनी कपड़े से अथवा भाफ दिये हुए कपड़े से इत्यादि।

स्वरस—किसी गीली वनस्पति को कूँट (पीस) कर आवश्यकता के समय थोड़ा सा जल मिला कर रस निकाल लेना चाहिये, इसे स्वरस कहते हैं, यदि वनस्पति गीली न मिले तो सूखी दवा को अठगुने पानी में उकाल कर चौथा भाग रखना चाहिये, अथवा २४ घण्टे तक पानी में भिगाकर रस छोड़ना चाहिये, पीछे मल कर छान लेना चाहिये, गीली वनस्पति के स्वरस के पीने की मात्रा दो तोले है तथा सूखी वनस्पति के स्वरस की मात्रा चार तोले है परन्तु बालक को स्वरस की मात्रा आधा तोला देनी चाहिये।

हिम—औषधि के चूर्ण को छः गुने जल में रातभर भिगा कर जो प्रातःकाल छान कर लिया जाता है, उस को हिम कहते हैं।

क्षार—जौ आदि वनस्पतियों में से जवाखार आदि क्षार (खार) निकले जाते हैं, इसी प्रकार मूली, क्वारपाठा (घीग्वारपाठा) तथा औंधाझाड़ा आदि भी बहुत सी चीजों का खार निकाला जाता है।

इस के निकालने की यह रीति है कि—वनस्पति को मूल (जड़) समेत उखाड़ कर उस के पञ्चांग को जला कर राख कर लेनी चाहिये, पीछे चौगुने जल में हिला कर किसी मिट्टी के बर्तन में एक दिनतक रखकर ऊपर का निखरा हुआ जल कपड़े से छान लेना

१—सेंक के—स्नेहन रोपण और लेखन ये तीन मुख्य भेद हैं, वातपीड़ा में—स्नेहन पित्तपीड़ा में रोपण तथा कफपीड़ा में लेखन सेंक किया जाता है, इन का विभाग आदि सब विषय वैद्यक ग्रन्थों में देखना चाहिये यह भी स्मरण रहे कि—सेंक दिन में करना चाहिये परन्तु अति आवश्यक अर्थात् महत् उपद्रवी रोग हो तो रात्रि के समय में भी करना चाहिये ॥

२—पानी की भाफ से युक्त फलालैन अथवा ऊनी कपड़े से सेंक करने की विधि पहिले लिख चुके हैं ॥

३—वनस्पति वह लेनी चाहिये जो कि सरदी अग्नि और कीड़े आदि से बिगड़ी न हो ॥

४—इसे स्वरस तथा अंगरस भी कहते हैं ॥

५—इसे स्वरस तथा रस भी कहते हैं ॥

६—इस को शीतकषाय भी कहते हैं, इस के पीने की मात्रा दो पल अर्थात् ८ तोले है ॥

७—किन्हीं लोगों ने यवक्षार (जौखार) के बनाने की रीति यह लिखी है कि जौ के एक सौ पाव एक सेर चौदह (१४) सेर पानी में भिगाकर मोटे कपड़े में वह पानी क्रमसे २१ बार छान लेना चाहिये फिर उस पानी को किसी पात्र में भर कर औटाना चाहिये जब पानी जलकर चूर्णवत् (चूर्ण के समान) पदार्थ बाकी रह जाय उसी को यवक्षार (जवाखार) कहते हैं ॥

चाहिये, पीछे उस जल को फिर जलाना चाहिये, इस प्रकार जलानेपर आखिरकार क्षार पेंदी में सूख कर जम जायगा।

सत—गिलोय तथा मुलेठी आदि पदार्थों का सत बनाया जाता है, इस की रीति यह है कि—गीली औषध को कूट जल में मथकर एक पात्र में जमने देना चाहिये, पीछें ऊपर का जल धीरे से निकाल डालना चाहिये, इस के पीछे पेंदी पर सफेदसा पदार्थ रह जाता है वही सूखने के बाद सत[1] जमता है।

सिरका[2]—अंगूर[3] जामुन[4] तथा साठे (गन्ना वा ईख) का सिरका बनाया जाता है, इस की रीति यह है कि—जिस पदार्थ का सिरका बनाना हो उस का रस निकाल कर तथा थोड़ासा नौसादर डाल कर धूप में रख देना चाहिये, सड़ उठनेपर तीन वा सात दिन में बोतलों को भर कर रख छोड़ना चाहिये, इस की मात्रा आधे तोले से एक तोले-तक की है, दाल तथा शाक में इस की खटाई देने से बहुत हाजमा होता है, भोजन के पीछे एक घण्टे के बाद इसे पानी में मिलाकर पीने से पाचनशक्ति दुरुस्त होती है।

गुलकन्द[5]—गुलाब या सेवती के फूलों की पँखड़ियों की मिश्री बुरका कर तह पर तह देते जाना चाहिये तथा उसे ढँक कर रख देना चाहिये, जब फूल गल कर एक रस हो जावे तब कुछ दिनों के बाद वह गुलकन्द तैयार हो जाता है, यह बड़ी तरावट रखता है, उष्णकाल में प्रातःकाल इसे घोट कर पीने से अत्यन्त तरावट रहती है तथा अधिक प्यास नही लगती[6] है।

कुछ औषधों के अंग्रेजी तथा हिन्दी नाम ॥

संख्या॥	अंग्रेजी नाम ॥	हिन्दी नाम ॥	संख्या॥	अंग्रेजी नाम ॥	हिन्दी नाम ॥
१	इनफ्यूजन ॥	चाय ॥	११	पलास्टर ॥	लेप ॥
२	एकवा ॥	पानी ॥	१२	पोल्टिस ॥	लपड़ी ॥
३	एक्स्ट्राक्ट ॥	सत्व, घन ॥	१३	फोमेनटेशन॥	सेंक ॥

१—इस को सस्कृत में सत्त्व कहते हैं ॥

२—इसे पूर्वीय देशों में छिरका भी कहते हैं, वहा सिरके में आम करौंदे वेर और खीरा आदि फलों को भी डालते हैं जो कि कुछ दिनतक उस में पडे रह कर अत्यन्त सुस्वादु हो जाते है ॥

३—अगूर का सिरका बहुत तीक्ष्ण (तेज) होता है ॥

४—जामुन का सिरका पेट के लिये बहुत ही फायदेमन्द होता है, इस मे थोडा सा काला नमक मिला कर पीने से पेट का दर्द शान्त हो जाता है ॥

५—गुलकन्द मे प्राय वे ही गुण समझने चाहिये जो कि गुलाब वा सेवती के फूलो मे तथा मिश्री में है ॥

६—यह—शीतल, हृदय को हितकारी, ग्राही, शुक्रजनक (वीर्य को उत्पन्न करनेवाला), हलका, त्रिदोष-नाशक, रुधिरविकार को दूर करनेवाला, रंग को उज्ज्वल करनेवाला तथा पाचन है ॥

४	एनिमा ॥	पिचकारी, बस्ति ॥	१४	माथ ॥	बाफ, धान ॥
५	ओस्यम ॥	तेल (सानेका) ॥	१५	बिस्स्टर ॥	फफोला उठाना ॥
६	ऑइन्टमेन्टम ॥	मल्हम ॥	१६	मिक्सचर ॥	मिलावट ॥
७	कन्फेक्सन ॥	मुरब्बा, अचार ॥	१७	लाइकर ॥	प्रवाही ॥
८	टिंक्चर ॥	अर्क ॥	१८	लिनिमेंट ॥	तेल (लगाने का) ॥
९	डिकोक्सन ॥	काढ़ा, उकाली ॥	१९	लोशन ॥	धोता धोने की दवा ॥
१०	पल्वीस ॥	चूर्ण ॥	२०	वाइन ॥	आसव ॥

देशी तौल (वजन) ॥

१ रत्ती=चिरमीभर ॥	८ वाल=१ चौअन्नीभर ॥
२ रत्ती= १ वाल ॥	१६ वाल=१ अठन्नीभर ॥
३ वाल=१ मासा ॥	३२ वाल=१ रुपयेभर ॥
६ मासा=१टंक ॥	४० रुपयेभर=॥ सेर, पाऊँड, रतल ॥
२ टंक=१ तोला ॥	८० रुपयेभर=१ सेर ॥
४ वाल=अन्दाजन १ दुअन्नीभर ॥	

अंग्रेजी तोल और माप ॥

सूखी दवाइयों की तोल ॥	पतली दवाइयों की माप ॥
१ ग्रेन =१ गेहूँभर ॥	६० बूँद=मीनीम=१ ड्राम ॥
२० ग्रेन =१ स्कुपल ॥	८ ड्राम=१ औंस ॥
३ स्कुपल=१ ड्राम ॥	२० औंस=१ पीन्ट ॥
८ ड्राम =१ औंस ॥	८ पीन्ट=१ग्यालन ॥
१२ औंस =१ पाउण्ड ॥	
२ ग्रेन =१ रत्ती ॥	
६ ग्रेन =१ वाल ॥	
१ औंस =२॥ रुपयेभर ॥	

जो प्रवाही (पतली) दवाइयां जहरीली अथवा बहुत तेज नहीं होती हैं उन को साधारण रीति से (चमचा आदि भर के) भी पिला देते हैं, उस का क्रम इस प्रकार है—

१ टी स्पुन फुल=१ ड्राम । १ डिजर्ट स्पुन फुल= २ ड्राम । १ टेबुल स्पुन फुल= ४ ड्राम ½ औंस । १ वाइनग्लास फुल=२ औंस ।

१–परन्तु यहाँ १ वल चार ही मासे का माना जाता है ॥

अंग्रेजी में अवस्था के अनुसार दवा देने की देशी मात्रा ॥

पूरी अवस्था के आदमी को पूरी मात्रा का परिमाण (१ भाग गिनें तो) ॥

संख्या॥	अवस्था ॥	मात्रा ॥
१	१ से ३ महीने के बालक को ॥	पूरी मात्रा का १/३६ ॥
२	३ से ६ महीने के बालक को ॥	पूरी मात्रा का १/२४ ॥
३	६ से १२ महीने के बालक को ॥	पूरी मात्रा का १/१२ ॥
४	१ से २ वर्ष के बालक को ॥	पूरी मात्रा का १/८ ॥
५	२ से ३ वर्ष के बालक को ॥	पूरी मात्रा का १/६ ॥
६	३ से ४ वर्ष के बालक को ॥	पूरी मात्रा का १/४ ॥
७	४ से ७ वर्ष के बालक को ॥	पूरी मात्रा का १/३ ॥
८	७ से १४ वर्ष के बालक को ॥	पूरी मात्रा का १/२ ॥
९	१४ से २१ वर्ष के जवान को ॥	पूरी मात्रा का २/३ ॥
१०	२१ से ६० वर्ष के पूर्णायु पुरुष को ॥	पूर्ण मात्रा देनी चाहिये ॥

विशेष वक्तव्य[1]—एक महीने के बच्चे को एक वायविडग के दाने के वजन जितनी दवा देनी चाहिये, दो महीने के बच्चे को दो दाने जितनी दवा देनी चाहिये, इसी क्रम से प्रति महीने एक एक वायविड़ग जितनी मात्रा बढ़ाते जाना चाहिये, इस प्रकार से १२ महीने के बालक को बारह वायविड़ंग जितनी दवा चाहिये, जिस प्रकार बालक की मात्रा अवस्था की वृद्धि में बढ़ा कर दी जाती है उसी प्रकार साठ वर्ष की अवस्था के पीछे वृद्ध पुरुष की मात्रा धीरें २ घटानी चाहिये अर्थात् साठ वर्षतक पूरी मात्रा देनी चाहिये पीछे प्रति सात २ वर्ष से ऊपर लिखे क्रम से मात्रा को कम करते जाना चाहिये परन्तु धातु की भस्म तथा रसायनिक दवा की मात्रा एक राई से लेकर अधिक से अधिक एक बाल तक भी दी जाती है ॥

अंग्रेजी-मात्रा ॥

संख्या॥	अवस्था ॥	अधिक से अधिक एक औंस वजन ॥	अधिक से अधिक एक ड्राम वजन ॥	अधिक से अधिक एक स्कुपल वजन॥
१	१ से ६ महीनेतक॥	२४ ग्रेन ॥	३ ग्रेन ॥	१ ग्रेन ॥
२	२ से १२ महीनेतक॥	२ स्कुपल ॥	५ ग्रेन ॥	१॥ ग्रेन ॥
३	१ से २ वर्षतक ॥	१ ड्राम ॥	८ ग्रेन ॥	२॥ ग्रेन ॥
४	२ से ३ वर्षतक ॥	१। ड्राम ॥	९ ग्रेन ॥	३ ग्रेन ॥

१—यह विषय प्राय देशी दवा के विषय मे समझना चाहिये, अर्थात् अवस्था के अनुसार देशी दवा की मात्रा यह समझनी चाहिये ॥

५	३ से ५ वर्षतक ॥	१॥ ड्राम ॥	१२ ग्रेन ॥	४ ग्रेन ॥
६	५ से ७ वर्षतक ॥	२ ड्राम ॥	१५ ग्रेन ॥	५ ग्रेन ॥
७	७ से १० वर्षतक ॥	३ ड्राम ॥	२० ग्रेन ॥	७ ग्रेन ॥
८	१० से १२ वर्षतक ॥	॥ औंस ॥	॥ ड्राम ॥	॥ स्क्रुपल ॥
९	१२ से १५ वर्षतक ॥	५ ड्राम ॥	४० ग्रेन ॥	१४ ग्रेन ॥
१०	१५ से २० वर्षतक ॥	६ ड्राम ॥	४५ ग्रेन ॥	१६ ग्रेन ॥
११	२० से २१ वर्षतक ॥	१ औंस ॥	१ ड्राम ॥	१ स्क्रुपल ॥

विशेष सूचना—१–मात्रा शब्द जिस २ जगह लिखा हो वहां उसका अर्थ यह समझना चाहिये कि–इतनी दवा की मात्रा एक टङ्क (वख्त) की है।

२–अवस्था के अनुसार दवाइयों की मात्रा का वजन यद्यपि ऊपर लिखा है परन्तु उस में भी ताकतवर और नाताकत (कमजोर) की मात्रा में अधिकता तथा न्यूनता करनी चाहिये[1] तथा स्त्री और मनुष्य की जाति, ऋतु तथा रोग के प्रकार आदि सब बातों का विचार कर दवाकी मात्रा देनी चाहिये।

३–बालक को जहरीली दवा कभी नहीं देनी चाहिये[2], अफीम मिली हुई दवा भी चार महीने से कम अवस्थावाले बालक को नहीं देनी चाहिये[3], किन्तु इस से अधिक अवस्थावाले को देनी चाहिये और वह भी विशेष आवश्यकता ही में देनी चाहिये[4] तथा देने के समय किसी विद्वान् वैद्य वा डाक्टर की सम्मति लेकर देनी चाहिये।

४–चूर्ण (फंकी) की मात्रा अधिक से अधिक दो माशे के अन्दर देनी चाहिये तथा पतली दवा चार आने भर अथवा एक छोटे चमचे भर देनी चाहिये परन्तु उस में दवाई के गुण दोष तथा स्वभाव का विचार अवश्य करना चाहिये।

५–जो दवा पूरी अवस्था के आदमी को जिस वजन में दी जावे उसे ऊपर लिखे अनुसार अवस्थाक्रम से भाग कर के देना चाहिये।

६–बालक को सोंठ मिर्च पीपल और लाल मिर्चें आदि तीक्ष्ण ओषधि तथा मादक (नशीली) ओषधियां कभी नहीं देनी चाहियें।

१–क्योंकि दवा की शक्ति का सहन करने के लिये शक्ति की आवश्यकता है इस लिये शक्ति का विचार कर ओषधि की मात्रा में न्यूनाधिकता कर देनी चाहिये ॥

२–बालक को जहरीली दवा के देने से उस के शरीर में अनेक विकार उत्पन्न हो जाते हैं जो कि शरीर में सदा के लिये अपना घर बना लेते हैं और शरीर में अनेक हानियां करते हैं ॥

३–क्योंकि चार महीने से कम अवस्थावाला बालक अफीम मिली हुई दवा की शक्ति का सहन नहीं कर सकता है ॥

४–विशेष अवस्था में न दे कर मात्रा अथवा नित्य देने से वह उस का अभ्यासी हो जाता है और उस से उस को अनेक हानियां पहुंचती हैं ॥

७—गर्भिणी स्त्री के लिये भिन्न २ रोगों की जो खास २ दवा शास्त्रकारों ने लिखी है वही देनी चाहियें, क्योंकि बहुत गर्म दवाइयां तथा दस्तावर और तीक्ष्ण इलाज गर्भ को हानि पहुँचाते है।

८—सब रोगों में सब दवाइया ताजी और नई देनी चाहियें परन्तु वायविडग, छोटी पीपल, गुड़, धान्य, शहद और घी, ये पदार्थ दवा के काम के लिये एक वर्ष के पुराने लेने चाहियें।

९—गिलोय, कुडाछाल, अडूसे के पत्ते, विदारीकन्द, सतावर, आसगँध और सौंफ, इत्यादि वनस्पतियों को दवा में गीली (हरी) लेना चाहिये तथा इन्हें दूनी नहीं लेना चाहिये।

१०—इन के सिवाय दूसरी वनस्पतिया सूखी लेनी चाहियें, यदि सूखी न मिलें अर्थात् गीली (हरी) मिलें तो लिखे हुए वज़न से दूनी लेनी चाहियें।

११—जो वृक्ष स्थूल और बड़ा हो उस की जड की छाल दवा में मिलानी चाहिये परन्तु छोटे वृक्षों की पतली जड़ ही लेनी चाहिये।

१२—तमाम भस्म, तमाम रसायन दवायें तथा सब प्रकार के आसव ज्यो २ पुराने होते जावें त्यों २ गुणों में बढ़ कर होते हैं (विशेष गुणकारी होते है) परन्तु काष्ठादि की गोलिया एक वर्ष के बाद हीनसत्त्व (गुणरहित) हो जाती है, चूर्ण दो महीने के बाद हीनसत्त्व हो जाता है, औषधों के योग से वना हुआ घी तथा तेल चार महीने के बाद हीनसत्त्व हो जाता है, परन्तु पारा गन्धक हींगलू और वच्छनाग आदि को शुद्ध कर दवा में डालने से काष्ठादि रस दवाइया पुरानी होनेपर भी गुणयुक्त रहती है अर्थात् उन का गुण नहीं जाता है।

१३—क्वाथ तथा चूर्ण आदि की बहुत सी दवाइयों में से यदि एक वा दो दवाइया न मिलें तो कोई हरज नहीं है, अथवा इस दशा में उसी के सदृश गुणवाली दूसरी दवाई मिले तो उसे मिला देनी चाहिये तथा नुसखे में एक दो अथवा तीन दवाइया रोग

१—परन्तु साप आदि की बावी, दुष्ट पृथिवी, जलप्राय स्थान, श्मशान, ऊपर भूमि और मार्ग मे उत्पन्न हुई ताजी दवाई भी नहीं लेनी चाहिये, तथा कीडों की खाई हुई, आग से जली हुई, शर्दी से मारी हुई, लू लगी हुई, अथवा अन्य किसी प्रकार से दूषित भी दवा नहीं लेनी चाहिये॥

२—तात्पर्य यह है कि लम्बी और मोटी जडवाले (वट पीपल आदि) की छाल लेनी चाहिये तथा छोटी जडवाले (कटेरी धमासा आदि) के सर्व अग अर्थात् जड, पत्ता, फूल, फल और शाखा लेवे, परन्तु किन्हीं आचार्यों की यह सम्मति है जो कि ऊपर लिखी है॥

३—कुछ ओषधियों की प्रतिनिधि ओषधिया यहा दिखलाते हैं—जिन को उनके अभाव मे उपयोग मे लाना चाहिये—चित्रक के अभाव मे दन्ती अथवा ओंगा का खार, धमासे के अभाव मे जवासा, तगर के अभावमे कूठ, मूर्वा के अभाव मे जिंगनी की त्वचा, अहिंस्रा के अभाव मे मानकन्द, लक्ष्मणा के अभाव में मोरसिखा, मौरसिरी के अभाव मे लाल कमल अथवा नीला कमल, नीले कमल के अभाव मे कमोदनी, चमेली के फूल के अभाव मे लौंग, आक आदि के दूध के अभाव मे आक आदि के पत्तो का रस, पुहकरमूल

के विरुद्ध हों तो उन्हें निकाल कर उस रोग को मिटानेवाली न लिखी हुई दवाइयों को भी उस नुसखे में मिला देना चाहिये ।

१४–यदि गोली बांधने की कोई चीज (रस आदि) न लिखी हो तो गोली पानी में बांधनी चाहिये ।

१५–जिस जगह नुसखे में वजन न लिखा हो वहां सब दवाइयां बराबर लेनी चाहियें ।

१६–यदि चूर्ण की मात्रा न लिखी हो तो वहां चूर्ण की मात्रा का परिमाण पाव तोले से लेकर एक तोलेतक समझना चाहिये परन्तु जहरीली चीज का यह परिमाण नहीं है ।

१७–इस ग्रन्थ में विशेष दवाइयां नहीं दिखलाई गई हैं परन्तु बहुत से ग्रन्थों में प्रायः वजन आदि नहीं लिखा रहता है इस से अविज्ञ लोग घबड़ाया करते हैं तथा कभी २ वजन आदि को न्यूनाधिक करके तकलीफ भी उठाते हैं, इस लिये सब के जानने के लिये संक्षेप से यहांपर इस विषय को सूचित करना अत्यावश्यक समझा गया ॥

यह चतुर्थ अध्यायका औषधप्रयोगनामक तेरहवां प्रकरण समाप्त हुआ ॥

और कम्भारी के अभाव में कूठ, चव्य के अभाव में कूठ, पीपरामूल के अभाव में चव्य और गजपीपल, बावची के अभाव में पमार के बीज, दारुहल्दी के अभाव में हल्दी, रसोत के अभाव में दारुहल्दी, सोरठी मिट्टी के अभाव में फिटकरी, तालीसपत्र के अभाव में स्वर्णतालीस, भारंगी के अभाव में तालीस अथवा कटेरी की जड़, रूदक के अभाव में रद का समक, मुलहठी के अभाव में धातकीपुष्प, अम्लवेत के अभाव में चूक, दाख के अभाव में कम्भारी का फल, दाख और कम्भारी दोनों के अभाव में महुए का फूल, मधुरस के अभाव में आम, कस्तूरी के अभाव में कंकोल, कंकोल के अभाव में चमेली का फूल, कपूर के अभाव में सुगन्ध मोथा अथवा गठौना, केसर के अभाव में कसूम के नये फूल, श्रीखण्ड (श्वेत चन्दन) के अभाव में कपूर, कपूर और चन्दन के अभाव में रक्त चन्दन, रक्त चन्दन के अभाव में नई खस, अतीस के अभाव में नागरमोथा, हरड़ के अभाव में आंवला, नागकेसर के अभाव में कमल की केसर, मेदा महामेदा के अभाव में शतावर, जीवक ऋषभक के अभाव में विदारीकन्द, काकोली और क्षीरकाकोली के अभाव में असगंध, ऋद्धि वृद्धि के अभाव में वाराहीकन्द, वाराहीकन्द के अभाव में चर्मकारालु, भिलावे के अभाव में रक्त चन्दन अथवा चित्रक, हींग के अभाव में नरसल, सुवर्ण के अभाव में सोनामक्खी, चांदी के अभाव में रूपामक्खी, दोनों मक्खियों (स्वर्णमक्खी और रजतमक्खी) के अभाव में स्वर्ण गेरू, सुवर्णभस्म और रजतभस्म के अभाव में कान्तिसार की भस्म, कान्तिसार के अभाव में तीक्ष्ण (भट्टी) लोह, मोती के अभाव में मोती की सीप, शहद के अभाव में पुराना गुड़, मिश्री के अभाव में सफेद बूरा, सफेद बूरे के अभाव में सफेद खांड, दूध के अभाव में मूंग का रस अथवा मसूर का रस इत्यादि ॥

चौदहवां प्रकरण—ज्वरवर्णन ॥

ज्वर के विषय में आवश्यक विज्ञान ॥

ज्वर का रोग यद्यपि एक सामान्य प्रकार का गिना जाता है परन्तु विचार कर देखा जावे तो यह रोग बड़ा कठिन है, क्योंकि सब रोगों में मुख्य होने से यह सब रोगो का राजा कहलाता है, इसलिये इस रोग में उपेक्षा नहीं करनी चाहिये, देखिये ! इस भारत वर्ष में बहुत सी मृत्युयें प्रायः ज्वर ही के कारण होती हैं, इसलिये इस रोग के समय में इस के भेदों का विचार कर उचित चिकित्सा करनी चाहिये, क्योंकि भेद के जाने विना चिकित्सा ही व्यर्थ नहीं जाती है किन्तु यह रोग प्रबलता को धारण कर भयानक रूप को पकड़ लेता है तथा अन्त में प्राणघातक ही हो जाता है ।

ज्वर के बहुत से भेद हैं—जिन के लक्षण आदि भी पूर्वाचार्यों ने पृथक् २ कहे है परन्तु यह सब प्रकार का ज्वर किस मूल कारण से उत्पन्न होता है तथा किस प्रकार चढ़ता और उतरता है इत्यादि बातो का सन्तोषजनक (हृदय में सन्तोष को उत्पन्न करने वाला) समाधान अद्यावधि (आजतक) कोई भी विद्वान् ठीक रीति से नही कर सका है और न किसी ग्रन्थ में ही इस के विषय का समाधान पूर्ण रीति से किया गया है किन्तु अपनी शक्ति और अनुभव के अनुसार सब विद्वानों ने इस का कथन किया है, केवल यही कारण है कि—बड़े २ विद्वान् वैद्य भी इस रोग में बहुत कम कृतकार्य होते है, इस से सिद्ध है कि—ज्वर का विषय बहुत ही गहन (कठिन) तथा पूर्ण अनुभवसाध्य है, ऐसी दशा में वैद्यक के वर्तमान ग्रन्थों से ज्वर का जो केवल सामान्य स्वरूप और उस की सामान्य चिकित्सा जानी जाती है उसी को बहुत समझना चाहिये ।

उक्त न्यूनता का विचार कर इस प्रकरण में गुरुपरम्परागत तथा अनुभवसिद्ध ज्वर का विषय लिखते है अर्थात् ज्वर के मुख्य २ कारण, लक्षण और उन की चिकित्सा को दिखलाते हैं—इस से पूर्ण आशा है कि—केवल वैद्य ही नही किन्तु एक साधारण पुरुष भी इस का अवलम्बन कर (सहारा लेकर) इस महाकठिन रोग में कृतकार्य हो सकता है ॥

ज्वर के स्वरूप का वर्णन ॥

शरीर का गर्म होकर तप जाना अथवा शरीर में जो स्वाभाविक (कुदरती) उष्णता (गर्मी) होनी चाहिये उस से अधिक उष्णता का होना यह ज्वर का मुख्य रूप[1] है,

---

1—संस्थान, व्यञ्जन, लिङ्ग, लक्षण, चिह्न और आकृति, ये छ शब्द रूप के पर्यायवाचक (एकार्थवाची) हैं ॥

परन्तु इस प्रकार से शरीर के तपने का क्या कारण है और वह (तपने की) क्रिया किस प्रकार होती है यह विषय बहुत सूक्ष्म है, वैद्यी वैद्यकशास्त्रने ज्वर के विषय में यही सिद्धान्त ठहराया है कि वात, पित्त और कफ, ये तीनों दोष अयोग्य आहार और विहार से कुपित होकर जठर (पेट) में जाकर अग्नि को बाहर निकाल कर ज्वर को उत्पन्न करते हैं, इस विषय का विचार करने से यही सिद्ध होता है कि—वात, पित्त और कफ, इन तीनों दोषों की समानता (बराबर रहना) ही आरोग्यता का चिह्न है और इन की विषमता अर्थात् न्यूनाधिकता (कम वा ज्यादा होना) ही रोग का चिह्न है तथा उक्त दोषों की समानता और विषमता केवल आहार और विहार पर ही निर्भर है।

इस के सिवाय—इस विषय पर विचार करने से यह भी सिद्ध होता है कि जैसे शरीर में वायु की वृद्धि दूसरे रोगों को उत्पन्न करती है उसी प्रकार वह वातज्वर को भी उत्पन्न करती है, इसी प्रकार पित्त की अधिकता अन्य रोगों के समान पित्तज्वर को तथा कफ की अधिकता अन्य रोगों के समान कफज्वर को भी उत्पन्न करती है, उक्त क्रम पर ध्यान देने से यह भी समझमें आ सकता है कि—इन में से दो दो दोषों की अधिकता अन्य रोगों के समान दो दो दोषों के लक्षणवाले ज्वर को उत्पन्न करती है और तीनों दोषों के विकृत होने से ये (तीनों दोष) अन्य रोगों के समान तीनों दोषों के लक्षणवाले त्रिदोष (सन्निपात) ज्वर को उत्पन्न करते हैं ॥

ज्वर के भेदों का वर्णन ॥

ज्वर के भेदों का वर्णन करना एक बहुत ही कठिन विषय है, क्योंकि ज्वर की उत्पत्तिके अनेक कारण हैं, तथापि पूर्वाचार्यों के सिद्धान्त के अनुसार ज्वर के कारण को यहां दिखलाते हैं—ज्वर के कारण मुख्यतया दो प्रकार के हैं—आन्तर और बाह्य, इन में से आन्तर कारण उन्हें कहते हैं जो कि शरीर के भीतर ही उत्पन्न होते हैं तथा बाह्य कारण उन्हें कहते हैं जो कि बाहर से उत्पन्न होते हैं, इन में से आन्तर कारणों के दो भेद हैं—आहार विहार की विषमता अर्थात् आहार (भोजन पान) आदि की तथा विहार (बोलना फिरना तथा स्त्रीसङ्ग आदि) की विषमता (विरुद्ध चेष्टा) से रस का बिगड़ना और उस से ज्वर का आना, इस प्रकार के कारणों से सब साधारण ज्वर उत्पन्न होते हैं, जैसे कि—तीन तो पृथक् २ दोषवाले, तीन दो २ दोषवाले तथा मिश्रित तीनों दोषवाला इत्यादि इन्हीं कारणों से उत्पन्न हुए ज्वरों में विषमज्वर आदि ज्वरों का भी समावेश हो जाता है, शरीर के अन्दर शोथ (सूजन) तथा गांठ आदि का होना आन्तर कारण का दूसरा भेद है अर्थात् भीतरी शोथ तथा गांठ आदि के वेग से ज्वर

का आना[1], ज्वर के बाह्य कारण वे कहलाते है जो कि सब आगन्तुक ज्वरो (जिन के विषयमें आगे लिखा जावेगा) के कारण है, इन के सिवाय हवा में उड़ते हुए जो चेपी ज्वरों के परमाणु है उनका भी इन्हीं कारणों में समावेश होता है अर्थात् वे भी ज्वर के बाह्य कारण माने जाते है ॥

देशी वैद्यकशास्त्र के अनुसार ज्वरों के भेद ॥

देशी वैद्यकशास्त्र के अनुसार ज्वरों के केवल दश भेद है अर्थात् दश प्रकार का ज्वर माना जाता है, जिन के नाम ये है—वातज्वर, पित्तज्वर, कफज्वर, वातपित्तज्वर, वात-कफज्वर, कफपित्तज्वर, सन्निपातज्वर, आगन्तुक ज्वर, विषमज्वर और जीर्णज्वर ॥

अंग्रेजी वैद्यकशास्त्र के अनुसार ज्वरों के भेद ॥

अंग्रेज़ी वैद्यकशास्त्र के अनुसार ज्वरों के केवल चार भेद है अर्थात् अंग्रेज़ी वैद्यक शास्त्र में मुख्यतया चार ही प्रकार का ज्वर माना गया है, जिन के नाम ये हैं—जारीज्वर, आन्तरज्वर, रिमिटेंट ज्वर और फूट कर निकलनेवाला ज्वर ।

इन में से प्रथम जारी ज्वर के चार भेद हैं—सादातप, टाइफस, टाईफोइड और फिर २ कर आनेवाला ।

दूसरे आन्तरज्वर के भी चार भेद हैं—ठढ देकर (शीत लग कर) नित्य आने-वाला, एकान्तर, तेजरा और चौथिया[2] ।

तीसरे रिमिटेंट ज्वर का कोई भी भेद नहीं है[3], इसे दूसरे नाम से रिमिटेंट फीवर[4] भी कहते हैं ।

चौथे फूट कर निकलने वालेज्वर के बारह भेद हैं—शीतला, ओरी, अचपड़ा (आकड़ा काकड़ा), लाल बुखार, रंगीला बुखार, रक्तवायु (विसर्प), हैजा वा मरी का तप, इनफ्लु-एञ्जा, मोती झरा, पानी झरा, थोथी झरा और काला मूधोरो[5] ।

इन सव ज्वरों का वर्णन क्रमानुसार आगे किया जावेगा ॥

१—इस कारण को अंग्रेजी वैद्यक में ज्वर के कारण के प्रकरण मे यद्यपि नहीं गिना है परन्तु देशी वैद्यकशास्त्र मे इस को ज्वर के कारणों मे माना ही है, इस लिये ज्वर के आन्तर कारण का दूसरा भेद यही है ॥

२—देशी वैद्यकशास्त्र के अनुसार ये चारों भेद विषम ज्वर के हो सकते हैं ॥

३—देशी वैद्यकशास्त्र के अनुसार यह (रिमिटेंट ज्वर) विषमज्वर का एक भेद सन्ततज्वर नामक हो सकता है ॥

४—अंग्रेजी भाषा मे ज्वर को फीवर कहते है ॥

५—देशी वैद्यकशास्त्र मे मसूरिका को क्षुद्र रोग तथा मूधोरा नाम से लिखा है ॥

ज्वर के सामान्य कारण ॥

अयोग्य आहार और अयोग्य विहार ही ज्वर के सामान्य कारण हैं, क्योंकि इन्हीं दोनों कारणों से शरीरस्थ (शरीर में स्थित) धातु विकृत (विकार युक्त) होकर ज्वर को उत्पन्न करता है।

यह भी स्मरण रहे कि—अयोग्य आहार में बहुत सी बातों का समावेश होता है, जैसे बहुत गर्म तथा बहुत ठंडी खुराक का खाना, बहुत भारी खुराक का खाना, बिगड़ी हुई और बासी खुराक का खाना, प्रकृति के विरुद्ध खुराक का खाना, ऋतु के विरुद्ध खुराक का खाना, भूख से अधिक खाना तथा दूषित (दोष से युक्त) जल का पीना, इत्यादि।

इसी प्रकार अयोग्य विहार में भी बहुत सी बातों का समावेश होता है, जैसे—बहुत महनत का करना, बहुत गर्मी तथा बहुत ठंढ का सेवन करना, बहुत विलास करना तथा खराब हवा का सेवन करना, इत्यादि।

बस ये ही दोनों कारण अनेक प्रकार के ज्वरों को उत्पन्न करते हैं ॥

ज्वर के सामान्य लक्षण ॥

ज्वर के बाहर प्रकट होने के पूर्व श्रान्ति (थकावट), चित्त की विकलता (बेचैनी), मुख की विरसता (विरसपन अर्थात् स्वाद का न रहना), आंखों में पानी का आना, जँभाई, ठंढ हवा तथा धूप की वारंवार इच्छा और अनिच्छा, अंगों का टूटना, शरीर में भारीपन, रोमाञ्च का होना (रोंगटे खड़े होना) तथा भोजन पर अरुचि इत्यादि लक्षण होते हैं, किन्तु ज्वर के बाहर प्रकट होने के पीछे (ज्वर भरने के पीछे) त्वचा (चमड़ी) गर्म मालूम पड़ती है, यही ज्वर का प्रकट चिह्न है, ज्वर में प्रायः पित्त अथवा गर्मी का मुख्य उपद्रव होता है, इस लिये ज्वर के प्रकट होने के पीछे शरीर में उष्णता के भरने के साथ ऊपर लिखे हुए सब चिह्न बराबर बने रहते हैं ॥

वातज्वर का वर्णन ॥

कारण—विरुद्ध आहार और विहार से कोप को प्राप्त हुआ वायु आमाशय (होजरी)

१—तात्पर्य यह है कि—अयोग्य आहार और अयोग्य विहार इन दोनों हेतुओं से आमाशय में स्थित जो वात पित्त और कफ हैं वे रस आदि धातुओं को दूषित कर तथा जठराग्नि को बाहर निकाल कर ज्वर को उत्पन्न करते हैं ॥

२—यद्यपि प्रत्येक रोग के ज्ञान के लिये हेतु (कारण) सम्प्राप्ति (कुपित हुए दोष से अथवा फैलते हुए दोष से रोग की उत्पत्ति) पूर्वरूप (रोग की उत्पत्ति होने से पहिले होनेवाले चिह्न) लक्षण (रोगोत्पत्ति के हो जाने पर उस के चिह्न) और उपशय (औषध आदि इन के द्वारा रोगी को सुख मिलने से रोग का निश्चय) इन पांच बातों की आवश्यकता है इस लिये प्रत्येक रोग के वर्णन में इन पांचों का वर्णन करना यद्यपि आवश्यक था तथापि इन का विस्तार बढ़ने के लिये भय यह समझकर हम ने इन दोनों का वर्णन न करके केवल हेतु (कारण) और लक्षण इन दो ही बातों का वर्णन इस प्रकरण में किया है क्योंकि साधारण गृहस्थों को उक्त दो ही विषय बहुत लाभदायक हो सकते हैं ॥

में जाकर उस में स्थित रस (आम) को दूषित कर जठर (पेट) की गर्मी (अग्नि) को बाहर निकालता है उस से वातज्वर उत्पन्न होता है ।

लक्षण[1]—जँभाई (बगासी) का आना, यह वातज्वर का मुख्य चिह्न है, इस के सिवाय ज्वर के वेग का न्यूनाधिक (कम ज्यादा) होना, गला ओष्ठ (होठ) और मुख का सूखना, निद्रा का नाश, छींक का बन्द होना, शरीर में रूक्षता (रूखापन), दस्त की कबजी का होना, सब शरीर में पीड़ा का होना, विशेष कर मस्तक और हृदय में बहुत पीड़ा का होना, मुख की विरसता, शूल और अफरा, इत्यादि दूसरे भी चिह्न मालूम पडते हैं, यह वातज्वर प्रायः वायुप्रकृतिवाले पुरुष के तथा वायु के प्रकोप की ऋतु (वर्षा ऋतु) में उत्पन्न होता है ।

चिकित्सा—१—यद्यपि सब प्रकार के ज्वर में परम हितकारक होने से लङ्घन सर्वोपरि (सब से ऊपर अर्थात् सब से उत्तम) चिकित्सा (इलाज) है[2] तथापि दोष, प्रकृति, देश, काल और अवस्था के अनुसार शरीर की स्थिति (अवस्था) का विचार कर लङ्घन करना चाहिये, अर्थात् प्रबल वातज्वर में शक्तिमान् (ताकतवर) पुरुष को अपनी शक्ति का विचार कर आवश्यकता के अनुसार एक से छः लघन तक करना चाहिये, यह भी जान लेना चाहिये कि—लघन के दो भेद हैं—निराहार और अल्पाहार, इन में से बिलकुल ही नही खाना, इस को निराहार कहते हैं, तथा एकाध वख्त थोड़ी और हलकी खुराक का खाना जैसे—दलिया, भात तथा अच्छे प्रकार से सिजाई हुई मूग और अरहर (तूर) की दाल इत्यादि, इस को अल्पाहार कहते है, साधारण वात ज्वर में एकाध टक (वख्त) निराहार लघन करके पीछे प्रकृति तथा दोष के अनुकूल ज्वर के दिनों की मर्यादा तक (जिस का वर्णन आगे किया जावेगा) ऊपर लिखे अनुसार हलकी तथा थोड़ी खुराक खानी चाहिये, क्योंकि—ज्वर का यही उत्तम पथ्य है, यदि इस का सेवन भली भाति से किया जावे तो औषधि के लेने की भी आवश्यकता नहीं रहती है ।

१—**चौपाई**—बडो वेग कम्प तन होई ॥ ओठ कण्ठ मुख सूखत सोई ॥ १ ॥
निद्रा अरु छिक्का को नासू ॥ रूखो अङ्ग कबज हो तासू ॥ २ ॥
शिर हृद सब अँग पीडा होवै ॥ बहुत उबासी मुख रस खोवै ॥ ३ ॥
गाढी विष्ठा मूत्र जु लाला ॥ उष्ण वस्तु चाहै चित चाला ॥ ४ ॥
नेत्र जु लाल रङ्ग पुनि होई ॥ उदर आफरा पीडा सोई ॥ ५ ॥
वातज्वरी के एते लक्षण ॥ इन पर ध्यानहिँ धरो विचक्षण ॥ ६ ॥

२—क्योंकि लघन करने से अग्नि (आहार के न पहुँचने से) कोठे मे स्थित दोषों को पकाती है और जब दोष पक जाते हैं तब उन की प्रबलता जाती रहती है, परन्तु जब लघन नहीं किया जाता है अर्थात् आहार को पेट मे पहुँचाया जाता है तब अग्नि उसी आहार को ही पकाती है किन्तु दोषों को नहीं पकाती है ॥

२–यदि कदाचित् ऊपर कहे हुए लंघन का सेवन करने पर भी ज्वर न उतरे तो सब प्रकार के ज्वरवालों को तीन दिन के बाद इस औषधि का सेवन करना चाहिये–देवदारु दो रुपये भर, धनिया दो रुपये भर, सोंठ दो रुपये भर, रींगणी दो रुपये भर तथा बड़ी कण्टाली दो रुपये भर, इन सब औषधों को कूट कर इस में से एक रुपये भर औषध का काढ़ा पाव भर पानी में चढ़ा कर तथा डेढ़ छटांक पानी के बाकी रहने पर छान कर लेना चाहिये, क्योंकि इस क्वाथ से ज्वर पाचन को प्राप्त होकर (परिपक्व होकर) उतर जाता है ।

३–अथवा ज्वर आने के सातवें दिन दोष के पाचन के लिये गिलोय, सोंठ और पीपरा मूल, इन तीनों औषधों के क्वाथ का सेवन ऊपर लिखे अनुसार करना चाहिये, इस से दोष का पाचन होकर ज्वर उतर जाता है ॥

पित्तज्वर का वर्णन ॥

कारण—पित्त को बढ़ानेवाले मिथ्या आहार और विहार से बिगड़ा हुआ पित्त आमाशय (होजरी) में जाकर उस (आमाशय) में स्थित रस को दूषित कर जठर की गर्मी को बाहर निकालता है तथा जठर में स्थित वायु को भी कुपित करता है, इस लिये कोप को प्राप्त हुआ वायु अपने स्वभाव के अनुकूल जठर की गर्मी को बाहर निकालता है उस से पित्तज्वर उत्पन्न होता है ।

लक्षण—आंखों में दाह (जलन) का होना, यह पित्तज्वर का मुख्य लक्षण है, इस के सिवाय ज्वर का तीक्ष्ण वेग, प्यास का अत्यन्त लगना, निद्रा थोड़ी आना, अतीसार अर्थात् पित्त के वेग से दस्त का पतला होना, कण्ठ ओष्ठ (ओठ) मुख और नासिका

१–यह भी स्मरण रखना चाहिये कि–एक दोष कुपित होकर दूसरे दोष को भी कुपित वा विकृत (विकार युक्त) कर देता है ॥

२–वायु का यह स्वरूप वा स्वभाव है कि वायु दोष (कफ और पित्त) धातु (रस और रक्त आदि) और मल को एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचानेवाला आशुकारी (जल्दी करने वाला), रजो गुणवाला सूक्ष्म (बहुत बारीक अर्थात् देखने में न आनेवाला) रूक्ष (रूखा) शीतल (ठंढा) हलका और चपल (एक जगह पर न रहनेवाला) है, इस (वायु) के पांच भेद हैं–उदान प्राण समान अपान और व्यान इन में से कण्ठ में उदान हृदय में प्राण नाभि में समान गुदा में अपान और सम्पूर्ण शरीर में व्यान वायु रहता है, इन पांचों वायुओं के पृथक् २ कर्म आदि सब बातें दूसरे वैद्यक ग्रन्थों में देख लेनी चाहियें यहां उन का वर्णन विस्तार के भय से तथा अनावश्यक समझ कर नहीं करते हैं ॥

३–चौपाई—तीक्षण वेग रु तृषा अपारा ॥ निद्रा अल्प होय अतिसारा ॥ १ ॥
कण्ठ ओठ मुख नासा पाके ॥ मुख्य दाह चित भ्रम तांके ॥ २ ॥
परसा स्वेद कटु मुख वक वादा ॥ वमन करत अरु रह उन्मादा ॥ ३ ॥
शीतल चहत दाह चित रहै ॥ वैद्यन ते छु प्रवाह यम कहै ॥ ४ ॥
मेत्र मूत्र पुनि मल ह पीता ॥ पित्त ज्वर के ये लक्षण मीता ॥ ५ ॥

४–इस ज्वर में पित्त के वेग से दस्त ही पतला होता है परन्तु इस पतले दस्त के होने से अतीसार रोग नहीं समझ लेना चाहिये ॥

(नाक) का पकना तथा पसीनों का आना, मूर्छा, दाह, चित्तभ्रम[1], मुख में कडुआपन, प्रलाप (बड़बड़ाना), वमन का होना, उन्मत्तपन, शीतल वस्तु पर इच्छा का होना, नेत्रों से जल का गिरना तथा विष्ठा (मल) मूत्र और नेत्र का पीला होना, इत्यादि पित्तज्वर में दूसरे भी लक्षण होते है, यह पित्तज्वर प्रायः पित्तप्रकृतिवाले पुरुष के तथा पित्त के प्रकोपकी ऋतु (शरद् तथा ग्रीष्म ऋतु) में उत्पन्न होता है ।

चिकित्सा—१-इस ज्वर में दोष के बल के अनुसार[2] एक टंक (बख्त) अथवा एक दिन वा जब तक ठीक रीति से भूख न लगे[3] तब तक लंघन करना चाहिये, अथवा मूंग की दाल का पानी, भात तथा पानी में पकाया (सिजाया) हुआ साबूदाना पीना चाहिये ।

२-अथवा-पित्तपापड़े वा घासिया पित्तपापड़े का काढ़ा[4], फाट वा हिम पीना चाहिये ॥

३-अथवा-दाख, हरड़, मोथा[5], कुटकी, किरमाले की गिरी (अमलतास का गूदा) और पित्तपापड़ा, इन का काढ़ा पीने से पित्तज्वर, शोष[6], दाह, भ्रम और मूर्छा आदि उपद्रव मिटकर दस्त साफ आता है ।

४-अथवा-पित्तपापड़ा, रक्त (लाल) चन्दन, दोनों प्रकार का (सफेद तथा काला) वाला[7], इन का क्वाथ, फाट अथवा हिम पित्तज्वर को मिटाता है ।

५-रात को ठंढे पानी में भिगाया हुआ धनिये का अथवा गिलोय का हिम पीने से पित्तज्वर का दाह शान्त होता है ।

६-यदि पित्तज्वर के साथ में दाह बहुत होता हो तो कच्चे चावलों के धोवन में थोड़े से चन्दन तथा सोंठ को घिस कर और चावलों के धोवन में मिला कर थोड़ा शहद और मिश्री डाल कर पीना चाहिये ॥

१-चित्तभ्रम अर्थात् चित्त का स्थिर न रहना ॥

२-दोष के बल के अनुसार अर्थात् विकृत (विकार को प्राप्त हुआ) दोष जैसे लघन का सहन कर सके उतना ही और वैसा ही लघन करना चाहिये ॥

३-दोष के विकार की यह सर्वोत्तम पहिचान भी है कि जब तक दोष विकृत तथा कच्चा रहता है तब तक भूख नहीं लगती है ॥

४-काढा, फाट तथा हिम आदि बनाने की विधि इसी अध्याय के औषधप्रयोगवर्णन नामक तेरहवें प्रकरण में लिख चुके है, वहां देख लेना चाहिये ॥

५-मोथा अर्थात् नागरमोथा (इसी प्रकार मोथा शब्द से सर्वत्र नागरमोथा समझना चाहिये) ॥

६-शोष अर्थात् शरीर का सूखना ॥

७-वाला अर्थात् नेत्रवाला, इस को सुगधवाला भी कहते हैं, यह एक प्रकार का सुगन्धित (खुशबूदार) तृण होता है, परन्तु पसारी लोग इस की जगह नाडी के सूखे साग को दे देते हैं उसे नहीं लेना चाहिये ॥

कफज्वर का वर्णन ॥

कारण—कफ को बढ़ानेवाले मिथ्या आहार और विहार से कुपित हुआ कफ जठर में जाकर तथा उस में स्थित रस को दूषित कर उस की उष्णता को बाहर निकालता है, एवं कुपित हुआ वह कफ वायु को भी कुपित करता है, फिर कोप को प्राप्त हुआ वायु उष्णता को बाहर लाता है उस से कफज्वर उत्पन्न होता है।

लक्षण—अन्न पर अरुचि का होना, यह कफज्वर का मुख्य लक्षण है, इस के सिवाय अंगों में भीगापन, ज्वर का मन्द वेग, मुख का मीठा होना, आलस्य, तृप्ति का मालूम होना, शीत का लगना, देह का भारी होना, नींद का अधिक आना, रोमाञ्च का होना, श्लेष्म (कफ) का गिरना, वमन, उबाकी, मल मूत्र, नेत्र, त्वचा और नख का श्वेत (सफेद) होना, श्वास, खांसी, गर्मी का प्रिय लगना और मन्दाग्नि, इत्यादि दूसरे भी चिह्न इस ज्वर में होते हैं, यह कफज्वर प्रायः कफप्रकृतिवाले पुरुष के तथा कफ के कोप की ऋतु (वसन्त ऋतु) में उत्पन्न होता है।

चिकित्सा—१—कफज्वरवाले रोगी को लंघन विशेष पथ्य होता है तथा योग्य लंघन से दूषित हुए दोष का पाचन भी होता है, इसलिये रोगी को जब तक अच्छे प्रकार से भूख न लगे तब तक नहीं खाना चाहिये, अथवा मूंग की दाल का ओसामण पीना चाहिये।

२—गिलोय का काढ़ा, फांट अथवा हिम शहद डाल कर पीना चाहिये।

३—छोटी पीपल, हरड़, बहेड़ा और आंवला, इन सब को समभाग (बराबर) लेकर तथा चूर्ण कर उस में से तीन मासे चूर्ण को शहद के साथ चाटना चाहिये, इस से कफ ज्वर तथा उस के साथ में उत्पन्न हुए खांसी श्वास और कफ दूर हो जाते हैं।

१—कफ को बढ़ानेवाले आहार—स्निग्ध शीतल तथा मधुर पदार्थ हैं तथा कफ को बढ़ानेवाले विहार अधिक निद्रा आदि जानने चाहियें ॥

२—चौपाई—मन्द वेग मुख मीठो रहई ॥ आलस तृप्ति शीत तन गहई ॥ १ ॥
भारी तन अति निद्रा होवै ॥ रोम उठै पीनस रुचि खोवै ॥ २ ॥
मल मूत्र नख त्वचा आसू ॥ श्वेत नेत्र लख खांसी श्वासू ॥ ३ ॥
वमन उबाकी उष्ण मन चहई ॥ इन लक्षण कफज्वर अहई ॥ ४ ॥

३—कफ शीतल है तथा मन्द परिणामी है इस लिये ज्वर का भी वेग मन्द ही होता है ॥

४—कफ का स्वभाव तृप्तिकारक (तृप्ति का करनेवाला) है इस लिये कफज्वरी लंघन का विशेष पथ्य कहा है, दूसरे—कफ के बिगड़ने तथा कुपित होने से जठराग्नि अत्यन्त मन्द हो जाती है इस लिये भूख पर भी न होने से भी उस को लंघन पथ्य होता है ॥

५—पहिले कह चुके हैं कि लंघन करने से जठराग्नि दोष का पाचन करती है ॥

४–इस ज्वर में अड्डूसे का पत्ता, भूरींगणी[1] तथा गिलोय का काढ़ा शहद डाल कर पीने से फायदा करता है ॥

द्विदोषज (दो २ दोषोंवाले) ज्वरों का वर्णन ॥

पहिले कह चुके है कि–दो २ दोषवाले ज्वरों के तीन भेद है अर्थात् वातपित्तज्वर, वातकफज्वर और पित्तकफज्वर इन दो २ दोपवाले ज्वरो में दो २ दोषों के लक्षण मिले हुए होते है[2], जिन की पहिचान सूक्ष्म दृष्टि वाले तथा वैद्यक विद्या में कुशल अनुभवी वैद्य ही अच्छे प्रकार से कर सकते है[3], इन दो२ दोषवाले ज्वरों को वैद्यक शास्त्र में द्वन्द्वज तथा मिश्रज्वर कहा गया है, अब क्रम से इन का विषय सक्षेप से दिखलाया जाता है ॥

वातपित्तज्वर का वर्णन[4] ॥

लक्षण[5]—जॅभाई का वहुत आना और नेत्रों का जलना, ये दो लक्षण इस ज्वर के मुख्य है, इन के सिवाय–प्यास, मूर्छा, श्रम, दाह, निद्रा का नाश, मस्तक में पीड़ा, वमन, अरुचि, रोमाञ्च (रोंगटो का खड़ा होना), कण्ठ और मुख का सूखना, सन्धियों में पीड़ा और अन्धकार दर्शन (अॅधेरे का दीखना), ये दूसरे भी लक्षण इस ज्वर में होते है।

चिकित्सा—१–इस ज्वर में भी पूर्व लिखे अनुसार[6] लङ्घन का करना पथ्य है।

१–भूरींगणी को रेगनी तथा कण्टकारी (कटेरी) भी कहते है, प्रयोग मे इस की जड ली जाती है, परन्तु जड न मिलने पर पञ्चाङ्ग (पाचों अग अर्थात् जड, पत्ते, फूल, फल और शाखा) भी काम में आता है, इस की साधारण मात्रा एक मासे की है ॥

२–अर्थात् दोनों ही दोपों के लक्षण पाये जाते हैं, जैसे–वातपित्तज्वर मे–वातज्वर के तथा पित्तज्वर के (दोनों के) मिश्रित लक्षण होते हैं, इसी प्रकार वातकफज्वर तथा पित्तकफज्वर के विपय मे भी जान लेना चाहिये ॥

३–क्योंकि मिश्रित लक्षणो मे दोषों के अशाशी भाव की कल्पना (कौन सा दोप कितना बढा हुआ है तथा कौन सा दोष कितना कम है, इस वात का निश्चय करना) वहुत कठिन है, वह पूर्ण विद्वान् तथा अनुभवी वैद्य के सिवाय और किसी (साधारण वैद्य आदि) से नहीं हो सकती है ॥

४–इन दो २ दोपवाले ज्वरो के वर्णन मे कारण का वर्णन नहीं किया जावेगा, क्योंकि प्रत्येक दोपवाले ज्वर के विपय में जो कारण कह चुके हैं उसी को मिश्रित कर दो २ दोपवाले ज्वरों मे समझ लेना चाहिये, जैसे–वातज्वर का जो कारण कह चुके है तथा पित्तज्वर का जो कारण कह चुके हैं इन्हीं दोनों को मिलाकर वातपित्तज्वर का कारण जान लेना चाहिये, इसी प्रकार वातकफज्वर तथा पित्तकफज्वर के विषय में भी समझ लेना चाहिये ॥

५–**चौपाई**—तृषा मूरछा श्रम अरु दाहा ॥ नींदनाश शिर पीडा ताहा ॥ १ ॥
अरुचि वमन जृम्भा रोमाञ्चा ॥ कण्ठ तथा मुखशोष हु सॉचा ॥ २ ॥
सन्धि शूल पुनि तम हू रहई ॥ वातपित्तज्वर लक्षण अहई ॥ ३ ॥

६–पूर्व लिखे अनुसार अर्थात् जव तक दोषों का पाचन न होवे तथा भूख न लगे तव तक लघन करना चाहिये अर्थात् नहीं खाना चाहिये ॥

२–चिरायता, गिलोय, दाख, आँवला और कचूर, इन का काढ़ा कर के तथा उस में त्रिवर्षीय (तीन वर्ष का पुराना) गुड़ डाल कर पीना चाहिये।

३–अथवा–गिलोय, पित्तपापड़ा, मोथा, चिरायता और सोंठ, इन का क्वाथ करके पीना चाहिये, यह पञ्चभद्र क्वाथ वातपित्तज्वर में अतिलाभदायक (फायदेमन्द) माना गया है ॥

वातकफज्वर का वर्णन ॥

लक्षण—जँभाई (उबासी) का आना और अरुचि, ये दो लक्षण इस ज्वर के मुख्य हैं, इन के सिवाय–सन्धियों में फूटनी (पीड़ा का होना), मस्तक का भारी होना, निद्रा, गीले कपड़े से देह को ढाकने के समान मालूम होना, देह का भारीपन, खांसी, नाक से पानी का गिरना, पसीने का आना, शरीर में दाह का होना तथा ज्वर का मध्यम वेग[2], ये दूसरे भी लक्षण इस ज्वर में होते हैं[1]।

चिकित्सा—१–इस ज्वर में भी पूर्व लिखे अनुसार लंघन का करना पथ्य है।

२–पसर कटाली, सोंठ, गिलोय और एरण्ड की जड़, इन का काढ़ा पीना चाहिये, यह क्षुद्रादि क्वाथ है।

३–किरमाले (अमलतास) की गिरी, पीपलामूल, मोथा, कुटकी और बड़ी हरड़े (छोटी अर्थात् काली हरड़े), इन का काढ़ा पीना चाहिये, यह आरग्वधादि क्वाथ है[3]।

४–अथवा–केवल (अकेली) छोटी पीपल की उकाली पीनी चाहिये ॥

पित्तकफज्वर का वर्णन ॥

लक्षण—नेत्रों में दाह और अरुचि, ये दो लक्षण इस ज्वर के मुख्य हैं, इन के सिवाय–तन्द्रा, मूर्छा, मुख का कफ से लिप्त होना (लिसा रहना), पित्त के जोर से मुख

१–सोरठा—रह दाह गुरु गात सैमित जम्भा अरुचि हो ॥
मध्य हु वेग दिखात स्वेद कास पीनस सही ॥ १ ॥
नींद न आवे कोय सन्धि पीड़ मस्तक गहे ॥
देय विचारे जोय ये लक्षण कफवात के ॥ २ ॥

२–वायु शीघ्रगतिवाला है तथा कफ मन्दगतिवाला है, इस लिये दोनों के संयोग से वातकफज्वर मध्यमवेगवाला होता है ॥

३–यह आरग्वधादि क्वाथ–दीपन (अग्नि को प्रदीप्त करनेवाला) पाचन (दोषों को पकानेवाला) तथा संशोधन (मल आदि दोषों को पका कर बाहर निकालनेवाला) भी है, इस के ये गुण होने से ही दोषों का पाचन आदि होकर ज्वर से शीघ्र ही मुक्ति (छुटकारा) हो जाती है ॥

४–सोरठा—मुख कडुवा परतीत तन्द्रा मूर्छा अरुचि हो ॥
बार बार में शीत बार बार में तप्त हो ॥ १ ॥
लिप्त विरस मुख जान नैन जलन अरु कास हो ॥
लक्षण ऐते सुजान पित्तकफज्वर के कही ॥ २ ॥

में कडुआहट (कडुआपन,), खासी, प्यास, वारंवार दाह का होना और वारंवार शीत का लगना, ये दूसरे भी लक्षण इस ज्वर में होते है ।

चिकित्सा—१–इस ज्वर में भी पूर्व लिखे अनुसार लंघन का करना पथ्य है ।

२–जहा तक हो सके इस ज्वर में पाचन ओपधि लेनी चाहिये ।

३–रक्त (लाल) चन्दन, पद्माख, धनियाँ, गिलोय और नींव की अन्तर (भीतरी) छाल, इन का काढ़ा पीना चाहिये, यह रक्तचन्दनादि कार्थ[1] है ।

४–आठ आनेभर कुटकी को जल में पीस कर तथा मिश्री मिला कर गर्म जल से पीना चाहिये ।

५–अडूसे के पत्तों का रस दो रुपये भर लेकर उस में २॥ मासे मिश्री तथा २॥ मासे शहद को डाल कर पीना चाहिये[2] ॥

सामान्यज्वर का वर्णन ॥

कारण तथा लक्षण—अनियमित खानपान, अजीर्ण, अचानक अतिशीत वा गर्मी का लगना, अतिवायु का लगना, रात्रि में जागरण और अतिश्रम, ये ही प्रायः सामान्यज्वर के कारण[3] है, ऐसा ज्वर प्रायः ऋतु के वदलने से भी हो जाता[4] है और उस की मुख्य ऋतु मार्च और अप्रेल मास अर्थात् वसन्तऋतु है तथा सितम्वर और अक्टूवर मास अर्थात् शरद्ऋतु है, शरद्ऋतु में प्रायः पित्त का वुखार होता[5] है तथा वसन्तऋतु में प्राय. कफ का वुखार होता है, इन के सिवाय–जून और जुलाई महीने में भी अर्थात् वरसात की वातकोपवाली ऋतु में भी वायु के उपद्रवसहित ज्वर चढ़ आता[6] है ।

ऊपर जिन भिन्न २ दोषवाले ज्वरों का वर्णन किया है उन सवों की भी गिनती इस (सामान्य ज्वर) में हो सकती है, इन ज्वरों में अन्तरिया ज्वर के समान चढ़ाव उतार नहीं रहता है किन्तु ये (सामान्यज्वर) एक दो दिन आकर जल्दी ही उतर जाते है ।

१–यह क्वाथ दीपन और पाचन है तथा प्यास, दाह, अरुचि, वमन और इस ज्वर (पित्तकफज्वर) को शीघ्र ही दूर करता है ॥

२–यह ओपधि अम्लपित्त तथा कामलासहित पित्तकफज्वर को भी शीघ्र ही दूर कर देती है, इस ओपधि के विषय मे किन्हीं आचार्यों की यह सम्मति है कि अडूसे के पत्तों का रस (ऊपर लिखे अनुसार) दो तोले लेना चाहिये तथा उस में मिश्री और शहद को (प्रत्येक को) चार २ मासे डालना चाहिये ॥

३–अर्थात् इन कारणों से देश, काल और प्रकृति के अनुसार–एक वा दो दोप विकृत तथा कुपित होकर जठराग्नि को वाहर निकाल कर रसों के अनुगामी होकर ज्वर को उत्पन्न करते हें ॥

४–ऋतु के वदलने से ज्वर के आने का अनुभव तो प्राय वर्तमान में प्रत्येक गृह में हो जाता है ॥

५–क्योंकि शरद्ऋतु में पित्त प्रकुपित होता है ॥

६–पसीनों का न आना, सन्ताप (देह और इन्द्रियों मे सन्ताप), सर्व अंगों का पीडा करके रह जाना अथवा सव अगों का स्तम्भित के समान (स्तब्ध सा) रह जाना, ये सव लक्षण ज्वरमात्र के साधारण है अर्थात् ज्वरमात्र मे होते हैं इन के सिवाय शेष लक्षण दोषों के अनुसार पृथक् २ होते हें ॥

चिकित्सा—१–सामान्यज्वर के लिये मात्र यही चिकित्सा हो सकती है जो कि भिन्न २ दोषवाले ज्वरों के लिये लिखी है।

२–इस के सिवाय–इस ज्वर के लिये सामान्यचिकित्सा तथा इस में रखने योग्य कुछ नियमों को लिखते हैं उन के अनुसार वर्त्ताव करना चाहिये।

३–जब तक ज्वर में किसी एक दोष का निश्चय न हो वहां तक विशेष चिकित्सा नहीं करनी चाहिये[1], क्योंकि सामान्यज्वर में विशेष चिकित्सा की कोई आवश्यकता नहीं है, किन्तु एकाध टंक (वक्त) लंघन करने से, आराम लेने से, हलकी खुराक के खाने से तथा यदि दस्त की कब्जी हो तो उस का निवारण करने से ही यह ज्वर उतर जाता है।

४–इस ज्वर के प्रारम्भ में गर्म पानी में पैरों को डुबाना चाहिये, इस से पसीना आकर ज्वर उतर जाता है[2]।

५–इस ज्वर मे ठंढा पानी नहीं पीना चाहिये[3] किन्तु तीन उफान आने तक पानी को गर्म कर के फिर उस को ठंढा करके प्यास के लगने पर थोड़ा २ पीना चाहिये।

६–सोंठ, काली मिर्च और पीपल को घिस कर उस का अञ्जन आंख में करना चाहिये।

७–बहुत खुली हवा में तथा खुली हुई छत पर नहीं सोना चाहिये।

८–खुश्कप्रदेश में (मारवाड़ आदि मान्त में) बाजरी का दलिया, पूर्व देश में भात की कांजी वा मांड, मध्य मारवाड़ में मूग का ओसामण वा भात तथा दक्षिण में अरहर (तूर) की पतली दाल का पानी अथवा उस में भात मिला कर खाना चाहिये।

९–यह भी स्मरण रहे कि–यह ज्वर जाने के बाद कभी २ फिर भी वापिस आ जाता है इस लिये इस के जाने के बाद भी पथ्य रखना चाहिये अर्थात् जब तक शरीर में पूरी ताकत न आ जावे तब तक भारी अन्न नहीं खाना चाहिये तथा परिश्रम का काम भी नहीं करना चाहिये[4]।

१–सामान्यज्वर में दोष का निश्चय हुए विना विशेष चिकित्सा करने से कभी २ बड़ी भारी हानि भी हो जाती है अर्थात् दोष अधिक प्रकुपित होकर तथा प्रबलरूप धारण कर रोगी के प्राणघातक हो जाते हैं॥

२–क्योंकि पसीने के द्वारा ज्वर की भीतरी गर्मी तथा उस का वेग बाहर निकल जाता है॥

३–क्योंकि शीतल जल दशाविशेष अथवा कालविशेष के सिवाय ज्वर में अपथ्य (हानिकारक) माना गया है॥

४–ज्वर के जाने के बाद पूरी शक्ति के न आने तक भारी अन्न का खाना तथा परिश्रम के कार्य का करना तो निषिद्ध है ही किन्तु इन के सिवाय–व्यायाम (दण्डकसरत) मैथुन स्नान इधर उधर विशेष सैरका फिरना विशेष हवा का खाना तथा अधिक शीतल जल का सेवन ये कार्य भी निषिद्ध हैं॥

१०–वातज्वर में जो काढ़ा दूसरे नम्बर में लिखा है उसे लेना चाहिये[1]।

११–गिलोय, सोंठ और पीपरामूल, इन का काढ़ा पीना चाहिये[2]।

१२–भूरींगणी, चिरायता, कुटकी, सोंठ, गिलोय और एरण्ड की जड़, इन का काढ़ा पीना चाहिये।

१३–दाख, धमासा और अडूसे का पत्ता, इन का काढ़ा पीना चाहिये।

१४–चिरायता, वाला, कुटकी, गिलोय और नागरमोथा, इन का काढ़ा पीना चाहिये।

१५–ऊपर कहे हुए काढ़ों में से किसी एक क्वाथ (काढ़े) को विधिपूर्वक[3] तैयार कर थोडे दिन तक लगातार दोनों समय पीना चाहिये, ऐसा करने से दोष का पाचन और शमन (शान्ति) हो कर[4] ज्वर उतर जाता है ॥

सन्निपातज्वर का वर्णन ॥

तीनों दोषों के एक साथ कुपित होने को सन्निपात वा त्रिदोष कहते हैं, यह दशा प्रायः सब रोगों की अन्तिम (आखिरी) अवस्था (हालत) में हुआ करती है[5], यह दशा ज्वर में जब होती है तब उस ज्वर को सन्निपातज्वर कहते हैं, किसी में एक दोष की प्रबलता तथा दो दोषों की न्यूनता से तथा किसी में दो दोषों की प्रबलता और एक दोष की न्यूनता से इस ज्वर के वैद्यकशास्त्र में एकोल्वणादि ५२ भेद[6] दिखलाये हैं तथा इस के तेरह दूसरे नाम भी रख कर इस का वर्णन किया है।

यह निश्चय ही समझना चाहिये कि–यह सन्निपात मौत के विना नहीं होता है चाहे मनुष्य बोलता चालता तथा खाता पीता ही क्यों न हो।

यह भी स्मरण रखना चाहिये कि–सन्निपात को निदान और कालज्ञान को पूर्णतया जाननेवाला अनुभवी वैद्य ही पहिचान सकता है, किन्तु मूर्ख वैद्यों को तो अन्तदशा तक में भी इस का पहिचानना कठिन है, हां यह निश्चय है कि–सन्निपात के वा त्रिदोष के साधारण लक्षणों को विद्वान् वैद्य तथा डाक्टर लोग सहज में जान सकते हैं[7]।

१–अर्थात् देवदार्वादि क्वाथ (देखो वातज्वर की चिकित्सा में दूसरी संख्या) ॥

२–यह काढा दीपन और पाचन भी है ॥

३–काढे की विधि पहिले तेरहवें प्रकरण में लिख चुके हैं ॥

४–अर्थात् अपक्व (कच्चे) दोष का पाचन और बढे हुए दोष का शमन होकर ज्वर उतर जाता है ॥

५–तात्पर्य यह है कि–सन्निपात की दशा में दोषों का सँभालना अति कठिन क्या किन्तु असाध्य सा हो जाता है, बस वही रोग की वा यों समझिये कि प्राणी की अन्तिम (आखिरी) अवस्था होती है, अर्थात् इस संसार से विदा होने का समय समीप ही आजाता है ॥

६–उन सब ५२ भेदों का तथा तेरह नामों का वर्णन दूसरे वैद्यक ग्रन्थों में देख लेना चाहिये, यहां पर अनावश्यक समझकर उन का वर्णन नहीं किया गया है ॥

७–तात्पर्य यह है कि–तीनों दोषों के लक्षणों को देख कर सन्निपात की सत्ता का ज्ञान लेना योग्य वैद्यों के लिये कुछ कठिन बात नहीं है परन्तु सन्निपात के निदान (मूलकारण) तथा दोषों के अंशांशीभाव का निश्चय करना पूर्ण अनुभवी वैद्य का ही कार्य है ॥

इस के सिवाय यह भी देखा गया है कि–रात दिन के अभ्यासी अपठित (बिना पढ़े हुए) भी बहुत से जन मृत्यु के चिह्नों को प्राय अनेक समयों में बतला देते हैं, तात्पर्य सिर्फ यही है कि–"जो जामें निशदिन रहत, सो तामें परवीन" अर्थात् जिस का जिस विषय में रात दिन का अभ्यास होता है वह उस विषय में प्रायः प्रवीण हो जाता है, परन्तु यह बात तो अनुभव से सिद्ध हो चुकी है कि–सन्निपात ज्वर के जो १३ भेद कहे गये हैं उन के बतलाने में तो अच्छे २ चतुर वैद्यों को भी पूरा २ विचार करना पड़ता है अर्थात् यह अमुक प्रकार का सन्निपात है इस बात का बतलाना उन को भी महा कठिन पड़ जाता है।

इन सब बातों का विचार कर यही कहा जा सकता है कि–जो वैद्य सन्निपात की योग्य चिकित्सा कर मनुष्य को बचाता है उस पुण्यवान् वैद्य की प्रशंसा के लिखने में लेखनी सर्वथा असमर्थ है, यदि रोगी उस वैद्य को अपना तन मन और धन अर्थात् सर्वस्व भी दे देवे तो भी वह उस वैद्य का यथोचित प्रत्युपकार नहीं कर सकता है अर्थात् बदला नहीं उतार सकता है किन्तु वह (रोगी) उस वैद्य का सर्वदा ऋणी ही रहता है।

यहां हम सन्निपातज्वर के प्रथम सामान्य लक्षण और उस के बाद उस के विषय में आवश्यक सूचना को ही लिखेंगे किन्तु सन्निपात के १३ भेदों को नहीं लिखेंगे, इस का कारण केवल यही है कि सामान्य बुद्धिवाले जन उक्त विषय को नहीं समझ सकते हैं और हमारा परिश्रम केवल गृहस्थ लोगों को इस विषय का ज्ञान कराने मात्र के लिये है किन्तु उन को वैद्य बनाने के लिये नहीं है, क्योंकि गृहस्थजन तो यदि इस के विषय में इतना भी ज्ञान लेंगे तो भी उन के लिये इतना ही ज्ञान (जितना हम लिखते हैं) अत्यन्त हितकारी होगा।

लक्षण—जिस ज्वर में वात, पित्त और कफ, ये तीनों दोष कोप को प्राप्त हुए होवें

१–चौपाई—छिन छिन दाह सीत पुनि होई ॥ पीड़ा हाड़ सन्धि सिर होई ॥ १ ॥
पलकै नम नीर की आवै ॥ रक्त कुटिल लोचन में आवै ॥ २ ॥
कर्ण शब्द भरण्यन्ते जामें ॥ कण्ठ रोध पुनि होवै तामें ॥ ३ ॥
तन्द्रा मोह मद भ्रम परलापा ॥ अरुचि श्वास पुनि कास सँतापा ॥ ४ ॥
जिह्वा स्याम खर सी दीसै ॥ शीतल स्पर्श पुनि लिप्ता दीस ॥ ५ ॥
अंग शिथिल अति होवैं जासू ॥ अल्प रुधिर बहै सो तासू ॥ ६ ॥
कफ पित मिल्यो रुधिर मुख आवै ॥ रक्त पीत ज्यों वरण दिखावै ॥ ७ ॥
तृष्णा घाव धीस को नाव ॥ नींदें न आवें कम्प बढावै ॥ ८ ॥
मल रु मूत्र चिर स्वल्पु दरई ॥ अल्प स्वेद पुनि अंग में ढरई ॥ ९ ॥
कण्ठकूज कफ की अति बाधा ॥ कुपित बाइ या को नहिं वाचा ॥ १० ॥
स्याम रक्त मण्डल है देहा ॥ सोजा धारा दादबु जैसा ॥ ११ ॥
भारी उदर सुने नहिं अन्न ॥ ओजपाक इत्यादिक जान्य ॥ १२ ॥
बहुत काल में दोष उ पार्चे ॥ सन्निपातज्वर लक्षण सार्चे ॥ १३ ॥
सन्निपातज्वर सहज सुरूपा ॥ धन्वन्तर में वरण अनूपा ॥ १४ ॥

है (कुपित हो जाते हैं) वह सन्निपातज्वर कहलाता है, इस ज्वर में प्रायः ये चिह्न होते है कि-अकस्मात् क्षण भर में दाह होता है, क्षण भर में शीत लगता है, हाड़ सन्धि और मस्तक में शूल होता है, अश्रुपातयुक्त[1] गदले और लाल तथा फटे से नेत्र हो जाते है[2], कानों में शब्द और पीड़ा होती है, कण्ठ में काटे पड जाते है, तन्द्रा तथा वेहोशी होती है, रोगी अनर्थप्रलाप (व्यर्थ वकवाद) करता है, खासी, श्वास, अरुचि और भ्रम होता है, जीभ परिदग्धवत् (जले हुए पदार्थ के समान अर्थात् काली) और गाय की जीभ के समान खरदरी तथा शिथिल (लठर) हो जाती है, पित्त और रुधिर से मिला हुआ कफ थूक में आता है, रोगी शिर को इधर उधर पटकता है, तृषा वहुत लगती है, निद्रा का नाश होता है, हृदय में पीड़ा होती है, पसीना, मूत्र और मल, ये वहुत काल में थोड़े २ उतरते हैं, दोषों के पूर्ण होने से रोगी का देह कृश (दुवला) नहीं होता है, कण्ठ में कफ निरन्तर (लगातार) वोलता है, रुधिर से काले और लाल कोठ (टाटिये अर्थात् वर्र के काठने से उत्पन्न हुए दाफड़ अर्थात् ददोड़े के समान) और चकत्ते होते है. शब्द वहुत मन्द (धीमा) निकलता है, कान, नाक और मुख आदि छिद्रों में पाक (पकना) होता है, पेट भारी रहता है तथा वात, पित्त और कफ, इन दोषों का देर में पाक होता है[3]।

१-अश्रुपातयुक्त अर्थात् आँसुओं की धारा सहित ॥

२-कफ के कारण गदले, पित्त के कारण लाल तथा वायु के कारण फटे से नेत्र होते हैं ॥

३-(प्रश्न) वात आदि तीन दोष परस्पर विरुद्ध गुणवाले हैं वे सव मिल कर एक ही कार्य सन्निपात को कैसे करते हैं, क्योंकि प्रत्येक दोष परस्पर (एक दूसरे) के कार्य का नाशक है, जैसे कि-अग्नि और जल परस्पर मिलकर समान कार्य को नहीं कर सकते है (क्योंकि परस्पर विरुद्ध हैं) इसी प्रकार वात, पित्त और कफ, ये तीनों दोष भी परस्पर विरुद्ध होने से एक विकार को उत्पन्न नहीं कर सकते हैं? (**उत्तर**) वात, पित्त और कफ, ये तीनों दोष साथ ही में प्रकट हुए है तथा तीनों वरावर हैं, इस लिये गुणों मे परस्पर (एक दूसरे से) विरुद्ध होने पर भी अपने २ गुणों से दूसरे का नाश नहीं कर सकते हैं, जैसे कि-साँप अपने विष से एक दूसरे को नहीं मार सकते हैं, यही समाधान (जो हमने लिखा है) दृढवल आचार्य ने किया है, परन्तु इस प्रश्न का उत्तर गदाधर आचार्य ने दूसरे हेतु का आश्रय लेकर दिया है, वह यह है कि-विरुद्ध गुणवाले भी वात आदि दोष सन्निपातावस्था मे दैवेच्छा से (पूर्व जन्म के किये हुए प्राणियों के शुभाशुभ कर्मों के प्रभाव से) अथवा अपने स्वभाव से ही इकट्ठे रहते हैं तथा एक दूसरे का विघात नहीं करते हैं। (**प्रश्न**) अस्तु-इस वात को तो हम ने मान लिया कि-सन्निपातावस्था मे विरुद्ध गुणवाले हो कर भी तीनों दोष एक दूसरे का विघात नहीं करते है परन्तु यह प्रश्न फिर भी होता है कि वात आदि तीनों दोषों के सञ्चय और प्रकोप का काल पृथक् २ है इस लिये वे सव ही एक काल में न तो प्रकट ही हो सकते हैं (क्योंकि सञ्चय का काल पृथक् २ है) और न प्रकुपित ही हो सकते हैं (क्योंकि जव तीनों का सञ्चय ही नहीं है फिर प्रकोप कहाँ से हो सकता है) तो ऐसी दशा में सन्निपात रूप कार्य कैसे हो सकता है? क्योंकि कार्य का होना कारण के आधीन है। (**उत्तर**) तुम्हारा यह प्रश्न ठीक नहीं है क्योंकि शरीर में वात आदि दोष स्वभाव से ही विद्यमान हैं, वे (तीनों दोष) अपने (त्रिदोष) को प्रकट करनेवाले निदान के वल से एक साथ ही प्रकुपित हो जाते हैं अर्थात् त्रिदोषकर्त्ता मिथ्या आहार और मिथ्या विहार से तीनों ही दोष एक ही काल में कुपित हो जाते हैं और कुपित हो कर सन्निपात रूप कार्य को उत्पन्न कर देते हैं ॥

इन लक्षणों के सिवाय वाग्भट्टने ये भी लक्षण कहे हैं कि–इस ज्वर में शीत लगता है, दिन में घोर निद्रा आती है, रात्रिमें नित्य जागता है, अथवा निद्रा कभी नहीं आती है, पसीना बहुत आता है, अथवा आता ही नहीं है, रोगी कभी गान करता है (गाता है), कभी नाचता है, कभी हँसता और रोता है तथा उस की चेष्टा पलट (बदल) जाती है, इत्यादि।

यह भी स्मरण रहे कि–इन लक्षणों में से थोड़े लक्षण कष्टसाध्य में और पूरे (ऊपर कहे हुए सब) लक्षण प्रायः असाध्य सन्निपात में होते हैं।

विशेषवक्तव्य—सन्निपातज्वर में जब रोगी के दोषों का पाचन होता है अर्थात् मल पकते हैं तब ही आराम होता है अर्थात् रोगी होश में आता है, यह भी जान लेना चाहिये कि–जब दोषों का वेग (जोर) कम होता है तब आराम होने की अवधि (मुद्दत) सात दश वा बारह दिन की होती है, परन्तु यदि दोष अधिक बलवान् हों तो आराम होने की अवधि चौदह बीस वा चौबीस दिन की जाननी चाहिये, यह भी स्मरण रखना चाहिये कि–सन्निपात ज्वर में बहुत ही सँभाल रखनी चाहिये, किसी तरह की गड़बड़ नहीं करनी चाहिये अर्थात् अपने मनमाना तथा मूर्ख वैद्य से रोगी का कभी इलाज नहीं करवाना चाहिये, किन्तु बहुत ही धैर्य (धीरज)के साथ चतुर वैद्य से परीक्षा करा के उस के कहने के अनुसार रस आदि दवा देनी चाहिये, क्योंकि सन्निपात में रस आदि दवा ही प्रायः विशेष लाभ पहुँचाती है, हां चतुर वैद्य की सम्मति से दिये हुए काष्ठादि ओषधियों के काढ़े आदि से भी फायदा होता है, परन्तु पूरे तौर से तो फायदा इस रोग में रसादि दवा से ही होता है और उन रसों की दवा में भी शीघ्र ही फायदा पहुँचानेवाले ये रस मुख्य हैं–हेमगर्भ, अमृतसञ्जीवनी, मकरध्वज, षड्गुणगन्धक और चन्द्रोदय आदि, ये सब प्रधानरस पान के रस के साथ, आर्द्रक (अदरख) के रसमें, सोंठ के साथ, लौंग के साथ तथा तुलसी के पत्तों के रस के साथ देने चाहियें, परन्तु यदि रोगी की जबान बन्द हो तो सहजने की छाल के रस के साथ इन में से किसी रस को जरा गर्म कर के देना चाहिये, अथवा असली अम्बर वा कस्तूरी के साथ देना चाहिये।

यदि ऊपर कहे हुए रसों में से कोई भी रस विद्यमान (मौजूद) न हो तो साधारण रस ही इस रोग में देने चाहियें जैसे–ब्राह्मी गुटिका, मोहरा गुटिका, त्रिपुरभैरव, आनन्द भैरव और अमरसुन्दरी आदि, क्योंकि ये रस भी सामान्य (साधारण) दोष में काम दे सकते हैं।

इन के सिवाय तीक्ष्ण (तेज) नस्य का देना तथा तीक्ष्ण अञ्जन का आंखों में डालना आदि क्रिया भी विद्वान् वैद्य के कथनानुसार करनी चाहिये।

उग्र (बड़े वा तेज़) सन्निपात में एक महीनेतक खूब होशियारी के साथ पथ्य तथा दवा का वर्त्ताव करना चाहिये तथा यह भी स्मरण रखना चाहिये कि सोलह सेर जल का उबालने से जब एक सेर जल रह जावे तब उस जल को रोगी को देना चाहिये, क्योंकि यह जल दस्त, वमन (उलटी), प्यास तथा सन्निपात में परम हितकारक है अर्थात् यह सौ मात्रा की एक मात्रा है।

इस के सिवाय जब तक रोगी का मल शुद्ध न हो, होश न आवे तथा सब इन्द्रियां निर्मल न हो जावें तब तक और कुछ खाने पीने को नहीं देना चाहिये[1] अर्थात् रोगी को इस रोग में उत्कृष्टतया (अच्छे प्रकार से) बारह लंघन अवश्य करवा देने चाहियें[2], अर्थात् उक्त समय तक केवल ऊपर लिखे हुए जल और दवा के सहारे ही रोगी को रखना चाहिये, इस के बाद मूंग की दाल का, अरहर (तूर) की दाल का तथा खारक (छुहारे) का पानी देना चाहिये, जब खूब (कडक कर) भूख लगे तब दाल के पानी में भात को मिला कर थोड़ा २ देना चाहिये, इस के सेवन के २५ दिन बाद देग की खुराक के अनुसार रोटी और कुछ घी देना चाहिये।

कर्णक नाम का सन्निपात तीन महीने का होता है, उस का खयाल उक्त समय तक वैद्य के वचन के अनुसार रखना चाहिये, इस बीच में रोगी को खाने को नहीं देना चाहिये, क्योंकि सन्निपात रोगी को पहिले ही खाने को देना विष के तुल्य असर करता है, इस रोग में यदि रोगी को दूध दे दिया जावे तो वह अवश्य ही मर जाता है।

सन्निपात रोग काल के सदृश है इस लिये इस में सप्तस्मरण का पाठ और दान पुण्य आदि को भी अवश्य करना चाहिये, क्यों कि सन्निपात रोग के होने के बाद फिर उसी शरीर से इस संसार की हवा का प्राप्त होना मानो दूसरा जन्म लेना है।

इस वर्त्तमान समय में विचार कर देखने से विदित होता है कि—अन्य देशों की अपेक्षा मरुस्थल देश में इस के चक्कर में आ कर बचनेवाले बहुत ही कम पुरुष होते हैं, इस का कारण व्यवहार नय की अपेक्षासे हम तो यही कहेंगे कि—उन को न तो ठीक तौर से ओषधि ही मिलती है और न उन की परिचर्या (सेवा) ही अच्छे प्रकार से की जाती है, बस इसी का यह परिणाम होता है कि—उन को मृत्यु का ग्रास बनना पड़ता है।

पूर्व समय में इस देशके निवासी धनाढ्य (अमीर) सेठ और साहूकार आदि ऊपर

१—क्योंकि मल की शुद्धि और इन्द्रियों के निर्मल हुए विना आहार को दे देने से पुनः दोषों के अधिक कुपित हो जाने की सम्भावना होती है, सम्भावना क्या—दोष कुपित हो ही जाते हैं ॥

२—उत्कृष्टतया बारह लंघनों के करवा देने से मल और कुपित दोषों का अच्छे प्रकार से पाचन हो जाता है, ऐसा होने से जठराग्नि में भी कुछ बल आ जाता है ॥

बने हुए रसों को विद्वान् वैद्यों के द्वारा बनवा कर सदा अपने घरों में रखते थे तथा अवसर (मौक़ा) पड़ने पर अपने कुटुम्ब, सगे, सम्बन्धी और गरीब लोगों को देते थे, जिससे रोगियों को तत्काल लाभ पहुँचता था और इस भयङ्कर रोग से बच जाते थे, परन्तु वर्त्तमान में यह बात बहुत ही कम देखने में आती है, कहिये ऐसी दशा में इस रोग में फँस कर बेचारे गरीबों की क्या व्यवस्था हो सकती है[1] इस पर भी आश्चर्य का विषय यह है कि उक्त रस वैद्यों के पास भी बने हुए शायद ही कहीं मिल सकते हैं, क्यों कि उन के बनाने में द्रव्य की तथा गुरुगमता की आवश्यकता है, और न ऐसे दयावान् वैद्य ही देखे जाते हैं कि ऐसी कीमती दवा गरीबों को मुफ्त में दे देवें।

पूर्व समय में ऊपर लिखे अनुसार यहां के धनाढ्य सेठ और साहूकार परमार्थ का विचार कर वैद्यों के द्वारा रसोंको बनवा कर रखते थे और समय आने पर अपने कुटुम्बियों सगे सम्बन्धियों और ग़रीबों को देते थे, परन्तु अब तो परमार्थ का विचार, श्रद्धा तथा दया के न होने से वह समय नहीं है, किन्तु अब तो यहां के धनाढ्य लोग अविद्या देवी के प्रसाद से ब्याह शादी गांवसारणी और औसर आदि व्यर्थ कामों में हजारों रुपये अपनी तारीफ़ के लिये लगा देते हैं और दूसरे अविद्या देवी के उपासक जन भी उन्हीं कामों में व्यय करने से अब उन की तारीफ करते हैं तब वे बहुत ही खुश होते हैं, परन्तु विद्या देवी के उपासक विद्वान् जन ऐसे कामों में व्यय करने की कभी तारीफ नहीं कर सकते हैं, क्यों कि ऐसे व्यर्थ कार्यों में हजारों रुपयोंका व्यय कर देना शिष्टसम्मत (विद्वानों की सम्मति के अनुकूल) नहीं है।

पाठक गण ऊपर के लेख से मरुदेश के धनाढ्यों और सेठ साहूकारों की उदारता का परिचय अच्छे प्रकारसे पा गये होंगे, अब कहिये ऐसी दशा में इस देश के कल्याण

१–वर्त्तमान समय में तो यहां के (मरुस्थल देश के) विशाली धनाढ्य सेठ और साहूकार आदि ऐसे मलीन हृदय के हो रहे हैं कि इन के विषय में कुछ कहा नहीं जाता है किन्तु अन्त करण में ही सब सन्ताप करना पड़ता है, इन के चरित्र और बर्त्ताव ऐसे निन्द्य हो रहे हैं कि जिन्हें देखकर दारुण दुःख उत्पन्न होता है, ये लोग धन पाकर ऐसे मदोन्मत्त हो रहे हैं कि इन को अपने कर्त्तव्य की कुछ भी सुधि बुधि नहीं है, प्रतिदिन इन लोगों का कुत्सितव्यापारी दुर्जनों के साथ सहवास रहता है, विद्वान् और धर्मात्मा पुरुषों की संगति इन्हें घड़ी भर भी अच्छी नहीं लगती है, यदि कोई योग्य पुरुष इन के पास आकर बैठता है तो इन की आन्तरिक इच्छा यही रहती है कि–कब यह पुरुष उठ कर जावे और हम उन्मत्त जन तथा निकम्मी बातों में अपने समय को बितावें हँसी ठट्ठा करना स्त्रियों को देखना उन की चर्चा करना ताश वा चौपड़ का खेलना भंग आदि मादक द्रव्यों का सेवन करना दूसरों की निन्दा करना तथा अमूल्य समय को व्यर्थ में नष्ट करना यही इन का रातदिन का कार्य है, यह हम नहीं कहते हैं कि–मरुस्थल देशवासी सब ही धनाढ्य सेठ साहूकार आदि ऐसे हैं क्योंकि यहां भी कितनेक विद्वान् धर्मात्मा और विचारशील पुरुष देखे जाते हैं जो कि–दया और सदाचार आदि गुणों से युक्त हैं, परन्तु अधिकांश में उन्हीं लोगों की संख्या है जिन का वर्णन हम अभी कर चुके हैं ॥

की संभावना कैसे हो सकती है? हा इस समय में हम मुर्शिदावाद के निवासी धनाढ्य और सेठ साहूकारों[1] को धन्यवाद दिये विना नही रह सकते है, क्यों कि उन में अब भी ऊपर कही हुई बात कुछ २ देखी जाती है, अर्थात् उस देश में बड़े रसों में से मकर-ध्वज और साधारण रसों में विलासगुटिका[2], ये दो रस प्रायः श्रीमानों के घरों में बने हुए तैयार रहते है और मौके पर वे सब को देते भी है, वास्तव में यह विद्यादेवी के उपासक होने की ही एकनिशानी है[3] ।

अन्त में हमारा कथन केवल यही है कि–हमारे मरुस्थल देश के निवासी श्रीमान् लोग ऊपर लिखे हुए लेख को पढ़ कर तथा अपने हिताहित और कर्तव्यका विचार कर सन्मार्ग का अवलम्बन करें तो उन के लिये परम कल्याण हो सकता है, क्यों कि अपने कर्तव्य में प्रवृत्त होना ही परलोकसाधन का एक मुख्य सोपान (सीढ़ी) है[4] ॥

आगन्तुक ज्वर का वर्णन ॥

कारण—शस्त्र और लकड़ी आदि की चोट तथा काम, भय और क्रोध आदि[5] बाहर के कारण शरीरपर अपना असर कर ज्वर को उत्पन्न करते हैं, उसे आगन्तुक ज्वर कहते हैं, यद्यपि अयोग्य आहार और विहार से विगड़ी हुई वायु भी आमाशय (होजरी) में जाकर भीतर की अग्नि को विगाड़ कर रस तथा खून में मिल कर ज्वर को उत्पन्न करती है परन्तु यह कारण सब प्रकार के ज्वरो का कारण नहीं हो सकता है–क्यों कि ज्वर दो प्रकार का है–शारीरिक और आगन्तुक, इन में से शारीरिक स्वतन्त्र (स्वाधीन[6]) और आगन्तुक परतन्त्र (पराधीन) है, इन में से शारीरिक ज्वर में ऊपर लिखा हुआ कारण हो सकता है, क्यों कि शारीरिक ज्वर वायु का कोप होकर ही उत्पन्न होता है, किन्तु आगन्तुक ज्वर में पहिले ज्वर चढ़ जाता है पीछे दोष का कोप होता है, जैसे–

१–इन को यहा की वोली मे बाबू कहते हैं, इन के पुरुषाजन वास्तव में मरुस्थलदेश के निवासी थे ॥

२–इस को वहा की देश भाषा मे लक्खी विलासगुटिका कहते हैं ॥

३–क्योंकि उन के हृदय में दया और परोपकार आदि मानुषी गुण विद्यमान हैं ॥

४–उन को स्मरण रखना चाहिये कि यह मनुष्य जन्म बड़ी कठिनता से प्राप्त होता है तथा वारंवार नहीं मिलता है, इस लिये पशुवत् व्यवहारों को छोड कर मानुषी वर्त्ताव को अपने हृदय मे स्थान दे, विद्वानों और ज्ञानी महात्माओं की सङ्गति करें, कुछ शक्ति के अनुसार शास्त्रों का अभ्यास करें, लक्ष्मी और तज्जन्य विलास को अनित्य समझ कर द्रव्य को सन्मार्ग में खर्च कर परलोक के सुख का सम्पादन करें, क्योंकि इस मल से भरे हुए तथा अनित्य शरीर से निर्मल और शाश्वत (नित्य रहनेवाले) परलोक के सुख का सम्पादन कर लेना ही मानुषी जन्म की कृतार्थता है ॥

५–आदि शब्द से भूत आदि का आवेश, अभिचार (घात और मूठ आदि का चलाना), अभिशाप (ब्राह्मण, गुरु, वृद्ध और महात्मा आदि का शाप) विषभक्षण, अग्निदाह तथा हड्डी आदि का टूटना, इत्यादि कारण भी समझ लेने चाहियें ॥

६–यह स्वाधीन इस लिये है कि अपने ही किये हुए मिथ्या आहार और विहार से प्राप्त होता है ॥

देखो ! काम शोक तथा डर से चढ़े हुए ज्वर में पित्त का कोप होता है और भूतादि के प्रतिबिम्ब के अनुसार में आवेश होनेसे तीनों दोषोंका कोप होता है, इत्यादि ।

भेद तथा लक्षण—१–विषजन्य (विषसे पैदा होनेवाला) आगन्तुक ज्वर– विष के खाने से चढ़े हुए ज्वर में रोगी का मुख काला पड़ जाता है, सुई के चुभाने के समान पीड़ा होती है, अन्न पर अरुचि, प्यास और मूर्छा होती है, स्थावर विषसे उत्पन्न हुए ज्वर में दस्त भी होते हैं, क्यों कि विष नीचे को गति करता है तथा मल आदि से युक्त वमन (उलटी) भी होती है ।

२–**ओषधिगन्धजन्य ज्वर**—किसी तेज तथा दुर्गन्धयुक्त वनस्पति की गन्ध से चढ़े हुए ज्वर में मूर्छा, शिर में दर्द तथा वम (उलटी) होती है ।

३–**कामज्वर**—अभीष्ट (प्रिय) स्त्री अथवा पुरुष की प्राप्ति के न होने से उत्पन्न हुए ज्वर को कामज्वर कहते हैं, इस ज्वर में चित्तकी अस्थिरता (चञ्चलता), तन्द्रा (ऊंघ) आलस्य, छाती में दर्द, अरुचि, हाथ पैरों का ऐंठना, गलहस्त (गलहत्था) देकर फिक्र का करना, किसी की कही हुई बात का अच्छा न लगना, शरीर का सूखना, मुँह पर पसीने का आना तथा निःश्वास का होना आदि चिह्न होवे हैं ।

४–**भयज्वर**—डर से चढ़े हुए ज्वर में रोगी प्रलाप (बकवाद) बहुत करता है ।

५–**क्रोधज्वर**—क्रोध से चढ़े हुए ज्वर में कम्पन (काँपनी) होती है तथा मुख कडुआ रहता है ।

६–**भूताभिषङ्गज्वर**—इस ज्वर में उद्वेग, हँसना, गाना, नाचना, काँपना तथा अचिन्त्य शक्ति का होना आदि चिह्न होवे हैं ।

इन के सिवाय क्षतज्वर अर्थात् शरीर में घाव के लगने से उत्पन्न होनेवाला ज्वर, दाहज्वर, श्रमज्वर (परिश्रम के करने से उत्पन्न हुआ ज्वर) और छेदज्वर (शरीर के किसी भाग के कटने से उत्पन्न हुआ ज्वर) आदिज्वरों का इस आगन्तुक ज्वर में ही समावेश होता है ।

१–शास्त्र में इस ज्वर के लक्षण–भ्रम अरुचि दाह और लज्जा निद्रा बुद्धि और धैर्य का नाश माने हैं ॥

२–स्त्री के कामज्वर होने पर मूर्छा देह का टूटना प्यास का लगना नेत्र दाह और मुख का कमल होना पसीनों का आना तथा हृदय में दाह का होना ये लक्षण होते हैं ॥

३–(प्रश्न) कम्पन का होना वात का कार्य है फिर वह (कम्पन) क्रोध ज्वर में कैसे होता है, क्योंकि क्रोध में तो पित्त का प्रकोप होता है । (उत्तर) पहिले कह चुके हैं कि एक कुपित हुआ दोष दूसरे दोष को भी कुपित करता है इसलिये पित्त के प्रकोप के कारण वात भी कुपित हो जाता है और उसी से कम्पन होता है, अथवा क्रोध से केवल पित्त का ही प्रकोप होता है यह बात नहीं है किन्तु–वात का भी प्रकोप होता है, जैसा कि–विदेह आचार्य ने कहा है कि–"क्रोधशोकौ स्मृतौ वातपित्तरक्तप्रकोपनौ" अर्थात् क्रोध और शोक ये दोनों वात पित्त और रक्त को प्रकुपित करनेवाले माने गये हैं, तब जब क्रोध से वात का भी प्रकोप होता है तो उस से कम्पन का होना साधारण बात है ॥

चिकित्सा—१–विष से तथा ओषधि के गन्ध से उत्पन्न हुए ज्वर में–पित्तशमन, कर्त्ता (पित्त को शान्त करनेवाला) औषध लेना चाहिये[1], अर्थात् तज, तमालपत्र, इलायची, नागकेशर, कबावचीनी, अगर, केशर और लौंग, इन में से सब वा थोड़े सुगन्धित पदार्थ लेकर तथा उनका क्काथ (काढा) बना कर पीना चाहिये।

२–काम से उत्पन्न हुए ज्वर में–बाला, कमल, चन्दन, नेत्रवाला, तज, धनियाँ तथा जटामांसी आदि शीतल पदार्थों की उकाली, ठंढा लेप तथा इच्छित वस्तु की प्राप्ति आदि उपाय करने चाहियें।

३–क्रोध, भय और शोक आदि मानसिक (मनःसम्बन्धी) विकारों से उत्पन्न हुए ज्वरों में–उन के कारणों को (क्रोध, भय और शोक आदिको) दूर करने चाहियें, रोगी को धैर्य (दिलासा) देना चाहिये, इच्छित वस्तु की प्राप्ति करानी चाहिये, यह ज्वर पित्त को शान्त करनेवाले शीतल उपचार, आहार और विहार आदि से मिट जाता है।

४–चोट, श्रम, मार्गजन्य श्रान्ति (रास्ते में चलने से उत्पन्न हुई थकावट) और गिर जाना इत्यादि कारणों से उत्पन्न हुए ज्वरों में–पहिले दूध और भात खाने को देना चाहिये तथा मार्गजन्य श्रान्ति से उत्पन्न हुए ज्वर में तेल की मालिश करवानी चाहिये तथा सुखपूर्वक (आराम के साथ) नींद लेनी चाहिये।

५–आगन्तुक ज्वरवाले को लंघन नही करना चाहिये किन्तु स्निग्ध (चिकना), तर तथा पित्तशामक (पित्त को शान्त करनेवाला) शीतल भोजन करना चाहिये और मन को शान्त रखना चाहिये, क्योंकि ऐसा करने से ज्वर नरम (मन्द) पड़ कर उतर जाता है।

६–आगन्तुकज्वर वाले को वारंवार सन्तोष देना तथा उस के प्रिय पदार्थों की प्राप्ति कराना अति लाभदायक होता है, इस लिये इस बात का अवश्य खयाल रखना चाहिये[3] ॥

विषमज्वर का वर्णन ॥

कारण—किसी समय में आये हुए ज्वर के दोषों का शास्त्र की रीति के विना किसी प्रकार निवारण करने के पीछे, अथवा किसी ओषधि[4] से ज्वर को दबा देने से जब उस

१–इन दोनों (विषजन्य तथा ओषधिगन्धजन्य) ज्वरों में–पित्त प्रकुपित हो जाता है इस लिये पित्त को शान्त करनेवाली ओषधि के लेने से पित्त शान्त हो कर ज्वर शीघ्र ही उतर जाता है ॥

२–वाग्भट ने लिखा है कि "शुद्धवातक्षयागन्तुजीर्णज्वरिषु लङ्घनम्" नेष्यते, इति शेष, अर्थात् शुद्ध वात में (केवल वातजन्य रोग में), क्षयजन्य (क्षयसे उत्पन्न हुए) ज्वर में, आगन्तुकज्वर में तथा जीर्णज्वर में लंघन नहीं करना चाहिये, बस यही सम्मति प्राय सब आचार्यों की है ॥

३–इस ज्वर का सम्बध प्राय मन के साथ होता है इसी लिये मन को सन्तोष प्राप्त होने से तथा अभीष्ट वस्तु के मिलने से मन की शान्तिद्वारा यह ज्वर उतर जाता है ॥

४–जैसे क्विनाइन आदि से ॥

की झिंगस (अंश) नहीं जाती है तब वह ज्वर धातुओं में छिप कर ठहर जाता है तथा अहित आहार और विहार से दोष कोप को प्राप्त होकर पुनः ज्वर को प्रकट कर देते हैं उसे विषमज्वर कहते हैं, इस के सिवाय-इस ज्वर की उत्पत्ति सराब हवा आदि दूसरे कारणों से भी प्रारंभ दशा में हो जाती है।

लक्षण—विषमज्वर का कोई भी नियत समय नहीं है[3], न उस में ठंढ वा गर्मी का कोई नियम है और न उस के वेग की ही तादाद है, क्योंकि यह ज्वर किसी समय थोड़ा तथा किसी समय अधिक रहता है, किसी समय ठंढ और किसी समय गर्मी लग कर चढ़ता है, किसी समय अधिक वेग से और किसी समय मन्द (कम) वेग से चढ़ता है तथा इस ज्वर में प्रायः पित्त का कोप होता है।

भेद—विषम ज्वर के पांच भेद हैं—सन्तत, सतत, अन्येद्युष्क (एकान्तरा), तेजरा और चौथिया, अब इन के स्वरूप का वर्णन किया जाता है:—

१-सन्तत—बहुत दिनोंतक विना उतरे ही अर्थात् एकसदृश रहनेवाले ज्वर को सन्तत कहते हैं, यह ज्वर वातिक (वायु से उत्पन्न हुआ) सात दिन तक, पैत्तिक (पित्त से उत्पन्न हुआ) दश दिन तक और कफज (कफ से उत्पन्न हुआ) बारह दिन तक अपने २ दोष की शक्ति के अनुसार रह कर चला जाता है, परन्तु पीछे (उतर कर पुनः) फिर भी बहुत दिनों तक आता रहता है, यह ज्वर शरीर के रस नामक धातु में रहता है।

१-तात्पर्य यह है कि जब प्राणी का ज्वर चला जाता है तब अल्प दोष भी अहित आहार और विहार के सेवन से पूर्ण होकर रस और रक्त आदि किसी धातु में प्राप्त होकर तथा उस को दूषित (विकृत) कर फिर विषम ज्वर को उत्पन्न कर देता है ॥

२-अर्थात् ज्वर की प्रारम्भदशा में जब खराब वा विषैली हवा का सेवन अथवा प्रवेश आदि हो जाता है तब भी वह ज्वर विकृत होकर विषमज्वररूप हो जाता है ॥

३- विषमज्वर का कोई भी नियत समय नहीं है" इस कथन का तात्पर्य यह है कि—जैसे वातजन्य ज्वर सात रात्रि तक पित्तज्वर दश रात्रि तक तथा कफज्वर बारह रात्रि (दिन) तक रहता है तथा प्रबल वेग होने से वातजन्य चौदह दिन तक पित्तज्वर तीस दिन तक तथा कफज्वर चौबीस दिन तक रहता है इस प्रकार विषमज्वर नहीं रहता है, अर्थात् इस का नियमित काल नहीं है तथा इस के वेग का भी नियम नहीं है अर्थात् कभी प्रबल वेग से चढ़ता है और कभी मन्द वेग से चढ़ता है ॥

४-इस ज्वर से सततज्वर भिन्न है, क्योंकि सततज्वर प्रायः दिन रात में दो बार चढ़ता है अर्थात् एक बार दिन में और एक बार रात्रि में क्योंकि—प्रत्येक दोष का रात दिन में दो बार प्रकोप का समय आता है परन्तु यह वैसा नहीं है, क्योंकि यह तो अपनी स्थिति के समय बराबर बना ही रहता है ॥

५-परन्तु किन्हीं आचार्यों की सम्मति है कि—यह ज्वर शरीर के रस और रक्त नामक (दोनों) धातुओं में रहता है ॥

२-सतत—बारह घण्टे के अन्तर से आनेवाले तथा दिन में और रात्रि में दो समय[1] आनेवाले ज्वर को सतत कहते है, इस ज्वर का दोप रक्त (खून) नामक धातु में रहता है।

३-अन्येद्युष्क (एकान्तरा)—यह ज्वर सदा २४ घण्टे के अन्तर से आता है अर्थात् प्रतिदिन एक बार चढता और उतरता है[2], यह ज्वर मांस नामक धातु में रहता है।

४-तेजरा—यह ज्वर ४८ घण्टे के अन्तर से आता है अर्थात् बीच में एक दिन नहीं आता है[3], इस को तेजरा कहते है परन्तु इस ज्वर को कोई आचार्य एकान्तर कहते हैं, यह ज्वर मेद नामक धातु में रहता है।

५-चौथिया—यह ज्वर ७२ घण्टे के अन्तर से आता है अर्थात् बीच में दो दिन न आकर तीसरे दिन[4] आता है, इस को चौथिया ज्वर कहते है, इस का दोप अस्थि (हाड़) नामक धातु में तथा मज्जा नामक धातु में रहता है।

इस ज्वर[5] में दोप भिन्न २ धातुओं का आश्रय लेकर रहता है इसलिये इस ज्वर को वैद्यजन रसगत, रक्तगत, इत्यादि नामों से कहते[6] है, इन में पूर्व २ की अपेक्षा उत्तर २ अधिक भयकर होता है[7], इसी लिये इस अनुक्रम से अस्थि तथा मज्जा धातु में गया हुआ (प्राप्त हुआ) चौथिया ज्वर अधिक भयङ्कर होता[8] है, इस ज्वर में जब दोष वीर्य में पहुँच जाता है तब प्राणी अवश्य मर जाता है।

अब विषमज्वरों की सामान्यतया तथा प्रत्येक के लिये भिन्न २ चिकित्सा[9] लिखते हैं:—

१-क्योंकि दोष के प्रकोप का समय दिन और रातभर में (२४ घण्टे में) दो वार आता है ॥

२-इस में दिन वा रात्रि का नियम नहीं है कि दिन ही में चढे वा रात्रि में ही चढे किन्तु २४ घटे का नियम है ॥

३-अर्थात् तीसरे दिन आता है, इस में ज्वर के आने का दिन भी ले लिया जाता है अर्थात् जिस दिन आता है उस दिन समेत तीसरे दिन पुन आता है ॥

४-तीसरे दिन से तात्पर्य यहा पर ज्वर आने के दिन का भी परिगणन कर के चौथे दिन से है, क्योंकि ज्वर आने के दिन का परिगणन कर के ही इस का नाम चातुर्थिक वा चौथिया रक्खा गया है ॥

५-इस ज्वर में अर्थात् विषमज्वर मे ॥

६-अर्थात् आश्रय की अपेक्षा से नाम रखते हैं, जैसे—सन्तत को रसगत, सतत को रक्तगत, अन्येद्युष्क को मांसगत, तेजरा को मेदोगत तथा चौथिया को मज्जास्थिगत कहते हैं ॥

७-अर्थात् सन्तत से सतत, सतत से अन्येद्युष्क, अन्येद्युष्क से तेजरा और तेजरे से चौथिया अधिक भयकर होता है ॥

८-अर्थात् सब की अपेक्षा चौथिया ज्वर अधिक भयकर होता है ॥

९-सम्पूर्ण विषमज्वर सन्निपात से होते हैं परन्तु इन में जो दोष अधिक हो उन में उसी दोष की प्रधानता से चिकित्सा करनी चाहिये, विषमज्वरों में भी देह का ऊपर नीचे से (वमन और विरेचन के द्वारा) शोधन करना चाहिये तथा स्निग्ध और उष्ण अन्नपानों से इन (विषम) ज्वरों को जीतना चाहिये ॥

चिकित्सा—१–सन्तत ज्वर—इस ज्वर में–पटोल, इन्द्रयव, देवदारु, गिलोय और नीम की छाल का क्काथ देना चाहिये।

२–सततज्वर—इस ज्वर में–त्रायमाण, कुटकी, धमासा और उपलसिरी का क्काथ देना चाहिये।

३–अन्येद्युष्क (एकान्तर)—इस ज्वर में–दाख, पटोल, कड़ुआ नीम, मोथ, इन्द्रयव तथा त्रिफला, इन का क्काथ देना चाहिये।

४–तेजरा—इस ज्वर में–बाला, रक्तचन्दन, मोथ, गिलोय, धनिया और सोंठ, इन का क्काथ शहद और मिश्री मिला कर देना चाहिये।

५–चौथिया—इस ज्वर में–अडूसा, आँवला, सालवण, देवदारु, जौं हरड़ें और सोंठ का क्काथ शहद और मिश्री मिला कर देना चाहिये।

सामान्य चिकित्सा—६–दोनों प्रकार की (छोटी बड़ी) रींगणी, सोंठ, धनिया और देवदारु, इन का क्काथ देना चाहिये, यह क्काथ पाचन है इस लिये विषमज्वर तथा सब प्रकार के ज्वरों में इस क्काथ को पहिले देना चाहिये।

७–मुस्तादि क्काथ—मोथ, भूरींगणी, गिलोय, सोंठ और आँवला, इन पाँचों की उकाली को शीतल कर शहद तथा पीपल का चूर्ण डाल कर पीना चाहिये।

८–ज्वरांकुश—शुद्ध पारा, गन्धक, वत्सनाग, सोंठ, मिर्च और पीपल, इन छओं पदार्थों का एक एक भाग तथा शुद्ध किये हुए धतूरे के बीज दो भाग लेने चाहियें, इन में से प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली कर शेष चारों पदार्थों को कपड़छान कर तथा सब को मिला कर नींबू के रसमें खूब खरैल कर दो दो रत्ती की गोलियां बनानी चाहियें, इन में से एक वा दो गोलियों को पानी में या अदरख के रस में अथवा सोंठ के पानी में ज्वर आने तथा ठंढ लगने से आध घण्टे अथवा घण्टे भर पहिले लेना चाहिये, इस से ज्वर का आना तथा ठंढ का लगना बिलकुल बन्द हो जाता है, ठंढ के ज्वर में ये गोलियां क्विनाइन से भी अधिक फायदेमन्द हैं।

१–पहिले इसी क्काथ के देने से दोषों का पाचन होकर उन का वेग मन्द हो जाता है तथा उन की प्रबलता मिट जाती है और प्रबलता के मिट जाने से पीछे दी हुई साधारण भी ओषधि शीघ्र ही तथा विशेष फायदा करती है॥

२–भूरींगणी अर्थात् कटेरी॥

३–आते हुए ज्वर के रोकने के लिये तथा ठंढ लगने को दूर करने के लिये यह (ज्वरांकुश) बहुत उत्तम ओषधि है॥

४–खरल कर अर्थात् खरल में घोट कर॥

५–क्योंकि–ये गोलियां ठंढ को मिटा कर तथा शरीर में उष्णता का सञ्चार कर बुखार को मिटाती हैं और शरीर में शक्ति को भी उत्पन्न करती हैं॥

फुटकर चिकित्सा—९–चौथिया तथा तेजरा के ज्वर में अगस्त के पत्तों का रस अथवा उस के सूखे पत्तों को पीस तथा कपड़छान कर रोगी को सुँघाना चाहिये तथा पुराने घी में हींग को पीस कर सुँघाना चाहिये ।

१०–इन के सिवाय–सब ही विषम ज्वरों में ये (नीचे लिखे) उपाय हितकारी है–काली मिर्च तथा तुलसी के पत्तों को घोट कर पीना चाहिये, अथवा–काली जीरी तथा गुड़ में थोड़ी सी काली मिर्च को डाल कर खाना चाहिये, अथवा–सोंठ जीरा और गुड़, इन को गर्म पानी में अथवा पुराने शहद में अथवा गाढ़ी छाछ मे पीना चाहिये, इस के पीने से ठढ का ज्वर उतर जाता है, अथवा–नीम की भीतरी छाल, गिलोय तथा चिराथते के पत्ते, इन तीनों में से किसी एक वस्तु को रात को भिगा कर प्रातःकाल कपड़े से छान कर तथा उस जल में मिश्री मिला कर और थोड़ी सी काली मिर्च डाल कर पीना चाहिये, इस के पीने से ठढ के ज्वर में बहुत फायदा होता है ।

स्मरण रहे कि–देशी इलाजों में से वनस्पति के क्वाथ के लेने में सब प्रकार की निर्भयता है तथा इस के सेवन में धर्म का संरक्षण भी है क्योंकि सब प्रकार के काढ़े ज्वर के होने पर तथा न भी होने पर प्रति समय दिये जा सकते है, इस के अतिरिक्त–इन से मल का पाचन होकर दस्त भी साफ आता है, इस लिये इन के सेवन के समय में साफ दस्त के आने के लिये पृथक् जुलाव आदि के लेने की आवश्यकता नहीं रहती है, तात्पर्य यह है कि–वनस्पति का क्वाथ सर्वथा और सर्वदा हितकारी है तथा साधारण चिकित्सा है, इसलिये जहा तक हो सके पहिले इसी का सेवन करना चाहिये[2] ॥

सन्तत ज्वर (रिमिटेंट फीवर) का विशेष वर्णन ॥

कारण— विषमज्वर का कारण यह सन्ततज्वर ही है जिस के लक्षण तथा

१–इस के–अगस्त्य, वगसेन, मुनिपुष्प और मुनिद्रुम, ये सस्कृत नाम हैं, हिन्दी मे इसे अगस्त अगस्तिया तथा हथिया भी कहते हैं, वगाली मे–वक, मराठी मे–हदगा, गुजराती मे–अगथियो तथा अग्रेजी में ग्राण्डी फलोरा कहते हैं, इस का वृक्ष लम्बा होता है और इस पर पत्तेवाली वेलें अधिक चढती हैं, इस के पत्ते इमली के समान छोटे २ होते हैं, फूल सफेद, पीला, लाल और काला होता है अर्थात् इस का फूल चार प्रकार का होता है तथा वह (फूल) केसूला के फूल के समान वाका (टेढा) और उत्तम होता है, इस वृक्ष की लम्बी पतली और चपटी फलिया होती हैं, इस के पत्ते शीतल, रूक्ष, वातकर्ता और कडुए होते हैं, इस के सेवन से पित्त, कफ, चौथिया ज्वर और सरेकमा दूर हो जाता है ॥

२–यह सर्वतन्त्र सिद्धान्त है कि–वनस्पति की खुराक तथा रूपान्तर मे उस का सेवन प्राणियों के लिये सर्वदा हितकारक ही है, यदि वनस्पति का क्वाथ आदि कोई पदार्थ किसी रोगी के अनुकूल न भी आवे तो उसे छोड देना चाहिये परन्तु उस से शरीर मे किसी प्रकार का विकार होकर हानि की सम्भावना कभी नहीं होती है जैसी कि अन्य रसादि की मात्राओं आदि से होती है, इसी लिये ऊपर कहा गया है कि–जहा तक हो सके पहिले इसी का सेवन करना चाहिये ॥

चिकित्सा पहिले संक्षेप से लिख चुके हैं यह मलेरिया की विषैली हवा में से उत्पन्न होता है तथा यह ज्वर विषमज्वर के दूसरे भेदों की अपेक्षा अधिक भयङ्कर है[२]।

लक्षण—यह ज्वर सात दश वा बारह दिन तक एक सदृश (एकसरीखा) बना करता है अर्थात् किसी समय भी नहीं उतरता है, यह ज्वर प्रायः तीनों दोषों के कुपित होने से आता है, इस ज्वर के प्रारंभ में पाचनक्रिया की अव्यवस्था (गड़बड़), विकलता (बेचैनी), खिन्नता (चित्त की दीनता) तथा शिर में दर्द का होना आदि लक्षण मालूम होते हैं ठंढ की चमकारी इतनी थोड़ी आती है कि ठंढ चढ़ने की खबर तक नहीं पड़ती है और शरीर में एकदम गर्मी भर जाती है, इस के सिवाय—इस ज्वर में चमड़ी में दाह, वमन (उल्टी), शिर में दर्द, नींद का न आना तथा तन्द्रा (मींट) का होना आदि लक्षण भी पाये जाते हैं।

अन्तर्वेगी (अन्तरिया) बुखार से इस बुखार में इतना भेद है कि—अन्तर्वेगी ज्वर में तो ज्वर का चढ़ना और उतरना स्पष्ट मालूम देता है परन्तु इस में ज्वर का चढ़ना और उतरना मालूम नहीं देता है, क्यों कि—अन्तर्वेगी ज्वर तो किसी समय बिलकुल उतर जाता है और यह ज्वर किसी समय भी नहीं उतरता है किन्तु न्यूनाधिक (कम ज्यादा) होता रहता है अर्थात् किसी समय कुछ कम तथा किसी समय अत्यन्त ही कम हो जाता है, इस लिये यह भी नहीं मालूम पड़ता है कि—कम अधिक हुआ और कम कम हुआ, यह बात प्रकटतया थर्मामेटर से ठीक मालूम होती है[३], तात्पर्य यह है कि—इस ज्वर की दो स्थिति होती हैं—जिन में से पहिली स्थिति में थोड़े २ अन्तर से ऊपर ही ऊपर ज्वर का चढ़ाव उतार होता है और पीछे दूसरी स्थिति में ज्वर की भरती (आमद) अनुमान आठ २ घण्टे तक रहती है, इस समय चमड़ी बहुत गर्म रहती है, नाड़ी बहुत जल्दी चलती है, श्वासोच्छ्वास बहुत वेग से चलता है और मन को विकलता प्राप्त होती है[४] अर्थात् मन को चैन नहीं मिलता है, ज्वर की गर्मी किसी समय १०४

१—पहिले लिख चुके हैं कि मलेरिया की विषैली हवा चौमासे के बाद दलदलों में से उत्पन्न होती है॥

२—तात्पर्य यह है कि मलेरिया की विषैली हवा शरीर के प्रत्येक भाग में प्रविष्ट होकर तथा अपना असर कर ज्वर को उत्पन्न करती है इस लिये यह ज्वर अधिक भयंकर होता है॥

३—क्योंकि थर्मामेटर के लगाने से गर्मी की न्यूनता (कमी) तथा अधिकता (ज्यादती) साफ मालूम हो जाती है, बस उसी से ज्वर की भी न्यूनता तथा अधिकता मालूम कर ली जाती है अर्थात् गर्मी की न्यूनता से ज्वर की न्यूनता तथा गर्मी की अधिकता से ज्वर की अधिकता का निश्चय हो जाता है, क्योंकि पहिले लिख चुके हैं कि ज्वर के समय में गर्मी बढ़ती जाती है थर्मामेटर के लगाने की विधि पहिले लिख चुके हैं॥

४—नाड़ी का शीघ्र चलना तथा श्वासोच्छ्वास का वेग से आना ये दोनों बातें ज्वर के समय के ही कारण होती हैं तथा उन्हीं से हृदय की अस्वस्थता होकर मन को विकलता प्राप्त होती है॥

तक तथा किसी समय उस से भी आगे अर्थात् १०५ और १०७ तक भी बढ़ जाती है, इस प्रकार आठ दश घंटे तक अधिक वेगयुक्त होकर पीछे कुछ नरम (मन्द) पड़ जाता है तथा थोड़ा २ पसीना आता है, ज्वर की गर्मी के अधिक होने से इस के साथ खांसी, लीवर का वरम (शोथ), पाचनक्रिया में अव्यवस्था (गडबड़) अतीसार और मरोड़ा आदि उपद्रव भी हो जाते है ।

इस ज्वर में प्रायः सातवें दशवें वा बारहवें दिन[1] तन्द्रा (मीट) अथवा सन्निपात के लक्षण दीखने लगते हैं तथा इस ज्वर की उचित चिकित्सा न होने से यह १२ से २४ दिन तक ठहर जाता है[2] ।

चिकित्सा—यह सन्ततज्वर (रिमिटेंट फीवर) बहुत ही भयंकर होता है इस लिये यदि गृहजनों को इस का ठीक परिज्ञान न हो सके तो कुशल वैद्य वा डाक्टर से इस की परीक्षा करा के चिकित्सा करानी चाहिये, क्यों कि सख्त और भयंकर बुखार में रोगी ७ से १२ दिन के अन्दर मर जाता है और जब रोग अधिकदिन तक ठहर जाता है तो गम्भीर रूप पकड़ लेता है अर्थात् पीछे उसका मिटना अति दुःसाध्य (कठिन) हो जाता है, सब से प्रथम इस बुखार की मुख्य चिकित्सा यही है कि—बुखार की टेम्परेचर (गर्मी) को जैसे हो सके वैसे कम करना चाहिये[3], क्यों कि ऐसा न करने से एकदम खून का जोश चढ़कर मगज में शोथ हो जाता है तथा तन्द्रा और त्रिदोष हो जाता है इस लिये गर्मी को कम करने के लिये यथाशक्य शीघ्र ही उपाय करना चाहिये, इस के अतिरिक्त जो देशी चिकित्सा पहिले लिख चुके है वह करनी चाहिये ॥

जीर्णज्वर का वर्णन ॥

कारण—जीर्णज्वर किसी विशेष कारण से उत्पन्न हुआ कोई नया बुखार नहीं है किन्तु नया बुखार नरम (मन्द) पड़ने के पीछे जो कुछ दिनों के बाद अर्थात् बारह दिन के बाद[4] मन्दवेग से शरीर में रहता है उस को जीर्णज्वर कहते हैं, यह ज्वर ज्यों

१—तात्पर्य यह है कि—वात के प्रकोप म सातवें दिन, पित्त के प्रकोप में दशवें दिन तथा कफ के प्रकोप मे बारहवें दिन तन्द्रा होती है अथवा पूर्व लिखे अनुसार एक दोष कुपित हुआ दूसरे दोषों को भी कुपित कर देता है इस लिये सन्निपात के लक्षण दीखने लगते हैं ॥

२—तात्पर्य यह है कि दोषों की प्रबलता के अनुसार इस की १२ से २४ दिन तक स्थिति रहती है ॥

३—अर्थात् गर्मी को यथाशक्य उपायों द्वारा बढने नहीं देना चाहिये ॥

४—तात्पर्य यह है कि—बारह दिन के बाद तथा तीनों दोषों के द्विगुण (दुगुने) दिनों के (तेरह द्विगुण छब्बीस) अर्थात् छब्बीस दिनों के उपरान्त जो ज्वर शरीर में मन्दवेग से रहता है उस को जीर्णज्वर कहते हैं, परन्तु कोई आचार्य यह कहते हैं कि २१ दिन के उपरान्त मन्दवेग से रहनेवाला ज्वर जीर्णज्वर होता है ॥

२ पुराना होता है त्यों २ मन्दवेगवाला होता है, इसी को अस्थिज्वर (अस्थि अर्थात् हाड़ों में पहुँचा हुआ ज्वर) भी कहते हैं[1]।

लक्षण—इस ज्वर में मन्दवेगता (बुखार का वेग मन्द), शरीर में रूखापन, चमड़ी पर शोथ (सूजन), अफरा, अङ्गों का अकड़ना तथा कफ का होना, ये लक्षण होते हैं तथा ये लक्षण जब क्रम २ से बढ़ते जाते हैं तब वह जीर्णज्वर कष्टसाध्य हो जाता है[2]।

चिकित्सा[3]—१–गिलोय का काढ़ा कर तथा उस में छोटीपीपल का चूर्ण तथा शहद मिलाकर कुछ दिन तक पीने से जीर्णज्वर मिट जाता है।

२–खांसी, श्वास, पीनस तथा अरुचि के संग यदि जीर्णज्वर हो तो उस में गिलोय, भूरींगणी तथा सोंठ का काढ़ा बना कर उस मे छोटी पीपल का चूर्ण मिला कर पीने से बड़ा फायदा करता है[4]।

३–हरी गिलोय को पानी में पीसकर तथा उस का रस निचोड़ कर उस में छोटी पीपल तथा शहद मिला कर पीने से जीर्णज्वर, कफ, खांसी, तिल्ली और अरुचि मिट जाती है।

४–दो भाग गुड़ और एक भाग छोटी पीपल का चूर्ण, दोनों को मिला कर इस की गोली बना कर खाने से अजीर्ण, अरुचि, अग्निमन्दता, खांसी, श्वास, पाण्डु तथा कृमि रोग सहित जीर्णज्वर मिट जाता है।

५–छोटी पीपल को शहद में चाटने से, अथवा अपनी शक्ति और प्रकृति के अनुसार दो से लेकर सात पर्यन्त छोटी पीपलों को रात को जल को जल में या दूध में भिगा कर

१–यह ज्वर क्रम २ से सातों धातुओं में जाता है अर्थात् पहिले रस में फिर रक्त में फिर मांस में फिर मेद में फिर हड्डी में फिर मज्जा में और फिर शुक्र में जाता है इस ज्वर के मज्जा और शुक्र धातु में पहुँचने पर रोगी का बचना असम्भव हो जाता है ॥

२–जीर्ण ज्वर का एक भेद वातश्लेष्मी है, उस में ये सब लक्षण पाये जाते हैं, यह ज्वर कष्टसाध्य माना जाता है ॥

३–इस ज्वर में रोगी को लंघन नहीं करवाना चाहिये क्योंकि लंघन के कराने से ज्यों २ रोगी क्षीण होता जावेगा त्यों २ यह ज्वर बढ़ता चला जावेगा ॥

४–पीपल का चूर्ण अनुमान १ मासे डालना चाहिये तथा क्वाथ की दवा दो तोले लेकर १२ तोले जल में औटाना चाहिये तथा ८ तोले जल शेष रखना चाहिये ॥

५–यह क्वाथ अग्नि की मन्दता कफ और अर्दित (लकवा) रोग को भी मिटाता है, इस क्वाथ के विषय में आचार्यों की यह भी सम्मति है कि–ऊर्ध्वगत (नाभि से ऊपर के) रोग के मिटाने के लिये इसे सायंकाल को देना चाहिये (यह चक्रदत्त का मत है), यदि रात्रिज्वर हो तो भी सायंकाल को देना चाहिये ऐसी अवस्था में प्रातःकाल देना चाहिये तथा पित्तप्रधानरोग में पीपल का चूर्ण न डाल कर उस के बदले में शहद डालना चाहिये ॥

खाने से, अथवा दूध में उकाल कर पीने से, अथवा पीपलों को पीस कर गोली बना कर खाने से और गोली पर गर्म कर ठढा किया हुआ दूध पीने से अर्थात् प्रतिदिन क्रम २ से बढ़ाकर इस का सेवन करने से जीर्णज्वर आदि अनेक रोग मिट जाते हैं ।

६–**आमलक्यादि चूर्ण**—आँवला, चित्रक, हरड़, पीपल और सेंधा निमक, इन का चूर्ण बनाकर सेवन करना चाहिये, इस चूर्ण से बुखार, कफ तथा अरुचि का नाश हो जाता है, दस्त साफ आता है तथा अग्नि प्रदीप्त होती है ।

७–**स्वर्णवसन्तमालिनी और चौंसठपहरी पीपल**[1]—ये दोनों पदार्थ जीर्णज्वर के लिये अक्सीर दवा हैं ॥

ज्वर में उत्पन्न हुए दूसरे उपद्रवों की चिकित्सा ॥

ज्वर में कास (खांसी)—इस में कायफल, मोथ, भाडगी, धनिया, चिरायता, पित्तपापड़ा, वच, हरड़, काकड़ासिंगी, देवदारु और सोंठ, इन ११ चीजों की उकाली बना कर लेनी चाहिये, इस के लेने से खासी तथा कफ सहित बुखार चला जाता है ।

अथवा पीपल, पीपरामूल, इन्द्रयव, पित्तपापड़ा और सोंठ, इन ओषधियों के चूर्ण को शहद में चाटने से फायदा होता है ।

ज्वर में अतीसार—इस में लघन करना चाहिये, क्योंकि इस में लघन पथ्य है[2] ।

अथवा–सोंठ, कुड़ाछाल, मोथ, गिलोय और अतीस की कली, इन की उकाली लेनी चाहिये ।

अथवा–काली पाठ, इन्द्रयव, गिलोय, पित्तपापड़ा, मोथ, सोंठ और चिरायता, इनकी उकाली लेनी चाहिये ।

दुर्जलज्वर—यह ज्वर खराब तथा मैले पानी के पीने से, अथवा शिखरगिरि, बद्रीनाथ, आसाम और अड़ग आदिस्थानों के पानी के लगने से होता है ।

इसज्वर में–हरड़, नींब के पत्ते, सोंठ, सेंधानिमक और चित्रक, इनका चूर्ण कर बहुत दिनोंतक सेवन करना चाहिये, इस का सेवन करने से बुखार मिट जाता है ।

अथवा—पटोल वा कड़ुई तुरई, मोथ, गिलोय, अडूसा, सोंठ, धनिया और चिरायता, इन का क्वाथ शहद डालकर पीना चाहिये ।

१–ये दोनों पदार्थ शास्त्रोक्त विधि से तैयार किये हुए हमारे "मारवाडसुधावर्षणसत्यौषधालय" में सर्वदा तैयार रहते हैं, हमारे यहा का औषधसूचीपत्र मगा कर देखिये ॥

२–ज्वर में अतीसार होने पर लघन के सिवाय दूसरी ओषधि नहीं है अर्थात् लघन ही विशेष फायदा करता है, क्योंकि–लघन बढे हुए दोषों को शान्त कर देता है तथा उन का पाचन भी करता है, इस लिये ज्वर में अतीसार होने पर बलवान् रोगी को तो अवश्य ही आवश्यकता के अनुसार लघन कराने चाहियें, हा यदि रोगी निर्बल हो तो दूसरी बात है ॥

अथवा—चिरायता, निसोत, लष्ठ, वाला, पीपल, वायविडंग, सोंठ और कुटकी, इन सब औषधों का चूर्ण बना कर शहद में चाटना चाहिये ।

अथवा—सोंठ, जीरा और हरड़, इनकी चटनी बनाकर भोजन के पहिले खानी चाहिये।

अथवा—वत्सनाग दो भाग, जलाई हुई कौड़ी पांच भाग और काली मिर्च नौ भाग, इन को कूट कर तथा अदरख के रस में घोट कर मूंग के बराबर गोली बना लेनी चाहियें तथा इन में से दो गोलियों को प्रातःकाल तथा सायंकाल (दोनों समय) पानी से लेना चाहिये, ये गोलियां आमज्वर, खराब पानी के लगने से उत्पन्न ज्वर, अजीर्ण, अफरा, मन्दाग्नि, शूल, श्वास और कास आदि सब उपद्रवों में फायदा करती हैं ।

ज्वर में तृषा (प्यास)—इस में चाँदी की गोली को मुँह में रखकर चूसना चाहिये ।

अथवा—आलूबुखारा वा खजूर की गुठली को चूसना चाहिये ।

अथवा—शहद और पानी के कुरले करने चाहियें ।

अथवा—जहरी नारियल की गिरी, रुद्राक्ष, सेके (भूने) हुए लौंग, सोना, बिना बिंधे हुए मोती, मूँगिया और (मिल सके तो) फाक्से की जड़, इन सब को घिस कर सीप में रस छोड़ना चाहिये तथा घण्टे २ भर पीछे जीभ के लगाना चाहिये, तत्पश्चात् पहरभर के बाद फिर घिस कर रस छोड़ना चाहिये और उसी प्रकार लगाना चाहिये, इस से पानी झरे तथा मोती झरे की प्यास, त्रिदोष की प्यास, अरुचि, जीभ का कालापन और वमन (उलटी) आदि कष्टसाध्य भी रोग मिट जाते हैं तथा यह औषध रोगी को खुराक के समान सहारा और ताकत देती है ।

ज्वर में हिक्का (हिचकी)—यदि ज्वर में हिचकी होती हो तो सेंधेनिमक को जल में बारीक पीस कर नस्य देना चाहिये ।

अथवा—सोंठ और खांडकी नस्य देना चाहिये ।

अथवा—हींगकी धूनी देना चाहिये ।

अथवा—निर्धूम अंगार पर हींग काली मिर्च तथा उड़द को अथवा घोड़े की सूखी लीद को जला कर उस की धुआँ को सूंघना चाहिये ।

१–इस के सेवन से घोर तृषा भी शीघ्र ही शान्त हो जाती है, इस में जल बिलकुल ठंडा लेना चाहिये ॥

२–जम्भीरी बिजोरा अनारदाना बेर और चूका इन को पीसकर मुख में लेप करने से भी प्यास मिट जाती है, अथवा–धहर, वड़ (बरगद) की कोंपल और खील (भूने हुए धान अर्थात् धुलवाँडिव खोसम) इन सब को पीस कर मुख में इन का कवल रखना चाहिये यह भी तृषा (प्यास) की निवृत्ति के लिये अच्छा प्रयोग है ॥

अथवा—पीपल की सूखी छाल को जला कर पानी में बुझाना चाहिये फिर उसी पानी को छान कर पीना चाहिये ।

अथवा—राई की आधे तोले बुकनी को आधसेर पानी में मिलाकर थोडीदेर तक रख छोडना चाहिये फिर नितरे हुए पानी को लेकर आधी २ छटाँक पानी को दो वा तीन घण्टे के अन्तर से पीना चाहिये ।

ज्वर में श्वास—इस में दोनों भूरींगणी[1], धमासा, कडुई तोरई अथवा पटोल, काकड़ासिंगी, भाड़गी, कुटकी, कचूर और इन्द्रयव, इन की उकाली बना कर पीनी चाहिये[2] ।

अथवा—छोटीपीपल, कायफल और काकड़ासिंगी, इन तीनों का चूर्ण शहद में चाटना चाहिये[3] ।

ज्वर में मूर्च्छा—इस में अदरख का रस सुंघाना चाहिये ।

अथवा—शहद, सेंधानिमक, मैनशिल और काली मिर्च, इन को महीन पीस कर उस का आँख में अञ्जन करना चाहिये[4] ।

अथवा—ठढे पानी के छींटे आंख पर लगाने चाहियें ।

अथवा—सुगन्धित धूप देनी चाहिये तथा पंखे की हवा लेनी चाहिये[5] ।

ज्वर में अरुचि—इस में अदरख के रस को कुछ गर्म कर तथा उस में सेंधानिमक डाल कर थोड़ासा चाटना चाहिये ।

अथवा–बिजौरे के फल के अन्दर की कलियां और सेंधानिमक, इन को मिला कर मुँह में रखना चाहिये[6] ।

ज्वर में वमन—इस में गिलोय के क्वाथ को ठंढा कर तथा उस में मिश्री और शहद डाल कर उसे पीना चाहिये[7] ।

१–दोनों भूरींगणी अर्थात् छोटी कटेरी और बडी कटेरी ॥

२–यह दशाग क्काथ सन्निपात को भी दूर करता है ॥

३–ज्वर में श्वास होने के समय द्वात्रिंशत्क्काथ (३२ पदार्थों का काढा) भी बहुत लाभदायक है, उस का वर्णन भावप्रकाश आदि ग्रन्थों में देख लेना चाहिये, यहा विस्तार के भय से उसे नहीं लिखा है ॥

४–इन चारों चीजों को जल मे बारीक पीस लेना चाहिये ॥

५–ज्वरदशा मे मूर्छा होने के समय कुछ शीतल और मन को आराम देनेवाले उपचार करने चाहिये, जैसे–सुगन्धित अगर आदि की धूनी देना, सुगन्धित फूलों की माला का धारण करना, नरम ताल (ताड) के पत्तों की हवा करना तथा बहुत कोमल केले के पत्तों को शरीर से लगाना इत्यादि ॥

६–किन्हीं आचार्यों का कथन है कि–बिजौरे की केशर (अन्दर की कलिया), घी और सेंधानिमक का, अथवा ऑवले, दाख और मिश्री का कल्क मुख मे रखना चाहिये ॥

७–किन्हीं आचार्यों की सम्मति केवल शहद डाल कर पीने की है ॥

अथवा—मिश्री डाल कर पित्तपापड़े का हिम पीना चाहिये ।

अथवा—आँवला, दाख और मिश्री का पानी, इन का सेवन करना चाहिये ।

अथवा—दाख, चन्दन, वाला, मोथ, मौलेठी और धनियां, इन सब चीज़ों को अथवा इन में से जो चीज मिले उस को भिगा कर तथा पीस कर उस का पानी पीना चाहिये ।

अथवा—मोर के चन्दे हुए चार चँदवे, भुनी हुई पीपल, भुना हुआ जीरा, जली हुई नारियल की जोटी, जलाया हुआ रेशम का कूचा वा कपड़ा, पोदीना और कमलगट्टे (पव्वोड़ी) के अन्दर की हरियाई (गिरी), इन सब को पीस कर शहद में, अनार के शर्बत में, अथवा मिश्री की चासनी में वमन (उलटी) के होते ही चाटना चाहिये तथा फिर भी घण्टे घण्टे भर के बाद चाटना चाहिये, इस से त्रिदोष की भी वमन तथा छर्दी बन्द हो जाती है ।

अथवा—भुजा की दोनों नसों को खूब खींच कर बांधना चाहिये ।

अथवा—नारियल की जोटी, हलदी, काली मिर्च, उड़द और मोर के चन्दे का धूम-पान करना चाहिये ।

अथवा—नीम की भीतरी छाल का पानी मिश्री डाल कर पीना चाहिये ।

ज्वर में दाह[1]—इस में यदि भीतर दाह हो तो प्रायः वह चिकित्सा हितकारक है जो कि वमन के लिये लाभदायक है, परन्तु यदि बाहर दाह होता हो तो कच्चे आँवलों के धोवन में घिसा हुआ चन्दन एक वाल तथा घिसी हुई सोंठ एक रत्ती लेनी चाहिये, इस में थोड़ा सा शहद मिला कर चाटना चाहिये तथा पानी में मिलाकर पीना चाहिये ।

अथवा—चन्दन, सोंठ, वाला और निमक, इन का लेप करना चाहिये ।

अथवा—मगज पर मुलतानी मिट्टी का थर भरना चाहिये ।

यदि पगथली[2] तथा हथेलियों में दाह होता हो तो उत्तम साफ़ पेंदेवाली फूल[3] (कांसे) की कटोरी लेकर धीरे २ फेरते रहना चाहिये, ऐसा करने से दाह अवश्य शान्त हो जावेगा ।

ज्वर में पथ्य अर्थात् हितकारी कर्त्तव्य[4] ॥

१–परिश्रम के काम, लंघन (उपवास) और वायु से चढ़े हुए ज्वर में—दूध के साथ भात का खाना पथ्य (हितकारक) है, कफ के ज्वर में मूंग की दाल का पानी

१–ज्वर में दाह होने की दशा में प्रायः वे भी चिकित्सायें हितकारक हैं जो कि दाह के प्रकरण में ग्रन्थान्तरों में लिखी हैं परन्तु इस में इस बात का अवश्य ख्याल रखना चाहिये कि जो चिकित्सा ज्वर के विरुद्ध अर्थात् ज्वर को बढ़ानेवाली हो उसे कभी नहीं करना चाहिये ॥

२–पगथली अर्थात् पैरों के तलवे ॥

३–फूल अर्थात् कांसे की कटोरी के फेरने से एक प्रकार की बिजुली की शक्ति के द्वारा आकर्षण हो कर दाह निकल जाता है ॥

४–ज्वर में पथ्य अर्थात् हितकारी कर्त्तव्य का अवश्य बर्ताव करना चाहिये क्योंकि–पथ्य का बर्ताव न करने से तो हुई औषधि से भी कुछ लाभ नहीं होता है तथा पथ्य का बर्ताव करने से औषधि के लेने की भी विशेष आवश्यकता नहीं रहती है ॥

तथा भात पथ्य है, पित्तज्वर के लिये भी यही पथ्य समझना चाहिये, परन्तु पित्तज्वर-वाले को ठंढा कर तथा थोड़ी सी मिश्री मिलाकर लेना चाहिये ।

यदि दो दोष तथा त्रिदोष मालूम हों तो उस में केवल मूग की दाल का पानी ही पथ्य है।

२–मूंग का ओसामण, भात, अथवा साबूदाना, ये सब वस्तुयें सामान्यतया ज्वर में पथ्य है, अर्थात् ज्वर समय में निर्भय खुराक है ।

इस के अतिरिक्त—यह भी स्मरण रखना चाहिये कि—जहा दूध को पथ्य लिखा है वहा दूध के साथ साबूदाना समझना चाहिये अर्थात् दूध के साथ साबूदाना देना चाहिये, अथवा साबूदाना को जल में पका कर तथा उस में दूध मिला कर देना चाहिये।

३–प्रायः सब ही ज्वरों में प्रथम चिकित्सा लङ्घन है, अर्थात् ज्वर की दशा में लघन परम हितकारक है और खास कर कफ तथा आम के ज्वर में, पित्त के ज्वर में, दो २ दोषों से उत्पन्न हुए ज्वर में तथा त्रिदोषजन्यज्वर में तो लङ्घन परम लाभदायक होता है[1], यदि रोगी से सर्वथा निराहार न रहा जावे तो एक समय हलका आहार करना चाहिये, अथवा केवल मूगका ओसामण (पानी) पीना चाहिये, क्योंकि ऐसा करना भी लघन के समान ही लाभदायक है ।

हा केवल वातज्वर, जीर्णज्वर, आगन्तुकज्वर और क्षय तथा यकृत् के वरम से उत्पन्न हुए ज्वर में विलकुल निराहाररूप लघन नहीं करना चाहिये, क्योंकि इन ज्वरों में निराहाररूप लघन करने से उलटी हानि होती है ।

४–तरुणज्वर में अर्थात् १२ दिन तक दूध तथा घी का सेवन विप के समान है[2], परन्तु क्षय, शोथ, राजरोग और उरःक्षत के ज्वर में, यकृत् के ज्वर में, जीर्णज्वर में और आगन्तुकज्वर में दूध हितकारक है, इस में भी जीर्णज्वर में कफ के क्षीण होने के पीछे इकीस दिन के वाद तो दूध अमृत के समान है ।

५–जो ज्वरवाला रोगी शरीर में दुर्वल हो, जिस के शरीरका कफ कम पड़ गया हो, जिस को जीर्णज्वर की तकलीफ हो, जिस को दस्त का वद्धकोष्ठ हो, जिस का शरीर रूखा हो, जिस को पित्त वा वायु का ज्वर हो तथा जिस को प्यास और दाह की तकलीफ हो उस रोगी को भी ज्वर में दूध पथ्य होता है[3] ।

१–क्योंकि लघन के करने से दोषों का पाचन हो जाता है ॥

२–तरुण ज्वर में दूध और घी आदि स्निग्ध पदार्थों के सेवन से मूर्छा, वमन, मद और अरुचि आदि दूसरे रोग उत्पन्न हो जाते हैं ॥

३–शरीर मे दुर्वल रोगी की दूध पीने से शक्ति वनी रहती है, जिसके शरीर का कफ कम पड गया हो उस के दूध पान से कफ की वृद्धि होकर दोषों की समता के द्वारा उसे शीघ्र आरोग्यता प्राप्त होती है, जीर्णज्वर मे दूध पीने से शक्ति का क्षय न होने के कारण ज्वर की प्रवलता नहीं होती है, वद्धकोष्ठवाले को दूध के पीने से दस्त साफ आता रहता है, रूक्ष शरीरवाले के शरीर मे दुग्धपान से रूक्षता मिट कर स्निग्धता (चिकनाहट) आती है, वातपित्तज्वर मे दुग्धपान से उक्त दोषों की शान्ति हो कर ज्वर नष्ट हो जाता है तथा जिस रोगी को प्यास और दाह हो उस के भी उक्त विकार दूध के पीने से मिट जाते हैं ॥

६—ज्वर के प्रारम्भ में लंघन, मध्य में पाचन दवा का सेवन, अन्त में कडुई तथा कषैली दवा का सेवन तथा सब से अन्त में दोष के निकालने के लिये जुलाब का लेना, यह चिकित्साका उत्तम क्रम है[1] ।

७—ज्वर का दोष यदि कम हो तो लंघन से ही जाता रहता है, यदि दोष मध्यम हो तो लंघन और पाचन से जाता है, यदि दोष बहुत बढ़ा हुआ हो तो दोष के संशोधनका उपाय करना चाहिये ।

यह भी स्मरण रखना चाहिये कि—सात दिन में वायु का, दश दिन में पित्त का और बारह दिन में कफ का ज्वर पकता है, परन्तु यदि दोष का अधिक प्रकोप हो तो ऊपर कहे हुए समय से दुगुना समयतक लग जाता है[2] ।

८—ज्वर में जबतक दोषों के अंशांशकी खबर न पड़े तबतक सामान्य चिकित्सा करनी चाहिये ।

९—ज्वर के रोगी को निर्वात (वायु से रहित) मकान में रखना चाहिये तथा हवा की आवश्यकता होने पर पंखे की हवा करनी चाहिये, भारी तथा गर्म कपड़े पहराना और ओढाना चाहिये तथा ऋतु के अनुसार परिपक्व (पका हुआ) जल पिलाना चाहिये ।

१०—ज्वरवाले को कच्चा पानी नहीं पिलाना चाहिये[3] तथा वारवार बहुत पानी नहीं पिलाना चाहिये, परन्तु बहुत गर्मी तथा पित्त के ज्वर में यदि प्यास हो तथा दाह होता हो तो उस समय प्यास को रोकना नहीं चाहिये[4] किन्तु बाकी के सब ज्वरों में समाक

१—ज्वर के प्रारम्भ में लंघन के करने से दोषों का पाचन होता है, मध्य में पाचन दवा के सेवन से लंघन से भी न पके हुए उत्कट दोषों का पाचन हो जाता है, अन्त में कडुई तथा कषैली दवा के सेवन से अग्नि का दीपन तथा दोषों का संशमन होता है तथा सब से अन्त में जुलाब के लेने से दोषों का संशोधन होने के द्वारा कोष्ठशुद्धि हो जाती है जिस से शीघ्र ही आरोग्यता प्राप्त होती है ॥

२—दोहा—सात दिवस ज्वर तरुण है, चौदह मध्यम जान ॥
तिहँ ऊपर पुनि जब लहै, ज्वरहि पुरातन मान ॥ १ ॥
पकै पित्तज्वर दश दिवस, कफज्वर द्वादश ध्यान ॥
सप्त दिवस मारुत पकै, त्रिगुन त्रिदोष प्रमान ॥ २ ॥
औषध आमे ताप में, न देवै को ध्यान ॥
मानो सोते सर्प को, कर उद्यत लिये ठान ॥ ३ ॥

३—क्योंकि ज्वर के रोगी को कच्चे जल के पिलाने से ज्वर की वृद्धि हो जाती है ॥

४—सुश्रुत ने लिखा है कि—प्यास के रोकने से (प्यास में जल न देने से) प्राणी बेहोश हो जाता है और बेहोशी की दशा में प्राणों का भी नाश हो जाता है, इस लिये सब दशाओं में जल अवश्य देना चाहिये इसी प्रकार हारीत ने कहा है कि—तृषा असह्य ही घोर तथा तत्काल प्राणों का नाश करनेवाली होती है, इस लिये तृषार्त (प्यास से पीड़ित) को प्राण धारण (प्राणों का धारण करनेवाला) जल देना चाहिये इन वाक्यों से यही सिद्ध होता है कि—प्यास को रोकना नहीं चाहिये हां यह ठीक है कि—थोड़ा २ जल पीना चाहिये ॥

रखकर थोड़ा २ पानी देना चाहिये, क्योंकि—ज्वर की प्यास में जल भी प्राणरक्षक (प्राणों की रक्षा करनेवाला) है।

११–ज्वरवाले को खाने की रुचि न भी हो तो भी उस को हितकारक तथा पथ्य भोजन ओषधि की रीति पर (दवा के तरीके) थोड़ा अवश्य खिलाना चाहिये[1]।

१२–ज्वरवाले को तथा ज्वर से मुक्त (छूटे) हुए भी पुरुष को हानि करनेवाले आहार और विहार का त्याग करना चाहिये, अर्थात् स्नान, लेप, अभ्यङ्ग (मालिश), चिकना पदार्थ, जुलाब, दिन में सोना, रात में जागना, मैथुन, कसरत, ठंढे पानी का अधिक पीना, बहुत हवा के स्थान में बैठना, अति भोजन, भारी आहार, प्रकृतिविरुद्ध भोजन, क्रोध, बहुत फिरना तथा परिश्रम, इन सब बातों का त्याग करना चाहिये[2], क्योंकि—ज्वर समय में हानिकारक आहार और विहार के सेवन से ज्वर बढ़ जाता है तथा ज्वर जाने के पश्चात् शीघ्र उक्त वर्त्ताव के करने से गया हुआ ज्वर फिर आने लगता है।

१३–साठी चावल, लाल मोटे चावल, मूग तथा अरहर (तूर) की दाल का पानी, चँदलिया, सोया (सोवा), मेथी, घियातोरई, परवल और तोरई आदि का शाक, घी में बघारी हुई दाख अनार और सफरचन्द, ये सब पदार्थ ज्वर में पथ्य हैं।

१४–दाह करनेवाले पदार्थ (जैसे उड़द, चँवला, तेल और दही आदि), खट्टे पदार्थ, बहुत पानी, नागरवेल के पान, घी और मद्य इत्यादि ज्वर में कुपथ्य है॥

फूट कर निकलनेवाले ज्वरों का वर्णन ॥

फूट कर निकलनेवाले ज्वरों को देशी वैद्यकशास्त्रवालों ने ज्वर के प्रकरण में नहीं लिखा किन्तु इन को मसूरिका नाम से क्षुद्र रोगों में लिखा है तथा जैनाचार्य योग-चिन्तामणिकार ने मूधोरा नाम से पानीझरे को लिखा है, इसी को मरुस्थल देश में निकाला तथा सोलापुर आदि दक्षिण के देश के महाराष्ट्र (मराठे) लोग भाव कहते हैं,

---

१–ऐसा करने से शक्ति क्षीण नहीं होती है तथा वात और पित्त का प्रकोप भी नहीं बढता है॥

२–देखो! ज्वर में स्नान करने से पुन ज्वर प्रबलरूप धारण कर लेता है, ज्वर में कसरत के करने से ज्वर की वृद्धि होती है, मैथुन करने से देह का जकडना, मूर्छा और मृत्यु होती है, स्निग्ध (चिकने) पदार्थों के पान आदि से मूर्छा, वमन, उन्मत्तता और अरुचि होती है, भारी अन्न के सेवन से तथा दिन में सोने से विष्टम्भ (पेट का फूलना तथा गुड गुड शब्द का होना), वात आदि दोषों का कोप, अग्नि की मन्दता, तीक्ष्णता तथा छिद्रों का बहना होता है, इस लिये ज्वरवाला अथवा जिस का ज्वर उतर गया हो वह भी (कुछ दिनों तक) दाहकारी भारी और असात्म्य (प्रकृति के प्रतिकूल) अन्न पान आदि का, विरुद्ध भोजन का, अध्यशन (भोजन के ऊपर भोजन) का, दण्ड कसरत का, डोलना फिरना आदि चेष्टा का, उबटन तथा स्नान का परित्याग कर दे, ऐसा करने से ज्वररोगी का ज्वर चला जाता है तथा जिस का ज्वर चला गया हो उस को उक्त वर्त्ताव के करने से फिर ज्वर वापिस नहीं आता है॥

इसी प्रकार इन के भिन्न २ देशों में प्रसिद्ध अनेक नाम हैं, संस्कृत में इसका नाम मन्थ ज्वर है, इस ज्वर में प्रायः पित्तज्वर के सब लक्षण होते हैं।

विचार कर देखा जावे तो ये (फूट कर निकलनेवाले) ज्वर अधिक भयानक होते हैं अर्थात् इन की यदि ठीक रीति से चिकित्सा न की जावे तो ये शीघ्र ही प्राणघातक हो जाते हैं परन्तु बड़े अफसोस का विषय है कि—लोग इन की भयंकरता को न समझ कर मनमानी चिकित्सा कर अन्त में प्राणों से हाथ धो बैठते हैं।

मारवाड़ देश की ओर जब दृष्टि उठा कर देखा जावे तो विदित होता है कि—वहां के अविद्या देवी के उपासकों ने इस ज्वर की चिकित्सा का अधिकार मूर्ख रण्डाओं (विधवाओं) को सौंप रक्खा है, जो कि (रंडापे में) डाकिनी रूप हो कर इस की प्रायः पित्तविरोधी चिकित्सा करती हैं[1] अर्थात् इस ज्वर में अत्यन्त गर्म लौंग सोंठ और अजवाइन खिलाती हैं, इस का परिणाम यह होता है कि—इस चिकित्सा के होने से सौ में से प्रायः नब्बे आदमी गर्मी के दिनों में मरते[2] हैं, इस बात को हम ने वहां स्वयं देखा है और सौ में से दश आदमी भी जो बचते हैं वे भी किसी कारण से ही बचते हैं सो भी अत्यन्त कष्ट पाकर बचते हैं किन्तु उन के लिये भी परिणाम यह होता है कि वे जन्म भर अत्यन्त कष्टकारक उस गर्मी का भोग भोगते हैं, इस लिये इस बात पर मारवाड़ के निवासियों को अवश्य ही ध्यान देना चाहिये।

इन रोगों में यद्यपि मसूर के दानों के समान तथा मोती अथवा सरसों के दानों के समान शरीर पर फुनसियां निकलती हैं तथापि इन में मुख्यतया ज्वर का ही उपद्रव होता है इस लिये यहां हमने ज्वर के प्रकरण में इनका समावेश किया है।

भेद (प्रकार)—फूट कर निकलनेवाले ज्वरों के बहुत से भेद (प्रकार) हैं, उन में से शीतला, ओरी और अचपड़ा (इस को मारवाड़ में आकरा काकरा कहते हैं) आदि मुख्य हैं, इन के सिवाय– मोतीझरा, रंगीला, विसर्प, हैजा और प्लेग आदि सब भयंकर ज्वरों का भी समावेश इन्हीं में होता है।

कारण—नाना प्रकार के ज्वरों का कारण जितना शरीर के साथ सम्बन्ध रखता है उस की अपेक्षा बाहर की हवा से विशेष सम्बन्ध रखता है[3]।

१—ज्वर में पित्तविरोधी चिकित्सा का सर्वथा निषेध किया गया है अर्थात् ज्वर में पित्तविरोधी चिकित्सा कभी नहीं करनी चाहिये क्योंकि ऐसा करने से अनेक दूसरे भी उपद्रव उठ खड़े होते हैं॥

२—क्योंकि उक्त दवा की गर्मी रोगियों के हृदय में जमा जाती है और जब ग्रीष्मऋतु की गर्मी पड़ती है तब उन के शरीर में द्विगुण गर्मी हो जाती है कि–जिस का सहन नहीं हो सकता है और आखिरकार मर ही जाते हैं॥

३—अर्थात् ज्वरों का कारण बाहरी हवा से विशेष प्रकट होता है॥

ऐसे फूट कर निकलनेवाले रोग कहीं तो एकदम ही फूट कर निकलते हैं और कहीं कुछ विशेष विलम्ब से फूटते हैं[1], इन रोगों का मुख्य कारण एक प्रकार का ज़हर (पाइज़न) ही होता है और यह विशेष चेपी है[2] इस लिये चारों ओर फैल जाता है अर्थात् बहुत से आदमियों के शरीरों में घुस कर बड़ी हानि करता है, इस के फैलने के समय में भी कुछ आदमियों के शरीर को यह रोग लगता है तथा कुछ आदमियों के शरीर को नहीं लगता है, इस का क्या कारण है इस बात का निर्णय ठीक रीति से अभी-तक कुछ भी नहीं हुआ है परन्तु अनुमान ऐसा होता है कि कुछ लोगों के शरीर के बन्धेज विशेष के होने से तथा आहार विहार से प्राप्त हुई निकृष्ट (खराब) स्थिति-विशेष के द्वारा उन के शरीर के दोष ऐसे चेपी रोगों के परमाणुओं को शीघ्र ही ग्रहण कर लेते हैं तथा कुछ लोगों के शरीर के बन्धेज विशेष ढग के होने से तथा आहार विहार के द्वारा प्राप्त हुई उत्कृष्ट (उत्तम) स्थिति विशेष के द्वारा उन के शरीर के तत्त्वों-पर ऐसे रोगों के चेपी तत्त्व शीघ्र असर नहीं कर सकते हैं[3], इस का प्रत्यक्ष प्रमाण यही है कि—एक ही स्थान में तथा एक ही घर में किसी को यह रोग लग जाता है और किसी को नहीं लगता है, इस का कारण केवल वही है जो कि अभी ऊपर लिख चुके हैं।

लक्षण—फूट कर निकलनेवाले रोगों में से शीतला आदि रोगों में प्रथम तो यह विशेषता है कि ये रोग प्रायः बच्चों के ही होते हैं परन्तु कभी २ ये रोग किसी २ बड़ी अवस्थावाले के भी होते हुए देखे जाते हैं, इन में दूसरी विशेषता यह है कि—जिस के शरीर में ये रोग एक बार हो जाते हैं उस के फिर ये रोग प्रायः नहीं होते हैं, इन में तीसरी विशेषता यह है कि—जिस बच्चे के शीतला का चेप लगा दिया गया हो अर्थात् शीतला खुदवा डाली हो (टीका लगवा दिया हो) उस को प्रायः यह रोग फिर नहीं होता है, यदि किसी २ के होता भी है तो थोड़ा अर्थात् बहुत नरम (मन्द) होता है

१—तात्पर्य यह है कि जब रोग के कारण का पूरा असर शरीर पर हो जाता है तब ही रोग उत्पन्न हो जाता है ॥

२—अर्थात् स्पर्श से अथवा हवा के द्वारा उड़ कर लगनेवाला है ॥

३—तात्पर्य यह है कि—प्रत्येक कार्य के लिये देश काल और प्रकृति आदि के सम्बन्ध से अनेक साधनों की आवश्यकता होती है, इस लिये जिन लोगों का शरीर उक्त रोगों के कारणों का आश्रयणीय (आश्रय लेने योग्य) होता है उन के शरीर में चेपी रोग प्रकट हो जाता है तथा जिन का शरीर उक्त सम्बध से रोगों के कारणों का आश्रयणीय नहीं होता है उन के शरीर में चेपी रोग के परमाणुओं का असर नहीं होता है ॥

किन्तु शीतला न लगवाये हुए बच्चों में से इस रोग से सौ में से प्रायः चालीस मरते हैं और शीतला को लगवाये हुए बच्चों में से प्रायः सौ में से छः ही मरते हैं[1]।

इस प्रकार का विष शरीर में प्रविष्ट (दाखिल) होने के पीछे पूरा असर कर लेने पर प्रथम ज्वर के रूप में दिखलाई देता है और पीछे शरीर पर दाने फूट कर निकलते हैं, यही उस के होने का निश्चय करानेवाला चिह्न है ॥

शील, शीतला वा माता (स्मालपाक्स) का वर्णन ॥

भेद (प्रकार)—शीतला दो प्रकार की होती है—उन में से एक प्रकार की शीतला में तो दाने थोड़े और दूर २ निकलते हैं तथा दूसरे प्रकार की शीतला में दाने बहुत होते हैं तथा समीप २ (पास २) होते हैं अर्थात् दूसरे प्रकार की शीतला सब शरीर पर फूट कर निकलती है, इस में दाने इस प्रकार आपस में मिल जाते हैं कि—तिल भर भी (ज़रा भी) जगह खाली नहीं रहती है, यह दूसरे प्रकार की शीतला बहुत कष्टदायक और भयङ्कर होती है।

१—यह रोग विलायत में भी पहिले बहुत होता था, डाक्टर मूर साहब लिखते हैं कि—लण्डन में जहां टीका के प्रचलित होने के पहिले प्रत्येक दश मृत्यु में एक मृत्यु शीतला के कारण होती थी वहां अब प्रत्येक पचासी मृत्यु में केवल एक ही शीतला से होती है, पन्द्रह वर्ष तक लण्डन के शीतलालय में सौ शीतला के रोगियों में से पैंतीस मनुष्यों के लगभग मरते थे परन्तु जब से टीका की चाल निकाली गई है तब से दो सौ मनुष्यों में से जिन्हों ने टीका लगवाया था केवल एक ही मरा। जिन जातियों में टीका के लगाने का प्रचार नहीं है बहुधा एक हजार में से आठ सौ मनुष्यों के शीतला निकलती है परन्तु उन में जो टीका लगवाते हैं एक हजार में से केवल छत्तीस के शीतला निकलती है ॥

डाक्टर वामसन साहब लिखते हैं कि—हम ने स्काटलैंड में सन् १८१८ ई॰ से दिसम्बर सन् १८१९ तक ५६ शीतला के रोगियों की दवा की जिन में से २५ ने टीका नहीं लगवाया था उन में से ५ मरे, इकतीस को जिन्हों ने टीका लगवाया था फिर शीतला निकली और इन में से केवल तीन ही मरे लगभग १ मनुष्यों में से जिन्हों ने दूसरी बार टीका लगवाया था एक ही मरा, सन् १८२८ ई॰ में फ्रांस के मारसेल्स नगर में महामारी फैली उस समय उस नगर में ४ (चालीस हजार) मनुष्य बसते थे जिन में से ३ (तीस हजार) के टीका लगा हुआ था २ (दो हजार) के अच्छी तरह से टीका नहीं लगा था और ८ (आठ हजार) ने टीका नहीं लगवाया था, तीस हजार टीका लगे हुए मनुष्यों में से दो हजार के शीतला निकली और उन में से केवल बीस मरे, इस लेख से पाठक गण टीका लगाने के लाभ को सब प्रकार से समझ गये होंगे, तात्पर्य यह है कि—सम्पूर्ण प्रमाणों से यह बात सिद्ध हो चुकी है कि टीका लगाना मनुष्य को शीतला से बचाता है और यदि उसे रोक नहीं सका तो उस की प्रबलता को अवश्य ही कम कर देता है, इतने पर भी भारतनिवासी जन मनुष्यजाति के क्रूर रोग के निवारण के उपायरूप टीका लगाने की प्रथा को स्वीकार न करें तो इस से अधिक क्या शोक की बात हो सकती है! बड़े खेद का विषय है कि—जिन उपायों से सहज प्राणरक्षा की संभावना होती है और जिन को सुप्रतिष्ठित डाक्टरों ने परीक्षा करके लाभदायी ठहराया है मनुष्य अपनी मूर्खता के कारण उन उपायों का भी तिरस्कार करते हैं ॥

लक्षण—शरीर में शीतला के विष का प्रवेश होने के पीछे बारह वा चौदह दिन में शीतला का ज्वर साधारण ज्वर के समान आता है अर्थात् साधारण ज्वर के समान इस ज्वर मे भी ठढ का लगना, गर्मी, शिर में दर्द, पीठ में दर्द तथा वमन (उलटी) का होना आदि लक्षण दीख पडते है, हां इस में इतनी विशेषता होती है कि—इस ज्वर में गले में शोथ (सूजन), थूक की अधिकता (ज्यादती), आखो के पलको पर शोथ का होना और श्वास में दुर्गन्धि (वदवू) का आना आदि लक्षण भी देखे जाते हैं ॥

कभी २ यह भी होता है कि—किशोर अवस्थावाले वालकों को शीतला के ज्वर के प्रारम्भ होते ही तन्द्रा (मींट वा ऊँघ) आती है और छोटे वच्चो के खैचातान (श्वास में रुकावट) तथा हिचकिया होती है ।

ज्वर चढ़ने के पीछे तीसरे दिन पहिले मुँह तथा गर्दन में दाने निकलते है, पीछे—शिर, कपाल (मस्तक) और छाती में निकलते है, इस प्रकार क्रम से नीचे को जाकर आखिरकार पैरों पर दिखलाई देते हैं, यद्यपि दानों के दीखने के पहिले यह निश्चय नही होता है कि यह ज्वर शीतला का है अथवा सादा (साधारण) है परन्तु अनुभव तथा त्वचा (चमडी) का विशेष रग शीघ्र ही इस का निश्चय करा देता है ।

जब शीतला के दाने बाहर दिखलाई देने लगते है तब ज्वर नरम (मन्द) पड़ जाता है परन्तु जब दाने पक कर भराव खाते है (भरने लगते हैं) तब फिर भी ज्वर वेग को धारण करता है, अनुमान दशवें दिन दाना फूट जाता है और खरूट जमना शुरू हो जाता है, प्रायः चौदहवें दिन वह कुछ परिपक्व हो जाता है अर्थात् दानों के लाल चट्टे हो जाते है, पीछे कुछ समय वीतने पर वे भी अदृश्य हो जाते है (दिखलाई नहीं देते है) परन्तु जब शीतला का शरीर में अधिक प्रकोप और वेग हो जाता है तब उस के दाने भीतर की परिपक्व (पकी हुई) चमड़ी में घुस जाते हैं तथा उन दानों के चिह्न मिटते नही है अर्थात् खड्डे रह जाते हैं, इस के सिवाय— इस के कठिन उपद्रव में यदि यथोचित चिकित्सा न होवे तो रोगी की आँख और कान इन्द्रिय भी जाती रहती है ।

चिकित्सा—टीका का लगवा लेना, यह शीतला की सर्वोपरि चिकित्सा है अर्थात् इस के समान वर्त्तमान में इस की दूसरी चिकित्सा ससार में नहीं है, सत्य तो यह है कि—टीका लगाने की युक्ति को निकालने वाले इगलेंड देश के प्रसिद्ध डाक्टर जेनर साहव के तथा इस देश में उस का प्रचार करने वाली श्रीमती वृटिश गवर्नमेंट के इस परम उपकार से एतद्देशीय जन तथा उन के वालक सदा के लिये आभारी है अर्थात् उन के इस परम उपकार का बदला नहीं दिया जा सकता है[1], इस बात को प्रायः सब ही

[1]—क्योंकि ससार में जीवदान के समान कोई दान नही है, अत एव इस से बढ कर कोई भी परम उपकार नहीं है ॥

जानते हैं कि—जब से उक्त डाक्टर साहब ने खोज करके पीप (रेसा) निकाला है तब से लाखों बच्चे इस भयङ्कर रोग की पीड़ा से मुक्ति पाने और मृत्यु से बचने लगे हैं, इस उपकार की जितनी प्रशंसा की जावे वह थोड़ी है।

इस से पूर्व इस देश में प्रायः इस रोग के होने पर अविद्यादेवी के उपासकों ने केवल इस की यही चिकित्सा जारी कर रक्खी थी कि—शीतलादेवी की पूजा करते थे जो कि अभी तक शीतलासप्तमी (शीळ सातम) के नाम से जारी है[1]।

इस (शीतला रोग) के विषय में इस पवित्र आर्यावर्त्त के लोगों में और विशेष कर स्त्री जाति में ऐसा भ्रम (वहम) घुस गया है कि—यह रोग किसी देवी के कोप से प्रकट होता है[2], इस लिये इस रोग की दवा करने से वह देवी क्रुद्ध हो जाती है इस लिये इस की कोई भी दवा नहीं करनी चाहिये, यदि दवा की भी जावे तो लौंग सोंठ और किसमिस आदि साधारण वस्तुओं को कुल्हिये (कुल्हड़ी) में छौंक कर देना चाहिये और उन्हें भी देवी के नाम की आस्था (श्रद्धा) रख कर देना चाहिये[3] इत्यादि, ऐसे व्यर्थ और मिथ्या भ्रम (वहम) के कारण इस रोग की दवा न करने से हजारों बच्चे इस रोग से दुःख पाकर तथा सड़ २ कर मरते थे[4]।

यद्यपि यह मिथ्याभ्रम अब कहीं २ से नष्ट हुआ है तथापि बहुत से स्थानों में यह अब तक भी अपना निवास किये हुए है, इस का कारण केवल यही है कि वर्तमान समय में हमारे देश की स्त्री जाति में अविद्यान्धकार (अज्ञानरूपी अँधेरा) अधिक प्रसरित हो रहा है (फैल रहा है[5]), ऐसे समय में स्वार्थी और पाखण्डी जनों ने स्त्रियों को बहका कर देवी के नाम से अपनी जीविका चला की है[6], न केवल इतना ही किन्तु उन धूर्तों ने अपने जाल में फँसाये रखने के हेतु कुछ समय से शीतलाष्टक आदि भी बना डाले हैं, इस लिये उन धूर्तों के कपट का परिणाम यहां की स्त्रियों में पूरे तौर से पड़ रहा है कि स्त्रियां अभी तक उस शीतला देवी की मानता किया करती हैं, बड़े अफसो-

१—अर्थात् पूर्व समय में (टीका लगाने की रीति के प्रचलित होने से पूर्व) इस रोग की कोई चिकित्सा नहीं करते थे किन्तु शीतला देवी का पूजन और आराधन करते थे तथा उसी का आश्रय लेकर बैठे रहते थे कि शीतला माता अच्छा कर देगी उस का परिणाम तो जो कुछ होता था वह सब ही को विदित है, अतः उस के लिखने की विशेष आवश्यकता नहीं है॥

२—यदि ऐसा न होता तो अन्य उपयोगी चिकित्साओं को छोड़ कर क्यों शीतला माता का आश्रय लिये बैठे रहते॥

३—क्योंकि उन को यह भी भ्रम है कि—देवी के नाम की आस्था न रख कर दी हुई साधारण वस्तु भी कुछ लाभ नहीं कर सकती है और ऐसा करने से भी देवी अधिक क्रुद्ध हो जावेगी इत्यादि॥

४—यह बात सब को विदित ही होगी अथवा रिपोर्टों से विदित हो सकती है॥

५—यद्यपि पुरुषों के विचार अब कुछ बदल गये हैं तथा बदलते (तरक्की) जाते हैं परन्तु स्त्रियां अब भी पुरुषों के निषेध करने पर भी नहीं मानती हैं अर्थात् इस भ्रम को नहीं छोड़ती हैं॥

६—क्योंकि उन (धूर्तों) को भीख मिलती है॥

सका स्थान है कि—हमारे देशवासी जन डाक्टर जेनर साहब की इस विषय की जाच का शुभकारी प्रत्यक्ष फल देख कर भी अपने भ्रम (वहम) को दूर नहीं करते है और न अपनी स्त्रियों को समझाते हैं यह केवल अविद्या देवी के उपासकपन का चिह्न नहीं तो और क्या है ?

हे आर्यमहिलाओ ! अपने हिताहित का विचार करो और इस बात का हृदय में निश्चय कर लो कि—यह रोग देवी के कोप का नहीं है अर्थात् झूठे वहम को बिलकुल छोड़ दो, देखो ! इस बात को तुम भी जानती और मानती हो कि अपने पुरुषा जन (बडेरे लोग) इस रोग का नाम माता कहते चले आये है सो यह बहुत ही ठीक है परन्तु तुम ने इस के असली तत्त्व का अब तक विचार नहीं किया कि पुरुषा जन इस रोग को माता क्यों कहते है, असली तत्त्व के न विचार ने से ही धूर्त्त और स्वार्थी जनो ने तुम को धोखा दिया है अर्थात् माता शब्द से शीतला देवीका ग्रहण करा के उस के पुजवाने के द्वारा अपने स्वार्थ की सिद्धि की है, परन्तु अब तुम माता शब्द के असली तत्त्व को विद्वानों के किये हुए निर्णय के द्वारा सोचो और अपने मिथ्या भ्रम को शीघ्र ही दूर करो, देखो ! पश्चिमीय विद्वानों ने यह निश्चय किया है कि—गर्भ रहने के पश्चात् स्त्रियों का ऋतुधर्म बन्द हो जाता है तब वह रक्त (खून) परिपक्व होकर स्तनों में दूधरूप में प्रकट होता है, उस दूध को बालक जन्मते ही (पैदा होते ही) पीता है, इस लिये दूध की वही गर्मी कारण पाकर फूट कर निकलती है, क्योंकि यह शारीरिक (शरीरसम्बधी) नियम है कि—ऋतुधर्म के आने से स्त्री के पेट की गर्मी बहुत छॅट जाती है[1] (कम हो जाती है) और ऋतुधर्म के रुकने से वह गर्मी अत्यन्त बढ़ जाती है, वही मातृसम्बन्धिनी (माता की) गर्मी फूट कर निकलती है अर्थात् शीतला रोग के रूप में प्रकट होती है, इसी लिये वृद्ध जनो ने इस रोग का नाम माता रक्खा है[2] ।

बस इस रोग का कारण तो मातृसम्बन्धिनी गर्मी थी परन्तु स्वार्थ को सिद्ध करने वाले धूर्त्तजनों ने अविद्यान्धकार (अज्ञान रूपी अँधेरे) में फॅसे हुए लोगों को तथा विशेष कर स्त्रियों को इस माता शब्द का अर्थ उलटा समझा दिया है अर्थात् देवी ठहरा दिया है, इस लिये हे परम मित्रो ! अब प्रत्यक्ष फल को देख कर तो इस असत्य भ्रम (वहम) को जड़ मूल से निकाल डालो, देखो ! इस बात को तो प्राय. तुम स्वयं

१–केवल यही कारण है कि ऋतुधर्म के समय अत्यन्त मलीनता (मैलापन) और गर्मी होने के सबब से ही मैथुन का करना निषिद्ध (मना) है, अर्थात् उस समय मैथुन करने मे गर्मी, सुजाख, शिर में दर्द, कान्ति (तेज वा शोभा) की हीनता (कमी) तथा नपुसकत्व (नपुसकपन) आदि रोग हो जाते हैं ॥

२–अर्थात् माता के सम्बन्ध से प्राप्त होने के कारण इस रोग का भी नाम माता रक्खा गया है परन्तु मूर्खजन और अज्ञान महिलायें इसे शीतला माता की प्रसादी समझती है ॥

(खुद) ही जानते होगे कि— शीतला देवी के नाम से जो शीतला सप्तमी (शील सातम) के दिन ठढा (बासा अन्न) खाया जाता है उस से कितनी हानि पहुँचती है[1], अब अन्त में पुनः यही कथन है कि—मिथ्या विश्वास को दूर कर अर्थात् इस रोग के समय में शीतला देवी के कोप का विचार छोड़ कर उस की वैद्यक शास्त्रानुसार नीचे लिखी हुई चिकित्सा करो जिस से तुम्हारा और तुम्हारे सन्तानों का सदा कल्याण हो।

१—नींब की भीतरी छाल, पित्तपापड़ा, काली पाठ, पटोल, चन्दन, रक्त (लाल) चन्दन, खस, बाला, कुटकी, आँवला, अडूसा और लाल धमासा, इन सब औषधों को समान भाग लेकर तथा पीस कर उस में मिश्री मिला कर उस का पानी बना कर रखना चाहिये तथा उस में से थोड़ा २ पिलाना चाहिये, इस से दाह और ज्वर आदि शान्त हो जाता है तथा मसूरिका मिट जाती है।

२—मजीठ, बड़ (बगद) की छाल, पीपर की छाल, सिरस की छाल और गूलर की छाल, इन सब को पीसकर दानों पर लेप करना चाहिये।

३—यदि दाने बाहर निकल कर फिर भीतर घुसते हुए मालूम दें तो कचनार के वृक्ष की छाल का क्वाथ कर तथा उस में सोनामुखी (सनाय) का थोड़ा सा चूर्ण मिला कर पिलाना चाहिये, इस के पिलाने से दाने फिर बाहर आ जाते हैं।

४—यदि मुँह में तथा गले में व्रण हों या चाँदी हो तो आँवला तथा मौलेठी का क्वाथ कर उस में शहद डालकर कुरले कराने चाहियें।

५—बेगी नामक दानों को तथा मौलेठी को पीस कर उन का पानी कर आँखों पर सींचना चाहिये, इस के सींचने से आँखों का बचाव होता है[4]।

६—मौलेठी त्रिफला, पीलडी, दारुहल्दी, कमल, बाला, लोध तथा मजीठ, इन औषधों को पीस कर इन का आँखों पर लेप करने से या इन के पानी की बूँदों को आँख में

१—जिस का कुछ वर्णन पहिले कर चुके हैं ॥

२—तुम्हारा यह मिथ्या विश्वास है इस बात को हम ऊपर दिखला ही चुके हैं और तुम अब इस बात को समझ भी सकते हो कि तुम्हारा वास्तव में मिथ्या विश्वास है या नहीं? देखो! जब एक कार्य का कारण ठीक रीति से निश्चय कर लिया गया तथा कारण की निवृत्ति के द्वारा विद्वानों ने कार्य की निवृत्ति भी प्रत्यक्ष प्रमाण द्वारा सहस्रों उदाहरणों से सर्वसाधारण को प्रत्यक्ष दिखला दी फिर उस को न मानकर अपने हृदय में उन्मत्त के समान मिथ्या ही कल्पना को बनाये रखना मिथ्या विश्वास नहीं तो और क्या है? परन्तु कहावत प्रसिद्ध है कि— 'सुबह का भूला हुआ शाम को भी घर आ जावे तो वह भूला नहीं कहा जाता है' बस इस कथन के अनुसार अब इस विद्या के प्रकाश के समय में अपने मिथ्या विश्वास को दूर कर दो जिस से तुम्हारा और तुम्हारे भावी सन्तानों का सदा कल्याण होवे ॥

३—अर्थात् उस पानी के छींटे आँखों पर लगाने चाहियें ॥

४—अर्थात् आँखों में किसी तरह की खराबी नहीं उत्पन्न होने पाती है ॥

५—त्रिफला अर्थात् हरड़ बहेड़ा और आँवला ॥

डालने से आँखों के व्रण मिट जाते हैं और कुछ भी तकलीफ नहीं होती है, अथवा गूँदी (गोंदनी) की छाल को पीस कर उस का आँख पर मोटा लेप करने से आँख को फायदा होता है ।

७–जब दाने फूट कर तथा किचकिचा कर उन में से पीप वा दुर्गन्धि निकलती हैं तब मारवाड़ देश में पञ्चवल्कल[1] का कपडछान चूर्ण कर दबाते है अथवा कायफल का चूर्ण दबाते है, सो वास्तव में यह चूर्ण उस समय लाभ पहुँचाता है, इस के सिवाय—रसी को धो डालने के लिये भी पञ्चवल्कल का उकाला हुआ पानी अच्छा होता है ।

८–कारेली के पत्तों का क्वाथ कर तथा उस में हलदी का चूर्ण डाल कर उसे पिलाने से चमड़ी में घुसे हुए (भीतरी) व्रण मिट जाते है तथा ज्वर के दाह की भी शान्ति हो जाती है ।

९–यदि इस रोग में दस्त होते हों तो उन के बद करने की दवा देनी चाहिये तथा यदि दस्त का होना बन्द हो तो हलका सा जुलाब देना चाहिये[2] ।

१०–जब फफोले फूट कर खरूँट[3] आ जावें तथा उन में खाज (खुजली) आती हो तब उन्हें नख से नहीं कुचरने देना चाहिये[4] किन्तु उन पर मलाई चुपडनी चाहिये, अथवा केरन आइल और कार बोलिक आइल को लगाना चाहिये, जब फफोले फूट कर मुर्झाने लगें तब उन पर चावलों का आटा अथवा सफेदा भुरकाना चाहिये, ऐसा करने से चट्ठे (चकत्ते) और दाग नही पड़ते है ।

विशेष सूचना—यह रोग चेपी है इस लिये इस रोग से युक्त पुरुष से घर के आदमियों को दूर रहना चाहिये अर्थात् रोगी के पास जिसका रहना अत्यावश्यक (बहुत ज़रूरी) ही है उस के सिवाय दूसरे आदमियों को रोगी के पास नही जाना चाहिये, क्योंकि प्राय. यह देखा गया है कि रोगी के पास रहनेवाले मनुष्यों के द्वारा यह चेपी रोग फैलने लगता है अर्थात् जिन के यह शीतला का रोग नहीं हुआ है उन बच्चों के भी यह रोग रोगी के पास रहनेवाले जनों के स्पर्श से अथवा गन्ध से हो जाता है ।

१–वड (वरगद), गूलर, पीपल, पारिस पीपल और पाखर (प्लक्ष), ये पाच क्षीरी वृक्ष अर्थात् दूधवाले वृक्ष हैं, इन पाचों की छाल (वक्कल) को पञ्चवल्कल कहते हैं ॥

२–हलका सा जुलाव देने का प्रयोजन यह है कि उक्त रोग के कारण रोगी को निर्बलता (कमजोरी) हो जाती है इस लिये यदि उस मे तीक्ष्ण (तेज) जुलाव दिया जावेगा तो रोगी उस का सहन नहीं कर सकेगा और निर्वलता भी अधिक दस्तों के होने से विशेप वढ जावेगी ॥

३–इन को पूर्वीय (पूर्व के) देशों मे खुट कहते हैं अर्थात् व्रण के ऊपर जमी हुई पपडी ॥

४–क्योंकि नख (नाखून) से कुचरने (खुजलाने) से फिर व्रण (घाव) हो जाता है तथा नख के विप का प्रवेश होने से उस मे और भी खरावी होने की सम्भावना रहती है ॥

इस रोग में जो यह प्रथा देखी जाती है कि— शीतला और ओरी आदिवाले रोगी को पड़दे में रखते हैं तथा दूसरे आदमियों को उस के पास नहीं जाने देते हैं, सो यह प्रथा तो मान्य उत्तम ही है परन्तु इस के असली तत्त्व को न समझ कर लोग भ्रम (वहम) के मार्ग में चलने लगे हैं, देखो! रोगी को पड़दे में रखने तथा उस के पास दूसरे जनों को न जाने देने का कारण तो केवल यही है कि—यह रोग चेपी है, परन्तु भ्रम में पड़े हुए जन उस का तात्पर्य यह समझते हैं कि—रोगी के पास दूसरे जनों के जाने से शीतला देवी क्रुद्ध हो जावेगी इत्यादि, यह केवल उन की मूर्खता और अज्ञानता ही है[1]।

रोगी के सोने के स्थान में स्वच्छता (सफाई) रखनी चाहिये, वहां साफ हवा को आने देना चाहिये[2], अगरबत्ती आदि जलानी चाहिये वा धूप आदिके द्वारा उस स्थान को सुगन्धित रखना चाहिये कि जिस से उस स्थान की हवा न बिगड़ने पावे[3]।

रोगी के अच्छे होने के बाद उस के कपड़े और बिछौने आदि जला देने चाहियें अथवा धुलवा कर साफ होने के बाद उन में गन्धक का धुंआ देना चाहिये[4]।

खुराक—शीतला रोग से युक्त बच्चे को तथा बड़े आदमी को खान पान में दूध, चावल, दलिया, रोटी, बूरा डाल कर बनाई हुई रावड़ी, मूंग तथा अरहर (तूर) की दाल, दाख, मीठी नारंगी तथा अजीर आदि मीठे और ठंडे पदार्थ प्रायः देने चाहियें, परन्तु यदि रोगी के कफ का जोर हो गया हो तो मीठे पदार्थ तथा फल नहीं देने चाहियें[5], उसे कोई भी गर्म वस्तु खाने को नहीं देनी चाहिये।

रोग की पहिली अवस्था में तथा दूसरी स्थिति में केवल दूध भात ही देना अच्छा है, तीसरी स्थिति में केवल (अकेला) दूध ही अच्छा है, पीने के लिये ठंढा पानी अथवा बर्फ का पानी देना चाहिये।

रोग के मिटने के पीछे रोगी अशक्त (नाताकत) हो गया हो तो जब तक ताकत

१—इस विषय में पहिले कुछ कथन कर ही चुके हैं जिस से पाठकों को विदित हो ही गया होगा कि वास्तव में यह उन लोगों की मूर्खता और अज्ञानता ही है॥

२—अर्थात् बाहर से आती हुई हवा की रुकावट नहीं होनी चाहिये॥

३—क्योंकि हवा के बिगड़ने से दूसरे रोगों के उठ खड़े होने (उत्पन्न हो जाने) की सम्भावना रहती है॥

४—क्योंकि रोगी के कपड़े और बिछौने में उक्त रोग के परमाणु प्रविष्ट रहते हैं यदि उन को जलाया न जावे अथवा साफ और स्वच्छ किये बिना पुनः काम में लाया जावे तो वे परमाणु दूसरे मनुष्यों के शरीर में प्रविष्ट हो कर रोग को उत्पन्न कर देते हैं॥

५—क्योंकि मीठे पदार्थ और फल कफ की और भी वृद्धि कर देते हैं जिस से रोगी के कफविकार के उत्पन्न हो जाने की आशङ्का रहती है॥

न आ जावे तब तक उसे धूप, गर्मी, वरसात तथा ठढ में नही जाने देना चाहिये तथा उसे थोड़ा और पथ्य आहार देना चाहिये तथा रोग के मिटने के पीछे भी वहुत दिनों तक ठढे इलाज तथा ठंढे खान पान देते रहना चाहिये।

रोगी को जो दवा के पदार्थ दिये जाते है उन के ऊपर खुराक में दूध के देने से वे वहुत फायदा करते है ॥[1]

ओरी[2] (माझल्स) का वर्णन ॥

लक्षण—यह रोग प्रायः वच्चो के होता है तथा यह (ओरी) एक वार निकलने के वाद फिर नहीं निकलती है, शरीर में इस के विष के प्रविष्ट (दाखिल) होने के वाद यह दश वा पन्द्रह दिन के भीतर प्रकट होती है[3] तथा कर्फ[4] से इस का प्रारंभ होता है अर्थात् ऑख और नाक झरने लगते है।

इस में–कफ, छींक, ज्वर, प्यास और वेचैनी होती है, आवाज़ गहरी[5] हो जाती है, गला आ जाता है[6], श्वास जल्दी चलता है, ज्वर सख्त आता है, शिर में दर्द वहुत होता है, दस्त वहुत होते हैं, वफारा वहुत होता है।

इस ज्वर में चमड़ी का रंग दूसरी तरह का ही वन जाता है[7], ज्वर आदि चिह्नों के दीखने के वाद तीन चार दिन पीछे ओरी दिखाई देती है, इस का फुनसी के समान छोटा और गोल दाना होता है, पहिले ललाट (मस्तक) तथा मुख पर दाना निकलता है और पीछे सव शरीर पर फैलता है।

जिस प्रकार शीतला में दानो के दिखाई देने के पीछे ज्वर मन्द पड़ जाता है उस प्रकार इस में नहीं होता है[8] तथा शीतला के समान दाने के परिमाण के अनुसार इस में ज्वर का वेग भी नही होता है[9], ओरी सातवें दिन मुरझाने लगती है, ज्वर कम हो जाता है, चमड़ी की ऊपर की खोल उतर कर खाज (खुजली) वहुत चलती है।

१–जैसे गुलकन्द आदि पदार्थ ॥

२–यह भी शीतला रोग का ही एक भेद है अर्थात् शीतला सात प्रकार की मानी गई है उन्हीं सात प्रकारों में से एक यह प्रकार है ॥

३–क्योंकि विष शरीर में प्रविष्ट होकर दश वा पन्द्रह दिन में अपना असर शरीर पर कर देता है तव ही इस रोग का प्रादुर्भाव (उत्पत्ति) होता है ॥

४–कफ से अर्थात् प्रतिश्याय (सरेकमा वा जुखाम) से इस का प्रारम्भ होता है, तात्पर्य यह है कि–इस के उत्पन्न होने के पूर्व प्रतिश्याय होता है अर्थात् नाक और ऑख में से पानी झरने लगता है ॥

५–गहरी अर्थात् गम्भीर वा भारी ॥

६–गला आ जाता है अर्थात् गला कुछ पक सा जाता है तथा उस में छाले से पड़ जाते है ॥

७–अर्थात् चमडी का रंग पलट जाता है ॥

८–अर्थात् इस में दानों के दिखाई देने के पीछे भी ज्वर मन्द नही पड़ता है ॥

९–अर्थात् शीतला में तो जैसे अधिक परिमाण के दाने होते हैं वैसा ही ज्वर का वेग अधिक होता है परन्तु इस में वह वात नहीं होती है ॥

यह रोग यद्यपि शीतला के समान भयकर नहीं है तो भी इस रोग में प्रायः अनेक समयों में छोटे बच्चों को हांफनी तथा फेफसे का वरम (सोज) हो जाता है, उस दशा में यह रोग भी भयकर हो जाता है अर्थात् उस समय में तन्द्रादि सन्निपात हो जाता है, ऐसे समय में इस का खूब सावधानी से इलाज करना चाहिये, नहीं तो पूरी हानि पहुँचती है।

यह भी स्मरण रखना चाहिये कि—सख्त ओरी के दाने कुछ गहरे आसुनी रग के होते हैं।

चिकित्सा—इस रोग में चिकित्सा प्रायः शीतला के अनुसार ही करनी चाहिये, क्योंकि इस की मुख्यतया चिकित्सा कुछ भी नहीं है, हां इस में भी यह अवश्य होना चाहिये कि रोगी को हवा में तथा ठंढ में नहीं रखना चाहिये[1]।

खुराक—भात दाल और दलिया आदि हलकी खुराक देनी चाहिये तथा दाख और धनिये को भिगा कर उस का पानी पिलाना चाहिये[2]।

इस रोगी को मासे भर सोंठ को जल में रगड़ कर (घिस कर) सात दिन तक दोनों समय (प्रातः काल और सायंकाल) बिना गर्म किये हुए ही पिलाना चाहिये ॥

अछपछेडा (चीनक पाक्स) का वर्णन ॥

यह रोग छोटे बच्चों के होता है तथा यह बहुत साधारण रोग है, इस रोग में एक दिन कुछ २ ज्वर आकर दूसरे दिन छाती पीठ तथा कन्धे पर छोटे २ लाल २ दाने उत्पन्न होते हैं, दिन भर में अनुमान दो २ दाने बड़े हो जाते हैं तथा उन में पानी भर जाता है, इस लिये ये दाने मोती के दाने के समान हो जाते हैं तथा ये दाने भी लगभग शीतला के दानों के समान होते हैं परन्तु बहुत थोड़े और दूर २ होते हैं।

इस रोग में ज्वर थोड़ा होता है तथा दानों में पीप नहीं होता है इस लिये इस में कुछ डर नहीं है, इस रोग की साधारणता यहां तक है कि—कभी २ इस रोग के दाने वर्षा के लेखे २ ही मिट जाते हैं, इस लिये इस रोग में चिकित्सा की कुछ भी आवश्यकता नहीं है ॥

१—क्योंकि रोगी को हवा अथवा ठंढ में रखने से शरीर के जकड़न की और [illegible] में पीड़ा उत्पन्न होने की सम्भावना रहती है ॥

२—दाख और धनिये को भिगा कर उस का पानी पिलाने से अग्नि का दीपन भोजन का पाचन तथा अन्न पर इच्छा होती है ॥

३—मालवा में यह भी शीतला का ही एक भेद है ॥

४—यद्यपि यह ठीक है कि शीतला [illegible] प्रकार की होती है उन में से कोई तो ऐसी होती है कि जिस [illegible] अच्छी हो जाती है ([illegible]) और कोई होती है कि—[illegible] होती है तथा कोई ऐसी भी होती है कि [illegible] करने पर भी नहीं जाती है ॥

रक्तवायु वा विसर्प (इरीसी पेलास) का वर्णन ॥

भेद (प्रकार)—देशी वैद्यक शास्त्र के अनुसार भिन्न २ दोष के तथा मिश्रित (संयुक्त) दोष के सम्बन्ध से विसर्प अर्थात् रक्तवायु उत्पन्न होता है तथा वह सात प्रकार का है[1], परन्तु उस के मुख्यतया दो ही भेद हैं—दोषजन्य विसर्प और आगन्तुक विसर्प, इन में से विरुद्ध आहार से शरीर का दोष तथा रक्त (खून) विगड़कर जो विसर्प होता है उसे दोषजन्य विसर्प कहते हैं और क्षत (ज़खम), शस्त्र के विष अथवा विषैले जन्तु (जानवर) के नख (नाखून) तथा दाँत से उत्पन्न हुए क्षत (ज़खम) और ज़खम पर विसर्प के चेप के स्पर्श आदि कारणों से जो विसर्प होता है उसे आगन्तुक विसर्प कहते है[2] ।

कारण—प्रकृतिविरुद्ध आहार[3], चेप, खराब विषैली हवा, ज़खम, मधुप्रमेह आदि रोग, विषैले जन्तु तथा उन के डक का लगना इत्यादि अनेक कारण रक्तवायु के हैं ।

इन के सिवाय–जैनश्रावकाचार ग्रन्थ में तथा चरकऋषि के बनाये हुए चरक ग्रन्थ में लिखा है कि यह रोग विना ऋतु[4] के, विना जाँच किये[5] हुए तथा वहुत हरे शाकों के खाने का अभ्यास[6] रखने से भी हो जाता है ।

इन ऊपर कहे हुए कारणों में से किसी कारण से शरीर के रस तथा खून में विषैले जन्तु उत्पन्न हो जाते हैं और शरीर में रक्तवायु फैल जाता है ।

लक्षण—वास्तव में रक्तवायु चमड़ी का वरम है और वह एक स्थान से दूसरे स्थान में फिरता और फैलता है, इसीलिये इस का नाम रक्तवायु रक्खा गया है[7], इस रोग में ज्वर आता है तथा चमड़ी लाल होकर सूज जाती है, हाथ लगाने से रक्तवायु के स्थान में गर्मी मालूम होती है और अन्दर चीस (चिनठा) चलती है[8] ।

१–वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज (त्रिदोषज), वातपित्तज, वातकफज तथा पित्तकफज, ये सात भेद हैं ॥

२–अर्थात् इन दो ही भेदों में सब भेदों का समावेश हो जाता है ॥

३–प्रकृतिविरुद्ध आहार अर्थात् प्रकृति को अनुकूल न आनेवाले खारी, खट्टे, कड़ुए और गर्म पदार्थ आदि॥

४–वहुत से वृक्षों में विना ऋतु के भी फल आ जाते हैं, (यह पाठकों ने प्राय देखा भी होगा), उन के खाने से भी यह रोग हो जाता है ॥

५–वहुत से जगली फल विषैले होते हैं अथवा विषैले जन्तुओं से युक्त होते हैं, उन्हें भी नहीं खाना चाहिये ॥

६–वैसे तो वनस्पति का आहार लाभदायक ही है परन्तु उस के खाने का अधिक अभ्यास नहीं रखना चाहिये ॥

७–इसी लिये इसे विसर्प भी कहते हैं ॥

८–यह भी स्मरण रखना चाहिये कि दोषों के अनुसार इस रोग मे भिन्न २ लक्षण होते हैं ॥

सब से प्रथम इस रोग में ठंढ से कम्पन, ज्वर का वेग, मन्दाग्नि और प्यास, ये लक्षण होते हैं, रोगी का लाल मूत्र उतरता है, नाड़ी जल्दी चलती है तथा कभी २ रोगी के वमन (उलटी) और भ्रम भी हो जाता है जिस से रोगी बकने लगता है, शोषन भी करता है[1], इन चिह्नों के होने के बाद दूसरे वा तीसरे दिन शरीर के किसी भाग में रक्तवायु दीखने लगता है तथा दाह और लाल शोथ (सूजन) भी हो जाती है।

आगन्तुक रक्तवायु कुलथी के दाने के समान होकर फफोलों से शुरू होता है तथा उस में काला खून, शोथ, ज्वर और दाह बहुत होता है, जब यह रोग ऊपर की चमड़ी में होता है तब तो ऊपरी चिकित्सा से ही थोड़े दिनों में शान्त हो जाता है, परन्तु जब उस का विष गहरा (चमड़ी के भीतर) चला जाता है तब यह रोग बड़ा भयंकर होता है अर्थात् वह पकता है, फफोला होकर फूटता है, शोथ बहुत होता है, पीड़ा बेहद होती है, रोगी की शक्ति कम हो जाती है, एक स्थान में अथवा अनेक स्थानों में मुँह करके (छेद करके) फूटता है तथा उस में से मांस के टुकड़े निकला करते हैं, भीतर का मांस सड़ने लगता है, इस प्रकार यह अन्त में हाड़ोंतक पहुँच जाता है उस समय में रोगी का बचना अतिकठिन हो जाता है और खासकर जब यह रोग गले में होता है तब अत्यन्त भयंकर होता है[2]।

चिकित्सा—१—इस रोग में शरीर में दाह न करनेवाला[3] जुलाब देना चाहिये तथा वमन (उलटी), लेप और सींचने की चिकित्सा करनी चाहिये तथा यदि आवश्यकता समझी जावे तो जोंक लगानी चाहिये।

२—रसवेलिया, काला ईसराज, हेमकन्द, कबावचीनी, सोना गेरू, बरास और चन्दन आदि शीतल पदार्थों का लेप करने से रक्तवायु का दाह और शोथ शान्त हो जाता है।

३—चन्दन अथवा पद्मकाष्ठ, वाला तथा मौलेठी, इन औषधों को पीस कर अथवा उकाल कर ठंढा कर के उस पानी की धार देने से शान्ति होती है तथा फूटने के बाद भी इस जल से धोने से लाभ होता है।

४—चिरायता, अडूसा, कुटकी, पटोल, त्रिफला, रक्तचन्दन तथा नीम की भीतरी छाल, इन का क्वाथ बना कर पिलाना चाहिये, इस के पिलाने से ज्वर, वमन, दाह, शोथ, खुजली और विस्फोटक आदि सब उपद्रव मिट जाते हैं।

५—रक्तवायु की चिकित्सा किसी अच्छे कुशल (चतुर) वैद्य वा डाक्टर से करानी चाहिये।

१—अर्थात् ठंढ से कम्पन आदि इस रोग के पूर्वरूप समझे जाते हैं ॥

२—ऐसे समय में इस की चिकित्सा अच्छे कुशल वैद्य वा डाक्टर से करानी चाहिये ॥

३—क्योंकि दाह करनेवाले जुलाब के देने से इस रोग की वृद्धि की आशङ्का होती है ॥

४—किन्हीं आचार्यों की यह भी सम्मति है कि—जिन स्थियों में दाह न होता हो उन में जुलाब देना चाहिये किन्तु शेष (जिन में दाह होता हो उन) स्थितों में जुलाब नहीं देना चाहिये ॥

विशेष सूचना—इस रोग से युक्त पुरुष को खुराक अच्छी देनी चाहिये, इस रोगी के लिये दूध अथवा दूध डाल कर पकाई हुई चावलों की कांजी उत्तम पथ्य है, रोगी के आसपास स्वच्छता (सफाई) रखनी चाहिये तथा रोगी का विशेष स्पर्श नहीं करना चाहिये, देखो ! अस्पतालों में इस रोगी को दूसरे रोगी के पास डाक्टर लोग नहीं जाने देते है, उन का यह भी कथन है कि—डाक्टर के द्वारा इस रोग का चेप दूसरे रोगियों के तथा खास कर ज़खमवाले रोगियों के शरीर में प्रवेश कर जाता है, इस लिये ज़खमवाले आदमी को इस रोगी के पास कभी नहीं आना चाहिये और न डाक्टर को इस रोगी का स्पर्श कर के जखमवाले रोगी का स्पर्श करना चाहिये ॥

यह चतुर्थअध्यायका ज्वरवर्णन नामक चौदहवा प्रकरण समाप्त हुआ ॥

पन्द्रहवां प्रकरण—प्रकीर्णरोगवर्णन ॥

प्रकीर्णरोग[2] और उन से शारीरिक सम्बन्ध ॥

यह बात प्रायः सब ही को विदित है कि वर्त्तमान समय में इस देश में प्रत्येक गृह में कोई न कोई साधारण रोग प्रायः बना ही रहता है किन्तु यह कहना भी अयुक्त न होगा कि प्रत्येक गृहस्थ मनुष्य प्रक्षिप्त (फुटकर) रोगों में से किसी न किसी रोग में फँसा ही रहता है[3], इस का क्या कारण है, इस विषय को हम यहा ग्रन्थ के विस्तार के भय से नहीं दिखलाना चाहते है, क्योंकि प्रथम हम इस विषय में संक्षेप से कुछ कथन कर चुके है तथा तत्त्वदर्शी बुद्धिमान् जन वर्तमान में प्रचरित अनेक रोगो के कारणों को जानते भी हैं क्योंकि अनेक बुद्धिमानों ने उक्त रोगो के कारणों को सर्व साधारण को प्रकट कर इन से बचाने का भी उद्योग किया है तथा करते जाते है ।

हम यहा पर (इस प्रकरण में) उक्त रोगो में से कतिपय[4] रोगोंके विशेषकारण, लक्षण तथा शास्त्रसम्मत (वैद्यकशास्त्र की सम्मति से युक्त) चिकित्सा को केवल इसी प्रयोजन

१–क्योंकि यह रोग भी चेपी (स्पर्शादि के द्वारा लगनेवाला) है ॥

२–प्रकीर्ण रोग अर्थात् फुटकर रोग ॥

३–क्योंकि वर्त्तमान समय में लोगो की आरोग्यता के मुख्य हेतु देश और काल का विचार एवं प्रकृति के अनुकूल आहार विहार आदि का ज्ञान विलकुल ही नहीं है और न इस के विषय में उन की कोई चेष्टा ही है, वस फिर प्रत्येक गृह मे रोग के होने में अथवा प्रत्येक गृहस्थ मनुष्य के रोगी होने मे आश्चर्य ही क्या है ॥

४–कतिपय रोगो के अर्थात् जिन रोगो से गृहस्थो को प्राय पीडित होना पडता है उन रोगों के कारण लक्षण तथा चिकित्सा को लिखते है ॥

से मिलते हैं कि—साधारण गृहस्थ जन सामान्य कारणों से उत्पन्न होनेवाले उक्त रोगों से उन के कारणों को जान कर बचे रहें तथा दैववश[1] वा आत्मदोष से[2] यदि उक्त रोगो में से कोई रोग उत्पन्न हो जावे तो लक्षणों के द्वारा उसका निश्चय तथा चिकित्सा कर उस (रोग) से मुक्ति पासकें, क्योंकि—वर्त्तमान में यह बात प्रायः देखी जाती है कि—एक साधारण रोग के भी उत्पन्न हो जानेपर सर्व साधारण को वैद्य के अन्वेषण (ढूँढने) और विनय; द्रव्यव्यय; अपने कार्य का त्याग, समय का नाश तथा क्लेशसहन आदि के द्वारा अधिकष्ट उठाना पड़ता है[2] ।

इस प्रकरण में उन्हीं रोगों का वर्णन किया गया है जो कि वर्त्तमान में प्रायः प्रचरित हो रहे हैं तथा जिन से प्राणियों को अनेक कष्ट पहुँच रहे हैं, जैसे—अजीर्ण, अग्निमान्द्य[3] (अग्नि की मन्दता), शिर का दर्द, अतीसार, संग्रहणी, कृमि, उपदंश और प्रमेह आदि ।

इन के वर्णन में यह भी विशेषता की गई है कि—इन के कारण और लक्षणों को भली भाँति समझा कर चिकित्सा का यह उत्तम क्रम रक्खा गया है कि—जिसे समझ कर एक साधारण पुरुष भी लाभ उठा सकता है, इस पर भी ओषधियों के प्रयोग प्रायः वे लिखे गये हैं जो कि रोगोंपर अनेकवार लाभकारी सिद्ध हो चुके हैं ।

इस के सिवाय यथास्थल रोगविशेष पर अंग्रेजी प्रयोग भी लिखदिये गये हैं, जो कि—अनेक विद्वान् डाक्टरों के द्वारा प्रायः लाभकारी सिद्ध हो चुके हैं ।

आशा है कि—सर्वसाधारण तथा गृहस्थ जन इस से अवश्य लाभ उठावेंगे ।

अब कारण लक्षण तथा चिकित्सा के क्रम से आवश्यक रोगों का वर्णन किया जाता है ॥

अजीर्ण (इन्डाइजेश्चन) का वर्णन ॥

अजीर्ण का रोग यद्यपि एक बहुत साधारण रोग माना जाता है परन्तु विचार कर देखने से यह अच्छे प्रकार से विदित हो जाता है कि यह रोग कुछ समय के पश्चात् महत्स्वरूप को धारण कर लेता है अर्थात् इस रोग से शरीर में अनेक दूसरे रोगों की जड़ स्थित (कायम) हो जाती है, इस लिये इस रोग को साधारण न समझकर इस पर पूरा लक्ष्य (ध्यान) देना चाहिये, तात्पर्य यह है कि—यदि शरीर में जरा भी अजीर्ण मालूम पड़े तो उस का शीघ्र ही इलाज करना चाहिये, देखो ! इस बात को प्रायः सब ही समझ

१—दैववश अर्थात् पूर्वकृत अशुभ कर्मों के उदय से तथा आत्मदोष से अर्थात् रोग से बचानेवाले कारणों का विज्ञान होनेपर भी कभी न कभी भूल हो जाने से ॥

२—इस कष्ट को प्रायः वे ही जन ठीक तौर से जानते हैं जिन को इस कष्ट का अनुभव हो चुका है ॥

३—अजीर्ण और अग्निमान्द्य ये दो रोग तो प्रायः वर्त्तमान में मनुष्यों को अत्यन्त ही कष्ट पहुँचा रहे हैं और विचार कर देखा जावे तो ये ही दोनों रोग सब रोगों के मूलकारण हैं, अर्थात् इन्हीं दोनों से सब रोग उत्पन्न होते हैं ॥

सकते हैं कि शरीर का बन्धेज (बन्धान) खुराक पर निर्भर है परन्तु वह खुराक ही जब अच्छे प्रकार से नहीं पचती है तब वह (खुराक) शरीर को दृढ़ करने के बदले उलटा शिथिल (ढीला) कर देती है, तथा खुराक के ठीक तौर से न पचने का कारण प्रायः अजीर्ण ही होता है[1], इस लिये अजीर्ण के उत्पन्न होते ही इसे दूर करना चाहिये[2]।

कारण—अजीर्ण होने का कारण किसी से छिपा नहीं है अर्थात् इस के कारण को प्रायः सब ही जानते है कि अपनी पाचनशक्ति से अधिक और अयोग्य खुराक के खाने से अजीर्ण होता है[3], अर्थात् एक समय में अधिक खा लेना, कच्चे भोजन को खाना, बेपरिमाण (विना अन्दाज अर्थात् गलेतक) खाना, पहिले खाये हुए भोजन के पचने के पहिले ही फिर खाना, ठीक रीति से चबाये विना ही भोजन को खाना तथा खान पान के पदार्थों का मिथ्यायोग करना, ये सब अजीर्ण होने के कारण है।

इन के सिवाय—बहुत से व्यसन भी अजीर्ण के कारण होते है, जैसे मद्य (दारू), भंग (भॉग), गांजा और तमाखू का सेवन, आलस्य (सुस्ती), वीर्य का अधिक खर्च करना, शरीर को और मन को[4] अत्यन्त परिश्रम देना तथा चिन्ता का करना, इत्यादि अनेक कारणों से अजीर्णरूपी शत्रु शरीररूपी किले में प्रवेश कर अपनी जड़ को दृढ़ कर लेता है और रोगोत्पत्तिरूपी अनेक उपद्रवों को करता है।

लक्षण—अजीर्ण यद्यपि एक छोटासा रोग गिना जाता है परन्तु वास्तव में यह सब से बड़ा रोग है, क्योंकि यही (अजीर्ण ही) सब रोगों की जड है, यह रोग शरीर में स्थित होकर (ठहर कर) प्रायः दो क्रियाओं को करता है अर्थात् या तो दस्त लाता है अथवा दस्त को बन्द करता है, इन (दोनों) में से पूर्व क्रिया में दस्त होकर न पचा हुआ अन्न का भाग निकल जाता है, यदि वह न निकले तो प्रायः अधिक खराबी करता है परन्तु दूसरी क्रिया में दस्त की कब्जी होकर पेट फूल जाता है, खट्टी डकार आती है, जी मिचलाता है, उबकी आती है, वमन होता है, जीभपर सफेद थर (मैल) जमजाती है, छाती और आमाशय (होजरी) में दाह होता है तथा शिर में दर्द होता है, इन के सिवाय कभी २ पेट में चूक चलती है और नींद में अनेक प्रकार के दुःस्वप्न (बुरे सुपने) होते है, इत्यादि अनेक चिह्न अजीर्णरोग में मालूम पड़ते है।

१—अजीर्ण शब्द का अर्थ ही यह है कि खाये हुए भोजन का न पचना ॥

२—क्योंकि उत्पन्न होते ही इस का इलाज कर लेने से यह शीघ्र ही निवृत्त हो जाता है अर्थात् शरीर मे इस की जड नहीं जमने पाती है ॥

३—पाचनशक्ति से अधिक खुराक के खाने से अर्थात् आधसेर की पाचनशक्ति होनेपर सेरभर खुराक के खा लेने से तथा अयोग्य खुराक के खाने से अर्थात् प्रकृति के विरुद्ध खुराक के खाने से अजीर्ण रोग उत्पन्न होता है ॥

४—लिखने पढने और सोचने आदि के द्वारा मन को भी अधिक परिश्रम देने से अजीर्ण रोग होता है, क्योंकि—दिल, दिमाग और अग्न्याशय, इन तीनों का बडा घनिष्ठ सम्बध है ॥

भेद (प्रकार)—देखो वैद्यक शास्त्र में अजीर्ण के प्रकरण में जठराग्नि के विकारों[1] का बहुत सूक्ष्मरीति से विचार किया है परन्तु ग्रन्थ के बढ़ जाने के भय से उन सब का विस्तारपूर्वक वर्णन यहां नहीं लिख सकते हैं किन्तु आवश्यक जान कर उन का सार मात्र संक्षेप से यहां दिखलाते हैं:—

न्यूनाधिक तथा सम विषम प्रभाव के अनुसार जठराग्नि के चार भेद माने गये हैं—मन्दाग्नि[2], तीक्ष्णाग्नि, विषमाग्नि और समाग्नि।

इन चारों के सिवाय एक अतितीक्ष्णाग्नि भी मानी गई है जिस को भस्मक रोग कहते हैं।

इन सब अग्नियों का स्वरूप इस प्रकार जानना चाहिये कि—मन्दाग्निवाले पुरुष के थोड़ा खाया हुआ भोजन तो पच जाता है परन्तु किञ्चित् भी अधिक खाया हुआ भोजन कभी नहीं पचता है, तीक्ष्णाग्निवाले पुरुष का अधिक भोजन भी अच्छे प्रकार से पच सकता है, विषमाग्निवाले पुरुष का खाया हुआ भोजन कभी तो अच्छे प्रकार से पच जाता है और कभी अच्छे प्रकार से नहीं पचता है, इस पुरुष की अग्नि का बल अनियमित होता है इस लिये इस के प्रायः अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं, समाग्निवाले पुरुष का किया हुआ भोजन ठीक समय पर ठीक रीति से पच जाता है तथा इस का शरीर भी नीरोग रहता है तथा तीक्ष्णाग्निवाला (भस्मकरोगवाला) पुरुष जो कुछ खाता है वह शीघ्र ही

१—क्योंकि अजीर्ण से और जठराग्नि के विकारों से परस्पर में बड़ा सम्बंध है, या यों कहना चाहिये कि—अजीर्ण जठराग्नि के विकाररूप ही है ॥

२—चौपाई—अल्प मात्रा भोजन खावै ॥ सो हू नहिं पचै दुख पावै ॥ १ ॥
कहिं मन्दाग्नि श्रम रु पर सेवा ॥ सीस उदर अति भारी जेवा ॥ २ ॥
मन्द अग्नि इम जठरा जानो ॥ तामें कफहिँ प्रबल पहिचानो ॥ ३ ॥
अल्प हु अधिक मात्रा लेवै ॥ सो पचि जाय प्राण सुख देवै ॥ ४ ॥
बल अति बढै पुष्टता धारै ॥ पित्त प्रधान तीक्ष्ण गुण कारै ॥ ५ ॥
कबहुँ पचै अन्न कबहुँ नाहीं ॥ शूल आफरा उदर रहाहीं ॥ ६ ॥
गुडगुड शब्द उदर में भाई ॥ कबहुँक मल लागत अति ताई ॥ ७ ॥
विषम अगनि के ये हैं चिह्ना ॥ या में बल वायू को चीन्हा ॥ ८ ॥
मित प्रमाण मात्रा अन्न की ॥ सुख से पचै करै नहिँ तन की ॥ ९ ॥
सम अगनी यह नाम बखान्यो ॥ चार अगनि में श्रेष्ठ हु जान्यो ॥ १० ॥
सम अगनी पावैं तब होई ॥ पूरब जन्म पुण्य फल सोई ॥ ११ ॥
तीक्ष्ण अग्नि जाके तन होय ॥ पथ्य कुपथ्य को ज्ञान न जोय ॥ १२ ॥
रूक्ष कटुक अति भोजन लेवै ॥ विना गुरु घृत अन्न नित खेवै ॥ १३ ॥
क्षीण होय कफ जबहीं जाका ॥ बढ होय पित वायू ताका ॥ १४ ॥
तीक्ष्ण अग्नि वायू कर बढही ॥ पचै अपक अन्न अति चढही ॥ १५ ॥
जा धातहिं को भस्महिं जावै ॥ तातें भस्मक नाम कहावै ॥ १६ ॥
भोजन पचत उपद्रव करही ॥ तब ही रक्त मांस को हरही ॥ १७ ॥

भस्म हो जाता है तथा उस को पुनः भूख लग जाती है, यदि उस भूख को रोका जावे तो उस की अतितीक्ष्णाग्नि उस के शरीर के धातुओं को खा जाती है (सुखा देती है)।

इन्हीं ऊपर कही हुई अग्नियों का आश्रय लेकर वैद्यक शास्त्र में अजीर्ण के जितने भेद कहे हैं उन सब का अब वर्णन किया जाता है:—

१–**आमाजीर्ण**[1]—यह अजीर्ण कफ से उत्पन्न होता है तथा इस में अंग में भारीपन, ओकारी[2], आंख के पोपचों पर थेथर[3] और खट्टी डकार का आना, इत्यादि लक्षण होते हैं[4]।

२–**विदग्धाजीर्ण**—यह अजीर्ण पित्त से उत्पन्न होता है तथा इस में भ्रम[5] का होना, प्यास, मूर्छा, सन्ताप, दाह तथा खट्टी डकार[6] और पसीने का आना, इत्यादि चिह्न होते हैं।

३–**विष्टब्धाजीर्ण**—यह अजीर्ण वादी से होता है तथा इस में शूल, अफरा, चूँक[7], मल तथा अधोवायु (अपानवायु) का अवरोध (रुकना), अंगों का जकड़ना और दर्द का होना, इत्यादि चिह्न होते हैं।

४–**रसशेषाजीर्ण**—भोजन करने के पीछे पेट में पके हुए अन्न का साररूप रस (पतला भाग) जब नहीं पकने पाता है अर्थात् उस के पकने के पहिले ही जब भोजन कर लिया जाता है तब अजीर्ण उत्पन्न होता है, उस को रसशेषाजीर्ण कहते हैं[8], इस अजीर्ण में हृदय के शुद्ध न होने से तथा शरीर में रस की वृद्धि होने से अन्नपर अरुचि होती है।

अजीर्णजन्य दूसरे उपद्रव—जब अजीर्ण का वेग बहुत बढ़ जाता है तब उस अजीर्ण के कारण विषूचिका (हैज़ा), अलसक तथा विलम्बिका नामक रोग हो जाता है[9], इन का वर्णन संक्षेप से करते हैं:—

१–आमाजीर्ण अर्थात् आम के कारण अजीर्ण ॥

२–ओकारी अर्थात् वमन होने की सी इच्छा ॥

३–आँख के पोपचों पर थेथर अर्थात् आँख के पलकों पर सूजन ॥

४–यह अजीर्ण कफ की अधिकता से होता है ॥

५–भ्रम अर्थात् चक्कर ॥

६–इस अजीर्ण में पित्त के वेग से धुएँ सहित खट्टी डकार आती है ॥

७–चूक अर्थात् शूलभेदादि वातसम्बन्धी पीड़ा ॥

८–(**प्रश्न**) आमाजीर्ण में और रसशेषाजीर्ण में क्या भेद है, क्योंकि आमाजीर्ण आम (कच्चे रस के सहित होता है और रसशेषाजीर्ण भी रस के शेष रहनेपर होता है ? (**उत्तर**) देखो ! आमाजीर्ण में तो मधुर हुआ कच्चा ही अन्न रहता है, क्योंकि–मधुर हुए कच्चे अन्न की आम संज्ञा है और रसशेषाजीर्ण में भोजन किये हुए पके पदार्थ का रस पेट में शेष रहता है और वह रस जबतक जठराग्नि से नहीं पकता है तबतक उस की रसशेषाजीर्ण संज्ञा है, बस इन दोनों में यही भेद है ॥

९–स्मरण रखना चाहिये कि– विषूचिका, अलसक और विलम्बिका, ये तीनों उपद्रव प्रत्येक अजीर्ण से होवे हैं (अर्थात् आमाजीर्ण, विदग्धाजीर्ण और विष्टब्धाजीर्ण, इन तीनों से यथाक्रम उक्त उपद्रव होते हों यह बात नहीं है) ॥

विषूचिका—इस रोग में अतीसार (दस्तों का लगना), मूर्च्छा (बेहोशी), वमन (उल्टी,) भ्रम (चक्कर का आना), दाह (जलन), शूल (पीड़ा), हृदय में पीड़ा, प्यास, हाथ और पैरों में खचातान (बाँइटा), अतिजृम्भा (जँभाइयों का अधिक आना), देह का विवर्ण (शरीर के रंग का बदल जाना), विकलता (बेचैनी) और कम्प (काँपना), ये लक्षण होते हैं ।

अलसक—इस रोग में आहार न तो नीचे उतरता है न ऊपर को जाता है[1] और न परिपक्व ही होता है, किन्तु आलसी पुरुष के समान पेट में एक जगह ही पड़ा रहता है[2], इस के सिवाय इस रोग में अफरा, मल मूत्र और गुदा की पवन (अपानवायु) का रुकना तथा अति तृषा (प्यास का अधिक लगाना), इत्यादि लक्षण भी होते हैं, इस रोग में प्रायः मनुष्य को अतिकष्ट होता है ।

विलम्बिका—इस रोग में किया हुआ भोजन कफ और वात से दूषित होकर न तो ऊपर को जाता है और न नीचे को ही जाता है अर्थात् न तो वमन के द्वारा निकलता है और न विरेचन (दस्त) ही के द्वारा निकलता है, इस रोग में अलसक रोग से यह भेद है कि—अलसक रोग में तो शूल आदि घोर पीड़ा होती है परन्तु इस में वैसी पीड़ा नहीं होती है[3] ।

जब विषूचिका और अलसक रोग में रोगी के दाँत नख और ओष्ठ (ओठ) काले हो जावें, अत्यन्त वमन हो, ज्ञान (संज्ञा) का नाश हो जावे[4], नेत्र भीतर घुस जावें, स्वर क्षीण हो जावे[5] तथा सन्धियां शिथिल हो जावें तब इन लक्षणों के होने के बाद रोगी नहीं बचता है[6] ।

निद्रा का नाश, मन का न लगना, कम्प, मूत्र का रुकना और संज्ञा का नाश, ये पांच विषूचिका के घोर उपद्रव हैं[7] ।

पहिले कह चुके हैं कि—बहुधा भोजन की विषमता से मनुष्य के अजीर्ण रोग हो जाता

१—अर्थात् न तो दस्त के द्वारा निकलता है और न वमन के द्वारा ही निकलता है ॥

२—इसी लिये इस रोग को अलसक कहते हैं ॥

३—परन्तु यह रोग भी दुश्चिकित्स्य (कठिनता से चिकित्सा करने योग्य) माना गया है ॥

४—ज्ञान का नाश हो जावे अर्थात् होश जाता रहे ॥

५—स्वर क्षीण हो जावे अर्थात् आवाज बैठ जावे ॥

६—तात्पर्य यह है कि ऐसी दशा में यह रोग असाध्य हो जाता है ॥

७—[illegible] ॥

८—[illegible]

है तथा वही अजीर्ण सब रोगों का कारण है, इस लिये जहांतक हो सके अजीर्ण को शीघ्र ही दूर करना चाहिये, क्योंकि अजीर्ण रोग का दूर करना मानो सब रोगों को दूर करना है ।

अजीर्ण जाता रहा हो उस के लक्षण[1]—शुद्ध डकार का आना, शरीर और मन का प्रसन्न होना, जैसा भोजन किया हो उसी के सदृश मल और मूत्र की अच्छे प्रकार से प्रवृत्ति होना, सब शरीर का हलका होना, उस में भी कोष्ठ (कोठे अर्थात् पेट) का विशेष हलका होना तथा भूख और प्यास का लगना, ये सब चिह्न अजीर्ण रोग के नष्ट होनेपर देखे जाते हैं, अर्थात् अजीर्ण रोग से रहित पुरुष के भोजन के पच जाने के बाद ये सब लक्षण देखे जाते है ।

अजीर्ण की सामान्यचिकित्सा—१–आमाजीर्ण में गर्म पानी पीना चाहिये[2], विदग्धाजीर्ण में ठढा पानी पीना तथा जुलाब लेना चाहिये[3], विष्टब्धाजीर्ण में पेटपर सेंक करना चाहिये[4] और रसशेपाजीर्ण में सो जाना चाहिये अर्थात् निद्रा लेनी चाहिये[5] ।

२–यद्यपि अजीर्ण का अच्छा और सस्ता इलाज लंघन का करना है[6] परन्तु न जाने मनुष्य इस से क्यों भय करते है (डरते है), उन में भी हमारे मारवाडी भाई तो मरना स्वीकार करते हैं परन्तु लघन के नाम से कोसों दूर भागते है और उन में भी भाग्यवानो का तो कहना ही क्या है, यह सब अविद्या का ही फल कहना चाहिये कि उन को अपने हिताहित का भी ज्ञान बिलकुल नहीं है ।

३–सेंधानिमक, सोंठ तथा मिर्च की फंकी छाछ वा जल के साथ लेनी चाहिये ।

४–चित्रक की जड़ का चूर्ण गुड़ में मिला कर खाना चाहिये ।

५–छोटी हरड़, सोंठ तथा सेंधानिमक, इन की फकी जल के साथ वा गुड़ में मिला कर लेनी चाहिये ।

६–सोंठ, छोटी पीपल तथा हरड़ का चूर्ण गुड के साथ लेने से आमाजीर्ण, हरँस[7] और कब्जी मिट जाती है ।

१–अर्थात् जीर्णाहार (पचे हुए आहार) के लक्षण ॥

२–इस (आमाजीर्ण) में वमन कराना भी हितकारक होता है ॥

३–विदग्धाजीर्ण में लघन कराना भी हितकारक होता है ॥

४–अर्थात् इस (विष्टब्धाजीर्ण) मे सेंक कर पसीना निकालना चाहिये ॥

५–क्योंकि निद्रा लेने (सो जाने) से वह शेप रस शीघ्र ही परिपक्व हो जाता (पच जाता) है ॥

६–अच्छा इस लिये है कि ऊपर से आहार के न पहुचने से उस पूर्वाहार का परिपाक हो ही गा और सस्ता इस लिये है कि इस में द्रव्य का खर्च कुछ भी नहीं है, अत गरीब और अमीर सब को ही सुलभ है अर्थात् सब ही इसे कर सकते हैं ॥

७–हरस अर्थात् बवासीर ॥

७—धनिया तथा सोंठ का क्वाथ पीने से आमाजीर्ण और उस का शूल मिट जाता है।

८—अजमायन तथा सोंठ की फंकी अजीर्ण तथा अफरे को शीघ्र ही मिटाती है।

९—काला जीरी दो से चार माशेतक निमक के साथ चाबनी चाहिये।

१०—लहसुन, जीरा, संचल निमक, सेंधा निमक, हींग और नींबू आदि दवाइयां भी अग्नि को प्रदीप्त करती तथा अजीर्ण को मिटाती हैं, इस लिये इन का उपयोग[1] करना चाहिये, अथवा इन में से जो मिले उस का ही उपयोग करना चाहिये, यदि नींबू का उपयोग किया जावे तो ऐसा करना चाहिये कि—नींबू की एक फांक में[2] काली मिर्च और मिश्री को तथा दूसरी फांक में काली मिर्च और सेंधेनिमक को डाल कर उस फांक को अग्निपर रख कर गर्म कर उतार कर सहता २ चूसना चाहिये, इस प्रकार पांच सात नींबुओं को चूस लेना चाहिये, इस का सेवन अजीर्ण में तथा उस से उत्पन्न हुई प्यास और उलटी में बहुत फायदा करता है[3]।

११—सोंठ, मिर्च, छोटी पीपल, दोनों जीरे (सफेद और काला), सेंधानिमक, घृत में भूनी हुई हींग और अजमोद[4], इन सब वस्तुओं को समान भाग लेकर तथा हींग के सिवाय सब चीजों को कूट तथा छान लेना चाहिये, पीछे उस में हींग को मिला देना चाहिये, इस को हिंगाष्टक चूर्ण कहते हैं, अपनी शक्ति के अनुसार इस में से थोड़े से चूर्ण को घृत में मिला कर भोजन के पहिले (प्रथम कवल के साथ) खाना चाहिये, इस के खाने से अजीर्ण, मन्दाग्नि, शूल, गुल्म, अरुचि और वायुजन्य (वायुसे उत्पन्न हुए) सर्व रोग शीघ्र ही मिट जाते हैं तथा अजीर्ण के लिये तो यह चूर्ण अति उत्तम औषध है[5]।

१२—चार भाग सोंठ, दो भाग सेंधानिमक, एक भाग हरड़ तथा एक भाग शोधा हुआ गन्धक[6] इन सब को मिला कर नींबू के रस की सात पुट देनी चाहियें, पीछे एक

१—उपयोग अर्थात् सेवन ॥

२—एक फांक में अर्थात् आधे नींबू में ॥

३—अर्थात् इस के सेवन से अजीर्ण तथा उस से उत्पन्न हुई प्यास और उलटी मिट जाती है, इस के सिवाय इस के सेवन से कफ आदि दोषों की शान्ति होती है, अन्नपर रुचि चलती है, शुद्ध डकार आती है मुख का स्वाद ठीक हो जाता है तथा जठराग्नि प्रदीप्त होती है ॥

४—अजमोद के स्थान में अजवायन डालनी चाहिये यह किन्हीं लोगों की सम्मति है, क्योंकि अजवायन अन्त सम्मार्जनी (कोठे को शुद्ध करनेवाली) है परन्तु अजमोद में यह गुण नहीं है ॥

५—यदि इच्छा हो तो बिजौरे के रस के साथ इस चूर्ण की गोलियां बना कर उन का सेवन करना चाहिये ॥

६—गन्धक के शोधने की विधि यह है कि— लोहे की कलछी में थोड़े से घी को गर्म कर उस में गन्धक का चूर्ण डाल देना चाहिये जब वह गल जावे तब उसे पानी मिलाये हुए दूध में डाल देना चाहिये इसी तरह सब गन्धक को गला कर दूध में डाल देना चाहिये तथा अच्छी तरह से धोकर उसे सुखा लेना चाहिये ॥

एक मासे की गोलियां बनानी चाहियें तथा शक्ति के अनुसार इन गोलियों का सेवन करना चाहिये, इस गोली का नाम राजगुटिका है, यह अजीर्ण, वमन, विषूचिका, शूल और मन्दाग्नि आदि रोगों में शीघ्र ही फायदा करती है ।

इन ऊपर कहे हुए साधारण इलाजों के सिवाय इन रोगों में कुछ विशेष इलाज भी हैं जिन में से प्रायः रामबाण रस, क्षुधासागर रस, अजीर्णकण्टक रस, अग्निकुमार रस तथा शूलदावानल रस, इत्यादि प्रयोग उत्तम समझे जाते हैं[1] ।

विशेष सूचना—अजीर्ण रोगवाले को अपने खाने पीने की सँभाल अवश्य रखनी चाहिये क्योंकि अजीर्ण रोग में खाने पीने की सँभाल न रखने से यह रोग प्रबल रूप धारण कर अतिभयंकर हो जाता है तथा अनेकरोगों को उत्पन्न करता है इस लिये जब अजीर्ण हो तब एक दिन लंघन कर दूसरे दिन हलकी खुराक खानी चाहिये[2] तथा ऊपर लिखी हुई साधारण दवाइयों में से किसी दवा का उपयोग करना चाहिये, ऐसा करने से अजीर्ण शीघ्र ही मिट जाता है, परन्तु इस रोग में प्रमाद (गफलत) करने से इस का असर शरीर में बहुत दिनोंतक बना रहता है अर्थात् अजीर्ण पुराना पड़ कर शरीर में अपना घर कर लेता है और फिर उस का मिटना अति कठिन हो जाता है ।

बहुधा यह भी देखा गया है कि—बहुत से आदमियों के यह अजीर्ण रोग सदा ही बना रहता है परन्तु तो भी वे उस का यथोचित उपाय नहीं करते हैं, इस का अन्त में परिणाम यह होता है कि—वे उस रोग के द्वारा अनेक कठिन रोगों में फँस जाते हैं और रोगों की फर्यादी (पुकार) करते हुए तथा अत्यन्त व्याकुल होकर अनेक मूर्ख वैद्यों से अपना दुःख रोते हैं तथा मूर्ख वैद्य भी अजीर्ण के कारण को ठीक न जान कर मनमानी चिकित्सा करते हैं कि जिस से रोगी के उदर की अग्नि सर्वदा के लिये बिगड़ कर उन को दुःख देती है तथा अजीर्णरोग मृत्युसमय तक उन का पीछा नहीं छोडता है, इस लिये मन्दाग्नि तथा अजीर्णवाले पुरुष को सादी और बहुत हलकी खुराक खानी चाहिये, जैसे—दाल भात और दलिया आदि, क्योंकि यह खुराक ओषधि के समान ही फायदा करती है, यदि इस से लाभ प्रतीत (मालूम) न हो तो कोई अन्य साधारण चिकित्सा करनी चाहिये, अथवा किसी चतुर वैद्य वा डाक्टर से चिकित्सा करानी चाहिये ॥

१—इन सब का विधान आदि दूसरे वैद्यक ग्रन्थों में देख लेना चाहिये ॥

२—परन्तु शाम को अजीर्ण मालूम हो तो थोडा सा भोजन करने में कोई हानि नहीं है, तात्पर्य यह है कि—प्रातःकाल किये हुए भोजन का अजीर्ण कुछ शाम को प्रतीत हो तो उस में शाम को भी थोडा सा भोजन कर लेने में कोई हानि नहीं है परन्तु शामको किये हुए भोजन का अजीर्ण यदि प्रातःकाल मालूम हो तो ओषधि आदि के द्वारा उस की निवृत्ति कर के ही भोजन करना चाहिये अर्थात् उसी अजीर्ण में भोजन नहीं कर लेना चाहिये ॥

पुराने अजीर्ण (डिसपेपसिया) का वर्णन ॥

वर्तमान समय में यह अजीर्ण रोग बड़े २ नगरों के सुधरे हुए भी समाज का तथा प्रत्येक घर का खास मर्ज बन गया है[1], देखिये ! अनेक प्रकार के मनमाने भोजन करने के शौक में पड़े हुए तथा परिश्रम न करनेवाले अर्थात् गद्दी तकियों का सहारा लेकर दिन भर पड़े रहनेवाले अनेक सभ्य पुरुषोंपर यह रोग उन की सभ्यता का कुछ विचार न करके वारंवार आक्रमण (हमला) करता है परन्तु जो लोग चमचमाहटदार तथा स्वादिष्ट खान पान के आनन्द और उन के शौक से बचते हैं तथा जो लोग रात को नाच तमाशे और नाटक आदि के देखने की लत से बच कर साधारणतया अपने जीवन का निर्वाह करते हैं उनपर यह रोग प्रायः दया करता है अर्थात् वे पुरुष प्रायः इस रोग से बचे रहते हैं[2] ।

पाठकगण इस के उदाहरण को प्रत्यक्ष ही देख सकते हैं कि—बम्बई, हैदराबाद, कलकत्ता, बीकानेर, अहमदाबाद और सूरत आदि जैसे शौकीन नगरों में इस रोग का अधिक फैलाव है तथा साधारणतया निर्वाह करने योग्य सर्वत्र ग्राम आदि स्थानों में ढूँढने पर भी इस के चिह्न नहीं दीखते हैं, इस का कारण केवल यही है जो अभी कह चुके हैं[3] ।

इस बात का अनुभव तो प्रायः सब ही को होगा कि जिन धनवानों के पास सुख के सब साधन मौजूद हैं उन की अज्ञानतासे उन के कुटुम्ब में सदा मान्दी और बदहजमी रहती है तथा उसी के कारण शरीर और मन की अशक्ति उन का कभी पीछा नहीं छोड़ती है[4] ।

लक्षण—भूख तथा रुचि का नाश, छाती में दाह, खट्टी डकार, उबकी, वमन (उलटी), होजरी में दर्द, वायु का रुकना, मरोड़ा, धड़क (हृदय का धड़कना), श्वास का रुकना[5], शिर में दर्द, मन्दज्वर, अनिद्रा (नींद का न आना), बहुत स्वप्नों का आना, उदासी, मन में बुरे विचारों का उत्पन्न होना तथा मुँह में से पानी का गिरना, ये इस अजीर्ण के लक्षण हैं, इस रोग में अन्न नजरों से भी देखे नहीं सुहाता है और न

१—तात्पर्य यह है कि—पहिले जो अजीर्ण रोग उत्पन्न हुआ था उस की ठीक रीति से चिकित्सा न की जाने से तथा उस के बढ़ानेवाले मिथ्या आहार और विहार के सेवन से उस की जड़ मजबूत हो जाने से यह प्रत्येक घर का एक खास मर्ज बन गया है ॥

२—अर्थात् ये सभ्य पुरुष हैं इन को छेड़ें मैं न सताऊँ, इस बात का कुछ भी विचार न कर के ॥

३—तात्पर्य यह है कि खाने पीने आदि के विशेष शौक में न पड़कर तथा यथोचित शारीरिक आदि परिश्रम कर अपना निर्वाह करते हैं उन को यह रोग नहीं सताता है ॥

४—कारण वही है जो अभी लिख चुके हैं कि वे गद्दी तकियों के दास बन कर पड़े रहते हैं ॥

५—श्वास का रुकना अर्थात् डकार और अधोवायु[illegible] आदि द्वारा वायु का न निकलना ॥

खाया हुआ अन्न पचता है, परन्तु हा कभी २ ऐसा भी होता है कि इस रोग से युक्त पुरुष को अधिक भूख लगी हुई मालूम होती है यहातक कि खाने के वाद भी भूख ही मालूम पड़ती है तथा खुराक के पेट में पहुँचने पर भी अंग गलता ही जाता है, शरीर में सदा आलस्य वना रहता है, कभी २ रोगी को ऐसा दुःख मालूम पडता है कि–वह यह विचारता है कि मै आतमघात (आत्महत्या) कर के मर जाऊँ, अर्थात् उस के हृदय में अनेक वुरे विचार उत्पन्न होने लगते है[1] ।

कारण—मसालेदार खुराक, घी वा तेल से तर (भीगा हुआ) पक्वान्न (पकमान) वा तरकारी, अधिक मेवा, अचार, तेज़ और खट्टी चीजें, वहुत दिनोंतक उपवास करके पशु के समान खाने का अभ्यास, वहुत चाय का अभ्यास, जल पीकर पेट को फुला देना (अधिक जल का पी लेना), भोजन कर के शीघ्र ही अधिक पानी पीने का अभ्यास और गर्मागर्म (अति गर्म) चाय तथा काफी के पीने का अभ्यास, ये सब वादी और अजीर्ण को वुलानेवाले दूत हैं ।

इस के सिवाय–मद्य, ताडी, खाने की तमाखू, पीने की तमाखू, सूंघने की तमाखू, भाग, अफीम और गाजा, इत्यादि विषैले पदार्थों के सेवन से मनुष्य की होजरी खराव हो जाती है[2], वीर्य का अधिक क्षय, व्यभिचार, सुज़ाख और गर्मी आदि कारणों से मनुष्य की आँतें नरम और शक्तिहीन (नाताकत) पड़ जाती हैं, निर्धनावस्था में किसी उद्यम के न होने से तथा जाति और सासारिक (दुनिया की) प्रथा (रिवाज) के कारण औसर और विवाह आदि में व्यर्थ खर्च के द्वारा धन का अधिक नाश होने से उत्पन्न हुई चिन्ता से अग्नि मन्द हो जाती है तथा अजीर्ण हो जाता है, इत्यादि अनेक कारण अग्नि की मन्दता तथा अजीर्ण के है ।

चिकित्सा—१–इस रोग की अधिक लम्बी चौड़ी चिकित्सा का लिखना व्यर्थ है, क्योंकि इस की सर्वोपरि (सव से ऊपर अर्थात् सव से अच्छी) चिकित्सा यही है कि ऊपर कहे हुए कारणो से वचना चाहिये तथा साधारण हलकी खुराक खाना चाहिये, शक्ति के अनुसार व्यायाम (कसरत) करना चाहिये तथा सामान्यतया शरीर की आरोग्यता को वढ़ानेवाली साधारण दवाइयों का सेवन करना चाहिये, वस इन उपायों के सिवाय और कोई भी ऐसी चतुराई नहीं है कि जिस से इस रोग से वचाव हो सके ।

१–क्योंकि इस रोग का कष्ट रोगी को अत्यन्त पीडित करता है ॥

२–वहुत से लोग यह समझते हैं कि मद्य और भाग आदि के पीने से तथा तमाखू आदि के सेवन से (खाने पीने आदि के द्वारा) भूख खूव लगती है, अन्न अच्छे प्रकार से खाया जाता है, पाचनशक्ति वढ जाती है तथा शरीर में शक्ति आती है इत्यादि, सो यह उन की भूल है, क्योंकि परिणाम मे इन सव पदार्थों से आमाशय और जठराग्नि मे विकार हो कर वहुत खरावी होती है अर्थात् कठिन अजीर्ण होकर अनेक रोगों को उत्पन्न कर देता है, इस लिये उक्त विचार से इन पदार्थों का व्यसनी कभी नहीं वनना चाहिये ॥

२—न पचनेवाली अथवा अधिक काल में पचनेवाली वस्तुओं का त्याग करना चाहिये, जैसे—तरकारी, सब प्रकार की दालें, मेवा, अधिक घी, मक्खन, मिठाई तथा खटाई आदि।

३—दूध, दलिया, खमीर की अथवा आटे में अधिक मोयन (मोवन) देकर गर्म पानी से उसन कर बनाई हुई पतली २ थोड़ी रोटी, बहुत नरम और थोड़ी चीज, काफी, दाल तथा मूंग का ओसामण आदि खुराक बहुत दिनों तक खानी चाहिये[1]।

४—भोजन करने का समय नियत कर लेना चाहिये अर्थात् समय और कुसमय में नहीं खाना चाहिये, न वारंवार समय को बदलना चाहिये और न बहुत देर करके खाना चाहिये, रात को नहीं खाना चाहिये, क्योंकि रात्रि में भोजन करने से तनदुरुस्ती बिगड़ती है।

बहुत से अज्ञान लोग रात्रि में भोजन करते हैं तथा इस विषय में अंग्रेजों का उदाहरण देते हैं अर्थात् वे कहते हैं कि—"अंग्रेज लोग रात्रि में सदा खाते हैं और वे सदा नीरोग रहते हैं, यदि रात्रि में भोजन करना हानिकारक (नुकसान करनेवाला) है तो उन के रोग क्यों नहीं होता है" इत्यादि, सो यह उन की अज्ञानता है तथा उन का यह कहना कि—"अंग्रेजों को रोग क्यों नहीं होता है" बिलकुल व्यर्थ है क्योंकि—रात्रि में भोजन करने से उन को भी रोग तो अवश्य होता है परन्तु वह रोग थोड़ा होता है और थोड़े ही समयतक ठहरता है, क्योंकि प्रथम तो उन लोगों के रहने के मकान ही ऐसे होते हैं कि क्षुद्र जीव प्रथम तो उन के मकानों में प्रवेश ही नहीं कर सकते हैं, दूसरे वे लोग नियत समय पर बहुत थोड़ा २ खाते हैं तथा खाने के पश्चात् विकार न करनेवाले किन्तु हाजमा करनेवाले पदार्थों का सेवन करते हैं कि जिस से उन को अजीर्ण कभी नहीं होता है, तीसरे—जब कभी उन को रोग होता है तब शीघ्र ही वे विद्वान् डाक्टरों से उस की चिकित्सा करा लेते हैं कि जिस से रोग उन के शरीर में स्थान नहीं करने पाता है, चौथे—वे नियमानुसार शारीरिक (शरीर का) और मानसिक (मनका) परिश्रम करते हैं कि जिस से उन का शरीर रोग के योग्य ही नहीं होता है, पांचवें—नियमानुसार सब कार्यों के करने तथा निकृष्ट (बुरे) कार्यों से बचने से उन को आधि (मानसिक रोग)

1—बहुत से लोग इस (अजीर्ण) रोग में कुछ दिनों तक कुछ पथ्यादि रखते हैं परन्तु जब कुछ फायदा नहीं होता है तब खिन्न होकर पथ्यादि से चलना छोड़ देते हैं, क्योंकि वे समझते हैं कि पथ्यपूर्वक चलने से कुछ फायदा तो होता नहीं है फिर क्यों पथ्य से चलें ऐसा समझकर पथ्य और कुपथ्य आदि सब ही पदार्थों का उपयोग करने लगते हैं, सो यह उन की भूल है क्योंकि—इस रोग में थोड़े ही दिनों तक पथ्यपूर्वक चलने से कुछ भी फायदा नहीं हो सकता है किन्तु एक अर्सेतक (बहुत दिनों तक) पथ्यपूर्वक चलना चाहिये तब फायदा मालूम होता है, थोड़े दिनों तक पथ्यपूर्वक बर्ताव कर फिर उस छोड़ देने से तो उलटी और भी हानि होती है क्योंकि अपथ्यसेवन और अत्यधिक विषय करता है और उस से दूसरे भी अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं॥

और व्याधि (शारीरिक रोग) सताती ही नहीं है, इत्यादि अनेक बातों से रोग उन के पास तक नहीं आता है, परन्तु सब जानते है कि–हिन्दुस्थानी जनों के कोई भी व्यवहार उन के समान नहीं है, फिर हिन्दुस्थानी जन निषिद्ध (शास्त्र आदि से मना किया हुआ) कार्य कर के दुःखरूपी फल से कैसे बचसकते हैं ? अर्थात् हिन्दुस्थानी जन शरीर को बाधा पहुँचानेवाले कार्यों को करके उन (अग्रेजों) के समान तनदुरुस्ती को कभी नहीं पा सकते है।

वर्त्तमान में यह भी देखा जाता है कि–बहुत से आर्य श्रीमान् लोग अंग्रेजों के समान व्यवहार करने में अपना पैर रखते हैं[2] परन्तु उस का ठीक निर्वाह न होने से परिणाम (नतीजा) यह होता है कि वे विना मौत आधी ही उम्र में मरते है, क्योंकि प्रथम तो अग्रेजो का सब व्यवहार उन से यथोचित बन नहीं आता है, दूसरे–इस देश की तासीर और जल वायु अंग्रेजों के देश से अलग है, इस लिये हिन्दुस्थानियो को उचित है कि–उन के अनुकरण (नकल करने) को छोड कर अपनी प्राचीन प्रथा (रिवाज़) पर ही चलते रहें अर्थात् प्रजापति भगवान् श्री नाभिकुलचन्द्र ने जो दिनचर्या (दिन का व्यवहार), रात्रिचर्या (रात्रि का व्यवहार) तथा ऋतुचर्या (ऋतु का व्यवहार) अपने पुत्र हारीत को बतलाई थी (जिस को हम सक्षेप से इसी अध्याय में लिख चुके है) उस के अनुसार ही व्यवहार करें, क्योंकि उस पर चलना ही उन के लिये कल्याणकारी है, तात्पर्य यह है कि–आर्यावर्त्त के निवासियों को इस (आर्यावर्त्त) देश के अनुसार ही अपना पहिराव, भेष, खान, पान तथा चाल चलन रखना चाहिये, अर्थात् भाषा (बोली), भोजन, भेष और भाव, इन चार बातों को अपने देश के अनुसार ही रखना चाहिये, ये ऊपर कही हुई चार बातें मुख्यतया ध्यान में रखने की हैं[3] ।

५–मद्य का सेवन नहीं करना चाहिये अर्थात् मद्य को कभी नहीं पीना चाहिये[4] ।

६–भोजन करने के समय में अथवा भोजन करने के पीछे शीघ्र ही अधिक जल नहीं पीना चाहिये[5] तथा बहुत गर्म चाय वा काफी को नहीं पीना चाहिये, यदि कोई पतला पदार्थ पीने में आवे तो वह बहुत गर्म वा बहुत ठंढा नहीं होना चाहिये ।

१–हिन्दुस्थानी जनों के व्यवहार उन के समान ही नहीं हैं, यह बात नहीं है किन्तु हिन्दुस्थानियों के सब व्यवहार ठीक उन (अग्रेजों) के विरुद्ध (विपरीत) हैं, फिर ये (हिन्दुस्थानी) लोग उन के समान आरोग्यता के सुख को कैसे पा सकते है ॥

२–इस का अनुभव पाठकों को वर्तमान में अच्छे प्रकार से हो ही रहा है, इस लिये इस विषय के विवरण करने की कोई आवश्यकता नहीं है ॥

३–इन चारों बातों को ध्यान में रख कर देश, काल और प्रकृति आदि को विचार कर जो वर्त्ताव करेगा वही कभी धोखे मे नहीं पडेगा ॥

४–यद्यपि प्रारम्भ में इस से कुछ लाभ सा प्रतीत होता है परन्तु परिणाम मे इस से बडी भारी हानि पहुँचती है, यह सुयोग्य वैद्य और डाक्टरों ने ठीक रीति से परीक्षा कर के निर्धारित किया है ॥

५–क्योंकि भोजन करने के समय मे अथवा भोजन करने के पीछे शीघ्र ही अधिक जल पीने से खाये हुए अन्न का ठीक रीति से पाचन नहीं होता है ॥

७–तमाखू को नहीं सूंघना चाहिये, यदि कदाचित् नकसीर रोग के बन्द करने के लिये या कफ और नजले के निकालने के लिये उस के सूंघने की आवश्यकता हो वा उस का व्यसन पड़ गया हो तो यथाशक्य (जहांतक हो सके) उसे छोड़ कर दूसरी दवा से उस का काम लेना चाहिये, यदि कदाचित् अतिव्यसन हो जाने के कारण वह न छूट सके तो इतना खयाल तो अवश्य रखना चाहिये कि–भोजन करने से प्रथम उसे कभी नहीं सूंघना चाहिये, क्योंकि–भोजन करने से प्रथम तमाखू के सूंघने से भूख बन्द हो जाती है, इस बात की परीक्षा प्रत्येक सूंघनेवाला पुरुष कर सकता है।

८–खाने की तमाखू भी सूंघने की तमाखू के समान ही अवगुण करती है, परन्तु तमाखू खानेवाले लोग यह समझते हैं कि–तमाखू के खाने से खुराक हजम होती है, सो उन का यह खयाल करना अत्यन्त गलत है, क्योंकि तमाखू के खाने से उलटा अजीर्ण रहता है।

९–बहुत परिश्रम नहीं करना चाहिये[1], खुली हुई स्वच्छ (साफ) हवा में अच्छे प्रकार भ्रमण करना (घूमना) चाहिये[2], यदि बहुत नींद लेने की (सोने की) आदत हो तो उसे छोड़ देना चाहिये तथा प्रातःकाल शीघ्र उठ कर खुली हुई स्वच्छ हवा में घूमना फिरना चाहिये।

१०–भोजन करने के पीछे शीघ्र ही बांचने, लिखने, पढ़ने तथा सूक्ष्म (बारीक) विषयों के विचार करने के लिये नहीं बैठना चाहिये, किन्तु कम से कम एक घंटा बीत जाने के बाद उक्त काम करने चाहिये[3]।

११–अन्न के पचाने (हजम करने) के लिये गर्म दवाइयां, गर्म खुराक तथा साफ दस्त लानेवाली दवा (जुलाब आदि) नहीं लेनी चाहियें[4]।

बस अजीर्ण रोग से बचने के लिये ऊपर लिखे नियमों के अनुसार चलना चाहिये, होजरी (आमाशय) को सुधारने के लिये कुछ समय तक बच्चों की भांति दूध से ही निर्वाह करना चाहिये, आरोग्यता को रखनेवाली सितोपलादि साधारण औषधों का सेवन करना चाहिये तथा घोड़ेपर सवार होकर अथवा पैदल ही प्रातःकाल और सायंकाल स्वच्छ वायु के सेवन के लिये भ्रमण करना चाहियें, क्योंकि होजरी के सुधारने के लिये यह सर्वोत्तम उपाय है ॥

१–यद्यपि शारीरिक (शरीरसम्बन्धी) परिश्रम भी विशेष नहीं करना चाहिये किन्तु मानसिक (मनःसम्बन्धी) परिश्रम तो भूल कर भी विशेष नहीं करना चाहिये क्योंकि मानसिक परिश्रम से यह रोग विशेष बढ़ता है ॥

२–स्वच्छ हवा में भ्रमण करने (घूमने) से इस रोग में बहुत ही लाभ होता है, यह बात पूरे तौर से अनुभव में आ चुकी है ॥

३–भोजन करने के पीछे शीघ्र ही लिखने पढ़ने आदि का कार्य करने से भोजन ज्यों का त्यों आमाशय में स्थित रह जाता है अर्थात् परिपाक नहीं होता है ॥

४–क्योंकि ऐसा करने से जठराग्नि का स्वाभाविक बल नष्ट हो कर उस में विकार उत्पन्न हो जाता है ॥

अतीसार (डायरिया) का वर्णन ॥

कारण—अजीर्ण रोग के समान अतीसार (दस्त) होने के भी बहुत से कारण हैं तथा इन दोनों रोगों के कारण भी प्राय. एक से ही हैं[1], इन के सिवाय अतिशय (अधिक) और अयोग्य खुराक, कच्चा फल, कच्चा अन्न, बासी तथा भारी खुराक, इत्यादि पदार्थों के उपयोग से भी अतीसार रोग होता है, एवं खराब पानी, खराब हवा, ऋतु का बदलना, शर्दी, भय तथा अचानक आई हुई विपत्ति, इत्यादि कई एक कारण भी इस रोग के उत्पादक (उत्पन्न करनेवाले) माने जाते है ।

लक्षण—वारंवार पतले दस्त का होना, यह इस रोग का मुख्य चिह्न है, इस के सिवाय–जी मचलाना, अरुचि, जीभपर सफेद अथवा पीली थर का जमना, पेट में वायु का बढ़ना तथा उस की गडगडाहट का होना, चूंक तथा खट्टी डकार का आना, इत्यादि दूसरे भी चिह्न इस रोग में होते हैं ।

इस बात को सदा ध्यान में रखना चाहिये कि अतीसार रोग के दस्तों में तथा मरोड़े के दस्तों में बहुत फर्क होता है अर्थात् अतीसार रोग में पतला दस्त जलप्रवाह (जल के बहने) के समान होता है[3] और मरोड़े में आँतें मैल से भरी हुई होती है, इस लिये उस में खुलासा दस्त न होकर व्यथा (पीडा) के साथ थोडा २ दस्त आता है तथा आँतों में से आँव, जलयुक्त पीप और खून भी गिरता है, यदि कभी अतीसार के दस्तों में खून गिरे तो यह समझना चाहिये कि यह खून या तो मस्से के भीतर से वा खून की किसी नली के फूटने से अथवा आँतों वा होजरी में ज़खम (घाव) के होने से गिरता है ।

अतीसार के भेद—देशी वैद्यक शास्त्र में अतीसार रोग के बहुत से भेद माने हैं[4] अर्थात् जिस अतीसार में जिस दोष की अधिकता होती है उस का उसी दोष के अनुसार नाम रक्खा है, जैसे—वातातीसार, पित्तातीसार, कफातीसार, सन्निपातातीसार, शोकातीसार, आमातीसार तथा रक्तातीसार इत्यादि, इन सब अतीसारों में दस्त के रंग में तथा दूसरे भी लक्षणों में भेद[5] होता है जैसे—देखो ! वातातीसार में–दस्त झाँखा तथा धूम्रवर्ण का (धुएँ के समान रंगवाला) होता है, पित्तातीसार में–पीला तथा रक्तता (सुर्खी) लिये हुए होता है, कफातीसार में तथा आमातीसार में–दस्त सफेद तथा चिकना होता है और

१–अर्थात् अजीर्ण रोग के जो कारण कहे हैं वे ही अतीसार रोग के भी कारण जानने चाहियें ॥

२–खराब पानी के ही कारण प्राय यात्रियों को दस्त होने लगते हैं ॥

३–अर्थात् साधारण अतीसार और मरोड़े को एक ही रोग नहीं समझ लेना चाहिये ॥

४–किन्हीं आचार्यों ने इस रोग के केवल छ ही भेद माने हैं अर्थात् वातातीसार, पित्तातीसार, कफातीसार, सन्निपातातीसार, शोकातीसार और आमातीसार ॥

५–दूसरे लक्षणों मे भी भेद पृथक् २ दोषों के कारण होता है ॥

रक्तातीसार में खून गिरता है, इस प्रकार दस्तों के सूक्ष्म (बारीक) भेदों को समझ कर यदि अतीसार रोग की चिकित्सा की जावे तो उस (चिकित्सा) का प्रभाव बहुत शीघ्र होता है[1], यद्यपि इस रोग की सामान्य (साधारण) चिकित्सायें भी बहुत सी हैं जो कि सब प्रकार के दस्तों में लाभ पहुँचाती हैं परन्तु तो भी इस बात का जान लेना अत्यावश्यक (बहुत जरूरी) है कि—जिस रोग में जो दोष प्रबल हो उसी दोष के अनुसार उस की चिकित्सा होनी चाहिये, क्योंकि—ऐसा न होने से रोग उलटा बढ़ जाता है वा रूपान्तर (दूसरे रूप) में पहुँच जाता है, जैसे देखो ! यदि वातातीसार की चिकित्सा पित्तातीसारपर की जावे अर्थात् पित्तातीसार में यदि गर्म ओषधि दे दी जावे तो दस्त न रुक कर उलटा बढ़ जाता है और रक्तातीसार हो जाता है, इसी प्रकार दूसरे दोषों के विषय में भी समझना चाहिये।

अजीर्ण से उत्पन्न अतीसार में—दस्त का रँग झाँखा और सफेद होता है परन्तु जब वह अजीर्ण कठिन (सख्त) होता है तब उस से उत्पन्न अतीसार में हैजे के समान सब चिह्न मालूम होते हैं।

चिकित्सा—इस रोग की चिकित्सा करने से पहिले दस्त (मल) की परीक्षा करनी चाहिये[2], दस्त की परीक्षा के दो भेद हैं—आमातीसार अर्थात् कच्चा दस्त और पक्कातीसार अर्थात् पक्का दस्त, इस के जानने का सहज उपाय यह है कि—यदि जल में डालने से मल डूब जावे तो उसे आम का मल अर्थात् अपक्व (कच्चा) समझना चाहिये और जल में डालने से यदि वह (मल) पानी के ऊपर तिरने (उतराने) लगे तो उसे पक्व (पक्का हुआ) मल समझना चाहिये[3], यदि मल आम का (कच्चा) हो अर्थात् आम से मिला हुआ हो तो उस के एकदम बन्द करने की ओषधि नहीं देनी चाहिये, क्योंकि आम के दस्त को एकदम बन्द कर देने से कई प्रकार के विकारों की उत्पत्ति होती है, जैसे—अफरा, संग्रहणी, मस्सा, भगन्दर, शोथ, पाण्डु, तिल्ली, गोला, प्रमेह, पेट का रोग तथा ज्वर आदि, परन्तु हां इस के साथ यह बात भी अवश्य याद रखनी चाहिये कि—यदि

1—क्योंकि भेदों को समझ कर तथा दोष का विचार कर चिकित्सा करने से दोष की निवृत्ति के द्वारा उक्त रोग की शीघ्र ही निवृत्ति हो जाती है ॥

2—पहिले कह चुके हैं कि—दोष के अनुसार मल के रंग आदि में भेद होता है, इस लिये मल की परीक्षा के द्वारा दोष का निश्चय कर पश्चात् चिकित्सा करनी चाहिये क्योंकि ऐसा करने से दोष की निवृत्तिद्वारा रोग की निवृत्ति शीघ्र ही हो जाती है और ऐसा न करने से उलटी हानि होती है ॥

3—इस के सिवाय आम और पक्क की यह भी परीक्षा है कि—कच्चे दस्त में मिला हुआ आम मल चिकनिया होता है तथा उस में दुर्गन्धि विशेष आती है परन्तु पक्क मल चिकनिया नहीं होता है तथा उस में दुर्गन्धि कम आती है ॥

रोगी बालक, बुड्ढा, अथवा अशक्त (नाताकत) हो तथा अधिक दस्तों को न सह सकता हो तो आम के दस्तो को भी एकदम रोक देना चाहिये[1] ।

१–इस रोग की सब से अच्छी चिकित्सा लंघन है परन्तु पित्तातीसार तथा रक्तातीसार में लंघन नहीं कराना चाहिये, इन के सिवाय शेष अतीसारों में उचित लघन कराने से रोगी को प्यास बहुत लगती है, उस को मिटाने के लिये धनियां तथा बाला को उकाल कर वह पानी ठढा कर पिलाना चाहिये, अथवा धनियां, सोंठ, मोथा और पित्तपापड़े का तथा बाला का जल पिलाना चाहिये ।

२–यदि अजीर्ण तथा आम का दस्त होता हो तो लंघन कराने के पीछे रोगी को प्रवाही[2] तथा हलका भोजन देना चाहिये तथा आम को पचानेवाला, दीपन (अग्नि को प्रदीप्त करनेवाला), पाचन (मल और अन्न को पचानेवाला) और स्तम्भन (मल को रोकनेवाला) औषध देना चाहिये ।

अब पृथक् २ दोषों के अनुसार पृथक् २ चिकित्सा को लिखते हैं:—

१–वातातीसार—इस में भुनी हुई भाग का चूर्ण शहद के साथ लेना चाहिये ।

अथवा चावल भर अफीम तथा केशर को शहद में लेना चाहिये तथा पथ्य में दही चावल खाना चाहिये ।

२–पित्तातीसार—इस में बेल की गिरी, इन्द्रजौ, मोथा, बाला और अतिविप, इन औषधों की उकाली लेनी चाहिये, क्योंकि यह उकाली पित्त तथा आम के दस्त को शीघ्र ही मिटाती है ।

अथवा–अतीस, कुड़ाछाल तथा इन्द्रजौ, इन का चूर्ण चावलों के धोवन में शहद डाल कर लेना चाहिये ।

३–कफातीसार—इस में लङ्घन करना चाहिये तथा पाचनक्रिया करनी चाहिये ।

अथवा–हरड़, दारुहलदी, बच, मोथा, सोंठ और अतीस, इन औषधों का काढा पीना चाहिये।

१–वातपित्त की प्रकृतिवाला जो रोगी हो, जिस का बल और धातु क्षीण हो गये हों, जो अत्यन्त दोषों से युक्त हो और जिस को वे परिमाण दस्त हो चुके हों, ऐसे रोगी के भी आम के दस्तों को रोक देना चाहिये, ऐसे रोगियों को पाचन औषध के देने से मृत्यु हो जाती है, क्योंकि पाचन औषध के देने से और भी दस्त होने लगते हैं और रोगी उन का सहन नहीं कर सकता है, इस लिये पूर्व की अपेक्षा और भी अशक्ति (निर्बलता) बढ कर मृत्यु हो जाती है ॥

२–प्रवाही अर्थात् पतले पदार्थ, जैसे–यवागू और यूष आदि । (**प्रश्न**) वैद्यक ग्रन्थों मे यह लिखा है कि–शूलरोगी दो दल के अन्नों को (मूग आदि को), क्षयरोगी स्त्रीसग को, अतीसाररोगी पतले पदार्थों और खटाई को तथा ज्वररोगी उक्त सब को त्याग देवे, इस कथन से अतीसाररोगी को पतले पदार्थ तो वर्जित हैं, फिर आपने प्रवाही पदार्थ देने को क्यों कहा ? (**उत्तर**) पतले पदार्थों का जो अतीसार रोग मे निषेध किया है वहा दूध और घृत आदि का निषेध समझना चाहिये किन्तु यूष और पेया आदि पतले पदार्थों का निषेध नहीं है ॥

अथवा—हिङ्गाष्टक चूर्ण में हरड़ तथा सज्जीखार मिला कर उस की फकी लेनी चाहिये।

४—आमातीसार—इस में भी यथाशक्य लंघन करना चाहिये।

अथवा—एरंडी का तेल पीकर कच्चे आम को निकाल डालना चाहिये।

अथवा—गर्म पानी में घी डालकर पीना चाहिये।

अथवा—सोंठ, सोंफ, खसखस और मिश्री, इन का चूर्ण खाना चाहिये।

अथवा—सोंठ के चूर्ण को पुटपाक की तरह पका कर तथा उस में मिश्री डाल कर खाना चाहिये।

५—रक्तातीसार—इस में पित्तातीसार की चिकित्सा करनी चाहिये।

अथवा—चावलों के धोवन में सफेद चन्दन को घिस कर तथा उस में शहद और मिश्री को डाल कर पीना चाहिये।

अथवा—आम की गुठली को छाछ में अथवा चावलों के धोवन में पीस कर खाना चाहिये।

अथवा—कच्चे बेल की गिरी को गुड़ में लेना चाहिये।

अथवा—जामुन, आम तथा इमली के कच्चे पत्तों को पीस कर तथा इन का रस निकाल कर उस में शहद घी और दूध को मिला कर पीना चाहिये।

सामान्यचिकित्सा[1]—१—आम की गुठली का मगज[2] (गिरी) तथा बेल की गिरी, इन के चूर्ण को अथवा इन के क्वाथ[3] को शहद तथा मिश्री डाल कर लेना चाहिये।

२—अफीम तथा केशर की आधी चिरमी[4] के समान गोली को शहद के साथ लेना चाहिये।

३—जायफल, अफीम तथा खारक (छुहारे) को नागरबेल के पान के रस में घोट कर तथा बाल के परिमाण की गोली बनाकर उस गोली को छाछ के साथ लेना चाहिये।

४—जीरा, भांग, बेल की गिरी तथा अफीम को दही में घोट कर बाल के परिमाण की गोली बना कर एक गोली लेनी चाहिये।

विशेषवक्तव्य—जब किसी को दस्त होने लगते हैं तब बहुत से लोग यह समझते हैं कि—नाभि के बीच की गांठ (धरन वा पेचोंटी) खिसक गई है इस लिये दस्त होते हैं, ऐसा समझ कर वे मूर्ख स्त्रियों से पेट को मसलते (मलवाते) हैं, सो उन का यह समझना बिलकुल ठीक नहीं है और पेट के मसलाने से बड़ी भारी हानि पहुँचती है,

---

१—सामान्य चिकित्सा अर्थात् जो सब प्रकार के अतीसारों मे फायदा करती है॥

२—परन्तु आम की गुठली के मगज (गिरी) के ऊपर जो एक प्रकार का मोटा छिलकासा होता है उसे निकाल डालना चाहिये अर्थात् उसे उपयोग में नहीं लाना चाहिये॥

३—क्वाथ में अनुमान आध पावभर का इच्छानुसार रखना चाहिये॥

४—चिरमी अर्थात् गुञ्जा जिसे भाषा में घुंघची कहते हैं॥

देखो ! शारीरिक विद्या के जाननेवाले डाक्टरों का कथन है कि–धरन अथवा पेचोंटी नाम का कोई भी अवयव शरीर में नहीं है और न नाभि के बीच में इस नाम की कोई गाठ है और विचार कर देखने से डाक्टरों का उक्त कथन बिलकुल सत्य प्रतीत होता है[1], क्योंकि किसी ग्रन्थ में भी धरन का स्वरूप वा लक्षण आदि नहीं देखा जाता है, हा केवल इतनी बात अवश्य है कि–रगों में वायु अस्तव्यस्त होती है[2] और वह वायु किसी २ के मसलने से शान्त पड जाती है, क्योंकि वायु का धर्म है कि मसलने से तथा सेक करने से शान्त हो जाती है, परन्तु पेट के मसलने से यह हानि होती है कि–पेट की रगें नाताकत (कमजोर) हो जाती हैं, जिस से परिणाम मे बहुत हानि पहुँचती है, इस लिये धरन के झूठे ख्याल को छोड़ देना चाहिये क्योंकि शरीर में धरन कोई अवयव नहीं है ।

अतीसार रोग में आवश्यक सूचना—दस्तों के रोग में खान पान की बहुत ही सावधानी रखनी चाहिये तथा कभी २ एकाध दिन निराहार लघन कर लेना चाहिये[4], यदि रोग अधिक दिन का हो जावे तो दाह को न करनेवाली थोड़ी २ खुराक लेनी चाहिये, जैसे–चावल और साबूदाना की कुटी हुई घाट तथा दही चावल इत्यादि ।

पथ्य—इस रोग में–वमन (उलटी) का लेना, लघन करना, नींद लेना, पुराने चावल, मसूर, तूर (अरहर), शहद, तिल, बकरी तथा गाय का दूध, दही, छाछ, गाय का घी, बेल का ताज़ा फल, जामुन, कबीठ, अनार, सब तुरे पदार्थ तथा हलका भोजन इत्यादि पथ्य हैं[5] ।

कुपथ्य—इस रोग में–स्नान, मर्दन, करड़ा तथा चिकना अन्न, कसरत, सेक, नया अन्न, गर्म वस्तु, स्त्रीसंग, चिन्ता, जागरण करना, बीड़ी का पीना, गेहूँ, उड़द, कच्चे आम,

---

१–क्योंकि प्रथम तो उन लोगों का इस विषय मे प्रत्यक्ष अनुभव है और प्रत्यक्ष अनुभव सब ही को मान्य होता है और होना ही चाहिये और दूसरे–जब वैद्यक आदि अन्य ग्रन्थ भी इस विषय मे यही साक्षी देते हैं तो भला इस मे सन्देह होने का ही क्या काम है ॥

२–अस्तव्यस्त होती है अर्थात् कभी इकट्ठी होती है और कभी फैलती है ॥

३–पेट के मसलने से प्रथम तो रगें नाताकत हो जाती हे जिस से परिणाम मे बहुत हानि पहुँचती है, दूसरे–यदि वायु की शान्ति के लिये मसला भी जावे तो आदत बिगड जाती है अर्थात् फिर ऐसा अभ्यास पड जाता है कि पेट के मसलाये विना भूख प्यास आदि कुछ भी नहीं लगती है, इस लिये पेट को विशेष आवश्यकता के सिवाय कभी नहीं मसलाना चाहिये ॥

४–क्योंकि कभी २ एकाध दिन निराहार लघन कर लेने से दोषों का पाचन तथा अग्नि का कुछ दीपन हो जाता है ॥

५–जब अतीसार रोग चला जाता है तब मल के निकले विना मूत्र का साफ उतरना अधोवायु (अपानवायु) की ठीक प्रवृत्ति का होना, अग्नि का प्रदीप्त होना, कोष्ठ (कोठे) का हलका मालूम पड़ना शुद्ध डकार का आना, अन्न और जल का अच्छा लगना, हृदय मे उत्साह होना तथा इन्द्रियों का स्वस्थ होना, इत्यादि लक्षण होते हैं ॥

पूरनपोली, फोला, ईख, मद्य, गुड़, खराब जल, कस्तूरी, पत्तों के सब शाक, ककड़ी तथा खट्टे पदार्थ, ये सब कुपथ्य हैं अर्थात् ये सब पदार्थ इस रोग में हानि करते हैं।

यह भी स्मरण रखना चाहिये कि—इस रोग में चाहे ओषधि कुछ देरी से ली जावे तो कोई हानि नहीं है परन्तु पथ्य खान पान करने में बिलकुल ही गलती (भूल) नहीं करनी चाहिये[1] ॥

मरोड़ा, आमातीसार, संग्रहणी (डिसेण्टरी) का वर्णन ॥

मरोड़ा, आमातीसार और संग्रहणी, ये तीनों नाम लगभग एक ही रोग के हैं, क्योंकि—इन सब रोगों में प्रायः समान ही लक्षण पाये जाते हैं, वैद्यक शास्त्र में जिस को आमातीसार नाम से कहा गया है उसी को लोग मरोड़ा कहते हैं, अतीसार और आमातीसार जब पुराने हो जाते हैं तब उन्हीं को संग्रहणी कहते हैं, इस लिये यहां पर तीनों को साथ में ही दिखलाते हैं, क्योंकि—अवस्था (स्थिति वा हालत) के भेद से यह नाम[2] एक ही रोग है[2] ।

यह रोग प्रायः सब ही वर्ग के लोगों को होता है, जिस प्रकार एक विशेष प्रकार की विषैली हवा से विशेष जाति के रोग फूट कर निकलते हैं उसी प्रकार मरोड़े रोग का भी कारण एक विशेष प्रकार की विषैली हवा और विशेष ऋतु होती है, क्योंकि—मरोड़े का रोग सामान्यतया (साधारण रीति से) तो किसी २ के ही और कभी २ ही होता है परन्तु किसी २ समय यह रोग बहुत फैलता है[3] तथा वसन्त और वर्षा ऋतु में प्रायः इस का जोर अधिक होता है[4] ।

कारण—मरोड़ा होने के मुख्यतया दो कारण हैं—उन में से एक कारण इस रोग की हवा है अर्थात् एक प्रकार की ठंढी हवा इस रोग को उत्पन्न करती है और उस हवा का असर प्रायः एक स्थान के रहने वाले सब लोगों पर यद्यपि एक समान ही होता

१—यह बात केवल इसी रोग में नहीं किन्तु सब ही रोगों में ध्यान रखनेयोग्य है, क्योंकि—पहिले ही लिख चुके हैं कि—पथ्य न रखने से ओषधि से भी कुछ लाभ नहीं होता है तथा पथ्य रखने से ओषधि के लेने की भी विशेष आवश्यकता नहीं रहती है, परन्तु हां इतनी बात अवश्य है कि कई रोगों में कुपथ्य बहुत विलम्ब से तथा थोड़ी ही हानि करता है, परन्तु अतीसार आदि रोगों में कुपथ्य शीघ्र ही तथा बड़ी भारी हानि करता है, इस लिये इन (अतीसार आदि रोगों) में ओषधि की अपेक्षा पथ्यपर अधिक ध्यान देना चाहिये ॥

२—तात्पर्य यह है कि स्थिति (हालत) के भेद से अतीसार रोग के ही ये तीनों नाम पृथक् २ रक्खे गये हैं अत एव हम ने यहांपर इन तीनों को साथ में ही लिखा है, अब जो इन में स्थिति का भेद है उस का वर्णन यथायोग्य आगे किया ही जावेगा ॥

३—इस के फैलने के समय मनुष्यों की अधिकांश संख्या इस रोग से पीड़ित हो जाती है ॥

४—क्योंकि वसन्त और वर्षा ऋतु में क्रम से कफ और वायु का कोप होने से प्रायः अग्नि मन्द रहती है ॥

है तथापि अशक्त (नाताकत) मनुष्य और पाचनक्रिया के व्यतिक्रम (गड़बड़) से युक्त मनुष्यपर उस हवा का असर शीघ्र ही होता है[1]।

इस रोग का दूसरा कारण खुराक है अर्थात् कच्चा और भारी अन्न, मिर्चें, गर्म मसाले और शाक तरकारी आदि के खाने से वादी तथा मरोड़ा उत्पन्न होता है[2]।

इस रोग की उत्पत्ति का क्रम यह है कि—जब दस्त की कब्जी रहती है तथा उस के कारण मल आँतों में भर जाता है तथा वह मल आँतों के भीतरी पड़त को घिसता है तब मरोड़ा उत्पन्न होता है।

इस के सिवाय—गर्म खुराक के खाने से तथा ग्रीष्म ऋतु (गर्मी की मौसम) में सख्त जुलाव के लेने से भी कभी २ यह रोग उत्पन्न हो जाता है।

लक्षण—मरोडे का प्रारभ प्रायः दो प्रकार से होता है अर्थात् या तो सख्त मरोडा होकर पहिले अतीसार के समान दस्त होता है अथवा पेट में कब्जी होकर सख्त दस्त होता है अर्थात् टुकडे २ होकर दस्त आता है, प्रारम्भ में होनेवाले इस लक्षण के सिवाय—बाकी सब लक्षण दोनों प्रकार के मरोडे में प्राय समान ही होते है।

इस रोग में दस्त की शका वारवार होती है[3] तथा पेट में ऐंठन होकर क्षण २ में थोड़ा २ दस्त होता है, दस्त की हाजत वारंवार होती है, कॉख २ के[4] दस्त आता है (उतरता है), शौचस्थान में ही बैठे रहने के लिये मन चाहता है[5] तथा खून और पीप[6] गिरता है।

कभी २ किसी २ के इस रोग में थोडा वहुत बुखार भी हो जाता है, नाडी जल्दी चलती है और जीभपर सफेद थर (मैल) जम जाती है।

ज्यों २ यह रोग अधिक दिनो का (पुराना) होता जाता है त्यों २ इस में खून और पीप अधिक २ गिरता है तथा ऐंठन की पीडा वढ़ जाती है[7], वडी ऑत के पड़त में

१—अशक्त और पाचन क्रिया के व्यतिक्रम से युक्त मनुष्य की जठराग्नि प्राय पहिले से ही अल्पवल होती है तथा आमाशय में पहिले से ही विकार रहता है अत उक्त हवा का स्पर्श होते ही उस का असर शरीर में हो कर शीघ्र ही मरोडा रोग उत्पन्न हो जाता है ॥

२—तात्पर्य यह है कि उक्त खुराक के ठीक रीति से न पचने के कारण पेट मे आमरस हो जाता है वही आँतों में लिपट कर इस रोग को उत्पन्न करता है ॥

३—मल आतों में और गुदा की भीतरी वली मे फँसा रहता है और ऐसा मालूम होता है कि वह गिरना चाहता है इसी से वारंवार दस्त की आशङ्का होती है ॥

४—कॉख २ के अर्थात् विशेष वल करने पर ॥

५—वारवार यह प्रतीत होता है कि अव मल उतरना चाहता है इस लिये शौचस्थान से उठने को जी नहीं चाहता है ॥

६—पीप अर्थात् कच्चा रस (आम वा गिलगिला पदार्थ) ॥

७—क्योंकि ऑतों में फँसा हुआ मल ऑतों को रगडता है ॥

शोथ (सूजन) हो जाता है, जिस से वह पड़त लाल हो जाता है पीछे उस में कमे और गोल जखम हो जाते हैं तथा उस में से पहिले खून और पीछे पीप गिरता है, इस प्रकार का तीक्ष्ण (तेज वा सख्त) मरोड़ा जब तीन वा चार अठवाड़ेतक बना रहता है तब वह पुराना गिना जाता है, पुराना मरोड़ा वर्षोंतक चलता (ठहरता) है तथा जब इस का अच्छा और योग्य (मुनासिब) इलाज होता है तब ही वह जाता है, इसी पुराने मरोड़े को संग्रहणी कहते हैं[1] पूरे पथ्य और योग्य दवा के न मिलने से इस रोग से हजारों ही आदमी मर जाते हैं।

चिकित्सा—इस रोग की चिकित्सा करने से प्रथम यह देखना चाहिये कि–आँतों में सूजन है वा नहीं, इस की परीक्षा पेट के दबाने से हो सकती है अर्थात् जिस जगह पर दबाने से दर्द मालूम पड़े उस जगह सूजन का होना जानना चाहिये[2], यदि सूजन मालूम हो तो पहिले उस की चिकित्सा करनी चाहिये[3], सूजन के लिये यह चिकित्सा उत्तम है कि–जिस जगह पर दबाने से दर्द मालूम पड़े उस जगह राई का पलाष्टर (पलस्तर) लगाना चाहिये तथा यदि रोगी सह सके तो उस जगह पर जोंक लगाना चाहिये और पीछे गर्म पानी से सेंक करना चाहिये तथा अलसी की पोल्टिस लगानी चाहिये, ऐसी अवस्था में रोगी को स्नान नहीं करना चाहिये और न ठंढी हवा में बाहर निकलना चाहिये किन्तु बिछौनेपर ही सोते रहना चाहिये[4], आँतों में से मल से भरे हुए मैल को निकालने के लिये छः मासे छोटी हरड़ों का अथवा सोंठ की उकाली में अंडी के तेल का जुलाब देना चाहिये, क्योंकि मात्र प्रारंभावस्था में मरोड़ा इस प्रकार के जुलाब से ही मिट जाता है अर्थात् पेट में से मैल से युक्त मल निकल जाता है, दस्त साफ होने लगता है तथा पेट की ऐंठन और वारंवार दस्त की हाजत मिट जाती है।

यह भी स्मरण रहे कि–मरोड़े वाले को अंडी के तेल के सिवाय दूसरा भारी जुलाब कभी नहीं देना चाहिये, यदि कदाचित् किसी कारण से अंडी के तेल का जुलाब न देना

१–अर्थात् पुराना मरोड़ा हो जानेपर दूषित हुई जठराग्नि ग्रहणी नाम कलो कलाको भी दूषित कर देती है (अभिप्राय कथ्य को संग्रहणी वा ग्रहणी कहते हैं) ॥

२–क्योंकि सूजन के स्थान में ही दबाव पड़ने से दर्द हो सकता है अन्यथा (सूजन न होनेपर) दबाने से दर्द नहीं हो सकता है ॥

३–पहिले सूजन की चिकित्सा हो जाने से अर्थात् चिकित्साद्वारा सूजन के मिट्त हो जाने से आँतें नरम पड़ जाती हैं और आँतों के नरम पड़ जाने से मरोड़ा के लिये की हुई चिकित्सा से शीघ्र ही लाभ पहुँचता है ॥

४–क्योंकि पलस्तर आदि के लगाने के समय में स्नान करने से अथवा ठंढी हवा के लग जाने से विशेष रोग उत्पन्न हो जाते हैं तथा कभी २ सूजन में भी ऐसा विकार हो जाता है कि वह मिटती नहीं है तथा पक २ कर फूटने लगती है, इस लिये ऐसी दशा में स्नान आदि न करने का पूरा ध्यान रखना चाहिये ॥

हो तो अंडी के तेल में भूनी हुई छोटी हरड़ें दो रुपये भर, सोंठ ५ मासे, सोफ एक रुपये भर, सोनामुखी (सनाय) एक रुपये भर तथा मिश्री पाच रुपये भर, इन औषधों का जुलाब देना चाहिये, क्योंकि यह जुलाब भी लगभग अण्डी के तेल का ही काम देता है[1]।

मरोड़ावाले रोगी को दूध, चावल, पतली घाट, अथवा दाल के सादे पानी के सिवाय दूसरी खुराक नहीं लेनी चाहिये।

बस इस रोग में प्रारंभ में तो येही इलाज करना चाहिये, इस के पश्चात् यदि आवश्यकता हो तो नीचे लिखे हुए इलाजों में से किसी इलाज को करना चाहिये।

१–अफीम मरोड़े का रामबाण के समान इलाज है, परन्तु इसे युक्ति से लेना चाहिये अर्थात् हिंगाष्टक चूर्ण के साथ गेहूँ भर अफीम को मिला कर रात को सोते समय लेना चाहिये।

अथवा–अफीम के साथ आठ आनेभर सोये को कुछ सेककर (भूनकर) तथा पानी के साथ पीसकर पीना चाहिये।

यह भी सरण रखना चाहिये कि मरोडा तथा दस्त को रोकने के लिये यद्यपि अफीम उत्तम औषध है परन्तु अण्डी का तेल लेकर पेट में से मैल निकालेविना प्रथम ही अफीम का लेना ठीक नहीं है, क्योंकि पहिले ही अफीम ले लेने से वह विगडे हुए मल को भीतर ही रोक देती है अर्थात् दस्त को बन्द कर देती है।

२–ईशबगोल अथवा सफेदजीरा मरोडे में बहुत फायदा करता है, इस लिये आठ २ आने भर जीरे को अथवा ईशबगोल को[3] दिन में तीन वार दही के साथ लेना चाहिये, यह दवा दस्त की कब्जी किये विना ही मरोड़े को मिटा देती है[4]।

३–यदि एक बार अण्डी का तेल लेनेपर भी मरोडा न मिटे तो एक वा दो दिन ठहर कर फिर अण्डी का तेल लेना चाहिये तथा उसे या तो सोंठ की उकाली में या पिपरमेंट के पानी में अथवा अदरख के रस में लेना चाहिये अथवा लाडेनम अर्थात् अफीम के अर्क में लेना चाहिये, ऐसा करने से वह पेट की वायु को दूर कर दस्त को मार्ग देता है।

४–बेल का फल भी मरोडे के रोग में एक अकसीर इलाज है अर्थात् बेल की गिरी को गुड़ और दही में मिला कर लेने से मरोड़ा मिट जाता है।

१–अर्थात् यह जुलाव भी अण्डी के तेल के समान मल को सहज मे निकाल देता है तथा कोठे मे अपना तीक्ष्ण प्रभाव उत्पन्न नहीं करता है ॥

२–यही अर्थात् ऊपर कहा हुआ ॥

३–अर्थात् दोनों में से किसी एक पदार्थ को दिन मे दो तीन वार दही के साथ लेना चाहिये तथा एक समय मे आठ आने भर मात्रा लेनी चाहिये ॥

४–मरोडे की दूसरी दवाइया प्राय. ऐसी हैं कि वे मरोडे को तो मिटाती हैं लेकिन कुछ दस्त की कब्जी करती हैं लेकिन यह दवा ऐसी नहीं है ॥

ऊपर लिखे हुए इलाजों में से यदि किसी इलाज से भी फायदा न हो तो उस रोग को असाध्य समझ लेना चाहिये[1], पीछे उस असाध्य मरोड़े में दस्त-पतला (पानी के समान) आता है, शरीर में बुखार बना रहता है तथा नाड़ी शीघ्र चलती है।

इस के सिवाय यदि इस रोग में पेट का फूलना बराबर बना रहे तो समझ लेना चाहिये कि आँतों में अभी शोथ (सूजन) है तथा अन्दर जखम है, ऐसी हालत में अथवा इस से पूर्व ही इस रोग का किसी कुशल वैद्य से इलाज करवाना चाहिये।

संग्रहणी—पहिले कह चुके हैं कि—पुराने मरोड़े को संग्रहणी कहते हैं, उस (संग्रहणी) का निदान (मूल कारण) वैद्यक शास्त्रकारों ने इस प्रकार लिखा है कि कोठे में अग्नि के रहने का जो स्थान है वही अन्न को ग्रहण करता है इस लिये उस स्थान को ग्रहणी कहते हैं, अर्थात् ग्रहणी नामक एक आँत है जो कि कच्चे अन्न को ग्रहण कर धारण करती है तथा पके हुए अन्न को गुदा के मार्ग से निकाल देती है, इस ग्रहणी में जो अग्नि है वास्तव में वही ग्रहणी कहलाती है, जब अग्नि किसी प्रकार दूषित (खराब) होकर मन्द पड़ जाती है तब उस के रहने का स्थान ग्रहणी नामक आँत भी दूषित (खराब) हो जाती है।

वैद्यक शास्त्र में यद्यपि ग्रहणी और संग्रहणी, इन दोनों में थोड़ा सा भेद दिखलाया है अर्थात् वहां यह कहा गया है कि—जो आमवायु का संग्रह करती है उसे संग्रहणी कहते हैं, यह (संग्रहणी रोग) ग्रहणी की अपेक्षा अधिक भयदायक होता है परन्तु हम यहां पर दोनों की भिन्नता का परिगणन (विचार) न कर ऐसे इलाज लिखेंगे जो कि सामान्यतया दोनों के लिये उपयोगी हैं।

कारण—जिस कारण से तीक्ष्ण मरोड़ा होता है उसी कारण से संग्रहणी भी होती है, अथवा तीक्ष्ण मरोड़ा के शान्त होने (मिटने) के बाद मन्दाग्निवाले पुरुष के तथा कुपथ्य आहार और विहार करनेवाले पुरुष के पुराना मरोड़ा अर्थात् संग्रहणी रोग हो जाता है।

लक्षण—पहिले कह चुके हैं कि ग्रहणी आँत कच्चे अन्न को ग्रहण कर धारण करती है तथा पके हुए को गुदा के द्वारा बाहर निकालती है, परन्तु जब उस में किसी प्रकार

१—अर्थात् उसे चिकित्साद्वारा भी न जानेवाला जान लेना चाहिये ॥

२—चरक आदि ने कहा है कि "जठराग्नि के रहने का स्थान तथा भोजन किये हुए अन्न का ग्रहण करने से उस को ग्रहणी कहते हैं, यह कच्चे अन्न का ग्रहण तथा पक्व का अधःपातन करती है" ॥

३—यही छठी पित्तधरा नामक कला है तथा यह आमाशय और पक्वाशय के बीच में है ॥

४—इसी लिये तो कहा गया है कि अतीसार रोग में उत्तम वैद्य का इलाज करना चाहिये ॥

५—उस कारण का कथन पहिले किया जा चुका है ॥

६—इस में प्रत्येक रोग के कुपित करने के कारण को भी ध्यान देना चाहिये अर्थात् वात को कुपित करनेवाला कारण वातजन्य संग्रहणी का भी कारण है, इसी प्रकार अन्य दोषों में भी ध्यान देना चाहिये ॥

का दोष उत्पन्न हो जाता है तब ग्रहणी वा संग्रहणी रोग हो जाता है, उक्त रोग में ग्रहणी कच्चे अन्न का ग्रहण करती है तथा कच्चे ही अन्न को निकालती है अर्थात् पेट छूट कर कच्चा ही दस्त हो जाता है[1], इस रोग में दस्त की संख्या भी नहीं रहती है[2] और न दस्त का कुछ नियम ही रहता है, क्योंकि प्रायः ऐसा देखा जाता है कि–थोड़े दिनोंतक दस्त बन्द रह कर फिर होने लगते हैं, इस के सिवाय कभी २ एकाध दस्त होता है और कभी २ बहुत दस्त होने लगते हैं।

इस रोग में मरोड़े के समान पेट में ऐंठन, आमवायु, पेट का कटना, वारंवार दस्त का होना और बद होना, खाये हुए अन्न के पचजानेपर अथवा पचने के समय अफरे का होना तथा भोजन करने से उस अफरे की शान्ति का होना तथा बादी की गांठ की छाती के दर्द की और तिल्ली के रोग की शंका का होना, इत्यादि लक्षण प्रायः देखे जाते हैं।

अनेक समयों में इस रोग में पतला, सूखा, कच्चा, शब्दयुक्त (आवाज के साथ) तथा झागोंवाला दस्त होता है, शरीर सूखता जाता है अर्थात् शरीर का खून उडता जाता है, इसकी अन्तिम (आखिरी) अवस्था में शरीर में सूजन हो जाती है और आखिरकार इस रोग के द्वारा मनुष्य बोलता २ मर जाता है।

इस रोग के दस्त में प्रायः अनेक रंग का खून और पीप गिरा करता है[3]।

चिकित्सा—१–पुरानी संग्रहणी अतिकष्टसाध्य[4] हो जाती है अर्थात् साधारण चिकित्सा से वह कभी नहीं मिट सकती है[5], इस रोग में रोगी की जठराग्नि ऐसी खराब हो जाती है कि–उस की होजरी किसी प्रकार की भी खुराक को लेकर उसे नहीं पचा सकती है, अर्थात् उस की होजरी एक छोटे से बच्चे की होजरी से भी अति नाताकत हो जाती है, इस लिये इस रोग से युक्त मनुष्य को हलकी से हलकी[6] खुराक खानी चाहिये।

२–संग्रहणी रोग में छाछ सर्वोत्तम खुराक है, क्योंकि यह (छाछ) दवा और पथ्य दोनों का काम निकालती है, इस लिये दोषों का विचार कर भूनी हुई हींग, जीरा और सेंधा निमक डाल कर इसे पीना चाहिये, परन्तु वह छाछ थर (मलाई) निकाले हुए

१–अर्थात् इस रोग में अन्न का परिपाक नहीं होता है ॥

२–अर्थात् वेशुमार दस्त होते हैं ॥

३–इस रोग मे ये सामान्य से लक्षण लिखे गये हैं इन के सिवाय–दोषविशेष के अनुसार इस रोग में भिन्न २ लक्षण भी होते हैं, जिन को बुद्धिमान् जन देख कर दोषविशेष का ज्ञान कर सकते हैं अथवा दोषों के अनुसार इस रोग के पृथक् २ लक्षण दूसरे वैद्यक ग्रन्थों में वर्णित हैं वहा देख कर इस विषय का निश्चय कर लेना चाहिये ॥

४–बडी ही कठिनता से निवृत्त होनेयोग्य ॥

५–इस लिये इस रोग की चिकित्सा किसी अतिकुशल वैद्य वा डाक्टर से करानी चाहिये ॥

६–हलकी से हलकी अर्थात् अत्यन्त हलकी ॥

दही में चौथा हिस्सा पानी डाल कर बिलोई हुई होनी चाहिये, अर्थात् दही में चौथाई हिस्से से अधिक पानी डाल कर नहीं बिलोना चाहिये[1], क्योंकि गाढ़ी छाछ इस रोग में उत्तम खुराक है, अर्थात् अधिक फायदा करती है, संग्रहणीवाले रोगी के लिये अकेली छाछ ही ऊपर लिखे अनुसार उत्तम खुराक है, क्योंकि यह पोषण कर जठराग्नि को प्रबल करती है।

इस रोग से युक्त मनुष्य को चाहिये कि–किसी पूर्ण विद्वान् वैद्य की सम्मति से सब कार्य करे, किन्तु मूर्ख वैद्य के फन्दे में न पड़े[2]।

छाछ के कुछ समयतक सेवन करने के पीछे भात आदि हलकी खुराक का लेना प्रारंभ करना चाहिये तथा हलकी खुराक के लेने के समय में भी छाछ के सेवन को नहीं छोड़ना चाहिये, क्योंकि मृत्यु के मुख में पड़े हुए तथा अस्थि (हाड़) मात्र शेष रहे हुए भी संग्रहणी के रोगी को विद्वानों की सम्मति से ली हुई छाछ अमृतरूप होकर जीवन-दान देती है, परन्तु यह स्मरण रहे कि–धीरज रखकर कई महीनोंतक अकेली छाछ ही को पीकर रोगी को रहना चाहिये, सत्य तो यह है कि–इस के सिवाय दूसरा साधन इस रोग के मिटाने के लिये किसी ग्रन्थ में नहीं देखा गया है।

इस रोग से युक्त पुरुष के लिये तक्रसेवन का गुणानुवाद जैनाचार्यरचित योगचिन्तामणि नामक वैद्यक ग्रन्थ में बहुत कुछ लिखा है[3] तथा इस के विषय में हमारा प्रत्यक्ष अनुभव भी है अर्थात् इस को हमने पथ्य और दवा के रूप में ठीक रीति से पाया है।

३–मूंग की दाल का पानी, धनियां, जीरा, सेंधा निमक और सोंठ डाल कर छाछ को पीना चाहिये।

४–ढाई मासे बेल की गिरी को छाछ में मिला कर पीना चाहिये तथा केवल छाछ की ही खुराक रखनी चाहिये।

५–दुग्धवटी—शुद्ध बच्छनाग चार वाल भर, अफीम चार वाल भर, लोहभस्म पांच रत्ती भर तथा अभ्रक एक मासे भर, इन सब को दूध में पीस कर दो दो रत्ती की गोलियां बनानी चाहियें तथा उन का प्रकृति के अनुसार सेवन करना चाहिये, यह संग्रहणी तथा सूजन की सर्वोत्तम ओषधि है, परन्तु स्मरण रहे कि–जब तक इस दुग्धवटी का सेवन किया जावे तब तक दूध के सिवाय दूसरी खुराक नहीं खानी चाहिये।

१–अथवा छाछ को अधिक पानी डाल कर पतली नहीं कर देनी चाहिये॥

२–क्योंकि पूर्ण विद्वान् वैद्य की सम्मति के अनुसार सब कार्य न करके मूर्ख वैद्य के फन्दे में फँस जाने से यह रोग अवश्य ही प्राणों का शत्रु हो जाता है अर्थात् प्राण ले कर ही छोड़ता है॥

३–तथा अन्य ग्रन्थों में भी इस के विषय में बहुत कुछ कहा गया है अर्थात् इस के विषय में यहां तक कहा गया है कि जैसे स्वर्गलोक में देवताओं के लिये सुखकारी अमृत है उसी प्रकार इस संसार में अमृत के समान सुखकारी छाछ है, इस में बड़ी भारी एक विशेषता यह है कि इस के सेवन से नष्ट हुए दोष फिर नहीं उत्पन्न (उभरते) हैं॥

विशेषसूचना—अतीसार रोग में लिखे अनुसार इस रोग में भी अधिक स्नान नहीं करना चाहिये, अधिक जल नहीं पीना चाहिये, स्निग्ध (चिकना) अधिक खान पान नहीं करना चाहिये, जागरण नहीं करना चाहिये, बहुत परिश्रम (महनत) नहीं करना चाहिये तथा स्वच्छ (साफ) हवा का सेवन करते रहना चाहिये, इस रोग के लिये सामुद्रिक पवन (दरियाव की हवा) अथवा यात्रासम्बन्धी हवा अधिक फायदेमन्द है[1] ॥

कृमि, चूरणिया, गिंडोला (वर्म्स) का वर्णन ॥

विवेचन—कृमियों के गिरने से शरीर में जो २ विकार उत्पन्न होते हैं यद्यपि वे अति भयंकर हैं परन्तु प्रायः मनुष्य इस रोग को साधारण समझते हैं, सो यह उन की बड़ी भूल है, देखो ! देशी वैद्यक शास्त्र में तथा डाक्टरी चिकित्सा में इस रोग का बहुत कुछ निर्णय किया है अर्थात् इस के विषय में वहां बहुत सी सूक्ष्म (बारीक) बातें बतलाई गई हैं, जिन का जान लेना मनुष्यमात्र को अत्यावश्यक (बहुत जरूरी) है, यद्यपि उन सब बातों का विस्तारपूर्वक वर्णन करना यहांपर हमें भी आवश्यक है परन्तु ग्रन्थ के बढ़ जाने के भय से उन को विस्तारपूर्वक न बतला कर संक्षेप से ही उन का वर्णन करते हैं ।

भेद—कृमि की मुख्यतया दो जाति हैं—बाहर की और भीतर की, उन में से बाहर की कृमि ये हैं—जुँए, लीख और चर्मजुँए, इत्यादि, और भीतर की कृमि ताँतू[2] आदि हैं ।

इन कृमियों में से कुछ तो कफ में, कुछ खून में और कुछ मल में उत्पन्न होती हैं ।

कारण—बाहर की कृमि शरीर तथा कपडे के मैलेपन अर्थात् गलीजपन से होती हैं[3] और भीतर की कृमि अजीर्ण में खानेवाले के, मीठे तथा खट्टे पदार्थों के खानेवाले के, पतले पदार्थों के खानेवाले के[4], आटा, गुड और मीठा मिले हुए पदार्थ के खानेवाले के, दिन में सोनेवाले के, परस्पर विरुद्ध अन्न पान के खानेवाले के, बहुत वनस्पति की खुराक के खानेवाले के तथा बहुत मेवा आदि के खानेवाले के प्रकट होती हैं ।

प्रायः ऐसा भी होता है कि—कृमियों के अण्डे खुराक के साथ में पेट में चले जाते हैं तथा आँतों में उन का पोषण होने से उन की वृद्धि होती रहती है[5] ।

१—ग्रहणी के आधीन जो रोग हैं उन की अजीर्ण के समान चिकित्सा करनी चाहिये, इस (ग्रहणी) रोग में लंघन करना, दीपनकर्त्ता औषधों का देना तथा अतीसार रोग में जो चिकित्सायें कही गई हैं उन का प्रयोग करना लाभदायक है, दोषों का आम के सहित होना वा आम से रहित होना जिस प्रकार अतीसार रोग में कह दिया गया है उसी प्रकार इस में भी जान लेना चाहिये, यदि दोष आम के सहित हों तो अतीसार रोग के समान ही आम का पाचन करना चाहिये, पेया आदि हलके अन्न को खाना चाहिये तथा पञ्चकोल आदि को उपयोग में लाना चाहिये ॥

२—ताँतू कृमि गोल, चपटी तथा २० से ३० फीटतक लम्बी होती हैं ॥

३—अर्थात् बाहरी कृमि बाहरी मल (पसीना आदि) से उत्पन्न होती हैं ॥

४—पतले पदार्थों के अर्थात् कढी, पना और श्रीखण्ड आदि पदार्थों के खानेवाले के ॥

५—अर्थात् यह भीतरी कृमियों का बाह्य कारण है ॥

लक्षण—बाहर के जुँए तथा लीखें यद्यपि प्रत्यक्ष ही दीखते हैं तथापि चमड़ीपर चकोरे, फोड़े, फुनसी, सुबली और गड़गूमड़ का होना उन की सत्ता (विद्यमानता) का प्रत्यक्ष चिह्न है[1] ।

अब पृथक् २ कारणों से उत्पन्न होनेवाली कृमियों के लक्षणों को लिखते हैं—

१–कफ से उत्पन्न हुए[2] कृमियों में कुछ तो चमड़े की मोटी डोरी के समान, कुछ अलसिये के समान, कुछ अन्न के अङ्कुर के समान, कुछ बारीक और लम्बी तथा कुछ छोटी २ होती हैं ।

इन के सिवाय कुछ सफेद और लाल झाँईवाली भी कृमि होती हैं, जिन की सात जातियां हैं[3]–इन के शरीर में होने से जीका मचलाना, मुँह में से लार का गिरना, अन्न का न पचना, अरुचि, मूर्छा, उलटी, बुखार, पेट में अफरा, खांसी, छींक और श्लेष्म[4], ये लक्षण होते हैं ।

२–खून से उत्पन्न होनेवाली कृमि छः प्रकार की होती हैं[5], और ये इस प्रकार सूक्ष्म होती हैं कि–सूक्ष्मदर्शक यन्त्र से ही उन को देख सकते हैं, इन कृमियों से कुष्ठ आदि अर्थात् चमड़ी के रोग उत्पन्न होते हैं ।

३–विष्ठा अर्थात् दस्त से उत्पन्न होनेवाली कृमि गोल, महीन, मोटी, सफेद, पीले, काले तथा अधिक काले रंग की भी होती हैं, ये कृमि पांच प्रकार की होती हैं[6]–जब कृमि होजरी के सम्मुख जाती हैं तब दस्त, गांठ, मल का अवरोध (रुकना), शरीर में दुबलता, चमड़ी का फीकापन, रोंगटे खड़े होना, मन्दाग्नि तथा बैठक में खुजली, इत्यादि चिह्न होते हैं ।

कृमि विशेषकर बच्चों के उत्पन्न होती हैं उस दशा में उन की भूख या तो बिलकुल ही जाती रहती है या सब दिन भूख ही भूख बनी रहती है ।

१–अर्थात् चर्मनिविष्ट (कुष्ठ) सुनबहरी और मस्सा इत्यादि से उन की विद्यमानता का ठीक निश्चय हो जाता है, क्योंकि कोठनिविष्ट आदि कृमियों से ही उत्पन्न होती हैं ॥

२–उड़द, गुड़ दूध दही और सिरका इन पदार्थों का सेवन करने से कफजन्य कृमि उत्पन्न होती हैं तथा ये कृमियां आमाशय में प्रकट होकर तथा बढ़कर सब देह में विचरती हैं ॥

३–वे सात जातियां ये हैं–अन्त्रादा (आंतों को खानेवाली) उदरावेष्टा (पेट में लिपटी रहनेवाली) हृदयादा (हृदय का खानेवाली) महागुदा चुरव (चिनूना) दर्भकुसुमा (डाभ अर्थात् कुश के फूल के समान) और सुगन्धा ॥

४–श्लेष्म अर्थात् पीनस रोग ॥

५–केशादा लोमविध्वंसा रोमद्वीप, उदुम्बर, सौरस और मातर ये छः जातियां रक्तज कृमियों की हैं ॥

६–विष्ठा से उत्पन्न हुई कृमियों की–ककेरुक मकेरुक सौसुरादा सशूल और लेलिहा ये पांच जातियां हैं ॥

इन के सिवाय—पानी की अधिक प्यास, नाक का घिसना, पेट में दर्द, मुख में दुर्गन्धि, वमन, बेचैनी, अनिद्रा (नींद का न आना), गुदा में काटे, दस्त का पतला आना, कभी दस्त में और कभी मुख के द्वारा कृमियो का गिरना, खुराक की अल्पता (कमी), बकना, नींद में दाँतों का पीसना, चौंक उठना, हिचकी और खैंचातान, इत्यादि लक्षण भी इस रोग में होते है ।

इस रोग में कभी २ ऐसा होता है कि—लक्षणों का ठीक परिज्ञान न होने से वैद्य वा डाक्टर भी इस रोग का निश्चय नहीं कर सकते है ।

जब यह रोग प्रबल हो जाता है तब हैज़ा, मिरगी और क्षिप्तचित्तता (दीवानापन) इत्यादि रोग भी इसी से उत्पन्न हो जाते हैं[1] ।

चिकित्सा—१—यदि कृमि गोल हो तो इन के दूर करने के लिये सेंटोनाईन[2] सादी और अच्छी चिकित्सा है, इस के देने की विधि यह है कि एक से पाच ग्रेन तक सेंटोनाईन को मिश्री के साथ में रात को देना चाहिये[3] तथा प्रातःकाल थोडा सा अंडी का तेल पिलाना चाहिये, ऐसा करने से दस्त के द्वारा कृमिया निकल जावेंगी, यदि पेट में अधिक कृमियो की शंका हो तो एक दो दिन के बाद फिर भी इसी प्रकार करना चाहिये, ऐसा करने से सब कृमिया निकल जावेंगी ।

ऊपर कही हुई चिकित्सा से बच्चे की दो तीन दिन में ५० से १०० तक कृमियां निकल जाती हैं ।

बहुत से लोग यह समझते है कि—जब कृमि की कोथली (थैली) निकल जाती है तब बच्चा मर जाता है, परन्तु यह उन का मिथ्या भ्रम है[4] ।

१—यदि सेंटोनाईन न मिल सके तो उस के बदले (एवज) में बाज़ार में जो लोझेन्लीस अर्थात् गोल चपटी टिकिया बिकती है[5] उन्हें देना चाहिये, क्योंकि उन में भी सेंटोनाईन के साथ बूरा वा दूसरा मीठा पदार्थ मिला रहता है, इन में एक सुभीता यह भी है कि बच्चे इन्हें मिठाई समझ कर शीघ्र ही खा भी लेते है ।

१—अर्थात् हैजा और मिरगी आदि इस रोग के उपद्रव हैं ॥

२—यह एक सफेद, साफ तथा कडुए स्वादवाली वस्तु होती है तथा अँग्रेजी औषधालयों मे प्राय. सर्वत्र मिलती है ॥

३—रात को देने से दवा का असर रातभर मे खूब हो जाता है अर्थात् कृमिया अपने स्थान को छोड देती ह तथा नि सत्व सी हो जाती है तथा प्रात काल अण्डी के तेल का जुलाब देने से सब कृमिया शौच के मार्ग से निकल जाती ह और अग्नि प्रदीप्त होती है ॥

४—क्योंकि कृमियों की कोथली के निकलने से और बच्चे के मरने से क्या सम्बन्ध है ॥

५—ये प्राय. सफेद रग की होती हैं तथा सौदागर लोगों के पास बिका करती ह ॥

२–टरपेंटाईन कृमि को गिराती है इस लिये इस की चार ड्राम मात्रा को चार ड्राम अंडी के तेल, चार ड्राम गोंद के पानी और एक औंस सोए के पानी को मिला कर पिलाना चाहिये ।

३–अनार की जड़ की छाल एक रुपये भर लेकर तथा उस का चूर्ण कर उस में से आधा प्रातःकाल तथा आधा शाम को बूरा के साथ मिला कर फंकी बनाकर लेना चाहिये ।

४–बायविडंग[1] दो भाग, निसोत के छाल का चूर्ण एक भाग और कपीला एक भाग, इन सब औषधों को एक औंस उफनते (उबलते) हुए जल में पाव घंटे (१५ मिनट) तक भिगा कर उस का निथरा हुआ पानी लेकर दो २ चमसे भर तीन २ घंटे के बाद दिन में दो तीन बार लेना चाहिये, इस से कृमि निकल जाती हैं, परन्तु स्मरण रहे कि बुखार में यह दवा नहीं लेनी चाहिये[2] ।

५–यदि पेट में चपटी कृमि हों तो पहिले जुलाब देना चाहिये, पीछे क्याझोमेल[3] देना चाहिये तथा फिर जुलाब देना चाहिये ।

६–मेलफर्न के तेल की ३० वा ४० बूंदें सोंठ के जल में देनी चाहियें और चार घंटे के पीछे अंडी का तेल अथवा जुलफे का जुलाब देना चाहिये[4] ।

७–यदि तांतू के समान कृमि हों तो क्याझोमेल तथा सेंटोनाईन के देने से वे निकल जाती हैं[5], परन्तु ये कृमियां वारंवार हो जाती हैं, इस लिये निमक के पानी की, कपासियों के पानी की[6], अथवा लोहे के अर्क में पानी मिला कर उस की पिचकारी गुदा में मारनी चाहिये, ऐसा करने से कृमि धुल कर निकल जाती हैं ।

८–आध सेर निमक को मीठे जल में गला कर तथा उसमें से तीन वा चार औंस लेकर उस की पिचकारी गुदा में मारनी चाहिये, इस से सब कृमियां निकल जाती हैं ।

९–पिचकारी के लिये इस के सिवाय-चूने का पानी भी मुफीद (फायदेमन्द) है, अथवा टिंक्चर आफ स्टील की पिचकारी मारनी चाहिये, यदि टिंक्चर आफ स्टील न मिले[7] तो इस के बदले (एवज्) में सिताम के पत्तों को बफा कर[8] अथवा उन्हें पीस कर पानी निकाल लेना चाहिय तथा इस पानी की पिचकारी मारनी चाहिये, यह भी

१–बिरङ्ग (भभरी) वायविडङ्ग ही कृमि रोग का बहुत अच्छा इलाज है, अर्थात् इस ही के सेवन से सब कृमियां मिट जाती हैं ॥

२–बुखार में इस दवा के देने से वमन आदि की संभावना रहती है ॥

३–यह एक अंग्रेजी ओषधि है ॥

४–मेलफर्न आयल अंग्रेजी ओषधि है यह अस्पतालों में सर्वत्र मिलती है ॥

५–इस से सब कृमियां निकल पड़ती हैं ॥

६–कपासियों अर्थात् बिनौलों के पानी की ॥

७–यह भी सब अस्पतालों में बहुत मिलता है ॥

८–बफा कर अर्थात् उबाल कर ॥

बहुत फायदा करती है, परन्तु पिचकारी सदा मारनी चाहिये, और तीन चार दिन के बाद जुलाब देते रहना चाहिये।

१०–पलासपापड़े[1] की बुरकी (चूर्ण) पाव तोला (चार आने भर) और बायविडग पाव तोला, इन दोनों को छाछ में पिला कर दूसरे दिन जुलाब देना चाहिये।

११–बायविडग के क्वाथ[2] में उसी (बायविडग) का चूर्ण डाल कर पिलाना चाहिये, अथवा उसे शहद में चटाना चाहिये।

१२–पलासपापड़े को जल में पीस कर तथा उस में शहद डाल कर पिलाना चाहिये।

१३–नीव के पत्तों का वफाया हुआ रस शहद मिला कर पिलाना चाहिये[3]।

१४–कृमियों के निकल जाने के पीछे बच्चे की तन्दुरुस्ती को सुधारने के लिये टिंकचर आफ स्टील की दश बूंदों को एक औंस जल में मिला कर कुछ दिनों तक पिलाते रहना चाहिये[4]।

विशेषसूचना—इस रोग में तिल का तेल, तीखे और कडुए पदार्थ, निमक, गोमूत्र (गाय की पेशाब), शहद, हींग, अजवायन, नींबू, लहसुन और कफनाशक (कफ को नष्ट करने वाले) तथा रक्तशोधक (खून को साफ करने वाले) पदार्थ पथ्य है, तथा दूध, मास, घी, दही, पत्तों का शाक, खट्टा तथा मीठा रस और आटे के पदार्थ, ये सब पदार्थ कुपथ्य अर्थात् कृमियों को बढ़ाने वाले है, यदि कृमिवाले बच्चे को रोटी देना हो तो आटे में निमक डाल कर तवे पर तेल से तल कर देनी चाहिये, क्योंकि यह [illegible]र के लिये लाभदायक (फायदेमन्द) है ॥

आधाशीशी[5] का वर्णन ॥

कारण—आधाशीशी का दर्द प्रायः भौओं में विशेष रहता है तथा यह (आधाशीशी का) दर्द मलेरिया की विषैली हवा से उत्पन्न होता है और ज्वर के समान नियत समय पर शिर में प्रारम्भ होता है[6], इस रोग में आधे दिनतक प्रायः शिर में दर्द अधिक रहता है[7], पीछे धीरे २ कम होता जाता है अर्थात् सायकाल को बिलकुल बंद

१–पलासपापडे की बुरकी अर्थात् ढाक के बीजों का चूर्ण ॥

२–बायविडग डालकर औंटाये हुए जल में बायविडग का ही बघार देकर तैयार कर लेना चाहिये, इस के पीने से कृमिरोग और कृमिरोगजन्य सब रोग दूर हो जाते हैं ॥

३–धतूरे के पत्तों का रस भी शहद डाल कर पीने से कृमिरोग नष्ट हो जाता है ॥

४–क्योंकि टिंक्चर आफ स्टील शक्तिप्रद (ताकत देनेवाली) ओषधि है ॥

५–ग्यारह प्रकार के मस्तक रोगों (मस्तक सम्बधी रोगों) मे से यह आधाशीशी नामक एक भेद है, इस को सस्कृत में अर्धावभेदक कहते हैं, इस रोग मे प्राय आधे शिर मे महाकठिन दर्द होता है ॥

६–नियत समय पर इस का प्रारंभ होता है तथा नियत समय पर ही इस की पीडा मिटती है ॥

७–अर्थात् ज्यों २ सूर्य चढता है त्यों २ यह दर्द बढता जाता है तथा ज्यों २ सूर्य ढलता है त्यों २ यह दर्द भी कम होता जाता है ॥

हो जाता है, परन्तु किसी २ के यह दर्द सब दिन रहता है तथा किसी २ समय अधिक हो जाता है ।

कभी २ यह आधाशीशी का रोग अजीर्ण से भी हो जाता है तथा वारंवार गर्भ के रहने से, ऋतुस्नान के विना तक बच्चे को दूध पिलाने से तथा प्रसूतसमय में अधिक खून के जाने से कमजोर (नाताकत) स्त्रियों के भी यह रोग हो जाता है ।

लक्षण—इस रोग में रोगी को अनेक कष्ट रहते हैं अर्थात् रोगी प्रातःकाल से ही शिर का दर्द लिये हुए उठता है, उस से कुछ भी खाया नहीं जाता है, शिर धड़कता है, बोलना चालना अच्छा नहीं लगता है, चेहरा फीका रहता है, आंख के किनारे संकुचित होते हैं, प्रकाश का सहन नहीं होता है, पुस्तक आदि देखा नहीं जाता है तथा शिर गर्म रहता है ।

चिकित्सा—१–यह रोग शीतल उपचारों से प्रायः शान्त हो जाता है, इस लिये यथाशक्य (जहां तक हो सके) शीतल उपचार ही करने चाहियें ।

२–पहिले कह चुके हैं कि–यह रोग मलेरिया की विषैली हवा से उत्पन्न होता है, इस लिये इस रोग में किनाइन का सेवन लाभदायक (फायदेमन्द) है[१], किनाइन की पांच ग्रेन की मात्रा तीन २ घंटे के बाद देनी चाहिये तथा यदि दस्त की कब्जी हो तो जुलाब देना चाहिये ।

३–होजरी, जीगर[२] तथा आँतों में कुछ विकार हो तो दस्त को साफ लाने वाली तथा पुष्टिकारक दवा देनी चाहिये[३] ।

४–वर्त्तमान समय में बाल्यविवाह (छोटी अवस्था में शादी) के कारण स्त्रियों के प्रायः प्रदर रोग हो जाता है[४] तथा उस से उन का शरीर निर्बल (नाताकत) हो जाता है और उसी निर्बलता के कारण प्रायः उन के यह आधाशीशी का रोग भी हो जाता है[५], इस लिये स्त्रियों के इस रोग की चिकित्सा करने से पूर्व यथाशक्य उन की निर्बलता को मिटाना चाहिये, क्योंकि निर्बलता के मिटने से यह रोग स्वयं ही शान्त हो जावेगा ।

५–पहिले कह चुके हैं कि–यह रोग शीतल उपचारों से शान्त होता है, इस लिये इस का शीतल ही इलाज करना चाहिये, क्योंकि शीतल इलाज इस रोग में शीघ्र ही फायदा करता है ।

१–क्योंकि किनाइन में मलेरिया की विषैली हवा के तथा उस से उत्पन्न हुए ज्वर आदि रोगों का दमन करने (दबा देने) की शक्ति है ॥

२–जीगर अर्थात् यकृत्, जिस को भाषा में कलेजा कहते हैं ॥

३–क्योंकि इस रोग में दस्त का साफ आते रहने से भारी फायदा होता है ॥

४–क्योंकि प्रदर रोग का मुख्य कारण छोटी अवस्था का पहुंचने से पूर्व ही पुरुषगमन करना है ॥

५–क्योंकि आधाशीशी का एक कारण निर्बलता भी है ॥

६–लवेंडर अथवा कोलन वाटर में दो भाग पानी मिला कर तथा उस में कपडे को भिगा कर शिर पर रखना चाहिये, गुलाबजल अथवा गुलाबजल के साथ चन्दन को घिस कर अथवा उस में सांभर के सींग को घिस कर लगाना चाहिये ।

७–अमोनिया अर्थात् नौसादर और चूने को सुँघाना[1] चाहिये तथा पैरों को गर्म जल में रखना[2] और शिर को दबाना चाहिये ।

८–भौंओ पर दो जोंकें लगानी चाहियें[3] ।

९–इस रोगी को नकछीकनी सूँघनी चाहिये तथा सूर्योदय (सूर्य निकलने) के पहिले तुलसी और धतूरे के पत्तो का रस सूँघना चाहिये ।

१०–घी में पीसे हुए सेंधे निमक को मिला कर उसे दिन मे पाच सात बार सूंघना चाहिये, इस से आधाशीशी का दर्द अवश्य जाता रहता है ।

११–इस रोग में ताजी जलेबी तथा ताजा खोवा (मावा) खाना चाहिये ।

१२–नींब पर की गिलोय का हिम पीने से भी इस रोग में बहुत फायदा होता है ।

उपदंश (गर्मी), चाँदी, टांकी, का वर्णन ॥

चाँदी का रोग बहुधा मनुष्य के वेश्यागमन (रंडीबाजी के करने) से होता है, तात्पर्य (मतलब) यह है कि–स्वाभाविक अर्थात् कुदरती नियम के अनुसार न चल कर उस का भग करने से बुरे कार्य की यह जन्म भर के लिये सजा मिल जाती है ।

जिस प्रकार यह रोग पुरुष के होता है उसी प्रकार स्त्री के भी होता है ।

चाँदी एक प्रकार का चेपी रोग है, अर्थात् चाँदी की रसी (पीप) का चेप यदि किसी के लग जावे वा लगाया जावे तो उस के भी चाँदी उत्पन्न हो जाती है ।

पहिले चाँदी और सुजाख, इन दोनो रोगों को एक ही समझा जाता था परन्तु अब यह बात नहीं मानी जाती है, अर्थात् बुद्धिमानों ने अब यह निश्चय किया है कि–चाँदी और सुज़ाख, ये दोनों अलग २ रोग है, क्योंकि सुज़ाख के चेप से सुजाख ही उत्पन्न होता है और चाँदी के चेप से चाँदी ही उत्पन्न होती है[5], इस लिये इन दोनों को

१–इस के सुँघाने से मगज में से विकृत (विकारयुक्त) जल नासिका के द्वारा निकल जाता है, अत यह रोग मिट जाता है ॥

२–पैरो को गर्म जल में रखने से पानी की गर्मी नाडी के द्वारा मगज में पहुँच कर वायु का शमन कर देती है, जिस से रोगी को फायदा पहुँचता है ॥

३–क्योंकि जोंकों के लगाने से वे (जोंके) भीतरी विकार को चूस लेती है, जिस से रोग मिट जाता है ॥

४–ऐसा करने से मगज में शक्ति के पहुचने से यह रोग मिट जाता है ॥

५–और चाँदी तथा सुजाख के स्वरूप में तथा लक्षणों में बहुत भेद है ॥

अलग २ ही मानना ठीक है, तात्पर्य यह है कि वास्तव में ये दो प्रकार के रोग अनाचार (बदचलनी) से होते हैं।

चाँदी दो प्रकार की होती है—मृदु और कठिन, इन में से मृदु चाँदी उसे कहते हैं कि जो इन्द्रिय के जिस भाग में होती है उसी जगह अपना असर करती है अर्थात् उस भाग के सिवाय शरीर के दूसरे भागपर उस का कुछ भी असर नहीं मालूम होता है[1], हां इस में यह बात तो अवश्य होती है कि—जिस जगहपर यह चाँदी हुई हो वहां से इस की रसी लेकर यदि उसी आदमी के शरीरपर दूसरी जगह लगाई जावे तो उस जगहपर भी वैसी ही चाँदी पड़ जाती है।

दूसरे प्रकार की कठिन (कड़ी वा सख्त) चाँदी वह होती है जिस का असर सब शरीर के ऊपर मालूम होता है[2], इस में यह बड़ी भारी विशेषता (खासियत) है कि इस (दूसरे प्रकार की) चाँदी का चेप लेकर यदि उसी आदमी के शरीरपर दूसरी जगह लगाया जावे तो उस जगहपर उस का कुछ भी असर नहीं होता है[3], इस कठिन चाँदी को तीक्ष्ण गर्मी अर्थात् उपदंश का भयंकर रोग समझना चाहिये, क्योंकि इस के होने से मनुष्य के शरीर को बड़ी हानि पहुँचती है, परन्तु नरम चाँदी में विशेष हानि की सम्भावना नहीं रहती है, इस के सिवाय नरम चाँदी के साथ यदि बदगाँठ होती है तो वह प्रायः पकती है और फूटती है परन्तु कठिन–चाँदी के साथ जो बदगाँठ होती है वह पकती नहीं है, किन्तु बहुत दिनोंतक कड़ी और सूजी हुई रहती है, इस प्रकार से ये दो तरह की चाँदी भिन्न २ होती हैं और इन का परिणाम (फल) भी भिन्न २ होता है, इस लिये यह बहुत आवश्यक (जरूरी) बात है कि—इन दोनों को अच्छे प्रकार पहिचान कर इन की योग्य (उचित) चिकित्सा करनी चाहिये[4]।

नरम टांकी (सॉफ्ट शांकर)—यह रोग प्रायः स्त्री के साथ सम्भोग करते समय इन्द्रिय के भाग के छिल जाने से तथा पूर्वोक्त (पहिले कहे हुए) रोग के चेप के लगने से होता है, यह चाँदी प्रायः दूसरे ही दिन अपना दिखाव देती है (दीख पड़ती है) अथवा पांच सात दिन के भीतर इस का उद्भव (उत्पत्ति) होता है।

यह (टांकी) फूल (सुपारी अर्थात् इन्द्रिय के अग्रिम भाग) के ऊपर पिछले गड्ढे में

१–अर्थात् यह शरीर के अन्य भागों में नहीं फूटती है ॥

२–अर्थात् इस चाँदी के असर से सब शरीरपर कुछ न कुछ विकार (फुंसी फफोले चकत्ते और चाँदी आदि) अवश्य होता है ॥

३–अर्थात् इस की रसी लगाने से दूसरे स्थानपर चाँदी नहीं पड़ती है ॥

४–क्योंकि यह कौन से प्रकार की चाँदी है इस बात का निश्चय किये बिना चिकित्सा करने से न केवल चिकित्सा ही व्यर्थ जाती है प्रत्युत (किन्तु) उलटी हानि हो जाती है ॥

५–सॉफ्ट अर्थात् मुलायम वा नरम ॥

चमड़ीपर होती है, इस रोग में यह भी होता है कि आसपास चेप के लगने से एक में से दो चार चॉंदिया पड़ जाती है, चॉंदी गोल आकार (शकल) की तथा कुछ गहरी होती है, उस के नीचे का तथा किनारे का भाग नरम होता है, उस की सपाटी के ऊपर सफेद मरा हुआ (निर्जीव) मास होता है तथा उस में से पुष्कल (बहुतसी) रसी निकलती है ।

कभी २ ऐसा भी होता है कि—चमडी फूल के ऊपर चढ़ी रहती है[1] और फूलपर सूजन के हो जाने से चमडी नीचे को नहीं उतर सकती है परन्तु कई वार चमड़ी के नीचे को उतर जाने के पीछे चॉंदी की रसी भीतर रह जाती है इस लिये भीतर का भाग तथा चमड़ी सूज जाती है और चमड़ी सुपारी के ऊपर नहीं चढती है, ऐसे समय में भीतर की चॉंदी का जो कुछ हाल होता है उस को नजर से नहीं देख सकते हैं ।

कभी २ सुपारी के भीतर मूत्रमार्ग में (पेशाव के रास्ते में) चॉंदी पड जाती है तथा कभी २ यह चॉंदी जब ज़ोर में होती है[2], उस समय आसपास की जगह खजती जाती है[3] तथा वह फैलती जाती है, उस को प्रसरयुक्त[4] टाकी (फाजेडीना) कहते है, इस चॉंदी के साथ वदगाठ भी होती है तथा वह पककर फूटती है, जिस जगह वद होती है उस जगह गड्ढा पड़ जाता है और वह जल्दी अच्छा भी नहीं होता है[5], कभी २ इस चॉंदी का इतना जोर होता है कि इन्द्रिय का वहुत सा भाग एका एक (अचानक) सड़ कर गिर जाता है, इस प्रकार कभी २ तो सम्पूर्ण इन्द्रिय का ही नाश हो जाता है, उस के साथ रोगी को ज्वर भी आ जाता है तथा वहुत दिनोंतक उसे अतिकष्ट उठाना पड़ता है, इस को सडनेवाली चॉंदी (स्लफीग) कहते है, ऐसी प्रसरयुक्त और सड़नेवाली टाकी प्रायः निर्वल (कमजोर) और दुःखप्रद (दुःख देनीवाली) स्थिति (हालत) के मनुष्य के होती है ।

कभी २ ऐसा भी होता है कि—नरम अथवा सादी चॉंदी मूल से तो नरम[6] होती है परन्तु पीछे कहीं २ किन्हीं २ दूसरे क्षोभक (क्षोभ अर्थात् जोश दिलानेवाले) कारणो से[7] कठिन हो जाती है तथा कहीं २ नरम और कठिन दोनो प्रकार की चॉंदी साथ में ही एक ही स्थान में होती है, किन्ही पुरुषों के इन्द्रिय के ऊपर सादी फुंसी और चॉंदी होती

१—अर्थात् फुल का भाग खुला रह जाता है ॥

२—अर्थात् तीक्ष्ण वा वेगयुक्त होती है ॥

३—खजती जाती है अर्थात् निकम्मी पडती जाती है ॥

४—प्रसरयुक्त अर्थात् फैलनेवाली ॥

५—अर्थात् वह गड्ढा वहुत कठिनता से वहुत समय में तथा अनेक यत्नों के करनेपर मिटता है ॥

६—नरम अर्थात् मन्द वेगवाली ॥

७—क्षोभक कारणों से अर्थात् उस में वेग वा तीक्ष्णता को उत्पन्न करनेवाले कारणों से ॥

है, उस का निश्चय करने में अर्थात् यह फुंसी वा चांदी गर्मी की है या नहीं, इस बात के निर्णय करने में बहुत कठिनता (दिक्कत वा मुश्किल) होती है ।

चिकित्सा—१–प्रथम जब ताज़ी चाँदी हो उस समय उस को नाइट्रिक एसिड से जला देना चाहिये, अर्थात् एसिड की दो बूँदें उस के ऊपर डाल देनी चाहियें, अथवा रुई को एसिड में भिगा कर लगा देना चाहिये, परन्तु एसिड के लगाते समय इस बात का अवश्य खयाल रखना चाहिये कि–एसिड चाँदी के सिवाय दूसरी जगह न लगने पावे, यदि नाइट्रिक एसिड के लगाने से जलन मालूम पड़े तो उसपर पानी की धारा देनी (डालनी) चाहिये, ऐसा करने से विशेष एसिड (आवश्यकता से अधिक एसिड का भाग) जल जावेगा और जलन बंद हो जावेगी ।

२–यदि समयपर नाइट्रिक एसिड न मिले तो उस के बदले (एवज) में सिल्वर तथा पोटास कास्टिक लगाना चाहिये ।

३–इस रीति से जिस जगह चांदी हुई हो उस जगह को जला कर उस के ऊपर एक दिन पोल्टिस लगानी चाहिये कि जिस से जला हुआ भाग अलग होकर नीचे लाल जमीन दीखने लगे ।

४–यदि किसी जगह सफेद भाग हो और वह अच्छा न होता हो तो पहिले थोड़ा सा मोरथोथा लगाना चाहिये, पीछे उस के अंकुरों के आने के लिये इस नीचे लिखे हुए पानी में कपड़े को भिगा कर लगाना चाहिये–झिंकसलफास दश ग्रेन, टिंकचर लवांडर कम्पाउंड दो ड्राम तथा पानी चार औंस, इन सब को मिला लेना चाहिये, यदि इस से आराम न हो तो ब्लाकवाश में कपड़े की पींट (पट्टी वा धीरी) को भिगा कर लपेटना चाहिये ।

५–इस प्रकार की चाँदियों को अच्छा करने के लिये आयडोफार्म अति उत्तम दवा है, उस को चाँदीपर बुरका कर ऊपर से पट्टी को लपेट कर बांध देना चाहिये ।

६–यदि चाँदी सुपारी के छिद्र में अथवा मणी के बीच में हो तो उस के बीच में हमेशा कपड़ा रखना चाहिये, क्योंकि ऐसा न करने से उस में से निकलती हुई रसी के दूसरी जगह लग जाने से विशेष टांकी के पड़ जाने की सम्भावना रहती है ।

१–नाइट्रिक एसिड एक प्रकार का तेजाब होता है ॥

२–क्योंकि चाँदी के सिवाय दूसरी जगहपर एसिड के गिरने से वह जगह भी जल जावेगी ॥

३–अर्थात् पोल्टिस के द्वारा वह जली हुई चमड़ी पोल्टिस के साथ ही उतर जावेगी तथा उस के उतरने से नीचे लाल जमीन दीखने लगेगी ॥

४–ऐसा करने से अन्दर से घाव भर जाता है तथा निर्जीव चमड़ी अलग हो जाती है ॥

५–कि जिस से चांदी के स्थान का रस दूसरे स्थान से न छूने पावे ॥

७–यदि फूल चमडी से ढका हुआ हो और भीतर की चाँदी न दीखती हो तो बोए-सीक लोशन के पानी की चमडी और फूल के बीच में पिचकारी लगानी चाहिये।

८–यदि प्रसरयुक्त चाँदी हो तो उसपर भी कास्टिक लगा कर पीछे उसपर पोल्टिस बांधनी चाहिये कि जिस से उस के ऊपर का मृत (मरा हुआ अर्थात् निर्जीव) मांस अलग हो जावे।

९–इन ऊपर कही हुई दवाइयो में से चाहे किसी दवा का प्रयोग किया जावे परन्तु उस के साथ में रोगी को शक्तिप्रद (ताकत देनेवाली) दवा अवश्य देते रहना चाहिये कि जिस से उस की शक्ति क्षीण (नष्ट) न होने पावे, शक्ति बनी रहने के लिये टार्ट्रेट आफ आयर्न बहुत अच्छी दवा है, इस लिये पाच से दश ग्रेनतक इस दवा को पानी के साथ दिनभर में तीन बार देते रहना चाहिये।

१०–यदि चमडी का भाग सड जावे तो प्रथम उसपर पोल्टिस बॉध कर सडे हुए भाग को अलग कर देना चाहिये तथा उस के अलग हो जाने के पीछे ऊपर लिखी हुई दवाइयों में से किसी एक दवा को लगाना चाहिये।

११–यदि इन दवाइयो में से किसी दवा से फायदा न हो तो रेड प्रेसीपीटेट का मल्हम, कार्बोलिक तेल, अथवा बोएसिक मल्हम लगाना चाहिये।

बद—टाकी के होने से एकतरफ अथवा दोनोंतरफ जाँघ के मूल में जो मोटी गांठ हो जाती है उस को बद कहते हैं, नरम टाकी के साथ जो बद होती है वह बहुधा पकेविना नहीं रहती है अर्थात् वह अवश्य पकती है तथा उस का दर्द भी बहुत होता है परन्तु कभी २ ऐसा भी होता है कि एक ही गाठ न होकर कई गाठें होकर पक जाती हैं तथा जाघ के मूल में गड्ढा पड जाता है जिस से रोगी बहुत दिनोंतक चल फिर नहीं सकता है।

यह भी स्मरण रहे कि–इन्द्रिय के ऊपर जिस तरफ चाँदी होती है उसी तरफ बद भी होती है और बीच में अथवा दोनों तरफ यदि चाँदी होती है तो दोनो तरफ बद उठती है और वह पक जाती है तथा उस के साथ ज्वर आदि चिह्न भी मालूम होते हैं।

पहिले कह चुके हैं कि कठिन चाँदी के साथ जो बद होती है वह प्रायः पकती नहीं है, इसी कारण उस में दर्द भी अधिक नहीं होता है।

१–क्योंकि कास्टिक के लगाने से चाँदी का स्थान जल जावेगा, पीछे उसपर पोल्टिस बाँधने से वह जला हुआ भाग अर्थात् निर्जीव मास अलग हो जावेगा और नीचे से साफ जगह निकल आवेगी ॥

२–क्योंकि शक्ति के नष्ट हो जाने से इस रोग का वेग बढता है ॥

३–क्योंकि पोल्टिस को लगाकर सडे हुए मास के अलग किये विना दवा का उपयोग करने से उस (दवा) का असर भीतरतक नहीं पहुँच सकता है किन्तु उस सडे हुए मांस के बीच में आ जाने से दवा का असर अन्दर पहुँचने से रुक जाता है ॥

चाँदी के साथ में जो वद होती है उस के होने का कारण यही है कि वह उस चाँदी (चाँदी) का ही विष है और टाँकी के होने का मुख्य कारण प्रत्येक व्यक्ति का विशिष्ट विष है, यह विष शोषण नलियों के मार्ग से वंक्षण (अंड कोश) के भीतरी पिण्ड में पहुँचता है, उस विष के पहुँचने से उस भाग का शोथ हो जाता है और यही शोथ गाँठ के रूप में हो जाता है।

कठिन चाँदी का विष रुधिर के मार्ग से सब शरीर में फैल जाता है परन्तु मृदु (नरम) चाँदी का विष केवल उक्त पिण्ड तक ही पहुँचता है अर्थात् सब शरीर में नहीं फैलता है।

चिकित्सा—१—वद के आरंभ में रोगी का चलने फिरने का निषेध करना चाहिये, अर्थात् उसे अधिक चलने फिरने नहीं देना चाहिये, गर्म पानी का सेक करना चाहिये तथा उस पर बेलाडोना, आयोडीन टिंक्चर, अथवा लीनीमेंट लगाना चाहिये तथा आर क्षमता के अनुसार जोंकें लगानी चाहियें।

२—नीम के पत्तों को पकाकर बाँधना चाहिये, अथवा सिन्दूर तथा रेवतचीनी का चीरा बाँधना चाहिये।

३—चूने और गुड़ का पानी में पीस कर (पीसकर) उस का लेप करना चाहिये।

४—जब वद पककर पके तब उसपर वारवार अलसी की पुल्टिस बाँधनी चाहिये, पीछे उस को शस्त्र से फोड़ देना चाहिये, अथवा उस के शिखर (ऊपरी भाग) का कास्टिक पोटास लगा कर फोड़ देना चाहिये तथा फूटने के बाद उस के ऊपर मल्हम पट्टी लगानी चाहिये।

५—कभी २ ऐसा भी होता है कि—उस का मोटा तथा गहरा क्षत पड़ जाता है और उस पर चमड़ी की मोटी कोर लटक जाती है परन्तु उस में वद नहीं होता है, जब कभी ऐसा हो तो उस चमड़ी की मोटी कोर का निकाल डालना चाहिये तथा उस पर ग्यारा तैल और आयोडोफार्म बुरकाना चाहिये तथा रेड मेरी ऑक्साइड का मल्हम लगाना चाहिये अथवा रसकपूर का पानी लगाना चाहिये।

६—कठिन चाँदी के साथ मूढ़ वद होती है अर्थात् वह न तो पकती है और न वह अधिक दर्द करती है, यह वद इन ऊपर कहे हुए उपचारों (उपायों) से अच्छी नहीं हो

१—प्रत्येक व्यक्ति का विशिष्ट विष अर्थात् उसी १ चाँदीवाले हर एक पुरुष का भी का विशेष प्रकार का विष अर्थात् चाँदी रोग को उत्पन्न करनेवाला एक खास प्रकार का जहरीला असर ॥

२—क्योंकि चलने फिरने से वद भी गाँठ बढ़ कर पकती है और बढ़ कर फूटकर अर्थात् मवाद का वाहर कर फिर उस का अच्छा होना दुस्तर हो जाता है ॥

३—अलसी की पुल्टिस के बाँधने से वद अच्छी तरह से पक जाती है और फूट जाने के बाद अन्दर आदि से फोड़ देवे। उस का भीतरी सब मवाद (रसी) निकल जाता है तथा वद कम पड़ जाता है ॥

सकती है किन्तु वह तो उपदंश (गर्मी) के शारीरिक (शरीरसम्बन्धी) उपायों के साथ दूर हो सकती है ॥

कठिन तथा मृदु चाँदी के भेदों का वर्णन ॥

संख्या॥	मृदु चाँदी के भेद ॥	संख्या॥	कठिन चाँदी के भेद ॥
१	मलीन मैथुन करने के पीछे एक दो दिन में अथवा एक सप्ताह (हफ्ते) में दीखती है।	१	मलीन मैथुन करने के पीछे एक से लेकर तीन अठवाड़ों में दीख पड़ती है।
२	प्रारभ में छोल अथवा चीरा होकर पीछे क्षत का रूप धारण करता है।	२	प्रारम्भ में फुनसी होकर फिर वह फूट कर क्षत (घाव) पड जाता है।
३	दबाकर देखने से तलभाग में नरम लगती है।	३	क्षत प्रारभ से ही तलभाग में कठिन होता है।
४	क्षत की कोर तथा सपाटी वैठी हुई होती है, उसपर मृत मास का थर होता है और उस में से तीव्र और गाढ़ा पीप निकलता है।	४	क्षत छोटा होता है, कोर वाहर को निकलती हुई होती है तथा सपाटी लाल होती है और उस में से पतली रसी निकलती है।
५	वहुधा एक में वहुत से क्षत होते हैं।	५	वहुधा एक ही क्षत होता है।
६	क्षत का चेप उसी मनुष्य के शरीर-पर दूसरी जिस २ जगह लग जाता है वहा २ वैसा ही मृदु क्षत[1] पड जाता है।	६	क्षत का चेप उसी मनुष्य के शरीर-पर दूसरी जिस २ जगह लग जाता है वहा २ दूसरा कठिन क्षत[3] नहीं होता है।
७	एक अथवा दोनों वक्षणों[2] में वद होती है तथा वह प्रायः पकती है।	७	एक तरफ अथवा दोनो तरफ वद होती है उस में दर्द कम होता है और वह प्रायः पकती नहीं है।
८	इस क्षत में विशेष पीड़ा और शोथ होता है तथा प्रसर (फैलाव) करनेवाले और सड़नेवाले क्षत का उद्भव (उत्पत्ति) होता है और उस के सूखने में विलम्ब लगता है।	८	इस क्षत में पीडा तथा शोथ नहीं होता है तथा इस में प्रसर (फैलाव) करनेवाला और सडनेवाला क्षत कचित् (कहीं २) ही पैदा होता है और वह जल्दी ही सूख जाता है।

१–मृदु क्षत अर्थात् नरम चाँदी ॥
२–वक्षणों अर्थात् अण्डकोशों में अथवा उन के अति समीपवर्त्ती भागों में ॥
३–कठिन क्षत अर्थात् तीक्ष्ण चाँदी ॥

९ इस क्षत का असर स्थानिक है अर्थात् उसी जगहपर इस का असर होता है किन्तु क्षत के स्थान के सिवाय शरीर पर दूसरी जगह असर नहीं होता है॥	९ इस क्षत के होने के पीछे थोड़े समय में इस का दूसरा चिह्न शरीर के ऊपर मालूम होने लगता है ॥

इस रीति से दोनों प्रकार की चाँदियों के भिन्न २ चिह्न ऊपर के कोष्ठ से मालूम हो सकते हैं और इन चिह्नों से बहुधा इन दोनों का निश्चय होना सुगम है[1] परन्तु कभी २ जब क्षत की दुर्दशा होने के पीछे ये चिह्न देखने में आते हैं तब उन का निर्णय होना कठिन पड़ जाता है[2] ।

कभी २ किसी दशा में शिश्न[3] के ऊपर कठिन और नरम दोनों प्रकार की चाँदियां साथ में ही होती हैं और कभी २ ऐसा होता है कि द्वितीय चिह्न के समय के आने से पूर्व चाँदी के भेद का निश्चय नहीं हो सकता है[4] ॥

कठिन टांकी (हार्ड शांकर)—कठिन[5] टांकी के होने के पीछे शरीर के दूसर मार्गोंपर गर्मी का असर मालूम होने लगता है[6], जिस प्रकार नरम टांकी स्त्रीसंसर्ग के होने के पीछे शीघ्र ही एक वा दो दिन में दीखने लगती है उस प्रकार यह कठिन टांकी नहीं दीखती है किन्तु इस में तो यह क्रम होता है कि बहुधा इस में चार पांच दिन में अथवा एक अठवाड़े से लेकर तीन अठवाड़ों के भीतर एक बारीक[7] फुसी होती है और वह फूट जाती है तथा उस की चाँदी पड़ जाती है, इस चांदी में से प्रायः गाढ़ा पीप नहीं निकलता है किन्तु पानी के समान थोड़ी सी रसी आती है, इस टांकी का मुख्य गुण यह है कि—इस को दबा कर देखने से इस का तलभाग कठिन मालूम होता है[8], कठिन इस तलभाग के द्वारा ही यह निश्चय, कर लिया जाता है कि गर्मी के विषने शरीर में प्रवेश कर लिया है[9], यह टांकी बहुधा एक ही होती है तथा इस के साथ में एक अथवा

१—अर्थात् ऊपर लिखे हुए पृथक् २ चिह्नों से दोनों प्रकार की चाँदी सहज में ही पहिचान ली जाती है ॥

२—क्योंकि क्षत के बिगड़ जाने के बाद मिश्रितवत् हो जाने के कारण चिह्नों का ठीक पता नहीं लगता है ॥

३—शिश्न अर्थात् पुरुषेन्द्रिय (लिङ्ग) ॥

४—अर्थात् यह नहीं मालूम होता है कि यह कौन से प्रकार की चाँदी है ॥

५—हार्ड अर्थात् कठिन वा सख्त ॥

६—अर्थात् शरीर के अन्य मार्गोंपर भी गर्मी का कुछ न कुछ विकार उत्पन्न हो जाता है ॥

७—बारीक अर्थात् बहुत छोटीसी ॥

८—अर्थात् चाँदी के नीचे का भाग सख्त प्रतीत होता है ॥

९—क्योंकि उस तलभाग के कठिन होने से यह निश्चय हो जाता है कि इसका उभाड़ (वेगपूर्वक बढ़ना) कठिनता के साथ उत्तेजक है

दोनों वक्षणों में वद हो जाती है अर्थात् एक अथवा दो मोटी गांठें हो जाती हैं परन्तु उस में दर्द थोड़ा होता है और वह पकती नहीं है, परन्तु यदि वद होने के पीछे वहुत चला फिरा जावे अथवा पैरों से किसी दूसरे प्रकार का परिश्रम करना पडे तो कदाचित् यह गांठ भी पक जाती है[1] ।

चिकित्सा—१–इस चॉदी के ऊपर आयोडोफार्म, क्यालोमेल, रसकपूर का पानी-अथवा लाल मल्हम चुपड़ना चाहिये, ऐसा करने से टाकी शीघ्र ही मिट जावेगी, यद्यपि इस टाकी के मिटाने में विशेष परिश्रम नहीं करना पड़ता है[2] परन्तु इस टाकी से जो शरीरपर गर्मी हो जाती है तथा खून में विगाड़ हो जाता है उस का यथोचित (ठीक २) उपाय करने की वहुत ही आवश्यकता पडती है अर्थात् उस के लिये विशेष परिश्रम करना पड़ता है[3] ।

२–रसकपूर, मुरदासींग, कत्था, शखजीरा और माजूफल, इन प्रत्येक का एक एक तोला, त्रिफले की राख दो तोले तथा धोया हुआ घृत[4] दश तोले, इन सब दवाइयों को मिला कर चाँदी तथा उपदश के दूसरे किसी क्षत पर लगाने से वह मिट जाता है ।

३–त्रिफले की राख को घृत में मिला कर तथा उस में थोडा सा मोरथोथा पीस कर मिला कर चाँदी पर लगाना चाहिये ।

४–ऊपर कहे हुए दोनों नुसखों में से चाहे जिस को काम में लाना चाहिये परन्तु यह स्मरण रहे कि—पहिले त्रिफले के तथा नींव के पत्तों के जल से चॉदी को धो कर फिर उस पर दवा को लगाना चाहिये, क्योंकि ऐसा करने से जल्दी आराम होता है ॥

गर्मी द्वितीयोपदंश (सीफीलीस) का वर्णन ॥

कठिन चॉदी के दीखने के पीछे वहुत समय के वाद शरीर के कई भागों पर जिस का असर मालूम होता है उस को गर्मी कहते है ।

यद्यपि यह रोग मुख्यतया (खासकर) व्यभिचार से ही होता है परन्तु कभी २ यह किसी दूसरे कारण से भी हो जाता है, जैसे—इसका चेप लग जाने से भी यह रोग हो जाता है, क्योंकि प्रायः देखागया है कि—गर्मीवाले रोगी के शरीरपर किसी भाग के काटने आदि का काम करते हुए किसी २ डाक्टर के भी जखम होगया है और उस के

१–तात्पर्य यह है कि वह गाँठ विना कारण नहीं पकती है ॥

२–क्योंकि यह मृदु होती है ॥

३–उस रक्तविकार आदि की चिकित्सा किसी कुशल वैद्य वा डाक्टर से करानी चाहिये ॥

४–घृत के धोने का नियम प्राय सौ वार का है, हा फिर यह भी है कि जितनी ही वार अधिक धोया जावे उतना ही वह लाभदायक होता है ॥

चेप के प्रविष्ट (दाखिल) हो जाने से उस जखम के स्थान में टाँकी पड़गई है और पीछे से उस के शरीर में भी गर्मी फूट निकली है, यह तो बहुत से लोगों ने देखा ही होगा कि–शीतला का टीका लगाते समय उस की गर्मी का चेप एक बालक से दूसरे बालक के लग जाता है, इस से सिद्ध है कि–यदि गर्मीवाला लड़का नीरोग धाय का भी दूध पीवे तो उस धाय के भी गर्मी का रोग हो जाता है तथा गर्मीवाली धाय हो और लड़का नीरोग भी हो तो भी उस धाय का दूध पीने से उस लड़के के भी गर्मी का रोग हो जाता है, तात्पर्य यह है कि–इस रीति से इस गर्मी देवी की प्रसादी एक दूसरे के द्वारा बँटती है[1]।

गर्मी का रोग प्रायः वारसा में आता है[2], इस तरह–व्यभिचार, रोगी के रुधिर के रस का चेप और वारसा से यह रोग होता है[3]।

यद्यपि यह बात तो निर्विवाद[4] है कि कठिन चाँदी के होने के पीछे शरीर की गर्मी प्रकट होती है परन्तु कई एक डाक्टरों के देखने में यह भी आया है कि टाँकी के नरम हो जाने तक अर्थात् टाँकी के होने के पीछे उस के मिटने तक उस के आस पास और तलभाग में कुछ भी कठिनता न मालूम देने पर भी उस नरम टाँकी के होने के पीछे कभी २ शरीर पर गर्मी प्रकट होने लगती है।

कठिन चाँदी की यह तासीर है कि जब से यह टाँकी उत्पन्न होती है उसी समय से उस का तल भाग तथा कोर (किनारे का भाग) कठिन होती है, इस के समान दूसरा कोई भी घाव नहीं होता है अर्थात् सब ही घाव प्रथम से ही नरम होते हैं, हां यह दूसरी बात है कि–दूसरे घावों को छेड़ने से वे कदाचित् कुछ कठिन हो जावें परन्तु मूल से ही (प्रारंभ से ही) वे कठिन नहीं होते हैं॥

इस दो प्रकार की (मृदु और कठिन) चाँदी के सिवाय एक प्रकार की चाँदी और भी होती है जिस में उक्त दोनों प्रकार की चाँदियों का गुण मिश्रित (मिला हुआ) होता है[5], अर्थात् यह तीसरे प्रकार की चाँदी व्यभिचार के पीछे शीघ्र ही दिखलाई देती है और उस में से रसी निकलती है तथा थोड़े दिनों के बाद यह कठिन हो जाती है और आखिरकार शरीर पर गर्मी दिखलाई देने लगती है॥

कई बार तो इस मिश्रित (मृदु और कठिन[6]) टाँकी के चिह्न स्पष्ट (साफ) होते हैं

१–तात्पर्य यह है कि यह रोग सङ्क्रामक है, इस लिये संसर्ग मात्र से ही एक से दूसरे में जाता है॥

२–अर्थात् यह रोग गर्भ में भी पहुँच कर बालक की उत्पत्ति के साथ ही उत्पन्न हो जाता है॥

३–तात्पर्य यह है कि उक्त व्यभिचार आदि तीन कारण इस रोग की उत्पत्ति के हैं॥

४–निर्विवाद अर्थात् प्रत्यक्षादि प्रमाणों के द्वारा अनुभव से सिद्ध॥

५–अर्थात् इस तीसरे प्रकार की चाँदी में दोनों प्रकार की चाँदी के चिह्न मिले हुए होते हैं॥

६–मृदु और कठिन अर्थात् नरमसख्त॥

और उन के द्वारा यह बात सहज में ही मालूम हो सकती है कि उसका आखिरी परिणाम कैसा होगा[1], ऐसी दशा में परीक्षा करनेवाले वैद्यजन रोगी को अपना स्पष्ट विचार प्रकट कर सकते है[2], परन्तु कभी २ इस के परिवर्त्तन (फेरफार) को समझना अच्छे २ परीक्षकों (परीक्षा करने वालों) को भी कठिन हो जाता है, ऐसी दशा में पीछे से गर्मी के निकलने वा न निकलने के विषय में भी ठीक २ निर्णय नहीं हो सकता है, तात्पर्य यह है कि इस मिश्रित टाकी का ठीक २ निर्णय कर लेना बहुत ही बुद्धिमत्ता (अक्लमन्दी) तथा पूरे अनुभव का कार्य है, क्योंकि देखो ! यदि गर्मी निकलेगी इस बात का निश्चय पहिले ही से ठीक २ हो जावे तो उस का उपाय जितनी जल्दी हो उतना ही रोगी को विशेप लाभकारी (फायदेमन्द) हो सकता है ।

कठिन टाकी के होने के पीछे चार से लेकर छःसप्ताह (हफ्ते) के पीछे अथवा आठ सप्ताह के पीछे शरीर पर द्वितीय उपदश का असर मालूम होने लगता है, गर्मी के प्रारभ से लेकर अन्त तक जो २ लक्षण मालूम होते है उन के प्रायः तीन विभाग किये गये हैं[3]— इन तीनों विभागों में से पहिले विभाग में केवल आरभ में जो टाकी उत्पन्न होती है तथा उस के साथ जो वद होती है इस का समावेश होता है[4], इस को प्राथमिक उपदंश[5], कठिन चाँदी अथवा क्षत कहते है ।

दूसरे विभाग में टाकी के होने के पीछे जो दो तीन मास के अन्दर शरीर की त्वचा (चमड़ी) और मुख आदि में छाले हो जाते हैं, आँख, सन्धिस्थान (जोड़ों की जगह) तथा हाडों में दर्द होने लगता है और वह (दर्द) दो चार अथवा कई वर्ष तक बना रहता है, इस सर्व विषय का समावेश होता है[6] इस को सार्वदैहिक (सब शरीर में होने-वाला) अथवा द्वितीयोपदंश[7] कहते है ।

तीसरे विभाग में उन चिह्नों का समावेश होता है कि जो चिह्न सर्व गर्मी के रोग वालों के प्रकट नहीं होते है किन्तु किन्हीं २ के ही प्रकट होते है तथा उन का असर प्रायः छाती और पेट के भीतरी अवयवों पर ही होता है, बहुत से लोग इस तीसरे विभाग के चिह्नों को दूसरे ही विभाग में गिन लेते हैं अर्थात् वे लोग दो ही विभागों में उपदश रोग का समावेश करते है[8] ।

१–क्योंकि इस के स्पष्ट चिह्नों के द्वारा उस पहिले कही हुई दोनों प्रकार की (मृदु और कठिन) चाँदी के परिणाम के अनुभव से इस का भी परिणाम जान लिया जाता है ॥

२–अर्थात् वैद्यजन रोगी को भी इस रोग का भावी परिणाम बतला सकते हैं ॥

३–तीन विभाग किये गये हैं अर्थात् तीन दर्जे बाँधे गये है ॥

४–अर्थात् टाँकी की उत्पत्ति और वद का होना प्रथम दर्जा है ॥

५–प्राथमिक उपदश अर्थात् पूर्वस्वरूप से युक्त उपदश ॥

६–अर्थात् उत्पत्ति से लेकर तीन मास तक की सर्व व्यवस्था दूसरा दर्जा है ॥

७–द्वितीयोपदश अर्थात् दूसरे स्वरूप से युक्त उपदश ॥

८–अर्थात् वे उपदश के दो ही दर्जे मानते हैं ॥

जब द्वितीयोपदंश के चिह्नों का प्रारंभ होता है उस समय बहुधा टांकी तो यद्यपि मुर्झाई हुई होती है तथापि उस स्थान में कुछ भाग कठिन अवश्य होता है, यह भी सम्भव है कि–रोगी पूर्व के चिह्नों को भूल जाता होगा परन्तु बहुत शीघ्र (थोड़े ही समय में) अंग में थोड़ा बहुत ज्वर आजाता है, गला आ गया हो[1] ऐसा प्रतीत (मालूम) होने लगता है तथा उस में थोड़ा बहुत दर्द भी मालूम होता है, यदि मुख को खोल कर देखा जावे तो गले का द्वार, पड़त, जीभ तथा गले का पिछला भाग कुछ सूजा हुआ तथा लाल रंग का मालूम होता है, तात्पर्य यह है कि–बहुधा इसी क्रम से दूसरे विभाग के चिह्नों का प्रारंभ होता है[2], परन्तु कभी २ ऐसा भी होता है कि ज्वर थोड़ा सा आता है तथा गला भी थोड़ा ही आता है, उस दशा में रोगी उस पर कुछ ध्यान भी नहीं देता है[3] परन्तु इस के पश्चात् अर्थात् कुछ आगे बढ़ कर उपदंश का विभिन्न (विचित्र) प्रकार का दर्द उत्पन्न हो जाता है और जिस का कोई भी ठीक क्रम नहीं होता है[4] अर्थात् किसी के पहिले आँख का दर्द उत्पन्न होता है, किसी की सन्धियां जकड़ जाती हैं, किसी के हाड़ों में दर्द उत्पन्न हो जाता है तथा किसी को पहिले त्वचा की गर्मी मालूम होती है इत्यादि, इस के सिवाय इस विभाग[5] के चिह्न बहुधा दोनों तरफ़[6] समान ही देखे जाते हैं, जैसे कि–दोनों हथेलियों में चट्टे हो जाती हैं, अथवा दोनों तरफ़ के हाड़ तथा सन्धियां एक साथ ऊपर को उठ आती हैं।

यह गर्मी का रोग शरीर के किसी विशेष भाग का रोग नहीं है किन्तु यह रोग रक्त (खून) के विकार (बिगाड़) से उत्पन्न होता है, इस लिये शरीर के हरएक भाग में इस का असर होता है, फिर देखो! जिस को यह रोग हो चुकता है वह आदमी बहुधा निर्बल फीका और तेजहीन हो जाता है[7] इस का कारण भी ऊपर कहा हुआ ही जानना चाहिये।

इस रोग में जैसी टांकी प्रथम होती है उसी के परिमाण के अनुसार शरीर की गर्मी प्रकट होती है, इस लिये जिस रोगी के पहिले ही टांकी मोटी, बहुत कठिन तथा प्रसर

१–गला आ गया हो अर्थात् गले में छाले पड़ गये हों ॥

२–अर्थात् दूसरे दर्जे के चिह्नों का उद्भव उपरोक्त क्रम पूर्वक होता है ॥

३–अर्थात् रोगी को इस बात का ध्यान नहीं होता है कि आगे बढ़ कर दूसरे दर्जे के चिह्न मेरे शरीर पर पूर्णतया आक्रमण करेंगे ॥

४–अर्थात् उपरोक्त क्रम जो ऊपर लिखा है वह ठीक रीति से नहीं होता है अर्थात् उस में व्यतिक्रम हो जाता है ॥

५–इस विभाग के अर्थात् दूसरे दर्जे के ॥

६–दोनों तरफ़ अर्थात् शरीर के दाहिने और बायें तरफ़ ॥

७–अर्थात् खून में बिगाड़ हो जाने से इस रोग के मिट जानेपर भी मनुष्य में बल तेज और कान्ति आदि गुण उत्पन्न नहीं होते हैं ॥

युक्त (फैलती हुई) मालूम होती है उस रोगी के पीछे से गर्मी के चिह्न भी वेग के साथ में उठते है। (**प्रश्न**) जिस आदमी के एक वार उपदंश का रोग हो जाता है वह रोग पीछे समूल (मूल के साथ) जाता है अथवा नही जाता है[1] ? (**उत्तर**) निस्सन्देह यह एक महत्व (दीर्घदर्शिता) का प्रश्न है, इस का उत्तर केवल यही है कि यदि मूल (मुख्य) टांकी साधारण वर्ग की हुई हों तथा उस का उपाय अच्छे प्रकार से और शीघ्र ही किया जावे तथा आदमी भी दृढ़ शरीर का हो तो इस रोग के समूल नष्ट हो जाने का सम्भव होता है, परन्तु बहुत से लोगों का तो यह रोग अन्तसमय तक भी पीछा नही छोडता है, इस का कारण केवल–रोग का कठिन होना, शीघ्र और योग्य उपाय का न होना तथा शरीर की दुर्वलता ही समझना चाहिये, यद्यपि औषध, उपाय तथा परहेज़ से रहने से यह रोग कम हो जाता है तथा कुछ कालतक दीख भी नहीं पड़ता है तथापि जिस प्रकार बिल्ली चूहे की ताक (घात) लगाये हुए बैठी रहती है उसी प्रकार एक वार हो जाने के पीछे यह रोग भी आदमी के शरीरपर घात लगाये ही रहता है अर्थात् इस का कोई न कोई लक्षण अनेक समयों में दिखाई दिया करता है और जब किसी कारण से शरीर में निर्बलता बढ़ जाती है त्यों ही यह रोग अपना जोर दिखलता है। (**प्रश्न**) आप पहिले यह कह चुके हैं कि यह रोग चेप से होता है तथा वारसा में जाता है, परन्तु इस में यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि इस रोगवाले आदमी को स्त्रीसंग करना चाहिये वा नही करना चाहिये[2] ? (**उत्तर**) जबतक टाकी हो तबतक तो कदापि स्त्रीसंग नही करना चाहिये, किन्तु जब यह रोग योग्य उपचारों (उपायों) के द्वारा शान्त हो जावे तब (रोग की शान्ति के पीछे) स्त्रीसंग करने में हानि नही है[3], इस के सिवाय इस बात का भी स्मरण रखना चाहिये कि–बहुधा ऐसा भी होता है कि स्त्री अथवा पुरुष को जब यह रोग होता है और उन के संयोग से गर्भ रहता है तब वह गर्भ पूर्ण अवस्था को प्राप्त नहीं होता है किन्तु चार वा पाच महीने में उस का पात (पतन) हो जाता है, इस लिये

१–क्योंकि वहुतों के मुख से यह सुना है कि यह रोग मूलसहित कभी नहीं जाता है परन्तु वहुत से मनुष्यों को रोग हो चुकने के वाद भी विलकुल नीरोग के समान देखा है अत यह प्रश्न उत्पन्न होता है, क्योंकि इस विपय मे सन्देह है ॥

२–क्योंकि यदि वह पुरुप कारणविशेप के विना ऋतुकाल मे भी स्वस्त्रीसग न करे तो उसे दोप लगता है (देखो मनु आदि ग्रन्थों को) और यदि स्त्रीसग करे तो चेप के द्वारा स्त्री के भी इस रोग के हो जाने की सम्भावना है, क्योंकि आप भी प्रथम कह चुके है कि–यह रोग समूल तो किसी ही का जाता है ॥

३–तात्पर्य यह है कि रोगदशा में स्त्रीसग कभी नहीं करना चाहिये क्योंकि ऐसा करने से दोनों को ही हानि पहुँचती है किन्तु जव योग्य चिकित्सा आदि उपायो से रोग विलकुल शान्त हो जावे अर्थात् चाँदी आदि कुछ मी विकार न रहे उस समय स्त्रीसग करना चाहिये, ऐसी दशा मे स्त्री के इस रोग के सक्रमण की सम्भावना प्राय नहीं रहती है, क्योंकि रसी निकलने आदि की दशा मे उस का चेप लगने से इस रोग की उत्पत्ति का पूरा निश्चय होता है अन्यथा नहीं ॥

यह बहुत ही आवश्यक (ज़रूरी) बात है कि जिस स्त्री अथवा जिस पुरुष के यह रोग हो उस को चाहिये कि प्रथम अच्छे प्रकार से इस रोग की चिकित्सा करा ले, पीछे संयोग करे, क्योंकि ऐसा करने से संयोगद्वारा स्थित हुए गर्भ में हानि नहीं पहुँचती है।

(प्रश्न) जिस पुरुष के उपदंश रोग हो चुका है वह पुरुष यदि विवाह करने की सम्मति मांगे तो उसे विवाह करने की सम्मति देनी चाहिये अथवा नहीं देनी चाहिये ? (उत्तर) इस विषय में सम्मति देने से पूर्व कई एक बातें विचारणीय (विचार करने योग्य) हैं, क्योंकि देखो ! प्रथम तो उपदंश की व्याधि एक बार होने के पीछे शरीर में से समूल नष्ट होती है अथवा नहीं होती है इस विषय में यद्यपि पूरा सन्देह रहता है तथापि योग्य चिकित्सा करने के बाद उपदंश रोग के शान्त होने के पीछे एक दो वर्ष तक उस की प्रतीक्षा करनी चाहिये, यदि उक्त समयतक यह व्याधि न दीख पड़े तो विवाह करने में कोई भी हानि प्रतीत नहीं होती है, दूसरे—अन्य विषों के समान उपदंश का भी विष समय पाकर अर्थात् बहुत दिन व्यतीत हो जाने से जीर्ण और बलहीन (कमज़ोर) होजाता है, इस का प्रत्यक्ष प्रमाण यही है कि जिन को पहिले यह रोग हो चुका था पीछे योग्य उपायों के द्वारा शान्त हो जाने पर तथा फिर बहुत समय तक दिखाई न देने पर जिन स्त्री पुरुषों ने विवाह किया उन जोड़ों की सन्तति बहुधा तन्दुरुस्त दीख पड़ती है, यही विषय जूनागढ़ के एस् एम् त्रिभुवनदास जैन डाक्टरने भी लिखा है।

गर्मी से जो २ रोग होते हैं वे प्राय त्वचा (चमड़ी), मुख, हाड़, सांधे, आँख, नख और केश में दिखलाई देते हैं, उन का वर्णन संक्षेप से किया जाता है —

१—त्वचा के ऊपर बहुधा लाल तांबे के रँग के समान चकत्ते देखने में आते हैं, ये (चकत्ते) गोल होते हैं तथा छोटे चकत्ते तो दुअन्नी से भी छोटे और बड़े चकत्ते रुपये से भी कुछ विशेष बड़े होते हैं, ये प्रायः शरीर की सम्पूर्ण त्वचा पर होते हैं अर्थात् पेट, छाती, पैर और हाथ इत्यादि सब अवयवों पर दीख पड़ते हैं, परन्तु कभी २ ये चकत्ते केवल दोनों हथेलियों में और पैरों के तलुओं में ही मालूम होते हैं, कभी २ ऐसा भी होता है कि—इन चकत्तों के साथ में त्वचा के छाले अथवा लोक भी निकल आते हैं, यह उपदंश का एक खास चिह्न है, कभी २ गर्मी के फफोले भी हो जाते हैं उन को पूयपिटिका तथा रज पिटिका कहते हैं, मनुष्य की निर्बल दशा में तो ये भी पक कर बड़ी २ चांदी के रूप में हो जाते हैं अथवा सूख जाने के बाद उन्हीं पर बड़े २ खरोंट जम जाते हैं, इस प्रकार के काले खरोंट कभी २ पैरों के ऊपर देखने में आते हैं।

इन के सिवाय उपदंश के कारण खुजली और गुमड़े भी हो जाते हैं, तात्पर्य यह है कि—त्वचा के जितने साधारण रोग होते हैं उन्हीं के किसी न किसी रूप में उपदंश का भी

१—साधारण अर्थात् उपदंश आदि विषय रोगों को छोड़ कर ॥

रोग प्रकट होता है, इस रोग से त्वचा के ऊपर छोटी बडी सब प्रकार की पिटिकायें (फुसियें) भी हो जाती है।

उपदश सम्बधी त्वग्रोग (त्वचा का रोग) ताम्रवर्ण (ताँबे के रग के समान रँगवाला) तथा गोलाकार (गोल शकल का) होता है और वह शरीर के दोनो तरफ[1] प्रायः समान (एक सा) ही होता है तथा उस के मिट जाने के पीछे उस के काले दाग पड कर रह जाते हैं[2]।

२-इस रोग के कारण कभी २ केश (वाल) भी नि.सत्त्व (निर्वल) होकर गिर पड़ते है[3], अर्थात् मूछ दाढ़ी और मस्तक पर से केश विलकुल जाते रहते है।

३-नख का भाग पक कर उस में से रसी निकला करती है, नख निकल जाता है और उस स्थान में चाँदी पड़ जाती है।

४-पहिले कह चुके है कि गर्मी के प्रारम्भ में मुख आता है[4] (मुखपाक हो जाता है) तथा उस के साथ में अथवा पीछे से गले के भीतर चाँदे पड जाते हैं, मसूडे सूज जाते है, जीभ, ओष्ठ (ओठ वा होठ) तथा मुख के किसी भाग में चाँदे हो जाते है और उन पर बड़ी २ पिटिकायें भी हो जातीहैं, इन के सिवाय लारींक्ष अर्थात् स्वर (आवाज) की नली सूज जाती है अथवा उस के ऊपर चाँदियां पड़ जाती है, गर्मी के कारण जब ये ऊपर लिखे हुए मुख सम्बंधी रोग हो जाते हैं उस समय रोग के भयकर चिह्न समझे जाते है, क्योंकि इन रोगों के होने से श्वास लेने का मार्ग सँकुचित (सँकड़ा) हो जाता है[5] तथा कभी २ नाक भी भीतर से सड़ जाती है, उस का पडदा फूट जाता है और वह वाहर से भी झर झर के[6] गिरने लगती है, तालु में छिद्र (छेद) होकर नाक में मार्ग हो जाता है कि जिस से खाते समय ही खुराक और पीते समय ही पानी नाक में होकर निकल जाता है[7] तथा जीभ और उस का पड़त भी झर झर के गिर जाता है।

५-हाड़ों पर का पडत सूज जाता है, उस पर मोटा टेकरा हो जाता है तथा उस में या तो स्वय ही (अपने आप ही) बहुत दर्द होता है अथवा केवल दवाने से वह दर्द करता है और उस में रात्रि के समय विशेष वेदना (अधिक पीड़ा) होती है कि जिस

१-दोनों तरफ अर्थात् दाहिनी और वाईं ओर ॥

२-अर्थात् उस के कारण पडे हुए काले दाग नहीं मिटते हैं ॥

३-तात्पर्य यह है कि रोग के सवव से पूर्व के वाल नि सत्व हो कर गिर जाते हैं और पीछे जो निकलते हैं वे भी निर्वल होने के कारण वढने से पूर्व ही गिर जाते हैं ॥

४-मुख आता है अर्थात् मुख में छाले आदि पड जाते हैं ॥

५-क्योंकि श्वास के मार्ग के वहुत से स्थान को उक्त रोग घेर लेते हैं ॥

६-अर्थात् नि सत्वता के द्वारा थोडे २ भाग से गिरने लगती है ॥

७-अर्थात् खान पान उसी समय (तालु मे पहुँचते ही) नाक के मार्ग से वाहर निकल जाता है ॥

से रोगी की निद्रा (नींद) में भग (विघ्न) पड़ता है[1], पैरों के हाड़ों पर, हाथ के हाड़ों पर तथा डोस की हाँसड़ी के हाड़ों पर इस प्रकार के टेकरे विशेष देखने में आते हैं, इस के सिवाय पँसुली और खोपड़ी के ऊपर भी ऐसे टेकरे हो जाते हैं तथा हाड़ का भीतरी भाग भी सड़ने लगता है जिस से वह हाड़ गल कर आखिरकार मृत्यु हो जाती है।

६—कभी २ सन्धिवायु के समान[2] पहिले से ही साँधे (जोड़ों के स्थान) जकड़ जाते हैं और विशेषकर बड़े साँधे जकड़ जाते हैं जिस से रोगी को हाथ पैरों का हिलना डुलना भी अति कठिन हो जाता है, कभी २ छोटी अगुलियों के तथा पैरों के भी साँधे जकड़ जाते हैं तथा सूज आते हैं और कमर में भी बादी भर जाती है, यद्यपि साँधे थोड़े ही दिनों में अच्छे हो जाते हैं तथापि वे बहुत समय तक रोगी को कष्ट पहुँचाते रहते हैं।

७—कभी २ शरीर के किसी दूसरे स्थान में दिखलाई देने के पूर्व आँख दुखनी आती है तथा कभी २ आँख का दर्द पीछे से उठता है, आँख में कनीनिका (गाँफन) का वरम (शोथ) हो जाता है, कनीनिका के सूज जाने पर उस के ऊपर लीफ (लस) नाम का रस उत्पन्न हो जाता है जिस से कनीनिका चिपक जाती है और कीकी विस्तृत नहीं होती है, आँख लाल हो जाती है तथा उस में और मस्तक (माथे) में अतिशय वेदना (बहुत ही पीड़ा) होती है, इस लिये रोगी को रात्रि में निद्रा का आना कठिन हो जाता है, केवल इतना ही नहीं किन्तु यदि ठीक समय पर आँख की सँभाल (खबरगीरी) न की जावे तो आँख निकम्मी हो जाती है और दृष्टि का समूल नाश हो जाता है।

तीसरे विभाग के चिह्न कुछ जनों के होते हैं तथा कुछ जनों के नहीं होते हैं[3] परन्तु जिन लोगों के ये (तीसरे विभाग के) चिह्न होते हैं उन के ये चिह्न या तो कई वर्षों तक क्रम २ से (एक के पीछे दूसरा इस क्रम से) हुआ करते हैं अथवा वारंवार एक ही प्रकार का चिह्न होता रहता है अर्थात् एक ही दर्द उठता रहता है[4], इस विभाग के चिह्नों का प्रारंभ थोड़े बहुत वर्षों के पीछे होता है तथा जब रोगी की तबियत बहुत ही अशक्त हो जाती है उस समय उन का जोर विशेष मालूम पड़ता है।

लीफ नामक जो रस उत्पन्न होता है उस रस का स्राव (झराव) होकर कई अवयवों में गाँठें बँध जाती हैं तथा यह परिवर्तन (फेरफार) कलेजा, फेफसा, मगज और दूसरे

१—अर्थात् रोगी को पीड़ा के कारण आराम पूर्वक नींद नहीं आती है ॥

२—सन्धिवायु के समान अर्थात् जिस प्रकार सन्धिवायु रोग में साँधे जकड़ जाते हैं उसी प्रकार ॥

३—जैसा कि पहिले लिख चुके हैं ॥

४—अर्थात् तीसरे दर्जे के चिह्न जिस मनुष्य के होते हैं उस के वे सब चिह्न एक लम्बे समय तक बारी २ से उत्पन्न होते रहते हैं अथवा उन चिह्नों में का कोई या एक ही चिह्न बार २ उठता है अथवा थोड़े समय पर शान्त हो जाता है और फिर उठता है ॥

कई एक भागों में होता है तथा इस परिवर्तन से भी बहुत हानि पहुँचती है अर्थात् यदि यह परिवर्तन फेफसे में होता है तो उस के कारण क्षयरोग की उत्पत्ति हो जाती है, यदि मगज में होता है तो उस के कारण मस्तकशूल (माथे में दर्द), वाय, उन्मत्तता (दीवानापन) और लकवा आदि अनेक भयंकर रोगों का उदय हो जाता है, कभी २ हाड़ों के सड़ने का प्रारम्भ होता है—अर्थात् पैरों के, हाथो के तथा मस्तक के हाड़ ऊपर से सड़ने लगते हैं, नाक भी सड कर झरने लगती है, इस से कभी २ हाड़ों में इतना वड़ा विगाड़ हो जाता है कि— उस अवयव को कटवाना पडता है[1], ऑख के दर्पण में उपदंश के कारण होनेवाले परिवर्तन (फेरफार) से दृष्टि का नाश हो जाता है तथा उपदश के कारण वृषणों (अडकोशों) की वृद्धि भी हो जाती है, जिस को उपदशीय वृषण-वृद्धि[2] कहते है ।

चिकित्सा—१–उपदंश रोग की मुख्य (खास) दवा पारा है इस लिये पारे से युक्त किसी औषधि को युक्ति के साथ देने से उपदंश का रोग कम हो जाता है तथा मिट भी जाता है ।

२–पारे से उतर कर (दूसरे दर्जे पर) आयोडाइड आफ पोटाश्यम नामक अंग्रेजी दवा है, अर्थात् यह दवा भी इस रोग में वहुत उपयोगी (फायदेमंद) है, यद्यपि इस रोग को समूल (जड़ से) नष्ट करने की शक्ति इस (दवा) में नहीं है तथापि अधिकाश में यह इस रोग को हटाती है[3] तथा शरीर में शान्ति को उत्पन्न करती है ।

३–इन दो दवाइयों के सिवार्य[4] जिन दवाइयों से लोहू सुधरे, जठराग्नि (पेट की अग्नि) प्रदीप्त (प्रज्वलित अर्थात् तेज़) हो तथा शरीर का सुधार हो ऐसी दवाइया इस रोग पर अच्छा असर करती हैं, जैसे कि—सारसापरेला और नाइट्रो म्यूरियाटक एसिड इत्यादि ।

४–इन ऊपर कही हुई दवाइयों को कव देना चाहिये, कैसे देना चाहिये तथा कितने दिनों तक देना चाहिये, इत्यादि वातों का निश्चय योग्य वैद्यों वा डाक्टरों को रोगी की स्थिति (हालत) को जाँच कर स्वयं (खुद) ही कर लेना चाहिये[5] ।

५–पारे की साधारण तथा वर्तमान में मिल सकने वाली दवाइया रसकपूर, क्यालोमेल, चाक, पारे का मिश्रण तथा पारे का मल्हम है ।

१–यदि उस अवयव को न कटवाया जावे तो वह विकृत अवयव दूसरे अवयव को भी विगाड देता है ॥

२–अर्थात् उपदश से हुई वृषणों की वृद्धि ॥

३–अर्थात् यह दवा उस के वेग को अवश्य कम कर देती है ॥

४–इन दो दवाइयों के सिवाय अर्थात् पारा और आयोडाइड आफ पोटाश्यम के सिवाय ॥

५–क्योंकि देश, काल, प्रकृति और स्थिति के अनुसार मात्रा, विधि, अनुपान और समय आदि वातों मे परिवर्तन करना पड़ता है ॥

६–पारा देने से यद्यपि मुँह आता है (मुखपाक हो जाता है) तथापि उस में कोई हानि नहीं है[1], क्योंकि वास्तव में बहुत से रोगों में औषध सेवन से मुखपाक हो ही जाता है, परन्तु उस से हानि नहीं होती है, क्योंकि— स्थितिभेद से वह मुखपाक भी रोग के दूर होने में सहायक रूप होता है, इसी लिये देशी वैद्यजन गर्मी आदि रोगों में जान बूझ कर मुखपाक करनेवाली औषधि देते हैं तथा उपदंश की शान्ति हो जाने पर मुखपाक को निवृत्त करने (मिटाने)वाली दवा दे देते हैं, यद्यपि पारे की दवा के देने से अधिक मुखपाक हो जाने से शरीर में प्रायः एक बड़ी खराबी हो जाती है जिस को प्रायः बहुत से लोग जानते होंगे कि— कभी २ मुखपाक के अधिक हो जाने से बहुत से रोगियों की मृत्यु तक हो जाती है, सिर्फ यही कारण है कि— वर्त्तमान में इस मुखपाक का लोगों में तिरस्कार (अनादर) देखा जाता है परन्तु इस हानि का कारण हम तो यही कह सकते हैं कि बहुत से वैद्यजन औषधि के द्वारा मुखपाक को तो वेग के साथ उत्पन्न कर देते हैं परन्तु उस के हटाने के (शान्त करने के) नियम को नहीं जानते हैं[2], बस ऐसी दशा में मुखपाक से हानि होनी ही चाहिये, क्योंकि मुखपाक की निवृत्ति के न होने से रोगी कुछ खा भी नहीं सकता है, उसे कठिन परहेज ही परहेज करना पड़ता है, उस के दाँत हिलने लगते हैं तथा दाँत गिर भी जाते हैं और मुखपाक के कारण बहुत से हाड़ भी सड़ जाते हैं, कभी २ जीभ सूज कर तथा मोटी हो कर बाहर आ जाती है तथा भीतर से श्वास (साँस) का अवरोध (रुकावट) हो कर रोगी की मृत्यु हो जाती है, इस लिये अज्ञान वैद्य को औषधि के द्वारा अतिशय (बहुत अधिक) मुखपाक कभी नहीं उत्पन्न करना चाहिये किन्तु केवल साधारणतया आवश्यकता पड़ने पर मुखपाक को उत्पन्न करना चाहिये जिस को लोग फूल मुखपाक कहते हैं[3], फूल मुखपाक प्रायः उसे कहते हैं कि जिस में थोड़ी सी थूक में विशेषता होती है तात्पर्य यह है कि— दाँतों के मसूड़ों पर जिस का थोड़ा सा ही असर हो बस उतना ही पारा देना चाहिये, इस से विशेष पारा देने की कोई आवश्यकता नहीं है, परन्तु इस विषय में यह खयाल रखना चाहिये कि पारे को केवल उतना देना चाहिये कि— जितना पारा लोहू पर अपना असर पहुँचा सके।

बहुत से मूर्ख वैद्य तथा दूसरे लोग यह समझते हैं कि— मुख में से जितना थूक

1–किन्तु प्रकृति और स्थिति के भेद से मुख का आना तो उक्त रोग की निवृत्ति में सहायक माना जाता है यदि चिकित्सा उसी ढंग पर की जा रही हो तो ॥

2–अर्थात् मुखपाक को विधिपूर्वक उत्पन्न करना तथा उस की निवृत्ति करना उन्हें ठीक रीति से मालूम नहीं होता है ॥

3–फूल मुखपाक अर्थात् हलका (नरम वा मृदु) मुखपाक ॥

4–क्योंकि विशेष पारे का देना परिणाम में भी हानिकारक (नुकसान करनेवाला) होता है ॥

अधिक निकले उतना ही विशेष फायदा होता है, क्योंकि थूक के द्वारा गर्मी निकल जाती है, परन्तु उनका ऐसा समझना बहुत ही भूल की बात है, क्योंकि लाभ तब विशेष होता है जब कि पारे से मुखपाक तो कम हो अर्थात् थूक में थोडी सी विशेपता (अधिकता) हो परन्तु वह बहुत दिनों तक बनी रहे[1], किन्तु मुखपाक विशेष (अधिक) हो और वह थोड़े ही दिनों तक रहे उस से बहुत कम फायदा होता है।

बहुधा यह भी देखा गया है कि—मुखपाक के विना उत्पन्न किये भी युक्ति से दिया हुआ पारा पूरा २ (पूरे तौर से) फायदा करता है, इस लिये अधिक मुखपाक के होने से अर्थात् अधिक थूक के बहने ही से लाभ होता है यह विचार विलकुल ही भ्रमयुक्त (वहम से भरा हुआ) है।

७–डाक्टर हचिनसन की यह सम्मति (राय) है कि— पारे की दवा को एक दो मास तक थोड़ी २ बराबर जारी रखना चाहिये, क्योंकि उन का यह कथन है कि— "उपदश पर पारद (पारे) को जल्दी देओ, बहुत दिनोंतक उस का देना जारी रक्खो और मुखपाक को उत्पन्न मत करो[2]" इत्यादि।

८–गर्मीवाले रोगी को पारा देने की चार रीतिया है– उन में से प्रथम रीति यह है कि– मुख के द्वारा पारा पेट में दिया (पहुँचाया) जाता है, दूसरी रीति यह है कि— पारे का धुआँ अथवा भाफ दी जाती है, तीसरी रीति यह है कि– पारे की दवा न तो पेट में खानी पड़ती है और न उसका धुआँ वा भाफ ही लेनी पडती है किन्तु केवल पारा जॉघ के मूल में तथा कॉख में लगाया जाता है और चौथी रीति यह है कि– सप्ताह (हफ्ते) में तीन वार त्वचा (चमड़ी) में पिचकारी लगाई जाती है।

इस प्रकार पहिले जब गर्मी के दूसरे विभाग के चिह्न[3] मालूम हों तब अथवा उस के कुछ पहिले इन चारों रीतियों में से किसी रीति से यदि युक्ति के साथ पारे की दवा का सेवन कराया जावे तो उपदश के लिये इस के समान दूसरी कोई दवा नहीं है, परन्तु पारे सम्बधी दवा किसी कुशल (चतुर) वैद्य वा डाक्टर से ही लेनी चाहिये अर्थात् मूर्ख वैद्यों से यह दवा कभी नहीं लेनी चाहिये[4]। (**प्रश्न**) सर्व साधारण को यह बात कैसे मालूम हो सकती है कि– यह कुशल वैद्य है अथवा मूर्ख वैद्य है? (**उत्तर**) जिस प्रकार सर्व साधारण लोग सोने, चाँदी, जवाहिरात तथा दूसरी भी अनेक वस्तुओं की

१–थूक में थोडी विशेपता होकर बहुत दिनोंतक बनी रहने से बडा लाभ होता है अर्थात् रोगी को खाने पीने आदि की तकलीफ भी नहीं होती है तथा काम भी बन जाता है ॥

२–ऐसा करने से रोगी को विशेप कष्ट न होकर फायदा हो जाता है ॥

३–दूसरे विभाग (दूसरे दर्जे) के चिह्न ज्वर आदि, जिन को पहिले लिख चुके हैं ॥

४–क्योंकि मूर्ख वैद्यों से पारे की दवा के लेने से कभी २ महा भयङ्कर (बड़ा खतरनाक) परिणाम हो जाता है ॥

परीक्षा करते हैं अथवा दूसरे किसी के द्वारा उन की परीक्षा करा लेते हैं[1] उसी प्रकार कुशल तथा मूर्ख वैद्य की परीक्षा का भी कर लेना या दूसरे से करा लेना सर्वसाधारण को अत्यावश्यक (बहुत जरूरी) है, परन्तु महान् शोक का विषय है कि—वर्तमान में सर्व साधारण और गरीब लोग तो क्या किन्तु बड़े २ श्रीमान् लोग भी इस विषय में कुछ भी ध्यान नहीं देते हैं, इसी का यह फल है कि—कुशल अथवा मूर्ख वैद्य की परीक्षा का करने वाला शायद ही सौ में से एकाध मिलता है, इस लिये सर्वसाधारण से हमारा यही निवेदन है कि—दूध को मथ (बिलो) कर घृत निकालने के समान जो हमने इस ग्रन्थ के इसी अध्याय के प्रारम्भ में वैद्यकविद्या का सार लिखा है उस को अवकाश (फुर्सत) के समय में पाठकगण दूसरी व्यर्थ (फिजूल) गप्पों में तथा नाना प्रकार के कल्पित किस्से कहानियों की पुस्तकों के पढ़ने में अपने अमूल्य (बेशकीमती) समय को न गँवा कर यदि विचारा करें तो उन को अनेक प्रकार का लाभ हो सकता है तथा इस के प्रभाव से उन में कुशल तथा मूर्ख वैद्य की परीक्षा करने की शक्ति भी उत्पन्न हो सकती है[2] ।

अब ऊपर कही हुई चिकित्साओं के सिवाय—जो अंग्रेजी तथा देशी दवाइयां इस रोग पर पूर्ण लाभ करती हैं उन्हें लिखते हैं:—

१—पोटास आयोडाइड १५ ग्रेन, लीकर हाइड्रार पीरी परक्लोरीड २ ड्राम, एक्स्ट्राक्ट सारसापरीला ३ ड्राम और चिरायते की चाय ३ औंस, इन सब औषधों को मिला कर उस के तीन भाग करने चाहियें तथा उन में से एक भाग को सबेरे, एक भाग को मध्याह्न में (दोपहर को) और एक भाग को शाम को पीना चाहिये, यह दवा अति उत्तम है अर्थात् गर्मी के सर्व रोगों में अति उपयोगी (फायदेमन्द) मानी गई है, इस दवा में जो पोटास आयोडाइड की १५ ग्रेन की मात्रा लिखी है उस के स्थान में एक हफ्ते के बाद २० ग्रेन की मात्रा कर देनी चाहिये अर्थात् एक हफ्ते के बाद उक्त दवा २० ग्रेन डालना चाहिये तथा दूसरे हफ्ते में २५ ग्रेन तक बढ़ा देना चाहिये, इस दवा को प्रारंभ करते ही यद्यपि तीन दिन तक श्लेष्मा (कफ अर्थात् जुकाम) हो जाता है परन्तु वह पीछे आप ही तो चार दिन में बन्द हो जाता है, इस लिये श्लेष्मा के हो जाने से डरना नहीं चाहिये तथा दवा को बराबर लेते रहना चाहिये और इस दवा का सेवन दो महीने तक करना चाहिये, यदि किसी कारण से इस का दो महीने तक सेवन न बन

१—सब ही जानते हैं कि कोई भी मनुष्य बिना परीक्षा किये अथवा बिना परीक्षा कराये चांदी आदि को नहीं लेता है क्योंकि पीछे धोखा हो जाने का भय बना रहता है ॥

२—क्योंकि हमने इस ग्रन्थ में शारीरिक विद्या के सार पदार्थों को लाभ देने वाले अच्छे प्रकार से लिख दिये हैं तथा प्रसंगानुसार वैद्यादि की परीक्षा आदि के भी अनेक विषय लिख दिये हैं, अब यह बात है कि इस ग्रन्थ को ध्यानपूर्वक पढ़ कर साधारण जन भी कुशल और मूर्ख वैद्य की परीक्षा क्यों नहीं कर सकते हैं ॥

सके तो चार हफ्ते तक तो इस का सेवन अवश्य ही करना चाहिये, इस दवा के समान अंग्रेजी दवाइयों में गर्मी पर फायदा करने वाली दूसरी कोई दवा नहीं है, इस दवा का सेवन करने के समय दूध भात तथा मिश्री का खाना बहुत ही फायदेमद है अर्थात् इस दवा का यह पूरा पथ्य है, यदि यह न बन सके तो दूसरे दर्जे पर इस का यह पथ्य है कि–सेंधानमक डाल कर तथा बीज निकाली हुई जयपुर की थोडी सी लाल मिर्च डाल कर बनाई हुई मूँग की दाल फुलके तथा भात को खाना चाहिये, किन्तु इन के सिवाय दूसरी खुराक को नहीं खाना चाहिये तथा इस पथ्य (परहेज) को गर्मी की प्रत्येक दवा के सेवन में समझना चाहिये[1] ।

२–पोटास आयोडाइड १२ ग्रेन, लीकूवीड एक्स्ट्राक आफ् सारसापरेला २ ड्राम, इन दोनों को मिलाकर $\frac{1}{3}$ भाग (तीसरा हिस्सा) दिन में तीन वार देना चाहिये ।

३–उसवा मगरबी दो तोले, पित्तपापडा छः मासे, काशनी छः मासे, चन्दन का चूरा ६ मासे तथा पुटास आयोडाइड छः ग्रेन, इन में से प्रथम चार औषधियो को आध पाव उबलते हुए गर्म पानी में एक घंटे तक चीनी वा काच के वर्तन में भिगोवें, फिर छान कर उस में पुटास आयोडाइड मिलावें और दिन में तीन वार सेवन करें, यह दवा एक दिन के लिये समझनी चाहिये तथा इस दवा का एक महीने तक सेवन करना चाहिये ।

४–मजीठ, हरड़, बहेड़ा, आँवला, नीम की छाल, गिलोय, कडु और वच, इन सब औषधों को एक एक तोले लेकर उस के दो भाग करने चाहिये तथा उस में से एक भाग का प्रतिदिन क्वाथ बना कर पीना चाहिये ।

५–उपलसरी, जेठीमधु (मधुयष्टि अर्थात् मौलेठी), गिलोय और सोनामुखी (सनाय), इन सब को एक एक तोले लेकर तथा इन का क्वाथ बना कर प्रतिदिन पीना चाहिये, यदि इस के पीने से दस्त विशेष हों तो सोनामुखी को कम डालना चाहिये ।

६–**उपदंश गजकेशरी अर्क**[2]—यह अर्क यथा नाम तथा गुण है,[3] अर्थात् यह अर्क उपदंश रोग पर पूर्ण (पूरा) फायदा करता है, जो लोग अनेक दवाइयों को खाकर

१–ऊपर लिखी हुई चारों औषधों को मिलाकर तैयार की हुई यह दवा हमारे औषधालय में सर्वदा उपस्थित रहती है तथा चार सप्ताह (हफ्ते) तक पीने योग्य उक्त दवा के दाम १०) रुपये हैं, पोष्टेज (डाकव्यय) पृथक् है, जिन को आवश्यकता हो वे द्रव्य भेज कर अथवा वेल्यूपेबिल के द्वारा मगा सकते हैं ॥

२–यह अर्क शुद्ध वनस्पतियों से बना कर तैयार किया जाता है, जो मगाना चाहे हमारे औषधालय से द्रव्य भेज कर अथवा वी पी द्वारा मँगा सकते हैं, इस के सेवन की विधि आदि का पत्र (पर्चा) दवा के साथ में भेजा जाता है, एक सप्ताह (हफ्ते)तक पीने लायक दवा की शीशी का मूल्य ३) रुपये हैं, पोष्टेज (डाकव्यय) पृथक् लगता है ॥

३–अर्थात् यह अर्क उपदंशरूपी गज (हाथी) के लिये केशरी (सिंह) के समान है ॥

निराश (नाउम्मेद) हो गये हों उन को चाहिये कि इस अर्क का अवश्य सेवन करें, क्योंकि उपदंश की सब व्याधियों को यह अर्क अवश्य मिटाता है[1] ।

७—उपदंशविध्वंसिनीगुटिका[2]—यह गुटिका भी उपदंश रोग पर बहुत ही फायदा करती है, इस लिये इस का सेवन करना चाहिये[3] ॥

बाल उपदंश का वर्णन ॥

पहिले कह चुके हैं कि—गर्मी का रोग वारसा में उत्पन्न होता है, इस लिये कुछ वर्षों तक उपदंश का वारसा में उतरना सम्भव रहता है, परन्तु उस का ठीक निश्चय नहीं हो सकता है तथापि पहिले उपदंश होने के पीछे वर्ष वा छः महीने में गर्भ पर उस का असर होना विशेष संभव होता है, इस के पीछे यद्यपि ज्यों २ गर्मी पुरानी होती जाती है और उस का जोर कम पड़ता जाता है तथा दूसरे दर्जे में से तीसरे दर्जे में पहुँचती है त्यों २ कम हानि होने का सम्भव होता जाता है तथापि बहुत से ऐसे भी उदाहरण मिलते हैं कि कई वर्षों के व्यतीत हो जाने के पीछे भी ऊपर लिखे अनुसार गर्मी वारसा में उतरती है, पिता के गर्मी होनेपर चाहे माता के गर्मी न भी हो तो भी उस के बच्चे को गर्मी होती है और बच्चे के द्वारा वह गर्मी माता के लग जाना भी सम्भव होता है तथा माता के गर्मी होने से बच्चे को भी उपदंश हो जाता है ।

बच्चे का जन्म होने के पीछे यदि माता के उपदंश होवे तो दूध पिलाने से भी बच्चे के उपदंश हो जाता है, उपदंश से युक्त बच्चा यदि नीरोग धाय का दूध पीवे तो उस धाय के भी उपदंश के हो जाने का सम्भव होता है तथा स्तन का जो भाग बच्चे के मुख में आता है यदि उस के ऊपर फाट हो तो उसी भाग से इस रोग के चेप के फैलने का विशेष सम्भव होता है ।

बालउपदंश तीन प्रकार से प्रकट होता है, जिस का विवरण इस प्रकार है—

१—कभी २ गर्भावस्था में प्रकट होता है जिस से बहुत सी स्त्रियों के गर्भ का पात (पतन अर्थात् गिरना) हो जाता है ।

२—कभी २ गर्भ का पात न होकर तथा पूरे महीनों में बच्चे के उत्पन्न हो जाने पर जन्म के होते ही बच्चे के अंग पर उपदंश के चिन्ह मालूम होते हैं ।

१—यह अर्क हजारों बार उपदंश के रोगियों पर परीक्षा कर के अनुभवसिद्ध ठहराया गया है अतः इस से अवश्य ही फायदा होता है ॥

२—अर्थात् उपदंश का नाश करनेवाली गोली ॥

३—ये गुटिकायें भी यहां हमारी बनाई हुई हमारे औषधालय में उपस्थित रहती हैं, जिन को आवश्यकता हो वे मंगा सकते हैं, मूल्य एक डिब्बी (जिस में ३२ गोलियां रहती हैं) का केवल १) रुपया है, बाहर वालों को डाक खर्च देना पड़ता है, इन के सेवन की विधि आदि का पत्र दवा के साथ में ही ग्राहकों को भेज दिया जाता है ॥

३–कभी २ बच्चे के जन्मसमय में उस के शरीरपर कुछ भी चिन्ह न होकर भी थोड़े ही अठवाड़ों में, महीनों में अथवा कुछ वर्षों के पीछे उस के शरीर में उपदंश प्रकट होता है[1]।

लक्षण (चिह्न)—उपदंश रोग से युक्त माता पिता से उत्पन्न हुआ बालक जन्म से ही दुर्बल, गले हुए हाथ पैरों वाला तथा मुर्दार सा होता है[2] और उस की त्वचा (चमड़ी) में सल पड़े हुए होते है, उस की नाक श्लेष्म के समान (मानों नाक में श्लेष्म अर्थात् जुकाम भरा है इस प्रकार) बोला करती है और पीछे नितम्ब (शरीर के मध्य भाग) पर तथा पैरों पर गर्मी के लाल २ चकत्ते निकलते है, मुखपाक हो जाता है तथा ओष्ठ (ओठ वा होठ) पर चॉदे पड जाते हैं।

इस प्रकार के (उपदंश रोग से युक्त) बालक के जो दॉत निकलते है उन में से आगे के ऊपरले (ऊपर के) दो चार दाँत चमत्कारिक (चमत्कार से युक्त) होते हैं, वे बूठे होते है, उन के बीच में मार्ग होता है और वे शीघ्र ही गिर जाते है, किन्तु जो स्थिर (कायम) रहने वाले दॉत निकलते है वे भी वैसे ही होते है तथा उन के ऊपर एक गड्ढा होता है।

चिकित्सा—१–पहिले कह चुके है कि–पारा गर्मी के रोग पर मुख्य औषधि है, इस लिये वारसों[3] की गर्मी पर भी उस का पूरा असर होता है अर्थात् उस का फायदा शीघ्र ही मालूम पड़ जाता है, गर्मी के कारण यदि किसी स्त्री के गर्भ का पात हुआ करता हो और उस को पारे की दवा देकर मुखपाक कराया जावे तो फिर गर्भ के ठहर कर बढ़ने में कुछ भी अड़चल नहीं होती है[4] तथा उस के गर्भ से जो सन्तति उत्पन्न होती है उस के भी गर्मी नहीं होती है[5], यदि बालक का जन्म होने के पीछे थोड़े दिनों में उस के शरीर पर गर्मी दीख पड़े[6] तो उस बालक की माता को किसी कुशल वैद्य से पारे की दवा दिलानी चाहिये[7], अथवा यदि बालक कुछ बड़ा हो गया हो तो उस के

१–तात्पर्य यह है कि उपदंश का असर तो बालक के शरीर में पहिले ही से रहता है वह कुछ ही अठवाड़ों में, महीनों में अथवा वर्षों में अपने उद्भव (प्रकट) होने की कारण सामग्री को पाकर प्रकट हो जाता है ॥

२–क्योंकि माता पिता के द्वारा पहुँचा हुआ इस रोग का असर गर्भ ही में बालक को दुर्बल आदि ऊपर कहे हुए लक्षणोंवाला बना देता है ॥

३–वारसा का स्वरूप पहिले लिख चुके है ॥

४–अर्थात् पारे की दवा के देने से स्त्री के गर्भ का पात नहीं होता है तथा वह गर्भ नियमानुसार पेट में बढ़ता चला जाता है ॥

५–क्योंकि पारे की दवा के देने से माता ही में गर्मी का विकार शान्त हो जाता है अत वह बालक के शरीर पर असर कैसे कर सकता है ॥

६–अर्थात् पारे की दवा देने पर भी माता की गर्मी ठीक रीति से शान्त न होवे और बालक पर भी उस का असर पहुँच जावे ॥

७–कि जिस से आगे को माता की गर्मी का असर बालक पर पड कर उस के लिये भयकारी न हो ॥

पारे का मल्हम लगाना चाहिये, ऐसा करने से गर्मी मिट जावेगी, मल्हम के लगाने की रीति यह है कि—कपड़े की चींट पर पारे के मल्हम को चुपड़ कर उस चींट को बच्चे के पैरों पर अथवा पीठ पर बाँध देना चाहिये, यह कार्य जब तक उपदंश न मिट जावे तब तक करते रहना चाहिये, इस से बहुत फायदा होता है क्योंकि—मल्हम के भीतर का पारा शरीर में जाकर उपदंश को मिटाता है, पारे की औषधि से जिस प्रकार बड़ी अवस्था वाले पुरुष के सहन में ही मुख पाक हो जाता है उस प्रकार बालक के नहीं होता है।

एक यह बात भी अवश्य ध्यान में रखनी चाहिये कि—उपदंश वाले बच्चे को माता के दूध के पिलाने के बदले (एवज में) गाय आदि का दूध पिला कर पालना अच्छा है।

पथ्यापथ्य—इस रोग में दूध, भात, मिश्री, मूँग, गेहूँ और सेंधानिमक, इत्यादि साधारण खुराक का खाना तथा शुद्ध (साफ) वायु का सेवन करना पथ्य है और गर्म पदार्थ, मद्य (दारू), बहुत मिर्चें, तेल, गुड़, खटाई, धूप में फिरना, अधिक परिश्रम करना तथा मैथुन इत्यादि अपथ्य हैं[1]।

विशेष सूचना—वर्तमान समय में गर्मी देवी की मसादी से बचने वाले थोड़े ही पुण्यवान् पुरुष दृष्टिगत होते हैं[2] (देखे जाते हैं), इस के सिवाय प्रायः यह भी देखा जाता है कि—बहुत से लोग इस रोग के होने पर इसे छिपाये रखते हैं[3] तथा बहुत से भाग्यमानों (धनवानों) के लड़के माता पिता के लिहाज वा डर से भी इस रोग को छिपाये रखते हैं परन्तु यह तो निश्चय ही है कि थोड़े ही दिनों में उन को मैदान में अवश्य आना ही पड़ता है (रोग को प्रकट करना ही पड़ता है या यों समझिये कि रोग प्रकट हो ही जाता है) इस लिये इस रोग का कभी छिपाना नहीं चाहिये, क्योंकि इस रोग को छिपा कर रखने से बहुत हानि पहुँचती है[4] तथा यह रोग कभी छिपा भी नहीं रह सकता है, इस लिये इस का छिपाना बिलकुल व्यर्थ है, अतः (इस लिये) इस रोग के होते ही उस का छिपाना नहीं चाहिये किन्तु उस का उचित उपाय करना चाहिये।

ज्यों ही यह रोग उत्पन्न हो त्यों ही सब से प्रथम त्रिफले (हरड़ बहेड़ा और आँवला) के जुलाब का लेना प्रारंभ कर देना चाहिये तथा यह जुलाब तीन दिन तक लेना चाहिये, जुलाब के दिनों में खिचड़ी के सिवाय और कुछ भी नहीं खाना चाहिये, हाँ रँधी (पकी) हुई खिचड़ी में थोड़ासा घृत (घी) डाल सकते हैं।

१—इन के सिवाय—मूत्र के वेग को रोकना दिन में सोना भारी अन्न का खाना तथा उष्ण का सेवन भी इस रोग में कुपथ्य पुरुष के लिये अपथ्य अर्थात् हानिकारक है ॥

२—अर्थात् इस रोग से बचे हुए थोड़े ही पुरुष देखे जाते हैं ॥

३—अर्थात् लज्जा के कारण प्रकट नहीं करते हैं ॥

४—क्योंकि रोग ही प्रकट हो कर इस की चिकित्सा हो जाना अच्छा है, पीछे यह असाध्य हो जाता है ॥

जुलाब के ले चुकने के पीछे ऊपर लिखे अनुसार इलाज करना चाहिये, अथवा किसी अच्छे वैद्य वा डाक्टर से इलाज कराना चाहिये, परन्तु मूर्ख वैद्यो से रसकपूर तथा हींगलू आदि दवा कभी नहीं लेनी चाहिये[1]।

यदि कुछ दिनों तक दवा का योग न मिल सके तो उस के यत्न में लगना चाहिये परन्तु ऊपर लिखे पथ्यानुसार खुराक को जारी रखने में भूल नहीं करना चाहिये[2]।

जो मनुष्य इस रोग से मुक्ति (छुटकारा) पाने के बाद पुनः (फिर) कुकर्म (बुरे काम) करते है अर्थात् ठोकर खाकर भी नहीं चेतते है उन को पञ्चाख्यानी गधा ही समझना चाहिये।

प्रमेह अर्थात् सुजाख (गनोरिया) का वर्णन ॥

सुजाख का रोग यद्यपि स्त्री तथा पुरुष दोनों के होता है परन्तु पुरुष की अपेक्षा स्त्री के इस का दर्द कम मालूम होता है, इस का कारण केवल यही है कि पुरुष की अपेक्षा स्त्री का मूत्रमार्ग बड़ा होता है, इस के सिवाय प्रायः यह भी देखा जाता है कि स्त्री की अपेक्षा यह रोग पुरुष के विशेष होता है।

कारण—यह रोग व्यभिचार करने से उत्पन्न होता है तथा वेश्या और ढावे वाली[3] स्त्रिया ही इस रोग का मूल (मुख्य) कारण होती है, तात्पर्य यह है कि व्यभिचार के हेतु (लिये) जिस स्थान में बहुत से स्त्री पुरुषों का आगमन तथा परिचय (मुलाकात) होता है वही से इस रोग की उत्पत्ति की विशेष सम्भावना होती है।

१–क्योंकि मूर्ख वैद्य अपनी अज्ञानता से रसकपूर और हींगलू आदि दवा तो रोगी को दे देते हैं परन्तु न तो वे उस के देने के विधान को ही जानते हैं और न अनूपान तथा पथ्य आदि को समझते हैं, इस लिये रोगी को उक्त दवाओं को मूर्ख वैद्य से लेने में परिणाम मे वडी भारी हानि पहुँचती है, अत उक्त दवाओं को मूर्ख वैद्यों से भूलकर भी नहीं लेना चाहिये ॥

२–क्योंकि पथ्य का वर्त्ताव दवा से भी अधिक फायदा करता है, (**प्रश्न**) यदि पथ्य का सेवन दवा से भी अधिक फायदा करता है तो फिर दवा के लेने की क्या आवश्यकता है, केवल पथ्य का ही सेवन कर लेना चाहिये ? (**उत्तर**) वेशक! पथ्य का सेवन दवा से भी अधिक फायदा करता है, परन्तु पथ्य सेवन के समय में दवा के लेने की केवल इतने अश मे आवश्यकता होती है कि रोग शीघ्र ही मिट जावे (क्योंकि दो सहायक मिल कर वैरी को जल्दी ही जीत लेते हैं) यो तो दवा को न लेकर भी केवल पथ्य का सेवन किया जावे तो भी रोग अवश्य मिट जावेगा परन्तु देर लगेगी, इस के विरुद्ध यदि केवल दवा का ही सेवन किया जावे और पथ्य का वर्त्ताव न किया जावे तो कुछ भी लाभ नहीं हो सकता है (इस विषय मे पहिले लिख चुके हैं), तात्पर्य यह है कि पथ्य का सेवन मुख्य और दवा का लेना गौण साधन है ॥

३–इस कलिकाल में वेश्याओं के समान यह एक नया व्यभिचार का ढँग चला है अर्थात् कलकत्ता और बम्बई आदि अनेक वड़े २ नगरों मे कुट्टिनी (व्यभिचार की दलाली करनेवाली) स्त्री के मकान मे आकर गृहस्थों की स्त्रिया और व्यभिचारी पुरुष कुकर्म करते हैं ॥

इस के सिवाय रजस्वला स्त्री के साथ मैथुन करने से तथा जिस स्त्री के प्रदर का रोग हो अर्थात् किसी प्रकार की भी धातु जाती हो अथवा जिस के योनिमार्ग में वा भगके में किसी प्रकार की कोई व्याधि हो उस स्त्री के साथ भी संयोग करने से यह रोग हो जाता है।

परन्तु आश्चर्य की बात तो यह है कि—जिन के यह रोग हो जाता है उन में से प्रायः बहुत से लोग विषय सम्बंध में की हुई अपनी भूल को स्वीकार नहीं करते हैं किन्तु वे यही कहते हैं कि गर्म चीज के खाने में आ जाने के हेतु अथवा धूप में चलने से हमारे यह रोग हो गया है, परन्तु यह उन की भूल है, क्योंकि बुद्धिमान् पुरुष काम के द्वारा कारण का ठीक निश्चय कर लेते हैं, देखो! यह निश्चित बात है कि तीक्ष्ण तथा गर्म चीज के खाने आदि कारणों से सुज़ाख हो ही नहीं सकता है, क्योंकि सुज़ाख मूत्रमार्ग का खास चरम (जखम) है तथा यह चेप के कारण ही से होता है, देखो! यदि सुज़ाख का चेप एक आदमी का लेकर दूसरे के लगा दिया जावे तो उस के भी यह रोग हुए बिना नहीं रहता है अर्थात् अवश्य ही हो जाता है, क्योंकि सुज़ाख का गुण ही चेपी है, यदि किसी दूसरे साधारण जखम की रसी को लेकर लगाया जावे तो वैसा असर नहीं होगा, क्योंकि साधारण जखम की रसी में सुज़ाख के चेप के समान गुण ही नहीं होता है।

गर्मी की चाँदी और सुज़ाख ये दोनों जुदे २ रोग हैं क्योंकि चाँदी के चेप से चाँदी ही होती है और सुज़ाख के चेप से सुज़ाख ही होता है परन्तु शरीर को खराबी करने में (शरीर को हानि पहुँचाने में) ये दोनों रोग भाई बहिन हैं अर्थात् चाँदी बहिन और सुज़ाख भाई है।

सुज़ाख के सिवाय—मूत्र मार्ग के साधारण क्षोभ के हेतु लिङ्ग में से भी रसी के समान पदार्थ निकलता है।

यह रोग हस्तदोष, बहुत मिर्चे, मसाला और मद्य आदि के उपभोग से (सेवन से) होता है, परन्तु इस को ठीक सुज़ाख नहीं समझना चाहिये।

१—गर्भ के नियमों से विरुद्ध (सन्तान के लिये ऋतुसमय में अपनी भार्या के गमनसमय में भाग न करके) आनन्दप्रयोजक अर्थात् काम के उत्पन्न करने के लिये वीर्यरूपी रस (विष) को हाथ से व्यर्थ (स्त्रार) कर वीर्यपात करने को हस्तदोष कहते हैं तथा इस को अंगरेजी में मास्टर बेशन सेल्फ एब्यूज सेल्फ पोल्यूशन हस्तक्रियाजनित और इस विषय प्रतिवाद भी करते हैं प्राचीन सिद्धान्त और मनुष्य कृत्यों का विचार करने पर यही निश्चित होता है कि इस संसार में ब्रह्मचर्य ही एक ऐसा पदार्थ है जो कि मनुष्य को उस के कल्याण का रास्ता साफ बतला देता है जिस मार्ग पर चल कर मनुष्य दोनों लोक के सुखों को सहज में ही प्राप्त कर सकता है तथा ब्रह्मचर्य का भंग करना ठीक उस के विपरीत है अर्थात् यही (ब्रह्मचर्य का भंग) मनुष्य का सर्वनाश कर देता है, क्योंकि यह (ब्रह्मचर्य का नाश करना) मनुष्य आदि

लक्षण—स्त्री गमन के होने के पश्चात् एक से लेकर पाच दिन के भीतर सुजाख का चिह्न प्रकट होता है, प्रथम इन्द्रिय के पूर्व भाग पर खाज (खुजली) चलती है, उस (इन्द्रिय) का मुख सूज कर लाल हो जाता है और कुछ खुल जाता है तथा उस को दवाने से भीतर से रसी का बूँद निकलता है, उस के पीछे रसी अधिक निकलती

के लिये सव पापों का स्थान और सव दुर्गुणों का एक आश्रय है अर्थात् इसी से सव पाप और सव दुर्गुण उत्पन्न होते है, इस की भयङ्करता का विचार कर यही कहना पडता है कि–यह पाप सव पापों का राजा है, देखो ! दूसरी सव खरावियों को अर्थात्–चोरी, लुचाई, ठगाई, खून, वदमाशी, अफीम, भाग, गॉजा और तमाखू आदि हानिकारक पदार्थों के व्यसन, सव रोग और फूटकर निकलने वाली भयकर चेपी महामारियों को इकट्ठा कर तराजू के एक पालने (पलडे) मे रक्खा जावे और दूसरे पालने मे हाथ के द्वारा ब्रह्मचर्य भङ्ग की खरावी को रक्खा जावे तथा पीछे दोनों की तुलना (मुकाविला) की जावे तो इस एक ही खरावी का पालना दूसरी सव खरावियो के पालने की अपेक्षा अधिक नीचा जावेगा, यद्यपि स्त्री पुरुषो के अयोग्य व्यवहार के द्वारा उत्पन्न हुए भी ब्रह्मचर्यभङ्ग से अनेक खरावियां होती हैं परन्तु उन सव खरावियों की अपेक्षा भी अपने हाथ से किये हुए ब्रह्मचर्यभङ्ग से तो जो वडी २ खरावियां होती हैं उन का स्मरण करके तो हृदय फटता है, देखो ! यह वात विलकुल ही सत्य है कि मनुष्य जाति मे पुरुषत्व (पराक्रम) के नाशरूपी महाखरावी, वीर्य सम्वधी अनेक खरावियां और उन से उत्पन्न हुई अनेक अनीतियों का इसी से जन्म होता है, क्योकि मन की निर्वलता से सव पाप और सव दुर्गुण उत्पन्न होते हैं और मन की निर्वलता को जन्म देनेवाला यही निकृष्ट शारीरिक पाप (ब्रह्मचर्य का भङ्ग अर्थात् माष्टर वेशन) है, सत्य तो यह है कि इस के समान दूसरा कोई भी पाप ससार मे नहीं देखा जाता है, यह पाप वर्त्तमान समय मे वहुत कुछ फैला हुआ है, इस पर भी आश्चर्य और दुःख की वात तो यह है कि लोग इस पाप से होनेवाले अनर्थों को जान कर भी इस पाप के आचरण से उत्पन्न हुई खरावियों के देखने से पहिले नहीं चेतते हैं अर्थात् अनभिज्ञ (अनजान) के समान हो कर अँधेरे ही में पडे रहते हैं और अपने होनहार सन्तान को इस से वचाने का उद्योग नहीं करते हैं, तात्पर्य यह है कि–एक जवान लडका इस पापाचरण से जव तक अपने शरीर की दुर्दशा नहीं कर लेता है तव तक उस के माता पिता सोते ही रहते हैं, परन्तु जव यह पापाचरण जवान मनुष्यों पर पूरे तौर से आक्रमण (हमला) कर लेता है और उन की भविष्यत् की सर्व आशाओं को तोड डालता है तव हाय २ करते हैं, यदि वाचकवृन्द गम्भीर भाव से विचार कर देखेंगे तो उन को मालूम हो जावेगा कि इस गुप्त पापाचरण से मनुष्यजाति की जैसी २ अवनति और कुदशा होती है वैसी अवनति और कुदशा ऊपर कही हुई चोरी जारी आदि सव खरावियों से भी (चाहे वे सव इकट्ठी ही क्यों न हों) कदापि नहीं हो सकती है, यह वात भी प्रकट ही है कि दूसरे सव दुराचरणों से उत्पन्न हुई वा होती हुई खरावियां शीघ्र ही विदित हो जाती हैं और स्नेही तथा सहवासी गुणी जन उन से मनुष्य को शीघ्र ही वचा लेते हैं परन्तु यह गुप्त दुराचरण तो अति प्रच्छन्न रीति से अपनी पूरी मार देकर तथा अनेक खरावियों को उत्पन्न कर प्रकट होता है, (इस पर भी आश्चर्य तो यह है कि प्रकट होने पर भी अनुभवी वैद्य वा डाक्टर ही इस को पहिचान सकते है) और पीछे इस पापाचरण से उत्पन्न हुई खरावी और हानियों से वचने का समय नहीं रहता है अर्थात् व्याधि असाध्य हो जाती है ।

है, यह रसी पीछे रंग की तथा गाढ़ी होती है, किसी २ के रसी का थोड़ा दाग पड़ता है और किसी २ के अत्यन्त रसी निकलती है अर्थात् धार के समान गिरती है, पेशाब मन्द धार के साथ में थोड़ी २ कई बार उतरती है और उस के उतरने के समय बहुत

अपने हाथ से ब्रह्मचर्य के भङ्ग करने को एक अति खराब और महा दुःखदायक व्याधि समझना चाहिये इस व्याधि के लक्षण इस रोग से युक्त पुरुष में इस प्रकार पाये जाते हैं—शरीर दुर्बल हो जाता है, स्वभाव चिड़चिड़ा तथा चेहरा फीका और चिन्ता युक्त रहता है, मुखाकृति बिगड़ी हुई दीन तथा खिन्न होती है, आँखें बैठ जाती हैं, मुख लम्बा सा प्रतीत होता है, तथा दृष्टि नीचे को रहती है, इस पाप का करनेवाला जन इस प्रकार भयभीत और चिन्तातुर दीख पड़ता है कि मानो उसका पापाचरण दूसरे को ज्ञात हो जायगा उस का स्वभाव डरपोक बन जाता है और उस की छाती (कलेजा या दिल) बहुत ही अधाहसी (नाहिम्मत) हो जाती है, यहां तक कि वह एक साधारण कारण से भी भड़क उठता है, उसे नींद कम आती है और स्वप्न बहुत आते हैं, उस के हाथ पैर बहुधा ठंढे होते हैं (शरीर की शक्ति के कम हो जाने का यह एक खास चिह्न है) यदि इस कुटेव का शीघ्र ही अवरोध (रुकावट) कर शरीर के सुधारने का योग्य उपाय न किया जावे तो शरीर का प्रतिदिन क्षय होता जाता है, नसें खिंचने लगती हैं, नसें तन जाती हैं और संकुचित हो जाती हैं तथा दाग और आँचकी का रोग उत्पन्न हो जाता है, बहुधा इस खराबी से अपस्मार अर्थात् मृगी का असाध्य रोग हो जाता है, हिष्टीरिया का भूत भी उस के शरीर में घुसे बिना नहीं रहता है (अवश्य घुस जाता है) उस के घुस जाने से बेचारा जवान मनुष्य अपने बालक के समान अथवा सर्वथा ही उन्मादी (पागल) बन जाता है ऊपर कही हुई खराबियों के सिवाय दूसरी भी छोटी २ गुप्त खराबियां होती हैं जिन को रोगी स्वयं ही समझ सकता है तथा प्रायः लज्जा के कारण उन को वह दूसरों से नहीं कह सकता है और यदि कहता भी है तो उस के मूल कारण को गुप्त ही रखता है और विशेष कर माता पिता आदि बड़े जनों को तो इस सब खराबियों से अनभिज्ञ ही रखता है, इन गुप्त खराबियों का कुछ वर्णन इस प्रकार है कि—स्मरणशक्ति कम हो जाती है, तन्दुरुस्ती में अव्यवस्था (गड़बड़) हो जाती है, स्वभाव में एकदम परिवर्तन (फेरफार) हो जाता है, चञ्चलता कम हो जाती है, काम काज में आलस्य और निरुत्साह रहता है, मन ऐसा अव्यवस्थित और अस्थिर बन जाता है कि उस से कोई काम नियम के साथ तथा निश्चयपूर्वक नहीं हो सकता है, मगज सम्बन्धी सब कार्य निर्बल पड़ जाते हैं, पेशाब करते समय उस के कुछ दर्द होता है अथवा पेशाब की हाजत वारंवार हुआ करती है, मूत्रस्थान का मुख लाल रंग का हो जाता है, वीर्य का स्राव बार बार हुआ करता है, साधारण कारण के होने पर भी वह अधीर भीरु और साहसहीन हो जाता है, वीर्य पानी के समान झरता है, वीर्यपात के साथ चमक भी हुआ करती है, फोतों में दर्द हुआ करता है तथा उस में भार अधिक प्रतीत होता है और स्वप्न में बार बार वीर्यपात होता है, कुछ समय के बाद धातुक्षय सम्बन्धी अनेक भयङ्कर रोग उत्पन्न हो जाते हैं जिन से शरीर बिलकुल निकम्मा हो जाता है, इस प्रकार शरीर के निकम्मे पड़ जाने से वह बेचारा मन्दभाग्य मनुष्य धीरे २ पुरुषत्व से हीन हो जाता है, इसी प्रकार जो कोई भी ऐसे दुराचरण में पड़ जाती है तो उस में से शील के सब सद्गुण नष्ट हो जाते हैं तथा उस का जीवन व्यर्थ भी नाश को प्राप्त हो जाता है।

जलन होती है तथा चिनग भी होती है इस लिये इसे चिनगिया सुज़ाख़ कहते हैं, इस के साथ में शरीर में बुखार भी आ जाता है, इन्द्रिय भरी हुई तथा कठिन जेवडी (रस्सी) के समान हो जाती है तथा मन को अत्यन्त विकलता (बेचैनी) प्राप्त होती

शरीर के सम्पूर्ण बॉधों के बॅध जाने के पहिले जो बालक इस कुटेव मे पड जाता है उस का शरीर पूर्ण वृद्धि और विकाश को प्राप्त नहीं होता है क्योंकि इस कुटेव के कारण शरीर की वृद्धि और उस के विकाश मे अवरोध (रुकावट) हो जाता है, उस की हड्डिया और नसे झलकने लगती हैं, ऑखें बैठ जाती हैं और उन के आस पास काला कुंडाला मा हो जाता है, ऑख का तेज कम हो जाता है, दृष्टि निर्बल तथा कम हो जाती है, चेहरे पर फुसिया उठ कर फूटा करती है, बाल झर पड़ते हैं, माथे मे टाल (टाट) पड जाती है तथा उस मे दर्द होता रहता है, पृष्ठवश (पीठका बास) तथा कमर मे शूल (दर्द) होता है, सहारे के विना सीधा बैठा नहीं जाता है, प्रातःकाल बिछौने पर से उठने को जी नहीं चाहता है तथा किसी काम मे लगने की इच्छा नहीं होती है इत्यादि। सत्य तो यह है कि अस्वाभाविक रीति से ब्रह्मचर्य के भग करने रूप पाप की ये सब खराबिया नहीं किन्तु उस से बचने के लिये ये सब शिक्षायें हैं, क्योंकि सृष्टि के नियम से विरुद्ध होने से सृष्टि इस पाप की शिक्षाओं (सजाओं) को दिये विना नहीं रहती है, हम को विश्वास है कि दूसरे किसी शारीरिक पाप के लिये सृष्टि के नियम की आवश्यक शिक्षाओं मे ऐसी कठिन शिक्षाओं का उल्लेख नहीं किया गया होगा और चूकि इस पापाचरण के लिये इतनी शिक्षायें कही गई हैं, इस से निश्चय होता है कि–यह पाप बडा भारी है, इस महापाप को विचार कर यही कहना पडता है कि–इस पापाचरण की शिक्षा (सजा) इतने से ही नहीं पर्याप्त (काफी) होती है, ऐसी दशा मे सृष्टि के नियम को अति कठिन कहा जावे वा इस पाप को अति बडा कहा जावे किन्तु सृष्टि का नियम तो पुकार कर कह रहा है कि इस पापाचरण की शिक्षा (सजा) पापाचरण करनेवाले को ही केवल नहीं मिलती है किन्तु पापाचरण करनेवाले के लडकों को भी थोडी बहुत भोगनी आवश्यक है, प्रथम तो प्राय इस पाप का आचरण करने वालों के सन्तान उत्पन्न ही नहीं होती है, यदि दैवयोग से उस नराधम को सन्तान प्राप्त होती है तो वह सन्तान भी थोडी बहुत मा बाप के इस पापाचरण की प्रसादी को लेकर ही उत्पन्न होती है, इस में सन्देह नहीं है, इस लेख से हमारा प्रयोजन तरुण वयवालों को भडकाने का नहीं है किन्तु इन सब सत्य बातों को दिखला कर उन को इस पापाचरण से रोकने का है तथा इस पापाचरण में पडे हुओं को उस से निकालने का है, इस के अतिरिक्त इस लेख से हमारा यह भी प्रयोजन है कि–योग्य माता पिता पहिले ही से इस पापाचरण से अपने बालकों को बचाने के लिये पूरा प्रयत्न करें और ऐसे पापाचरण वाले लोगों के भी जो सन्तान होवें तो उन को भी उन की अच्छी तरह से देख रेख और सम्भाल रखनी चाहिये क्योंकि मा बाप के रोगों की प्रसादी लेकर जो लडके उत्पन्न होते हैं उस प्रसादी की कुटेव भी उन मे अवश्य होती है, इसी नियम से इस पापाचरण वालों के जो लडके होते हैं उन मे भी इस (हाथ से वीर्यपात करनेरूप) कुटेव का सञ्चार रहता है, इस लिये जिन मा बापों ने अपनी अज्ञानावस्था में जो २ भूलें की हैं तथा उन का जो २ फल पाया है उन सब बातों से विज्ञ होकर और उस विषय के अपने अनुभव को ध्यान में लाकर अपनी सन्तति को ऐसी कुटेव मे न पडने देने के लिये प्रतिक्षण उस पर दृष्टि रखनी चाहिये और इस कुटेव की खराबियो को अपनी सन्तति को युक्ति के द्वारा बतला देना चाहिये।

वृषण (अण्डकोप) सूज कर मोटे हो जाते है और उन में अत्यन्त पीड़ा होती है, पेशाब के बाहर आने का जो लम्बा मार्ग है उस के किसी भाग में सुजाख होता है, जब अगले भाग ही में यह रोग होता है तब रसी थोडी आती है तथा ज्यो २ अन्दर के

को हटाना तथा भावी सन्तान को उस से बचाना हमारा अभीष्ट है, हमारा ही क्या, किन्तु सर्व सज्जनों और महात्माओं का वही अभीष्ट है और होना ही चाहिये, क्योंकि विज्ञान पाकर जो अपने भूले हुए भाई को कुमार्ग से नहीं हटाता है वह मनुष्य नहीं किन्तु साक्षात् पशु है, अब जो तुम ने हानि लाभ की बात कही कि एक की हानि से दूसरे का लाभ होता है इत्यादि, सो तुह्मारा यह कथन बिलकुल अज्ञानता और बालकपन का है, देखो ! सज्जन वे हैं जो कि दूसरे की हानि के विना अपना लाभ चाहते हैं, किन्तु जो परहानि के द्वारा अपना लाभ चाहते हैं वे नराधम (नीच मनुष्य) हैं, देखो ! जो योग्य वैद्य और डाक्टर हैं वे पात्रापात्र (योग्यायोग्य) का विचार कर रोगी से द्रव्य का ग्रहण करते हैं, किन्तु जो (वैद्य और डाक्टर) यह चाहते हैं कि मनुष्यगण बुरी आदतों मे पड कर खूब दु ख भोगें और हम खूब उन का घर लूटें, उन्हे साक्षात् राक्षस कहना चाहिये, देखो ! ससार का यह व्यवहार है कि—एक का काम करके दूसरा अपना निर्वाह करता है, बस इस प्रथा के अनुकूल वर्त्ताव करनेवाले को दोपास्पद (दोष का स्थान) नहीं कहा जा सकता है, अत· वैद्य रोगी का काम करके अर्थात् रोग से मुक्त करके उस की योग्यतानुसार द्रव्य लेवें तो इस में कोई अन्यथा (अनुचित) बात नहीं है, परन्तु उन की मानसिक वृत्ति स्वार्थतत्पर और निकृष्ट नहीं होनी चाहिये, क्योंकि मानसिक वृत्ति को स्वार्थ में तत्पर तथा निकृष्ट कर दूसरों को हानि पहुँचा कर जो स्वार्थसिद्धि चाहते हैं वे नराधम और परापकारी समझे जाते हैं और उन का उक्त व्यवहार सृष्टिनियम के विरुद्ध माना जाता है तथा उस का रोकना अत्यावश्यक समझा गया है, यदि उस का रोकना तुम आवश्यक नहीं समझते हो तथा निकृष्ट मानसिक वृत्ति से एक को हानि पहुँचा कर भी दूसरे के लाभ होने को उत्तम समझते हो तो अपने घर में घुसते हुए चोर को क्यों ललकारते हो ? क्योंकि तुह्मारा धन ले जाने के द्वारा एक की हानि और एक का लाभ होना तुह्मारा अभीष्ट ही है, यदि तुह्मारा सिद्धान्त मान लिया जावे तब तो ससार में चोरी जारी आदि अनेक कुत्सिताचार होने लगेंगे और राजशासन आदि की भी कोई आवश्यकता नहीं रहेगी, महा खेद का विषय है कि—व्याह शादियों में रण्डियो का नचाना, उन को द्रव्य देना, उस द्रव्य को बुरे मार्ग में लगवाना, बच्चों के सस्कारों का विगाडना, रण्डियो के साथ मे (मुकाबिले में) घर की स्त्रियों से गालियाँ गवा कर उन के संस्कारों का विगाडना, आतिशबाजी और नाच तमाशों मे हजारों रुपयों को फूँक देना, बाल्यावस्था में सन्तानों का विवाह कर उन के अपक्क (कच्चे) वीर्य के नाश के लिये प्रेरणा करना तथा अनेक प्रकार के बुरे व्यसनों मे फँसते हुए सन्तानों को न रोकना, इत्यादि महा हानिकारक बातों को तो तुम अच्छा और ठीक समझते हो और उन को करते हुए तुह्में तनिक भी लज्जा नहीं आती है किन्तु हमने जो अपना कर्त्तव्य समझ कर लाभदायक (फायदेमन्द) शिक्षाप्रद (शिक्षा अर्थात् नसीहत देने वाली) तथा जगत् कल्याणकारी बातें लिखी हैं उन को तुम ठीक नहीं समझते हो, वाह जी वाह ! धन्य है तुह्मारी बुद्धि ! ऐसी २ बुद्धि और विचार रखने वाले तुह्मीं लोगों से तो इस पवित्र आर्यावर्त्त देश का सत्यानाश हो गया है और होता जाता है, देखो ! बुद्धिमानों का तो यही परम (मुख्य) कर्त्तव्य है कि जो बुद्धिमान् जन गृहस्थों को लाभ पहुँचाने वाले तथा शिक्षाप्रद उत्तम २

(पिछले अर्थात् भीतरी) भाग में यह रोग होता है त्यों २ रसी विशेष निकलती है और पखुर्णी (बैठक) के भाग में भार (बोझ) सा प्रतीत (मालूम) होता है और पीड़ा विशेष होती है, कभी २ शिश्न के अंदर भी चाँदी पड़ जाती है और उस में से रसी निकलती है परन्तु उसे सुजाख का रोग नहीं समझना चाहिये, चाँदी प्रायः बाहर ही होती है और वह मुख पर ही दीखती है, परन्तु जब भीतरी भाग में होती है तब इन्द्रिय का भाग कठिन और गांठ सा प्रतीत (मालूम) होता है।

सुजाख के ऊपर कहे हुए ये कठिन चिह्न दश से पन्द्रह दिन तक रह कर मन्द (नरम) पड़ जाते हैं, रसी कम और पतली हो जाती है तथा पीले के बदले (स्थान में) सफेद रंग की आने लगती है, जलन और चिनग कम हो जाती है तथा आखिरकार बिलकुल मन्द हो जाती है, तात्पर्य यह है कि-दो तीन हफ्ते में रसी बिलकुल बंद होकर सुजाख मिट जाता है, परन्तु जब सफेद रसी का थोड़ा २ भाग कई महीनों तक निकलता रहता है तब उस को प्राचीन प्रमेह (पुराना सुजाख) कहते हैं, इस पुराने सुजाख का मिटना बहुत कठिन (मुश्किल) हो जाता है अर्थात् दो चार मास तक इस के छिद्र (छेद) मंद रहते हैं, परन्तु जब कुछ गर्म पदार्थ खाने में आ जाता है तब ही यह फिर मालूम पड़ने लगता है अर्थात् पुनः सुजाख हो जाता है, सुजाख के पुराने हो जाने से प्रायः ही उस में से मूत्रकृच्छ्र अर्थात् मूत्रगांठ उत्पन्न हो जाती है और यह इतना कष्ट देती है कि रोगी और वैद्य उस के कारण हैरान हो जाते हैं तथा यह निश्चित (निश्चय की हुई) बात है कि पुराने सुजाख से प्रायः मूत्रकृच्छ्र हो ही जाता है।

कभी २ सुजाख के साथ बद भी हो जाती है तथा कभी २ सुजाख के कारण इन्द्रिय के ऊपर मस्सा भी हो जाता है, इन्द्रिय का पूरा सूज जाता है और उस के बाहर चार

कर्मों का अवलोकन (मुलाहिजा) कर उन के उत्तम कर्मों का पक्ष और उन्हें स्वीकार तथा यदि न [illegible] हितकारक मालूम पड़ें तो उन का स्वयं अंगीकार कर अपने प्यारे बालकों को उन (कर्मों) का उपदेश देकर उन को सन्मार्ग (अच्छे रस्ते) में चलने की चेष्टा करें तथा यदि न [illegible] हितकारी प्रतीत (मालूम) न हों तो उन्हें अपनी ही बुद्धि से अहितकारी न समझकर प्यारे बुद्धिमान् विद्यार्थी (विचारशील) और सद्गृहस्थ जनों के साथ उन के विषय में विचार कर उन की न्यूनता अधिकता तथा हितकारिता और अहितकारिता के विषय में विचार (निश्चय) करें क्योंकि न्याय आदि का विचार करना ही मनुष्य बुद्धि का फल है।

यद्यपि इस विषय में हमें और भी बहुत कुछ लिखना था परन्तु ग्रन्थ के अधिक बढ़ जाने के भय से कुछ नहीं लिखते हैं, हमें आशा है कि-हमारी इस संक्षिप्त (मुख्तसिर) सूचना से ही बुद्धिमान् जन [illegible] (मतलब असल) [illegible] (इस पार) [illegible] पार को पहुंचेंगे॥

(चकत्ते) पड जाते है, मूत्राशय अथवा वृषण का बरम (शोथ) हो जाता है और कभी २ पेशाब भी रुक जाता है ।

यद्यपि सुजाख शरीर के केवल इन्द्रिय भाग का रोग है तथापि तमाम शरीर में उस के दूसरे भी चिह्न उत्पन्न हो जाते हैं, जैसे—शरीर के किसी भाग का फूट निकलना, सन्धियों में दर्द होना, पृष्ठवंश (पीठ के वांस) में वायु का भरना तथा आँखों में दर्द होना इत्यादि, तात्पर्य यह है कि—सुजाख के कारण शरीर के विभिन्न भागों में भी अनेक रोग प्रायः हो जाते हैं ।

चिकित्सा—१–सुजाख का प्रारभ होने पर यदि उस में शोथ (सूजन) अधिक हो तथा असह्य (न सहने योग्य) वेदना (पीड़ा) होती हो तो वेसणी के ऊपर थोड़ी सी जोंकें लगवा देनी चाहियें, परन्तु यदि अधिक शोथ और विशेप वेदना न हो तो केवल गर्म पानी का सेक करना चाहिये ।

२–इन्द्रिय को गर्म पानी में भिगोये हुए कपड़े से लपेट लेना चाहिये ।

३–रोगी को कमर तक कुछ गर्म (सहन हो सके ऐसे गर्म) पानी में दश से लेकर बीस मिनट तक बैठाये रखना चाहिये तथा यदि आवश्यक हो तो दिन में कई वार भी इस कार्य को करना चाहिये ।

४–पेशाब तथा दस्त को लानेवाली औषधियों का सेवन करना चाहिये ।

५–इस रोग में पेशाब के अम्ल होने के कारण जलन होती है इस लिये आलकली तथा सोडा पोटास आदि क्षार (खार) देना चाहिये ।

६–इस में पानी अधिक पीना चाहिये तथा एक भाग दूध और एंक भाग पानी मिला कर धीरे २ पीते रहना चाहिये ।

७–अलसी की चाय बनवा कर पीनी चाहिये तथा जौ का पानी उकाल (उबाल) कर पीना चाहिये, परन्तु आवश्यकता हो तो उस पानी में थोड़ा सा सोडा भी मिला लेना चाहिये ।

८–गोखुरू, ईशवगोल, तुकमालम्बा, बीदाना, बहुफली तथा मौलेठी, इन में से चाहे जिस पदार्थ का पानी पीने से पेशाव की वेदना (पीडा) कम हो जाती है ।

९–सब से प्रथम इस रोग में यह औषधि देनी चाहिये कि—लाइकर आमोनी एसेटेटिस दो औंस, एसेटेट आफ पोटास नब्बे (९०) ग्रेन, गोंद का पानी एक औंस तथा कपूर का पानी तीन औंस, इन सब दवाओं को मिला कर (चौथाई) भाग दिन में चार वार देना चाहिये, परन्तु स्मरण रहे कि उक्त दवा का जो प्रथम भाग (पहिला चौथाई हिस्सा) दिया जावे उस के साथ दस्त लाने के लिये या तो चार ड्राम विलायती निमक मिला देना चाहिये अथवा समय तथा प्रकृति के अनुसार दूसरी किसी औषधि को

गिला देना चाहिये, अथवा गुलाब की कली का, सोनामुखी (सनाय) का तथा एक वा डेढ़ आस पेपसम साल्ट का एक जुलाब देना चाहिये ।

१०–यदि ऊपर लिखी दवा से फायदा न हो तो लाइकर पोटास ६० मिनिम, साल्ट पीटर १ ड्राम, टिंक्चर आफ हायोसायमस २ ड्राम तथा चूने का पानी ४ औंस, इन सब को मिला कर ४ भाग दिन में चार वार देना चाहिये ।

११–पाषाणभेद, धनिया, धमासा, गोखुरू, किरमाला (अमलतास) तथा गुड़, इन सब को प्रत्येक को आधे २ तोले लेकर तथा सब का एक सेर पानी में भिगा कर छान लेना चाहिये, पीछे दिन में दो तीन वार में यह पानी पिला देना चाहिये ।

१२–चावलों का धोवन एक सेर, पेठे के बीज एक तोला, दाख (मुनक्का) एक तोला तथा त्रिफले का चूर्ण एक तोला, इन सब औषधों को चावलों के धोवन में रात भर भिगा कर तथा कुचल कर उन के पानी को छान लेना चाहिये और यही जल सबेरे और शाम को पिलाना चाहिये ।

१३–चाकुरखी ४ ग्रेन और सोडा ३० ग्रेन, इन दोनों औषधियों को मिला कर तीन पुड़ियां बना लेनी चाहियें तथा दिन में तीन वार (सबेरे, दुपहर और शाम को) एक एक पुड़िया देनी चाहिये ।

विशेष वक्तव्य—ऊपर लिखी हुई अंग्रेजी तथा देशी दवा यदि मिल सके तो जब तक रोग न मिटे तब तक उस का सेवन कर उस के गुण को देखना चाहिये परन्तु उस के साथ साधारण खुराक का खाना चाहिये, मद्य, मिर्च, मसाला, हींग और तेल आदि गर्म पदार्थों का सेवन नहीं करना चाहिये ।

देशी वैद्यक शास्त्र ने यद्यपि सुजाख में दूध के पीने का निषेध किया है परन्तु डाक्टर त्रिभुवनदास की सम्मति है कि–इस रोग में दूध के सेवन से किसी प्रकार की हानि नहीं होती है, इस परस्पर विरोध का विचार कर इस विषय में परीक्षा (जांच) की गई तो निश्चित (साबित) हुआ कि दूध के सेवन से सुजाख और कुछ बिगड़ तो नहीं जाता है परन्तु सुजाख के मिटने में देरी लगती है (सुजाख बहुत दिनों में अच्छा होता है)।

जब सुजाख के कठिन चिह्न मन्द (कम) पड़ जावें तब नीचे लिखी हुई दवा तथा पिचकारी का उपयोग करना चाहिये, परन्तु तब तक उक्त दवाइयों को काम में नहीं लाना चाहिये ।

बहुत से अज्ञान (मूर्ख) वैद्य सुजाख का आरंभ होते ही पिचकारी लगवाते हैं, सो यह ठीक नहीं है, क्योंकि ऐसा करने से लाभ होने के बदले प्रायः हानि ही देखी जाती है इस लिये एक वा दो हफ्ते के बाद जब सुजाख हलका पड़ जावे अर्थात् जलन कम हो जावे और रसी थोड़ी सफेद तथा पतली आने लगे तब पेट में लेने के लिये (खाने के लिये) तथा पिचकारी के लगाने के लिये नीचे लिखी हुई दवाइयों को काम में लाना चाहिये ।

ऊपर कहे हुए कार्य के लिये—कोपेवा, कवावचीनी और चन्दन का तेल, ये मुख्य पदार्थ है, इस लिये इन को उपयोग में लाना चाहिये ।

१४—आइल कोपेवा ४ ड्राम, आइल क्युवव २ ड्राम, म्युसिलेज अकासिया २ औंस, आइलसिन्नेमान १५ बूँद और पानी १५ औंस, पहिले पानी के सिवाय चारो औषधियों को मिला कर पीछे उस में पानी मिलावें तथा दिन में तीन वार खाना खाने के पीछे एक एक औंस पीवें, इस दवा के थोड़े दिनों तक पीने से रसी (मवाद) का आना वद हो जावेगा ।

१५—यदि ऊपर लिखी हुई दवा से रसी का आना बंद न हो तो कवावचीनी की वूकी (बुरकी) $\frac{1}{4}$ से $\frac{1}{2}$ तोला तथा कोपेवा वालसाम ४० से ६० मिनिम, इन दोनों को एकत्र करके (मिला कर) उस के दो भाग कर लेने चाहियें तथा एक भाग सवेरे और एक भाग शाम को घृत, मिश्री, अथवा शहद के साथ चाटना चाहिये ।

अथवा केवल (अकेली) कवावचीनी की वूकी (बुरकी अथवा चूर्ण) दो दुअन्नीभर दिन में तीन वार घृत तथा मिश्री के साथ खाने से भी फायदा होता है ।

इस के सिवाय—चन्दन का तेल भी सुजाख पर बहुत अच्छा असर करता है तथा वह अंग्रेजी वालसाम कोपेवा के समान गुणकारी (फायदेमन्द) समझा जाता है ।

१६—लीकर पोटास ३ ड्राम, सन्दल (चन्दन) का तेल ३ ड्राम, टिंकचर आरेनशियाई १ औंस तथा पानी १६ औंस, पहिले पानी के सिवाय शेष तीनों औषधियों को मिला कर पीछे पानी को मिलाना चाहिये तथा दिन में तीन वार खाना खाने के पीछे इसे एक एक औंस पीना चाहिये ।

१७—दश से बीस मिनिम (बूँद) तक चन्दन के तेल को मिश्री में, अथवा बतासे में डाल कर सवेरे और शाम को अर्थात् दिन में दो वार कुछ दिन तक लेना चाहिये, यह (चन्दन का तेल) बहुत अच्छा असर करता है ।

१८—**पिचकारी**—जिस समय ऊपर कही हुई दवाइया ली जाती हैं उस समय इन के साथ इन्द्रिय के भीतर पिचकारी के लगाने का भी क्रम अवश्य होना चाहिये, क्योंकि—ऐसा होने से विशेष फायदा होता है ।

पिचकारी के लगाने की साधारण रीति यही है कि—काच की पिचकारी को दवा के पानी से भर कर उस (पिचकारी) के मुख को इन्द्रिय में डाल देना चाहिये तथा एक हाथ से इन्द्रिय को और दूसरे हाथ से पिचकारी को दबाना चाहिये, जब पिचकारी खाली होजावे (पिचकारी का पानी इन्द्रिय के भीतर चला जावे) तब उस को शीघ्र ही वाहर निकाल लेना चाहिये और दवा को थोड़ी देर तक भीतर ही रहने देना चाहिये अर्थात् इन्द्रिय को थोड़ी देर तक दवाये रहना चाहिये कि जिस से दवा वाहर न निकल

सके, थोड़ी देर के बाद हाथ को छोड़ देना चाहिये (हाथ को अलग कर लेना चाहिये अर्थात् हाथ से इन्द्रिय को छोड़ देना चाहिये) कि जिस से दवा का पानी गर्म होकर बाहर निकल आवे।

पिचकारी के लगाने के उपयोग (काम) में आने वाली दवाइयां नीचे लिखी जाती हैं:—

१९—सलफोकार बोलेट आफ जिंक २० ग्रेन तथा टपकाया हुआ (फिल्टर आदि क्रिया से शुद्ध किया हुआ) पानी ४ औंस, इन दोनों को मिला कर ऊपर लिखे अनुसार पिचकारी लगाना चाहिये।

२०—लेड वाटर ३० से ४० मिनिम, जस्त का फूल १ से ४ ग्रेन, अच्छा मोरथोथा १ से ३ ग्रेन तथा पानी ५ औंस, इन सब को मिला कर ऊपर कही हुई रीति के अनुसार पिचकारी लगाना चाहिये।

२१—कारबोलिक एसिड २० ग्रेन तथा पानी ५ औंस, इन को मिलाकर दिन में चार वा पांच बार पिचकारी लगाना चाहिये।

२२—पुटासीपरमेंगनस २ ग्रेन को ४ औंस पानी में मिला कर दिन में तीन पिचकारी लगाना चाहिये।

२३—नींबू के पत्ते, इमली के पत्ते, नींब के पत्ते और मेंहदी के पत्ते, प्रत्येक दो दो तोले, इन सब को आध सेर पानी में औटा कर दिन में तीन बार उस पानी की पिचकारी लगाना चाहिये।

२४—मोरथोथा ३ रत्ती, रसोत १ मासा, अफीम १ मासा, सफेदा काशगरी १ मासा, गेरू ६ मासे, बबूल का गोंद १ तोला, कलमी शोरा ३ रत्ती तथा माजूफल १ मासा, पहिले गोंद को १५ तोले पानी में औटना (सरल करना) चाहिये, पीछे उस में रसोत डाल कर औटना चाहिये, इस के बाद सब औषधियों को महीन पीस कर उसी में मिला देना चाहिये तथा उसे छान कर दिन में तीन बार पिचकारी लगाना चाहिये।

विशेष वक्तव्य—ऊपर लिखी हुई दवाइयों को अनुक्रम से (क्रम २ से) काम में लाना चाहिये अर्थात् जो दवाई प्रथम लिखी है उस की पहिले परीक्षा कर लेनी चाहिये, यदि उस से फायदा न हो तो उस के पीछे एक एक का अनुभव करना चाहिये अर्थात् पांच दिन तक एक दवा को काम में लाना चाहिये, यदि उस से फायदा न मालूम हो तो दूसरी दवा का उपयोग करना चाहिये।

उक्त दवाओं में जो पानी का सम्मेल (मिलाना) लिखा है उस (पानी) के बदले (एवज) में गुलाब जल भी डाल सकते हैं।

पिचकारी के लिये एक समय के लिये जल का परिमाण एक औंस अर्थात् २॥) रुपये भर है, दिन में दो तीन बार पिचकारी लगाना चाहिये, यह भी स्मरण रहे कि—पहिले

गर्म पानी की पिचकारी को लगाकर फिर दवा की पिचकारी के लगाने से जल्दी फायदा होता है, पुराने सुजाख के लिये तो पिचकारी का लगाना अत्यावश्यक समझा गया है ॥

स्त्री के सुजाख का वर्णन ॥

पुरुष के समान स्त्री के भी सुजाख होता है अर्थात् सुजाख वाले पुरुष के साथ व्यभिचार करने के वाद पाच सात दिन के भीतर स्त्री के यह रोग प्रकट हो जाता है।

इस की उत्पत्ति के पूर्व ये चिह्न दीख पड़ते हैं कि–प्रथम अचानक पेडू में दर्द होता है, वमन (उलटी) होता, है, पेट में दर्द होता है, अन्न अच्छा नहीं लगता है, किसी २ के ज्वर भी हो जाता है, दस्त साफ नहीं होता है तथा किसी २ के पेशाव जलती हुई उतरती है इत्यादि, ये चिह्न पाच सात दिन तक रह कर शान्त हो (मिट) जाते है तथा इन के शान्त हो जाने पर स्त्री को यद्यपि विशेष तकलीफ नहीं मालूम होती है परन्तु जो कोई पुरुष उस के पास जाता है (उस से संसर्ग करता है) उस को इस रोग की प्रसादी के मिलने का द्वार खुला रहता है।

स्त्री के जो सुजाख होता है वह प्रदर से उपलक्षित होता है (जानलिया जाता है)।

सुजाख प्रथम स्त्री की योनि में होता है और वह पीछे वढ़ जाता है अर्थात् वढ़ते २ वह मूत्रमार्ग तक पहुँचता है, इस लिये जिस प्रकार पुरुष के प्रथम से ही कठिन चिह्न होते हैं उस प्रकार स्त्री के नहीं होते हैं, क्योंकि स्त्री का मूत्रमार्ग पुरुष की अपेक्षा वड़ा होता है, इसी लिये इस रोग में स्त्रीको कोपेवा तथा चन्दन का तेल इत्यादि दवा की विशेष आवश्यकता नहीं होती है किन्तु उस के लिये तो इतना ही करना काफी होता है कि उस को प्रथम त्रिफले का जुलाव तीन दिन तक देना चाहिये, फिर महीना वा वीस दिन तक साधारण खुराक देनी चाहिये तथा पिचकारी लगाना चाहिये, क्योंकि स्त्री के लिये पिचकारी की चिकित्सा विशेष फायदेमन्द होती है।

देशी वैद्य इस रोग में स्त्री को प्राय' बग भी दिया करते हैं।

सूचना—इस वर्तमान समय में चारो तरफ दृष्टि फैला कर देखने से विदित होता है कि इस दुष्ट सुजाख रोग से वर्त्तमान में कोई ही पुण्यवान् पुरुष वचे हैं नहीं तो प्रायः यह रोग सव ही को थोड़ा वहुत कष्ट पहुँचाता है।

इस रोग के होने से भी गर्मी के रोग के समान खून में विकार (विगाड़) हो जाता है, इस लिये खून को साफ करनेवाली दवा का महीने वा वीस दिन तक अवश्य सेवन करना चाहिये।

यह रोग भी गर्मी के समान वारसा में उतरता है अर्थात् यह रोग यदि माता पिता के हो तो पुत्र के भी हो जाता है।

इस दुष्ट रोग से अनेक (कई) दूसरे भी भयंकर रोग उत्पन्न हो जाते हैं परन्तु उन सब का अधिक वर्णन यहां पर ग्रन्थ के बढ़जाने के भय से नहीं कर सकते हैं ।

बहुत से अज्ञान (मूर्ख) लोग इस रोग के विद्यमान (मौजूद) होने पर भी स्त्रीसंगम करते हैं जिस से उन को तथा उन के साथ संगम करने वाली स्त्रियों को बड़ी भारी हानि पहुँचती है, इस लिये इस रोग के समय में स्त्रीसंगम कदापि (कभी) नहीं करना चाहिये।

बहुत से लोग इस रोग के महाकष्ट का भोग कर के भी पुनः उसी मार्ग पर चलते हैं, यह उन की परम अज्ञानता (बड़ी मूर्खता) है और उन के समान मूर्ख कोई नहीं है, क्योंकि ऐसा करने से वे मानो अपने ही हाथ से अपने पैर में कुल्हाड़ी मारते हैं और उन के इस व्यवहार से परिणाम में जो उन को हानि पहुँचती है उस को वे ही जान सक्ते हैं, इस लिये इस रोग के होने के समय में कदापि स्त्रीसंगम नहीं करना चाहिये ॥

कास (खांसी) रोग का वर्णन ॥

कारण—नाक और मुख में धूल तथा धुआं के जाने से, प्रतिदिन रूक्ष (रूखे) अन्न और अधिक व्यायाम के सेवन से, आहार के कुपथ्य से, मल और मूत्र के रोकने से तथा छींक के रोकने से प्राणवायु अत्यन्त दुष्ट होकर तथा दुष्ट उदान वायु से मिल कर कास (खाँसी) को उत्पन्न करती है ।

भेद—कास रोग के पांच भेद हैं—वातजन्य, पित्तजन्य, कफजन्य, क्षत (घाव) जन्य और क्षयजन्य, इन पाँचों में से क्रम से पूर्व की अपेक्षा उत्तरोत्तर बलवान् होता है।

लक्षण—वात के कास रोग में माथा हृदय, कनपटी, मस्तक, उदर और पसवाड़ों में शूल (पीड़ा) होता है, मुख उतर जाता है, बल (शक्ति), स्वर (आवाज) और पराक्रम क्षीण हो जाता है, वारंवार तथा सूखी खांसी उठती है और स्वरभेद हो जाता है (आवाज बदल सी जाती है) ।

पित्त के कास रोग में माथा हृदय में दाह (जलन), ज्वर, मुख का सूखना तथा कड़ुआ रहना, प्यास का लगना, पीले रंग के तथा कडुए वमन का होना, शरीर के रंग का पीला हो जाना तथा सब देह में दाह का होना, इत्यादि लक्षण होते हैं ।

कफ के कास रोग में कफ से मुख का लिप्त (लिसा) रहना, अन्न में अरुचि, शरीर का भारी रहना, कण्ठ में खाज (खुजली) का चलना, वारंवार खांसी का उठना, तथा थूकने के समय कफ की गाँठ गिरना, इत्यादि लक्षण होते हैं ।

क्षत (घाव) के कास रोग में प्रथम सूखी खाँसी का होना, पीछे रुधिर से युक्त थूक का गिरना, कण्ठ में पीड़ा का होना, हृदय में सुई के चुभने के समान पीड़ा का होना, दोनों पसवाड़ों में शूल का होना, सन्धियों में पीड़ा, ज्वर, श्वास, प्यास तथा स्वर भेद का होना, इत्यादि लक्षण होते हैं ।

यह क्षतजन्य कास रोग बहुत स्त्रीसंग करने से, भार के उठाने से, बहुत मार्ग चलने से, कुश्ती करने से तथा दौडते हुए हाथी और घोडे आदि के रोकने से उत्पन्न होता है अर्थात् इन उक्त कारणों से रूक्ष पुरुष का हृदय फट जाता है तथा वायु कुपित होकर खासी को उत्पन्न कर देता है।

क्षय के कास रोग में शरीर की क्षीणता, शूल, ज्वर, दाह और मोह का होना, सूखी खासी का उठना, रुधिर मास और शरीर का सूख जाना तथा थूक में रुधिर और कफ-सयुक्त पीप का आना, इत्यादि लक्षण होते है।

यह क्षयजन्य कास रोग कुपथ्य और विषमाशन के करने से, अतिमैथुन से, मल और मूत्र आदि वेगों के रोकने से, अति दीनता से तथा अति शोक से, अग्नि के मन्द हो जाने से उत्पन्न होता है।

चिकित्सा—१–वायु से उत्पन्न हुई खासी में–बथुआ, मकोय, कच्ची मूली और चौपतिया का शाक खाना चाहिये, तैल आदि स्नेह, दूध, ईख का रस, गुड के पदार्थ, दही, कांजी, खट्टे फल, खट्टे मीठे पदार्थ और नमकीन पदार्थ, इन का सेवन करना चाहिये।

अथवा–दश मूल की यवागू का सेवन करना चाहिये, क्योंकि–यह यवागू श्वास खासी और हिचकी को शीघ्र ही दूर करती है तथा यह दीपन (अग्नि को प्रदीप्त करने वाली) और वृष्य (बलदायक) भी है।

२–पित्त से उत्पन्न हुई खासी में–छोटी कटेरी, बडी कटेरी, दाख, कपूर, सुगन्धवाला, सोंठ और पीपल का क्वाथ बना कर तथा उस में शहद और मिश्री डाल कर पीना चाहिये।

३–कफ से उत्पन्न हुई खासी में–पीपल, कायफल, सोंठ, काकड़ासिंगी, भारगी, काली मिर्चे, कलौंजी, कटेरी, सम्हालू, अजवायन, चित्रक और अडूसा, इन के क्वाथ में पीपल का चूर्ण डाल कर पीना चाहिये।

४–क्षत से उत्पन्न हुई खासी में–ईख, कमल, इक्षुवालिका (ईख का भेद), कमल की डडी, नील कमल, सफेद चन्दन, महुआ, पीपल, दाख, लाख, काकड़ासिंगी और सतावर, इन सब को समान भाग ले, बशलोचन दो भाग तथा सब से चौगुनी मिश्री मिलावे, पीछे इस में शहद और मक्खन मिला कर प्रकृति के अनुसार इस की यथोचित मात्रा का सेवन करे।

५–क्षय से उत्पन्न हुई खासी में–कोह के चूर्ण में अडूसे के रस की अनेक भावनायें दे कर तथा उस में शहद मिश्री और मक्खन मिला कर उस का सेवन करना चाहिये।

६–बेर के पत्ते को मनशिल से लपेट कर उस लेप को धूप में सुखा लेना चाहिये,

पीछे उस के धुएँ का पान (धूम्रपान) कराना चाहिये, इस से सब प्रकार की खांसी मिट जाती है ।

७–कटेरी की छाल और पीपल के चूर्ण को शहद के साथ में चाटने से सब प्रकार की खांसी दूर होती है ।

८–प्रथम बहेड़े को घृत में सान कर तथा गोबर से लपेट कर पुटपाक कर लेना चाहिये, पीछे इस के छोटे २ टुकड़े कर मुख में रखना चाहिये, इस से सब प्रकार की खांसी अवश्य ही दूर हो जाती है ।

९–चित्रक की जड़ और छाल तथा पीपल, इन का चूर्ण कर शहद से चाटना चाहिये, इस से खांसी, श्वास और हिचकी दूर हो जाती है ।

१०–नागरमोथा, पीपल, दाख तथा पका हुआ कटेरी का फल, इन के चूर्ण को घृत और शहद में मिला कर चाटना चाहिये, इस के सेवन से क्षयजन्य खांसी दूर हो जाती है ।

११–लौंग, जायफल और पीपल, ये प्रत्येक दो २ तोले, काली मिर्च चार तोले, तथा सोंठ सोलह तोले, इन सब को बारीक पीस कर उस में सब चूर्ण के बराबर मिश्री को पीस कर मिलाना चाहिये तथा इस का सेवन करना चाहिये, इस का सेवन करने से खांसी, ज्वर, अरुचि, प्रमेह, गोला, श्वास, मन्दाग्नि और संग्रहणी आदि रोग नष्ट हो जाते हैं ॥

अरुचि रोग का वर्णन ॥

भेद (प्रकार)—अरुचि रोग आठ प्रकार का होता है—वातजन्य, पित्तजन्य, कफजन्य, सन्निपातजन्य, शोकजन्य, भयजन्य, अतिलोभजन्य और अतिक्रोधजन्य ।

कारण—यह अरुचि का रोग प्रायः मन को क्लेश देने वाले अन्न रूप और गन्ध आदि कारणों से उत्पन्न होता है, परन्तु सुश्रुत आदि कई आचार्यों ने वात, पित्त, कफ, सन्निपात तथा मन का सन्ताप, ये पांच ही कारण इस रोग के माने हैं, अतएव उन्हों ने इस रोग के कारण के आश्रय से पांच ही भेद भी माने हैं ।

लक्षण—वातजन्य अरुचि में—दाँतों का खट्टा होना तथा मुख का कषैला होना, ये दो लक्षण होते हैं ।

पित्तजन्य अरुचि में—मुख—कडुआ, खट्टा, गर्म, विरस और दुर्गन्ध युक्त रहता है ।

कफजन्य अरुचि में—मुख—खारा मीठा, पिच्छल, भारी और शीतल रहता है तथा आँतें कफ से लिप्त (लिसी) रहती हैं ।

शोक, भय, अतिलोभ, क्रोध और मन को बुरे लगनेवाले पदार्थों से उत्पन्न हुई अरुचि में—मुख का स्वाद स्वाभाविक ही रहता है अर्थात् वातजन्य आदि अरुचियों के

समान मुख का स्वाद खट्टा आदि नहीं रहता है, परन्तु शोकादि से उत्पन्न अरुचि में केवल भोजन पर ही अनिच्छा होती है।

सन्निपातजन्य अरुचि में—अन्न पर रुचि का न होना तथा मुख में अनेक रसों का प्रतीत होना, इत्यादि चिह्न होते हैं।

चिकित्सा—१—भोजन के प्रथम सेंधा निमक मिला कर अदरख को खाना चाहिये, इस के खाने से अन्न पर रुचि, अग्नि का दीपन तथा जीभ और कण्ठ की शुद्धि होती है।

२—अदरख के रस में शहद डाल कर पीने से अरुचि, श्वास, खासी, जुखाम और कफ का नाश होता है।

३—पकी हुई इमली और सफेद बूरा, इन दोनों को शीतल जल में मिला कर छान लेना चाहिये, फिर उस में छोटी इलायची, कपूर और काली मिर्च का चूर्ण डाल कर पानक तैयार करना चाहिये, इस पानक के कुरलों को वारंवार मुख में रखना चाहिये, इस से अरुचि और पित्त का नाश होता है।

४—राई, भुना हुआ जीरा, भुनी हुई हींग, सोंठ, सेंधा निमक और गाय का दही, इन सब को छान कर इस का सेवन करना चाहिये, यह तत्काल रुचि को उत्पन्न करती है तथा जठराग्नि को बढ़ाती है।

५—इमली, गुड़ का जल, दालचीनी, छोटी इलायची और काली मिर्च, इन सब को मिला कर मुख में कवल को रखना चाहिये, इस से अरुचि शीघ्र ही दूर हो जाती है।

६—यवानी खाण्डव—अजवायन, इमली, सोंठ, अमलवेत, अनार और खट्टे बेर, ये सब प्रत्येक एक एक तोला, धनिया, संचर निमक, जीरा और दालचीनी, प्रत्येक छः २ मासे, पीपल १०० नग, काली मिर्च २०० नग और सफेद बूरा १६ तोले, इन सब को एकत्र कर चूर्ण बना लेना चाहिये तथा इस में से थोडे से चूर्ण को क्रम २ से गले के नीचे उतारना चाहिये, इस के सेवन से हृदय की पीडा, पसवाडे का दर्द, विबंध, अफरा, खासी, श्वास, सग्रहणी और बवासीर दूर होती है, मुख और जीभ की शुद्धि तथा अन्न पर रुचि होती है।

७—अनारदाना दो पल, सफेद बूरा तीन पल, दालचीनी, पत्रज और छोटी इलायची, ये सब मिला कर एक पल, इन सब का चूर्ण कर सेवन करने से अरुचि का नाश होता है, जठराग्नि का दीपन और अन्न का पाचन, होता है एवं पीनस, खासी तथा ज्वर का नाश होता है॥

छर्दि रोग का वर्णन ॥

अपने वेग से मुख को पूर्ण कर तथा सन्धि पीड़ा के द्वारा सब अंगों में दर्द को उत्पन्न कर दोषों का जो मुख में आना है उस को छर्दि कहते हैं ।

लक्षण—वायु की छर्दि में—हृदय और पसवाड़ों में पीड़ा, मुखशोष (मुख का सूखना), मस्तक और नाभि में शूल, खांसी, स्वर भेद (आवाज का बदल जाना), सुई चुभने के समान पीड़ा, डकार का शब्द, प्रबल वमन में झाग का आना, ठहर २ कर वमन का होना तथा थोड़ा होना, वमन के रंग का काला होना, कषैले और पतले वमन का होना तथा वमन के वेग से अधिक क्लेश का होना, इत्यादि चिह्न होते हैं ।

पित्त की छर्दि में—मूर्छा, प्यास, मुखशोष, मस्तक तालु और नेत्रों में पीड़ा, अँधेरे और चक्कर का आना, और पीले, हरे, कडुए, गर्म, दाहयुक्त तथा धूम्रवर्ण वमन का होना, ये चिह्न होते हैं ।

कफ की छर्दि में तन्द्रा (मींट), मुख में मीठा पन, कफ का गिरना, सन्तोष (अन्न में अरुचि), निद्रा, चित्त का न लगना, शरीर का भारी होना तथा चिकने, गाढ़े, मीठे और सफेद कफ के वमन का होना, ये चिह्न होते हैं ।

सन्निपात अर्थात् त्रिदोष की छर्दि में—शूल, अजीर्ण, अरुचि, दाह, प्यास, श्वास और मोह के साथ उलटी होती है तथा वह उलटी खारी, खट्टी, नीली, सघन (गाढ़ी), गर्म और लाल होती है ।

आगन्तुज छर्दि में-यथायोग्य दोषों के अनुसार अपने २ लक्षण होते हैं[1] ।

कृमि की छर्दि में शूल तथा खाली उबकैटी होती है, एवं इस रोग में कृमि रोग और हृदय रोग के समान सब लक्षण होते हैं ।

छर्दि के उपद्रव—खांसी, श्वास, ज्वर, हिचकी, प्यास, अचेतनता (बेहोशी), हृदय रोग तथा नेत्रों के सामने अँधेरे का आना, ये सब उपद्रव प्रायः छर्दि रोग में होते हैं ।

कारण—अत्यन्त पतले चिकने; अप्रिय तथा खार से युक्त पदार्थों का सेवन करने से कुसमय भोजन करने से, अधिक भोजन करने से, बीभत्स पदार्थों के देखने से, गरिष्ठ (भारी) पदार्थों के खाने से, श्रम भय उद्वेग; अजीर्ण; और कृमिदोष से गर्भिणी स्त्री को गर्भ सम्बधी पीड़ा से तथा वारंवार भोजन करने से तीनों दोष कुपित हो कर बल पूर्वक मुख का आच्छादन कर लेते हैं तथा अंगों में पीड़ा का उत्पन्न कर मुख के द्वारा पेट में पहुँचे हुए भोजन का बाहर निकालते हैं ।

---

१ जो कि पहिले कह चुके हैं ॥

२-पानी उलटी होती है अर्थात् उबकियां आकर रह जाती हैं ॥

चिकित्सा—१–आमाशय (होजरी) के उत्क्लेश के होने से छर्दि होती है, इस लिये इस रोग में प्रथम लघन करना चाहिये ।

२–यदि इस रोग में दोषों की प्रबलता हो तो कफपित्तनाशक विरेचन (जुलाब) लेना चाहिये ।

३–वातजन्य छर्दि रोग में जल को दूध में मिला कर औटाना चाहिये, जब जल जल कर केवल दूध शेप रह जावे तब उसे पीना चाहिये ।

४–भूमिऑवले के यूप में घी और सेंधे निमक को मिला कर पीना चाहिये ।

५–गिलोय, त्रिफला, नीम की छाल और पटोलपत्र के क्वाथ में शहद मिला कर पीने से छर्दि दूर हो जाती है ।

६–छोटी हरड़ के चूर्ण में शहद को मिला कर चाटने से दस्त के द्वारा दोषों के निकल जाने से शीघ्र ही छर्दि मिट जाती है ।

७–वायविडग, त्रिफला और सोंठ, इन के चूर्ण को शहद में मिला कर चाटना चाहिये ।

८–वायविडग, केवटी, मोथा और सोंठ, इन के चूर्ण का सेवन करने से कफ की छर्दि मिट जाती है ।

९–ऑवले, खील और मिश्री, ये सब एक पल लेकर तथा पीस कर पाव भर जल में छान लेना चाहिये, पीछे उस में एक पल शहद को डाल कर पुन· कपडे से छान लेना चाहिये, पीछे इस का सेवन करना चाहिये, इस का सेवन करने से त्रिदोप से उत्पन्न हुई छर्दि शीघ्र ही नष्ट हो जाती है ।

१०–गिलोय के हिम[1] में शहद डाल कर पीने से त्रिदोष की कठिन छर्दि भी मिट जाती है ।

११–पित्तपापडे के क्वाथ में शहद डाल कर पीने से पित्त की छर्दि मिट जाती है ।

१२–**एलादि चूर्ण**—इलायची, लौग, नागकेशर, बेरे[2] की गुठली, खीलें[3], प्रियङ्गु, मोथा, चन्दन और पीपल, इन सब औषधियों को समान भाग लेकर तथा इन का चूर्ण कर मिश्री और शहद को मिला कर उसे चाटना चाहिये इस से कफ, वायु और पित्त की छर्दि मिट जाती है ।

१३–सूखे हुए पीपल के वक्कल (छाल) को लेकर तथा उस को जला कर राख कर लेना चाहिये, उस राख को किसी पात्र में जल डाल कर घोल देना चाहिये, थोड़ी देर में उस के नितरे हुए जल को लेकर छान लेना चाहिये, इस जल के पीने से छर्दि और अरुचि शीघ्र ही मिट जाती है ॥

१–हिम की विधि औषधप्रयोग वर्णन नामक प्रकरण में पहिले लिख चुके हैं ॥

२–वेर की अर्थात् झडवेरी के वेर की ॥

३–भूने हुए धान (जिन में से चावल निकलते हैं) ॥

उतराफाल्गुनी नक्षत्र में उखाड कर उसे कमर मे बॉधने से रक्तप्रदर अवश्य मिट जाता है।

५—रसोत और चौलाई की जड को वारीक पीस कर चावलो के जल में इसे तथा शहद को मिला कर पीने से त्रिदोष जन्य प्रदर नष्ट हो जाता है।

६—अशोक वृक्ष की चार तोले छाल को वत्तीस पल जलमें औटावे, जब आठ पल शेष रहे तब उस में उतना ही (आठ पल) दूध मिला कर उसे पुनः औटावे, जब केवल दूध शेष रह जावे तव उसे उतार कर शीतल करे, इस में से चार पल दूध प्रातःकाल पीना चाहिये, अथवा जठराग्नि का वलावल विचार न्यूनाधिक मात्रा का सेवन करे, इस से अति कठिन भी रक्तप्रदर शीघ्र ही दूर हो जाता है।

७—कुश की जड को चावलों के धोवन में पीस कर तीन दिन तक पीने से प्रदर रोग शान्त हो जाता है।

८—दारुहलदी, रसोत, चिरायता, अडूसा, नागरमोथा, वेलगिरी, लाल चन्दन और कमोदिनी के फूल, इन के काथ को शहद डाल कर पीना चाहिये, इस के पीने से सव प्रकार का प्रदर अर्थात् लाल सफेद और पीडा युक्त भी शान्त हो जाता है॥

राजयक्ष्मा रोग का वर्णन॥

कारण—अधोवायु तथा मल और मूत्रादि वेगो के रोकने से, क्षीणता को उत्पन्न करने वाले मैथुन, लघन और ईर्ष्या आदि के अतिसेवन से, वलवान् के साथ युद्ध करने से तथा विषम भोजन से सन्निपातजन्य यह राजयक्ष्मा रोग उत्पन्न होता है।

लक्षण—कन्धे और पसवाडो में पीडा, हाथ पैरो में जलन और सव अगों में ज्वर, ये तीन लक्षण इस रोग में अवश्य होते हैं, इस प्रकार के यक्ष्मा को त्रिरूप यक्ष्मा कहते है। अन्न में अरुचि, ज्वर, श्वास, खासी, रुधिर का निकलना और स्वरभग[1], ये छः लक्षण जिस यक्ष्मा में होते है उस को षट्रूप राजयक्ष्मा कहते है।

वायु की अधिकता वाले यक्ष्मा में—स्वरभेद, शूल, कन्धे और पसवाडों का सूखना, ये लक्षण होते हैं।

पित्त की अधिकता वाले यक्ष्मा में—ज्वर, दाह, अतीसार और थूक के साथ में रुधिर का गिरना, ये लक्षण होते हैं।

कफ की अधिकता वाले यक्ष्मा में—मस्तक का कफ से भरा रहना, भोजन पर अरुचि, खासी और कण्ठ का विगडना, ये लक्षण होते है।

सन्निपातजन्य राजयक्ष्मा में—सव दोषों के मिश्रित[2] लक्षण होते है।

१—स्वरभङ्ग अर्थात् आवाज का टूट जाना, अर्थात् वैठ जाना॥

२—मिश्रित अर्थात् मिले हुए॥

साध्यासाध्यविचार—जो यक्ष्मा रोग उक्त ग्यारह लक्षणों से युक्त हो, अथवा छः लक्षणों से वा तीन लक्षणों (ज्वर खांसी और रुधिर का गिरना इन तीन लक्षणों) से युक्त हो उस को असाध्य समझना चाहिये ।

हां इस में इतनी विशेषता अवश्य है कि–उक्त तीनों प्रकार का (ग्यारह लक्षणों वाला, छः लक्षणों वाला तथा तीन लक्षणों वाला) यक्ष्मा मांस और रुधिर से क्षीण मनुष्य का असाध्य तथा बलवान् पुरुष का कष्टसाध्य समझा जाता है ।

इस के सिवाय–जिस यक्ष्मा रोग में रोगी अत्यन्त भोजन करने पर भी क्षीण होता जावे, अतीसार होते हों, सब अंग सूज गये हों तथा रोगी का पेट सूख गया हो वह यक्ष्मा भी असाध्य समझा जाता है ।

चिकित्सा—१–जिस रोगी के दोष अत्यन्त बढ़ रहे हों तथा जो रोगी, बलवान् हो ऐसे यक्ष्मा रोगवाले के प्रथम वमन और विरेचन आदि पाँच कर्म करने चाहियें,

---

१–असाध्य अर्थात् चिकित्सा से भी न मिटने वाला ॥

२–कष्टसाध्य अर्थात् मुश्किल से मिटने वाला ॥

३–वमन विरेचन अनुवासन निरूहण और नावन (नस्य), ये पाँच कर्म कहाते हैं, इन में से वमि आदि का कुछ कथन पूर्व कर चुके हैं तथापि यहां पर इन पाँचों कर्मों का विस्तार पूर्वक वर्णन करते हैं, सब से पहिला कर्म वमन अर्थात् उलटी कराना है, इस की यह विधि है कि–शरद् ऋतु, वर्षा ऋतु और वसन्त ऋतु में वमन कराना चाहिये । वमन के योग्य प्राणी—बलवान्, जिस के कफ भरा हो हल्लासादि कफ के रोगों से जो पीड़ित हो जिन को वमन कराना हित हो तथा जो धीर चित्त वाला हो इन सब को वमन कराना चाहिये वमन के योग्य रोग—विषदोष स्तनसम्बन्धी बालरोग मन्दाग्नि श्लीपद, अर्बुद हृदयरोग कुष्ठ विसर्प प्रमेह, अजीर्ण भ्रम विदारिका अपची खांसी श्वास पीनस अण्डवृद्धि, मृगी ज्वर उन्माद, रक्तातीसार नाक तालु और ओष्ठ का पकना कान का बहना अधिजिह्व गलशुण्डी अतीसार पित्तकफजन्य रोग मेदोरोग और अरुचि इन रोगों में वमन कराना चाहिये वमन कराना निषेध—तिमिररोगी गुल्मरोगी उदररोगी कृश अत्यन्त वृद्ध गर्भवती स्त्री अत्यन्त स्थूल उरःक्षत आदि घाव वाला मद से पीड़ित बालक रूक्ष निरूहण बस्ति जिस को दी गई हो उदावर्त तथा ऊर्ध्व रक्त पित्त वाला और केवल वातजन्य रोग युक्त इन को वमन बड़ी कठिनता से होता है, इस लिये इन सब को और पाण्डुरोगी कृमिरोगी पढ़ने से जिस का कण्ठ बैठ गया हो अजीर्ण से व्यथित और जो विष के विकार से दुःखित हो इन सब को वमन कराना चाहिये जो कफ से व्याप्त हैं, इन को मधुर का काढ़ा पिला कर वमन कराना चाहिये यदि सुकुमार कृश बालक वृद्ध और वमन से डरने वालों को वमन कराना हो तो यवागू दूध छाछ वा दही आदि पदार्थ पिला कर वमन कराना चाहिये वमन कराने का यह नियम है कि जिस को वमन कराना हो उस को जो पदार्थ अनुकूल न हो अथवा अरुचि कारी हो तथा कफकारी हो उस पदार्थ को खिला कर प्रथम दोषों को उत्क्लेशित (निकलने के सम्मुख) कर के फिर स्नेहन और स्वेदन कर के वमन करावे क्योंकि ऐसा करने से वमन ठीक हो जाता है, वह

परन्तु क्षीण और दुर्बल रोगी के उक्त पञ्च कर्म नहीं करने चाहिये, क्योंकि क्षीण और दुर्बल रोगी उक्त पंच कर्मों के करने से शीघ्र ही मर जाता है, क्योंकि क्षीण पुरुष के शरीर में उक्त पांचों कर्म विष के समान असर करते है, देखो ! आचार्यों ने कहा है कि–"राजयक्ष्मा वाले रोगी का बल मल के आधीन है और जीवन शुक्र के आधीन है" इस लिये यक्ष्मा वाले रोगी के मल और वीर्य की रक्षा सावधानी के साथ करनी चाहिये।

वमनकारी पदार्थों में सेंधानिमक और शहद हितकारी हैं, वमन में वीभत्स (जो न रुचे ऐसी) औषधि देनी चाहिये तथा विरेचन में रुचिकारी औषधि देनी चाहिये, काढे की ४ पल औषधों को चार सेर जल मे औटावे, जव दो सेर जल शेष रहे तव उतार कर तथा छान कर वमन के लिये रोगी को देवे। **मात्रा**—वमन के लिये पीने योग्य क्वाथ की आठ सेर की मात्रा वडी है, छ सेर की मध्यम है और तीन सेर की मात्रा हीन होती है, परन्तु वमन, विरेचन और रुधिर के निकालने मे १३॥ पल अर्थात् ५४ तोले का सेर माना गया है। **कल्क वा चूर्णादि की मात्रा**—वमनादि में कल्क चूर्ण और अवलेह की उत्तम मात्रा वारह तोले की है, आठ तोले की मध्यम तथा चार तोले की अधम मात्रा है। **वमन में वेग**—वमन में आठ वेगों के पीछे पित्त का निकलना उत्तम है, छ वेगों के पीछे पित्त का निकलना मध्यम है तथा चार वेगों के पीछे पित्त का निकलना अधम है, कफ को चरपरे तीक्ष्ण और उष्ण पदार्थों-से दूर करे, पित्त को स्वादिष्ट और शीतल पदार्थों से तथा वात मिश्रित कफ को स्वादिष्ट, नमकीन, खट्टे और गर्म मिले पदार्थों से दूर करे, कफ की अधिकता में पीपल, मैनफल और सेंधानिमक, इन के चूर्ण को गर्म जल के साथ पीवे, पित्त की अधिकता मे पटोलपत्र, अडूसा और नीम के चूर्ण को शीतल जल के साथ पीवे तथा कफ युक्त वात की पीडा में मैनफल के चूर्ण की फकी ले कर ऊपर से दूध पीवे, अजीर्ण रोग में गर्म जल के साथ सेंधेनिमक के चूर्ण को खाकर वमन करे, जव वमन कर्त्ता औषध को पी चुके तव ऊँचे आसन (मेज वा कुर्सी) पर वैठ कर कण्ठ को अण्ड के पत्ते की नाल से वारवार खुजला कर वमन करे। **वमन ठीक न होने के अवगुण**—मुख से पानी का वहना, हृदय का रुकना, देह मे चकत्तों का पड जाना तथा सव देह मे खुजली का चलना, ये सव वमन के ठीक रीति से न होने से उत्पन्न होते हैं। **अत्यन्त वमन के उपद्रव**—अत्यन्त वमन के होने से प्यास, हिचकी, डकार, वेहोशी, जीभ का निकलना, आँख का फटना, मुख का खुला रह जाना, रुधिर की वमन का होना, वारं वार थूक का आना और कण्ठ में पीडा का होना, ये अति वमन के उपद्रव हैं। **अति वमन का यत्न**—यदि वमन अत्यन्त होते होवें तो साधारण जुलाव देना चाहिये, यदि जीभ भीतर चली गई हो तो स्निग्ध खट्टे खारे रस से युक्त घी और दूध के कुल्ले करने चाहिये तथा उस प्राणी के आगे वैठ कर दूसरे लोगों को नीवू आदि खट्टे फलों को चूसना चाहिये, यदि जीभ वाहर निकल पडी हो तो तिल वा दाख के कल्क से लेपित कर जिह्वा का भीतर प्रवेश कर दे, यदि अति वमन से आँख फट कर निकल पडी हो तो घृत चुपड कर धीरे २ भीतर को दवावे, यदि जावडा फटे का फटा (खुला ही) रह गया हो तो स्वेदन कर्म करे, नस्य देवे तथा कफ वात हरणकर्त्ता यत्न करे, यदि अति वमन से रुधिर गिरने लगे तो रक्तपित्त पर लिखी हुई चिकित्सा को करे, यदि अति वमन से तृषा आदि उपद्रव हो गये हों तो आँवला, रसोत, खस, खील, चन्दन और नेत्रवाला को जल मे मथ कर (मन्थ तैयार कर) उस में घी, शहद और खाड डाल कर पिलावे।

४–मिश्री, घी और शहद, इन को मिला कर सेवन करना चाहिये तथा इस के ऊपर दूध पीना चाहिये, इस के सेवन से यक्ष्मा का नाश तथा शरीर में पुष्टि होती है।

५–**सितोपलादि चूर्ण**—मिश्री १६ तोले, वंशलोचन ८ तोले, पीपल ४ तोले, छोटी इलायची के वीज २ तोले और दालचीनी १ तोले, इन सब का चूर्ण कर शहद और घी मिला कर चाटना चाहिये, इस के सेवन से राजयक्ष्मा, खांसी, श्वास, ज्वर, पसवाड़े का शूल, मन्दाग्नि, जिह्वा की विरसता, अरुचि, हाथ पैरों का दाह, और ऊर्ध्वगत रक्तपित्त, ये सब रोग शीघ्र ही नष्ट होते है।

तीक्ष्ण मात्रा देनी चाहिये, (मृदु, मध्यम और तीव्र औषधों से मृदु, मध्यम और तीव्र मात्रायें कहलाती हैं) नरम कोठे वाले प्राणी को दाख, दूध और अण्डी के तेल आदि से विरेचन होता है, मध्यम कोठे वाले को निसोत, कुटकी और अमलतास से विरेचन होता है और क्रूर कोठे वाले को थूहर का दूध, चोक, दन्ती और जमालगोटे आदि से विरेचन होता है। **विरेचन के वेग**—तीस वेग के पीछे आम का निकलना उत्तम, वीस वेग के पीछे मध्यम और दश वेग के पीछे अधम होता है। **विरेचन की मात्रा**—आठ तोले की उत्तम, चार तोले की मध्यम और दो तोले की अधम मात्रा मानी जाती है, परन्तु यह परिणाम क्वाथादि की औषधि की मात्रा का है, विरेचन के लिये कल्क, मोदक और चूर्ण की मात्रा एक तोले की ही है, इन का सेवन शहद, घी और अवलेह के साथ करना चाहिये, मात्रा का यह साधारण नियम कहा गया है इस लिये मात्रा एक तोले से लेकर दो तोले पर्यन्त बुद्धिमान् वैद्य रोगी के वलावल का विचार कर दे सकता है। **दोषानुसार विरेचन**—पित्त के रोग मे निसोत के चूर्ण को द्राक्षादि क्वाथ के साथ में, कफ के रोगों मे सोंठ, मिर्च और पीपल के चूर्ण को त्रिफला के काढे और गोमूत्र के साथ मे, वायु के रोगों में निसोत, सेंधानिमक और सोंठ के चूर्ण को खट्टे पदार्थों के साथ मे देना चाहिये, अण्डी के तेल को दुगुने गाय के दूध में मिला कर पीने से शीघ्र ही विरेचन होता है, परन्तु अण्डी का तेल स्वच्छ होना चाहिये। **ऋतु के अनुसार विरेचन**—वर्षा ऋतु में निसोत, इन्द्रजौं, पीपल और सोंठ के चूर्ण मे दाख का रस तथा शहद डाल कर लेना चाहिये, शरद् ऋतु मे निसोत, धमासा, नागरमोथा, खाड, नेत्रवाला, चन्दन, दाख का रस और मौलेठी, इन सब को शीतल जल मे पीस कर तथा छान कर (विना औटाये ही) पीना चाहिये, शिशिर और वसन्त ऋतु में पीपल, सोंठ, सेंधानिमक, सारिवा और निसोत का चूर्ण शहद मे मिला कर खाना चाहिये। **अभयादि मोदक**—विरेचन के लिये अभयादि मोदक भी उत्तम पदार्थ है, इस का विधान वैद्यक ग्रन्थों मे देख लेना चाहिये, यह विरेचन के लिये तो उत्तम है ही, किन्तु विरेचन के सिवाय यह विषमज्वर, मन्दाग्नि, पाण्डुरोग, खासी, भगन्दर तथा वातजन्य पीठ; पसवाडा, जाघ और उदर की पीडा को भी दूर करता है। **विरेचन में नियम**—विरेचनकारक औषधि को पी कर शीतल जल से नेत्रों को छिड़कना चाहिये तथा सुगन्धि (अतर आदि) को सूँघ कर पान खाना चाहिये, हवा में नहीं वैठना चाहिये तथा दस्त के वेग को रोकना नहीं चाहिये, इन के सिवाय नींद का लेना तथा शीतल जलस्पर्श का त्याग करना चाहिये, वार वार गर्म जल को वा सोंफ आदि के अर्क को पीना चाहिये, जैसे वमनकारक औषधि के लेने से कफ, पी हुई औषधि, पित्त और वात निकलते हैं उसी प्रकार विरेचन की औषधि के लेने से मल, पित्त, पी हुई औषधि और कफ निकलते हैं। **उत्तम विरे-**

९–जातीफलादि चूर्ण—जायफल, वायविडंग, चित्रक, तगर, तिल, तालीसपत्र, चन्दन, सोंठ, लौंग, छोटी इलायची के बीज, भीमसेनी कपूर, हरड़, आमला, काली मिर्च, पीपल और वंशलोचन, ये प्रत्येक तीन २ तोले, चतुर्जात की चारों औषधियों के तीन तोले तथा भांग सात पल, इन सब का चूर्ण करके सब चूर्ण के समान मिश्री मिलानी चाहिये, इस के सेवन से क्षय, खांसी, श्वास, संग्रहणी, अरुचि, जुखाम और मन्दाग्नि, ये सब रोग शीघ्र ही नष्ट होते हैं।

चन न होने के लक्षण—जिस को उत्तम प्रकार से विरेचन न हुआ हो उस की नाभि में पीड़ा, कुक्षि में भारीपन, कमर में दर्द, मल और अधोवायु का रुकना, हृदय में खुजली का चलना, चकत्तों का उठना, देह का भारी होना, अरुचि, अफरा और वमन का होना इत्यादि लक्षण होते हैं, ऐसी दशा में पाचन औषध दे कर पाचन करना चाहिये, जब मल पक जावे और स्निग्ध हो जावे तब पुनः जुलाब देना चाहिये, ऐसा करने से जुलाब न लगने के उपद्रव मिट कर तथा अग्नि प्रदीप्त हो कर शरीर हलका हो जाता है। अधिक विरेचन होने के उपद्रव—अधिक विरेचन होने से मूर्छा, गुदभ्रंश (कांच का निकलना), पेट में दर्द, आम का अधिक गिरना तथा दस्त में रुधिर और चर्बी आदि का निकलना इत्यादि उपद्रव होते हैं, ऐसी दशा में रोगी के शरीर पर शीघ्र ही शीतल जल छिड़कना चाहिये, चावलों के धोवन में शहद मिला कर पिलाना चाहिये, हलका सा वमन कराना चाहिये, आम की छाल को दही और कांजी में पीस कर नाभि पर लेप करने से दस्तों का घोर उपद्रव भी मिट जाता है, चावलों का धोवन, साठी चावल, बकरी का दूध, शीतल पदार्थ तथा ग्राही पदार्थ इत्यादि पदार्थ अधिक दस्तों के होने को बंद कर देते हैं। उत्तम विरेचन होने के लक्षण—शरीर का हलका पन, मन में प्रसन्नता तथा अधोवायु का अनुकूल चलना, ये सब उत्तम विरेचन के लक्षण हैं। विरेचन के गुण—इन्द्रियों में बल का होना, बुद्धि में स्वच्छता, जठराग्नि का दीपन तथा रसादि धातु और अवस्था का स्थिर होना, ये सब विरेचन के गुण हैं। विरेचन में पथ्यापथ्य—अत्यन्त हवा में बैठना, शीतल जल का स्पर्श, तैल की मालिश, अजीर्ण, भारी भोजन, व्यायामादि परिश्रम और मैथुन, ये सब विरेचन में अपथ्य हैं, तथा चावल और साठी चावल, मूंग आदि का मण्ड, ये सब पदार्थ विरेचन में पथ्य अर्थात् हितकारक हैं॥

तीसरा कर्म अनुवासन है—यह बस्ति (गुदा में पिचकारी लगाने) का प्रथम भेद है, तात्पर्य यह है कि तैल आदि पदार्थों की जो पिचकारी लगाते हैं उस को अनुवासन बस्ति कहते हैं, इसी का एक भेद मात्रा बस्ति है, मात्रा बस्ति में घृत आदि की मात्रा आठ तोले की अथवा चार तोले की दी जाती है। अनुवासन बस्ति के अधिकारी—रूक्ष, तीव्र अग्नि वाला तथा केवल वातरोग वाला, ये सब इस बस्ति के अधिकारी हैं। अनुवासन बस्ति के अनधिकारी—कुष्ठरोगी, प्रमेहरोगी, अत्यन्त स्थूल शरीर वाला तथा उदररोगी, ये सब इस बस्ति के अनधिकारी हैं, इन के सिवाय अजीर्णरोगी, उन्माद वाला, तृषा से व्याकुल, शोथरोगी, मूर्छित, अरुचि युक्त, भयभीत, श्वासरोगी तथा खास और क्षयरोग से युक्त, इन को न तो यह (अनुवासन) बस्ति देनी चाहिये और न निरूहण बस्ति (जिस का वर्णन आगे किया जायगा) देनी चाहिये। बस्ति का विधान—बस्ति का नेत्र (नली) सुवर्ण आदि धातु की [illegible] की बांस की नरसल की हाथीदांत की गाय के सींग की अथवा स्फटिक आदि मणियों की बनानी

७–अडूसे का रस एक सेर, सफेद चीनी आधसेर, पीपल आठ तोले और घी आठ तोले, इन सब को मन्दाग्नि से पका कर अवलेह (चटनी) बना लेना चाहिये, इस के शीतल हो जाने पर ३२ तोले शहद मिलाना चाहिये, इस का सेवन करने से राजयक्ष्मा, खासी, श्वास, पसवाड़े का शूल, हृदय का शूल, रक्तपित्त और ज्वर, ये सब रोग शीघ्र ही मिट जाते हैं।

८–बकरी का घी चार सेर, बकरी की मेंगनियों का रस चार सेर, बकरी का मूत्र चार सेर, बकरी का दूध चार सेर तथा बकरी का दही चार सेर, इन सब को एकत्र पका

चाहिये, एक वर्ष से लेकर छ वर्ष तक के बालक के लिये छ अगुल के, छ वर्ष से लेकर बारह वर्ष तक के लिये आठ अगुल के तथा बारह वर्ष से अधिक अवस्था वाले के लिये बारह अगुल के लम्बे वस्ति के नेत्र बनाने चाहियें, छ अगुल की नली में मूग के दाने के समान, आठ अगुल की नली मे मटर के समान तथा बारह अगुल की नली मे बेर की गुठली के समान छिद्र रक्खे, नली चिकनी तथा गाय की पूँछ के समान (जड में मोटी और आगे क्रम २ से पतली) होनी चाहिये, नली मूल में रोगी के अंगूठे के समान मोटी होनी चाहिये और कनिष्ठिका के समान स्थूल होनी चाहिये तथा गोल मुख की होनी चाहिये, नली के तीन भागों को छोड कर चतुर्थ भाग रूप मूल में गाय के कान के समान दो कर्णिकायें बनानी चाहियें तथा उन्हीं कर्णिकाओं में चर्म की कोथली (थैली) को दो बन्धनों से खूब मजबूत बाध देना चाहिये, वह वस्ति लाल वा कषैले रंग से रगी हुई, चिकनी और दृढ होनी चाहिये, यदि घाव में पिचकारी मारनी हो तो उस की नली आठ अगुल की मूग के समान छिद्र वाली और गीध के पाख की नली के समान मोटी होनी चाहिये। **वस्ती के गुण**—वस्ति का उत्तम प्रकार से सेवन करने से शरीर की पुष्टि, वर्ण की उत्तमता, बल की वृद्धि, आरोग्यता और वायु की वृद्धि होती है। **ऋतु के अनुसार वस्ति**—शीत काल और वसन्त ऋतु में दिन में स्नेह वस्ति देना चाहिये तथा ग्रीष्म वर्षा और शरद ऋतु में स्नेह वस्ति रात्रि में देना चाहिये। **वस्ति विधि**—रोगी को बहुत चिकना न हो ऐसा भोजन करा के यह वस्ति देनी चाहिये किन्तु बहुत चिकना भोजन कराके वस्ति नहीं देनी चाहिये, क्योंकि ऐसा करने से दो प्रकार से (भोजन मे और वस्ति मे) स्नेह का उपयोग होने से मद और मूर्छा रोग उत्पन्न होते हैं तथा अत्यन्त रूक्ष पदार्थ खिला कर वस्ति के देने से बल और वर्ण का नाश होता है, अत. अल्पस्निग्ध पदार्थों को खिला कर वस्ति करनी चाहिये। **वस्ति की मात्रा**—यदि वस्ति हीन मात्रा से दी जावे तो यथोचित कार्य को नहीं करती है, यदि अधिक मात्रा से दी जावे तो अफरा, कृमि और अतीसार को उत्पन्न करती है इस लिये वस्ति न्यूनाधिक मात्रा से नहीं देनी चाहिये, अनुवासन वस्ति मे स्नेह की छ पल की मात्रा उत्तम, तीन पल की मध्यम और डेढ पल की मात्रा अधम मानी गई है, स्नेह में जो सोंफ और सेंधे नमक का चूर्ण डाला जावे उस की मात्रा छ मासे की उत्तम, चार मासे की मध्यम और दो मासे की हीन है। **वस्ति का समय**—विरेचन देने के बाद ७ दिन के पीछे जब देह मे बल आ जावे तब अनुवासन वस्ति देनी चाहिये। **वस्ति देने की रीति**—रोगी के खूब तेल की मालिश कराके धीरे २ गर्म जल से बफारा दिला कर तथा भोजन कराके कुछ इधर उधर घुमा कर तथा मल मूत्र और अधोवायु का त्याग करा के स्नेह वस्ति देनी चाहिये, इस की रीति यह है कि–रोगी को बायें करवट सुला के बाईं

इस में एक सेर शहद मिलावे, पीछे इस को औटा कर शीतल किये हुए जल के साथ अग्नि का बलावल विचार कर लेवे, इस के सेवन से राजयक्ष्मा, रक्तपित्त, क्षतक्षय, वातजन्य तथा पित्तजन्य श्वास, हृदय का शूल, पसवाड़े का शूल, वमन, अरुचि और ज्वर, ये सब रोग शीघ्र ही शान्त हो जाते हैं।

१०-**जीवन्त्यादिघृत**—घृत चार सेर, जल सोलह सेर, कल्क के लिये जीवन्ती, मौलेठी, दारव, त्रिफला, इन्द्रजौ, कचूर, कूठ, कटेरी, गोखुरू, खिरेटी, नील कमल, भूँय

देने के पीछे तत्काल ही केवल स्नेह पीछा निकले उस के बहुत थोडी मात्रा की वस्ति देनी चाहिये, क्योंकि स्निग्ध शरीर में दिया हुआ स्नेह स्थिर नहीं रहता है। **वस्ति के ठीक न होने के अवगुण**—वस्ति से यथोचित शुद्धि न होने से (विष्ठा के साथ तेल के पीछा न निकलने से) अगों की शिथिलता, पेट का फूलना, शूल, श्वास तथा पक्वाशय मे भारीपन, इत्यादि अवगुण होते हैं, ऐसी दशा मे रोगी को तीक्ष्ण औषधों की तीक्ष्ण निरूहण वस्ति देनी चाहिये, अथवा वस्त्रादि की मोटी वत्ती वना कर उस में औषधों को भर कर अथवा औषधों को लगा कर गुदा मे उस का प्रवेश करना चाहिये, ऐसा करने से अधोवायु का अनुलोमन (अनुकूल गमन) हो कर मल के सहित स्नेह वाहर निकल जावेगा, ऐसी दशा मे विरेचन का देना भी लाभकारी होता है तथा तीक्ष्ण नस्य का देना भी उत्तम होता है, अनुवासन वस्ति देने पर यदि स्नेह वाहर न निकलने पर भी किसी प्रकार का उपद्रव न करे तो समझ लेना चाहिये कि शरीर के रूक्ष होने से वस्ति का सव स्नेह उस के शरीर मे काम में आ गया है, ऐसी दशा में उपाय कर स्नेह के निकालने की कोई आवश्यकता नहीं है, वस्ति देने पर यदि स्नेह एक दिन रात्रि मे भी पीछा न निकले तो शोधन के उपायों से उसे वाहर निकालना चाहिये, परन्तु स्नेह के निकालने के लिये दूसरी वार स्नेह वस्ति नहीं देनी चाहिये। **अनुवासन तैल**—गिलोय, एरड, कञ्जा, भारंगी, अडूसा, सौंधिया तृण, सतावर, कटसरैया और कौवा ठोडी, ये सव चार २ तोले, जौ, उडद, अलसी, वेर की गुठली और कुलथी, ये सव आठ २ तोले लेवे, इन सव को चार द्रोण (धोन) जल मे औटावे, जव एक द्रोण जल शेप रहे तव इस मे चार २ रुपये भर सव जीवनीयगण की औषधों के साथ एक आढक तेल को परिपक्व करे, इस तेल का उपयोग करने से सव वातसम्वधी रोग दूर होते हैं, वस्ति क्रिया मे कुछ भी विपरीतता होने से चौहत्तर प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं, ऐसी दशा जव कभी हो जावे तो सुश्रुत मे कहे अनुसार नलिका आदि सामग्रियों से चिकित्सा करनी चाहिये, इस वस्ति कर्म में पथ्यापथ्य स्नेह पान के समान सव कुछ करना चाहिये ॥

चौथा कर्म निरूहण है-यह वस्ति का दूसरा भेद है-तात्पर्य यह है कि-काढे, दूध और तैल आदि की[...]व पिचकारी लगाने को निरूहण वस्ति कहते हैं, इस वस्ति के पृथक् २ ओपधियों के सम्मेल से अनेक[...]म होता होते हैं तथा इसी कारण से उन भेदों के पृथक् २ नाम भी रक्खे गये हैं, इस निरूहण वस्ति का दू[...]शहद, तेल, आस्थापन वस्ति भी है, इस नाम के रखने का हेतु यह है कि-इस वस्ति से दोषों और धातु[...]ते हैं। सिद्ध- २ स्थान पर स्थापन होता है। **निरूहण वस्तिकी मात्रा**—इस वस्ति की सवा प्रस्थ की[...]के उपयोग मे लावे, प्रस्थ की मात्रा मध्यम और तीन कुडव (तीन पाव) की मात्रा अधम मानी गई है। [...], दिन मे न सोना तथा **अनधिकारी**—अत्यन्त स्निग्ध शरीर वाला, जिस के दोप परिपक्व कर न निकाले[...] पथ्यापथ्य स्नेहनवस्ति के

१४–अधिक मार्ग में चलने से जिस के शोष रोग उत्पन्न हुआ हो उस को धैर्य देना चाहिये, बैठालना चाहिये, दिन में सुलाना चाहिये तथा शीतल, मधुर और बृंहण (पुष्टि करने अर्थात् धातु आदि को बढ़ाने वाले) पदार्थ देने चाहियें।

१५–व्रण (घाव) के कारण जिस के शोष उत्पन्न हुआ हो उस रोगी की चिकित्सा स्निग्ध (चिकने), अग्निदीपनकर्त्ता, स्वादिष्ठ (जायकेदार), शीतल, कुछ खटाईवाले तथा व्रणनाशक पदार्थों से करनी चाहिये।

समान जानना चाहिये, इस बस्ति का एक भेद उत्तरबस्ति (लिङ्ग तथा योनि में पिचकारी लगाना) भी है, जिस का वर्णन यहां अनावश्यक समझ कर नहीं किया जाता है, उस का विषय आवश्यकतानुसार दूसरे वैद्यक ग्रन्थों में देख लेना चाहिये ॥

पाँचवां कर्म नावन (नस्य) देना है, तात्पर्य यह है कि–जो ओषधि नासिका से ग्रहण की जाती है उसे नावन वा नस्य कहते हैं, इस कर्म के नावन और नस्यकर्म ये दो नाम हैं, इस को नस्यकर्म इसलिये कहते हैं कि इस से नासिका की चिकित्सा होती है, नस्यकर्म के दो भेद हैं–रेचन और स्नेहन, इन में से जिस कर्म से भीतरी पदार्थों को कम किया जावे उसे रेचन कहते हैं तथा जिस कर्म से भीतरी पदार्थों की वृद्धि की जावे उसे स्नेहन कहते हैं। समयानुसार नस्य के गुण—प्रातःकाल की नस्य कफ को दूर करती है, मध्याह्न की नस्य पित्त को और सायंकाल की नस्य वादी को नष्ट करती है, नस्य को प्रायः दिन में लेना चाहिये परन्तु यदि घोर रोग हो तो रात्रि में भी ले लेनी चाहिये। नस्य का निषेध—भोजन के पीछे तत्काल, जिस दिन बादल हो उस दिन, जुलाब के दिन, नवीन जुकाम के समय में, गर्भवती स्त्री, विषरोगी, अजीर्णरोगी, जिस को बस्ति दी गई हो, जिसने स्नेह जल वा आसव पिया हो, क्रोधी, शोकयुक्त, प्यासा, वृद्ध, बालक, मल मूत्र के वेग का रोकने वाला, परिश्रमी और जो स्नान करना चाहता है, इन सब को नस्य देना निषिद्ध है। नस्य की अवस्था—जब तक बालक आठ वर्ष का न हो जावे तब तक उसे नस्य नहीं देना चाहिये तथा अस्सी वर्ष के पीछे भी नस्य नहीं देना चाहिये। रेचननस्य की विधि—तीक्ष्ण तैल से अथवा तीक्ष्ण औषधों से पके हुए तैलों से, क्वाथों से अथवा तीक्ष्ण रसों से रेचन नस्य देनी चाहिये, यह नस्य नासिका के दोनों छिद्रों में देनी चाहिये तथा प्रत्येक छिद्र में आठ २ बूंद डालनी चाहिये, यह उत्तम मात्रा है, छः २ बूंदों की मध्यम मात्रा है और चार २ बूंदों की अधम मात्रा है। नस्य में औषधों की मात्रा का परिमाण—नस्यकर्म में तीक्ष्ण औषध रत्ती भर देना चाहिये, हींग एक जौ भर, सैंधा निमक छः रत्ती, दूध चार मासे, पानी तीन रुपये भर तथा मधुर द्रव्य एक रुपये भर देना चाहिये। रेचननस्य के भेद—रेचननस्य के अवपीडन और प्रधमन ये दो भेद हैं–यदि नस्य देकर मस्तक को खाली करना हो तो सामान्य रीति से इन दोनों भेदों का प्रयोग करना चाहिये, जिस के साथ में तीक्ष्ण पदार्थों को मिलाना हो उन का कल्क करके रस निचोड़ लेना, इस को अवपीडन कहते हैं और छः अंगुल लम्बी दो मुख की नली में ४८ रत्ती तीक्ष्ण चूर्ण भरकर मुख की फूंक देकर उस चूर्ण को नाक में चढ़ा देना, इस को प्रधमन कहते हैं। नस्यों के योग्य रोग—हँसली के ऊपर के रोगों में, कफ के स्वरभङ्ग में, अरुचि, प्रतिश्याय, मस्तकशूल, पीनस, सूजन, मृगी और कुष्ठरोग में रेचननस्य देना चाहिये, डरनेवाले, स्त्री, कृश मनुष्य और बालक को स्नेहनस्य देना चाहिये, गले के रोग

१६-**महाचन्दनादि तैल**—तिली का तैल चार सेर, क्वाथ के लिये लाल चन्दन, शालपर्णी, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, गोखुरू, मुद्गपर्णी, विदारीकन्द, असगन्ध, माषपर्णी, आँवले, सिरस की छाल, पद्माख, खस, सरलकाष्ठ, नागकेशर, प्रसारणी, मूर्वा, फूलप्रियगु, कमलगट्टा, नेत्रवाला, खिरेटी, कगही, कमल की नाल और भसींडे, ये सब

सन्निपात, निद्रा, विषम ज्वर, मन के विकार और कृमिरोग में अवपीडन नस्य देना चाहिये तथा अत्यन्त कुपित दोषवाले रोगों में और जिन में संज्ञा नष्ट हो गई हो ऐसे रोगों में प्रधमननस्य देना चाहिये। **विरेचननस्य**—सोंठ के चूर्ण को तथा गुड को मिलाकर अथवा सेंधे निमक और पीपल को पानी में पीसकर नस्य देने से नाक, मस्तक, कान, नेत्र, गर्दन, ठोडी और गले के रोग तथा भुजा और पीठ के रोग नष्ट होते हैं, महुए का सत, वच, पीपल, काली मिर्च और सेंधा निमक, इन को थोडे गर्म जल में पीसकर नस्य देने से मृगी, उन्माद, सन्निपात, अपतन्त्रक और वायु की मूर्छा, ये सब दूर होते हैं, सेंधानिमक, सफेद मिर्च (सहजने के बीज), सरसों और कूठ, इन को बकरे के मूत्र में बारीक पीस कर नस्य देने से तन्द्रा दूर होती है, काली मिर्च, वच और कायफल के चूर्ण को रोहू मछली के पित्ते की भावना देकर नली से प्रधमननस्य देना चाहिये। **बृंहणनस्य के भेद**—बृंहणनस्य के मर्श और प्रतिमर्श, ये दो भेद हैं, इन में से शाण से जो स्नेहन नस्य दी जाती है उसे मर्श कहते हैं, (तर्जनी अङ्गुलि की आठ बूंदों की मात्रा को शाण कहते हैं) इस मर्श नस्य में आठ शाण की तर्पणी मात्रा प्रत्येक नथुने में देना उत्तम मात्रा है, चार शाण की मध्यम और एक शाण की मात्रा अधम है, प्रत्येक नथुने में मात्रा की दो २ बूंदों के डालने को प्रतिमर्श कहते हैं, दोषों का बलाबल विचार कर एक दिन में दो वार, वा तीन वार, अथवा एक दिन के अन्तर से, अथवा दो दिन के अन्तर से मर्श नस्य देनी चाहिये, अथवा तीन, पाँच वा सात दिन तक निरन्तर इस नस्य का उपयोग करना चाहिये, परन्तु उस में यह सावधानता रखनी चाहिये कि रोगी को छींक आदि की व्याकुलता न होने पावे, मर्श नस्य देने से समय पर स्थान से भ्रष्ट हो कर दोष कुपित हो कर मस्तक के मर्म स्थान से विरेचित होने लगता है कि जिस से मस्तक में अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं, अथवा दोषों के क्षीण होने से रोग उत्पन्न हो जाते हैं, यदि दोष के उत्क्लेश (स्थान से भ्रष्ट) होने से रोग उत्पन्न हो तो वमनरूप शोधन का उपयोग करना चाहिये और यदि मेद आदि का क्षय होने से रोग उत्पन्न हो तो पूर्वोक्त स्नेह के द्वारा उन्हीं क्षीण दोषों को पुष्ट करे, मस्तक नाक और नेत्र के रोग, सूर्यावर्त्त, आधाशीशी, दाँत के रोग, निर्बलता, गर्दन भुजा और कन्धा के रोग, मुखशोष, कर्णनाद, वातपित्तसम्बधी रोग, विना समय के बालों का श्वेत होना तथा बाल और डाढी मूँछ का झर २ कर गिरना, इन सब रोगों में स्नेहों से अथवा मधुर पदार्थों के रसों से स्नेहननस्य को देना चाहिये। **बृंहणनस्य की विधि**—खाड के साथ केशर को दूध में पीस कर पीछे घी में सेंक कर नस्य देने से वातरक्त की पीडा शान्त होती है, भौंह, कपाल, नेत्र, मस्तक और कान के रोग, सूर्यावर्त्त और आधाशीशी, इन रोगों का भी नाश होता है, यदि स्नेहननस्य देना हो तो अणुतैल (इस की विधि सुश्रुत में देखो), नारायण तैल, माषादि तैल, अथवा योग्य औषधों से परिपक्क किये हुए घृत से देना चाहिये, यदि कफयुक्त वादी का दर्द हो तो तेल की और यदि केवल वादी का ही दर्द हो तो मज्जा की नस्य देनी चाहिये, पित्त का दर्द हो तो सर्वदा घी की नस्य देनी चाहिये, उडद, कौंच के बीज,

मिलाके ५० टके भर लेवे तथा सिरगी ५० टके भर लेवे, पाक के वास्ते जल १६ सेर लेवे, जब जल चार सेर बाकी रहे तब बकरी का दूध, सतावर का रस, खाल का रस, कांजी और दही का जल, प्रत्येक चार २ सेर ले तथा प्रत्येक के पाक के लिये जल १६ सेर लेवे, जब चार सेर रह जावे तब उसे छान ले, फिर पृथक् २ काथ और कल्क के

रास्ना और की जड़ तथा रोहिष तृण और भद्रमुस्तक इन का क्वाथ करके तथा इस में तैल और नमक को डालकर कुछ गर्म करके भी नस्य के देने से कम्पयुक्त पक्षाघात (अधरंग) अर्दित वात (लकवा) गर्दन का रह जाना और अपबाहुक (हाथों का रह जाना) रोग दूर हो जाता है। अब प्रतिमर्षनामक सूक्ष्म नस्य के जो भेद कह चुके हैं उन में से प्रतिमर्श नस्य के १४ समय माने गये हैं जो कि ये हैं—प्रातःकाल दांतुन करने के बाद, घर से बाहर निकलते समय, व्यायाम के बाद, मार्ग चल कर आने के पश्चात्, मैथुन के पश्चात्, मलत्याग के पीछे, मूत्र करने के पीछे, अञ्जन आंजने (लगाने) के पीछे, कवल विधि के पीछे, भोजन के पीछे, दिन में सोने के पीछे, वमन के पीछे और सायंकाल में, प्रतिमर्श नस्य के ठीक होने की यह पहिचान है कि—थोड़ी सी छींक आने से यदि वह नस्य मुख में आ जावे तो जान लेना चाहिये कि प्रतिमर्श नस्य उत्तम रीति से हो गई है, नाक से मुख में आये हुए पदार्थ को निगलना नहीं चाहिये किन्तु उसे थूक देना चाहिये। प्रतिमर्श नस्य के अधिकारी—क्षीण मनुष्य, तृषारोगी, मुखशोषरोगी, बालक और वृद्ध, इन को प्रतिमर्श नस्य हितकारी है। प्रतिमर्श नस्य के गुण—प्रतिमर्श नस्य के उपयोग से हँसली के ऊपर के रोग नहीं होते हैं तथा वृद्धपन में झुर्रियाँ नहीं पड़ती हैं तथा बालों का श्वेत होना मिटता है, इन के सिवाय—नस्य से इन्द्रियों की शक्ति बढ़ती है, बहेड़ा, नीम, भँगरा, हरड़, मुलहठी और मालकांगनी इन में से एक पदार्थ की नस्य लेने का अभ्यास रखने से अवश्य श्वेत बाल काले हो जाते हैं। नस्य की विधि—दन्तधावन करने के पश्चात्, मल और मूत्रादि का त्याग करने के पीछे धूम्रपान द्वारा कफ तथा कण्ठ के साफ कर रोगी को पवन और धूल से रहित स्थान में चित (सीधा) लेटा देना चाहिये तथा उस के मस्तक को कुछ लटकता रखना चाहिये, हाथ पैरों को पसार देना तथा नेत्रों को वस्त्र से ढांक देना चाहिये, पीछे नाक की अणी को ऊंची करके नस्य देनी चाहिये अर्थात् सोने चांदी आदि की नली से वा सीप से वा किसी यन्त्र की युक्ति से वा कपड़े से अथवा रुई से, बीच में धार न टूटने पावे इस रीति से कुछ २ गर्म नस्य नाक में डाल देनी चाहिये, जिस समय नाक में नस्य डाली जावे उस समय रोगी को चाहिये कि माथा न हिलावे, क्रोध न करे, बोले नहीं, छींके नहीं और हंसे नहीं, क्योंकि माथे के हिलाने आदि से स्नेह बाहर को आ जाता है अर्थात् भीतर नहीं पहुँचता है और ऐसा होने से खांसी, पीनस, मस्तकपीड़ा और नेत्रपीड़ा उत्पन्न हो जाती है, नस्य को शृंगाटक (नाक की भीतरी हड्डी) में पहुँचने पर्यन्त स्थिर रखना चाहिये अर्थात् निगल नहीं जाना चाहिये, पीछे बैठ कर मुख में आये हुए को थूक देना चाहिये, नस्य के लेने के पश्चात् मन में सन्ताप न करे, धूल उड़ने के स्थान में न जावे, क्रोध न करे, दस वा पन्द्रह मिनट तक न सोवे किन्तु सीधा पड़ा रहे, रेचननस्य से मस्तक के खाली होने के पश्चात् धूम्रपान तथा कवलग्रहण हितकारी होता है, नस्य के द्वारा मस्तक की ठीक २ शुद्धि हो जाने से शरीर का हलका होना, मन का शान्त उतरना, नाड़ियों के दर्द का नाश, व्याधि का नाश और चित्त तथा इन्द्रियों की प्रसन्नता इत्यादि लक्षण होते हैं॥

लिये-सफेद चन्दन, अगर, ककोल, नख, छारछवीला, नागकेशर, तेजपात, दालचीनी, कमलगट्टा, हलदी, दारुहल्दी, सारिवा, काली सारिवा, लाल कमल, छड़, कूठ, त्रिफला, फालसे, मूर्वा, गठिवन, नलिका, देवदारु, सरलकाष्ठ, पद्माख, खस, धाय के फूल, बेलगिरी, रसोत, मोथा, सिलारस, सुगन्धवाला, वच, मजीठ, लोध, सोंफ, जीवन्ती, प्रियगु, कचूर, इलायची, केसर, खटासी, कमल की केशर, रास्ना, जावित्री, सोंठ और धनिया, ये सब प्रत्येक दो २ तोले लेवे, इस तैल का पाक करे, पाक हो जाने के पश्चात् इस में केशर, कस्तूरी और कपूर थोडे २ मिलाकर उत्तम पात्र में भर के इस तेल को रख छोडे, इस तेल का मर्दन करने से वातपित्तजन्य सब रोग दूर होते है, धातुओं की वृद्धि होती है, घोर राजयक्ष्मा, रक्तपित्त और उरःक्षत रोग का नाश होता है तथा सब प्रकार के क्षीण पुरुषो की क्षीणता को यह तेल शीघ्र ही दूर करता है ।

१७-यदि रोगी के उरःक्षत (हृदय में घाव) हो गया हो तो उसे खिरेटी, असगन्ध, अरनी, सतावर और पुनर्नवा, इन का चूर्ण कर दूध के साथ नित्य पिलाना चाहिये ।

१८-अथवा—छोटी इलायची, पत्रज और दालचीनी, प्रत्येक छः २ मासे, पीपल दो तोले, मिश्री, मौलेठी, छुहारे और दाख, प्रत्येक चार २ तोले, इन सब का चूर्ण कर शहद के साथ दो २ तोले की गोलिया बनाकर नित्य एक गोली का सेवन करना चाहिये, इस से उरःक्षत, ज्वर, खासी, श्वास, हिचकी, वमन, भ्रम, मूर्च्छा, मद, प्यास, शोष, पसवाड़े का शूल, अरुचि, तिल्ली, आढ्यवात, रक्तपित्त और स्वरभेद, ये सब रोग दूर हो जाते हैं तथा यह एलादि गुटिका वृष्य और इन्द्रियों को तृप्त करने वाली है ॥

आमवात[1] रोग का वर्णन ॥

कारण—परस्पर विरुद्ध आहार और विरुद्ध विहार (जैसे भोजन करके शीघ्र ही दण्ड कसरत आदि का करना), मन्दाग्नि का होना, निकम्मा बैठे रहना, तथा स्निग्ध (चिकने) पदार्थों को खाकर दण्ड कसरत करना, इत्यादि कारणों से आम (कच्चा रस) वायु से प्रेरित होकर कफ के आमाशय आदि स्थानों में जाकर तथा वहा कफ से अत्यन्त ही अपक्व होकर वह आम धमनी नाड़ियों में प्राप्त हो कर तथा वात पित्त और कफ से दूषित होकर रसवाहिका नाड़ियों के[2] छिद्रो में सञ्चार करता है तथा उन के छिद्रों को बन्द कर भारी कर देता है तथा अग्नि को मन्द और हृदय को अत्यन्त निर्बल कर देता है, यह आमसञ्ज्ञक रोग अति दारुण तथा सब रोगों का स्थान माना जाता है ।

लक्षण—भोजन किये हुए पदार्थ के अजीर्ण से जो रस उत्पन्न होता है वह क्रम२से इकट्ठा होकर आम कहलाता है, यह आम रस शिर और सब अगों में पीड़ा को उत्पन्न करता है ।

१-आमवात अर्थात् आम के सहित वायु ॥

२-रसवाहिका नाडियों के अर्थात् जिन में रस का प्रवाह होता है उन नाडियों के ॥

इस रोग का सामान्य लक्षण यह है कि–जब वात और कफ दोनों एक ही समय में कुपित हो कर पीड़ा के साथ त्रिकस्थान और सन्धियों में प्रवेश करते हैं कि जिस से इस प्राणी का शरीर स्तम्भित (जकड़ा हुआ सा) हो जाता है, इसी रोग को आमवात कहते हैं।

कई आचार्यों ने यह भी कहा है कि–आमवात में अङ्गों का टूटना, अरुचि, प्यास, आलस्य, शरीर का भारी रहना, ज्वर, अन्न का न पचना और देह में शून्यता, ये सब लक्षण होते हैं।

परन्तु जब आमवात अत्यन्त बढ़ जाता है तब उस में बड़ी भयङ्करता होती है अर्थात् वृद्धि की दशा में यह रोग दूसरे सब रोगों की अपेक्षा अधिक कष्टदायक होता है, बढ़े हुए आमवात में–हाथ, पैर, मस्तक, गांठ, त्रिकस्थान, जानु और जंघा, इन की सन्धियों में पीड़ा युक्त सूजन होती है, जिस २ स्थान में वह आम रस पहुँचता है वहाँ २ बिच्छू के डंक के लगने के समान पीड़ा होती है।

इस रोग में–मन्दाग्नि, मुख से पानी का गिरना, अरुचि, देह का भारी रहना, उत्साह का नाश, मुख में निरसता, दाह, अधिक मूत्र का उतरना, कूख में कठिनता, शूल, दिन में निद्रा का आना, रात्रि में निद्रा का न आना, प्यास, वमन, भ्रम (चक्कर), मूर्छा (बेहोशी), हृदय में जकड़ का मालूम होना, मल का अवरोध (रुकना), जड़ता, आँतों का गूँजना, अफरा तथा वातजन्य (वायु से उत्पन्न होनेवाले) कष्टदायक आदि अनेक उपद्रवों का होना, इत्यादि लक्षण होते हैं।

इन के सिवाय–वायु से उत्पन्न हुए आमवात में–शूल होता है, पित्त से उत्पन्न हुए आमवात में–दाह और रक्तवर्णता (लाल रंग का होना) होती है तथा कफ से उत्पन्न हुए आमवात में–देह की आर्द्रता (गीला रहना) होती है तथा अत्यन्त खाज (खुजली) चलती है।

साध्यासाध्य विचार—एक दोष का आमवात रोग साध्य (चिकित्सा से शीघ्र ही दूर होने योग्य), दो दोषों का आमवात रोग याप्य (उत्तम और शीघ्र चिकित्सा करने से दूर होने योग्य परन्तु उत्तम और शीघ्र चिकित्सा न करने से न मिटने योग्य अर्थात् कष्टसाध्य) तथा तीनों दोषों का आमवात असाध्य (चिकित्साद्वारा भी न मिटने योग्य) होता है।

चिकित्सा—१–आमवात रोग में–लंघन करना अति उत्तम चिकित्सा है[४]।

१–दोनों कूल्हों तथा पीठ की आड़ी हड्डी के स्थान को त्रिकस्थान कहते हैं ॥
२–पीड़ायुक्त अर्थात् दर्द के साथ ॥
३–निरसता अर्थात् फीकापन ॥
४–क्योंकि लङ्घन करने से आम अर्थात् कच्चे रस का तथा दोषों का पाचन हो जाता है ॥

२–लंघन के सिवाय–स्वेदन करना (पसीने लाना), अग्नि को प्रदीप्त करनेवाले कडुए पदार्थों का खाना, जुलाब लेना, तैल आदि की मालिश कराना[1] और वस्तिकर्म करना (गुदा में पिचकारी लगाना) हितकारक है।

३–इस रोग में–बालू की पोटली बना कर उसे अग्नि में तपाकर रूक्ष स्वेद करना चाहिये तथा स्नेहरहित उपनाह (लेप) भी करना चाहिये[2]।

४–आमवात से व्याप्त और प्यास से पीडित (दु:खित) रोगी को पञ्चकोल[3] को डाल कर सिद्ध (तैयार) किया हुआ जल पीना चाहिये।

५–सूखी मूली का यूष, अथवा लघु पञ्चमूल[4] का यूप, अथवा पञ्चमूल[5] का रस, अथवा सोंठ का चूर्ण डाल कर काजी लेना चाहिये।

६–सौवीर नामक काजी में बैगन को उबाल कर अथवा कडुए फलों को उबाल कर लेना चाहिये।

७–बथुए का शाक तथा अरिष्ट, सांठ (गदहपूर्ना), परबल, गोखुरू, वरना और करेले, इन का शाक लेना चाहिये।

८–जौ, कोदों, पुराने साठी और शालि चावल, छाछ के साथ सिद्ध किया हुआ कुलथी का यूष, मटर, और चना, ये सब पदार्थ आमवात रोगी के लिये हितकारक हैं।

९–चित्रक, कुटकी, हरड, सोंठ, अतीस और गिलोय, इन का चूर्ण गर्म जल के साथ लेने से आमवात रोग नष्ट होता है।

१०–कचूर, सोंठ, हरड़, बच, देवदारु और अतीस, इन औषधों का क्वाथ पीने से तथा रूखा भोजन करने से आमवात रोग दूर होता है।

११–इस प्राणी के देह में विचरते हुए आमवातरूपी मस्त गजराज के मारने के लिये एक अडी का तैल ही सिंह के समान है, अर्थात् अकेला अडी का तैल ही इस रोग को शीघ्र ही नष्ट कर देता है।

१२–आमवात के रोगी को अंडी के तेल को हरड़ का चूर्ण मिला कर पीना चाहिये।

१३–अमलतास के कोमल पत्तों को सरसो के तेल में भून कर भात में मिला कर खाने से इस रोग में बहुत लाभ होता है।

१–तैल की मालिश वातशामक अर्थात् वायु को शान्त करनेवाली है॥

२–रूक्ष स्वेद अर्थात् शुष्क वस्तु के द्वारा पसीने लाने से और स्नेहरहित (विना चिकनाहटके) लेप करने से भीतरी आम रस की स्निग्धता मिट कर उस का वेग शान्त होता है॥

३–पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रक और सोंठ, इन पाँचों का प्रत्येक का एक एक कोल (आठ २ मासे) लेना, इस को पञ्चकोल कहते हैं॥

४–शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, छोटी कटेरी, बडी कटेरी और गोखुरू, इन पांचों को लघु पञ्चमूल कहते हैं॥

५–वेल, गम्भारी, पाडर, अरनी और स्योनाक, इन पाँचो वृक्षों की जड को पञ्चमूल वा बृहत्पञ्चमूल कहते है॥

१४–सोंठ और गोखुरू का क्वाथ प्रातःकाल पीने से आमवात और कमर का शूल (दर्द) शीघ्र ही मिट जाता है।

१५–इस रोग में यदि कटिशूल (कमर में दर्द) विशेष होता हो तो सोंठ और गिलोय के क्वाथ (काढ़े) में पीपल का चूर्ण डाल कर पीना चाहिये।

१६–शुद्ध (साफ) अजी के बीजों को पीस कर दूध में डाल कर खीर बनावे तथा इस का सेवन करे, इस के खाने से कमर का दर्द अति शीघ्र मिट जाता है अर्थात् कमर के दर्द में यह परमौषधि[1] है।

१७–सङ्कर स्वेद—कपास के बिनौले, कुलथी, तिल, जौं, लाल एरण्ड की जड़, अलसी, पुनर्नवा और शण (सन) के बीज, इन सब को (यदि ये सब पदार्थ न मिलें तो जो २ मिल सकें उन्हीं को लेना चाहिये) लेकर कूट कर तथा काँजी में भिगा कर दो पोटलियां बनानी चाहियें, फिर प्रज्वलित[2] चूल्हे पर काँजी से भरी हुई हाँड़ी को रख कर उस पर एक छेदवाले सकोरे को ढाँक दे तथा उस की सन्धि[3] को बंद कर दे तथा सकोरे पर दोनों पोटलियों को रख दे, उन में से जो एक पोटली गर्म हो जावे उस से पहुँचे के नीचे के भाग में, पेट, शिर, कूले, हाथ, पैर, अँगुलि, एड़ी, कन्धे और कमर, इन सब अंगों में सेक करे तथा जिन २ स्थानों में दर्द हो वहां २ सेक करे, इस पोटली के शीतल हो जाने पर उसे सकोरे पर रख दे तथा दूसरी गर्म पोटली को उठाकर सेक करें[4], इस प्रकार करने से सामवात (आम के सहित वादी) की पीड़ा शीघ्र ही शान्त हो जाती है।

१८–महारास्नादि क्वाथ—रास्ना, अंड[5] की जड़, अडूसा, धमासा, कपूर, देवदारु, खिरेटी, नागरमोथा, सोंठ, अतीस, हरड़, गोखुरू, अमलतास, कलौंजी, धनियां, पुनर्नवा, असगन्ध, गिलोय, पीपल, विधायरा, शतावर, बच, चिरायता, चव्य, तथा दोनों (छोटी बड़ी) कटेरी, ये सब समान भाग लेवे परन्तु रास्ना की मात्रा दिगुनी लेवे, इन सब का अष्टावशेष (जल का आठवां हिस्सा शेष रखकर) क्वाथ बना कर तथा उस में सोंठ का चूर्ण डाल कर पीवे, इस के सेवन से वादी के सब दोष, सामरोग[6], पक्षाघात, अर्दित,

१–परमौषधि अर्थात् सब से उत्तम ओषधि ॥

२–प्रज्वलित अर्थात् खूब जलते हुए ॥

३–सन्धि अर्थात् सँध का छेद ॥

४–तात्पर्य यह है कि गर्म पोटली से सेक करता जावे तथा ठण्डी हुई पोटली को गर्म करने के लिये सकोरे पर रखता जावे ॥

५–अण्ड अर्थात् एरण्ड या अण्डी का वृक्ष ॥

६–सामरोग अर्थात् आम (आँव) के सहित रोग ॥

७–पक्षाघात आदि सब वातरोग हैं ॥

कम्प, कुब्ज, सन्धिगत वात, जानु जंघा तथा हाडो की पीड़ा, गृध्रसी, हनुग्रह, ऊरुस्तम्भ, वातरक्त, विश्वाची, क्रोष्टुशीर्षक, हृदय के रोग, बवासीर, योनि और शुक्र के रोग तथा स्त्री के वंध्यापन के रोग, ये सब नष्ट होते है, यह क्वाथ स्त्रियों को गर्भप्रदान करने में भी अद्वितीय (अपूर्व) है ।

१९-**रास्नापञ्चक**—रास्ना, गिलोय, अड की जड, देवदारु और सोंठ, ये सब औषध मिलाकर एक तोला लेवे, इस का पावभर जल में क्वाथ चढ़ावे, जब एक छटांक जल शेष रहे तब इसे उतार कर छान कर पीवे, इस के पीने से सन्धिगत वात, अस्थिगत वात, मज्जाश्रित वात तथा सर्वांगगत आमवात, ये सब रोग शीघ्र ही दूर हो जाते है ।

२०-**रास्नासप्तक**—रास्ना, गिलोय, अमलतास, देवदारु, गोखुरू, अड की जड़ और पुनर्नवा, ये सब मिला कर एक तोला लेकर पावभर जल में क्वाथ करे, जब छटाक भर जल शेष रहे तब उतार कर तथा उस में छः मासे सोंठ का चूर्ण डाल कर पीवे, इस क्वाथ के पीने से जघा, ऊरु, पसवाडा, त्रिक और पीठ की पीडा शीघ्र ही दूर हो जाती है ।

२१-इस रोग में-दशमूल के क्वाथ में पीपल के चूर्ण को डालकर पीना चाहिये ।

२२-हरड और सोंठ, अथवा गिलोय और सोंठ का सेवन करने से लाभ होता है ।

२३-चित्रक, इन्द्रजौ, पाढ, कुटकी, अतीस और हरड़, इन का चूर्ण गर्म जल के साथ पीने से आमाशय से उठा हुआ वातरोग शान्त हो जाता है ।

२४-अजमोद, काली मिर्च, पीपल, बायविड़ंग, देवदारु, चित्रक, सतावर, सेंधा निमक और पीपरामूल, ये सब प्रत्येक चार २ तोले, सोंठ दश पल, विधायरे के बीज दश पल और हरड़ पाच, पल, इन सब को मिलाकर चूर्ण कर लेना चाहिये, पीछे सब औषधों के समान गुड़ मिला कर गोलिया बना लेना चाहिये अर्थात् प्रथम गुड़ में थोड़ा सा जल डाल कर अग्निपर रखना चाहिये जब वह पतला हो जावे तब उस में चूर्ण डालकर गोलिया बाँध लेनी चाहियें, इन गोलियों के सेवन से आमवात के सब रोग, विषूचिका (हैजा), प्रतूनी, हृद्रोग, गृध्रसी, कमर, बस्ती और गुदा की फूटन, हड्डी और जङ्घा की फूटन, सूजन, देहसन्धि के रोग और वातजन्य सब रोग शीघ्र ही नष्ट हो जाते है, ये गोलियाँ क्षुधा को लगानेवाली, आरोग्यकर्ता, यौवन को स्थिर करनेवाली, वली और पलित (बालों की श्वेतता) का नाश करनेवाली तथा अन्य भी अनेक गुणों की करनेवाली है ।

१-अर्थात् मिश्रित सातों पदार्थों की मात्रा एक तोला लेकर ॥

२-गुड के योग के विना यदि केवल यह चूर्ण ही गर्म जल के साथ छ मासे लिया जावे तो भी बहुत गुण करता है ॥

२५–आमवातरोग में–पथ्यादि गुग्गुल तथा योगराज गुग्गुल का सेवन करना अति सुखकारक माना गया है।

२६–शुण्ठीखण्ड (सोंठपाक)–सफेद सोंठ ३२ तोले, गाय का घी पावभर, दूध चार सेर, चीनी खांड़ २०० तोले (ढाई सेर), सोंठ, मिर्च, पीपल, दालचीनी, पत्रज और इलायची, ये सब प्रत्येक चार २ तोले लेना चाहिये, प्रथम सोंठ के चूर्ण को घृत में सान कर दूध में पका कर खोवा (मावा) कर लेना चाहिये, फिर खांड़ की चासनी कर उस में इस खोवे को डाल कर तथा मिलाकर चूल्हे से नीचे उतार लेना चाहिये, पीछे उस में त्रिकुटा और त्रिजातक का चूर्ण डालकर पाक जमा देना चाहिये, पीछे इस में से एक टकेभर अथवा अग्नि के बलाबल का विचार कर उचित मात्रा का सेवन करना चाहिये, इस के सेवन से आमवात रोग नष्ट होता है, धातु (रस और रक्त आदि) पुष्ट होते हैं, शरीर में शक्ति उत्पन्न होती है, आयु और ओज की वृद्धि होती है तथा बलियों का पड़ना तथा बालों का श्वेत होना मिटता है।

२७–मेथी पाक–दानामेथी आठ टकेभर (आठ पल) और सोंठ आठ टके भर, इन दोनों को कूट कर कपड़छान चूर्ण कर लेना चाहिये, इस चूर्ण को आठ टके भर घी में सान कर आठ सेर दूध में डाल के खोवा बनाना चाहिये, फिर आठ सेर खांड़ की चासनी में इस खोवे को डाल कर मिला देना चाहिये, परन्तु चासनी का कुछ नरम रखना चाहिये, पीछे चूल्हे पर से नीचे उतार कर उस में काली मिर्च, पीपल, सोंठ, पीपरामूल, चित्रक, अजवायन, जीरा, धनियां, कलोंजी, सौंफ, जायफल, कपूर, दालचीनी, तेजपात और नागरमोथा, इन सब का प्रत्येक का एक एक टका भर लेकर कपड़छान चूर्ण कर उस पाक की चासनी में मिला देना चाहिये तथा टका २ भर की कतली अथवा लड्डू बना लेने चाहियें, इन का अग्नि के बलाबल का विचार कर खाना चाहिये, इन के सेवन से आमवात, बादी के सब रोग, विषम ज्वर, पाण्डुरोग, कामला, उन्माद (हिष्टीरिया), अपस्मार (मृगी रोग), प्रमेह, वातरक्त, अम्लपित्त, रक्तपित्त, शीतपित्त, मस्तकपीड़ा, नेत्ररोग और प्रदर, ये सब रोग नष्ट हो जाते हैं, देह में पुष्टता होती है तथा बल और वीर्य की वृद्धि होती है।

१–पथ्यादि गुग्गुल वातरोग के अन्तर्गत गृध्रसी रोग की चिकित्सा में तथा योगराज गुग्गुल आमवातरोग की चिकित्सा में आवश्यकता आदि ग्रन्थों में लिखा है वहां इन के बनाने और सेवन करने आदि की विधि देख लेनी चाहिये ॥

२–जिस के भीतर कूजट नहीं निकलता है अर्थात् जिस छीलने से करीब चूर्ण ही चूर्ण निकलता है उसे सफेद सोंठ कहते हैं ॥

३–त्रिकुटा अर्थात् सोंठ मिर्च और पीपल ॥

४–त्रिजातक अर्थात् दालचीनी बड़ी इलायची और तमालपत्र इन को त्रिसुगन्धि भी कहते हैं ॥

२८-लहसुन १०० टकेभर, काले तिल पावभर, हींग, त्रिकुटा[1], सज्जीखार, जवाखार पाचो निमक[2], सौंफ, हलदी, कूठ, पीपरामूल, चित्रक, अजमोदा, अजवायन और धनिया, ये सब प्रत्येक एक एक टकाभर लेकर इन का चूर्ण कर लेना चाहिये तथा इस चूर्ण को घी के पात्र में भर के रख देना चाहिये, १६ दिन वीत जाने के वाद उस में आध सेर कडुआ तेल[3] मिला देना चाहिये तथा आधसेर कांजी मिला देना चाहिये, फिर इस में से एक तोले भर नित्य खाना चाहिये तथा इस के ऊपर से जल पीना चाहिये, इस के सेवन से आमवात, रक्तवात, सर्वांगवात[4], एकागवात, अपस्मार[5], मन्दाग्नि, श्वास, खांसी, विष, उन्माद, वातभग्न और शूल, ये सब रोग नष्ट हो जाते हैं।

२९-लहसुन का रस एक तोला तथा गाय का घी एक तोला, इन दोनों को मिला कर पीना चाहिये, इस के पीने से आमवात रोग अवश्य नष्ट हो जाता है।

३०-सामान्य वातव्याधि की चिकित्सा में जो ग्रन्थान्तरों में रसोनाष्टक औषध लिखा है वह भी इस रोग में अत्यन्त हितकारक है।

३१-**लेप**—सौंफ, वच, सोंठ, गोखुरू, वरना की छाल, पुनर्नवा, देवदारु, कचूर, गोरखमुंडी, प्रसारणी[6], अरनी और मैनफल, इन सब औषधों को काजी अथवा सिरके में बारीक पीस कर गर्म २ लेप करना चाहिये, इस से आमवात नष्ट होता है।

३२-कलहींस, केवुंक[7] की जड, सहजना और बमई[8] की मिट्टी, इन सब को गोमूत्र में पीसकर गाढ़ा २ लेप करने से आमवात रोग मिट जाता है।

३३-चित्रक, कुटकी, पाढ, इन्द्रजौ, अतीस, गिलोय, देवदारु, वच मोथा, सोंठ और हरड, इन औषधियों का क्वाथ पीने से आमवात रोग शान्त हो जाता है।

३४-कचूर, सोंठ, हरड, वच, देवदारु, अतीस और गिलोय, इन औषधियों का क्वाथ आम को पचाता है परन्तु इस क्वाथ के पीने के समय रूखा भोजन करना चाहिये।

३५-पुनर्नवा, कटेरी, मरुआ, मूर्वा और सहजना, ये सब ओषधिया क्रम से एक, दो, तीन, चार तथा पाच भाग लेनी चाहियें तथा इन का क्वाथ बना कर पीना चाहिये, इस के पीने से आमवात रोग शान्त हो जाता है।

१-त्रिकुटा अर्थात् सोंठ, मिर्च और पीपल ॥

२-पाँचो निमक अर्थात् सेंधानिमक, सौवर्चलनिमक, कालानिमक, सामुद्रनिमक और औद्भिदनिमक ॥

३-कडुआ तेल अर्थात् सरसों का तेल ॥

४-सर्वांगवात अर्थात् सब अंगो की वादी और एकाङ्गवात अर्थात् किसी एक अग की वादी ॥

५-अपस्मार अर्थात् मृगीरोग ॥

६-इसे भाषा में पसरन कहते हैं, यह एक प्रसर जाति की (फैलनेवाली) वनस्पति होती है ॥

७-इसे हिन्दी में केउआँ भी कहते हैं ॥

८-बमई को संस्कृत मे वल्मीक कहते हैं, यह एक मिट्टी का ढीला होता है जिसे पुत्तिका (कीटविशेष) इकट्ठा करती है, इसे भाषा में बमौटा भी कहते हैं ॥

३६—आमवात से पीड़ित रोगी को मूत्र के साथ अंडी का तेल पिला कर रेचन (जुलाब) कराना चाहिये ।

३७—गोमूत्र के साथ में सोंठ, हरड़ और गूगुल को पीने से यह रोग मिट जाता है ।

३८—सोंठ, हरड़ और गिलोय, इन के भाग २ क्वाथ को गूगुल डाल कर पीने से कमर, जांघ, ऊरु और पीठ की पीड़ा शीघ्र ही दूर हो जाती है ।

३९—**हिंग्वादि चूर्ण**—हींग, चव्य, बिड़ निमक, सोंठ, पीपल, जीरा और पुष्कर मूल, ये सब ओषधियां क्रम से अधिक भाग लेनी चाहियें[1], इन का चूर्ण गर्म जल के साथ लेने से आमवात और उस के विकार[2] दूर हो जाते हैं ।

४०—**पिप्पल्यादि चूर्ण**—पीपल, पीपलामूल, सेंधा निमक, काला जीरा, चव्य, चित्रक, तालीसपत्र और नागकेशर, ये सब प्रत्येक दो २ पल, काला निमक ५ पल, काली मिर्च, जीरा और सोंठ, प्रत्येक एक एक पल, अनारदाना पाव भर और अम्लवेत दो पल, सब को कूट कर चूर्ण बना लेना चाहिये, इस का गर्म जल के साथ सेवन करने से अग्नि प्रदीप्त होती है, बवासीर, संग्रहणी, गोला, उदररोग, भगन्दर, कृमिरोग, सुजली और अरुचि, इन सब का नाश होता है ।

४१—**पथ्यादि चूर्ण**—हरड़, सोंठ और अजमायन, इन तीनों को समान भाग लेकर चूर्ण करना चाहिये, इस चूर्ण को छाछ, गर्म जल, अथवा कांजी के साथ पीने से आमवात, सूजन, मन्दाग्नि, पीनस, खांसी, हृदयरोग, स्वरभेद[3] और अरुचि, इन सब रोगों का नाश होता है ।

४२—**रसोनादि क्वाथ**—लहसुन, सोंठ और निगुण्डी, इन का क्वाथ आम को शीघ्र ही नष्ट करता है, यह सर्वोत्तम ओषधि है ।

४३—**शट्यादि क्वाथ**—शटी (कपूर) और सोंठ, इन के कल्क को सोंठ के क्वाथ में मिलाकर सात दिन तक पीना चाहिये, इस के पीने से आमवात रोग का नाश हो जाता है ।

४४—**पुनर्नवादि चूर्ण**—पुनर्नवा, गिलोय, सोंठ, सतावर, बिधायरा, कपूर और गोरखमुण्डी[4], इन का चूर्ण बना कर कांजी से पीना चाहिये, इस के पीने से आमवात

१—अर्थात् हींग एक भाग, चव्य दो भाग, बिड़निमक तीन भाग, सोंठ चार भाग, पीपल पांच भाग, जीरा छः भाग और पुष्करमूल सात भाग लेना चाहिये ॥

२—उस के विकार अर्थात् आमवात के शोथ और शूल आदि विकार ॥

३—स्वरभेद अर्थात् आवाज का बदलना ॥

४—इस को मुण्डी, महामुण्डी तथा छोटी बड़ी गोरखमुण्डी भी कहते हैं, यह वर्षाऋतु में उत्पन्न होती है, यह बाग में जमीन तथा जलप्राय स्थान में बहुत होती है ॥

(होजरी) की वादी दूर होती है तथा गर्म जल के साथ लेने से आमवात और गृध्रसी[1] रोग दूर हो जाते हैं।

४५–घी, तेल, गुड, सिरका और सोंठ, इन पाचों को मिला कर पीने से तत्काल देह की तृप्ति होती है तथा कमर की पीड़ा दूर होती है, निराम (आमरहित) कमर की पीडा को दूर करनेवाला इस के समान दूसरा कोई प्रयोग नहीं है[2]।

४६–सिरस के वक्कल को गाय के मूत्र मे भिगा देना चाहिये, सात दिन के बाद निकाल कर हींग, वच, सोंफ और सेंधा निमक, इन को पीस कर पुटपाक करके उस का सेवन करना चाहिये, इस का सेवन करने से दारुण (घोर) कमर की पीडा, आमवृद्धि, मेदवृद्धि के सब रोग तथा वादी के सब रोग दूर हो जाते हैं।

४७–**अमृतादि चूर्ण**—गिलोय, सोंठ, गोखुरू, गोरखमुंडी और वरना[3] की छाल, इन के चूर्ण को दही के जल अथवा काजी के साथ लेने से सामवात (आम के सहित वादी) का शीघ्र ही नाश होता है।

४८–**अलम्बुषादि चूर्ण**—अलम्बुषा (लजालू का भेद), गोखुरू, त्रिफला, सोंठ और गिलोय, ये सब क्रम से अधिक भाग लेकर[4] चूर्ण करे तथा इन सब के बराबर निसोत का चूर्ण मिलावे, इस में से एक तोले चूर्ण को छाछ का जल, छाछ, काजी, अथवा गर्म जल के साथ लेने से आमवात, सूजन के सहित वातरक्त, त्रिक, जाँनु[5], ऊरु और सन्धियों की पीड़ा, ज्वर और अरुचि, ये सब रोग मिट जाते है तथा यह अलम्बुषादि चूर्ण सर्व-रोगो का नाशक है।

४९–अलम्बुषा, गोखुरू, वरना की जड, गिलोय और सोंठ, इन सब ओषधियो को समान भाग लेकर इन का चूर्ण करे, इस में से एक तोले चूर्ण को काजी के साथ लेने से आमवात की पीड़ा अति शीघ्र दूर हो जाती है अर्थात् आमवात की वृद्धि में यह चूर्ण अमृत के समान गुणकारी (फायदेमन्द) है।

५०–**दूसरा अलम्बुषादि चूर्ण**—अलम्बुषा, गोखुरू, गिलोय, विधायरा, पीपल, निसोत, नागरमोथा, वरना की छाल, साँठ[6], त्रिफला[7] और सोंठ, इन सब ओषधियों को

१–यह रोग वातजन्य है ॥

२–अर्थात् आमरहित (विना आम की) यानी केवल वादी की पीडा शीघ्र ही इस प्रयोग से दूर हो जाती है ॥

३–वरना को सस्कृत मे वरुण तथा वरण भी कहते है ॥

४–क्रम से अधिक भाग लेकर अर्थात् अलम्बुषा एक भाग, गोखुरू दो भाग, त्रिफला तीन भाग, सोंठ चार भाग और गिलोय पाँच भाग लेकर ॥

५–जानु अर्थात् घुटने ॥

६–साठ अर्थात् लाल पुनर्नवा, इस (पुनर्नवा) के बहुत से भेद है, जैसे–श्वेत पुनर्नवा, इसे हिन्दी मे विपखपरा कहते है तथा नीली पुनर्नवा, इसे हिन्दी मे नीली साठ कहते है, इत्यादि ॥

७–त्रिफला अर्थात् हरड, वहेडा और ऑवला, ये तीनों समान भाग वा क्रम से अधिक भाग ॥

सेर जल से अथवा केवल उक्त क्वाथ और कल्क से ही घृत को सिद्ध करना चाहिये, यह शुण्ठीघृत वातकफ को शान्त करता है, अग्नि को प्रदीप्त करता है तथा कमर की पीड़ा और आम को नष्ट करता है।

५६–**कांजिकादिघृत**—हींग, त्रिकुटा[1], चव्य और सेंधा निमक, इन सब को प्रत्येक को चार २ तोले लेवे तथा कल्क कर इस में एक सेर घृत और चार सेर काजी को डाल कर पचावे, यह कांजिकघृत[2] उदररोग, शूल, विबन्ध, अफरा, आमवात, कमर की पीड़ा और ग्रहणी को दूर करता है तथा अग्नि को प्रदीप्त करता है।

५७–**शृङ्गबेरादिघृत**—अदरख, जवाखार, पीपल और पीपरामूल, इन को चार २ तोले लेकर कल्क करे, इस में एक सेर घृत को तथा चार सेर काजी को डाल कर पकावे, यह घृत विबन्ध, अफरा, शूल, आमवात, कमर की पीडा और ग्रहणी को दूर करता है तथा नष्ट हुई अग्नि को पुनः उत्पन्न करता है[3]।

५८–**प्रसारणीलेह**—प्रसारणी[4] (खीप) के चार सेर क्वाथ में एक सेर घृत डाल कर तथा सोंठ, मिर्च, पीपल और पीपरामूल, इन को चार २ तोले लेकर तथा कल्क बना कर उस में डाल कर घृत को सिद्ध करे, यह घृत आमवात रोग को दूर कर देता है।

५९–**प्रसारणीतैल**—प्रसारणी के रस में अडी के तेल को सिद्ध कर लेना चाहिये तथा इस तेल को पीना चाहिये, यह तेल सब दोषों को तथा कफ के रोगों को शीघ्र ही नष्ट कर देता है।

६०–**द्विपञ्चमूल्यादितैल**—दशमूल[5] का गोंद, फल, दही और खट्टी कांजी, इन के साथ तेल को पकाकर सिद्ध कर लेना चाहिये, यह तैल कमर की पीड़ा, ऊरुओं की पीड़ा, कफवात के रोग और बालग्रह, इन को दूर करता है तथा इस तेल की वस्ति करने से (पिचकारी लगाने से) अग्नि प्रदीप्त होती है।

६१–**आमवातारिरस**—पारा एक तोला, गन्धक दो तोले, हरड तीन तोले, आँवला चार तोले, बहेड़े पाच तोले, चीते (चित्रक) की छाल छः तोले और गूगुल सात तोले, इन सब का उत्तम चूर्ण करे, इस में अडी का तेल मिलाकर पीवे, इस से आमवात रोग शान्त हो जाता है, परन्तु इस ओषधि के ऊपर दूध का पीना तथा मूग के पदार्थों का खाना वर्जित (मना) है।

१–त्रिकुटा अर्थात् सोंठ, मिर्च और पीपल, इसे त्रिकटु भी कहते हैं ॥
२–कॉजी में सिद्ध होने के कारण इस घृत को काञ्जिक घृत कहते हैं ॥
३–अर्थात् अग्नि की मन्दता को मिटाता है ॥
४–इसे पसरन भी कहते हैं जैसा कि पहिले लिख चुके हैं ॥
५–बेल, गँभारी, पाडर, अरनी और स्योनाक, यह बृहत्पञ्चमूल तथा शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, छोटी कटेरी, बडी कटेरी और गोखुरू, यह लघुपञ्चमूल, ये दोनों मिलकर दशमूल कहा जाता है ॥

यह खैंचतान निद्रावस्था (नींद की हालत) और एकाकी (अकेले) होने के समय में नहीं होती है किन्तु जब रोगी के पास दूसरे लोग होते हैं तब ही होती है तथा एकाएक (अचानक) न होकर धीरे २ होती हुई मालूम पड़ती है, रोगी पहिले हँसता है, बकता है, पीछे इसके भरता है और उस समय उस के गोला भी ऊपर को चढ़ जाता है, खैंचतान के समय यद्यपि असावधानता मालूम होती है परन्तु वह प्राय अन्त में मिट जाती है।

महात्मा, परोपकारी (दूसरों का उपकार करनेवाले) और सत्यवादी (सत्य बोलनेवाले) थे तथा उन का वचन इस भव (लोक) और पर भव (दूसरा लोक) दोनों में हितकारी (भलाई करनेवाला) है, इसी लिये हम ने भी इस ग्रन्थ में उन्हीं महात्माओं के वचनों को अनेक शास्त्रों से लेकर सग्रहीत (इकट्ठा) किया है, किन्तु जिन लोगों ने उक्त महात्माओं के वचनों को नहीं माना, वे अविद्या के उपासक समझे गये और उसी के प्रसाद से वे धर्म को अधर्म, सत्य को असत्य, असत्य को सत्य, शुद्ध को अशुद्ध, अशुद्ध को शुद्ध, जड़ को चेतन, चेतन को जड़ तथा अधर्म को धर्म समझने लगे, बस उन्हीं लोगों के प्रताप से आज इस पवित्र गृहस्थाश्रम की यह दुर्दशा हो रही है और होती जाती है तथा इस आश्रम की यह दुर्दशा होने से इस के आश्रयीभूत (सहारा लेनेवाले) शेष तीनों आश्रमों की दुर्दशा होने में आश्चर्य ही क्या है ? क्योंकि–"जैसा आहार, वैसा उद्गार" बस–हमारे इस पूर्वोक्त (पहिले कहे हुए) वचन पर थोड़ा सा ध्यान दो तो हमारे कथन का आशय (मतलब) तुम्हें अच्छे प्रकार से मालूम हो जावेगा। (**प्रश्न**) आपने भूत प्रेत आदि का केवल वहम बतलाया है, सो क्या भूत प्रेत आदि है ही नहीं ? (**उत्तर**) हमारा यह कथन नहीं है कि–भूत प्रेत आदि कोई पदार्थ ही नहीं है, क्योंकि हम सब ही लोग शास्त्रानुसार स्वर्ग और नरक आदि सब व्यवहारों के माननेवाले हैं अत हम भूत प्रेत आदि भी सब कुछ मानते हैं, क्योंकि जीवविचार आदि ग्रन्थों में व्यन्तर के आठ भेद कहे हैं–पिशाच, भूत, यक्ष, राक्षस, किन्नर, किम्पुरुष, महोरग और गन्धर्व, इस लिये हम उन सब को यथावत् (ज्यों का त्यों) मानते हैं, इस लिये हमारा कथन यह नहीं है कि भूत प्रेत आदि कोई पदार्थ नहीं है किन्तु हमारे कहने का मतलब यह है कि–गृहस्थ लोग रोग के समय में जो भूत प्रेत आदि के वहम में फँस जाते हैं सो यह उन की मूर्खता है, क्योंकि–देखो ! ऊपर लिखे हुए जो पिशाच आदि देव हैं वे प्रत्येक मनुष्य के शरीर में नहीं आते हैं, हां यह दूसरी बात है कि–पूर्व भव (पूर्व जन्म) का कोई वैरानुबन्ध (वैर का सम्बध) हो जाने से ऐसा हो जावे (किसी के शरीर में पिशाचादि प्रवेश करे) परन्तु इस बात की तो परीक्षा भी हो सकती है अर्थात् शरीर में पिशाचादि का प्रवेश है वा नहीं है इस बात की परीक्षा को तुम सहज में थोड़ी देर में ही कर सकते हो, देखो। जब किसी के शरीर में तुम को भूत प्रेत आदि की सम्भावना हो तो तुम किसी छोटी सी चीज को हाथ की मुट्ठी में बन्द करके उस से पूछो कि हमारी मुट्ठी में क्या चीज है ? यदि वह उस चीज को ठीक २ बतला दे तो पुन भी दो तीन बार दूसरी २ चीजों को लेकर पूँछो, जब कई बार ठीक २ सब वस्तुओं को बतला दे तो बेशक शरीर में भूत प्रेत आदि का प्रवेश समझना चाहिये, यही परीक्षा भैरूँ जी तथा मावड्यॉं जी आदि के भोपों पर (जिन पर भैरूँ जी आदि की छाया का आना माना जाता है) भी हो सकती है, अर्थात् वे (भोपे) भी यदि वस्तु को ठीक २ बतला देवें तो अलबत्तह उक्त देवों की छाया उन के शरीर में समझनी चाहिये, परन्तु यदि मुट्ठी की चीज को न बतला सकें तो

कभी २ भ्रमकाल थोड़ी और कभी २ अधिक होती है, रोगी अपने हाथ पैरों को फेंकता है तथा पछाड़ें मारता है, रोगी के दांत बँध जाते हैं परन्तु प्रायः जीभ नहीं कटती है और न मुख से फेन गिरता है, रोगी का अंग फुटता है, यह अपने बालों को तोड़ता है, कपड़ों को फाड़ता है तथा लड़ना प्रारम्भ करता है।

ऊपर कहे हुए दोनों का इलाज करना चाहिये। (प्रश्न) महाशय! इस में आप की कमाई हुई पंडिताई को तो कभी नहीं छिपा सकते, यद्यपि यह बात आजतक हम को मालूम ही नहीं थी, परन्तु हम ने भूतनी के निकलते को अपनी आँखों से (प्रत्यक्ष) देखा है, यह आप से कहता हूँ, सुनिये—मेरी स्त्री के शरीर में महीने में दो तीन बार भूतनी आया करती थी, मैं ने बहुत से झाड़ा झपाटा करने वालों से झाड़ फूंक आदि करवाया तथा उन के कहने के अनुसार बहुत सा द्रव्य भी खर्च किया परन्तु कुछ भी लाभ नहीं हुआ, आखिरकार झाड़ा देनेवाला एक उस्ताद मिला, उस ने मुझ से कहा कि—मैं तुम को आँखों से भूतनी को दिखला दूँगा तथा उस को निकाल दूँगा परन्तु तुम से एक सौ एक रुपये लूँगा, मैं ने उस की बात को स्वीकार कर लिया, पीछे मंगलवार के दिन शाम को वह मेरे घर आया और मुझ से [illegible] भाजन् का आधा [illegible] (बरतन) मँगवाया और उस (भाजन्) को मन्त्र कर मेरी स्त्री के हाथ में उसे दिया और लोबान की धूप देता रहा, पीछे मन्त्र पढ़ कर [illegible] उस ने मारी और मेरी स्त्री से कहा कि—देखो! इस में तुम्हें कुछ दीखता है? मेरी स्त्री ने [illegible] के [illegible] पर कुछ नहीं कहा तब मैं ने उस भाजन् को देखा तो उस में साक्षात् भूतनी का चेहरा मुझ को दीख पड़ा, तब मुझ को विश्वास हो गया और भूतनी निकल गई, पीछे उस के कहने के अनुसार मैं ने उस को एक सौ एक रुपये दे दिये, जाते समय उस ने एक यन्त्र भी बना कर मेरी स्त्री के बंधवा दिया और वह चला गया, उस के जाने के बाद एक महीने तक मेरी स्त्री अच्छी रही परन्तु फिर पूर्ववत् (पहिले के समान) हो गई, यह मैं ने आँखों से देखा है, अब कहिये कि आप को झूठ कहें तो मन में कैसे मानूं! (उत्तर) तुम ने जो आँखों से देखा है उस को सत्य मान कर कहता है, परन्तु तुम को मालूम नहीं है कि—ठगनेवाले लोग ऐसी २ आश्चर्यकारी क्रिया करते हैं जो कि साधारण लोगों की समझ में कभी नहीं आ सकती हैं और उन की वैसी ही चालाकियों से तुम्हारे जैसे भोले लोग ठगे जाते हैं, देखो! तुम लोगों से यदि कोई विद्यार्थी (विद्या की वृद्धि) आदि उत्तम काम के लिये पांच रुपये भी मांगे तो तुम कभी नहीं दे सकते हो परन्तु ऐसे धूर्तों और ठगियों को उसी के साथ [illegible] रुपये दे देते हो, यह केवल अविद्या का प्रचार (अज्ञान का फल) है, तुम कहते हो कि उस झाड़ा देनेवाले उस्ताद ने इस भाजन् में भूतनी का चेहरा साक्षात् दिखला दिया, तो प्रथम तो हम तुम से यही पूछते हैं कि—तुम ने उस भाजन् में दीख पड़े चेहरे को देख कर यह कैसे निश्चय कर लिया कि यह भूतनी का चेहरा है, क्योंकि तुम ने पहिले तो कभी भूतनी को देखा ही नहीं था (यह नियम की बात है कि पहिले साक्षात् देखे हुए मूर्तिमान् पदार्थ के चित्र को देखकर ही वह पदार्थ जाना जाता है) तब बिना भूतनी को देखे भाजन् में दीखे हुए चित्र को देख कर भूतनी के चेहरे का निश्चय कर लेना तुम्हारी अज्ञानता नहीं तो और क्या है? (प्रश्न) हम ने माना कि भाजन् में भूतनी का चेहरा भले ही न हो परन्तु बिना किसी [illegible] यह चेहरा उस भाजन् में आ गया यह [illegible] की पूरी [illegible] नहीं तो और क्या है? अब कि बिना किये उस का [illegible] से यह [illegible]

जव खैचतान बन्द होने को होती है उस समय जृम्भा (जॅभाइयॉ वा उवासियॉ) अथवा डकारें आती है, इस समय भी रोगी रोता है, हॅसता है अथवा पागलपन को प्रकट (जाहिर) करता है तथा वारवार पेशाव करने के लिये जाता है और पेशाव उतरती भी वहुत है।

कागज मे आ गया इस से यह ठीक निश्चय होता है कि वह विद्या मे पूरा उस्ताद था और जव उस की उस्तादी का निश्चय हो गया तो उस के कथनानुसार कागज मे भूतनी के चेहरे का भी विश्वास करना ही पडता है। (उत्तर) उस ने जो तुम को कागज मे साक्षात् चेहरा दिखला दिया वह उस का विद्या का वल नहीं किन्तु केवल उस की चालाकी थी, तुम उस चालाकी को जो विद्या का वल समझते हो यह तुम्हारी विलकुल अज्ञानता तथा पदार्थविद्यानभिज्ञता (पदार्थविद्या को न जानना) है, देखो! विना लिखे कागज में चित्र का दिखला देना यह कोई आश्चर्य की वात नहीं है, क्योंकि पदार्थविद्या के द्वारा अनेक प्रकार के अद्भुत (विचित्र) कार्य दिखलाये जा सकते हैं, उन के यथार्थ तत्त्व को न समझ कर भूत प्रेत आदि का निश्चय कर लेना अत्यन्त मूर्खता है, इन के सिवाय इस वात का जान लेना भी आवश्यक (जरूरी) है कि उन्माद आदि कई रोगों का विशेष सम्वध मन के साथ है, इस लिये कभी २ वे महीने दो महीने तक नहीं भी होते हैं तथा कभी २ जव मन और तरफ को झुक जाता है अथवा मन की आशा पूर्ण हो जाती है तव विलकुल ही देखने में नहीं आते हैं।

उन्माद रोग में रोना वकना आदि लक्षण मन के सम्वध से होते हैं परन्तु मूर्ख जन उन्हें देख कर भूत और भूतनी को समझ लेते हैं, यह भ्रम वर्त्तमान में प्राय देखा जाता है, इस का हेतु केवल कुसस्कार (वुरा सस्कार) ही है, देखो! जव कोई छोटा वालक रोता है तव उस की माता कहती है कि–"हौआ आया" इस को सुन कर वालक चुप हो जाता है, वस उस वालक के हृदय मे उसी हौए का सस्कार जम जाता है और वह आजन्म (जन्मभर) नहीं निकलता है, प्रिय वाचकवृन्द! विचारो तो सही कि वह हौआ क्या चीज है, कुछ भी नहीं, परन्तु उस अभावरूप हौए का भी वुरा असर वालक के कोमल हृदय पर कैसा पडता है कि वह जन्मभर नहीं जाता है, देखो! हमारे देशी भाइयों में से वहुत से लोग रात्रि के समय में दूसरे ग्राम मे वा किसी दूसरी जगह अकेले जाने मे डरते हे, इस का क्या कारण है, केवल यही कारण है कि–अज्ञान माता ने वालकपन मे उन के हृदय मे हौआ का भय और उस का वुरा सस्कार स्थापित कर दिया है।

यह कुसस्कार विद्या से रहित मारवाड आदि अनेक देशों में तो अधिक देखा ही जाता है परन्तु गुजरात आदि जो कि पठित देश कहलाते हैं वे भी इस के भी दो पैर आगे वढे हुए हैं, इस का कारण स्त्रीवर्ग की अज्ञानता के सिवाय और कुछ नहीं है।

यद्यपि इस विषय मे यहा पर हम को अनेक अद्भुत वातें भी लिखनी थीं कि जिन से गृहस्थों और भोले लोगों का सव भ्रम दूर हो जाता तथा पदार्थविज्ञानसम्वधी कुछ चमत्कार भी उन्हें विदित हो जाते परन्तु ग्रन्थ के अधिक वढ जाने के भय से उन सव वातों को यहां नहीं लिख सकते हे, किन्तु सूचना मात्र प्रसंगवशात् यहा पर वतला देना आवश्यक (जरूरी) था, इस लिये कुछ वतला दिया गया, उन सव अद्भुत वातों का वर्णन अन्यत्र प्रसगानुसार किया जाकर पाठकों की सेवा मे उपस्थित किया जावेगा, आशा है कि समझदार पुरुष हमारे इतने ही लेख से तत्त्व का विचार कर मिथ्या भ्रम (झूठे वहम) को दूर कर धूर्त और पाखण्डी लोगों के पजे मे न फँस कर लाभ उठावेंगे॥

मॅनचलान के सिवाय–इस रोग में अनेक प्रकार का मनोविकार भी हुआ करता है अर्थात् रोगी किसी समय तो अति आनन्द को प्रकट करता है, किसी समय अति उदास हो जाता है, कभी २ अति आनन्ददशा में से भी एकदम उदासी को पहुँच जाता है अर्थात् हँसते २ रोने लगता है, इसके भरता है तथा लड़ाई करने लगता है, इसी प्रकार कभी २ उदासी की दशा में से भी एकदम आनन्द को प्राप्त हो जाता है अर्थात् रोते २ हँसने लगता है।

रोगी का चित्त इस बात का उत्सुक (चाहवाला) रहता है कि–लोग मेरी तरफ ध्यान देकर दया को प्रकट करें तथा जब ऐसा किया जाता है तब वह अपने पागलपन को और भी अधिक प्रकट करने लगता है।

इस रोग में स्पर्शसम्बन्धी भी कई एक चिह्न प्रकट होते हैं, जैसे–मस्तक, कोख और छाती आदि स्थानों में चसके चलते हैं, अथवा शूल होता है, उस समय रोगी का स्पर्श का ज्ञान बढ़ जाता है अर्थात् थोड़ा सा भी स्पर्श होने पर रोगी को अधिक मालूम होता है और यह स्पर्श उस को इतना असह्य (न सहने के योग्य) मालूम होता है कि–रोगी किसी को हाथ भी नहीं लगाने देता है, परन्तु यदि उस (रोगी) के लक्ष्य (ध्यान) को दूसरे किसी विषय में लगा कर (दूसरी तरफ ले जाकर) उक्त स्थानों में स्पर्श किया जावे तो उस को कुछ भी नहीं मालूम होता है, तात्पर्य यही है कि–इस रोग में वास्तविक (असली) विकार की अपेक्षा मनोविकार विशेष होता है, नाक, कान, आँख और जीभ, इन इन्द्रियों के कई प्रकार के विकार मालूम होते हैं अर्थात् कानों में घोंघाट (घों २ की आवाज) होता है, आँखों में विचित्र दर्शन प्रतीत (मालूम) होते हैं, जीभ में विचित्र स्वाद तथा नाक में विचित्र गन्ध प्रतीत होते हैं, पेट अर्थात् पेडू में से गोला ऊपर को चढ़ता है तथा वह छाती और गले में जाकर ठहरता है जिस से ऐसा प्रतीत होता है कि रोगी को अधिक व्याकुलता हो रही है तथा वह उस (गोले) को निकलवाने के लिये प्रयत्न कराना चाहता है, कभी २ स्पर्श का ज्ञान बढ़ने के बदले (एवज में) उस (स्पर्श) का ज्ञान न्यून (कम) हो जाता है, अथवा केवल शून्यता (शरीर की सुन्नता) सी प्रतीत होने लगती है अर्थात् शरीर के किसी २ भाग में स्पर्श का ज्ञान ही नहीं होता है।

इस रोग में गतिसम्बन्धी भी अनेक विकार होते हैं, जैसे–कभी २ गति का विनाश हो जाता है, अचेसी पाँसी लग जाती है, एक अथवा दोनों हाथ पैर खिंचते हैं, खिंचने के समय कभी २ वायु रह जाते हैं और अभाग (आधे अंग का रह जाना) अथवा ऊरुस्तम्भ (ऊरुओं का रुकना अर्थात् बँध जाना) हो जाता है, एक वा दोनों हाथ पैर रह जाते हैं, अथवा तमाम शरीर रह जाता है और रोगी को शय्या (चारपाई) का आश्रय (सहारा) लेना पड़ता है, कभी २ आवाज बैठ जाती है और रोगी से बिलकुल ही नहीं बोला जाता है।

इस रोग में कभी २ स्त्री का पेट बडा हो जाता है और उस को गर्भ का भ्रम होने लगता है, परन्तु पेट तथा योनि के द्वारा गर्भ के न होने का ठीक निश्चय करने से उस का उक्त भ्रम दूर हो जाता है, गर्भ के न रहने का निश्चय क्लोरोफार्म के सुँघाने से अथवा विजुली के लगाने से पेट के शीघ्र बैठ जाने के द्वारा हो सकता है।

इस रोग से युक्त स्त्रियों में प्राय· अजीर्ण, वमन (उलटी), अम्लपित्त, डकार, दस्त की कब्जी, चूक, गोला, खासी, दम, अधिक आर्तव का होना, आर्तव का न होना, पीडा से युक्त आर्तव का होना और मूत्र का न्यूनाधिक होना, ये लक्षण पाये जाते हैं, इन के सिवाय पेशाव में गर्मी आदि विचित्र प्रकार के चिह्न भी होते है।

रोगी के यथार्थ वर्णन से[1] तथा इस रोग के चिह्नों के समुदाय (समूह) का ठीक मिलान करने से यद्यपि इस रोग का ठीक २ निश्चय हो सकता है परन्तु तथापि कभी २ यह अवश्य (जरूर) सन्देह (शक) होता है कि रोग हिष्टीरिया के सदृश (समान) है अथवा वास्तविक[2] है अर्थात् कभी २ रोग की परीक्षा (जाँच) का करना अति कठिन (बहुत मुश्किल) हो जाता है, परन्तु जो बुद्धिमान् (अक्लमन्द अर्थात् चतुर) और अनुभवी (तजुर्वेकार) वैद्य है वे इस रोग की खैंचतान को वायुजन्य आदि रोग के द्वारा ठीक २ पहिचान लेते है।

कारण—इस रोग का वास्तविक (असली) कारण कोई भी नहीं मिलता है, क्योंकि इस (रोग) के कारण विविधरूप (अनेक प्रकार के) और अनेक है।

स्त्रीजाति में यह रोग विशेष (प्राय·) देखा जाता है[3] तथा पुरुष जाति में क्वचित् ही दीख पडता है।

इस के सिवाय—पन्द्रह वीस वर्ष की अवस्थावाली, विधवा तथा बन्ध्या (वाझ) स्त्रियों के वर्ग में यह रोग विशेष देखने में आता है।

स्पर्शविकार, गतिविकार, मनोविकार[4], गर्भाशय तथा दिमाग की व्याधि[5], मन की चिन्ता, खेद, भय, शोक, विवाहसम्वधी सन्ताप (दु·ख), अजीर्ण (कब्जी), हथरस (हाथ के द्वारा वीर्य का निकालना), मन का अधिक श्रम (परिश्रम), अति विषयसेवन तथा मन को किसी प्रकार का धक्का पहुँचना, इत्यादि अनेक कारणों से यह रोग हो जाता है।

१—यथार्थ वर्णन से अर्थात् सत्य २ हाल के कह देने से ॥

२—वास्तविक अर्थात् असली ॥

३—क्योंकि इस रोग की उत्पत्ति रजोविकार से प्राय होती है, अर्थात् रज में विकार होने से वा मासिक-धर्म (रजोदर्शन) मे रज की तथा समय की न्यूनाधिकता होने से यह रोग उत्पन्न होता है ॥

४—स्पर्शविकार और गतिविकार की अपेक्षा मनोविकार प्रधान कारण है ॥

५—वास्तव में तो दिमाग की व्याधि, मन की चिन्ता, खेद, भय, शोक और विवाहसम्वधी सन्ताप का समावेश मनोविकार में ही हो सकता है परन्तु स्पष्टता के हेतु इन कारणों को पृथक् कह दिया गया है ॥

पञ्चम अध्याय ॥

मङ्गलाचरण ॥

वर्धमान के चरणयुग[1], नित वन्दों कर[2] जोर ॥
ओस वाल वंशावली, प्रकट करूँ चहुँ ओर ॥ १ ॥
श्री सरस्वति देवो सुमति[3], अविरल[4] वाणि अथाह[5] ॥
ओसवाल उपमा इला[6], सकल कला साराह[7] ॥ २ ॥
दान वीर सब जगत में, धनयुत[8] गुण गम्भीर ॥
राजवंश चढ़ती कला, जस सुरधुनि[9] को नीर[10] ॥ ३ ॥
सकल बारहों न्यात[11] में, धनयुत राज कुमार ॥
शूर वीर मछराल है, जानै सब संसार ॥ ४ ॥

प्रथम प्रकरण—ओसवाल वंशोत्पत्ति वर्णन ॥

ओसवाल वंशोत्पत्ति का इतिहास[12] ॥

चतुर्दश (चौदह) पूर्वधारी, श्रुतकेवली, अनेक लब्धिसयुत, सकल गुणो के आगार, विद्या और मन्त्रादि के चमत्कार के भण्डार, शान्त, दान्त और जितेन्द्रिय, एवं समस्त

१–चरणयुग अर्थात् दोनों चरण ॥ २–हाथ ॥ ३–अच्छी बुद्धि ॥ ४–निरन्तर ठहरने वाली ॥ ५–वेपरिमाण ॥ ६–पृथिवी ॥ ७–सकल कला साराह अर्थात् सब कलाओ में प्रशसनीय ॥ ८–ऐश्वर्ययुक्त ॥ ९–गङ्गा ॥ १०–जल ॥ ११–जाति ॥

१२–विदित हो कि जैनाचार्य श्री रत्नप्रभसूरि जी महाराज ने ओसियॉ नगरी मे राजा आदि १८ जाति के राजपूतों को जैनधर्म का ग्रहण कराके उन का "माहाजन" (जो कि 'महाजन' अर्थात् 'वडे जन' का अपभ्रश है) वश तथा १८ गोत्र स्थापित किये थे, इस के पश्चात् जिस समय खॅडेला नगर मे प्रथम समस्त वारह न्यातें एकत्रित हुई थीं उस समय जिस २ नगर से जिस २ वशवाले प्रतिनिधिरूप मे (प्रतिनिधि वन कर) आये थे उन का नाम उसी नगर के नाम से स्थापित किया गया था, ओसियॉ नगर से माहाजन वश वाले प्रतिनिधि वन कर गये थे अत उन का नाम ओसवाल स्थापित किया गया, वस उसी समय से माहाजन वश का दूसरा नाम 'ओसवाल' प्रसिद्ध हुआ, वर्त्तमान मे इस ही (ओसवाल ही) नाम का विशेप व्यवहार होता है (माहाजन नाम तो लुप्तप्राय हो रहा है, तात्पर्य यह है कि–इस नाम का उपयोग किन्हीं विरले तथा प्राचीन स्थानों मे ही होता है, जैसे–जैसलमेर आदि कुछ प्राचीन स्थानों

आचार्यगुणों से परिपूर्ण, उपकेशगच्छीय जैनाचार्य श्री रत्नप्रभसूरि जी महाराज पाँच सौ साधुओं के साथ विहार करते हुए श्री आबू जी अचलगढ़ पर पधारे थे, उन का यह नियम था कि वे (उक्त सूरि जी महाराज) मासक्षमण से पारणा किया करते थे, उन की ऐसी कठिन तपस्या को देख कर अचलगढ़ की अधिष्ठात्री अम्बा देवी प्रसन्न होकर श्री गुरु महाराज की भक्त हो गई, अत जब उक्त महाराज ने वहाँ से गुजरात की तरफ विहार करने का विचार किया तब अम्बा देवी ने हाथ जोड़ कर उन से प्रार्थना की कि-"हे परम गुरो ! आप मरुधर (मारवाड़) देश की तरफ विहार कीजिये, क्योंकि आप के उधर पधारने से दयामूल धर्म (जिनधर्म) का उद्योत होगा" देवी की इस प्रार्थना को सुन कर उक्त आचार्य महाराज ने उपयोग देकर देखा तो उन को देवी का उक्त वचन ठीक मालूम हुआ, तब महाराज ने अपने साथ के पाँच सौ मुनियों (साधुओं) को धर्मोपदेश देने के लिये गुजरात की तरफ विचरने की आज्ञा दी तथा आप एक शिष्य को साथ में रख कर ग्रामानुग्राम (एक ग्राम से दूसरे ग्राम में) विहार करते हुए ओसियाँ पट्टन में आये तथा नगर के बाहर किसी देवालय में ध्यानारूढ होकर श्रीजी ने मासकल्प

में अब तक माहाजन नाम का ही व्यवहार होता है जयसलमेर में "माहाजनसर" नामक एक कुआ है जिस को बने हुए अनुमान सात सौ वर्ष हुए हैं) इस लिये हम ने भी इतिहासलेखन में तथा अन्यत्र भी इसी नाम का उल्लेख किया है।

बहुत से लोग माहाजनवंशवालों (ओसवालों) को बनियों वा बानियों (वैश्य) कहा करते हैं, यह उन की बड़ी भूल है, क्योंकि उक्त वंशवाले जैन क्षत्रिय (जिनधर्मानुयायी राजपूत) हैं, इस लिये इन को वैश्य समझना महाभ्रम है।

हमारे बहुत से भोलेभाले ओसवाल भ्राता भी दूसरों के कथन से अपनी वैश्य जाति सुन अपने को वैश्य ही समझने लगे हैं, यह उन की अज्ञता है, उन को चाहिये कि-दूसरों के कथन से अपने को वैश्य कदापि न समझें किन्तु ऊपर लिखे अनुसार अपने को जैनक्षत्रिय मानें।

हमने श्रीमान् मान्यवर सेठ श्री चाँदमल जी ढड्ढा (बीकानेर) से सुना है कि-बनारसनिवासी राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द ने मनुष्यसंख्या के परिगणन (मर्दुमशुमारी की गिनती) में अपने को जैनक्षत्रिय लिखाया है, हमें यह सुन कर अत्यन्त प्रसन्नता हुई क्योंकि बुद्धिमान् का यही धर्म है कि-अपने प्राचीन वंश क्रम को ठीक रीति से समझ कर तदनुकूल ही अपने को माने और प्रकट करे॥

१-इस नगरी के बसने का कारण यह है कि-श्रीमाल नगर (जिस को अब भीनमाल कहते हैं) का राजा पँवार वंशी भीमसेन का पुत्र श्रीपुञ्ज था उस का पुत्र उत्पल (उपलदे) कुमार और उहड मन्त्री ये दोनों जन अठारह हजार कुटुम्ब के सहित किसी कारण से दूसरा नगर बसाने के लिये श्रीमाल नगर से निकले थे और वर्तमान म जिस स्थान पर जोधपुर बसा है उस से पन्द्रह कोस के फासले पर उत्तर दिशा में लाखों मनुष्यों की बस्तीरूप उपकेशपट्टन (ओसियाँ) नामक नगर बसाया था यह नगर थोड़े ही समय में अच्छी शोभा से युक्त (रौनकदार) हो गया तेईसवें तीर्थङ्कर श्रीपार्श्वनाथ स्वामी के छठे

का प्रारम्भ किया, आचार्य महाराज का शिष्य अपने वास्ते आहार लाने के लिये सदा ओसियॉ पट्टन में गोचरी जाता था परन्तु जैन साधुओ के लेने योग्य शुद्ध आहार उसे किसी जगह भी नहीं मिलता था, क्योंकि उस नगरी मे राजा आदि सब लोग नास्तिक मतानुयायी अर्थात् वाममार्गी (कूँड़ा पन्थी) देवी के उपासक तथा चामुण्डा (सांचिया देवी) के भक्त थे इस लिये दयाधर्म (जैनधर्म) के अनुसार साधु आदि को आहारादि के देने की विधि को वे लोग नहीं जानते थे ।

पाटधारी श्री रत्नप्रभसूरि महाराज वीर सवत् ७० (महावीर स्वामी के निर्वाण से ७० वर्ष पीछे) अर्थात् विक्रम सवत् से ४०० (चार सौ) वर्ष पहिले विहार करते हुए जब ओसिआँ पधारे थे उस समय यह नगर गढ, मठ, धन, धान्य, वस्त्र और सर्व प्रकार के पण्य द्रव्यादि (व्यापार करने योग्य वस्तुओं आदि) के व्यापार से परिपूर्ण (भरपूर) था ॥

१–कपाली, भस्म लगानेवाले, जोगी, नाथ, कौलिक और ब्राह्म आदि, इन को वाममार्गी और नास्तिक कहते है, इन के मत का नाम नास्तिक मत वा चार्वाक मत है, ये लोग स्वर्ग, नरक, जीव, पुण्य और पाप आदि कुछ भी नहीं मानते है, किन्तु केवल चातुर्भौतिक देह मानते है अर्थात् उन का यह मत है कि–चार भूतों से ही मद्यशक्ति के समान (जैसे मद्य के प्रत्येक पदार्थ मे मादक शक्ति नहीं है परन्तु सब के मिलने से मादक शक्ति उत्पन्न हो जाती है इस प्रकार) चैतन्य उत्पन्न होता है तथा पानी के बुलबुले के समान शरीर ही जीवरूप है (अर्थात् जैसे पानी से उत्पन्न हुआ बुलबुला पानी से भिन्न नहीं है किन्तु पानीरूप ही है इसी प्रकार शरीर मे उत्पन्न हुआ जीव शरीर से भिन्न नहीं है किन्तु शरीररूप ही है), इस मत के अनुयायी जन मद्य और मास का सेवन करते है तथा माता बहिन और कन्या आदि अगम्य (न गमन करने योग्य) भी स्त्रियों के साथ गमन करते है, ये नास्तिक वाममार्गी लोग प्रतिवर्ष एक दिन एक नियत स्थान में सब मिल कर इकट्ठे होते है तथा वहॉ स्त्रियों को नग्न करके उन की योनि की पूजा करते है, इन लोगो के मत मे कामसेवन के सिवाय दूसरा कोई धर्म नहीं है अर्थात् ये लोग कामसेवन को ही परम धर्म मानते है, इस मत मे तीन चार फिरके है–यदि किसी को इस मत की उत्पत्ति के वर्णन के देखने की इच्छा हो तो शीलतरङ्गिणीनामक ग्रन्थ मे देख लेना चाहिये, व्यभिचार प्रधान होने के कारण यह मत ससार मे पूर्व समय मे बहुत फैल गया था परन्तु विद्या के संसर्ग से वर्त्तमान मे इस मत का पूर्व समय के अनुसार प्रचार नहीं है तथापि राजपूताना, पञ्जाब, बगाल और गुजरात आदि कई देशो में अब भी इस का थोडा बहुत प्रचार है, पाठकगण इस मत की अधमता को इसी से जान सकते हैं कि–इस मत में सम्मिलित होने के बाद अपने मुख से कोई भी मनुष्य यह नहीं कहता है कि–मै वाममार्गी है, राजपूताने के बीकानेर नगर में भी पचीस वर्ष पहिले तक उत्तम जातिवाले भी बहुत से लोग गुप्त रीति से इस मत में सम्मिलित होते थे परन्तु जब से लोगों को कुछ २ ज्ञान हुआ है तब से वहाँ इस मत के फन्दे से लोग निकलने लगे, अब भी वहाँ शूद्र वर्णो में इस मत का अधिक प्रचार है परन्तु उत्तम वर्ण के भी थोडे बहुत लोग इस में गुप्ततया फँसे हुए है, जिन की पोल किसी २ समय उन की गफलत से खुल जाती है, इस का कारण यह है कि–मरनेवाले के पीछे यदि उस का पुत्रादि कोई कुटुम्बी उस की गद्दी पर न बैठे तो वह (मृत पुरुष) व्यन्तरपने में अनेक उपद्रव करने लगता है, सवत् १९६३ के माघ

निदान दोनों गुरु और चेलों का मासक्षमण तप पूरा हो गया तथा कल्प के पूरे हो जाने से उक्त महाराज ज्योंही विहार करने के लिये उद्यत हुए त्योंही नगरी की अधिष्ठात्री सचियाय देवी ने अवधि ज्ञान से देख कर यह विचारा कि—हाय! बड़े ही खेद की बात है कि—ऐसे मुनि महात्मा इस पाँच लाख मनुष्यों की वस्ती में से एक महीने के भूखे इस नगरी से विदा होते हैं, यह विचार कर उक्त (सचियाय) देवी गुरुजी के पास आकर तथा वन्दन और नमन आदि शिष्टाचार करके सन्मुख खड़ी हुई और गुरुजी से कहा कि—"हे महाराज! कुछ चमत्कार हो तो दिखलाओ" देवी के इस वचन को सुन कर गुरुजी ने कहा कि "हे देवि! कारण के विना साधुजन लब्धि को नहीं फोरते हैं" इस पर पुनः देवी ने आचार्य से कहा कि—"हे महाराज! धर्म के लिये मुनि जन लब्धि को फोरते ही हैं, इस में कोई दोष नहीं है, इस सब विषय को आप जानते ही हो अतः मैं विशेष आप से क्या कहूँ, यदि आप यहाँ लब्धि को फोरेंगे तो यहाँ दयामूल धर्म फैलेगा जिस से सब को बड़ा भारी लाभ होगा" देवी के वचन को सुन कर सूरि महाराज ने उस पर उपयोग दिया तो उन्हें देवी का कथन ठीक मालूम हुआ, निदान लब्धि का फोरना उचित जान महाराज ने देवी से रूई की एक पोनी मँगवाई और उस का एक पोनिया सर्प (साँप) बन गया तथा उस सर्प ने भरी सभा में जाकर राजा उपलदे पँवार के राजकुमार महीपाल को काटा, सर्प के काटते ही राजकुमार मूर्छित होकर पृथ्वीशायी हो गया, सर्प के विष की निवृत्ति के लिये राजा ने मन्त्र यन्त्र तन्त्र और ओषधि आदि अनेक उपचार करवाये परन्तु कुछ भी लाभ न हुआ, अब क्याथा—तमाम रनिवास तथा ओसियाँ नगरी में हाहाकार मच गया, एकलौते कुमार की यह दशा देख

महीने की बात है कि—उक्त (बीकानेर) नगर में बाबड़ों की गुवाड़ में दिन को चारों दिशाओं से आ आ कर पत्थर गिरते थे तथा उन को देखने के लिये सैकड़ों मनुष्य जमा हो जाते थे इस प्रकार तीन दिन तक पत्थर गिरते रहे, हम ने भी उक्त गुवाड़ में जाकर अपनी आँखों से गिरते हुए पत्थरों को देखा था इस मत का अधिक वर्णन यहाँ पर अनावश्यक समझ कर नहीं लिखते हैं किन्तु प्रसङ्गवशात् वाचकवृन्द को इस मत का कुछ रहस्य ज्ञात (मालूम) हो जावे इस लिये दिग्दर्शनमात्र (बहुत ही थोड़ा सा) इस का वर्णन कर दिया गया है, इस के विषय में हम अपनी ओर से इतना ही कहना पर्याप्त (काफी) समझते हैं कि—यद्यपि संसार में अनेक निकृष्ट (खराब) मत प्रचलित हो गये हैं तथापि इस कूण्डापन्थ मत के समान दूसरा कोई भी निकृष्ट मत नहीं है, देखिये! आप चाहे किसी मतवाले से पूछिये परन्तु वह व्यभिचार को कभी धर्म नहीं कहेगा परन्तु इस मत के लोग व्यभिचार को ही धर्म मानते हैं इस लिये जो लोग इस मत में फँसे हुए हैं उन को इसे अवश्य छोड़ देना चाहिये क्योंकि मनुष्यजन्म बहुत कठिनता से प्राप्त होता है, इस लिये इसे व्यर्थ में न खोकर इस के सार पर ध्यान देना चाहिये अर्थात् परम तत्त्व और पुरुषार्थ के सम्पादन का आश्रय लेकर मनुष्यजन्म के धर्म अर्थ काम और मोक्षरूप चारों फलों को प्राप्त करना चाहिये कि जिस से इस जीवात्मा को उभयलोक में सुख और शान्ति प्राप्त हो ॥

राजा के हृदय में जो शोक ने वसेरा किया भला उस का तो कहना ही क्या है ! एकमात्र आँखों के तारे राजकुमार की यह दशा होने पर भला राजवंश में अन्न जल किस को अच्छा लगता है और जब राजवंश ही निराहार होकर सन्तप्त हो रहा है तब नगरीवासी स्वामिभक्त प्रजाजन अपनी उदरदरी को कैसे भर सकते है ? निदान भूखे प्यासे और शोक से सन्तप्त सब ही लोग इधर उधर दौड़ने लगे, यन्त्र मन्त्रादिवेत्ता अनेक जन ढूंढ २ कर उपचारादि के लिये बुलाये गये परन्तु कुछ न हुआ, होता कैसे कहीं मायिक (माया से बने हुए) सर्प का भी उपचार हो सकता है ? लाचार होकर राजा आदि सर्व परिवारजन तथा नागरिक जन निराश हो गये और कुमार को मरा हुआ जान कर श्मशानभूमि में जलाने के लिये लेकर प्रस्थित (रवाना) हुए, जब कुमार की लाश को लिये हुए राजा आदि सब लोग नगर के द्वार पर पहुँचे उस समय रत्नप्रभ सूरि जी का शिष्य आकर उन से बोला कि—"यदि तुम हमारे गुरुजी का कहना स्वीकार करो तो वे इस मृत कुमार को जीवित कर सकते है" यह सुन कर वे सब लोग बोले कि—"यह कुमार किसी प्रकार जीवित हो जाना चाहिये, तुम्हारे गुरु की जो कुछ आज्ञा होगी वह अवश्य ही हम सब लोगों के शिरोधार्य होगी" (सत्य है—गरजी और दर्दी सब कुछ स्वीकार करते हैं) निदान शिष्य के कथनानुसार राजा आदि सब लोग कुमार की लाश को गुरुजी के पास ले गये, उस समय सूरिजी ने राजा से कहा कि—"यदि तुम अपने कुटुम्बसहित मिथ्यात्व धर्म का त्याग कर सर्वज्ञ के कहे हुए दयामूल धर्म का ग्रहण करो तो हम कुमार को जीवित कर सकते है" राजा आदि सब लोगों ने गुरु जी का कहना हर्षपूर्वक स्वीकार कर लिया, फिर क्या था-वही पोनिया सर्प आया और कुमार का सम्पूर्ण विष खींच कर चला गया, कुमार आलस्य में भरा हुआ तथा जँभाइयों को लेता हुआ निद्रा से उठे हुए पुरुष के समान उठ खड़ा हुआ और चारों ओर देख कर कहने लगा कि—"तुम सब लोग मुझे इस जङ्गल में क्यो लाये" कुमार के इस वचन को सुन कर राजा आदि सब लोगों के नेत्रों में प्रेमाश्रु (प्रेम के आँसू) वहने लगे तथा हर्ष और आनन्द की तरङ्गें हृदय में उमड़ने लगीं, उपलदे राजा ने इस कौतुक से विस्मित और आनन्दित होकर तथा सूरि जी को परम चमत्कारी महात्मा जान कर अपने मुकुट को उतार कर उन के चरणों में रख दिया और कहा कि—"हे परम गुरो ! यह सर्व राज्य, कोठार, भण्डार, वरु मेरे प्राण तक सब कुछ आपके अर्पण है, दयानिधे ! इस मेरे सर्व राज्य को लेकर मुझे अपने ऋण से मुक्त कीजिये" राजा के ऐसे विनीत (विनययुक्त) वचनों को सुन कर सूरि जी वोले कि—"हे नरेन्द्र ! जब हम ने अपने पिता के ही राज्य को छोड दिया तो अब हम नरकादि दुःखप्रद राज्य को लेकर क्या करेंगे ? इस लिये हम को राज्य से कुछ भी प्रयोजन नहीं है किन्तु—हमें प्रयोजन केवल श्रीवीतराग भगवान् के

कहे हुए धर्म से है, अत तुम्हें भद्रालु देख हम यही चाहते हैं कि—तुम भी श्रीवीतराग भगवान् के कहे हुए सम्यक्त्वयुक्त दयामूल धर्म को सुनो और परीक्षा करके उस का ग्रहण करो कि—जिस से तुम्हारा इस भव और पर भव में कल्याण हो तथा तुम्हारी सन्तति भी सदा के लिये सुखी हो, क्योंकि कहा है कि—

बुद्धेः फलं तत्त्वविचारणं च, देहस्य सारो व्रतधारणञ्च ॥
अर्थस्य सारं किल पात्रदानं, वाचः फलं प्रीतिकरं नराणाम् ॥ १ ॥

अर्थात् बुद्धि के पाने का फल—तत्त्वों[1] का विचार करना है, मनुष्य शरीर के पाने का सार (फल)व्रत का (पच्चक्खाण आदि नियम का) धारण करना है, धन (लक्ष्मी) के पाने का सारसुपात्रों को दान देना है तथा वचन के पाने का फल सब से प्रीति करना है" ॥ १ ॥

"हे नरेन्द्र !, नीतिशास्त्र में कहा गया है कि—

यथा चतुर्भिः कनकं परीक्ष्यते । निर्घर्षणच्छेदनतापताडनैः ॥
तथैव धर्मो विदुषा परीक्ष्यते । श्रुतेन शीलेन तपोदयागुणैः" ॥ १ ॥

"अर्थात्—कसौटी पर घिसने से, छेनी से काटने से, अग्नि में तपाने से और हथौड़े के द्वारा कूटने से, इन चार प्रकारों से जैसे सोने की परीक्षा की जाती है उसी प्रकार बुद्धिमान् लोग धर्म की भी परीक्षा चार प्रकार से करते हैं अर्थात् श्रुत (शास्त्र के वचन) से, शील से, तप से तथा दया से" ॥ १ ॥

"इन में से श्रुत अर्थात् शास्त्र के वचन से धर्म की इस प्रकार परीक्षा होती है कि जो धर्म शास्त्रीय (शास्त्र के) वचनों से विरुद्ध न हो किन्तु शास्त्रीय वचनों से समर्थित (पुष्ट किया हुआ) हो उस धर्म का ग्रहण करना चाहिये और ऐसा धर्म केवल श्री वीतरागकथित है इस लिये उसी का ग्रहण करना चाहिये, हे राजन् ! मैं इस बात को किसी पक्षपात से नहीं करता हूँ किन्तु यह बात बिलकुल सत्य है, तुम समझ सकते हो कि जब हम ने संसार को छोड़ दिया तब हमें पक्षपात से क्या प्रयोजन है ? हे राजन् ! आप निश्चय जानो कि—न तो श्रीवीतराग महावीर स्वामी पर मेरा कुछ पक्षपात है (कि महावीर स्वामी ने जो कुछ कहा है वही मानना चाहिये और दूसरे का कथन नहीं मानना चाहिये) और न कपिल आदि अन्य ऋषियों पर मेरा द्वेष है (कि कपिल आदि का वचन नहीं मानना चाहिये) किन्तु हमारा यह सिद्धान्त है कि जिस का वचन शास्त्र और युक्ति से अविरुद्ध (अप्रतिकूल अर्थात् अनुकूल) हो उसी का ग्रहण करना चाहिये" ॥ १ ॥

१—जीव और अजीव आदि नौ तत्त्व हैं ॥

२—वचन के द्वारा धर्म की परीक्षा का सिद्धान्त न्यायशास्त्र से जाना जा सकता है ॥

३—यही समस्त बुद्धिमानों का भी सिद्धान्त है ॥

"धर्म की दूसरी परीक्षा शील के द्वारा की जाती है–शील[1] नाम आचार का है, वह (शील) द्रव्य और भाव के भेद से दो प्रकार का है–इन में से ऊपर की शुद्धि को द्रव्य-शील कहते है तथा पाँचों इन्द्रियों के और क्रोध आदि कषायो के जीतने को भाव-शील कहते है, अतः जिस धर्म में उक्त दोनों प्रकार का शील कहा गया हो वही माननीय है।

"धर्म की तीसरी परीक्षा तप के द्वारा की जाती है–वह (तप) मुख्यतया बाह्य और आभ्यन्तर भेद से दो प्रकार का है, इस लिये जिस धर्म में दोनो प्रकार का तप कहा गया हो वही मन्तव्य है"।

"धर्म की चौथी परीक्षा दया के द्वारा की जाती है–अर्थात् जिस में एकेन्द्रिय जीव से लेकर पञ्चेन्द्रिय तक जीवों पर दया करने का उपदेश हो वही धर्म माननीय है"।

"हे नरेन्द्र ! इस प्रकार बुद्धिमान् जन उक्त चारों प्रकारों से परीक्षा करके धर्म का अङ्गीकार (स्वीकार) करते है"।

"श्री वीतराग सर्वज्ञ ने उस धर्म के दो भेद कहे है–साधुधर्म और श्रावकधर्म, इन में से साधुधर्म उसे कहते है कि–ससार का त्यागी साधु अपने सर्वविरतिरूप पञ्च महाव्रत-रूपी कर्त्तव्यों का पूरा वर्त्ताव करे"।

"उन में से प्रथम महाव्रत यह है कि–सब प्रकार के अर्थात् सूक्ष्म और स्थूल किसी जीव को एकेन्द्रिय से लेकर पञ्चेन्द्रिय तक को न तो स्वय मन वचन काय से मारे, न मरावे और न मरते को भला जाने"।

"दूसरा महाव्रत यह है कि–मन वचन और काय से न तो स्वयं झूठ बोले, न बोलावे और न बोलते हुए को भला जाने"।

"तीसरा महाव्रत यह है कि–मन वचन और काय से न तो स्वयं चोरी करे, न करावे और न करते हुए को भला जाने"।

"चौथा महाव्रत यह है कि–मन वचन और काय से न तो स्वय मैथुन का सेवन करे, न मैथुन का सेवन करावे और न मैथुन का सेवन करते हुए को भला जाने"।

"तथा पाँचवाँ महाव्रत यह है कि–मन वचन और काय से न तो स्वय धर्मोपकरण के सिवाय परिग्रह को रक्खे न उक्त परिग्रह को रखावे और न रखते हुए को भला जाने"।

"इन पाँच महाव्रतों के सिवाय रात्रिभोजनविरमण नामक छठा व्रत[2] है अर्थात् मन

१–"शील स्वभावे सद्वृत्ते" इत्यमर ॥

२–विचार कर देखा जावे तो इस व्रत का समावेश ऊपर लिखे व्रतों मे ही हो सकता है अर्थात् यह व्रत उक्त व्रतों के अन्तर्गत ही है ॥

वचन और काय से न तो स्वयं रात्रि में भोजन करे, न रात्रि में भोजन करावे और न रात्रि में भोजन करते हुए को भला जाने"

"इन व्रतों के सिवाय साधु को उचित है कि—भूख और प्यास आदि बाईस परीषहों को जीते, सत्रह प्रकार के संयम का पालन करे तथा चरणसत्तरी और करणसत्तरी के गुणों से युक्त हो, भावितात्मा होकर श्री वीतराग की आज्ञानुसार चल कर मोक्षमार्ग का साधन करे, इस प्रकार अपने कर्तव्य में तत्पर जो साधु (मुनिराज) हैं वे ही संसार सागर से स्वयं तरनेवाले तथा दूसरों को तारनेवाले और परम गुरु होते हैं, उन में भी उत्सर्गनय, अपवादनय, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के अनुसार चल कर संयम के निर्वाह करनेवाले तथा ओघा, मुँहपत्ती, चोलपट्टा, चद्दर, पाँगरणी, झोलकी, दण्ड और पात्र के रखनेवाले श्वेताम्बरी शुद्ध धर्म के उपदेशक यति को गुरु समझना चाहिये, इस प्रकार के गुरुओं के भी गुणस्थान के आश्रय से, नियण्ठे के योग से और काल के प्रभाव से समयानुसार उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य, ये तीन दर्जे होते हैं"[1]।

"दूसरा श्रावकधर्म अर्थात् गृहस्थधर्म है—इस धर्म का पालन करनेवाले गृहस्थ कोई तो सम्यक्त्वी होते हैं जो कि नव तत्त्वों पर याथातथ्यरूप से श्रद्धा रखते हैं, पाप को पाप समझते हैं, पुण्य को पुण्य समझते हैं और कुगुरु कुदेव तथा कुधर्म को नहीं मानते हैं किन्तु सुगुरु सुदेव और सुधर्म को मानते हैं अर्थात् अठारह प्रकार के दूषणों से रहित श्री वीतराग देव को देव मानते हैं और पूर्वोक्त लक्षणों से युक्त गुरुओं को अपना गुरु मानते हैं तथा सर्वज्ञ के कहे हुए दयामूल धर्म को मानते हैं (ये सम्यक्त्वी श्रावक के लक्षण हैं), ये पहिले दर्जे के श्रावक हैं, इन के कृष्ण वासुदेव तथा श्रेणिक राजा के समान व्रत और प्रत्याख्यान (पच्चक्खाण) किसी वस्तु का त्याग नहीं होता है"[2]।

"दूसरे दर्जे के श्रावक वे हैं जो कि सम्यक्त्व से युक्त बारह व्रतों का पालन करते हैं, वे बारह व्रत ये हैं—स्थूल प्राणातिपात, स्थूलमृषावाद, स्थूलअदत्तादान, स्थूलमैथुन, स्थूलपरिग्रह, दिक्परिमाण, भोगोपभोग व्रत अनर्थदण्डव्रत, सामायिक व्रत, देशावकाशी व्रत, पौषधोपवास व्रत तथा अतिथिसंविभाग व्रत"।

"हे राजेन्द्र ! इन बारह व्रतों का सारांश संक्षेप से तुम को सुनाते हैं ध्यानपूर्वक सुनो—पूर्वोक्त साधु के लिये तो बीस बिश्वा दया है अर्थात् उक्त साधु लोग बीस बिश्वा दया का पालन करते हैं परन्तु गृहस्थ से तो केवल सवा बिश्वा ही दया का पालन करना बन सकता है, देखो"—

१–प्रमादी और अप्रमादी आदि ॥

२–यह चौथे गुणस्थान के आश्रय से पहिले दर्जे के सम्यक्त्वी को श्रावक कहा है, पाँचवें गुणस्थान वाले सम्यक्त्वयुक्त अणुव्रति होते हैं ॥

"गाथा—जीवा सुहुमा थूला, संकप्पा आरंभा भवे दुविहा ॥
सवराह निरवराह, साविक्खा चेव निरविक्खा ॥ १ ॥

अर्थ—जगत् में दो प्रकार के जीव हैं—एक स्थावर और दूसरे त्रस, इन में से स्थावरों के पुनः दो भेद हैं—सूक्ष्म और वादर, उन में से जो सूक्ष्म जीव है उन की तो हिंसा होती ही नहीं है, क्योंकि अति सूक्ष्म जीवों के शरीर में वाह्य (वाहरी) शस्त्र (हथियार) आदि का घाव नहीं लगता है[1] परन्तु यहाँ पर सूक्ष्म शब्द स्थावर जीव पृथ्वी, पानी, अग्नि, पवन और वनस्पति रूप जो वादर पाँच स्थावर है उन का वाचक है, दूसरे स्थूल जीव हैं वे द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय तथा पञ्चेन्द्रिय माने जाते है, इन दो भेदों में सर्व जीव आ जाते है" ।

"साधु इन सव जीवों की त्रिकरण शुद्धि (मन वचन और काय की शुद्धि) से रक्षा करता है, इस लिये साधु के वीस विश्वा दया है परन्तु गृहस्थ (श्रावक) से पॉच स्थावर की दया नहीं पाली जा सकती है, क्योंकि सचित्त आहार आदि के करने से उसे अवश्य हिंसा होती है, इस लिये उस की दश विश्वा दया तो इस से दूर हो जाती है, अव रही दश विश्वा अर्थात् एक त्रस जीवों की दया रही, सो उन त्रस जीवों में भी दो भेद होते हैं—संकल्पसहनन (सङ्कल्प अर्थात् इरादे से मारना) और आरम्भसंहनन (आरम्भ अर्थात् कार्य के द्वारा मारना), इन में से श्रावक को आरम्भहिंसा का त्याग नहीं है किन्तु सङ्कल्पहिंसा का त्याग है, हा यह ठीक है कि आरम्भहिंसा में उस के लिये भी यत्न अवश्य है परन्तु त्याग नहीं है, क्योकि आरम्भहिंसा तो श्रावक से हुए विना नहीं रहती है, इस लिये उस शेष दश विश्वा दया में से पॉच विश्वा दया आरम्भहिंसा के कारण जाती रही, अब शेष पाँच विश्वा दया रही अर्थात् सङ्कल्प के द्वारा त्रस जीव की हिंसा का त्याग रहा, अब इस में भी दो भेद होते है—सापराधसहनन और निरपराधसहनन, इन में से निरपराधसहनन गृहस्थ को नहीं करना चाहिये अर्थात् जो निरपराधी जीव है उन को नही मारना चाहिये, शेष सापराधसहनन में उसे यतना रखने का अधिकार है अर्थात् अपराधी जीवों के मारने में यत्नमात्र है, इस से सिद्ध हुआ कि अपराधी जीवों की दया श्रावक से सदा और सर्वथा नही पाली जा सकती है क्योंकि जब चोर घर में घुस कर तथा चोरी करके चीज को लिये जाता हो उस समय उसे मारे कूटे विना कैसे काम चल सकता है, एव कोई पुरुष जब अपनी स्त्री के साथ अनाचार करता हो तब उसे देख कर दण्ड दिये विना कैसे काम चल सकता है, इसी प्रकार जब कोई श्रावक राजा हो अथवा राजा का मन्त्री हो और जब वह (मन्त्रित्व दशा में) राजा के आदेश

१—क्योंकि शस्त्रों की धार से भी वे जीव सूक्ष्म होते हैं इस लिये शस्त्रों की धार का उन पर असर नहीं होता है ॥

(कथन) से भी युद्ध करने को आवे तब चाहे श्रावक प्रथम शस्त्र को न भी चलावे परन्तु जब शत्रु उस पर शस्त्र को चलावे अथवा उसे मारने को आवे उस समय उस श्रावक को भी शत्रु को भी मारना ही पड़ता है, इसी प्रकार जब कोई सिंहादि हिंस (हिंसक) जन्तु श्रावक को मारने को आवे तब उस को भी मारना ही पड़ता है, ऐसी दशा में सङ्कल्प से भी हिंसा का त्याग नहीं हो सकता है, इस लिये उस शेष पाँच विश्वा दया में से भी आधी जाती रही, अब केवल ढाई विश्वा ही दया रह गई अर्थात् केवल यह नियम रहा कि—जो निरपराधी त्रस मात्र जीव दृष्टिगोचर हो उसे न मारूँ, अब इस में भी दो भेद होते हैं—सापेक्ष और निरपेक्ष, इन में से भी सापेक्ष निरपराधी जीव की दया श्रावक से नहीं पाली जा सकती है, क्योंकि जब श्रावक घोड़े, बैल, रथ और गाड़ी आदि सवारी पर चढ़ता है तब उस घोड़े आदि को हाँकते समय उस के चाबुक आदि मारना पड़ता है, यद्यपि उन घोड़े और बैल आदिकों ने उस का कुछ अपराध नहीं किया है क्योंकि वे

---

1 हमारे बहुत से आज कल के भोले भावक भाई कहते हैं कि श्रावक को कभी युद्ध नहीं करना चाहिये परन्तु उन का यह कथन बिलकुल बेसमझी का है क्योंकि जैनशास्त्र में बहुत से स्थानों में श्रावकों का युद्ध करना लिखा है, देखो! श्री निरयावलिका सूत्र तथा श्री भगवती सूत्र में कहा है कि—वरुण नाग नट नामक बारह व्रतधारी जैन क्षत्रिय ने युद्ध के प्रारम्भ के समय लड़ाई के निमित्त को सुन कर अट्ठम पच्चक्खाण कर सरदारसेवा के लिये युद्ध में आकर अपना पराक्रम दिखलाया अन्त में एक तीर के छाती में लगने से अपनी मृत्यु को समीप जान कर सन्थारा किया (यह वर्णन ऊपर कहे हुए दोनों सूत्रों में मौजूद है), देखो! उक्त जब क्षत्रिय ने अपना सांसारिक कर्तव्य भी पूरा किया और धार्मिक कर्त्तव्य को भी पूरा किया उस के विषय में पुनः सूत्रकार साक्षी देता है कि वह उक्त व्यवहार से देवलोक को गया, इस के सिवाय उक्त सूत्रों में यह भी वर्णन है कि श्री महावीर स्वामी के भक्त और बारहव्रतधारी श्रावक चेटक राजा ने कूणिक राजा के साथ बारह युद्ध किये और उन में से एक ही युद्ध में १८ (एक क्रोड़ अस्सी लाख) मनुष्य मरे, इसी प्रकार बहुत से प्रमाण इस विषय में बतलाये जा सकते हैं, तात्पर्य यह है कि सरदारसेवा के लिये युद्ध करने में जैन शास्त्र में कोई निषेध नहीं है विचार करने से यह बात अच्छे प्रकार मालूम हो सकती है कि—सरदारसेवा के लिये लड़ता हुआ व्रतधारी श्रावक हिंसा करने के हेतु से नहीं लड़ता है किन्तु हिंसकों को दूर रखने के लिये लड़ता है तथा अपराधी को शिक्षा देने (दण्ड देने) के लिये लड़ता है इस लिये श्रावक का पहिला (प्राणातिपात) व्रत उस को इस विषय में नहीं रोक सकता है (देखो बारह व्रतों में से पहिले व्रत के आगार) पाठकगण! हमारे इस कथन से यह न समझ लीजिये कि श्रावक को युद्ध में जाने में कोई दोष नहीं है किन्तु हमारे कथन का प्रयोजन यह है कि सरदारसेवा से तथा धर्म के अनुकूल युद्ध में जाने से श्रावक के पहिले व्रत का भंग नहीं होता है, इस विषय में जैनग्रन्थ वो ही अनेक साक्षियां हैं, जिन का कुछ वर्णन ऊपर कर ही चुके हैं, ग्रन्थ के बढ़ जाने के भय से यहां पर इस विषय में विशेष नहीं लिखना चाहते हैं, क्योंकि विचारशील पाठकों के लिये प्रमाणसहित थोड़ा ही लिखना पर्याप्त (काफी) और उपयोगी होता है ॥

बेचारे तो उस को पीठ पर चढ़ाये हुए ले जा रहे है और वह प्रथम तो उन की पीठ पर चढ़ रहा है दूसरे यह नही समझता है कि इस बेचारे जीव की चलने की शक्ति है वा नहीं है, जब वे जीव धीरे २ चलते है वा नही चलते है तब वह अज्ञान के उदय से उन को गालियॉ देता है तथा मारता भी है, तात्पर्य यह है कि-इस दशा में यह निरपराधी जीवों को भी दु.ख देता है, इसी प्रकार अपने शरीर में अथवा अपने पुत्र पुत्री नाती तथा गोत्र आदि के मस्तक वा कर्ण (कान) आदि अवयवों में अथवा अपने मुख के दाँतों में जब कीड़े पड जाते है तब उन के दूर करने के लिये उन (कीडों) की जगह में उसे ओषधि लगानी पड़ती है, यद्यपि यह तो निश्चय ही है कि-इन जीवों ने उस श्रावक का कुछ भी अपराध नही किया है, क्योंकि वे बेचारे तो अपने कर्मों के वश इस योनि में उत्पन्न हुए हैं कुछ श्रावक का बुरा करने वा उसे हानि पहुॅचाने की भावना से उत्पन्न नहीं हुए है, परन्तु श्रावक को उन्हें मारना पड़ता है, तात्पर्य यह है कि इन की हिंसा भी श्रावक से त्यागी नहीं जा सकती है, इस लिये ढाई विश्वों में से आधी दया फिर चली गई, अब केवल सवा विश्वा दया शेष रही, बस इस सवा विश्वा दया को भी शुद्ध श्रावक ही पाल सकता है अर्थात् संकल्प से निरपराधी त्रस जीवों को विना कारण न मारूँ इस प्रतिज्ञा का यथाशक्ति पालन कर सकता है, हा यह श्रावक का अवश्य कर्त्तव्य है कि-वह जान बूझ कर ध्वसता को न करे, मन में सदा इस भावना को रक्खे कि मुझ से किसी जीव की हिंसा न हो जावे, तात्पर्य यह है कि-इस क्रम से स्थूल प्राणातिपात व्रत का श्रावक को पालन करना चाहिये, हे नरेन्द्र ! यह व्रत मूलरूप है तथा इस के अनेक भेद और भेदान्तर है जो कि अन्य ग्रन्थो से जाने जा सकते है, इस के सिवाय बाकी के जितने व्रत हैं वे सब इसी व्रत के पुष्प फल पत्र और शाखारूप है" इत्यादि ।

इस प्रकार श्रीरत्नप्रभ सूरि महाराज के मुख से अमृत के समान उपदेश को सुन कर राजा उपलदे पँवार को प्रतिबोध हुआ और वह अपने पूर्व ग्रहण किये हुए महामिथ्यात्वरूप तथा नरकपात के हेतुभूत देव्युपासकत्वरूपी स्वमत को छोड कर सत्य तथा दया से युक्त धर्म पर आ ठहरा और हाथ जोड़ कर श्री आचार्य महाराज से कहने लगा कि-'हे परम गुरो ! इस में कोई सन्देह नहीं है कि-यह दयामूल धर्म इस भव और परभव दोनों में कल्याणकारी है परन्तु क्या किया जावे मै ने अबतक अपनी अज्ञानता के उदय से व्यभिचारप्रधान असत्य मत का ग्रहण कर रक्खा था परन्तु हॉ अब मुझे उस की निःसारता तथा दयामूल धर्म की उत्तमता अच्छे प्रकार से मालूम हो गई है, अब मेरी आप से यह प्रार्थना है कि-इस नगर में उस मत के जो अध्यक्ष लोग हैं उन के साथ आप शास्त्रार्थ करें, यह तो मुझे निश्चय ही है कि शास्त्रार्थ में आप जीतेंगे क्योंकि सत्य धर्म के आगे असत्य मत कैसे ठहर सकता है ? बस इस का परिणाम यह होगा कि मेरे

कुटुम्बी और सगे सम्बन्धी आदि सब लोग प्रेम के साथ इस दयामूल धर्म का ग्रहण करेंगे" राजा के इस वचन को सुन कर श्रीरत्नप्रभ सूरि महाराज बोले कि—"निस्सन्देह (बेशक) वे लोग आवें हम उन के साथ शास्त्रार्थ करेंगे, क्योंकि हे नरेन्द्र! संसार में ऐसा कोई मत नहीं है सो कि दयामूल अर्थात् अहिंसाप्रधान इस जिनधर्म को शास्त्रार्थ के द्वारा हटा सके, उस में भी भला व्यभिचारप्रधान यह कूण्डापन्थी मत तो कोई चीज ही नहीं है, यह मत तो अहिंसाप्रधान धर्मरूपी सूर्य के सामने खद्योतवत् (जुगनू के समान) है, फिर भला यह मत उस धर्म के आगे कब ठहर सकता है अर्थात् कभी नहीं ठहर सकता है, निस्सन्देह उक्त मतावलम्बी आवें हम उन के साथ शास्त्रार्थ करने को तैयार हैं" गुरु जी के इस वचन को सुन कर राजा ने अपने कुटुम्बी और सगे सम्बन्धियों से कहा कि—"जाकर अपने गुरु को बुला लाओ" राजा की आज्ञा पाकर दस बीस मुख्य २ मनुष्य गये और अपने मत के नेता से कहा कि—"जैनाचार्य अपने मत को व्यभिचार प्रधान तथा बहुत ही बुरा बतलाते हैं और अहिंसामूल धर्म को सब से उत्तम बतला कर उसी का स्थापन करते हैं, इस लिये आप कृपा कर उन से शास्त्रार्थ करने के लिये शीघ्र ही चलिये" उन लोगों के इस वाक्य को सुन कर मद्यपान किये हुए तथा उस के नशे में उन्मत्त उस मत का नेता श्रीरत्नप्रभ सूरि महाराज के पास आया परन्तु पाठकगण जान सकते हैं कि—सूर्य के सामने अन्धकार कैसे ठहर सकता है? बस दयामूल धर्मरूपी सूर्य के सामने उस का अज्ञानतिमिर (अज्ञानरूपी अँधेरा) दूर हो गया अर्थात् वह शास्त्रार्थ में हार गया तथा परम लज्जित हुआ, सत्य है कि—उल्लू का और रात्रि में ही रहता है किन्तु जब सूर्योदय होता है तब वह नेत्रों से भी नहीं देख सकता है, अब क्या था—श्रीरत्नप्रभ सूरि का उपदेश और ज्ञानरूपी सूर्य का उदय ओसियाँपट्टन में हो गया और वहाँ का अज्ञानरूपी सब अन्धकार दूर हो गया अर्थात् उसी समय राजा उपलदे पँवार ने हाथ जोड़ कर सम्यक्त्वसहित श्रावक के बारह व्रतों का ग्रहण किया और

१—इन व्रतों के वर्णन के ग्रन्थ श्रीहेमाचार्य जी महाराज तथा श्रीहरिभद्र सूरि जी के बनाये हुए संस्कृत में बहुत हैं परन्तु केवल भाषा जानने वालों के लिये वे ग्रन्थ उपकारी नहीं हैं अतः भाषा जानने वालों को यदि उक्त विषय देखना हो तो श्रीजिनदत्तजी मुनिकृत साधारणश्रावक रत्नाकर नामक ग्रन्थ को देखना चाहिये जिस का कुछ वर्णन हम इसी ग्रन्थ के दूसरे अध्याय में नोट में कर चुके हैं, क्योंकि यह ग्रन्थ भाषामात्र जानने वालों के लिये बहुत ही उपयोगी है ॥

२—राजा उपलदे पँवार ने दयामूल धर्म के ग्रहण करने के बाद श्रीमहावीर स्वामी का मन्दिर ओसियाँ में बनवाया था और उस की प्रतिष्ठा श्रीरत्नप्रभ सूरि महाराज ने ही करवाई थी यह मन्दिर अब भी ओसियों में विद्यमान (मौजूद) है परन्तु बहुत समय बीत जाने के कारण यह मन्दिर जीर्णप्राय ६ अत्यन्त जीर्ण हो रहा था तथा ओसियों में श्रावकों के घरों के न होने से पूजा आदि का भी प्रबन्ध यथोचित नहीं था अतः फलोधी (मारवाड़) निवासी [illegible] श्रीमान् श्रीफूलचन्द जी महाराज ने उस के

छत्तीस कुली राजपूतों ने तत्काल ही दयामूल धर्म का अङ्गीकार किया, उस छत्तीस कुली में से जो २ राजन्य कुल वाले थे उन सब का नाम इस प्राचीन छप्पय छन्द से जाना जा सकता है:—

छप्पय—वर्द्धमान तणें पछै वरष बावन पद लीयो ।
श्री रतन प्रभ सूरि नाम तासु सत गुरु व्रत दीयो ॥
भीनमाल सुँ ऊठिया जाय ओसियाँ बसाणा ।
क्षत्रि हुआ शाख अठारा उठै ओसवाल कहाणा ॥
इक लाख चौरासी सहस घर राजकुली प्रतिबोधिया ।
श्री रतन प्रभ ओस्याँ नगर ओसवाल जिण दिन किया ॥ १ ॥

जीर्णोद्धार में अत्यन्त प्रयास (परिश्रम) किया है अर्थात् अनुमान से पाँच सात हजार रुपये अपनी तरफ से लगाये हैं तथा अपने परिचित श्रीमानों से कह सुन कर अनुमान से पचास हजार रुपये उक्त महोदय ने अन्य भी लगवाये हैं, तात्पर्य यह है कि–उक्त महोदय के प्रशसनीय उद्योग से उक्त कार्य में करीब साठ हजार रुपये लग चुके है तथा वहाँ का सर्व प्रवन्ध भी उक्त महोदय ने प्रशसा के योग्य कर दिया है इस शुभ कार्य के, लिये उक्त महोदय को जितना धन्यवाद दिया जावे वह थोडा है क्योंकि मन्दिर का जीर्णोद्धार करवाना वहुत ही पुण्यस्वरूप कार्य है, देखो ! जैनशास्त्रकारों ने नवीन मन्दिर के वनवाने की अपेक्षा प्राचीन मन्दिर के जीर्णोद्धार का आठगुणा फल कहा है (यथा च–नवीनजिनगेहस्य, विधाने यत्फल भवेत् ॥ तस्मादष्टगुण पुण्य, जीर्णोद्धारेण जायते ॥ १ ॥ इस का अर्थ स्पष्ट ही है) परन्तु महाशोक का विषय है कि–वर्त्तमान काल के श्रीमान् लोग अपने नाम की प्रसिद्धि के लिये नगर में जिनालयों के होते हुए भी नवीन जिनालयों को वनवाते हैं परन्तु प्राचीन जिनालयों के उद्धार की तरफ विलकुल ध्यान नहीं देवे हैं, इस का कारण केवल यही विचार में आता है कि–उन का उद्धार करवाने से उन के नाम की प्रसिद्धि नहीं होती है–वलिहारी है ऐसे विचार और वुद्धि की ! हम से पुन. यह कहे विना नहीं रहा जाता है कि–धन्य है श्रीमान् श्रीफूलचन्द जी गोलेच्छा को कि जिन्हों ने व्यर्थ नामवरी की ओर तनिक भी ध्यान न देकर सच्चे सुयश तथा अखण्ड धर्म के उपार्जन के लिये ओसियाँ मे श्रीमहावीर स्वामी के मन्दिर का जीर्णोद्धार करा के "ओसवाल वशोत्पत्तिस्थान" को देदीप्यमान किया ।

हम श्रीमान् श्रीमानमल जी कोचर महोदय को भी इस प्रसग मे धन्यवाद दिये विना नहीं रह सकते हैं कि–जिन्हों ने नाजिम तथा तहसीलदार के पद पर स्थित होने के समय वीकानेरराज्यान्तर्गत सर्दारशहर, लूणकरणसर, कालू, भादरा तथा सूरतगढ आदि स्थानो मे अत्यन्त परिश्रम कर अनेक जिनालयो का जीर्णोद्धार करवा कर सच्चे पुण्य का उपार्जन किया ॥

१–वहुत से लोग ओसवाल वश के स्थापित होने का सवत् वीया २ वाइसा २२ कहते हैं, सो इस छन्द से वीया वाइसा सवत् गलत है, क्योंकि श्री महावीर स्वामी के निर्वाण से ७० वर्ष पीछे ओसवालवश की स्थापना हुई है, जिस को प्रमाणसहित लिख ही चुके हैं ॥

प्रथम साम्ब पँवार सेस सीसौद सिँगाला ।
रणथम्भा राठोड़ वंस चंवाल बचाला ॥
दैया भाटी सौनगरा कछावा धनगौड़ कहीजे ।
जादम झाला जिंद लाज मरजाद लहीजे ॥
खरदरा पाट औ पेसरा लेणाँ पटा जला खरा ।
एक दिवस इता माहाजन हुया सूर वश भिडसाखरा ॥ २ ॥

उस समय श्रीरत्नप्रभ सूरि महाराज ने ऊपर कहे हुए राजपूतों की शाखाओं का माहाजन वंश और अठारह गोत्र स्थापित किये थे जो कि निम्नलिखित हैं:—१—तातहड़ गोत्र । २—बाफणा गोत्र । ३—कर्णाट गोत्र । ४—बलहरा गोत्र । ५—मोराक्ष गोत्र । ६—कुलहट गोत्र । ७—विरहट गोत्र । ८—श्रीश्रीमाल गोत्र । ९—श्रेष्ठिगोत्र । १०—सुचिंती गोत्र । ११—आईचणाग गोत्र । १२—भूरि (भटेवरा) गोत्र । १३—भाद्रगोत्र । १४—चीचट गोत्र । १५—कुमट गोत्र । १६—डिंडू गोत्र । १७—कनोज गोत्र । १८—लघु श्रेष्ठि गोत्र ॥

इस प्रकार ओसिया नगरी में माहाजन वंश और उक्त १८ गोत्रों का स्थापन कर श्री सूरि जी महाराज विहार कर गये और इस के पश्चात् दश वर्ष के पीछे पुनः उसी नगर नामक नगर में सूरि जी महाराज विहार करते हुए पधारे और उन्हों ने राजपूतों के दश हजार घरों को प्रतिबोध देकर उन का माहाजन वंश और सुघड़ादि बहुत से गोत्र स्थापित किये ।

प्रिय वाचक वृन्द ! इस प्रकार ऊपर लिखे अनुसार सब से प्रथम माहाजन वंश की स्थापना जैनाचार्य श्री रत्नप्रभसूरि जी महाराज ने की, उस के पीछे विक्रम संवत् सोलह सौ तक बहुत से जैनाचार्यों ने राजपूत, महेश्वरी वैश्य और ब्राह्मण जातिवालों को प्रतिबोध देकर (अर्थात् ऊपर कहे हुए माहाजन वंश का विस्तार कर) उन के माहाजन वंश और अनेक गोत्रों का स्थापन किया है जिस का प्रामाणिक इतिहास अत्यन्त खोज करने पर जो कुछ हम को प्राप्त हुआ है उस को हम सब के जानने के लिये लिखते हैं ।

१—माहाजन महिमा का कवित्त ॥

महाजन जहाँ होव तहाँ हटी बाजार सार माहाजन जहाँ होव तहाँ नाज व्याज भला है ।
महाजन जहाँ होव तहाँ लेन देन विधि विस्तार माहाजन जहाँ होव तहाँ धन ही का भला है ॥
महाजन जहाँ होव तहाँ सज्जन को फेर फार माहाजन जहाँ होव तहाँ दान पै दया है ।
माहाजन जहाँ होव तहाँ धर्म प्रकाश करे माहाजन नहीं होव तहाँ रहवो निफल है ॥ १ ॥

प्रथम संख्या—संचेती (सचंती) गोत्र ॥

विक्रम संवत् १०२६ (एक हजार छव्वीस) में जैनाचार्य श्री वर्धमानसूरि जी महाराज ने सोनीगरा चौहान बोहित्थ कुमार को प्रतिबोध देकर उस का माहाजन वंश और संचेती गोत्र स्थापित किया ।

अजमेरनिवासी संचेतीगोत्रभूषण सेठ श्री वृद्धिचन्द्र जी ने खरतरगच्छीय उपाध्याय श्री रामचन्द्र जी गणी (जो कि लश्कर में बड़े नामी विद्वान् और षट् शास्त्र के ज्ञाता हो गये हैं) महाराज से भगवतीसूत्र सुना और तदनन्तर शेत्रुञ्जय का संघ निकाला, कुछ समय के बाद शेत्रुञ्जय गिरनार और आबू आदि की यात्रा करते हुए मरुस्थलदेशस्थ (मारवाड़ देश में स्थित) फलोधी पार्श्वनाथ नामक स्थान में आये, उस समय फलवर्धी पार्श्वनाथ स्वामी के मन्दिर के चारों ओर काटों की बाड़ का पड़कोटा था, उक्त विद्वद्वर्य उपाध्याय जी महाराज ने धर्मोपदेश के समय यह कहा कि—"वृद्धिचन्द्र ! लक्ष्मी लगा कर उस का लाभ लेने का यह स्थान है" इस वचन को सुन कर सेठ वृद्धिचन्द्रजी ने फलवर्धी पार्श्वनाथ स्वामी के मन्दिर का जीर्णोद्धार करवा दिया और उस के चारों तरफ पक्का संगीन पड़कोटा भी बनवा दिया जो कि अब भी मौजूद है ॥

१—नन्द त्रयोदश सुत्राण उच्चोद्दालक चन्द्रावती नगरी स्थापक पोरवाड ज्ञातीय श्री विमल मन्त्रिणा श्री अर्बुदाचले ऋषभदेवप्रासाद कारित. ।

तत्राद्यापि विमल वसही इति प्रसिद्धिरस्ति । तत श्रीवर्धमानसूरि संवत् १०८८ मध्ये प्रतिष्ठा कृत्वा प्रान्तेऽनशन गृहीत्वा स्वर्गं गत ॥

२—इस तीर्थ पर वार्षिकोत्सव प्रतिवर्ष आसोज वदि नवमी और दशमी को हुआ करता है, उस समय साधारणतया (आम तौर पर) समस्त देशों के और विशेषतया (खास तौर पर) राजपूताना और मारवाड़ के यात्री जन अनुमान दश पन्द्रह सहस्र इकट्ठे होते हैं, हम ने सब से प्रथम संवत् १९५८ के वैशाख मास में मुर्शिदाबाद (अजीमगञ्ज) से बीकानेर को जाते समय इस स्थान की यात्रा की थी, दर्शन के समय गुरुदत्ताम्नाय से अनुमान पन्द्रह मिनट तक हम ने ध्यान किया था, उस समय इस तीर्थ का जो चमत्कार हम ने देखा तथा उस से हम को जो आनन्द प्राप्त हुआ उस का हम वर्णन नहीं कर सकते हैं, उस के पश्चात् चित्त में यह अभिलाषा बराबर बनी रही कि किसी समय वार्षिकोत्सव पर अवश्य चलना चाहिये, क्योंकि ऐसा करने से एक पन्थ दो काज होंगे परन्तु कार्यवश वह अभिलाषा बहुत समय के पश्चात् पूर्ण हुई अर्थात् संवत् १९६३ में वार्षिकोत्सव पर हमारा वहां गमन हुआ, वहाँ जाकर यद्यपि हमें अनेक प्रकार के आनन्द प्राप्त हुए परन्तु उन में से कुछ आनन्दों का तो वर्णन किये विना लेखनी नहीं मानती है अतः वर्णन करना ही पड़ता है, प्रथम तो वहाँ जोधपुरनिवासी श्री कानमल जी पटवा के मुख से नवपदपूजा का गाना सुन कर हमें अतीव आनन्द प्राप्त हुआ, दूसरे उसी कार्य में पूजा के समय जोधपुरनिवासी विद्वद्वर्य उपाध्याय श्री जुहारमल जी गणी बीच २ में अनेक जगहों पर पूजा का अर्थ कर रहे थे (जो कि गुरुगमशैली से अर्थ की धारणा करने की वाञ्छा रखनेवाले तथा भव्य जीवों के सुनने

द्वितीय संख्या—वरड़िया (वरदिया) गोत्र ॥

धारा नगरी में वहाँ के राजा भोज के परलोक हो जाने के बाद उक्त नगरी का राज्य जिस समय तँवरों को उन की बहादुरी के कारण प्राप्त हुआ उस समय भोजवंशज (भोज की औलाद वाले) लोग इस प्रकार थे:—

योग्य था) उसे भी सुन कर हमें अकथनीय आनन्द प्राप्त हुआ तीसरे—रात्रि के समय देशदर्शन करके श्रीमान् श्री फूलचन्द जी गोलेच्छा के साथ "श्री फलोधी तीर्थोन्नति सभा" के उत्सव में गये उस समय जो आनन्द हम को प्राप्त हुआ वह यद्यपि (अब भी) नहीं भूला जाता है, उस समय सभा में जयपुरनिवासी श्री जैनश्वेताम्बर कान्फ्रेंस के जनरल सेक्रेटरी श्री गुलाबचन्द जी ढड्ढा एम. ए. निक्षेपादि के विषय में अपना भाषणामृत वर्षा कर श्रोता के हृदयाम्बुजों (हृदयकमलों) को विकसित कर रहे थे हम ने पहिले पहिल उक्त महाशय का भाषण यहीं सुना था दशमी के दिन प्रातःकाल हमारी उक्त महोदय (श्रीमान् श्री गुलाबचन्द जी ढड्ढा) से मुलाकात हुई और उन के साथ अनेक विषयों में बहुत देर तक वार्तालाप होता रहा उन की गम्भीरता और सौजन्य को देख कर हमें अत्यन्त आनन्द प्राप्त हुआ अन्त में उक्त महाशय ने हम से कहा कि—"आज रात्रि को जीर्णपुस्तकोद्धार आदि विषयों में भाषण होंगे अतः आप भी किसी विषय में अवश्य भाषण करें" अस्तु हम ने भी उक्त महोदय के अनुरोध से जीर्णपुस्तकोद्धार विषय में भाषण करना स्वीकार कर लिया निदान रात्रि में करीब नौ बजे पर उक्त विषय में हम ने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार मेज के समीप खड़े हो कर उक्त सभा में वर्त्तमान प्रचलित रीति आदि का उद्घोष कर भाषण किया दूसरे दिन जब उक्त महोदय से हमारी बातचीत हुई उस समय उन्हों ने हम से कहा कि—"यदि आप कान्फ्रेंस की तरफ से राजपूताने में उपदेश करें तो उम्मेद है कि बहुत सी बातों का सुधार हो अर्थात् राजपूताने के लोग भी कुछ सचेत होकर कर्त्तव्य में तत्पर हों" इस के उत्तर में हम ने कहा कि—"ऐसे उत्तम कार्यों के करने में तो हम सर्व तत्पर रहते हैं अर्थात् यथाशक्य कुछ न कुछ उपदेश करते ही हैं क्योंकि हम लोगों का कर्त्तव्य ही यही है परन्तु सभा की तरफ से अभी इस कार्य के करने में हमें लाचारी है, क्योंकि इस में कई एक कारण हैं—प्रथम तो—हमारा शरीर कुछ अस्वस्थ रहता है, दूसरे—वर्त्तमान में ओसवालवंशोत्पत्ति के इतिहास के लिखने में समय व्यस्तापन्न होता है, इत्यादि कई कारणों से इस शुभ कार्य की अस्वीकृति की क्षमा ही प्रदान करावें" इत्यादि बातें होती रहीं इस के पश्चात् हम एकादशी को बीकानेर चले गये वहां पहुँचने के बाद थोड़े ही दिनों में अजमेर से श्री जैनश्वेताम्बर कान्फ्रेंस की तरफ से पुनः एक पत्र हमें प्राप्त हुआ जिस की नकल ज्यों की त्यों निम्नलिखित है:—

॥ श्री जैन (श्वेताम्बर) कोन्फरन्स—

अजमेर—

ता. १५ अक्टूबर १९ ९

॥ गुरो जी महाराज श्री १ ८ श्री श्रीपालचन्द्र जी की सेवा में—धनराज कांसटिया—कि—वन्दना मालूम होवे—आप को शुभसाता को पत्र नहीं दे दिराने—और फलोधी में आप का भाषण बड़ो मनोरञ्जन हुवो राजपूताना मारवाड़ में आप जैसे गुणवान् पुरुष विद्यमान हैं जिसकी हम को बड़ी खुशी है—आप देशाटन करके जगह ब जगह धर्म की बहुत उन्नति करें—धर्मी की तरफ भी आप जैसे महात्माओं को

१-निहंगपाल । २-तालणपाल ३-तेजपाल । ४-तिहुअणपाल (त्रिभुवनपाल) । ५-अनंगपाल । ६-पोतपाल । ७-गोपाल । ८-लक्ष्मणपाल । ९-मदनपाल । १०-कुमारपाल । ११-कीर्त्तिपाल । १२-जयतपाल, इत्यादि ।

वे सब राजकुमार उक्त नगरी को छोड़ कर जब से मथुरा में आ रहे तब से वे माथुर कहलाये, कुछ वर्षों के वीतने के बाद गोपाल और लक्ष्मणपाल, ये दोनों भाई केकेई ग्राम में जा बसे, सवत् १०३७ (एक हजार सैतीस) में जैनाचार्य श्री वर्द्धमानसूरि[१] जी महाराज मथुरा की यात्रा करके विहार करते हुए उक्त (केकेई) ग्राम में पधारे, उस समय लक्ष्मणपाल ने आचार्य महाराज की बहुत ही भक्ति की और उन के धर्मोपदेश को सुनकर दयामूल धर्म का अङ्गीकार किया, एक दिन व्याख्यान में शेत्रुञ्जय तीर्थ का माहात्म्य आया उस को सुन कर लक्ष्मणपाल के मन में सघ निकाल कर शेत्रुञ्जय की यात्रा करने की इच्छा हुई और थोड़े ही दिनों में सघ निकाल कर उन्होंने उक्त तीर्थ-यात्रा की तथा कई आवश्यक स्थानों में लाखों रुपये धर्मकार्य में लगाये, जैनाचार्य श्री वर्द्धमानसूरि जी महाराज ने लक्ष्मणपाल के सद्भाव को देख उन्हें संघपति का पद दिया, यात्रा करके जब केकेई ग्राम में वापिस आ गये तब एक दिन लक्ष्मणपाल ने गुरु महाराज से यह प्रार्थना की कि—"हे परम गुरो ! धर्म की तथा आप की सत्कृपा (बदौलत) से मुझे सब प्रकार का आनन्द है परन्तु मेरे कोई सन्तति नहीं है, इस लिये मेरा हृदय सदा शून्यवत् रहता है" इस बात को सुन कर गुरुजी ने स्वरोदय (योगविद्या) के ज्ञान-बल से कहा कि—"तुम इस बात की चिन्ता मत करो, तुम्हारे तीन पुत्र होंगे और उन से तुम्हारे कुल की वृद्धि होगी" कुछ दिनों के बाद आचार्य महाराज अन्यत्र विहार कर गये

विचरवो वहुत जरूरी है—वडा २ शहरा में तथा प्रतिष्ठा होवे तथा मेला होवे जठे—कानफ्रेन्स सू आप को जावणो हो सके या किस तरह जिस्का समाचार लिखावें—क्योंकि उपदेशक गुजराती आये जिन्की जवान इस तरफ के लोगों के कम समझ मे आती है—आप की जवान में इच्छी तरह समझ सकते हें—और आप इस तरफ के देश काल से वाकिफकार हैं—सो आप का फिरना हो सके तो पीछा कृपा कर जवाव लिखें—और खर्च क्या महावार होगा—और आप की शरीर की तदुरुस्ती तो ठीक होगी समाचार लिखावे—बीकानेर मे भी जैनक्कव कायम हुवा है—सारा हालात वहा का शिववक्श जी साहव कोचर आप को वाकिफ करेंगे—बीकानेर मे भी वहुत सी वातो का सुधारा की जरूरत है सो वणें तो कोशीश करसी—कृपा-दृष्टी है वैसी वनी रहैं—

आप का सेवक,

धनराज कांसटिया-

-सुपर वाईझर-

यद्यपि हमारे पास उक्त पत्र आया तथापि पूर्वोक्त कारणों से हम उक्त कार्य को स्वीकार नहीं कर सके ॥

१-एक स्थान में श्रीवर्द्धमान सूरि के वदले मे श्रीनेमचन्द्र सूरि का नाम देखा गया है ॥

और उन के कथनानुकूल लक्ष्मणपाल के क्रम से (एक के पीछे एक) तीन लड़के उत्पन्न हुए, जिन का नाम लक्ष्मणपाल ने यशोधर, नारायण और महीचन्द रक्खा, जब ये तीनों पुत्र यौवनावस्था को प्राप्त हुए तब लक्ष्मणपाल ने इन सब का विवाह कर दिया, उन में से नारायण की स्त्री के जब गर्भस्थिति हुई तब प्रथम जापा (प्रसूत) कराने के लिये नारायण की स्त्री को उस के पीहरवाले ले गये, वहाँ जाने के बाद यथासमय उस के एक जोड़ा उत्पन्न हुआ, जिस में एक तो लड़की थी और दूसरा सर्पाकृति (साँप की शकल-वाला) लड़का उत्पन्न हुआ था, कुछ महीनों के बाद जब नारायण की स्त्री पीहर से सुसराल में आई तब उस जोड़े को देखकर लक्ष्मणपाल आदि सब लोग अत्यन्त चकित हुए तथा लक्ष्मणपाल ने अनेक लोगों से उस सर्पाकृति बालक के उत्पन्न होने का कारण पूछा परन्तु किसी ने ठीक २ उस का उत्तर नहीं दिया (अर्थात् किसी ने कुछ कहा और किसी ने कुछ कहा), इस लिये लक्ष्मणपाल के मन में किसी के कहने का ठीक तौर से विश्वास नहीं हुआ, निदान वह बात उस समय यों ही रही, अब सर्पाकृति बालक का हाल सुनिये कि—वह शीत ऋतु के कारण सदा चूल्हे के पास आकर सोने लगा, एक दिन भवितव्यता के वश क्या हुआ कि वह सर्पाकृति बालक तो चूल्हे की राख में सो रहा था और उस की बहिन ने चार घड़ी के तड़के उठ कर उसी चूल्हे में अग्नि जला दी, उस अग्नि से जल कर वह सर्पाकृति बालक मर गया और मर कर व्यन्तर हुआ, तब वह व्यन्तर नाग के रूप में वहाँ आकर अपनी बहिन को बहुत धिक्कारने लगा तथा कहने लगा कि—"अब तक मैं इस व्यन्तरपन में रहूँगा तब तक लक्ष्मणपाल के वंश में लड़कियां कभी सुखी नहीं रहेंगी अर्थात् शरीर में कुछ न कुछ तकलीफ सदा ही बनी रहा करेगी" इस प्रसंग को सुनकर वहाँ बहुत से लोग एकत्रित (जमा) हो गये और परस्पर अनेक प्रकार की बातें करने लगे, थोड़ी देर के बाद उन में से एक मनुष्य ने जिस की कमर में दर्द हो गया था इस व्यन्तर से कहा कि—"यदि तू देवता है तो मेरी कमर के दर्द को दूर कर दे" तब उस नागरूप व्यन्तर ने उस मनुष्य से कहा कि—"इस लक्ष्मणपाल के घर की दीवाल (भीत) का तू स्पर्श कर, तेरी पीड़ा चली जावेगी" निदान उस रोगी ने लक्ष्मणपाल के मकान की दीवाल का स्पर्श किया और दीवाल का स्पर्श करते ही उस की पीड़ा चली गई, इस प्रत्यक्ष चमत्कार को देख कर लक्ष्मणपाल ने विचारा कि यह नागरूप में कब तक रहेगा अर्थात् यह तो वास्तव में व्यन्तर है, अभी अदृश्य हो जावेगा, इस लिये इस से वह वचन ले लेना चाहिये कि जिस से लोगों का उपकार हो, यह विचार कर लक्ष्मणपाल ने उस नागरूप व्यन्तर से कहा कि—'हे नागदेव ! हमारी सन्तति (औलाद) को कुछ वर देओ कि जिस से तुम्हारी कीर्ति इस संसार में बनी रहे" लक्ष्मणपाल की बात को सुन कर नागदेव ने उन से कहा कि—'वर दिया' "वह वर यही है कि—तुम्हारी

सन्तति (औलाद) का तथा तुम्हारे मकान की दीवाल का जो स्पर्श करेगा उस की कमर में चिणक से उत्पन्न हुई पीड़ा दूर हो जावेगी और तुम्हारे गोत्र में सर्प का उपद्रव नही होगा" बस तब ही से 'वरदिया, नामक गोत्र विख्यात हुआ, उस समय उस की वहिन को अपने भाई के मारने के कारण अत्यन्त पश्चात्ताप हुआ और उस ने शोकवश अपने प्राणो का त्याग कर दिया और वह मरकर व्यन्तरी हुई तथा उस ने प्रत्यक्ष होकर अपना नाम भूवाल प्रकट किया तथा अपने गोत्रवालो से अपनी पूजा कराने की स्वीकृति ले ली, तब से यह वरढियो की कुलदेवी कहलाने लगी, इस गोत्र में यह वात अब तक भी सुनने में आती है कि नाग व्यन्तर ने वर दिया ॥

तीसरी संख्या—कुकुड़ चोपड़ा. गणधर चोपड़ा गोत्र ॥

खरतरगच्छाधिपति जैनाचार्य श्री जिन अभयदेवसूरि जी महाराज के शिष्य तथा वाचनाचार्यपद में स्थित श्री जिनवल्लभसूरि जी महाराज विक्रम संवत् ११५२ (एक हजार एक सौ वावन) में विचरते हुए मण्डोर नामक स्थान मे पधारे, उस समय मण्डोर का राजा नानुदे पड़िहार था, जिस का पुत्र धवलचन्द गलित कुष्ठ से महादुःखी हो रहा था, उक्त सूरि जी महाराज का आगमन सुन कर राजा ने उन से प्रार्थना की कि—"हे परम गुरो! हमारे कुमार के इस कुष्ठ रोग को अच्छा करो" राजा की इस प्रार्थना को सुन कर उक्त आचार्य महाराज ने कुकड़ी गाय का घी राजा से मॅगवाया और उस को मन्त्रित कर राजकुमार के शरीर पर चुपड़ाया, तीन दिन तक शरीर पर घी के चुपड़े जाने से राजकुमार का शरीर कचन के समान विशुद्ध हो गया, तब गुरु जी महाराज के इस प्रभाव को देखकर सब कुटुम्ब के सहित राजा नानुदे पडिहार ने दयामूल धर्म का ग्रहण किया तथा गुरुजी महाराज ने उस का महाजन वश और कुकुड चोपड़ा गोत्र स्थापित किया, राजा नानुदे पड़िहार का मन्त्री था उस ने भी प्रतिबोध पाकर दयामूल जैनधर्म का ग्रहण किया और गुरु जी महाराज ने उस का माहाजन वंश और गणेधर चोपड़ा गोत्र स्थापित किया।

राजकुमार धवलचन्दजी से पॉचवी पीढ़ी में दीपचन्द जी हुए, जिन का विवाह ओसवाल महाजन की पुत्री से हुआ था, यहॉ तक (उन के समय तक) राजपूतों से सम्बध होता था, दीपचन्द जी से ग्यारहवॉं पीढ़ी में सोनपाल जी हुए, जिन्हों ने संघ निकाल कर शेत्रुञ्जय की यात्रा की, सोनपाल जी के पोता ठाकरसी जी वड़े बुद्धिमान् तथा चतुर हुए, जिन को राव चुडे जी राठौर ने अपना कोठार सुपुर्द किया था, उसी

१—"वर दिया" गोत्र का अपभ्रंश "वरढिया" हो गया है ॥

२—इस गोत्र वाले लोग बालोतरा तथा पञ्चभद्रा आदि मारवाड के स्थानों में हें ॥

जिन से मब ठाकरसी जी को कोठारी जी के नाम से पुकारने लगे, इन्हीं से कोठारी नख हुआ अर्थात् ठाकरसी जी की औलादवाले लोग कोठारी कहलाने लगे, कुकड़ चोपड़ा गोत्र की ये (नीचे लिखी हुई) चार शाखायें हुईं—

१–कोठारी । २–बुबकिया । ३–धूपिया । ४–जोगिया ॥

इन में से बुबकिया आदि तीन शाखा वाले लोगों के कुटुम्ब में बजने वाले गहनों के पहिरने की खास मनाई की गई है परन्तु यह मनाई क्यों की गई है अर्थात् इस (मनाई) का क्या कारण है इस बात का ठीक २ पता नहीं लगा है ॥

चौथी सख्या–धाड़ीवाल गोत्र ॥

गुजरात देश में डीडो जी नामक एक खीची राजपूत धाड़ा मारता था, उस को विक्रम संवत् ११५५ (एक हजार एक सौ पचपन) में वाचनाचार्य पद पर स्थित श्री जिन वल्लभसूरि जी महाराज ने प्रतिबोध देकर उस का माहाजन वंश और धाड़ीवाल गोत्र स्थापित किया, डीडो जी की सातवीं पीढ़ी में सांवल जी हुए, जिन्हों ने राज के कोठार का काम किया था, इस लिये उन की औलादवाले लोग कोठारी कहलाने लगे, सेढो जी धाड़ीवाल जोधपुर की रियासत के तिंवरी गांव में आकर बसे थे, उन के सिर पर टॉट थी इस लिये गाँववाले लोग सेढो जी को टॉटिया २ कह कर पुकारने लगे, अत एव उन की औलादवाले लोग भी टॉटिया कहलाने लगे ॥

पाँचवीं सख्या–लालाणी, बाँठिया, बिरमेचा, हरखावत, साह और मल्लावत गोत्र ॥

विक्रम संवत् ११६७ (एक हजार एक सौ सड़सठ) में पँवार राजपूत लालसिंह को खरतरगच्छाधिपति जैनाचार्य श्री जिनवल्लभसूरि जी महाराज ने प्रतिबोध देकर उस का माहाजन वंश और लालाणी गोत्र स्थापित किया, लालसिंह के सात पुत्र थे जिन में से बड़ा पुत्र बहुत बठ अर्थात् जोरावर था, उसी से बाँठिया गोत्र कहलाया, इसी प्रकार दूसरे चार पुत्रों के नाम से उन के भी परिवार वाले लोग बिरमेचा, हरखावत, साह और मल्लावत कहलाने लगे ॥

सूचना—युगप्रधान जैनाचार्य श्री जिनदत्तसूरि जी (जो कि बड़े दादा जी के नाम से जैनसंघ में प्रसिद्ध हैं) महाराज ने विक्रम संवत् ११७० (एक हजार एक सौ सत्तर) से लेकर विक्रम संवत् १२१० (एक हजार दो सौ दश) तक में राजपूत, महेश्वरी वैश्य और ब्राह्मण वर्णवालों को प्रतिबोध देकर सवा लाख श्रावक बनाये थे, इस के

१–इन का जन्म विक्रम संवत् ११३२ में दीक्षा ११४१ में आचार्यपद ११६९ में और देवलोक १२११ में आषाढ सुदि ११ के दिन अजमेर नगर में हुआ ॥

प्रमाणरूप वहुत से प्राचीन लेख देखने में आये हैं परन्तु एक प्राचीन गुरुदेव के स्तोत्र[1] में यह भी लिखा है कि–प्रतिवोध देकर एक लाख तीस हजार श्रावक वनाये गये थे, उक्त श्रावकसघ में यद्यपि ऊपर लिखे हुए तीनो ही वर्ण थे परन्तु उन में राजपूत विशेष थे, उन को अनेक स्थलो में प्रतिवोध देकर उन का जो माहाजन वश और अनेक गोत्र स्थापित किये गये थे उन में से जिन २ गोत्रो का इतिहास प्राप्त हुआ उन को अब लिखते है ॥

छठी संख्या–चोरड़िया, भटनेरा, चौधरी, सावणसुखा, गोलेच्छा, बुच्चा, पारख और गद्दहिया गोत्र ॥

चन्देरी के राजा खरहत्थसिंह राठोर ने विक्रम सवत् ११७० (एक हजार एक सौ सत्तर) में युगप्रधान जैनाचार्य श्री जिनदत्तसूरि जी महाराज के उपदेश से दयामूल जैनधर्म का ग्रहण किया था, उक्त राजा (खरहत्थ सिंह) के चार पुत्र थे—१–अम्ब-देव । २–नींबदेव । ३–भेंसासाह और ४–आसू । इन में से प्रथम अम्बदेव की औलादवाले लोग चोर बेरडिया (चोरडिया) कहलाये ।

चोर बेरडियों में से नीचे लिखे अनुसार पुनः शाखायें हुईः—

१–तेजाणी । २–धन्नाणी । ३–पोपाणी । ४–मोलाणी । ५–गल्लाणी । ६–देवस-याणी । ७–नाणी । ८–श्रवणी । ९–सद्दाणी । १०–कक्कड । ११–मक्कड । १२–भक्कड़ १३–लुटकण । १४–ससारा । १५–कोबेरा । १६–भटारकिया । १७–पीतलिया ।

दूसरे नीवदेव की औलादवाले लोग भटनेरा चौधरी कहलाये ।

तीसरे भेंसासाह के पॉच स्त्रियॉ थीं उन पॉचों के पॉच पुत्र हुए थे—

१–कुँवर जी । २–गेलो जी । ३–वुच्चो जी । ४–पासू जी और ५–सेल्हत्थ जी ।

इन में से प्रथम कुँवर जी की औलादवाले लोग साहसुखा (सावणसुखा) कहलाये ।

१–वड वडे गामे ठाम ठामे भूपती प्रतिवोधिया ॥ इग लक्खि ऊपर सहस तीसा कलू मे श्रावक किया ॥ परचा देखाड्या रोग झाड्या लोक पायल सतए ॥ जिणदत्त सूरि सूरीस सद गुरु सेवता सुख सन्तए ॥२१॥

२–कनोज में आसथान जी राठौर ने युगप्रधान जैनाचार्य श्री जिनदत्त सूरि जी महाराज से कहा था कि–"राठौर आज से लेकर जैनधर्म को न पालनेवाले भी खरतरगच्छवालो को अपना गुरु मानेंगे" आसथान जी के ऊपर उक्त महाराज ने जब उपकार किया था उस समय के प्राचीन दोहे वहुत से हैं–जो कि उपाध्याय श्री मोहन लाल जी गणी के द्वारा हम को प्राप्त हुए हैं, जिन मे से इस एक दोहे को तो प्राय वहुत से लोग जानते भी हैं—

दोहा—गुरु खरतर प्रोहित सेवड, रोहिड़ियो वारट्ठ ॥
घर को मगत दे दडो, राठोड़ां कुल भट्ठ ॥ १ ॥

दूसरे गेलो जी की औलादवाले लोग गोलवच्छा (गोलेच्छा) कहलाये ।

तीसरे बुधो जी की औलादवाले लोग बुधा कहलाये ।

चौथे पासू जी की औलादवाले लोग पारख कहलाये ।

पारख कहलाने का हेतु यह है कि–चाहड़ नगर में राजा चन्द्रसेन की सभा में किसी समय अन्य देश का निवासी एक जौहरी हीरा बेंचने के लिये आया और राजा को उस हीरे को दिखलाया, राजा ने उसे देख कर अपने नगर के जौहरियों को परीक्षा के लिये बुलवा कर उस हीरे को दिखलाया, उस हीरे को देख कर नगर के सब जौहरियों ने उस हीरे की बड़ी तारीफ़ की, दैवयोग से उसी समय किसी कारण से पासू जी का भी राजसभा में आगमन हुआ, राजा चन्द्रसेन ने उस हीरे को पासू जी को दिखलाया और पूछा कि–"यह हीरा कैसा है ?" पासू जी उस हीरे को अच्छी तरह देख कर बोले कि–"पृथ्वीनाथ ! यदि इस हीरे में एक अवगुण न होता तो यह हीरा वास्तव में प्रशंसनीय (तारीफ़ के लायक) था, परन्तु इस में एक अवगुण है इस लिये आप के पास रहने योग्य यह हीरा नहीं है" राजा ने उन से पूछा कि–"इस में क्या अवगुण है" पासू जी ने कहा कि–"पृथ्वीनाथ ! यह हीरा जिस के पास रहता है उस के स्त्री नहीं ठहरती है, यदि मेरी बात में आप को कुछ सन्देह हो तो इस जौहरी से आप दर्याफ़्त कर लें" राजा ने उस जौहरी से पूछा कि–"पासू जी जो कहते हैं क्या वह बात ठीक है ?" जौहरी ने अत्यन्त खुश होकर कहा कि–"पृथ्वीनाथ ! निस्सन्देह पासू जी आप के नगर में एक नामी जौहरी हैं, मैं बहुत दूर २ तक घूमा हूँ परन्तु इन के समान कोई जौहरी मेरे देखने में नहीं आया है, इन का कहना बिलकुल सत्य है क्योंकि जब यह हीरा मेरे पास आया था उस के थोड़े ही दिनों के बाद मेरी स्त्री गुजर गई थी, उस के मरने के बाद मैं ने दूसरा विवाह किया परन्तु वह स्त्री भी नहीं रही, अब मेरा विचार है कि–मैं अपना तीसरा विवाह इस हीरे को निकाल कर (बेंच कर) करूंगा" जौहरी के सत्यभाषण पर राजा बहुत खुश हुआ और उस को ईनाम देकर बिदा किया, उस के जाने के बाद राजा चन्द्रसेन ने भरी सभा में पासू जी से कहा कि–"वाह ! पारख जी वाह ! आप ने खूब ही परीक्षा की" बस उसी दिन से राजा पासू जी को पारख जी के नाम से पुकारने लगा, फिर क्या था यथा राजा तथा प्रजा अर्थात् नगरवासी भी उन्हें पारख जी कह कर पुकारने लगे ।

पाँचवें सेहदय जीकी औलादवाले लोग गद्दहिया[1] कहलाये ॥

1–यह भी सुनने में आया है कि भरा शाह (भैंसा शाह के भाई) की औलाद वाले लोग गद्दहिया कहलाये ॥

भैंसा साह ने गुजरात देश में गुजरातियों की जो लाँग छुड़वाई उस का वर्णन ॥

भैंसा साह कोव्यधिपति तथा बड़ा नामी साहूकार था, एक समय भैंसा साह की मातुः-श्री लक्ष्मीबाई २५ घोड़ों, ५ रथों, १० गाडियों और ५ ऊँटो को साथ लेकर सिद्ध-गिरि की यात्रा को रवाना हुईं, परन्तु दैवयोग से वे द्रव्य की सन्दूक (पेटी) को साथ में लेना भूल गईं, जब पाटन नगर में (जो कि रास्ते में था) मुकाम किया तब वहाँ द्रव्य की सन्दूक की याद आई और उस के लिये अनेक विचार करने पड़े, आखिरकार लक्ष्मीवाई ने अपने ठाकुर (राजपूत) को भेज कर पाटन नगर के चार बड़े २ व्यवहा-रियों को बुलवाया, उन के बुलाने से गर्धभसाह आदि चार सेठ आये, तब लक्ष्मीबाई ने उन से द्रव्य (रुपये) उधार देने के लिये कहा, लक्ष्मीबाई के कथन को सुन कर गर्धभ-साह ने पूछा कि–"तुम कौन हो और कहाँ की रहने वाली हो" इस के उत्तर में लक्ष्मी-बाई ने कहा कि "मैं भैंसे की माता हूँ" लक्ष्मीबाई की इस बात को सुन कर गर्धभ-साह ने उन डोकरी लक्ष्मीबाई से हँसी की अर्थात् यह कहा कि–"भैंसा तो हमारे यहाँ पानी की पखाल लाता है" इस प्रकार लक्ष्मीबाई का उपहास (दिल्लगी) करके वे गर्धभ-साह आदि चारों व्यापारी चले गये, इधर लक्ष्मीबाई ने एक पत्र में उक्त सब हाल लिख-कर एक ऊँटवाले अपने सवार को उस पत्र को देकर अपने पुत्र के पास भेजा, सवार बहुत ही शीघ्र गया और उस पत्र को अपने मालिक भैंसा साह को दिया, भैंसा साह उस पत्र को पढ़ कर उसी समय बहुत सा द्रव्य अपने साथ में लेकर रवाने हुआ और पाटन नगर में पहुँच कर इधर तो स्वय गर्धभसाह आदि उस नगर के व्यापारियों से तेल लेना शुरू किया और उधर जगह २ पर अपने गुमाश्तों को भेज कर सब गुजरात का तेल खरीद करवा लिया तथा तेल की नदी चलवा दी, आखिरकार गर्धभसाह आदि माल को हाजिर नहीं कर सके अर्थात् वादे पर तेल नहीं दे सके और अत्यन्त लज्जित होकर सब व्यापारियों को इकट्ठा कर लक्ष्मीबाई के पास जा कर उन के पैरों पर गिर कर बोले कि "हे माता! हमारी प्रतिष्ठा अब आप के हाथ में है" लक्ष्मीबाई अति कृपालु थीं अतः उन्हों ने अपने पुत्र भैंसे साह को समझा दिया और उन्हें क्षमा करने के लिये कह दिया, माता के कथन को भैंसे साह ने स्वीकार कर लिया और अपने गुमाश्तों को आज्ञा दी कि यादगार के लिये इन सब की एक लाँग खुलवा ली जावे और इन्हें माफी दी जावे, निदान ऐसा ही हुआ कि–भैंसा साह के गुमाश्तों ने स्मरण के लिये उन सब गुज-

१–इन का निवासस्थान माँडवगढ था, जिस के मकानों का खँडहर अब तक विद्यमान है, कहते हैं कि–इन के रहने के मकान में कस्तूरी और अम्बर आदि सुगन्धित द्रव्य पोते जाते थे, इन के पास लक्ष्मी इतनी थी कि–जिस का पारावार (ओर छोर) नहीं था, भैंसा साह और गद्दा साह नामक ये दो भाई थे ॥

रातियों की धोती की एक काँग खुलवा कर सब को माफी दी और वे सब अपने २ घर गये, वहां पर भैंसे साह को रुपारेलें विरुद भिला ॥

सातवीं संख्या—भण्डशाली, भूरा गोत्र ॥

श्री लोद्रवापुर पट्टन (जो कि जैसलमेर से पाँच कोस पर है) के भाटी राजपूत सागर रावल के श्रीधर और राजधर नामक दो राजकुमार थे, उन दोनों को विक्रम संवत् ११७३ (एक हजार एक सौ तेहत्तर) में युगप्रधान जैनाचार्य श्री जिनदत्तसूरि जी महाराज ने प्रतिबोध देकर उन का माहाजन वंश और मण्डशाली गोत्र स्थापित किया, मण्डशाली गोत्र में थिरु साह नामक एक बड़ा भाग्यशाली पुरुष हो गया है, इस के विषय में यह बात प्रसिद्ध है कि—यह घी का रोजगार करता था, किसी समय इस ने रूपासियाँ गाँव की रहने वाली घी बेचने के लिये आई हुई एक स्त्री से चित्रावेल की ऐंडुरी (इढोणी) किसी चतुराई से ले ली थी, उसी ऐंडुरी के प्रभाव से थिरु साह के पास बहुत सा द्रव्य हो गया था, इस के पश्चात् थिरु साह ने लोद्रवपुर पट्टन में सहसफण पार्श्वनाथ स्वामी के मन्दिर का जीर्णोद्धार करवाया, फिर ज्ञानभण्डार स्थापित किया, इत्यादि, तात्पर्य यह है कि उस ने सात क्षेत्रों में बहुत सा द्रव्य खर्च किया, भण्डशाली गोत्रवाले लोग लोद्रवपुर पट्टन से उठ कर और २ देशों में जा बसे, ये ही भण्डशाली जैसलमेर में लाछ्या कहलाते हैं।

एक भण्डशाली जोधपुर में आकर रहा और राज्य की तरफ से उसे काम मिला अतः यह राज्य का काम करने लगा, इस के बाद उस की औलादवाले लोग महाजनी पेशा

१–रुपारेल नामक एक जानवर होता है वह जिस के पास रहता है, उस के पास अटूट (अविचल) द्रव्य होता है ॥

२–भाण्डशाल में वासक्षेप दिया था इस लिये इन का भण्डशाली गोत्र स्थापित किया, इसी नाम का अपभ्रंश पीछे से भणसाली (भंडसाली) हो गया है ॥

३–यह स्त्री जाति की जाटिनी थी और यह घी बेचने के लिये रूपासियाँ गाँव से लोद्रवापुर पट्टन को चली थी, इस ने रास्ते में जङ्गल में से एक हरी लता (बेल) को उखाड़ कर उस की ऐंडुरी बनाई थी और उस पर घी की हाँडी रख कर यह थिरु साह की दूकान पर आई, थिरु साह ने इस का घी खरीद किया और हाँडी में से घी निकालने लगा, जब घी निकालते २ बहुत देर हो गई और उस हाँडी में से घी निकलता ही गया तब थिरु साह को सन्देह हुआ और उस ने विचारा कि—इस हाँडी में इतना घी कैसे निकलता जाता है, पर उस ने ऐंडुरी पर से हाँडी को उठा कर देखा तो उस में घी नहीं दीखा, तब यह समझ गया कि यह ऐंडुरी का ही प्रभाव है, यह समझ कर उस ने मन में विचारा कि—इस ऐंडुरी को किसी प्रकार लेना चाहिये, यह विचार कर थिरु साह ने जाटिनी की भूली हुई एक सुन्दर ऐंडुरी उस जाटिनी को दी और उस चित्रावेल की ऐंडुरी को उठा कर अपनी दूकान में रख लिया ॥

४–इस ने एक जिनालय आबूजी में भी बनवाया था जो कि अब तक मौजूद है ॥

करने लगे, जोधपुर नगर में कुल ओसवालों के चौधरी ये ही हैं, अर्थात् न्यात (जाति) सम्बन्धी काम इन की सम्मति के विना नहीं होता है, ये लडके के शिर पर नौ वर्ष तक चोटी को नहीं रखते है, पीछे रखते है, इन में जो वोरी दासोत कहलाते है वे ब्राह्मणो को और हिजड़ों को व्याह में नहीं बुलाते है, जोधपुर में भोजकों (सेवकों) से विवाह करवाते है।

एक भण्डशाली बीकानेर की रियासत में देशनोक गॉव में जा बसा था वह देखने में अत्यन्त भूरा था, इस लिये गॉववाले सब लोग उस को भूरा २ कह कर पुकारने लगे, इस लिये उस की औलादवाले लोग भी भूरा कहलाने लगे।

ये सब (ऊपर कहे हुए) राय भण्डशाली कहलाते हैं, किन्तु जो खड भणशाली कहलाते है वे जाति के सोलखी राजपूत थे, इस के सिवाय खडभणशालियो का विशेष वर्णन नही प्राप्त हुआ ॥

आठवीं संख्या—आयरिया, लूणावत गोत्र ॥

सिन्ध देश में एक हजार ग्रामों के भाटी राजपूत राजा अभय सिंह को विक्रम संवत् ११७५ (एक हजार एक सौ पचहत्तर) में युगप्रधान जैनाचार्य श्री जिनदत्त सूरि जी महाराज ने प्रतिबोध देकर माहाजन वंश और आयरिया गोत्र स्थापित किया, इस की औलाद में लूणे नामक एक बुद्धिमान् तथा भाग्यशाली पुरुष हुआ, उस की औलादवाले लोग लूणावत कहलाने लगे, लूणे ने सिद्धाचल जी का सघ निकाला और लाखों रुपये धर्मकार्य में खर्च किये, कोलू ग्राम में कावेली खोड़ियार चारणी नामक हरखू ने लूणे को वर दिया था इस लिये लूणावत लोग खोड़ियार हरखू को पूजते हैं, ये लोग बहुत पीढ़ियों तक वहलवे ग्राम में रहते रहे, पीछे जैसलमेर में इन की जाति का विस्तार होकर मारवाड़ में हुआ ॥

नवीं संख्या—बहूफणा[1], नाहटा गोत्र ॥

धारा नगरी का राजा पृथ्वीधर पॅवार राजपूत था, उस की सोलहवीं पीढ़ी में जोवन और सच्चू, ये दो राजपुत्र हुए थे, ये दोनों भाई किसी कारण धारा नगरी से निकल कर और जागलू को फतह कर वहीं अपना राज्य स्थापित कर सुख से रहने लगे थे, विक्रम संवत् ११७७ (एक हजार एक सौ सतहत्तर) में युगप्रधान जैनाचार्य श्री जिनदत्त सूरि जी महाराज ने जोवन और सच्चू (दोनो भाइयों) को प्रतिबोध देकर उन का माहाजन वंश और बहूफणागोत्र स्थापित किया।

इन्हीं की औलादवाले लोग युद्ध में नहीं हटे थे इस लिये वे नाहटा कहलाये।

१—बहूफणा नाम का अपभ्रश बाफणा हो गया है ॥

इस के पश्चात् ढसनौ के नवाब ने इन को राजा का पद प्रदान किया था जिस से राजा बच्छराज जी के घरानेवाले लोग भी राजा कहलाने लगे थे।

ऊपर कहे हुए गोत्रवालों में से एक बुद्धिमान् पुरुष ने फतहपुर के नवाब को अपनी चतुराई का अच्छा परिचय दिया था, जिस से नवाब ने प्रसन्न होकर कहा था कि—"यह रायजादा है" उन से नगरवासी लोग भी उसे रायजादा कहने लगे और उस की औलाद वाले लोग भी रायजादा कहलाये, इस प्रकार ऊपर कहे हुए गोत्र का निरन्तर विस्तार होता रहा और उस की नीचे लिखी हुई १७ शाखायें हुईं—१—बाफणा। २—नाहटा। ३—रायजादा। ४—सुख। ५—घोरवाड़। ६—हुंडिया। ७—बांगड़ा। ८—सोमलिया। ९—माहतिया। १०—वसाह। ११—मीठड़िया। १२—बाघमार। १३—भामू। १४—पतूरिया। १५—भगदिया। १६—पटवा (जैसलमेरवाला) १७—नानगाणी॥

दशवीं संख्या—रतनपुरा, कटारिया गोत्र॥

विक्रम संवत् १०२१ (एक हजार इक्कीस) में सोनगरा चौहान राजपूत रतनसिंह ने रतनपुरनामक नगर बसाया, जिस के पाँचवें पाट पर विक्रम संवत् ११८१ (एक हजार एक सौ इक्यासी) में अक्षय तृतीया के दिन धनपाल राजसिंहासन पर बैठा, एक दिन राजा धनपाल शिकार करने के लिये जंगल में गया और सुध न रहने से बहुत दूर चला गया परन्तु कोई भी शिकार उस के हाथ न लगी, आखिरकार वह निराश होकर वापिस लौटा, लौटते समय रास्ते में एक रमणीक तालाब दीख पड़ा, वहां वह घोड़े को एक वृक्ष के नीचे बाँध कर तालाब के किनारे बैठ गया, थोड़ी देर में उस को एक काला सर्प थोड़ी ही दूर पर दीख पड़ा और जोश में आकर ज्यों ही राजा ने उस के सामने एक पत्थर फेंका त्यों ही वह सर्प अत्यन्त गुस्से में भर गया और उस ने राजा धनपाल को शीघ्र ही काट खाया, काटते ही सर्प का विष चढ़ गया और राजा मूर्छित (बेहोश) होकर गिर गया, दैवयोग से उसी अवसर में वहां शान्त, दान्त, जितेन्द्रिय तथा अनेक विद्याओं के निधि युगप्रधान जैनाचार्य श्रीजिनदत्त सूरि जी महाराज अनेक साधुओं के सङ्ग विहार करते हुए आ निकले और मार्ग में मृततुल्य पड़े हुए मनुष्य को देख कर आचार्य महाराज खड़े हो गये और एक शिष्य से कहा कि—"इस के समीप जाकर देखो कि—इसे क्या हुआ है" शिष्य ने देख कर विनय के साथ कहा कि—"हे महाराज! मालूम होता है कि—इस को सर्प ने काटा है" इस बात को सुन कर परोपकारी दयानिधि आचार्य महाराज उस के पास अपनी कमली बिछा कर बैठ गये और दृष्टिपाश विद्या के द्वारा उस पर अपना ओघा फिराने लगे, थोड़ी ही देर में धनपाल चैतन्य होकर उठ बैठा और अपने पास महाप्रतापी आचार्य महाराज को बैठा हुआ देख कर उस ने शीघ्र ही खड़े होकर उन को नमन और वन्दन किया तथा गुरु महाराज ने उस से धर्मलाभ कहा, उस समय राजा धनपाल

ने गुरु जी से अपने नगर में पधारने की अत्यन्त विनति की अतः आचार्य महाराज रत्न-
पुर नगर में पधारें, वहाँ पहुँच कर राजा ने हाथ जोड़कर कहा कि-"मैं अपने इस राज्य
को आप के अर्पण करता हूँ, आप कृपया इसे स्वीकार कर मेरे मनोवाञ्छित को पूर्ण
कीजिये" यह सुन कर गुरुजी ने कहा कि-"राज्य हमारे काम का नहीं है, इस लिये
हम इस को लेकर क्या करें, हम तो यही चाहते हैं कि-तुम दयामूल जैनधर्म का ग्रहण
करो कि जिस से तुम्हारा इस भव और पर भव में कल्याण हो" गुरु महाराज के इस
निर्लोभ वचन को सुन कर धनपाल अत्यन्त प्रसन्न हुआ और महाराज से हाथ जोड़ कर
बोला-कि-"हे दयासागर! आप चतुर्मास में यहाँ विराज कर मेरे मनोवाञ्छित को पूर्ण
कीजिये" निदान राजा के अत्यन्त आग्रह से गुरु महाराज ने वहीं चतुर्मास किया और
राजा धनपाल को प्रतिबोध देकर उस का माहाजन वंश और रत्नपुरा गोत्र स्थापित किया,
इस नगर में आचार्य महाराज के धर्मोपदेश से २४ खापे चौहान राजपूतों ने और बहुत
से महेश्वरियों ने प्रतिबोध प्राप्त किया, जिन का गुरुदेव ने माहाजन वंश और माल्हू आदि
अनेक गोत्र स्थापित किये, इस के पश्चात् रत्नपुरा गोत्र की दश शाखायें हुईं जो कि
निम्नलिखित हैं:—

१-रत्नपुरा। २-कटारिया। ३-कोचेटा। ४-नराण गोता। ५-सापद्राह। ६-भला-
णिया। ७-साँभरिया। ८-रामसेन्या। ९-बलाई। १०-बोहरा।

रत्नपुरा गोत्र में से कटारिया शाखा के होने का यह हेतु है कि-राजा धनपाल रत्न-
पुरा की औलाद में झाँझणसिंह नामक एक बड़ा प्रतापी पुरुष हुआ, जिस को सुलतान ने
अपना मन्त्री बनाया, झाँझणसिंह ने रियासत का इन्तिजाम बहुत अच्छा किया इस
लिये उस की नेकनामी चारों तरफ फैल गई, कुछ समय के बाद सुलतान की आज्ञा
लेकर झाँझणसिंह कार्त्तिक की पूर्णिमा की यात्रा करने के लिये शेत्रुञ्जय को रवाना हुआ,
वहाँ पर इस की गुजरात के पटणीसाह अबीरचंद के साथ (जो कि वहाँ पहिले आ
पहुँचा था) प्रभु की आरति उतारने की बोली पर बदाबदी हुई, उस समय हिम्मत
बहादुर मुँहते झाँझणसिंह ने मालवे का महसूल ९२ (बानवे) लाख (जो कि एक वर्ष
के इजारह में आता था) देकर प्रभुजी की आरती उतारी, यह देख पटणीसाह भी
चकित हो गया और उसे अपना साधर्मी कह कर धन्यवाद दिया, झाँझणसिंह पालीताने
से रवाना हो कर मार्ग में दान पुण्य करता हुआ वापिस आया और दर्बार में जाकर

१—१-हाडा। २-देवडा। ३-सोनगरा। ४-मालडीचा। ५-कूदणेचा। ६-चेडा। ७-वालोत। ८-चीवा। ९-काच। १०-खीची। ११-विहल। १२-संभटा। १३-मेलवाल। १४-वालीत्रा। १५-माल्हण। १६-पावेचा। १७-कावलेचा। १८-रापडिया। १९-दुदणेच। २०-नाहरा। २१-ईवरा। २२-राकसिया। २३-वाघेटा। २४-साचोरा॥

२-माल्ह जाति के राठी महेश्वरी थे॥

सुल्तान से सलाम की, सुल्तान उसे देख कर बहुत प्रसन्न हुआ तथा उसे उस का पूर्व काम सौंप दिया, एक दिन हलकारे ने सुल्तान से झाँझणसिंह की चुगली खाई अर्थात् यह कहा कि—"हजूर सलामत ! झाँझणसिंह ऐसा नमकहराम है कि उस ने अपने पीर के लिये करोड़ों रुपये खजाने के खर्च कर दिये और आप को उस की खबर तक नहीं दी" हलकारे की इस बात को सुन कर सुल्तान बहुत गुस्से में आगया और झाँझणसिंह को उसी समय दर्बार में बुलवाया, झाँझणसिंह को इस बात की खबर पहिले ही से हो गई थी इस लिये वह अपने पेट में कटारी मार कर तथा ऊपर से पेटी बाँध कर दर्बार में हाजिर हुआ और सुल्तान को सलाम कर अपना सब हाल कहा और यह भी कहा कि—"हजूर ! आप की बोलवाला पीर के आगे मैं कर आया हूँ" इस बात को सुन कर सुल्तान बहुत प्रसन्न हुआ परन्तु कमरपेटी के खोलने पर झाँझणसिंह की जान निकल गई, बस यहीं से कटारिया शाखा प्रकट हुई अर्थात् झाँझणसिंह की औलाद वाले लोग कटारिया कहलाये, कुछ समय के बाद इन की औलाद का निवास माँडवगढ़ में हुआ, किसी कारण से मुसलमानों ने इन लोगों को पकड़ा और बाईस हजार रुपये का दण्ड किया, उस समय जगरूप जी यति (जो कि खरतरभट्टारकगच्छीय थे) ने मुसलमानों को कुछ चमत्कार दिखला कर कटारियों पर जो बाईस हजार रुपये का दण्ड मुसलमानों ने किया था वह छुड़वा दिया, रत्नपुरा गोत्रवाले एक पुरुष ने बलाइयों (ढेड जाति के लोगों) के साथ लेन देन का व्यापार किया था वहीं से बलाई शाखा हुई अर्थात् उस की औलादवाले लोग बलाई कहलाने लगे ॥

ग्यारहवीं सख्या—राँका, काला, सेठिया गोत्र ॥

पाली नगर में राजपूत जाति के काकू और पाताक नामक दो भाई थे, विक्रमसंवत् ११८५ (एक हजार एक सौ पचासी) में युगप्रधान जैनाचार्य श्री जिनदत्त सूरि जी महाराज विहार करते हुए इस नगर में पधारे, महाराज के धर्मोपदेश से काकू को प्रतिबोध प्राप्त हुआ, पाताक ने गुरु जी से कहा कि—"महाराज ! द्रव्य तो मेरे पास बहुत है परन्तु सन्तान कोई नहीं है, इस लिये मेरा चित्त सदा दुःखित रहता है" यह सुन कर गुरु महाराज ने कहा कि—"तू दयामूल धर्म का ग्रहण कर तेरे पुत्र होवेंगे" इस वचन पर श्रद्धा रख कर पाताक ने दयामूल धर्म का ग्रहण किया तथा आचार्य महाराज अन्यत्र विहार कर गये, काकू बहुत दुर्बल शरीर का था इस लिये लोग उसे राँका नाम से पुकारने लगे, पाताक के दो पुत्र हुए जिन का नाम काला और बाँका था, इन में से राँका को नगर सेठ का पद मिला, राँका सेठ की औलादवाले लोग राँका और सेठिया कहलाये, पाताक के प्रथम पुत्र काला की औलादवाले लोग काला और बोक कहलाये तथा बांका की औलाद वाले लोग बाका गोरा और दक कहलाये, बस इन का वर्णन यही निम्नलिखित है —

१—राँका । २—सेठिया । ३—काला । ४—बोक । ५—बाँका । ६—गोरा । ७—दक ॥

बारहवीं संख्या—राखेचाह, पूगलिया गोत्र ॥

पूगल का राजा भाटी राजपूत सोनपाल था तथा उस का पुत्र केलणदे नामक था, उस के शरीर में कोढ़ का रोग हुआ, राजा सोनपाल ने पुत्र के रोग के मिटाने के लिये अनेक यत्न किये परन्तु वह रोग नहीं मिटा, विक्रमसंवत् ११८७ (एक हजार एक सौ सतासी) में युगप्रधान जैनाचार्य श्री जिनदत्त सूरि जी महाराज विहार करते हुए वहाँ पधारे, राजा सोनपाल बहुत से आदमियों को साथ लेकर आचार्य महाराज के पास गया और नमन वन्दन आदि शिष्टाचार कर बैठ गया तथा गुरु जी से हाथ जोड़ कर बोला कि—"महाराज! मेरे एक ही पुत्र है और उस के कोढ़ रोग हो गया है, मैं ने उस के मिटने के लिये बहुत से उपाय भी किये परन्तु वह नहीं मिटा, अब मैं आप की शरण में आया हूँ, यदि आप कृपा करें तो अवश्य मेरा पुत्र नीरोग हो सकता है, यह मुझ को दृढ़ विश्वास है" राजा के इस वचन को सुन कर गुरु जी ने कहा कि—"तुम इस भव और पर भव में कल्याण करने वाले दयामूल धर्म का ग्रहण करो, उस के ग्रहण करने से तुम को सब सुख मिलेंगे" राजा सोनपाल ने गुरु जी के वचन को आदरपूर्वक स्वीकार किया, तब गुरुँ जी ने कहा कि—"तुम अपने पुत्र को यहाँ ले आओ और गाय का ताजा घी भी लेते आओ" गुरु जी के वचन को सुन कर राजा सोनपाल ने शीघ्र ही गाय का ताजा घी मँगवाया और पुत्र को लाकर हाजिर किया, गुरु महाराज ने वह घृत केलणदे के शरीर पर लगवाया और उस पर दो घटे तक स्वय दृष्टिपाश किया, इस प्रकार तीन दिन तक ऐसा ही किया, चौथे दिन केलणदे कुमार का शरीर कञ्चन के समान हो गया, राजा सोनपाल अत्यन्त प्रसन्न हुआ और उस के मन में अत्यन्त भक्ति और श्रद्धा की चाँह को देख कर आचार्य महाराज ने वासक्षेप देने के समय उस का माहाजन वंश और राखेचाह गोत्र स्थापित किया।

राखेचाह गोत्रवालों में से कुछ लोग पूगल से उठ कर अन्यत्र जाकर वसे तथा उन को लोग पूगलिया कहने लगे, वस तब से ही वे पूगलिया कहलाये ॥

तेरहवीं संख्या—लूणिया गोत्र ॥

सिन्ध देश के मुलतान नगर में मुँधडा जाति का महेश्वरी हाथीशाह राजा का देश दीवान था, हाथीशाह ने राज्य का प्रबध अच्छा किया तथा प्रजा के साथ नीति के अनु-

१—एक जगह इस का नाम धींगडमल्ल लिखा हुआ देखने में आया है तथा दो चार वृद्धों से हम ने यह भी सुना है कि मुँधडा जाति के महेश्वरी धींगडमल्ल और हाथीशाह दो भाई थे, उन में से हाथीशाह ने पुत्र को सर्प के काटने के समय में श्री जिनदत्त जी सूरि के कथन से दयामूल धर्म का ग्रहण किया था, इत्यादि, इस के सिवाय लूणिया गोत्र की तीन वशावलियाँ भी हमारे देखने में आई जिन में प्राय लेख तुल्य है अर्थात् तीनों का लेख परस्पर मे ठीक मिलता है ॥

सार बर्ताव किया, इस लिये राजा और प्रजा उस पर बहुत खुश हुए, कुछ समय के बाद हाथीशाह के पुत्र उत्पन्न हुआ और उस ने दसोटन का उत्सव बड़ी धूमधाम से किया तथा पुत्र का नाम नक्षत्र के अनुसार खणा रक्खा, जब वह पाँच वर्ष का हो गया तब दीवान ने उस को विद्या का पढ़ाना प्रारंभ किया, बुद्धि के तीक्ष्ण होने से खणा ने विद्या तथा कलाकुशलता में अच्छी निपुणता प्राप्त की, जब खणा की अवस्था बीस वर्ष की हुई तब दीवान हाथीशाह ने उस का विवाह बड़ी धूमधाम से किया, एक दिन का प्रसंग है कि–रात्रि के समय खणा और उस की स्त्री पलँग पर सो रहे थे कि इतने में दैववश सोते हुए ही खणा को साँप ने काट खाया, इस बात की खबर खणा के पिता को प्रातःकाल हुई, तब उस ने झाड़ा झपटा और ओषधि आदि बहुत से उपाय करवाये परन्तु कुछ भी फायदा नहीं हुआ, विष के वेग से खणा बेहोश हो गया तथा इस समाचार को पाकर नगर में चारों ओर हाहाकार मच गया, सब उपायों के निष्फल होने से दीवान भी निराश हो गया अर्थात् उस ने पुत्र के जीवन की आशा छोड़ दी तथा खणा की स्त्री सती होने को तैयार हो गई, उसी दिन अर्थात् विक्रमसंवत् ११९२ (एक हजार एक सौ बानवे) के अक्षयतृतीया के दिन युगप्रधान जैनाचार्य श्री जिनदत्तसूरि जी महाराज विहार करते हुए वहाँ पधारे, उन का आगमन सुन कर दीवान हाथीशाह आचार्य महाराज के पास गया और नमन वन्दन आदि करके अपने पुत्र का सब वृत्तान्त कह सुनाया तथा यह भी कहा कि–"यदि मेरा जीवनाधार कुलदीपक प्यारा पुत्र जीवित हो जावे तो मैं लाखों रुपयों की जवाहिरात आप को भेंट करूँगा और आप जो कुछ आज्ञा प्रदान करेंगे वही मैं स्वीकार करूँगा" उस के इस वचन को सुन कर आचार्य महाराज ने कहा कि–"हम त्यागी हैं, इस लिये द्रव्य लेकर हम क्या करेंगे, हाँ यदि तुम अपने कुटुम्ब के सहित दयामूल धर्म का ग्रहण करो तो तुम्हारा पुत्र जीवित हो सकता है" जब हाथीशाह ने इस बात को स्वीकार कर लिया तब आचार्य महाराज ने चारों तरफ पड़दे डलवा कर जैसे रात्रि के समय खणा और उस की स्त्री पलँग पर सोते हुए थे उसी प्रकार सुलवा दिया और ऐसी शक्ति फिराई कि वही सर्प आकर उपस्थित हो गया, तब आचार्य महाराज ने उस सर्प से कहा कि–"इस का सम्पूर्ण विष खींच ले" यह सुनते ही सर्प पलँग पर चढ़ गया और विष का चूसना प्रारम्भ कर दिया, इस प्रकार कुछ देर में सम्पूर्ण विष को खींच कर वह सर्प चला गया और खणा सचेत हो गया, नगर में राग रंग होने और आनन्द बाजन बजने लगे तथा दीवान हाथीशाह ने उसी समय बहुत कुछ दान पुण्य कर कुटुम्बसहित दयामूल धर्म का ग्रहण किया, आचार्य महाराज ने उस का महाजन वंश और खजिया गोत्र स्थापित किया ॥

सूचना—प्रिय वाचकवृन्द ! पहिले लिख चुके हैं कि–दादा साहब युगप्रधान जैना

चार्य श्री जिनदत्त सूरि महाराज ने सवा लाख श्रावकों को प्रतिबोध दिया था अर्थात् उन का माहाजन वंश और अनेक गोत्र स्थापित किये थे, उन में से जिन २ का प्रामाणिक वर्णन हम को प्राप्त हुआ उन गोत्रों का वर्णन हम ने कर दिया है, अब इस के आगे खरतरगच्छीय तथा दूसरे गच्छाधिपति जैनाचार्यों के प्रतिबोधित गोत्रों का जो वर्णन हम को प्राप्त हुआ है उस को लिखते हैं:—

चौदहवीं संख्या—साँखला, सुराणा गोत्र ॥

विक्रमसंवत् १२०५ (एक हजार दो सौ पाँच) में पँवार राजपूत जगदेव को पूर्ण तल्लगच्छीय कलिकाल सर्वज्ञ जैनाचार्य श्री हेमचन्द्रसूरि जी महाराज ने प्रतिबोध देकर जैनी श्रावक किया था, जगदेव के सूर जी और साँवल जी नामक दो पुत्र थे, इन में से सूर जी की औलादवाले लोग सुराणा कहलाये और साँवल जी की औलादवाले लोग साँखला कहलाये ॥

पन्द्रहवीं संख्या—आघरिया गोत्र ॥

सिन्ध देश का राजा गोसलसिंह भाटी राजपूत था तथा उस का परिवार करीब पन्द्रह सौ घर का था, विक्रमसंवत् १२१४ (एक हजार दो सौ चौदह) में उन सब को नरमणि मण्डित भालस्थल खोड़िया क्षेत्रपालसेवित खरतरगच्छाधिपति जैनाचार्य श्री जिनचन्द्रसूरि जी महाराज ने प्रतिबोध देकर उस का माहाजन वंश और आघरिया गोत्र स्थापित किया ॥

१—इन का जन्म विक्रमसंवत् ११४५ के कार्तिक सुदि १५ को हुआ, ११५४ में दीक्षा हुई, ११६६ में सूरि पद हुआ तथा १२२९ में स्वर्गवास हुआ, ये जैनाचार्य बड़े प्रतापी हुए हैं, इन्हों ने अपने जीवन में साढे तीन करोड श्लोकों की रचना की थी अर्थात् संस्कृत और प्राकृत भाषा में व्याकरण, कोश, काव्य, छन्द, योग और न्याय आदि के अनेक ग्रन्थ बनाये थे, न केवल इतना ही किन्तु इन्हों ने अपनी विद्वत्ता के बल से अठारह देशों के राजा कुमारपाल को जैनी बना कर जैन मत की बड़ी उन्नति की थी तथा पाटन नगर में पुस्तकों का एक बडा भारी भण्डार स्थापित किया था, इन के गुणों से प्रसन्न होकर न केवल एतद्देशीय (इस देश के) जनों ने ही इन की प्रशंसा की है किन्तु विभिन्न देशों के विद्वानों ने भी इन की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है, देखिये! इन की प्रशंसा करते हुए यूरोपियन स्कालर डाक्टर पीटरसन साहब फरमाते हैं कि—"श्रीहेमचन्द्राचार्य जी की विद्वत्ता की स्तुति जबान से नहीं हो सकती है" इत्यादि, इन का विशेष वर्णन देखना हो तो प्रबन्धचिन्तामणि आदि ग्रन्थों में देख लेना चाहिये ॥

२—इन का जन्म विक्रमसंवत् ११९१ के भाद्रपद सुदि ८ के दिन हुआ, १२११ में वैशाख सुदि ५ को ये सूरि पद पर बैठे तथा १२२३ में भाद्रपद वदि १४ को दिल्ली में इन का स्वर्गवास हुआ, इन को दादा साहिब श्री जिन दत्त सूरि जी महाराज ने अपने हाथ से संवत् १२११ में वैशाख सुदि ५ के दिन विक्रमपुर नगर में (विक्रमपुर से बीकानेर को नहीं समझना चाहिये किन्तु यह विक्रमपुर दूसरा नगर था)

सोलहवीं संख्या—दूगड़, सूगड़ गोत्र ॥

पाली नगर में सोमचन्द्र नामक खीची राजपूत राज्याधिकारी था, किसी कारण से वह राजा के क्षोभ से वहाँ से भाग कर जङ्गल देश के मध्यवर्ती जांगलू नगर में आकर रह गया, सोमचन्द्र की ग्यारहवीं पीढ़ी में सूरसिंह नामक एक बड़ा नामी शूरवीर हुआ, सूरसिंह के दो पुत्र थे जिन में से एक का नाम दूगड़ और दूसरे का नाम सूगड़ था, इन दोनों भाइयों ने जांगलू को छोड़ कर मेवाड़ देश में आघाट गाँव को आ बसाया तब वहीं रहने लगे, वहाँ तमाम गाँववाले लोगों को नाहरसिंह वीर बड़ी तकलीफ देता था, उस (तकलीफ) के दूर करने के लिये ग्रामनिवासियों ने अनेक भोपे आदि को बुलाया तथा उन्हों ने आकर अपने २ अनेक इल्म दिखलाये परन्तु कुछ भी उपद्रव शान्त न हुआ और वे (भोपे आदि) हार २ कर चले गये, विक्रमसंवत् १२१७ (एक हजार दो सौ सत्रह) में युगप्रधान जैनाचार्य श्री जिनदत्तसूरि जी महाराज के पट्ट प्रभाकर नरमणिमण्डित भालस्थल खोडिया क्षेत्रपाल सेवित जैनाचार्य श्री जिनचन्द्र सूरि जी महाराज विहार करते हुए वहाँ (आघाट ग्राम में) पधारे, उन की महिमा को सुनकर दूगड़ और सूगड़ दोनों भाई आचार्य महाराज के पास आये और नमन वन्दन आदि शिष्टाचार कर बैठ गये तथा महाराज से अपना सब दुःख प्रकट कर उस के मिटाने के लिये अत्यन्त आग्रह करने लगे, उन के अत्यन्त आग्रह से कृपालु आचार्य महाराज ने पद्मावती जया और विजया देवियों के प्रभाव से नारसिंह वीर को वश में कर लिया, ऐसा होने से गाँव का सब उपद्रव शान्त हो गया, महाराज की इस अपूर्व शक्ति को देख कर

आचार्य पद पर स्थापित किया था तथा नन्दी (पाट) का महोत्सव रासल ने किया था ये दोनों (गुरु शिष्य) आचार्य महाप्रतापी हुए थे यहाँ तक कि देवलोक होने के बाद भी इन्हों ने अनेक चमत्कार दिखलाये थे और वर्तमान में भी ये अपने भक्तों को प्रत्यक्ष चमत्कार दिखला रहे हैं, इन की महिमा का प्रत्यक्ष प्रमाण यही है कि—ऐसा कोई भी प्राचीन जन बस्ती वाला नगर नहीं है जिस में इन के चरणों का स्थापन न किया गया हो अर्थात् सब ही प्राचीन नगरों में मन्दिरों और बगीचों में इन के चरण विराजमान हैं और दादा जी के नाम से विख्यात हैं, जब श्रीजिनचन्द्रसूरि जी महाराज का दिल्ली में स्वर्गवास हुआ था तब श्रावकों ने उन की रथी को दिल्ली के माणिक चौक में विश्राम देने के लिये रक्खी थी, उस समय यह चमत्कार हुआ कि वहाँ से रथी नहीं उठी इस चमत्कार को देख कर बादशाह ने वहीं पर दाग देने का हुक्म दे दिया तब श्रीसंघ ने वहीं पर उन को दाग दे दिया पुरानी दिल्ली में वहीं पर अभी तक उन के चरण मौजूद हैं, यदि इन का विशेष वर्णन देखना हो तो उपाध्याय श्री क्षमाकल्याण जी गणी (जो कि इस शताब्दी में महान् विद्वान् हो गये हैं और जिन्हों ने मूल श्रीपालचरित्र पर संस्कृतटीका बनाई है तथा आत्मप्रबोध आदि अनेक ग्रन्थ संस्कृत में रचे हैं) के बनाये हुए खरतरगच्छ गुर्वावलि नामक संस्कृतग्रन्थ में देख लेना चाहिये ॥

दोनों भाई बहुत प्रसन्न हुए और बहुत सा द्रव्य लाकर आचार्य महाराज के सामने रख कर भेंट करने लगे, तब महाराज ने कहा कि-"यह हमारे काम का नहीं है, अतः हम इसे नहीं लेंगे, तुम दयामूल धर्म के उपदेश को सुनो तथा उस का ग्रहण करो कि जिस से तुम्हारा उभय लोक में कल्याण हो" महाराज के इस वचन को सुन कर दोनों भाइयों ने दयामूल जैनधर्म का ग्रहण किया तथा आचार्य महाराज थोडे दिनों के बाद वहाँ से अन्यत्र विहार कर गये, बस उसी धर्म के प्रभाव से दूगड़ और सूगड़ दोनों भाइयों का परिवार बहुत बढा (क्यों न बढ़े-'यतो धर्मस्ततो जयः' क्या यह वाक्य अन्यथा हो सकता है) तथा बड़े भाई दूगड की औलादवाले लोग दूगड़ और छोटे भाई सूगड़ की औलादवाले लोग सूगड़ कहलाने लगे ॥

सत्रहवीं संख्या-मोहीवाल, आलावत, पालावत, दूधेड़िया गोत्र ॥

विक्रमसवत् १२२१ (एक हजार दो सौ इक्कीस) में मोहीग्रामाधीश पँवार राजपूत नारायण को नरमणि मण्डित भालस्थल खोडिया क्षेत्रपाल सेवित जैनाचार्य श्री जिनचन्द्र सूरि जी महाराज ने प्रतिबोध देकर उस का माहाजन वंश और मोहीवाल गोत्र स्थापित किया, नारायण के सोलह पुत्र थे अतः मोहीवाल गोत्र में से निम्नलिखित सोलह शाखायें हुईः—

१-मोहीवाल। २-आलावत। ३-पालावत। ४-दूधेड़िया। ५-गोय। ६-थरावत। ७-खुडधा। ८-टौडरवाल। ९-माघोटिया। १०-बभी। ११-गिड़िया। १२-गोढ़वाड्या। १३-पटवा। १४-बीरीवत। १५-गाग। १६-गौध ॥

अठारहवीं संख्या-बोथरा (बोहित्थरा), फोफलिया बच्छावतादि ९ खाँपें ॥

श्री जालोर महादुर्गाधिप देवडावशीय महाराजा श्री सामन्त सी जी थे तथा उन के दो रानियाँ थीं, जिन के सगर, वीरमदे और कान्हड़नामक तीन पुत्र और ऊमा नामक एक पुत्री थी, सामन्त सी जी के पाट पर स्थित होकर उन का दूसरा पुत्र वीरमदे जालोराधिप हुआ तथा सगर नामक बड़ा पुत्र देलवाड़े में आकर वहाँ का स्वामी हुआ, इस का कारण यह था कि सगर की माता देलवाड़े के झाला जात राना भीमसिंह की पुत्री थी और वह किसी कारण से अपने पुत्र सगर को लेकर अपने पीहर में जाकर (पिता के यहाँ) रही थी अतः सगर अपने नाना के घर में ही बड़ा हुआ था, जब सगर युवावस्था

१-दोहा-गिरि अठार आबू धणी, गढ जालोर दुरग ॥ तिहाँ सामन्त सी देवडो, अमली माण अभग ॥ १ ॥

२-यह पिङ्गल राजा को व्याही गई थी ॥

को प्राप्त हुआ उस समय सगर का नाना भीमसिंह (जो कि अपुत्र था) मृत्यु को प्राप्त हो गया तथा मरने के समय वह सगर को अपने पाट पर स्थापित कर देने का प्रबंध कर गया, बस इसी लिये सगर १४० ग्रामों के सहित देवलवाड़े का राजा हुआ और उसी दिन से वह राना कहलाने लगा, उस का श्रेष्ठ तपस्तेज चारों ओर फैल गया, उस समय चित्तौड़ के राना रतन सी पर मालवपति मुहम्मद बादशाह की फौज चढ़ आई तब राना रतन सी ने सगर को शूरवीर जान कर उस से अपनी सहायता करने के लिये कहला भेजा, उन की खबर को पाते ही सगर चतुरङ्गिणी (हाथी, घोड़े, रथ और पैदलों से युक्त) सेना को सजवा कर राना रतनसी की सहायता में पहुँच गया और मुहम्मद बादशाह से युद्ध किया, बादशाह उस के आगे न ठहर सका अर्थात् हार कर भाग गया, तब मालव देश को सगर ने अपने कब्जे में कर लिया तथा आन और दुहाई को फेर कर मालवे का मालिक हो गया, कुछ समय के बाद गुजरात के मालिक बहिलीम खान महमद बादशाह ने राना सगर से यह कहला भेजा कि—"तू मुझ को सलामी दे और हमारी नौकरी को मञ्जूर कर नहीं तो मालव देश को मैं तुझ से छीन लूंगा" सगर ने इस बात को स्वीकार नहीं किया, इस का परिणाम यह हुआ कि—सगर और बादशाह में परस्पर घोर युद्ध हुआ, आखिरकार बादशाह हार कर भाग गया और सगर ने सब गुजरात को अपने आधीन कर लिया अर्थात् राना सगर मालव और गुजरात देश का मालिक हो गया, कुछ समय के बाद पुनः किसी कारण से गोरी बादशाह और राना रतन सी में परस्पर में विरोध उत्पन्न हो गया और बादशाह चित्तौड़ पर चढ़ आया, उस समय राना जी ने शूरवीर सगर को बुलाया और सगर ने आकर उन दोनों का आपस में मेल करा दिया तथा बादशाह से दण्ड लेकर उस ने मालव और गुजरात देश को पुनः बादशाह को वापिस दे दिया, उस समय राना जी ने सगर की इस बुद्धिमत्ता को देख कर उसे मन्त्रीश्वर का पद दिया और वह (सगर) देवलवाड़े में रहने लगा तथा उस ने अपनी बुद्धिमत्ता से कई एक शूरवीरता के काम कर दिखलाये ।

सगर के बोहित्थ, गङ्गदास और जयसिंह नामक तीन पुत्र थे, इन में से सगर के पाट पर उस का बोहित्थ नामक ज्येष्ठ पुत्र मन्त्रीश्वर होकर देवलवाड़े में रहने लगा, यह भी अपने पिता के समान बड़ा शूरवीर तथा बुद्धिमान् था ।

बोहित्थ की भार्या बहरंगदे थी, जिस के श्रीकरण, जेसो, जयमल, नान्हा, भीमसिंह, पद्मसिंह, सोम जी और पुण्यपाल नामक आठ पुत्र थे और पद्मा बाई नामक एक पुत्री थी, इन में से सब से बड़े श्रीकरण के समधर, वीरदास, हरिदास और उद्धरण नामक चार पुत्र हुए ।

१—बोहित्थ ने चित्तौड़ के राना रायमल की सहायता में उपस्थित हो कर बादशाह से युद्ध किया था तथा उसे भगा दिया था परन्तु उस युद्ध में ग्यारह सौ सोनहरी थप से काम आया था ॥

यह (श्रीकरण) बड़ा शूरवीर था, इस ने अपनी भुजाओं के बल से मच्छेन्द्रगढ़ को फतह किया था, एक समय का प्रसंग है कि—बादशाह का खजाना कहीं को जा रहा था उस को राना श्रीकरण ने लूट लिया, जब इस बात की खबर बादशाह को पहुँची तब उस ने अपनी फौज को लड़ने के लिये मच्छेंद्रगढ़ पर भेज दिया, राना श्रीकरण बादशाह की उस फौज से खूब ही लड़ा परन्तु आखिरकार वह अपना शूरवीरत्व दिखला कर उसी युद्ध में काम आया, राना के काम आ जाने से इधर तो बादशाह की फौज ने मच्छेन्द्रगढ़ पर अपना कब्जा कर लिया उधर राना श्रीकरण को काम आया हुआ सुन कर राना की स्त्री रतनादे कुछ द्रव्य (जितना साथ में चल सका) और समधर आदि चारों पुत्रों को लेकर अपने पीहर (खेड़ीपुर) को चली गई और वहीं रहने लगी तथा अपने पुत्रों को अनेक प्रकार की कला और विद्या को सिखला कर निपुण कर दिया, विक्रमसंवत् १३२३ (एक हजार तीन सौ तेईस) के आषाढ़ वदि २ पुष्य नक्षत्र गुरुवार को खरतरगच्छाधिपति जैनाचार्य श्री जिनेश्वर सूरि जी महाराज विहार करते हुए वहाँ (खेड़ीपुर में) पधारे, नगर में प्रवेश करने के समय महाराज को बहुत उत्तम शकुन हुआ, उस को देख कर सूरिजी ने अपने साथ के साधुओं से कहा कि—"इस नगर में अवश्य जिनधर्म का उद्योत होगा" चौमासा अति समीप था इस लिये आचार्य महाराज उसी खेड़ीपुर में ठहर गये और वहीं चौमासे भर रहे, एक दिन रात्रि में पद्मावती देवी ने गुरु से कहा कि—"प्रात.काल बोहित्थ के पोते चार राजकुमार व्याख्यान के समय आवेंगे और प्रतिबोध को प्राप्त होंगे" निदान ऐसा ही हुआ कि उस के दूसरे दिन प्रातःकाल जब आचार्य महाराज दया के विषय में धर्मोपदेश कर रहे थे उसी समय समधर आदि चारों राजपुत्र वहाँ आये और नमन वन्दन आदि शिष्टाचार कर धर्मोपदेश को सुनने लगे तथा उसी के प्रभाव से प्रतिबोध को प्राप्त हुए अर्थात् आचार्य महाराज से उन्हों ने शास्त्रोक्त विधि से श्रावक के बारह व्रतों का ग्रहण किया तथा आचार्य महाराज ने उन का महाजन वश और बोहित्थरा[1] गोत्र स्थापित किया, इस के पश्चात् उन्हो ने धर्मकार्यों में द्रव्य लगाना शुरू किया तथा उक्त चारों भाई सघ निकाल कर और आचार्य महाराज को साथ लेकर सिद्धिगिरि की यात्रा को गये तथा मार्ग में प्रतिस्थान में उन्हों ने साधर्मी भाइयों को एक मोहर और सुपारियों से भरा हुआ एक थाल लाहन में दिया, इस से लोग इन को फोफलिया कहने लगे, बस तब ही से बोहित्थरा गोत्र में से फोफलिया शाखा प्रकट हुई, इस यात्रा में उन्हो ने एक करोड द्रव्य लगाया, जब लौट कर घर पर आये तब सब ने मिल कर समधर को सघपति का पद दिया ।

समधर के तेजपाल नामक एक पुत्र था, पिता समधर स्वय विद्वान् था अत उसने

१–इसी नाम का अपभ्रंश बोथरा हुआ है ॥

अपने पुत्र तेजपाल को भी छः वर्ष की अवस्था से ही विद्या का पढ़ाना शुरू किया और नीति के कथन के अनुसार दश वर्ष तक उस से विद्याभ्यास में उत्तम परिश्रम करवाया, तेजपाल की बुद्धि बहुत ही तेज थी अतः वह विद्या में खूब निपुण हो गया तथा पिता के सामने ही गृहस्थाश्रम का सब काम करने लगा, उस की बुद्धि को देख कर बड़े २ नामी रईस चकित होने लगे और अनेक तरह की बातें करने लगे अर्थात् कोई कहता था कि–"जिस के माता पिता विद्वान् हैं उन की सन्तति विद्वान् क्यों न हो" और कोई कहता था कि–"तेजपाल के पिता ने अपने लोगों के समान पुत्र का लाड़ नहीं किया किन्तु उस ने पुत्र को विद्या सिखला कर उसे सुशोभित करना ही परम लाड़ समझा" इत्यादि, तात्पर्य यह है कि–तेजपाल की बुद्धि की चतुराई को देख कर रईस लोग उस के विषय में अनेक प्रकार की बातें करने लगे, दैवयोग से समधर देवलोक को प्राप्त हो गया, उस समय तेजपाल की अवस्था लगभग पचीस वर्ष के थी, पाठकगण समझ सकते हैं कि–विद्यासहित बुद्धि और द्रव्य, ये दोनों एक जगह पर हों तो फिर कहना ही क्या है अर्थात् सोना और सुगन्ध इसी का नाम है, अस्तु तेजपाल ने गुजरात के राजा को बहुत सा द्रव्य देकर देश को मुकाते के लिया अर्थात् वह पाटन का मालिक बन गया और उस ने विक्रमसंवत् १३७७ (एक हजार तीन सौ सतहत्तर) में ज्येष्ठ वदि एकादशी के दिन तीन लाख रुपये लगा कर दादा साहिब जैनाचार्य श्री जिनकुशल सूरि जी महाराज का नन्दी (पाट) महोत्सव पाटन नगर में किया तथा उक्त महाराज को साथ में लेकर शत्रुञ्जय का संघ निकाला और बहुत सा द्रव्य शुभ मार्ग में लगाया, पीछे सब संघ ने मिल कर माला पहिना कर तेजपाल को संघपति का पद दिया, तेजपाल ने भी सोने की एक मोहर, एक थाली और पाँच सेर का एक लड्डू प्रतिगृह में लावण बाँटा, इस प्रकार वह अनेक शुभ कार्यों को करता रहा और अन्त में अपने पुत्र बील्हा जी को घर का भार सौंप कर अनशन कर स्वर्ग को प्राप्त हुआ, तात्पर्य यह है कि तेजपाल की मृत्यु के पश्चात् उस के पाट पर उस का पुत्र बील्हा जी बैठा ।

१–इन का जन्म छाजेड़ गोत्र में विक्रमसंवत् १३३७ में हुआ, संवत् १३४७ में दीक्षा हुई तथा संवत् १३७७ में ये पाटन में सूरिपद पर विराजे, ये भी जैनाचार्य बड़े प्रतापी हो गये हैं, इन्हों ने अनेक राजों का उपकार किया है, संवत् १३८९ में फागुन वदि १५ (अमावास्या) के दिन ये देराउर नगर में आठ दिनों तक अनशन कर स्वर्ग को प्राप्त हुए थे, इन्हों ने स्वर्गप्राप्ति के बाद भी अपने अनेक भक्तों को दर्शन दिया तथा अब भी ये भक्तजनों के हाजराहजूर (काम पड़ने पर शीघ्र ही उपस्थित होकर सहायता करने वाले) हैं, इन के चरण प्रायः सब नगरों में दादाजी के नाम से मन्दिरों तथा बगीचों में विराजमान हैं तथा श्री सोमवार तथा पूर्णमासी को लोग उन का दर्शन करने के लिये जाते हैं ॥

२–शत्रुञ्जय पर भगवान् महाराज ने मानतुङ्ग नामक खरतर वसी के मन्दिर में शान्तिदेव मण्डप के [illegible] स्थान में भी आदिनाथ बिम्ब की प्रतिष्ठा की थी ॥

वील्हा जी के कड़ूवा और धरण नामक दो पुत्र हुए, वील्हा जी ने भी अपने पिता (तेजपाल) के समान अनेक धर्मकृत्य किये।

वील्हा जी की मृत्यु के पश्चात् उन के पाट पर उन का बड़ा पुत्र कड़ूवा बैठा, इस का नाम तो अलबत्ता कड़ूवा था परन्तु वास्तव में यह परिणाम में अमृत के समान मीठा निकला।

किसी समय का प्रसंग है कि–यह मेवाडदेशस्थ चित्तौड़गढ़ को देखने के लिये गया, उस का आगमन सुन कर चित्तौड के राना जी ने उस का बहुत सम्मान किया, थोड़े दिनों के बाद मॉंडवगढ़ का बादशाह किसी कारण से फौज लेकर चित्तौडगढ़ पर चढ़ आया, इस बात को जान कर सब लोग अत्यन्त व्याकुल होने लगे, उस समय राना जी ने कड़ूवा जी से कहा कि–"पहिले भी तुम्हारे पुरुषाओं ने हमारे पुरुषाओं के अनेक बड़े २ काम सुधारे हैं इस लिये अपने पूर्वजो का अनुकरण कर आप भी इस समय हमारे इस काम को सुधारो" यह सुन कर कड़ूवा जी ने बादशाह के पास जा कर अपनी बुद्धिमत्ता से उसे समझा कर परस्पर में मेल करा दिया और बादशाह की सेना को वापिस लौटा दिया, इस बात से नगरवासी जन बहुत प्रसन्न हुए और राना जी ने भी अत्यन्त प्रसन्न होकर बहुत से घोड़े आदि ईनाम में देकर कड़ूवा जी को अपना मन्त्रीश्वर (प्रधान मन्त्री) बना दिया, उक्त पद को पाकर कड़ूवा जी ने अपने सद्वर्त्ताव से वहाँ उत्तम यश प्राप्त किया, कुछ दिनो के बाद कड़ूवा जी राना जी की आज्ञा लेकर अणहिल पत्तन में गये, वहा भी गुजरात के राजा ने इन का बड़ा सम्मान किया तथा इन के गुणों से तुष्ट होकर पाटन इन्हें सौप दिया, कड़ूवा जी ने अपने कर्त्तव्य को विचार सात क्षेत्रों में बहुत सा द्रव्य लगाया, गुजरात देश में जीवहिंसा को बन्द करवा दिया तथा विक्रम सवत् १४३२ (एक हजार चार सौ बत्तीस) के फागुन वदि छठ के दिन खरतरगच्छाधिपति जैनाचार्य श्री जिनराज सूरि जी महाराज का नन्दी (पाट) महोत्सव सवा लाख रुपये लगा कर किया, इस के सिवाय इन्हो ने शेत्रुञ्जय का संघ भी निकाला और मार्ग में एक मोहर, एक थाल और पाँच सेर का एक मगदिया लड्डू, इन का घर दीठ लावण अपने साधर्मी भाइयो को बाँटा, ऐसा करने से गुजरात भर में उन की अत्यन्त कीर्ति फैल गई, सात क्षेत्रों में भी बहुत सा द्रव्य लगाया, तात्पर्य यह है कि इन्हों ने यथाशक्ति जिनशासन का अच्छा उद्योत किया, अन्त में अनशन आराधन कर ये स्वर्गवास को प्राप्त हुए।

कड़ूवा जी से चौथी पीढ़ी में जेसल जी हुए, उन के वच्छराज, देवराज और हस-

---

१–श्री शेत्रुञ्जय गिरनार का सघ निकाला तथा मार्ग मे एक मोहर, एक थाल और पाँच सेर का एक मगदिया लड्डू, इन की लावण प्रतिगृह मे साधर्मी भाइयों को बाँटी तथा सात क्षेत्रों में भी बहुत सा द्रव्य लगाया ॥

राज नामक तीन पुत्र हुए, इन में से ज्येष्ठ पुत्र बच्छराज जी अपने भाइयों को साथ लेकर मण्डोवर नगर में राव श्री रिड़मल जी के पास आ रहे और राव रिड़मल जी ने बच्छराज जी की बुद्धि के अद्भुत चमत्कार को देख कर उन्हें अपना मन्त्री नियत कर लिया, बस बच्छराज जी भी मन्त्री बन कर उसी दिन से राजकार्य के सब व्यवहार को यथोचित रीति से करने लगे।

कुछ समय के बाद चित्तौड़ के राना कुम्भकरण में तथा राव रिड़मल जी के पुत्र जोधा-जी में किसी कारण से आपस में वैर बँध गया, उस के पीछे राव रिड़मल जी और मन्त्री बच्छराज जी राना कुम्भकरण के पास चित्तौड़ में मिलने के लिये गये, यद्यपि वहां जाने से इन दोनों से राना जी मिले जुले तो सही परन्तु उन (राना जी) के मन में कपट था इस लिये उन्हों ने छल कर के राव रिड़मल जी को धोखा देकर मार डाला, मन्त्री बच्छराज इस सर्व व्यवहार को जान कर छलबल से वहाँ से निकल कर मण्डोर में आ गये।

राव रिड़मल जी की मृत्यु हो जाने से उन के पुत्र जोधा जी उन के पाटनशीन हुए और उन्हों ने मन्त्री बच्छराज को सम्मान देकर पूर्ववत् ही उन्हें मन्त्री रख कर राजकाज सौंप दिया, जोधा जी ने अपनी वीरता के कारण पूर्व वैर के हेतु राना के देश को उजाड़ कर दिया और अन्त में राना को भी अपने वश में कर लिया, राव जोधा जी के जो नर्वं-रंग दे रानी थी उस रत्नगर्भा की कोख से बिकम (बीका जी) और बीदा नामक दो पुत्र रत्न हुए तथा दूसरी रानी जसमादे नामक हाड़ी थी, उस के नीबा, सूजा और सातल नामक तीन पुत्र हुए, बीका जी छोटी अवस्था में ही बड़े चञ्चल और बुद्धिमान् थे इस लिये उन के पराक्रम तेज और बुद्धि को देख कर हाड़ी रानी ने मन में यह विचार कर कि बीका की विद्यमानता में हमारे पुत्र को राज नहीं मिलेगा, अनेक युक्तियों से राव जोधा जी को वश में कर उन के कान भर दिये, राव जोधा जी बड़े बुद्धिमान् थे अतः उन्हों ने थोड़े ही में रानी के अभिप्राय को अच्छे प्रकार से मन में समझ लिया, एक दिन दर्बार में भाई बेटे और सर्दार उपस्थित थे, इतने ही में कुँवर बीका जी भी अन्दर से आ गये और मुजरा कर अपने काका कान्धल जी के पास बैठ गये, दर्बार में राज्यनीति के विषय में अनेक बातें होने लगीं, उस समय अवसर पाकर राव जोधा जी ने यह कहा

१—बच्छावतों के कुल के इतिहास का एक रास बना हुआ है जो कि बीकानेर के बड़े उपाश्रय (उपासरे) में महिमाभक्ति ज्ञानभण्डार में विद्यमान है उसी के अनुसार यह लेख किया गया है, इस के सिवाय—मारवाड़ी भाषा में लिखा हुआ एक लेख भी इसी विषय का बीकानेरनिवासी उपाध्याय श्री पण्डित मोहनलाल जी गणी ने बम्बई में हम को प्रदान किया था वह लेख भी पूर्वोक्त रास से प्रायः मिलता हुआ ही है, इस लेख के प्राप्त होने से हम को उक्त विषय की और भी दृढ़ता हो गई, अतः हम उक्त महोदय को इस कृपा का अन्तःकरण से धन्यवाद देते हैं ॥

२—यह जालसूर के चौहानों की पुत्री थी ॥

कि–"जो अपनी भुजा के बल से पृथ्वी को लेकर उस का भोग करे वही ससार में सुपुत्र कहलाता है, किन्तु पिता का राज्य पाकर उस का भोग करने से ससार में पुत्र की कीर्ति नहीं होती है" भरी सभा में कहे हुए पिता के उक्त वचन कुँवर बीका जी के हृदय में सुनते ही अङ्कित हो गये, सत्य है–प्रभावशाली पुरुष किसी की अवहेलना को कभी नहीं सह सकता है, बस वही दशा कुँवर बीका जी की हुई, बस फिर अपने काका कान्धलजी तथा मन्त्री वच्छराज आदि कतिपय स्नेही जनों को साथ चलने के लिये तैयार कर और पिता की आज्ञा लेकर वे जोधपुर से रवाना हुए, शाम को मण्डोर में पहुँचे और वहाँ गोरे भैरव जी का दर्शन कर प्रार्थना की कि–"महाराज ! अब आप का दर्शन आप के हुक्म से होगा" इस प्रकार प्रार्थना कर रात भर मण्डोर में रहे और ज्यो ही गज़रदम उठे त्यों ही भैरव जी की मूर्ति बहली में मिली, उस मूर्त्ति को देखते ही साथवाले बोले कि–"लोगो रे ! जीतो, हम आप के साथ चलेंगे और आप का राज्य बढ़ेगा" बीका जी भैरव जी की उस मूर्त्ति को लेकर शीघ्र ही वहाँ से रवाना हुए और काँउनी ग्राम के भोमियों को वश में कर वहाँ अपनी आन दुहाई फेर दी तथा वहीं एक उत्तम जगह को देख कर तालाब के ऊपर गोरे जी की मूर्त्ति को स्थापित कर आप भी स्थित हो गये, यहीं पर राव बीका जी महाराज का राज्याभिषेक हुआ, इस के पीछे अर्थात् सवत् १५४१ (एक हजार पाँच सौ इकतालीस) में राव बीका जी ने राती घाटी पर

१–राव बीका जी महाराज का जीवनचरित्र मुशी देवीप्रसाद जी कायस्थ मुसिफ जोधपुर ने सवत् १५५० में छपवाया है, उस मे उन्हों ने इस बात को इस प्रकार से लिखा है कि–"एक दिन जोधा जी दरबार मे बैठे थे, भाई बेटे और सब सरदार हाजिर थे, कुँवर बीका जी भी अदर से आये और मुजरा कर के अपने काका कांधल जी के पास बैठ गये और कानों मे उन से कुछ बातें करने लगे, जोधा जी ने यह देख कर कहा कि–आज चचा भतीजे में क्या कानाफूसी हो रही है, क्या कोई नया मुल्क फतेह करने की सलाह है यह सुनते ही काधल जी ने उठ कर मुजरा किया और कहा कि–मेरी शरम तो जब ही रहेगी कि जब कोई नया मुल्क फतह करूगा—जब बीका जी और कांधल जी ने जाने की तयारी की तो मण्डला जी और बीदा जी वगेरा राव जी के भाई बेटों ने भी राव जी से अरज की कि हम बीका जी को आप की जगह समझते है सो हम भी उन के साथ जावेगे, राव जी ने कहा अच्छा और इतने राजवी बीका जी के साथ हुये—

१–काका काधल जी ।	६–भाई जोगायत जी ।	११–कोठारी चोथमल ।
२– ,, रुपा जी ।	७– ,, बीदा जी ।	१२–वच्छावत वरसिंघ ।
३– ,, माडण जी ।	८–साखला नापा जी ।	१३–प्रोयत बीकमसी ।
४– ,, मडला जी ।	९–पडिहार बेला जी ।	१४–साहूकार राठी साला जी" ।
५– ,, नाथू जी ।	१०–बेद लाला लाखण जी ।	

२–परन्तु मुशी देवीप्रसादजी ने सवत् १५४२ लिखा है ॥

किला बना कर एक नगर बसा दिया और उस का नाम बीकानेर रक्खा, राव बीका जी महाराज का यश सुन कर उक्त नगर में ओसवाल और महेश्वरी वैश्य आदि बड़े २ धनाढ्य साहूकार आ २ कर बसने लगे, इस प्रकार उक्त नगर में राव बीका जी महाराज के पुण्यप्रभाव से दिनों दिन आबादी बढ़ती गई ।

मन्त्री बच्छराज ने भी बीकानेर के पास बच्छासर नामक एक ग्राम बसाया, कुछ काल के पश्चात् मन्त्री बच्छराज जी को शेत्रुञ्जय की यात्रा करने का मनोरथ उत्पन्न हुआ, अतः उन्हों ने संघ निकाल कर शेत्रुञ्जय और गिरनार आदि तीर्थों की यात्रा की, मार्ग में साधर्मी भाइयों को प्रतिगृह में एक मोहर, एक थाल और एक लड्डू का लावण बाँटा तथा संघपति की पदवी प्राप्त की और फिर आनन्द के साथ बीकानेर में वापिस आ गये ।

बच्छराज मन्त्री के—करमसी, वरसिंह, रती और नरसिंह नामक चार पुत्र हुए और बच्छराज के छोटे भाई देवराज के—दसू, तेजा और भूण नामक तीन पुत्र हुए ।

राव श्री लूणकरण जी महाराज ने बच्छावत करम सी को अपना मन्त्री बनाया, मुहते करमसी ने अपने नाम से करमसीसर नामक ग्राम बसाया, फिर बहुत से स्थानों का संघ बुला कर तथा बहुत सा द्रव्य खर्च कर खरतरगच्छाचार्य श्री जिनहंस सूरि महाराज का पाट महोत्सव किया, एवं विक्रमसंवत् १५७० में बीकानेर नगर में नेमि नाथ स्वामी का एक बड़ा मन्दिर बनवाया जो कि धर्मस्तम्भरूप अभी तक मौजूद है, इस के सिवाय इन्हों ने तीर्थयात्रा के लिये संघ निकाला तथा शेत्रुञ्जय गिरनार और आबू आदि तीर्थों की यात्रा की तथा मार्ग में एक मोहर, एक थाल और एक लड्डू का प्रतिगृह में साधर्मी भाइयों को लावण बाँटा और आनंद के साथ बीकानेर आ गये ।

राव श्री लूणकरण जी के—पाटनशीन राव श्री जैतसी जी हुए, इन्हों ने मुहते करमसी के छोटे भाई वरसिंह को अपना मन्त्री नियत किया ।

वरसिंह के मेघराज, नगराज, अमरसी, भोजराज, डूगरसी और हरराज नामक छः पुत्र हुए। इन के द्वितीय पुत्र नगराज के संग्रामसिंह नामक पुत्र हुआ और संग्रामसिंह के कर्म चन्द नामक पुत्र हुआ ।

वरसिंह के काल को प्राप्त होने से राव श्री जैतसी जी ने उन के स्थानपर उन के द्वितीय पुत्र नगराज को नियत किया ।

१–राज्यमन्त्री बच्छराज की औलादवाले लोग बच्छावत कहलाये ॥

२–दसू जी की औलादवाले लोग दसाणी कहलाये ॥

३–यह मारवाड़ के भारी राठौड़ाव के साथ युद्ध कर उसी युद्ध में काम आया ॥

४–डूगरसी की औलादवाले लोग डूगराणी कहलाये ॥

५–एक लेख में ऐसा भी लिखा है कि अमरसी का पुत्र संग्रामसिंह जी हुए ॥

मन्त्री नगराज को चाँपानेर के बादशाह मुंदफर की सेवा में किसी कारण से रहना पड़ा और उन्हों ने बादशाह को अपनी चतुराई से खुश करके अपने मालिक की पूरी सेवा बजाई तथा बादशाह की आज्ञा लेकर उन्हों ने श्री शेत्रुञ्जय की यात्रा की और वहाँ भण्डार की गड़बड़ को देख कर शेत्रुञ्जय गढ़ की कूँची अपने हाथ में ले ली, मार्ग में एक रुपया, एक थाल और पाँच सेर का एक लड्डू, इन का प्रतिगृह में साधर्मी भाइयों को प्रतिस्थान में लावण बाँटते हुए तथा गिरनार और आबू तीर्थ को भेंट करते हुए ये बीकानेर में आ गये।

संवत् १५८२ में जब कि दुर्भिक्ष पडा उस समय इन्हों ने शत्रुकार (सदावर्त्त) दिया, जिस में तीन लाख पिरोजों का व्यय किया।

एक दिन इन के मन में शयन करने के समय देरावर नगर में जाकर दादा जी श्री जिनकुशल सूरि जी महाराज के दर्शन करने की अभिलाषा हुई परन्तु मन में यह भी विचार उत्पन्न हुआ कि देरावर का मार्ग बहुत कठिन है, पीने के लिये जलतक भी साथ में लेना पड़ेगा, साथ में सघ के रहने से साधर्मी भाई भी होंगे, उन को किसी प्रकार की तकलीफ होना ठीक नहीं है, इस लिये सब प्रवध उत्तम होना चाहिये, इत्यादि अनेक विचार मन में होते रहे, पीछे निद्रा आ गई, पिछली रात्रि में स्वम में श्री गुरुदेव का दर्शन हुआ तथा यह आवाज़ हुई कि–"हमारा स्तम्भ गड़ाले में करा के वहाँ की यात्रा कर, तेरी यात्रा मान लेंगे" आहा ! देखो भक्त जनों की मनोकामना किस प्रकार पूर्ण होती है, वास्तव में नीतिशास्त्र का यह वचन बिलकुल सत्य है कि–"नहीं देव पाषाण में, दारु मृत्तिका माँहि ॥ देव भाव माँही बसै, भावमूल सब माँहि" ॥ १ ॥ अर्थात् न तो देव पत्थर में है, न लकड़ी और मिट्टी में है, किन्तु देव केवल अपने भाव में है, तात्पर्य यह है कि–जिस देवपर अपना सच्चा भाव होगा वैसा ही फल वह देव अपनी शक्ति के अनुसार दे सकेगा, इस लिये सब में भाव ही मूल (कारण) समझना चाहिये, निदान मुहते नगराज ने स्वम के वाक्य के अनुसार स्तम्भ कराया और विक्रम सवत् १५८३ में यात्रा की, उन की यात्रा के समाचार को सुन कर गुरुदेव का दर्शन करने के लिये बहुत दूर २ के यात्री जन आने लगे और उन की वह यात्रा सानन्द पूरी हुई।

कुछ काल के पश्चात् इन्हों ने अपने नाम से नगासर नामक ग्राम बसाया।

राव श्री कल्याणमल जी महाराज ने मन्त्री नगराज के पुत्र सग्रामसिंह को अपना राज्यमन्त्री नियत किया, सग्रामसिंह ने खरतरगच्छाचार्य श्री जिनमाणिक्य सूरि महाराज को साथ में लेकर शेत्रुञ्जय आदि तीर्थों की यात्रा के लिये संघ निकाला तथा शेत्रुञ्जय, गिरनार और आबू आदि तीर्थों की यात्रा करते हुए तथा मार्ग में प्रतिगृह में साधर्मी भाइयों को एक रुपया, एक थाल और एक लड्डू, इन का लावण बाँटते हुए चित्तौड़गढ़

में आये, वहाँ राना श्री उदयसिंह जी ने इन का बहुत मान सम्मान किया वहाँ से रवाना हो कर जगह २ सम्मान पाते हुए ये आनन्द के साथ बीकानेर में आ गये, इन के सब व्यवहार से राव श्री कल्याणमल जी महाराज इनपर बड़े प्रसन्न हुए।

इन (मुहता संग्रामसिंह जी) के कर्मचन्द नामक एक बड़ा बुद्धिमान् पुत्र हुआ, जिस को बीकानेर महाराज श्री रायसिंह जी ने अपना मन्त्री नियत किया।

राज्यमन्त्री बच्छावत कर्मचन्द मुहते ने क्रिया के उद्धारी अर्थात् त्यागी वैरागी खरतरगच्छाचार्य श्री जिनचन्द्र सूरि जी महाराज के आगमन की बधाई को सुनानेवाले याचकों को बहुत सा द्रव्यप्रदान किया और बड़े ठाठ से महाराज को बीकानेर में लाये, उन के रहने के लिये अपने घोड़ों की घुड़साल जो कि नवीन बनवा कर तैयार करवाई थी प्रदान की अर्थात् उस में महाराज को ठहराया और विनति कर संवत् १६२५ का चतुर्मास करवाया, उन से विधिपूर्वक भगवतीसूत्र को सुना, चतुर्मास के बाद आचार्य महाराज गुजरात की तरफ विहार कर गये।

कुछ दिनों के बाद कारणवश बीकानेरमहाराज की तरफ से मन्त्री कर्मचन्द का अकबर बादशाह के पास लाहौर नगर में जाना हुआ, वहाँ का प्रसंग है कि-एक दिन जब आनन्द में बैठे हुए अनेक लोगों का वार्तालाप हो रहा था उस समय अकबर बादशाह ने राज्यमन्त्री कर्मचन्द से पूछा कि-"इस वक्त सत्क्रिया काबील जैन में कौन है" इस के उत्तर में कर्मचन्द ने कहा कि-जैनाचार्य श्री जिनचन्द्र सूरि हैं, जो कि इस समय गुजरात देश में धर्मोपदेश करते हुए विचरते हैं" इस बात को सुन कर बादशाह ने आचार्य महाराज के पधारने के लिये लाहौर नगर में अपने आदमियों को भेज कर उन से बहुत आग्रह किया, अतः उक्त आचार्य महाराज विहार करते हुए कुछ समय में लाहौर नगर में पधारे, महाराज के वहाँ पधारने से जिनधर्म का जो कुछ उद्योत हुआ उस का वर्णन हम विस्तार के भय से यहां पर नहीं लिख सकते हैं, वहाँ का हाल पाठकों को उपाध्याय श्री समयसुन्दर जी गणी (जो कि बड़े नामी विद्वान् हो गये हैं) के बनाये हुए प्राचीन स्तोत्र आदि से विदित हो सकता है।

१-जब हाथी दीने नरेश मद सौं मतवाले ॥ बडे नाम बत्तीस कोस आवे नित हाले ॥ १ ॥ एतादी घो पांच सुतो जब उपजे आये ॥ घना कोड़ जो दान मान कवि सब बधाये ॥ २ ॥ कोई [illegible] न तथ्य करि उसे संग्रामनन्दन तें किया ॥ श्री युगप्रधान के नाम दे का करमचन्द रुपया दिया ॥ ३ ॥

१-यह स्थान उस दिन से बड़े उपासरे के नाम से विख्यात है जो कि अब भी बीकानेर में रांगड़ी के चौक में मौजूद है और बड़ा माननीय स्थान है, इस में प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों का एक जैन पुस्तकालय भी है जो कि देखने के योग्य है ॥

२-पाठकों को उक्त विषय का कुछ बोध हो जाने इस लिये उक्त स्तोत्र यहाँ पर लिखे देते हैं, देखिये-एक दिवस श्री सुप्य नामि सुणी जिनचंद मुणिंद महन्त यती । तप जप्प करी गुरु गुज्जर में प्रतिबोधत है भवि कू सुमती ॥ तब ही चित चाहन चूप भई समयसुन्दर के गुरु गच्छपती । पठाय पतिशाह

कर्मचन्द बच्छावत ने बीकानेर में जातिसम्बंधी भी अनेक रीति रिवाजों में संशोधन किया, वर्तमान में जो उक्त नगर में ओसवालों में चार टके की लावण बॉटने की प्रथा जारी है उस का नियम भी किसी कारण से इन्हीं (कर्मचन्द) ने बॉधा था ।

मुसलमान समखॉ को जब सिरोही देश को लूटा था उस समय अनुमान हजार वा ग्यारह सौ जिनप्रतिमायें भी सर्व धातु की मिली थीं, जिन को कर्मचन्द बच्छावत ने लाकर बीकानेर में श्री चिन्तामणि स्वामी के मन्दिर में तलघर में भण्डार करके रख दिया था जो कि अब भी वहॉ मौजूद है और उपद्रवादि के समय में भण्डार से सघ की तरफ से इन प्रतिमाओं को निकाल कर अष्टाही महोत्सव किया जाता है तथा अन्त में जलयात्रा की जाती है, ऐसा करने से उपद्रवादि अवश्य शान्त हो जाता है, इस विषय का अनुभव प्रायः हो चुका है और यह बात वहाँ के लोगों में प्रसिद्ध भी है ।

कर्मचद बच्छावत ने उक्त (बीकानेर) नगर में पर्यूषण आदि सब पर्वों में कारू जनों (लुहार, सूँथार और भड़भूँजे आदि) से सब कामो का कराना बंद करा दिया था तथा उन के लागे भी लगवा दिये थे और जीवहिंसा को बंद करवा दिया था ।

पैंतीस की साल में जब दुर्भिक्ष (काल) पड़ा था उस समय कर्मचन्द ने बहुत से

अजब्ब कों छाप बोलाए गुरु गच्छ राज गती ॥ १ ॥ ए जु गुज्जर तें गुरुराज चले विच मे चोमास जालोर रहै । मेदिनी तट मडाण कियो गुरु नागोर आदर मान लहै ॥ मारवाड रिणी गुरु वन्द कों तरसै सरसै विच वेग वहै । हरख्यो सघ लाहोर आय गुरू पतिसाह अकब्बर पाव ग्रहै ॥ २ ॥ ए जू साह अकब्बर बब्बर के गुरु सूरत देखत ही हरखे । हम जोग जती सिध साध व्रती सब ही षट दरशन के निरखे ॥ (तीसरी गाथा के उत्तरार्ध का प्रथम पाद ऊपरली पडत में न होने से नहीं लिख सके हैं) । तप जप्प दया धर्म धारण को जग कोइ नहीं इन के सरखे ॥ ३ ॥ गुरु अम्मृत वाणि सुणी सुलतान ऐसा पतिसाह हुकम्म दिया । सब आलम माँहि अमार पलाय वोलाय गुरू फुरमाण दिया ॥ जग जीव दया धर्म दाखिन तें जिनशासन में जु सोभाग लिया । समे सुदर के गुणवत गुरू दृग देखत हरषित होत हिया ॥ ४ ॥ ए जु श्री जी गुरु धर्म ध्यान मिलै सुलतान सलेम अरज करी । गुरु जीव प्रेम चाहत है चित अन्तर प्रति प्रतीति घरी ॥ कर्मचद बुलाय दियो फुरमाण छोडाय खभाइत की मछरी । समे सुदर के सब लोकन में जु खरतर गच्छ की ख्यांत खरी ॥ ५ ॥ ए जु श्री जिनदत्त चरित्र सुणी पतिसाह भए गुरु राजी ये रे । उमराव सबे कर जोड खरे पभणे आपणे मुख हाजी ये रे ॥ जुग प्रधान का ए गुरु कू गिगड दु गिगड दु धु धु बाजीये रे । समय सुदर के गुरु मान गुरू पतिसाह अकब्बर गाजीये रे ॥ ६ ॥ ए जु ग्यान विज्ञान कला गुण देख मेरा मन रींझीये जू । हमाउ को नदन एम अखै मानसिंह पटोधर कीजीए जू ॥ पतिसाह हजूर थप्यो सघ सूरि मडाण मत्री सर वींजीएजू । जिण चद गुरू जिण सिंह गुरू चद सूर ज्यू प्रतापी ए जू ॥ ७ ॥ ए जू रीहड वश विभूपण हस खरतर गच्छ समुद्र ससी । प्रतप्यो जिण माणिक सूरि के पाट प्रभाकर ज्यू प्रणमू उलसी ॥ मन शुद्ध अकब्बर मानत है जग जाणत है परतीत इसी । जिण चद मुणिंद चिर प्रतपो समें सुदर देत असीस इमी ॥ ८ ॥ इति गुरुदेवाष्टक सम्पूर्णम् ॥

लोगों का प्रतिपालन किया था और अपने साधर्मी भाइयों को बारह महीनों (साल भर) तक अन्न दिया था तथा वृष्टि होने पर सब को मार्गव्यय तथा खेती आदि करने के लिये द्रव्य दे दे कर उन को अपने २ स्थान पर पहुँचा दिया था, सत्य है कि सच्चा साधर्मिवात्सल्य यही है।

विदित हो कि ओसवालों के गोत्रों के इतिहासों की बहियाँ महात्मों लोगों के पास थीं और वे लोग यजमानों से बहुत कुछ द्रव्य पाते थे (जैसे कि वर्तमान में भाट लोग यजमानों से द्रव्य पाते हैं), परन्तु न मालूम कि उन पर कर्मचंद की क्यों कड़ी दृष्टि हुई जो उन्हों ने छल करके उन सब (महात्मा लोगों) को सूचना दी कि-"आप सब लोग पधारें क्योंकि मुझ को ओसवालों के गोत्रों का वर्णन सुनने की अत्यन्त अभिलाषा है, आप लोगों के पधारने से मेरी उक्त अभिलाषा पूर्ण होगी मैं इस कृपा के बदले में आप लोगों का द्रव्यादि से यथायोग्य सत्कार करूँगा" बस इस वचन को सुन कर सब महात्मा आ गये और इधर तो उन को कर्मचन्द ने भोजन करने के लिये बिठला दिया, उधर उन के नौकरों ने सब बहियों को लेकर कुए में डाल दिया, क्योंकि कर्मचंद ने अपने नौकरों को पहिले ही से ऐसा करने के लिये आज्ञा दे रक्खी थी, इस बात पर यद्यपि महात्मा लोग अप्रसन्न तो बहुत हुए परन्तु विचारे कर ही क्या सकते थे, क्योंकि कर्मचंद के प्रभाव के आगे उन का क्या बस चल सकता था, इस लिये वे सब लाचार हो कर मन ही मन में दुराशाप देते हुए चले गये, कर्मचंद भी उन की चेष्टा को देख कर उन से बहुत अप्रसन्न हुए, मानो उन के कोपानल में और भी घृत की आहुति दी, अस्तु-किसी विद्वान् ने सत्य ही कहा है कि-"न निर्मितः केन न चापि दृष्टः । श्रुतोऽपि नो हेममयः कुरङ्गः ॥ तथापि तृष्णा रघुनन्दनस्य । विनाशकाले विपरीतबुद्धिः" ॥ १ ॥ अर्थात् सुवर्ण के हरिण को न तो किसी ने कभी बनाया है और न उसे कभी किसी ने देखा या सुना ही है (अर्थात् सुवर्ण के मृग का होना सर्वथा असम्भव है) परन्तु तो भी रामचन्द्र जी को उस के लेने की अभिलाषा हुई (कि वे उसे पकड़ने के लिये उस के पीछे दौड़े) इस से सिद्ध होता है कि-विनाशकाल के आने पर मनुष्य की बुद्धि भी विपरीत हो जाती है ॥ १ ॥ बस यही वाक्य कर्मचन्द में भी चरितार्थ हुआ, देखो ! जब तक इन के पूर्व पुण्य की प्रबलता रही तब तक तो इन्हों ने उस के प्रभाव से अठारह रजवाड़ों में मान पाया तथा इन की बुद्धिमत्ता पर प्रसन्न होकर बीकानेर महाराज श्री रायसिंह जी साहब से मांग कर बादशाह अकबर ने इन को अपने पास रक्खा, परन्तु जब विनाशकाल उपस्थित हुआ तब इन की बुद्धि भी विपरीत हो

१-वे महात्मा अब खरतर गच्छ के थे इन की यजमानी पूर्ववत् अब भी विद्यमान है इसी प्रकार से अन्यान्य गच्छों के महात्माओं का पास भी तत्सम्बन्धी यजमानों की वंशावलियां हैं यह हम ने सुना है ॥

गई अर्थात् उधर तो इन्हों ने ओसवालों के इतिहासों की बहियों को कुए में डलवा दिया (यह कार्य इन्हों ने हमारी समझ में बहुत ही बुरा किया) और इधर ये बीकानेर महाराज श्री रायसिंह जी साहब के भी किसी कारण से अप्रीति के पात्र बन गये, इस कार्य का परिणाम इन के लिये बहुत ही बुरा हुआ अर्थात् इन की सम्पूर्ण विभूति नष्ट हो गई, उक्त कार्य के फलरूप मतिभ्रश से इन्हों ने अपने गृह में स्थित तमाम कुटुम्ब को क्षण भर में तलवार से काट डाला, (केवल इन के लड़के की स्त्री बच गई, क्योंकि वह गर्भवती होने के कारण अपने पीहर में थी) तथा अन्त में तलवार से अपना भी शिर काट डाला और दुर्दशा के साथ मृत्यु को प्राप्त हुए, तात्पर्य यह है कि–इन के दुष्कृत्य से इन के घराने का बुरी तरह से नाश हुआ, सत्य है कि–बुरे कार्य का फल बुरा ही होता है, इन के पुत्र की स्त्री (जो कि ऊपर लिखे अनुसार बच गई थी) के कालान्तर में पुत्र उत्पन्न हुआ, जिस की सन्तति (औलाद) वर्तमान में उदयपुर तथा माँडवगढ़ में निवास करती है, ऐसा सुनने में आया है ॥

बोहित्थरा गोत्र की निम्नलिखित शाखायें हुईं:—

१–बोहित्थरा । २–फोफलिया । ३–बच्छावत । ४–दसवाणी । ५–डुंगराणी । ६–मुकीम । ७–साह । ८–रताणी । ९–जैणावत ॥

उन्नीसवीं संख्या–गैलड़ा गोत्र ॥

विक्रम संवत् १५५२ (एक हजार पाँच सौ बावन) में गहलोत राजपूत गिरधर को जैनाचार्य श्री जिनहंस सूरि जी महाराज ने प्रतिबोध दे कर उस का ओसवाल वंश और गैलेड़ा गोत्र स्थापित किया था, इस गोत्र में जगत्सेठ एक बड़े नामी पुरुष हुए तथा

१–अप्रीति के पात्र बनने का इन (कर्मचंद जी) से कौन सा कार्य हुआ था, इस बात का वर्णन हम को प्राप्त नहीं हुआ, इस लिये उसे यहाँ नहीं लिख सके हैं, बच्छावतों की वंशावलीविषयक जिस लेख का उल्लेख प्रथम नोट में कर चुके हैं उस में केवल कर्मचंद जी के पिता संग्रामसिंह जी तक का वर्णन है अर्थात् कर्मचंद जी का वर्णन उस में कुछ नहीं है ॥

२–एक वृद्ध महात्मा से यह भी सुनने मे आया है कि–गैलडा राजपूत तो गहलोत हैं और प्रतिबोध के समय आचार्य महाराज ने उक्त नाम स्थापित नहीं किया था किन्तु प्रतिबोध के प्राप्त करने के बाद उन में गैलाई (पागलपन) मौजूद थी अत उन के गोत्र का गैलडा नाम पडा ॥

३–प्रथम तो ये गरीबी हालत में थे तथा नागौर में रहते थे परन्तु ये पायचन्द गच्छ के एक यति जी की अत्यन्त सेवा करते थे, वे यति जी ज्योतिष् आदि विद्याओं के पूर्ण विद्वान् थे, एक दिन रात्रि में तारामण्डल को देख कर यति जी ने उन से कहा कि–"यह बहुत ही उत्तम समय है, यदि इस समय में कोई पुरुष पूर्व दिशा में परदेश को गमन करे तो उसे राज्य की प्राप्ति हो" इस बात को सुनते ही ये वहाँ से उसी समय निकले परन्तु नागौर से थोडी दूर पर ही इन्हों ने रास्ते में फण निकाले हुए एक बडे भारी काले सर्प को देखा, उस को देख कर ये भयभीत हो कर वापिस लौट आये और यति जी से सब वृत्तान्त

उन्हीं के कुटुम्ब में बनारसवाले राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द भी बड़े विद्वान् हुए, जिन पर प्रसन्न हो कर श्रीमती गवर्नमेंट ने उन्हें उक्त उपाधि दी थी ॥

बीसवीं संख्या—लोढा गोत्र ॥

महाराज पृथ्वीराज चौहान के राज्य में लालन सिंह नामक चौहान अजमेर का सूबेदार था, उस के कोई पुत्र नहीं था, लालन सिंह ने एक जैनाचार्य की बहुत कुछ सेवा भक्ति की और आचार्य महाराज से पुत्रविषयक अपनी कामना प्रकट की, जैनाचार्य ने कहा कि—"यदि तू दयामूल जैन धर्म का ग्रहण करे तो तेरे पुत्र हो सकता है" लालन सिंह ने ऊपरी मन से इस बात का स्वीकार कर लिया परन्तु मन में दगा रक्खा अर्थात् मन में यह विचार किया कि—पुत्र के हो जाने के बाद दयामूल जैन धर्म को छोड़ दूँगा, निदान लालन सिंह के पुत्र तो हुआ परन्तु वह विना हाथ पैरों का केवल मांस के लोदे (लोंदे) के समान उत्पन्न हुआ, उस को देख कर लालन सिंह ने समझ लिया कि मैं ने जो मन में छल रक्खा था उसी का यह फल है, यह विचार वह शीघ्र ही आचार्य महाराज के पास आ कर उन के चरणों में गिर पड़ा और अपनी सब दगाबाजी को प्रकट कर दिया तब आचार्य महाराज ने कहा कि—"फिर ऐसी दगाबाजी करोगे" लालन सिंह ने हाथ जोड़ कर कहा कि"—महाराज! अब कभी ऐसा न करूँगा" तब सूरि महाराज ने कहा कि—"इस को सो वस्त्र में लपेट कर बर्गद (बड़) की खोध (खोह) में रख दो और हम से मन्त्रे हुए पानी को ले जा कर उस के ऊपर तीन दिन तक उस पानी के छींटे लगाओ, ऐसा करने से अब की बार भी तुम्हारे पुत्र होगा, परन्तु देखो! यदि दयामूल धर्म में दृढ़ रहोगे तो तुम इस भव और पर भव में सुख को पाओगे" इस प्रकार उपदेश दे

कर सुनाया उस को सुन कर पति जी ने कहा कि—"अरे! सर्प देखा तो क्या हुआ! तू अब भी अच्छा था यद्यपि अब जाने से तू राज्य तो नहीं होगा परन्तु हाँ लक्ष्मी तेरे चरणों में लोटेगी और तू जगत्सेठ के नाम से संसार में प्रसिद्ध होगा" यह सुनते ही वे वहाँ से चल दिये और यति जी के कथन के अनुसार ही सब बात हुई अर्थात् इन को बहुत ही लक्ष्मी प्राप्त हुई और वे जगत्सेठ कहलाये इन का विशेष वर्णन यहाँ पर ग्रन्थ के बढ़ने के भय से नहीं कर सकते हैं किन्तु इन के विषय में इतना ही लिखना काफी है कि—लक्ष्मी इन के किले कहार और पानी के बीच में भी हाज़िर भरी रहती थी इन का स्थान मुर्शिदाबाद में पूर्व समय में बड़ा ही सुन्दर बना हुआ था परन्तु अब उस को भागीरथी ने गिरा दिया है, अब उन के स्थान पर गोद आये हुए पुत्र हैं और वे भी जगत्सेठ के नाम से प्रसिद्ध हैं, उन का समय भी समयानुसार अब भी कुछ कम नहीं है उन के दो पुत्ररत्न हैं उन की बुद्धि और तेज को देख कर आशा की जाती है कि वे भी अपने बड़ों की कीर्तिरूप वृक्ष का सिंचन कर अवश्य अपने नाम को प्रदीप्त करेंगे, क्योंकि अपने पूर्वजों के गुणों का अनुसरण करना ही सुपुत्रों का परम कर्तव्य है ॥

१—इस गोत्र की उत्पत्ति के दो लेख हमारे देखने में आये हैं तथा एक दन्तकथा भी सुनने में आई है परन्तु संवत् और प्रतिबोध देने वाले जैनाचार्य का नाम नहीं देखने में आया है ॥

कर आचार्य महाराज ने लाखन सिंह को दयामूल जैन धर्म का अङ्गीकार करवाया और उस का ओसवाल वंश तथा लोढा गोत्र स्थापित किया ।

महाराज के कथनानुसार लाखन सिंह के पुनः पुत्र उत्पन्न हुआ और उस का परिवार वहुत वढ़ा अर्थात् दिल्ली, अजमेर नागौर और जोधपुर आदि स्थानों में उस का परिवार फैल कर आवाद हुआ ।

लोढों के गोत्र में दो प्रकार की मातायें मानी गईं अर्थात् एक तो वड़ की पाटी बना कर उस पाटी को ही माता समझ कर पूजने लगे और कई एक बड़लाई माता को पूजने लगे ।

लोढा गोत्र में पुनः निम्नलिखित खाँपें हुईः—

१–टोडर[1] मलोत । २–छज मलोत । ३–रतन पालोत । ४–भाव सिन्धोत ॥

सूचना—ऊपर लिख चुके हैं कि–लोढों की कुलदेवी बड़लाई माता मानी गई है, अतः जो लोढे नागौर में रहते है उन की स्त्रियों के लिये तो यह बहुत ही आवश्यक बात मानी गई है कि–सन्तान के उत्पन्न होने के पीछे वे जा कर पहिले माता के दर्शन करें फिर कहीं दूसरी जगह को जाने के लिये घर से निकलें, इन के सिवाय जो लोढे वाहर रहते हैं वे तो वड़ी लड़की का और प्रत्येक लड़के का झडूला वहाँ जा कर उतारते हैं तथा काली बकरी और भैंस को न तो खरीदते है और न घर में रखते हैं, ये लोग चाक को भी व्याह में नहीं पूजते हैं, जोधपुर नगर में लोढों को राव का खिताव है, कुछ वर्षों से इन लोगों में से कुछ लोग दयामूल जैन धर्म को छोड़ कर वैष्णव भी हो गये हैं ॥

ओसवालों के १४४४ गोत्र कहे जाने का कारण ॥

लगभग १६०० सवत् में इस बात को जानने के लिये कि ओसवालों के गोत्रों की कितनी सख्या है एक सेवक (भोजक) ने परिश्रम करना शुरू किया तथा बहुत अर्से में उसने १४४३ (एक हजार चार सौ तेतालीस) गोत्रों को लिख कर संग्रहीत किया, उस समय उस ने अपनी समझ के अनुसार यह भी विचार लिया कि अब कोई भी गोत्र बाकी नहीं रहा है, ऐसा विचार कर वह अपने घर लौट आया और देशाटन का सब हाल अपनी स्त्री से कह सुनाया, तब उस की स्त्री ने कहा कि–"तुम ने मेरे पीहरवाले ओसवालों की खाप लिखी है" यह सुन कर सेवक ने चौंक कर अपनी स्त्री से पूछा कि–"उन लोगों की क्या खाप है" स्त्री ने कहा कि "डोसी" है, यह सुन कर सेवक ने कहा

1–टोडर मल और छजमल को दिल्ली के बादशाह ने शाह की पदवी दी थी अत. सब ही लोढे शाह कहलाते हैं ॥

कि—"फिर भी कोई होसी" इस प्रकार कह कर उक्त साँप को भी लिख लिया, बस तब ही से ओसवालों के १४४४ गोत्र कहे जाते हैं ॥

सूचना—हमारी समझ में ऊपर लिखा हुआ लेख केवल दन्तकथारूप प्रतीत होता है, अतः इस विषय में हम तो पाठकगणों से यही कह सकते हैं कि—ओसवालों के १४४४ गोत्र कहने की केवल एक प्रथामात्र चल पड़ी है, क्योंकि वे सब मूल गोत्र नहीं हैं किन्तु एक एक मूल गोत्र में से पीछे से शाखायें तथा प्रतिशाखायें निकली हैं, वे सब ही मिला कर १४४४ संख्या समझनी चाहिये, उन्हीं को शाखा, साँप, नख और ओल्खाण इत्यादि नामों से भी कह सकते हैं, अतः जिन शाखाओं के प्रचरित होने का हाल मिला है उन को हम आगे "शाखा गोत्र" इस नाम से लिखेंगे, क्योंकि साँपें तो व्यापार आदि अनेक कारणों से होती गई हैं अर्थात् राज का काम करने से, किसी नगर से उठ कर अन्यत्र जा कर बसने से, व्यापार धन्धा करने से और लौकिक प्रथा आदि अनेक कारणों से बहुत सी साँपें हुई हैं, उन के कुछ उदाहरण भी यहाँ लिखते हैं—देखिये ! राज के खजाने का काम करने से लोगों को सब लोग खजांची कहने लगे तथा उन की औलादवाले लोग भी खजांची कहलाये, राज के कोठार का काम करने से लोगों को सब लोग कोठारी कहने लगे और उन की औलादवाले लोग भी कोठारी कहलाये, राज में लिखने का काम करने से कोचरों को फलोधी मारवाड़ में सब लोग 'कानूंगा' कहने लगे (वे अब 'कानूंगा' कहलाते हैं) लालेड़ों को बीकानेर में निरखी का खिताब है तथा बेगाणियों को भी निरखी तथा मुसरफ का खिताब मिला अतः वे उक्त नामों से ही पुकारे जाते हैं, इसी प्रकार पाटियों में से हरखा जी की औलादवाले लोग हरखावत कहलाये, ऐसे ही बोथरों के गोत्रवाले लोग बीकानेर में मुकीम और साह भी कहलाते हैं, रांका गोत्रवाले कुछ घर पूगल को छोड़ कर अन्यत्र जा

१—इस ग्रन्थ की दूसरी आवृत्ति में इस बात का अच्छे प्रकार से खुलासा कर दिया जावेगा कि—कौन २ से मूल गोत्रों की कौन २ सी शाखायें तथा प्रतिशाखायें हैं, इस लिये सब ओसवाल पाठकगणों को उचित है कि—अपनी जाति के इस अच्छे कार्य में अवश्य सहायता प्रदान करें सहायता हम केवल इतनी ही चाहते हैं कि वे अपने २ मूल गोत्र और उस की शाखा आदि का जो कुछ हाल उन्हें याद हो उस सब को लिख कर हमारे निकेतनस्थित श्रीलक्ष्मीप्रकाश पुस्तकालय कार्यालय (बीकानेर) में भेज देवें तथा जो २ बात जब २ इस विषय की विदित होवे तब २ उसे भी कृपा कर भेजते रहें, उक्त विषय का लेख भेजते समय उन को उस की प्रामाणिकता और अप्रामाणिकता आदि का कुछ भी खयाल नहीं करना चाहिये अर्थात् दन्तकथा, प्राचीन लेख तथा भाटों के पास की वंशावली का लेख इत्यादि जो कुछ मिले उसे भेज देना चाहिये परन्तु हाँ साथ में उस का नाम अवश्य लिख देना चाहिये हमारी इस प्रार्थना पर ध्यान दे कर यदि सब ओसवाल महोदय इस विषय में सहायता करेंगे तो थोड़े ही समय में ओसवालों के सम्पूर्ण गोत्रों का इतिहास पूर्ण रीति से तैयार हो जावेगा ॥

वसे थे अतः उन को सब लोग पूगलिया कहने लगे, वेगवाणी गोत्र का एक पुरुष मकसूदावाद में गया था उस के शरीर पर रोम (वाल) वहुत थे अतः वहाँ वाले लोग उस को "रुँवाल जी" कह कर पुकारने लगे, इसी लिये उस की औलादवाले लोग भी रुँवाल कहलाये, वह्लफणा गोत्रवाले एक पुरुष ने पटवे का काम किया था अतः उस की औलादवाले लोग पटवा कहलाये, फलोधी में झावक गोत्र का एक पुरुष शरीर में बहुत दुवला था इस लिये सब लोग उस को मड़िया २ कह कर पुकारते थे इस लिये अब उस की औलादवाले लोग वहाँ मडिया कहलाते है, इस रीति से ओसवालों में वलाई चण्डालिया और वभी ये भी नख है, ये (नख) किसी नीच जाति के हेतु से नहीं प्रसिद्ध हुए है–किन्तु वात केवल इतनी थी कि इन लोगों का उक्त नीच जातिवालो के साथ व्यापार (रोजगार) चलता था, अतः लोगों ने इन्हें वैसा २ ही नाम दे दिया था, उन की औलादवाले लोग भी ऊपर कहे हुए उदाहरणों के अनुसार उन्हीं खापो के नाम से प्रसिद्ध हो गये, तात्पर्य यह है कि–ऊपर लिखे अनुसार अनेक कारणों से ओसवाल वंश में से अनेक शाखायें और प्रतिशाखाये निकलती गई ।

ओसवालो में वलाई और चण्डालिया आदि खांपो के नाम सुन कर बहुत से अक्ल के अन्धे कह वैठते है कि–जैनाचार्यों ने नीच जातिवालो को भी ओसवाल वश में शामिल कर दिया है, सो यह केवल उन की मूर्खता है, क्योंकि ओसवाल वश में सोलह आने में से पन्द्रह आने तो राजपूत (क्षत्रियवश) है, बाकी महेश्वरी वैश्य और ब्राह्मण है अर्थात् प्रायः इन तीन ही जातियो के लोग ओसवाल बने है, इस बात को अभी तक लिखे हुए ओसवाल वशोत्पत्ति के खुलासा हाल को पढ़ कर ही वुद्धिमान् अच्छे प्रकार से समझ सकते हैं[1]।

पहिले लिख चुके है कि–एक सेवक ने अत्यन्त परिश्रम कर ओसवालों के १४४४ गोत्र लिखे थे, उन सब के नामो का अन्वेषण करने में यद्यपि हम ने बहुत कुछ प्रयत्न किया परन्तु वे नही मिले, किन्तु पाठकगण जानते ही है कि–उद्यम और खोज के करने से यदि सर्वथा नहीं तो कुछ न कुछ सफलता तो अवश्य ही होती है, क्योंकि यह

१–गुजरात देश मे कुमारपाल राजा के समय मे अर्थात् विक्रम सवत् वारह सौ मे पूर्णतिलक गच्छीय जैनाचार्य श्री हेमचन्द्र सूरि जी महाराज ने श्रीमालियों को प्रतिवोध दे कर जैनधर्मी श्रावक बनाया था जो कि गुजरात देश मे वर्त्तमान में दशे श्रीमाली और वीसे श्रीमाली, इन दो नामो से पुकारे जाते हैं तथा जैनी श्रावक कहलाते हैं, इन के सिवाय उक्त देश मे छीपे और भावसार भी जैन धर्म का पालन करते हैं और वे भी उक्त जैनाचार्य से ही प्रतिवोध को प्राप्त हुए हैं, उन में से यद्यपि कुछ लोग वैष्णव भी हो गये हैं परन्तु विशेष जैनी हैं, उक्त देश मे जो श्रीमाली तथा भावसार आदि जैनी हैं उन के साथ ओसवालों का कन्या का देना लेना आदि व्यवहार तो नहीं होता है, परन्तु जैन धर्म का पालन करने से उन को ओसवाल वशवाले जन साधर्मी भाई अलवत्ता समझते हैं ॥

एक सामाजिक नियम है, बस इसी नियम के अनुसार हमारे परम मित्र यतिवर्य पण्डित श्रीयुत श्री अनूपचन्द्र जी मुनि महोदय के स्थापित किये हुए हस्तलिखित पुस्तकालय में ओसवालों के गोत्रों के वर्णन का एक छन्द हमें प्राप्त हुआ उस छन्द में करीब ६०० (छः सौ) गोत्रों के नाम हैं—छन्दोरचयिता (छन्द के बनाने वाले) ने मूलगोत्र, शाखा तथा प्रतिशाखा, इन सब को एक में ही मिला दिया है और सब को गोत्र के ही नाम से लिखा है कि—जिस से उक्त गोत्र आदि बातों के ठीक २ जानने में भ्रम का रहना सम्भव है, अत हम उक्त छन्द में कहे हुए गोत्रों की नामावलि को छाँट कर पाठकों के जानने के लिये अकारादि क्रम से लिखते हैं—

सं । गोत्रों के नाम ।	सं । गोत्रों के नाम ।	सं गोत्रों के नाम ।	सं गोत्रों के नाम ।
अ			
१ अभड़	१४ आबगोत	२७ कनिया	४० कवाड़िया
२ अधुम	१५ आसी	२८ कनोजा	४१ ककलिया
३ असोभिया	१६ आमू	२९ करणारी	४२ काकरेचा
४ अमी	१७ आला	३० करहेडी	४३ काँवसा
आ	इ		
५ आईचणांग	१८ इकड़िया	३१ कड़िया	४४ काग
	उ		
६ आकाशमार्गी	१९ उनकण्ठ	३२ कठोतिया	४५ काँकरिया
७ आँचलिया	२० उर	३३ कठफोड़	४६ कासरवाल
	ओ		
८ आछा	२१ ओसतवाल	३४ कद्दा	४७ काजल
९ आयरिया	२२ ओदीचा	३५ कसाण	४८ काठेकरा
	क		
१० आमदेव	२३ कउक	३६ कठ	४९ कामेड़िया
११ आलझाड़ा	२४ कटारिया	३७ कठाल	५० कांधाल
१२ आकावत	२५ कठिमार	३८ कनक	५१ कापड़
१३ अबड़	२६ कणोर	३९ ककड़	५२ काँधिया

१–इन महोदय की कृपा से उक्त छन्द की प्राप्ति के द्वारा जो हम को गोत्रविषय में सहायता मिली है उस का हम उक्त महोदय को अन्तःकरण से धन्यवाद देते हैं, इन के सिवाय उपाध्याय पण्डित श्रीयुत श्री रामलाल जी गणी और यतिवर्य पण्डित श्रीयुत श्री अबीरचन्द जी मुनि महोदय (जो कि इस बार जैनसिद्धान्त के अच्छे ज्ञाता हैं) ने भी ओसवालवंशोत्पत्ति के संग्रह करने में हम को सहायता प्रदान की है अतः हम उक्त सज्जनों को भी धन्यवाद देते हैं॥

५३ कानरेला
५४ काला
५५ काउ
५६ काविया
५७ किराड़
५८ कुम्भज
५९ कुंकुंरोल
६० कुकुम
६१ कुणन
६२ कुंड
६३ कुम्भट
६४ कुचोर्या
६५ कुबुद्धि
६६ कुलवन्त
६७ कुक्कुड़
६८ कुलहट
६९ कूकड़ा
७० कूमढ
७१ कूहड़
७२ केड़
७३ केराणी
७४ केलवाल
७५ कोचर
७६ कोठारी
७७ कोठेचा
७८ कोवेड़ा
७९ कोल्या
८० कोलर
८१ कठीर

ख

८२ खगाणी
८३ खड़भणशाली
८४ खटवड़
८५ खाटेड
८६ खाटोड़ा
८७ खारीवाल
८८ खाव्या
८९ खिलची
९० खीचिया
९१ खीची
९२ खीमसरा
९३ खुडधा
९४ खेचा
९५ खेड़िया
९६ खेत्तरपाल
९७ खेतसी
९८ खेमासरिया
९९ खेमानदी
१०० खैरवाल
१०१ खुतड़ा

ग

१०२ गणधर
१०३ गटागट
१०४ गट्टा
१०५ गढवाणी
१०६ गल्लुंडक
१०७ गदैया
१०८ गधिया
१०९ गहलड़ा
११० गहलोत
१११ गाग
११२ गाँधी
११३ गाँची
११४ गाय
११५ गावड़िया
११६ गिडिया
११७ गिणा
११८ गिरमेर
११९ गुणहडिया
१२० गुवाल
१२१ गुलगुलिया
१२२ गूगलिया
१२३ गूँदेचा
१२४ गूजडिया
१२५ गेमावत
१२६ गेरा
१२७ गोवरिया
१२८ गोढा
१२९ गोठी
१३० गोसल
१३१ गोलेच्छा
१३२ गोहीलाण
१३३ गोखरू
१३४ गोध
१३५ गोलेचा

घ

१३६ घाँघरोल
१३७ घिया
१३८ घोखा
१३९ घघवाल

च

१४० चतुर
१४१ चवा
१४२ चम
१४३ चामड़
१४४ चाल
१४५ चितोड़ा
१४६ चित्रवाल
१४७ चीचट
१४८ चीचँड
१४९ चीपट
१५० चीपड़
१५१ चुखड़
१५२ चोधरी
१५३ चोल
१५४ चोपड़ा
१५५ चोरड़िया
१५६ चौहाण
१५७ चंचल
१५८ चंडालिया

छ

१५९ छछोहा
१६० छजलाणी
१६१ छाजेड़
१६२ छागा
१६३ छाँटा
१६४ छाडोरिया
१६५ छीलिया
१६६ छेर
१६७ छैल
१६८ छोहरिया
१६९ छोगाला

ज

१७० जडिया

१७१ जणिया
१७२ जग
१७३ जम्मड़
१७४ जसेरा
१७५ जल
१७६ जनाराव
१७७ जलावत
१७८ जक्षगोता
१७९ जावक
१८० जाकोरी
१८१ जाँपड़ा
१८२ जाँगी
१८३ जागा
१८४ जालाणी
१८५ जीत
१८६ जीवाणी
१८७ जीरावला
१८८ जुगलिया
१८९ जेल्मी
१९० जोगनेरा
१९१ जोधपुरा
१९२ जोगड़
१९३ जेहू

झ

१९४ झावक
१९५ झाबक
१९६ झाँबड़
१९७ झाँबावत
१९८ झाँबरपाल
१९९ झोटा
२०० झड़

ट

२०१ टाटिया
२०२ टापरिया
२०३ टसुलिया
२०४ टागी
२०५ टूँकलिया
२०६ टोडरवाल्या
२०७ टंच
२०८ टंक

ठ

२०९ ठगाणा
२१० ठाकुर
२११ ठवा
२१२ ठंठवाल
२१३ ठंठेर

ड

२१४ डफरिया
२१५ डाया
२१६ डाँगी
२१७ डावा
२१८ डाकलिया
२१९ डाकूगालिया
२२० डीडू
२२१ डूँगरिया
२२२ डूँगरोल
२२३ डूँगरेवाल
२२४ डोडिया
२२५ डोलण
२२६ डोसा
२२७ डोसी
२२८ डाबरिया

ढ

२२९ ढड्ढा
२३० ढावरिया
२३१ ढिल्लीवाल
२३२ ढेढिया
२३३ ढेलड़िया

त

२३४ तलेरा
२३५ तवाड़
२३६ ताल
२३७ ताँण
२३८ तातेड़
२३९ ताथेड़
२४० तिरपेक्खिया
२४१ तिलखाणा
२४२ तिरपाल
२४३ तिलेरा
२४४ तुलावत
२४५ तूंगा
२४६ तेजया
२४७ तेलड़िया
२४८ तोडरवाल

थ

२४९ थटेरा
२५० थाँभलेचा
२५१ थारावत
२५२ थिरावाल
२५३ थोरवाल

द

२५४ दक
२५५ दरड़
२५६ दड्ढा
२५७ दरगेड़ा
२५८ दाउ
२५९ दिल्लीवाल
२६० दीपग
२६१ दुग
२६२ दुठाड़ा
२६३ दूगड़
२६४ दूणीवाल
२६५ दूधेड़िया
२६६ देवानन्दी
२६७ देसरला
२६८ देवड़ा
२६९ देहरा
२७० देवगहरा

ध

२७१ धनपाल
२७२ धर
२७३ धम्माणी
२७४ धरा
२७५ धम्मल
२७६ धन
२७७ धनडाय
२७८ धनवा
२७९ धाकड़
२८० धाड़ीवाल
२८१ धाँगी
२८२ धिया
२८३ धींगा
२८४ धूंधिया
२८५ धूपिया

२८६ घोखिया
२८७ घोल

न

२८८ नवलक्खा
२८९ नपावलिया
२९० नलवाह्या
२९१ नखत
२९२ नरायण
२९३ नगगोत
२९४ नखित्रेत
२९५ नक्षत्रगोता
२९६ नरसिंघ
२९७ नागपुरा
२९८ नाडोलिया
२९९ नाणवट
३०० नाँदेचा
३०१ नारिया
३०२ नाहटा
३०३ नागोरी
३०४ नावरिया
३०५ नावटी
३०६ नावेडा
३०७ नाहर
३०८ निधी
३०९ निंबेडा
३१० नीमाणी
३११ नीसटा
३१२ नेणसर
३१३ नेर

प

३१४ पगारिया
३१५ पँमार
३१६ परजा
३१७ पहु
३१८ पल्लीवाल
३१९ पठाण
३२० पटोल
३२१ पड़गतिया
३२२ पटणी
३२३ पद्मावत
३२४ पटवा
३२५ पटविद्या
३२६ पडियार
३२७ पडाइया
३२८ परघाला
३२९ पापडिया
३३० पामेचा
३३१ पालड़ेचा
३३२ पाहणिया
३३३ पाँचा
३३४ पारख
३३५ पालावत
३३६ पीपलिया
३३७ पीतलिया
३३८ पीपाड़ा
३३९ पूनमिया
३४० पूगलिया
३४१ पुद्दाड
३४२ पूराणी
३४३ पोकरवाल
३४४ पोकरणा
३४५ प्रोचाल

फ

३४६ फलसा
३४७ फलोधिया
३४८ फाल
३४९ फूलफगर
३५० फोकटिया
३५१ फोफलिया

ब

३५२ बच्छावत
३५३ बड़गोता
३५४ बड़लोया
३५५ बड़ोल
३५६ बणभट
३५७ बरड़ेचा
३५८ बरड़िया
३५९ बरवत
३६० बराड
३६१ बडेर
३६२ बलदेवा
३६३ बट
३६४ बलड़
३६५ बहुबोल
३६६ बलहरी
३६७ बलाही
३६८ बवाल
३६९ बवेल
३७० बण
३७१ बघाणी
३७२ बघेरवाल
३७३ बठ्ठर
३७४ बद्धड
३७५ बढाला
३७६ बडला
३७७ बाँका
३७८ बागरेचा
३७९ बाघमार
३८० बॉगाणी
३८१ बानेता
३८२ बातड़िया
३८३ बाफणा
३८४ बादरिया
३८५ बादवार
३८६ बामाणी
३८७ बालड़
३८८ बालवा
३८९ बावेला
३९० बाहरिया
३९१ बॉवलिया
३९२ बिदामिय
३९३ बिनसट
३९४ बिनायक
३९५ बिरमेचा
३९६ बिनय
३९७ बिरदाल
३९८ बिशाल
३९९ बिरहट
४०० बीराणी
४०१ बीरावत
४०२ बुरड
४०३ बुचा
४०४ बूबकिया
४०५ बूड़

- ४०६ बेगड़
- ४०७ बेताल
- ४०८ बेगाणी
- ४०९ बेलीम
- ४१० बेहड़
- ४११ बैदमुता
- ४१२ बोकड़िया
- ४१३ बोपीचा
- ४१४ बोरमिया
- ४१५ बोरदिया
- ४१६ बोहिस्थरा
- ४१७ बोरोचा
- ४१८ बोहरा
- ४१९ बौठिया
- ४२० बंका
- ४२१ बंम
- ४२२ बंबोई
- ४२३ बंगाल

भ

- ४२४ भक्कड़
- ४२५ भगत्मिया
- ४२६ भटेवरा
- ४२७ भड़कतिया
- ४२८ भड़गोता
- ४२९ भरवाल
- ४३० भयाणा
- ४३१ भडासर
- ४३२ भरवाण
- ४३३ भद्रा
- ४३४ भद्रड़िया
- ४३५ भडालिया
- ४३६ भागू
- ४३७ भावर
- ४३८ भाम् भांडावत
- ४३९ भाणेस
- ४४० भार्डगा
- ४४१ भाँमठ
- ४४२ भीनमाल
- ४४३ भीर
- ४४४ भुगड़ी
- ४४५ भुरटिया
- ४४६ भूरी
- ४४७ भूरा
- ४४८ भूतड़ा
- ४४९ भूतेड़िया
- ४५० भूषण
- ४५१ भोर
- ४५२ भोल
- ४५३ भागर
- ४५४ भोरड़िया
- ४५५ भंडसाली
- ४५६ भंडारी

म

- ४५७ मकुयाण
- ४५८ मगदिया
- ४५९ मचाणा
- ४६० महेता
- ४६१ मणहरा
- ४६२ मण हाड़िया
- ४६३ मरड़िया
- ४६४ मसरा
- ४६५ महामद्र
- ४६६ महेच
- ४६७ मल
- ४६८ मल्ल
- ४६९ मल्हा
- ४७० मल्हड़
- ४७१ मालू
- ४७२ मालकस
- ४७३ माल्हेसा
- ४७४ माल
- ४७५ माँडलेचा
- ४७६ मालविया
- ४७७ माँडोता
- ४७८ माभोटिया
- ४७९ मिन्नी
- ४८० मिछेला
- ४८१ मिण
- ४८२ मीठड़िया
- ४८३ मुसलतरपाल
- ४८४ मुहाणाणी
- ४८५ मुणोत
- ४८६ मूंधड़ा
- ४८७ मुंहिमवाल
- ४८८ मुरवड़
- ४८९ मुहिलाण
- ४९० मुगरोल
- ४९१ मूलमेरा
- ४९२ मेड़तवाल
- ४९३ मेहुँ
- ४९४ मेराण
- ४९५ मागरा
- ४९६ मोरख
- ४९७ मोहनाणी
- ४९८ मोदी
- ४९९ मोगिया
- ५०० मोडोत
- ५०१ मोहल्ला
- ५०२ मोहीवाल
- ५०३ मौतियाण
- ५०४ मंगलिया
- ५०५ मंडोवित
- ५०६ मंडोवरा
- ५०७ मंगीवाल
- ५०८ मड़छीक

र

- ५०९ रतनपुरा
- ५१० रतनगोता
- ५११ रसवाल
- ५१२ राय
- ५१३ रायजादा
- ५१४ रायभण्डशाली
- ५१५ राठोड़
- ५१६ रांका
- ५१७ रातेधा
- ५१८ रातड़िया
- ५१९ रावल
- ५२० रीसाँण
- ५२१ रूणवाल
- ५२२ रूप
- ५२३ रूपधरा
- ५२४ रूंपलेचा
- ५२५ रेहड़
- ५२६ रोर्मा

५२७ रोटागण
५२८ रंक

ल

५२९ लघुश्रेष्ठी
५३० लक्कड
५३१ ललवाणी
५३२ लघु खँडेलवाल
५३३ लालण
५३४ लिंगा
५३५ लीगा
५३६ लुम्बक
५३७ लुडा
५३८ लूछा
५३९ लूँकड़
५४० लूणावत
५४१ लूणिया
५४२ लेल
५४३ लेवा
५४४ लोढा
५४५ लोलग

श

५४६ श्रीमाल
५४७ श्रीश्रीमाल

स

५४८ समधड़िया
५४९ सही
५५० सफला
५५१ सराहा
५५२ समुदरिख
५५३ सवरला
५५४ सवा
५५५ सरभेल
५५६ साँखला
५५७ साँड
५५८ साहिबगोत
५५९ साँडेला
५६० साहिला
५६१ सावणसुखा
५६२ साँबरा
५६३ सागाणी
५६४ साहलेचा
५६५ साचोरा
५६६ साचा
५६७ सिणगार
५६८ सियाल
५६९ सीखा
५७० सीचाँ–सींगी
५७१ सीसोदिया
५७२ सीरोहिया
५७३ सुदर
५७४ सुराणा
५७५ सुघेचा
५७६ सूर
५७७ सूधा
५७८ सूरिया
५७९ सूरपुरा
५८० सुरहा
५८१ स्थूल
५८२ सूकाली
५८३ सूँडाल
५८४ सेठिया
५८५ सेठियापावर
५८६ सोनी
५८७ सोनीगरा
५८८ सोलखी
५८९ सोजतिया
५९० सोभावत
५९१ सोठिल
५९२ सोजन
५९३ संखलेचा
५९४ सचेती
५९५ संड
५९६ संखवाल

ह

५९७ हगुड़िया
५९८ हरसोरा
५९९ हड़िया
६०० हरण
६०१ हिरण
६०२ हुब्बड़
६०३ हुड़िया
६०४ हेमपुरा
६०५ हेम
६०६ हीडाउ
६०७ हींगड
६०८ हडिया
६०९ हस

शाखागोत्रों[१] का संक्षिप्त इतिहास ॥

१–ढाकलिया—पूर्व समय में सोढा राजपूत थे जो कि दयामूल जैन धर्म का ग्रहण किये हुए थे, कालान्तर में ये लोग राज का काम करते २ किसी कारण से रात को भाग निकले परन्तु पकड़े जा कर वापिस लाये गये, अत ये लोग ढाकलिया कहलाये क्योंकि पकड़ कर लाये जाने के समय ये लोग ढके हुए लाये गये थे ।

२–कोचर–इन लोगों के बड़ेरे का नाम कोचर इस कारण से हुआ था कि उस के जन्म समय पर कोचरी पक्षी (जिस की बोली से मारवाड़ में शकुन लिया करते हैं) बोला था ।

१–इन (शाखागोत्रों) को मारवाड में खाँप, नख और शाख आदि नामों से कहते हैं तथा कच्छ देश के निवासी ओसवाल इन को "ओलख" कहते हैं, मारवाड से उठ कर ओसवाल लोग कच्छ देश में जा बसे थे, इस बात को करीब तीन सौ वा चार सौ वर्ष हुए हैं ॥

३–चामड़–पूर्व काल में चौंथल राठौड़ थे तथा दयामूल जैन धर्म का ग्रहण करने के बाद ये लोग लाख का व्यापार करने लगे थे इस लिये ये चामड़ कहलाये।

४–बागरेचा–पूर्व समय में सोनगरा चौहान थे तथा जालोर में दयामूल जैन धर्म का ग्रहण करने के बाद ये बागरे गाँव में रहने लगे थे इस लिये वे बागरेचा कहलाये परन्तु कुछ लोग ऐसा भी कहते हैं कि-बाघ के मारने से उन की जात बाघरेचा हुई।

५–बेदमूता–पूर्व काल में ये पँवार राजपूत थे, ओसियाँ में दयामूल जैन धर्म का ग्रहण करने के बाद इन के किसी पूर्वज (बड़ेरे) ने दिल्ली के बादशाह की आँख का इलाज किया था जिस से इन को बैद का खिताब मिला था, बीकानेर में राजा की तरफ से इन को राव तथा महाराव की पदवी भी मिली थी, असल में ये बीदावतों के कामदार थे इस लिये इन्हें मोहता पदवी भी मिली थी, बस दोनों (बैद और मोहता) पदवियों के मिलने से ये लोग बैदमूता कहलाने लगे।

६–लूकड़–पहिले ये चौहान राजपूत थे, दयामूल जैन धर्म का ग्रहण करने के पीछे इन के एक पूर्वज (बड़ेरे) को एक यती (यति) ने सन्दूक में छिपा कर उसी राजा के आदमियों से बचाया था कि जिस राजा की वह नौकरी करता था, चूंकि छिपाने को लुकाना भी कहते हैं इस लिये उस का और उस की औलाद का नाम लूकड़ हो गया।

७–मिन्नी-(मिन्निया)–पहिले ये चौहान राजपूत थे, दया मूल जैन धर्म का ग्रहण करने के बाद इन का एक पूर्वज (बड़ेरा) (जिस के पास में धन माल था) किसी गाँव को जा रहा था परन्तु रास्ते में उसे लुटेरे मिल गये और उन्हों ने उस से कहा कि–"सेठ! राम राम" सेठ ने कहा कि–"कूड़ी बात"[1] फिर लुटेरों ने कहा कि–"सेठ! अच्छे हो" सेठ ने फिर जबाव दिया कि–"कूड़ी बात" इस प्रकार लुटेरों ने दस बीस बातें पूछी परन्तु सेठ उसी (कूड़ी बात) शब्द को कहता रहा, आखिरकार लुटेरों ने कहा कि–"तेरे पास जो माल और गहना आदि सामान है वह सब दे दे" तब सेठ बोला कि–"हाँ आ साँची बात, म्हें तो लेण देण रोटी बपो करां छां, थे थाँ ने खत लिख दो और ले लो"[2] लुटेरों ने विचारा कि–यह सेठ भोला है खत लिखने में अपना क्या हर्ज है, अपने को कौन सा देना पड़ेगा यह सोच कर उन्हों ने सेठ के कहने के अनुसार खत लिख दिया सेठ ने भी इच्छा के अनुसार अपने माल से चौगुने माल का खत लिखवा लिया और लुटेरों से कहा कि–"इस खत में साख घलवाँ दो"[3] लुटेरों ने कहा कि–"यहां पर

१–"कूड़ी बात" अर्थात् यह झूठी बात है ॥

२–अर्थात् यह सच्ची बात है, हम तो लेने देने का ही धन्धा करते हैं तुम हम को खत लिख दो और हमारा सब सामान ले लो ॥

३–"साख घलवा दो" अर्थात् किसी की साक्षी (गवाही) डलवा दो ॥

किस की साख डलवावें, यहाँ तो कोई नहीं है, हाँ यह एक लोंकडी तो खडी है तुम कहो तो इस की साख डलवा दें" सेठ ने कहा कि–"अच्छा इसी की साख डलवा दो" बस लुटेरों ने लोंकडी की साख लिख दी और सेठ ने गहना आदि जो कुछ सामान अपने पास में था वह सब अपने हाथ से लुटेरों को दे दिया तथा कागज लेकर वहाँ से चला आया, दो तीन वर्ष बीतने के बाद वे ही लुटेरे किसी साहूकार का माल लूट कर उसी नगर में बेंचने के लिये आये और सेठ ने ज्यों ही उन को बाजार में देखा त्यों ही पहिचान कर उन का हाथ पकड लिया और कहा कि–"व्याजसमेत हमारे रुपये लाओ" लुटेरे बोले कि–"हम तो तुम को पहिचानते भी नहीं है, हमने तुम से रुपये कब लिये थे?" लुटेरों की इस बात को सुन कर सेठ जोर में आ गया, क्योंकि वह जानता था कि–यहाँ तो बाजार है, यहाँ ये मेरा क्या कर सकते है, (किसी कवि ने यह दोहा सत्य ही कहा है कि–'जगल जाट न छेडिये, हाटाँ बीच किराड़ ॥ रंगड कदे न छेडिये, मारे पटक पछाड़, ॥ १ ॥) निदान दोनों में खूब ही हुज्जत (तकरार) होने लगी और इन की हुज्जत को सुन कर बहुत से साहूकार आकर इकट्ठे हो गये तथा सेठ का पक्ष करके वे सब लुटेरों को हाकिम के पास ले गये, हाकिम ने सेठ से रुपयों के मागने का सबूत पूछा, इधर देरी ही क्या थी–शीघ्र ही सेठ ने उन (लुटेरों) के हाथ की लिखी हुई चिट्ठी दिखला दी, तब हाकिम ने लुटेरों से पूछा कि–"सच २ कहो यह क्या बात है" तब लुटेरों ने कहा कि–"साहब ! सेठ ने यह चिट्ठी तो आप को दिखला दी परन्तु इस (सेठ) से यह पूछा जावे कि इस बात का साक्षी (साखी वा गवाह) कौन है?" लुटेरों की बात को सुनते ही (हाकिम के पूछने से पहिले ही) सेठ बोल उठा कि–"मिन्नी"[1] यह सुन कर लुटेरे बोले कि–"हाकिम साहब ! बाणियो झूठो है, सो लोंकड़ी नें मिन्नी कहे छे[2]" यह सुन कर हाकिम ने उस खत को उठा कर देखा, उस में लोंकड़ी की साख लिखी हुई थी, बस हाकिम ने समझ लिया कि–बनिया सच्चा है, परन्तु उपहास के तौर पर हाकिम ने सेठ से धमका कर कहा कि–"अरे! लोंकड़ी को मिन्नी कहता है" सेठ ने कहा कि–"मिन्नी और लोंकड़ी में के फरक है[3]? मिन्नी २ सात बार मिन्नी" अस्तु, हाकिम ने उन लुटेरों से कागज में लिखे अनुसार सब रुपये सेठ को दिलवा दिये, बस उसी दिन से सब लोग सेठ को 'मिन्नी, कहने लगे और उस की औलाद वाले भी मिन्नी कहलाये ।

८–**सिंगी**–पहिले ये जाति के नन्दवाणे ब्राह्मण थे और सिरोही के ढेलड़ी ग्राम में

१–लोंकडी को मारवाडी बोली मे जगली मिन्नी (बिल्ली) कहते हैं ॥

२–"लोंकडी ने मिनी कहे छे" अर्थात् लोंकडी को मिनी बतलाता है ॥

३–"के फरक है" अर्थात् क्या भेद है ॥

रहते थे, इसी से इन को सब लोग डेलडिया बोहरा कहने लगे थे, इन में सोनपाल नामक एक बोहरा बड़ा आदमी था, उस को दैववश सर्प ने काट खाया था तथा एक जती (यति) ने उसे अच्छा किया था इसी लिये उस ने दयामूल जैन धर्म का ग्रहण किया था, उस के बहुत काल के पीछे उस ने शत्रुञ्जय की यात्रा करने के लिये अपने खर्च से संघ निकाला था तथा यात्रा में ही उस के पुत्र उत्पन्न हुआ था, संघ ने मिल कर उसे संघवी (संघपति) का पद दिया था अतः उस की औलादवाले लोग सिंघी कहलाये, क्योंकि ऐसा प्रतीत होता है कि–संघवी का अपभ्रंश सिंगी हो गया है, इन (सिंगियों) के भी–महेवावत, गडावत, भीमराजोत और मूलचन्दोत आदि कई फिरके हैं ॥

ओसवाल जाति का गौरव ॥

प्रिय पाठकगण! इस जाति के विषय में आप से विशेष क्या कहें! यह वही जाति है जो कि–कुछ समय पूर्व अपने धर्म, विद्या, एकता और परस्पर प्रीतिभाव आदि सद् गुणों के बल से उन्नति के शिखर पर विराजमान थी, इस जाति का विशेष प्रशंसनीय गुण यह था कि–जैसे यह धर्मकार्यों में कटिबद्ध थी वैसे ही सांसारिक धनोपार्जन आदि कार्मों में भी कटिबद्ध थी, तात्पर्य यह है कि–जिस प्रकार यह पारमार्थिक कार्मों में संलग्न थी उसी प्रकार लौकिक कार्यों में भी कुछ कम न थी अर्थात् अपने–'भक्ति

१– डेलडिया' अर्थात् डेलड़ी के निवासी ॥

२–गुजरात और कच्छ आदि देशों में संघवी गोत्र अन्य प्रकार से भी अनेकविध (कई तरह का) माना जाता है ॥

३–ये सिंघी (संघवी) जोधपुर आदि मारवाड़ वाले समझने चाहियें ॥

४–प्रीति के तीन भेद हैं–भक्ति आदर और प्रेम, इन में से भक्ति उसे कहते हैं कि–जो पुरुष अपनी अपेक्षा पद में श्रेष्ठ हो मनुष्यों के द्वारा मान्य हो और विद्या तथा जाति में बड़ा हो उस की सेवा करनी चाहिये तथा उस पर श्रद्धाभाव रखना चाहिये क्योंकि वही भक्ति का पात्र है, सब पूछो तो यह गुण सब गुणों से उत्कृष्ट है, क्योंकि–यही सब गुणों की प्राप्ति का मूल कारण है अर्थात् इस के होने से ही मनुष्य को सब गुण प्राप्त हो सकते हैं, इस की गति ऊर्ध्वगामिनी है प्रीति का दूसरा भेद आदर है–आदर उसे कहते हैं कि–जो पुरुष अवस्था द्रव्य विद्या और जाति आदि गुणों में अपने समान हो उस के साथ योग्य प्रतिष्ठापूर्वक बर्त्ताव करना चाहिये इस (आदर) की गति समतलगामिनी है तथा प्रीति का तीसरा भेद प्रेम है–प्रेम उसे कहते हैं कि–जो पुरुष अवस्था द्रव्य विद्या और बुद्धि के सम्बन्ध में अपने से छोटा हो उस के हित को विचार कर उस की वृद्धि का उपाय करना चाहिये इस (प्रेम) का प्रवाह जलस्रोत के समान अधोगामी है यह प्रीति के ये ही तीनों प्रकार हैं, क्योंकि उक्त तीनों बातों के ज्ञान के बिना यथार्थ में प्रीति नहीं हो सकती है–इस लिये इन तीनों भेदों के स्वरूप को जान कर यथायोग्य इन के बर्ताव का ध्यान रखना आवश्यक है ॥

परमो धर्मः, रूप सदुपदेश के अनुसार यह सत्यतापूर्वक व्यापार कर अगणित द्रव्य को प्राप्त करती थी और अपनी सत्यता के कारण ही इस ने 'शाह, इन दो अक्षरों की अनुपम उपाधि को प्राप्त किया था जो कि अब तक मारवाड तथा राजपूताना आदि प्रान्तों में इस के नाम को देदीप्यमान कर रही है, सच तो यह है कि-या तो शाह या बादशाह, ये दो ही नाम गौरवान्वित मालूम होते है।

इस के अतिरिक्त-इतिहासों के देखने से विदित होता है कि-राजपूताना आदि के प्रायः सब ही रजवाडो में राजों और महाराजों के समक्ष में इसी जाति के लोग देश-दीवान रह चुके हैं और उन्हों ने अनेक धर्म और देशहित के कार्य करके अतुलित यश को प्राप्त किया है, कहाँ तक लिखें-इतना ही लिखना काफी समझते हैं कि-यह जाति पूर्व समय में सर्वगुणागार, विद्या आदि में नागर तथा द्रव्यादि का भण्डार थी, परन्तु शोक का विषय है कि-वर्त्तमान में इस जाति में उक्त बातें केवल नाममात्र ही दीख पड़ती हैं, इस का मुख्य कारण यही है कि-इस जाति में अविद्या इस प्रकार घुस गई है कि-जिस के निकृष्ट प्रभाव से यह जाति कृत्य को अकृत्य, शुभ को अशुभ, बुद्धि को निर्बुद्धि तथा सत्य को असत्य आदि समझने लगी है, इस विषय में यदि विस्तार-पूर्वक लिखा जावे तो निस्सदेह एक बड़ा ग्रन्थ बन जावे, इस लिये इस विषय में यहाँ विशेष न लिख कर इतना ही लिखना काफी समझते हैं कि-वर्त्तमान में यह जाति अपने कर्तव्य को सर्वथा भूल गई है इसलिये यह अधोदशा को प्राप्त हो गई है तथा होती जाती है, यद्यपि वर्त्तमान में भी इस जाति में समयानुसार श्रीमान् जन कुछ कम नहीं हैं अर्थात् अब भी श्रीमान् जन बहुत है और उन की तारीफ-घोर निद्रा में पड़े हुए सब आर्यावर्त्त के भार को उठानेवाले भूतपूर्व बड़े लाट श्रीमान् कर्जन स्वय कर चुके हैं परन्तु केवल द्रव्य के ही होने से क्या हो सकता है जब तक कि उस का बुद्धिपूर्वक सदुपयोग न किया जावे, देखिये! हमारे मारवाड़ी ओसवाल भ्राता अपनी अज्ञानता के कारण अनेक अच्छे २ व्यापारों की तरफ कुछ भी ध्यान न दे कर सट्टे नामक जुए में रात दिन जुटे (सलग्न) रहते है और अपने भोलेपन से वा यों कहिये कि-स्वार्थ में अन्धे हो कर जुए को ही अपना व्यापार समझ रहे हैं, तब कहिये कि-इस जाति की उन्नति की क्या आशा हो सकती है? क्योंकि सब शास्त्रकारों ने जुए को सात महाव्यसनों का राजा कहा है तथा पर भव में इस से नरकादि दुःख का प्राप्त होना बतलाया है, अब सोचने की बात है कि-जब यह जुआ पर भव के भी सुख का नाशक है तो इस भव में भी इस से सुख और कीर्ति कैसे प्राप्त हो सकती है, क्योंकि सत्कर्त्तव्य वही माना गया है जो कि उभय लोक के सुख का साधक है।

इस दुर्व्यसन में हमारे ओसवाल भ्राता ही पड़े हैं यह बात नहीं है, किन्तु वर्त्तमान में

प्रायः मारवाड़ी वैश्य (महेश्वरी और अगरवाल आदि) भी सब ही इस दुर्व्यसन में निमग्न हैं, हा! विचार कर देखने से यह कितने शोक का विषय प्रतीत होता है इसी लिये तो कहा जाता है कि–वर्तमान में वैश्य जाति में अविद्या पूर्णरूप से घुस रही है, देखिये! पास में द्रव्य के होते हुए भी इन (वैश्य जनों) को अपने पूर्वजों के प्राचीन व्यवहार (व्यापारादि) तथा वर्तमान काल के अनेक व्यापार बुद्धि को निर्बुद्धि रूप में करने वाली अविद्या के निकृष्ट प्रभाव से नहीं सूझ पड़ते हैं अर्थात् सट्टे के सिवाय इन्हें और कोई व्यापार ही नहीं सूझता है! भला सोचने की बात है कि–सट्टे का करने वाला पुरुष साहूकार वा शाह कभी कहला सकता है? कभी नहीं, उन को निश्चयपूर्वक यह समझ लेना चाहिये कि इस दुर्व्यसन से उन्हें हानि के सिवाय और कुछ भी लाभ नहीं हो सकता है, यद्यपि यह बात भी कचित् देखने में आती है कि–किन्हीं लोगों के पास इस से भी द्रव्य आ जाता है परन्तु उस से क्या हुआ? क्योंकि यह द्रव्य तो उन के पास से शीघ्र ही चला जाता है (जुए से द्रव्यपात्र हुआ आज तक कहीं कोई भी सुना वा देखा नहीं गया है), इस के सिवाय यह भी विचारने की बात है कि–इस काम से एक को घाटा लग कर (हानि पहुँच कर) दूसरे को द्रव्य प्राप्त होता है अतः वह द्रव्य विशुद्ध (निष्पाप वा दोषरहित) नहीं हो सकता है, इसी लिये तो (दोषयुक्त होने ही से तो) वह द्रव्य जिन के पास ठहरता भी है वह प्रायः न्यात में औसर आदि व्यर्थ कामों में ही खर्च होता है, इस का प्रमाण प्रत्यक्ष ही देख लीजिये कि–आज तक सट्टे से पाया हुआ किसी का भी द्रव्य विद्यालय, औषधालय, धर्मशाला और सदाव्रत आदि शुभ कर्मों में लगा हुआ नहीं दीखता है, सत्य है कि–पाप का पैसा शुभ कार्य में कैसे लग सकता है, क्योंकि उस के तो पास आने से ही मनुष्य की बुद्धि मलीन हो जाती है, बस बुद्धि के मलीन हो जाने से वह पैसा शुभ कार्यों में व्यय न हो कर बुरे मार्ग से ही जाता है।

अभी थोड़े ही दिनों की बात है कि–ता॰ ८ जनवरी बुधवार सन् १९०८ ई॰ को संयुक्त प्रान्त (यूनाइटेड प्राविन्सेस) के छोटे लाट साहब आगरे में फ्रीगंज का बुनियादी पत्थर रखने के महोत्सव में पधारे थे तथा वहाँ आगरे के तमाम व्यापारी सज्जन भी उपस्थित थे, उस समय श्रीमान् छोटे लाट साहब ने अपनी सुयोग्य वक्तृता में फ्रीगंज बनने के और यमुना जी के नये पुल के कामों को दिखला कर आगरे के व्यापारियों को वहाँ के व्यापार के बढ़ाने के लिये कहा था, उक्त महोदय की वक्तृता को अविकल न लिख कर पाठकों के ज्ञानार्थ हम उस का सारमात्र लिखते हैं, पाठकगण उसे देख कर समझ सकेंगे कि–उक्त साहब बहादुर ने अपनी वक्तृता में व्यापारियों को कैसी उत्तम शिक्षा दी थी, वक्तृता का सारांश यही था कि "ईमानदारी और सच्चा लेन देन

करना ही व्यापार में सफलता का देने वाला है, आगरे के निवासी तीन प्रकार के जुए में लगे हुए है, यह अच्छी बात नहीं है-क्योंकि यह आगरे के व्यापार की उन्नति का वाधक है, इस लिये नाज का जुआ, चाँदी का जुआ और अफीम का सट्टा तुम लोगो को छोड़ना चाहिये, इन जुओ से जितनी जल्दी जितना धन आता है वह उतनी ही जल्दी उन्हीं से नष्ट भी हो जाता है, इस लिये इस बुराई को छोड देना चाहिये, यदि ऐसा न किया जावेगा तो सर्कार को इन के रोकने का कानून वनाना पड़ेगा, इस लिये अच्छा हो कि लोग अपने आप ही अपने भले के लिये इन जुओ को छोड़ दें, स्मरण रहे कि-सर्कार को इन की रोक का कानून वनाना कुछ कठिन है परन्तु असम्भव नहीं है, फ्रीगंज की भविष्यत् उन्नति व्यापारियों को ऐसे दोषो को छोड़ कर सच्चे व्यापार में मन लगाने पर ही निर्भर है" इत्यादि, इस प्रकार अति सुन्दर उपदेश देकर श्रीमान् लाट साहव ने चमचमाती (चमकती) हुई कन्नी और वसूली से चूना लगाया और पत्थर रखने की रीति पूरी की गई, अव सेठ साहूकारों और व्यापारियों को इस विषय पर ध्यान देना चाहिये कि-श्रीमान् लाट साहब ने जुआ न खेलने के लिये जो उपदेश किया है वह वास्तव में कितना हितकारी है, सत्य तो यह है कि-यह उपदेश न केवल व्यापारियों और मारवाडियों के लिये ही हितकारक है वरन सम्पूर्ण भारतवासियों के लिये यह उन्नति का परम मूल है, इस लिये हम भी प्रसगवश अपने जुआ खेलने वाले भाइयों से प्रार्थना करते हैं कि-अँग्रेज जातिरत्न श्रीमान् छोटे लाट साहव के उक्त सदुपदेश को अपनी हृदयपटरी पर लिख लो, नहीं तो पीछे अवश्य पछताना पड़ेगा, देखो! लोकोक्ति भी प्रसिद्ध है कि-"जो न माने वडों की सीख, वह ठिकरा ले मागे भीख" देखो! सव ही को विदित है कि-तुम ने अपने गुरु, शास्त्रों तथा पूर्वजों के उपदेश की ओर से अपना ध्यान पृथक् कर लिया है, इसी लिये तुम्हारी जाति का वर्त्तमान में उपहास हो रहा है परन्तु निश्चय रक्खो कि-यदि तुम अब भी न चेतोगे तो तुम्हें राज्यनियम इस विषय से लाचार कर पृथक् करेगा, इस लिये समस्त मारवाड़ी और व्यापारी सज्जनों को उचित है कि-इस दुर्व्यसन का त्याग कर सच्चे व्यापार को करें, हे प्यारे मारवाडियो और व्यापारियो! आप लोग व्यापार में उन्नति करना चाहें तो आप लोगों के लिये कुछ भी कठिन बात नहीं है, क्योंकि यह तो आप लोगों का परम्परा का ही व्यवहार है, देखो! यदि आप लोग एक एक हजार का भी शेयर नियत कर आपस में बेंचे (ले लेवें) तो आप लोग वात की वात में दो चार करोड़ रुपये इकट्ठे कर सकते है और इतने धन से एक ऐसा उत्तम कार्यालय (कारखाना) खुल सकता है कि जिस से देश के अनेक कष्ट दूर हो सकते है, यदि आप लोग इस वात से डरें और कहें कि-हम लोग कलो और कारखानों के काम को नहीं जानते हैं,

सो यह आप लोगों का भय और कथन व्यर्थ है, क्योंकि भर्तृहरि जी ने कहा है कि-"सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति" अर्थात् सब गुण कञ्चन (सोने) का आश्रय लेते हैं, इसी प्रकार नीतिशास्त्र में भी कहा गया है कि-"न हि तद्विद्यते किञ्चित्, यदर्थेन न सिध्यति" अर्थात् संसार में ऐसा कोई काम नहीं है जो कि धन से सिद्ध न हो सकता हो, तात्पर्य यही है कि-धन से प्रत्येक पुरुष सब ही कुछ कर सकता है, देखो! यदि आप लोग कलों और कारखानों के काम को नहीं जानते हैं तो द्रव्य का व्यय करके अनेक देशों के उत्तमोत्तम कारीगरों को बुला कर तथा उन्हें स्वाधीन रख कर आप कारखानों का काम अच्छे प्रकार से चला सकते हैं।

अब अन्त में पुनः एक वार आप लोगों से यही कहना है कि-हे प्रिय मित्रो! अब शीघ्र ही चेतो, अज्ञान निद्रा को छोड़ कर स्वजाति के सद्गुणों की वृद्धि करो और देश के कल्याणरूप श्रेष्ठ व्यापार की उन्नति कर उभय लोक के सुख को प्राप्त करो ॥

यह पञ्चम अध्याय का ओसवाल वंशोत्पत्तिवर्णन नामक प्रथम प्रकरण समाप्त हुआ ॥

द्वितीय प्रकरण—पोरवाल वंशोत्पत्तिवर्णन ॥

पोरवाल वंशोत्पत्ति का इतिहास ॥

पद्मावती नगरी (जो कि आबू के नीचे बसी थी) में जैनाचार्य ने प्रतिबोध देकर लोगों को जैनधर्मी बना कर उन का पोरवाल[1] वंश स्थापित किया था।

दो एक लेख हमारे देखने में ऐसे भी आये हैं जिन में पोरवालों को प्रतिबोध देनेवाला जैनाचार्य श्रीहरिभद्र सूरि जी महाराज को लिखा है, परन्तु यह बात बिलकुल

१-ये (पोरवाल) जन दक्षिण मारवाड़ (गोड़वाड़) और गुजरात में अधिक हैं, इन लोगों का ओसवालों के साथ विवाहादि सम्बन्ध नहीं होता है, किन्तु केवल भोजनव्यवहार होता है इन का एक फिरका चौंसठियानामक है, उस में २४ गोत्र हैं तथा उस में जैनी और वैष्णव दोनों धर्म वाले हैं इन का रहना बहुत करके चम्बल नदी की छाया में रामपुरा मन्दसौर भानपुरा तथा हुल्कर सिंध के राज्य में है अर्थात् उक्त स्थानों में वैष्णव पोरवालों के करीब तीन हजार घर बसते हैं, इन के सिवाय बाकी के जैनधर्मधारी पोरवाल चौंसठे हैं जो कि मेदपुर और उज्जैन आदि में निवास करते हैं, ऊपर कह चुके हैं कि-चौंसड़ा कहे जाने वाले पोरवालों के २४ गोत्र हैं उन २४ गोत्रों के नाम ये हैं—१-चौधरी। २-काला। ३-धनघट। ४-रतनावत। ५-घाँचीया। ६-मजावर्या। ७-डबकरा। ८-मनुस्या। ९-भमसरा। १०-वेम्या। ११-कुचिया। १२-सेठिया। १३-मुजा। १४-फरक्या। १५-करोर्या। १६-मसवर्या। १७-मुनिया। १८-माँझा। १९-नाभिया। २०-भेसीया। २१-भवेपर्या। २२-वानवट। २३-महता। २४-खरड्या ॥

गलत सिद्ध होती है, क्योंकि श्री हरिभद्र सूरि जी महाराज का स्वर्गवास विक्रम संवत् ५८५ (पाँच सौ पचासी) में हुआ था और यह बात बहुत से ग्रन्थों से निर्भ्रम सिद्ध हो चुकी है, इस के अतिरिक्त-उपाध्याय श्री समयसुन्दर जी महाराजकृत शेत्रुञ्जय रास में तथा श्री वीरविजय जी महाराज कृत ९९ प्रकार की पूजा में सोलह उद्धार शेत्रुञ्जय का वर्णन किया है, उस में विक्रम संवत् १०८ में तेरहवाँ उद्धार जावड़ नामक पोरवाल का लिखा है, इस से सिद्ध होता है कि-विक्रम संवत् १०८ से पहिले ही किसी जैनाचार्य ने पोरवालों को प्रतिबोध देकर उक्त नगरी में उन्हें जैनी बनाया था।

सूचना-इस पोरवाल वंश में-विमलशाह, धन्नाशाह, वस्तुपाल और तेजपाल आदि अनेक पुरुष धर्मज्ञ और अनर्गल लक्ष्मीवान् हो गये है, जिन का नाम इस संसार में स्वर्णाक्षरो (सुनहरी अक्षरों) में इतिहासों में संलिखित है, इन्हीं का संक्षिप्त वर्णन पाठकों के ज्ञानार्थ हम यहाँ लिखते है:—

पोरवाल ज्ञातिभूषण विमलशाह मन्त्री का वर्णन ॥

गुर्जेरात के महाराज भीमदेव ने विमलशाह को अपनी तरफ से अपना प्रधान अधिकारी अर्थात् दण्डपति नियत कर आबू पर भेजा था, यहाँ पर उक्त मन्त्री जी ने अपनी

१-इन्हों ने मुल्क गोढवाड मे श्री आदिनाथ स्वामी का एक मनोहर मन्दिर बनवाया था (जो कि सादरी से तीन कोश पर अभी राणकपुर नाम से प्रसिद्ध है), इस मन्दिर की उत्तमता यहाँ तक प्रसिद्ध है कि-रचना मे इस के समान दूसरा मन्दिर नहीं माना जाता है, कहते हैं कि-इस के बनवाने मे ९९ लाख स्वर्ण मोहर का खर्च हुआ था, यह बात श्री समयसुन्दर जी उपाध्याय ने लिखी है ॥

२-आबू और चन्द्रावती के राजकुटुम्बजन अणहिलवाडा पट्टन के महाराज के माण्डलिक थे, इन का इतिहास इस प्रकार है कि-यह वंश चालुक्य वंश का था, इस वंश मे नीचे लिखे हुए लोगों ने इस प्रकार राज्य किया था कि-मूलराज ने ईस्वी सन् ९४२ से ९९६ पर्यन्त, चामुण्ड ने ईस्वी सन् ९९६ से १०१० तक, वल्लभ ने ६ महीने तक, दुर्लभ ने ईस्वी सन् १०१० से १०२२ तक (यह जैनधर्मी था), भीमदेव ने ईस्वी सन् १०२२ से १०६२ तक, इस की बरकरारी मे धनराज आबू पर राज्य करता था तथा भीमदेव गुजरात देश पर राज्यशासन करता था, उस समय मालवे मे धारा नगर मे भोजराज गद्दी पर था, आबू के राजा धनराजने अणहिल पट्टन के राजवंश का पक्ष छोड कर राजा भोज का पक्ष किया था, इसी लिये भीमदेव ने अपनी तरफ से विमलशाह को अपना प्रधान अधिकारी अर्थात् दण्डपति नियत कर आबू पर भेजा था और उसी समय मे विमलशाह ने श्री आदिनाथ का देवालय बनवाया था, भीमदेव ने धार पर भी आक्रमण किया था और इन्हीं की बरकरारी मे गजनी के महमूद ने सोमनाथ (महादेव) का मन्दिर लूटा था, इस के पीछे गुजरात का राज्य कर्ण ने ईस्वी सन् १०६३ से १०९३ तक किया, जयसिंह अथवा सिद्धराज ने ईस्वी सन् १०९३ से ११४३ तक राज्य किया (यह जयसिंह चालुक्य वंश मे एक बडा तेजस्वी और धुरन्धर पुरुष हो गया है), इस के पीछे कुमारपाल ने ईस्वी सन् ११४४ से ११७३ तक राज्य किया (इस ने जैनाचार्य श्री हेमचन्द्र जी सूरि से जैन धर्म का ग्रहण किया था, उस

योग्यतानुसार राज्यसत्ता का अच्छा प्रबंध किया था कि जिस से सब लोग उन से प्रसन्न थे, इस के अतिरिक्त उन के सद्व्यवहार से श्री अम्बादेवी भी साक्षात् होकर उन पर प्रसन्न हुई थी और उसी के प्रभाव से मन्त्री जी ने आबू पर श्री आदिनाथ स्वामी के मन्दिर को बनवाना विचारा परन्तु ऐसा करने में उन्हें जगह के लिये कुछ दिक्कत उठानी पड़ी, तब मन्त्री जी ने कुछ सोच समझ कर प्रथम तो अपनी सामर्थ्य को दिखला कर ज़मीन को कब्जे में किया, पीछे अपनी उदारता को दिखलाने के लिये उस ज़मीन पर रुपये बिछा दिये और वे रुपये ज़मीन के मालिक को दे दिये, इस के पश्चात् देशान्तरों से नामी कारीगरों को बुलवा कर संगमरमर पत्थर (श्वेत पाषाण) से अपनी इच्छा के अनुसार एक अति सुन्दर अनुपम कारीगरी से युक्त मन्दि[1]र बनवाया, जब वह मन्दिर बन कर तैयार हो गया तब उक्त मन्त्री जी ने अपने गुरु बृहत्खरतरगच्छीय जैनाचार्य श्री वर्द्धमान सूरि जी महाराज के हाथ से विक्रम संवत् १०८८ में उस की प्रतिष्ठा करवाई।

इस के अतिरिक्त–अनेक धर्मकार्यों में मन्त्री विमलशाह ने बहुत सा द्रव्य लगाया, जिस की गणना (गिनती) करना अति कठिन है, धन्य है ऐसे धर्मज्ञ श्रावकों को जो कि लक्ष्मी को पाकर उस का सदुपयोग कर अपने नाम को अचल करते हैं ॥

समय चन्द्रावती और आबू पर यशोधवल परमार राज्य करता था) इस के पीछे अजयपाल ने ईस्वी सन् ११७३ से ११७६ तक राज्य किया इस के पीछे दूसरे मूलराज ने ईस्वी सन् ११७६ से ११७८ तक राज्य किया इस के पीछे भोला भीमदेव ने ईस्वी सन् १२१७ से १२४१ तक राज्य किया (इस की अमलदारी में आबू पर धारावर्ष और धारावर्ष राज्य करते थे धारावर्ष के पुत्र नामक एक पुत्र और इच्छिनी कुमारी नामक एक कन्या थी अर्थात् दो सन्तान थे इच्छिनी कुमारी अत्यन्त सुन्दरी थी अत भीमदेव ने धारावर्ष से उस कुमारी के देने के लिये कहला भेजा परन्तु धारावर्ष ने इच्छिनी कुमारी को अजमेर के चौहान राजा पृथ्वीराज को देने का पहिले ही से स्वीकार कर लिया था इस लिये धारावर्ष ने भीमदेव से कुमारी के देने के लिये इनकार किया उस इनकार को सुनते ही भीमदेव ने एक बड़े सैन्य को साथ में लेकर धारावर्ष पर चढ़ाई की और आबूगढ़ के आगे दोनों में खूब ही युद्ध हुआ आखिर कार उस युद्ध में धारावर्ष हार गया परन्तु उस के पीछे भीमदेव को शहाबुद्दीन गोरी का सामना करना पड़ा और उसी में उस का नाश हो गया) इस के पीछे त्रिभुवन ने ईस्वी सन् १२४१ से १२४४ तक राज्य किया (यह ही चालुक्य वंश में आखिरी पुरुष था) इस के पीछे दूसरे भीमदेव के अधिकारी वीर धवल ने वाघेला वंश को आकर जमाया इस ने गुजरात का राज्य किया और अपनी राजधानी को अणहिल वाड़ा पट्टन में न करके धोलके में की इस वंश के विशलदेव अर्जुन और सारंग इन तीनों ने राज्य किया और इसी की अमलदारी में आबू पर प्रसिद्ध देवालय के निर्मापक (बनवाने वाले) प्रेरक प्राग्वंशभूषण वस्तुपाल और तेजपाल का प्रताप हुआ ॥

१–इस मन्दिर की सुन्दरता का वर्णन हम यहाँ पर क्या करें क्योंकि इस का पूरा स्वरूप तो यहाँ जा कर देखने से ही मालूम हो सकता है ॥

पोरवाल ज्ञातिभूषण नररत्न वस्तुपाल और तेजपाल का वर्णन ॥

वीर धवल वाधेला के राज्यसमय में वस्तुपाल और तेजपाल, इन दोनों भाइयों का बड़ा मान था, वस्तुपाल की पत्नी का नाम ललिता देवी था और तेजपाल की पत्नी का नाम अनुपमा था ।

वस्तुपाल ने गिरनार पर्वत पर जो श्री नेमिनाथ भगवान् का देवालय बनवाया था वह ललिता देवी का स्मारकरूप (स्मरण का चिह्नरूप) बनवाया था ।

किसी समय तेजपाल की पत्नी अनुपमा देवी के मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि–अपने पास में अपार सम्पत्ति है उस का क्या करना चाहिये, इस बात पर खूब विचार कर उस ने यह निश्चय किया कि–आबूराज पर सब सम्पत्ति को रख देना ठीक है, यह निश्चय कर उस ने सब सम्पत्ति को रख कर उस का अचल नाम रखने के लिये अपने पति और जेठ से अपना विचार प्रकट किया, उन्हों ने भी इस कार्य को श्रेष्ठ समझ कर उस के विचार का अनुमोदन किया और उस के विचार के अनुसार आबूराज

१–इन्हीं के समय में दशा और वीसा, ये दो तड पडे हैं, जिन का वर्णन लेख के बढ जाने के भय से यहाँ पर नहीं कर सकते हैं ॥

२–इन की वंशावलि का क्रम इस प्रकार है कि —
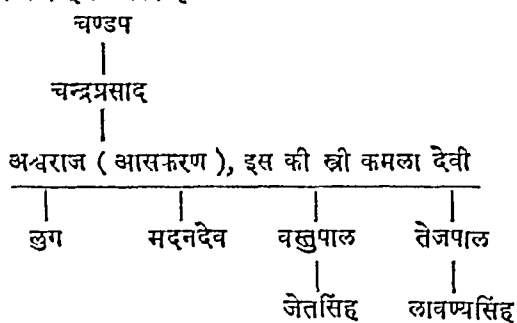
३–बम्बई इलाके के उत्तर में आखिरी टॉचपर सिरोही संस्थान में अरवली के पश्चिम में करीब सात माइल पर अरवली की घाटी के सामने यह पर्वत है, इस का आकार बहुत लम्बा और चौडा है अर्थात् इस की लम्बाई तलहटी से २० माइल है, ऊपर का घाटमाथा १४ माइल है, शिखा २ माइल है, इस की दिशा ईशान और नैर्ऋत्य है, यह पहाड बहुत ही प्राचीन है, यह बात इस के स्वरूप के देखने से ही जान ली जाती है, इस के पत्थर वर्तुलाकार (गोलाकार) हो कर सुंवाले (चिकने) हो गये हैं, इस स्थिति का हेतु यही है कि–इस के ऊपर बहुत कालपर्यन्त वायु और वर्षा आदि पञ्च महाभूतों के परमाणुओं का परिणमन हुआ है, यह भूगर्भशास्त्रवेत्ताओं का मत है, यह पहाड समुद्र की सपाटी से घाटमाथा तक ४००० फुट है और पाया से ३००० फुट है तथा इस के सर्वान्तिम ऊँचे शिखर ५६५३ फुट है उन्हीं को गुरु शिखर कहते हैं, ईस्वी सन् १८२२ में–राजस्थान के प्रसिद्ध इतिहासलेखक **कर्नल टाड साहब** यहाँ (आबूराज) पर आये थे तथा यहाँ के मन्दिरों को देख कर अत्यन्त प्रसन्न हो कर उन की बहुत

पर प्रथम से ही विमलशाह के बनवाये हुए श्री आदिनाथ स्वामी के भव्य देवालय के समीप में ही संगमरमर पत्थर का एक सुन्दर देवालय बनवाया तथा उस में श्री नेमिनाथ भगवान् की मूर्ति स्थापित की।

उक्त दोनों देवालय केवल संगमरमर पाषाण के बने हुए हैं और उन में प्राचीन आर्य लोगों की शिल्पकला के रूप में रत्न भरे हुए हैं, इस शिल्पकला के रत्नभण्डार को देखने से यह बात स्पष्ट मालूम हो जाती है कि–हिन्दुस्थान में किसी समय में शिल्पकला कैसी पूर्णावस्था को पहुँची हुई थी।

इन मन्दिरों के बनने से वहाँ की शोभा अकथनीय हो गई है, क्योंकि–प्रथम तो आबू ही एक रमणीक पर्वत है,[1] दूसरे–ये सुन्दर देवालय उस पर बन गये हैं, फिर भला शोभा की क्या सीमा हो सकती है? सच है–"सोना और सुगन्ध" इसी का नाम है।

वारीफ की भी देखिये। वहाँ के जैन मन्दिरों के विषय में उन के कथन का सार यह है–"यह बात निर्विवाद है कि–इस भारतवर्ष के सब देवालयों में से आबू पर के देवालय विशेष भव्य हैं और ताजमहल के सिवाय इन के साथ मुकाबिला करने वाली दूसरी कोई भी इमारत नहीं है तथा शब्दों में से एक के पाड़े किये हुए आनन्दवर्धक तथा अभिमान योग्य इस कीर्तिस्तम्भ की अपार सुन्दरता का वर्णन करने में कलम असमर्थ है" इत्यादि, पाठकगण जानते ही हैं कि–कर्नल टाड साहब ने राजपूताने का इतिहास बहुत सुयोग्य रीति से लिखा है तथा उन का लेख प्रायः सब को मान्य है, क्योंकि–जो कुछ उन्हों ने लिखा है वह सब प्रमाणसहित लिखा है, इसी लिये एक कवि ने उन के विषय में यह दोहा कहा है–"टाड समा साहिब बिना क्षत्रिय यश क्षय थात ॥ फार्बस सम साहिब बिना, नहिं उधरत गुजरात" ॥ १ ॥ अर्थात् यदि टाड साहब न लिखते तो क्षत्रियों के यश का क्षय हो जाता तथा फार्बस साहब न लिखते तो गुजरात का उद्धार नहीं होता ॥ १ ॥ तात्पर्य यह है कि–राजपूताने के इतिहास को कर्नल टाड साहब ने और गुजरात के राजाओं के इतिहास को भी फार्बस साहब ने बहुत परिश्रम करके लिखा है ॥

१–इस पवित्र और रमणीक स्थान की यात्रा हम ने संवत् १९५८ के कार्तिक कृष्ण ७ को की थी तथा दीपमालिका (दिवाली) तक यहाँ ठहरे थे इस यात्रा में मकसूदाबादनिवासी राय बहादुर श्रीमान् श्री मेघराज जी कोठारी के ज्येष्ठ पुत्र श्री रतनलाल बाबू धर्मपत्नी श्री धर्मपत्नी धार्मिक सुश्रु कुमारी और उन के मामा धर्मप्रवत श्री गोविन्दचन्द्र जी तथा नौकर चाकरों सहित कुल सात आदमी थे (इस की अधिक भिन्नता होने से हमें भी यात्रासंयम करना पड़ा था) इस यात्रा के करने में आबू, केसरियानाथ, गिरनार, भोयणी और राणपुर आदि पञ्चतीर्थी की यात्रा भी बड़े आनन्द के साथ हुई थी इस यात्रा में जो इस (आबू) स्थान की अनेक बातों का अनुभव हमें हुआ उन में से कुछ बातों का वर्णन हम पाठकों के ज्ञानार्थ यहाँ लिखते हैं –

आबू पर वर्तमान बस्ती–आबू पर वर्तमान में बस्ती अच्छी है, यहाँ पर सिरोही महाराज का एक अधिकारी रहता है और वह देलवाड़ा (जिस जगह पर उक्त मन्दिर बना हुआ है उस को देलवाड़ा नाम से कहते हैं) को आये हुए यात्रियों से कर (महसूल) वसूल करता है, परन्तु साधु, यती

उक्त देवालय के वनवाने में द्रव्य के व्यय के विषय में एक ऐसी दन्तकथा है कि–शिल्पकार अपने हथियार (औज़ार) से जितने पत्थर कोरणी को खोद कर रोज़ निकालते थे उन्हीं (पत्थरों) के वरावर तौल कर उन को रोज़ मजूरी के रुपये दिये जाते थे, यह क्रम वरावर देवालय के वन चुकने तक होता रहा था।

दूसरी एक कथा यह भी है कि–दुष्काल (दुर्भिक्ष वा अकाल) के कारण आवू पर वहुत से मजदूर लोग इकट्ठे हो गये थे, वस उन्हीं को सहायता पहुँचाने के लिये यह देवालय वनवाया गया था।

और ब्राह्मण आदि को कर नहीं देना पडता है, यहाँ की और यहाँ के अधिकार मे आये हुए ऊरिया आदि ग्रामों की उत्पत्ति की सर्व व्यवस्था उक्त अधिकारी ही करता है, इस के सिवाय–यहाँ पर वहुत से सर्कारी नौकरों, व्यापारियों और दूसरे भी कुछ रहवासियों (रईसो) की वस्ती है, यहाँ का वाजार भी नामी है, वर्त्तमान मे राजपूताना आदि के एजेंट गवर्नर जनरल के निवास का यह मुख्य स्थान है इस लिये यहाँ पर राजपूताना के राजो महाराजो ने भी अपने २ वॅगले वनवा लिये हैं और वहाँ वे लोग प्राय उष्ण ऋतु में हवा खाने के लिये जाकर ठहरते हे, इस के अतिरिक्त उन (राजों महाराजों) के दर्वारी वकील लोग वहाँ रहते हे, अर्वाचीन सुधार के अनुकूल सर्व साधन राज्य की ओर से प्रजा के ऐश आराम के लिये वहाँ उपस्थित किये गये हैं जैसे–म्यूनीसिपालिटी, प्रशस्त मार्ग और रोशनी का सुप्रवन्ध आदि, यूरोपियन लोगों का भोजनालय (होटल), पोष्ट आफिस और सरत का मैदान, इत्यादि इमारतें इस स्थल की शोभारूप हैं।

आवू पर जाने की सुगमता—खरैडी नामक स्टेशन पर उतरने के वाद उस के पास में ही मुर्शिदावादनिवासी श्रीमान् श्रीवुध सिंह जी रायवहादुर दुधेडिया के वनवाये हुए जैन मन्दिर और धर्मशाला हैं, इस लिये यदि आवश्यकता हो तो धर्मशाला में ठहर जाना चाहिये नहीं तो सवारी कर आवू पर चले जाना चाहिये, आवू पर डाक के पहुँचाने के लिये और वहाँ पहुँचाने को सवारी का प्रवध करने के लिये एक भाडेदार रहता है उस के पास तॉगे आदि भाडे पर मिल सकते हैं, आवू पर जाने का मार्ग उत्तम है तथा उस की लम्वाई सत्रह माइल की है, तॉगे मे तीन मनुष्य वैठ सकते हैं और प्रति मनुष्य ४) रुपये भाडा लगता है अर्थात् पूरे तॉगे का किराया १२) रुपये लगते हैं, अन्य सवारी की अपेक्षा तॉगे में जाने से आराम भी रहता है, आवू पर पहुँचने मे ढाई तीन घण्टे लगते हैं, वहाँ भाडेदार (ठेके वाले) का आफिस है और घोडा गाडी का तवेला भी है, आवू पर सव से उत्तम और प्रेक्षणीय (देखने के योग्य) पदार्थ जैन देवालय है, वह भाडेदार के स्थान से डेढ माइल की दूरी पर है, वहाँ तक जाने के लिये वैल की और घोडे की गाडी मिलती है, देलवाडे में देवालय के वाहर यात्रियों के उतरने के लिये स्थान वने हुए हैं, यहाँ पर वनिये की एक दूकान भी है जिस में आटा दाल आदि सव सामान मूल्य से मिल सकता है, देलवाडा से थोडी दूर परमार जाति के गरीव लोग रहते हैं जो कि मजदूरी आदि काम काज करते हे और दही दूध आदि भी वेचते हैं, देवालय के पास एक वावडी है उस का पानी अच्छा है, यहाँ पर भी एक भाडेदार घोडों को रखता है इस लिये कहीं जाने के लिये घोडा भाडे पर मिल सकता है, इस से अचलेश्वर, गोमुख, नखी तालाव और पर्वत के प्रेक्षणीय दूसरे स्थानों पर जाने के लिये तथा सैर करने को जाने के लिये वहुत आराम है, उष्ण ऋतु में आवू पर वडी वहार रहती है इसी लिये वडे लोग प्राय उष्ण ऋतु को वहीं व्यतीत करते हैं॥

इसी रीति से इस के विषय में बहुत सी बातें प्रचलित हैं जिन का वर्णन अनावश्यक समझ कर नहीं करते हैं, खैर—देवालय के बनने का कारण चाहे कोई ही क्यों न हो किन्तु असल में सारांश तो यही है कि—इस देवालय के बनवाने में अनुपमा और सौभ-वती की धर्मबुद्धि ही मुख्य कारणभूत समझनी चाहिये, क्योंकि—निस्सीम धर्मबुद्धि और निष्काम भक्ति के विना ऐसे महत् कार्य का कराना अति कठिन है, देखो! आबू सरीखे दुर्गम मार्ग पर तीन हजार फुट ऊँची संगमरमर पत्थर की ऐसी मनोहर इमा रत का उठवाना क्या असामान्य औदार्य का दर्शक नहीं है! सब ही जानते हैं कि—आबू के पहाड़ में संगमरमर पत्थर की खान नहीं है किन्तु मन्दिर में लगा हुआ सब ही पत्थर आबू के नीचे से करीब पचीस माइल की दूरी से आरीवा की खान में से लाया गया था (यह पत्थर अम्बा भवानी के डूँगर के समीप दक्षर प्रान्त में मिलता है) परन्तु कैसे लाया गया, कौन से मार्ग से लाया गया, लाने के समय क्या २ परिश्रम उठाना पड़ा और कितने द्रव्य का खर्च हुआ, इस की तर्कना करना अति कठिन ही नहीं किन्तु अशक्यवत् प्रतीत होती है, देखो! वर्तमान में तो आबू पर गाड़ी आदि के जाने के लिये एक प्रशस्त मार्ग बना दिया गया है परन्तु पहिले (देवालय के बनने के समय) तो आबू पर चढ़ने का मार्ग अति दुर्गम था अर्थात् पूर्व समय में मार्ग में गहन झाड़ी थी तथा अघोरी जैसी क्रूर जाति का सञ्चार आदि था, भला सोचने की बात है कि—इन सब कठिनाइयों के उपस्थित होने के समय में इस देवालय की स्थापना जिन पुरुषों ने करवाई थी उन में धर्म के दृढ़ निश्चय और उस में स्थिर भक्ति के होने में सन्देह ही क्या है।

वस्तुपाल और तेजपाल ने इस देवालय के अतिरिक्त भी देवालय, प्रतिमा, शिवालय उपाश्रय (उपासरे), विद्याशाला, स्तूप, मस्जिद, कुआ, तालाव, बावड़ी, सदाव्रत और पुस्तकालय की स्थापना आदि अनेक शुभ कार्य किये थे, जिन का वर्णन हम कहाँ तक करें बुद्धिमान् पुरुष ऊपर के ही कुछ वर्णन से उन की धर्मबुद्धि और लक्ष्मीपात्रता का अनुमान कर सकते हैं।

इन (वस्तुपाल और तेजपाल) को उदाहरणरूप में आगे रखने से यह बात भी स्पष्ट मालूम हो सकती है कि—पूर्व काल में इस आर्यावर्त्त देश में बड़े २ परोपकारी धर्मात्मा तथा कुबेर के समान धनाढ्य गृहस्थ जन हो चुके हैं, अहा! ऐसे ही पुरुष रत्नों से यह रत्नगर्भा वसुन्धरा शोभायमान होती है और ऐसे ही नररत्नों की सत्कीर्ति और नाम सदा कायम रहता है, देखो! शुभ कार्यों के करने वाले वे वस्तुपाल और तेज पाल इस संसार से चले जा चुके हैं, उन के गृहस्थान आदि के भी कोई चिह्न इस समय ढूँढने पर भी नहीं मिलते हैं, परन्तु उक्त महोदयों के नामाङ्कित कार्यों से इस भारतभूमि

के इतिहास में उन का नाम सोने के अक्षरों में अङ्कित होकर देदीप्यमान हो रहा है और सदा ऐसा ही रहेगा, बस इन्ही सब बातों को सोच कर मनुष्य को यथाशक्ति शुभ कार्यों को करके उन्हीं के द्वारा अपने नाम को सदा के लिये स्थिर कर इस संसार से प्रयाण करना चाहिये कि–जिस से इस ससार में उस के नाम का स्मरण कर सब लोग उस के गुणों का कीर्त्तन करते रहें और परलोक में उस को अक्षय सुख का लाभ हो ॥

यह पञ्चम अध्याय का पोरवाल वंशोत्पत्तिवर्णन नामक दूसरा प्रकरण समाप्त हुआ ॥

तीसरा प्रकरण–खंडेलवाल जातिवर्णन ॥

खंडेल वाल (सिरावगी) जाति के ८४ गोत्रों के होने का संक्षिप्त इतिहास ॥

श्री महावीर स्वामी के निर्वाण से ६०९ (छः सौ नौ) वर्ष के पश्चात् दिगम्बर मत[1] की उत्पत्ति सहस्रमल्ल साधु से हुई, इस मत में कुमदचन्द्रनामक एक मुनि बड़ा पण्डित हुआ, उस ने सनातन जैन धर्म से चौरासी बोलों का मुख्य फर्क इस मत में डाला, इस के अनन्तर कुछ वर्ष वीतने पर इस मत की नींव का पाया जिनसेनाचार्य से दृढ़ हुआ, जिस का सक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है कि–खडेला नगर में सूर्यवंशी चौहान खडेलगिरि राज्य करता था, उस समय अपराजित मुनि के सिंगाड़े में से जिनसेनाचार्य ५०० (पॉच सौ) मुनियों के परिवार से युक्त विचरते हुए इस (खंडेला) नगर के उद्यान में आकर ठहरे, उक्त नगर की अमलदारी में ८४ गॉव लगते थे, दैववश कुछ दिनों से सम्पूर्ण राजधानी में महामारी और विषूचिका रोग अत्यन्त फैल रहा था

१–यह मत सनातन जैनश्वेताम्बर धर्म मे से ही निकला है, इस मत के आचार्यों तथा साधुओं ने नग्न रहना पसन्द किया था, वर्त्तमान मे इस मत के साधु और साध्वी नहीं हैं अत श्रावकों से ही धर्मोपदेश आदि का काम चलता है, इस मत मे जो ८४ बोलोंका फर्क डाला गया है उन मे मुख्य ये पाँच वाते हैं—१–केवली आहार नहीं करे, २–वस्त्र में केवल ज्ञान नहीं है, ३–स्त्री को मोक्ष नहीं होता है, ४–जैनमत के दिगम्बर आम्नाय के सिवाय दूसरे को मोक्ष नहीं होता है, ५–सव द्रव्यों मे काल द्रव्य मुख्य है, इन बोलों के विषय मे जैनाचार्यों के वनाये हुए सस्कृत मे खण्डन मण्डन के वहुत से ग्रन्थ मौजूद हैं परन्तु केवल भाषा जानने वालों को यदि उक्त विषय देखना हो तो विद्यासागर न्यायरत्न मुनि श्री शान्तिविजय जी का वनाया हुआ मानवधर्मसंहिता नामक ग्रन्थ तथा स्वर्गवासी खरतरगच्छीय मुनि श्री चिदानन्द जी का वनाया हुआ स्याद्वादानुभवरत्नाकर नामक ग्रन्थ (जिस के विषय मे इसी ग्रन्थ के दूसरे अध्याय में हम लिख चुके हैं) देखना चाहिये ॥

कि–जिस से हजारों आदमी मर चुके थे और मर रहे थे, रोग के प्रकोप को देख कर वहाँ का राजा बहुत ही घबड़ा हो गया और अपने गुरु ब्राह्मणों तथा मन्त्रियों को बुलाकर सब से उक्त उपद्रव की शान्ति का उपाय पूछा, राजा के पूछने पर उक्त धर्म गुरुओं ने कहा कि–"हे राजन्! नरमेध यज्ञ को करो, उस के करने से शान्ति होगी" उन के वचन को सुन कर राजा ने शीघ्र ही नरमेध यज्ञ की तैयारी करवाई और यज्ञ में होमने के लिये एक मनुष्य के लाने की आज्ञा दी, संयोगवश राजा के नौकर मनुष्य को ढूँढ़ते हुए श्मशान में पहुँचे, उस समय वहाँ एक दिगम्बर मुनि ध्यान लगाये हुए खड़े थे, बस उन को देखते ही राजा के नौकर उन्हें पकड़ कर यज्ञशाला में ले गये, यज्ञ की विधि कराने वालों ने उस मुनि को स्नान करा के वस्त्राभूषण पहिरा कर राजा के हाथ से तिलक करा कर हाथ में स्रुक्स्रुव दे कर तथा वेद का मन्त्र पढ़ कर हवनकुण्ड में स्वाहा कर दिया, परन्तु ऐसा करने पर भी उपद्रव शान्त न हुआ किन्तु उस दिन से उलटा असंख्यातगुणा क्लेश और उपद्रव होने लगा तथा उक्त रोगों के सिवाय अग्निदाह, अनावृष्टि और प्रचण्ड हवा (आँधी) आदि अनेक कष्टों से प्रजा को अत्यन्त पीड़ा होने लगी और प्रजाजन अत्यन्त व्याकुल होकर राजा के पास जा २ कर अपना २ कष्ट सुनाने लगे, राजा भी उस समय चिन्ता के मारे विह्वल हो कर मूर्छागत (बेहोश) हो गया, मूर्छा के होते ही राजा को स्वप्न आया और स्वप्न में उस ने पूर्वोक्त (दिगम्बर मत के) मुनि को देखा, अब मूर्छा दूर हुई और राजा के नेत्र खुल गये तब राजा पुनः उपद्रवों की शान्ति का विचार करने लगा और थोड़ी देर के पीछे अपने अमीर उमरावों को साथ लेकर वह नगर के बाहर निकला, बाहर आकर उस ने उद्यान में ५०० दिगम्बर मुनिराजों को ध्यानारूढ़ देखा, उन्हें देखते ही राजा के हृदय में विस्मय उत्पन्न हुआ और वह शीघ्र ही उन के चरणों में गिरा और रुदन करता हुआ बोला कि–"हे महाराज! आप कृपा कर मेरे देश में शान्ति करो" राजा के इस विनीत (विनययुक्त) वचन को सुन कर जिनसेनाचार्य बोले कि–"हे राजन्! तू दयाधर्म की वृद्धि कर" राजा बोला कि–"हे महाराज! मेरे देश में यह उपद्रव क्यों हो रहा है" तब दिगम्बराचार्य ने कहा कि–"हे राजन्! तू और तेरी प्रजा मिथ्यात्व से अन्धे हो कर जीवहिंसा करने लगे हैं तथा मांससेवन और मदिरापान कर अनेक पापाचरण किये गये हैं, उन्हीं के कारण तेरे देश भर में महामारी फैली थी और उस के विशेष बढ़ने का हेतु यह है कि–तू ने शान्ति के बहाने से नरमेध यज्ञ में मुनि का होम कर सर्व प्रजा को कष्ट में डाल दिया, बस इसी कारण ये सब दूसरे भी अनेक उपद्रव फैल रहे हैं, तुझे यह भी स्मरण रहे कि–वर्तमान में जो जीवहिंसा से अनेक उपद्रव हो रहे हैं यह तो एक सामान्य बात है, इस की विशेषता तो तुझे भवान्तर (परलोक) में विदित होगी अर्थात् भवान्तर में

तू बहुत दुःख पावेगा, क्योंकि–जीवहिंसा का फल केवल दुर्गति ही है" मुनि के इस वचन को सुन कर राजा ने अपने किये हुए पाप का पश्चात्ताप किया तथा मुनि से सत्य धर्म को पूछा, तब दिगम्बराचार्य बोले कि–"हे राजन्! जहाँ पाप है वहाँ धर्म कहाँ से हो सकता है? देख! जैसा तुझे अपना जीव प्यारा है वैसा ही सब जीवों को भी अपना २ जीव प्यारा है, इस लिये अपने जीव के समान सब के जीव को प्रिय समझना चाहिये, पञ्च महाव्रतरूप यतिधर्म तथा सम्यक्त्वसहित बारह व्रतरूप गृहस्थधर्म ही इस भव और पर भव में सुखदायक है, इस लिये यदि तुझे रुचे तो उस (दयामय जैन धर्म) का अङ्गीकार कर और सुपात्रों तथा दीन दुःखियों को दान दे, सत्य वचन को बोल, परनिन्दा तथा विकथा को छोड़ और जिनराज की द्रव्य तथा भाव से पूजा कर" आचार्य के मुख से इस उपदेश को सुन कर राजा जिनधर्म के मर्म को समझ गया और उस ने शीघ्र ही जिनराज की शान्तिक पूजा करवाई, जिस से शीघ्र ही उपद्रव शान्त हो गया, बस राजा ने उसी समय चौरासी गोत्रों सहित (८३ उमराव और एक आप खुद, इस प्रकार ८४) जैन धर्म का अङ्गीकार किया, ऊपर कहे हुए ८४ गाँवों में से ८२ गाँव राजपूतों के थे और दो गाँव सोनारों के थे, ये ही लोग चौरासी गोत्रवाले सिरावगी कहलाये, यह भी स्मरण रहे कि–इन के गाँवों के नाम से ही इन के गोत्र स्थापित किये गये थे, इन में से राजा का गोत्र साह नियत हुआ था और बाकी के गोत्रों का नाम पृथक् २ रक्खा गया था जिन सब का वर्णन क्रमानुसार निम्नलिखित है:—

संख्या	गोत्र		वंश		गांव		कुलदेवी	
१	साह	गोत्र	चौहान	राजपूत	खँडेलो	गाँव	चक्रेश्वरी	देवी
२	पाटणी	,,	तवर	,,	पाढणी	,,	आमा	,,
३	पापड़ीवाल	,,	चौहान	,,	पापड़ी	,,	चक्रेश्वरी	,,
४	दौसा	,,	राठौड़	,,	दौसा	,,	जमाय	,,
५	सेठी	,,	सोम	,,	सेठाणियो	,,	चक्रेश्वरी	,,
६	भौसा	,,	चौहान	,,	भौसाणी	,,	नादणी	,,
७	गौधा	,,	गौधड़	,,	गौधाणी	,,	मातणी	,,
८	चाँदूवाड़	,,	चँदेला	,,	चंदूवाड़	,,	मातणी	,,
९	मौठ्या	,,	ठीमर	,,	मौठ्या	,,	औरल	,,
१०	अजमेरा	,,	गौड़	,,	अजमेर्यो	,,	नाँदणी	,,
११	दरड़ौद्या	,,	चौहान	,,	दरड़ौद	,,	चक्रेश्वरी	,,
१२	गदइया	,,	चौहान	,,	गदयौ	,,	चक्रेश्वरी	,,

संख्या	गोत्र		वंश		गांव		कुलदेवी	
१३	पाहाड्या	,,	चौहान	,,	पाहाड़ी	,,	चक्रेश्वरी	,,
१४	मूँच	,,	सूर्यवंशी	,,	मूँछड़	,,	आमण	,,
१५	वज	,,	हेम	,,	वजाणी	,,	आमण	,,
१६	वजमहाराया	,,	हेम	,,	वजमासी	,,	मौहणी	,,
१७	राल्का	,,	सोम	,,	रालोली	,,	औरल	,,
१८	पाटोद्या	,,	तँवर	,,	पाटोदी	,,	पद्मावती	,,
१९	गगवाल	,,	कछावा	,,	गगवाणी	,,	जमवाय	,,
२०	पापड़ा	,,	चौहान	,,	पापणी	,,	चक्रेश्वरी	,,
२१	सौनी	,,	सोलंखी	,,	सौहनी	,,	आमण	,,
२२	बिलाला	,,	ठीमर सोम	,,	बिलाला	,,	औरल	,,
२३	बिरलाला	,,	कुरुवंशी	,,	छोटी बिलाली	,,	सौतल	,,
२४	बिन्यायक्या	,,	गहलौत	,,	बिन्यायकी	,,	चेवी	,,
२५	बांकीवाल	,,	मौहिल	,,	बाँकली	,,	जीणी	,,
२६	कासलावाल	,,	मौहिल	,,	कौंसली	,,	जीणी	,,
२७	पापला	,,	सौढा	,,	पापली	,,	आमण	,,
२८	सौगाणी	,,	सूर्यवंशी	,,	सौगाणी	,,	कन्हाड़ी	,,
२९	जाँझड्या	,,	कछावा	,,	जाँझरी	,,	जमवाय	,,
३०	कटार्या	,,	कछावा	,,	कटार्या	,,	जमवाय	,,
३१	वेद	,,	सोरड़ी	,,	वदवासा	,,	आमणी	,,
३२	टौग्या	,,	पँवार	,,	टौगाणी	,,	पावकी	,,
३३	मोहोरा	,,	सौढा	,,	मोहोरी	,,	सौतकी	,,
३४	कला	,,	कुरुवंशी	,,	कुलवाड़ी	,,	सौहणी	,,
३५	छावड़्या	,,	चौहान	,,	छावड़्या	,,	औरल	,,
३६	सौग्या	,,	सूर्यवंशी	,,	कगाणी	,,	आमणी	,,
३७	लुहाड़्या	,,	मौरठ्या	,,	लुहाड़्या	,,	कौसिल	,,
३८	भँडसाली	,,	सोलंखी	,,	भँडसाली	,,	आमणी	,,
३९	दगड़ावत	,,	सोलंखी	,,	दरडोदा	,,	आमणी	,,
४०	चौधरी	,,	तँवर	,,	चौधर्या	,,	पद्मावती	,,
४१	पैटल्या	,,	गहलौत	,,	पैटला	,,	पद्मावती	,,
४२	गिंदोड़्या	,,	सौढा	,,	गिन्दौड़ी	,,	श्रीदेवी	,,

संख्या	गोत्र		वंश		गांव		कुलदेवी	
४३	साखूण्या	,,	सौढा	,,	साखूणी	,,	सिखराय	,,
४४	अनौपड़्या	,,	चँदेला	,,	अनौपड़ी	,,	मातणी	,,
४५	निगौत्या	,,	गौड़	,,	नागौती	,,	नाँदणी	,,
४६	पाँगुल्या	,,	चौहान	,,	पाँगुल्यो	,,	चक्रेश्वरी	,,
४७	भूलाण्या	,,	चौहान	,,	भूलाणी	,,	चक्रेश्वरी	,,
४८	पीतल्या	,,	चौहान	,,	पीतल्यो	,,	चक्रेश्वरी	,,
४९	बनमाली	,,	चौहान	,,	वनमाल	,,	चक्रेश्वरी	,,
५०	अरड़क	,,	चौहान	,,	अरड़क	,,	चक्रेश्वरी	,,
५१	रावत्या	,,	ठीमरसौम	,,	रावत्यौ	,,	औटल	,,
५२	मौदी	,,	ठीमरसौम	,,	मौदहसी	,,	लौरल	,,
५३	कौकणराज्या	,,	कुरुवंशी	,,	कौकणराज्या	,,	सौनल	,,
५४	जुगराज्या	,,	कुरुवंशी	,,	जुगराज्या	,,	सौनल	,,
५५	मूलराज्या	,,	कुरुवशी	,,	मूलराज्या	,,	सौनल	,,
५६	छहड़्या	,,	कुरुवशी	,,	छाहड़्या	,,	सौनल	,,
५७	दुकड़ा	,,	दुजाल	,,	दुकड़ा	,,	हेमा	,,
५८	गौती	,,	दुजाल	,,	गौतड़ा	,,	हेमा	,,
५९	कुलभाण्या	,,	दुजाल	,,	कुलभाणी	,,	हेमा	,,
६०	वौरखंड्या	,,	दुजाल	,,	वौरखंडी	,,	हेमा	,,
६१	सरपत्या	,,	मौहिल	,,	सरपती	,,	जीणदेवी	,,
६२	चिरड़क्या	,,	चौहान	,,	चिरड़की	,,	चक्रेश्वरी	,,
६३	निगर्द्या	,,	गौड़	,,	निरगद	,,	नॉदणी	,,
६४	निरपौल्या	,,	गौड़	,,	निरपाल	,,	नॉदणी	,,
६५	सरवड़्या	,,	गौड़	,,	सरवड़्या	,,	नॉदणी	,,
६६	कड़वड़ा	,,	गौड़	,,	कड़वगरी	,,	नॉदणी	,,
६७	सॉभर्या	,,	चौहान	,,	सॉभर्यो	,,	चक्रेश्वरी	,,
६८	हलद्या	,,	मौहिल	,,	हरलौद	,,	जाणिघयाड़ा	,,
६९	सौमगसा	,,	गहलौत	,,	सौमद	,,	चौथी	,,
७०	वंबा	,,	सौढा	,,	वंवाली	,,	सिखराय	,,
७१	चौवाण्या	,,	चौहान	,,	चौवरत्या	,,	चक्रेश्वरी	,,
७२	राजहंस	,,	सौढा	,,	राजहंस	,,	सिखराय	,,

संख्या	गोत्र		वंश		गांव		कुलदेवी	
७३	भट्टकार्या	,,	सौढा	,,	भट्टकर	,,	सिसण्य	,,
७४	मूसावडया	,,	कुरुवंशी	,,	मसवडया	,,	सोनल	,,
७५	मौलसरा	,,	सौढा	,,	मौलसर	,,	सिखराय	,,
७६	मौंगड़ा	,,	खीमर	,,	मौंगड़	,,	औरख	,,
७७	लोहड़पा	,,	गौरठा	,,	लोहट	,,	लौसलभिया	,,
७८	खेत्रपाल्या	,,	दुसाल	,,	खेत्रपाल्यौ	,,	हेमा	,,
७९	रामभद	,,	साँखला	,,	राजभदरा	,,	सरसती	,,
८०	भुँवाल्या	,,	कछावा	,,	भुँवाल	,,	जमवाय	,,
८१	जलवाण्या	,,	कछावा	,,	जलवाणी	,,	जमवाय	,,
८२	वेदाल्या	,,	ठीमर	,,	बनवौड़ा	,,	औरख	,,
८३	कटीवाल	,,	सौढा	,,	कटवाड़ा	,,	श्रीदेवी	,,
८४	निरपाल्या	,,	सोरठा	,,	निपाणी	,,	भमाणी	,,

यह पञ्चम अध्याय का खंडेलवाल जातिवर्णन नामक तीसरा प्रकरण समाप्त हुआ ॥

चौथा प्रकरण—माहेश्वरी वंशोत्पत्ति वर्णन ॥

माहेश्वरी वंशोत्पत्ति का संक्षिप्त इतिहास ॥

खंडेला नगर में सूर्यवंशी चौहान जाति का राजा खड्गलसेन राज्य करता था, उस के कोई पुत्र नहीं था इस लिये राजा के सहित सम्पूर्ण राजधानी चिन्ता में निमग्न थी, किसी समय राजा ने ब्राह्मणों को अति आदर के साथ अपने यहाँ बुलाया तथा अत्यन्त प्रीति के साथ उन को बहुत सा द्रव्य प्रदान किया, तब ब्राह्मणों ने प्रसन्न होकर राजा को वर दिया कि—"हे राजन्! तेरा मनोवांछित सिद्ध होगा" राजा बोला कि—"हे महाराज! मुझे तो केवल एक पुत्र की वाञ्छा है" तब ब्राह्मणों ने कहा कि—"हे राजन्! तू शिवशक्ति की सेवा कर ऐसा करने से शिव जी के वर और हम लोगों के आशीर्वाद से तेरे बड़ा बुद्धिमान् और बलवान् पुत्र होगा, परन्तु वह सोलह

१—यह माहेश्वरी वैश्यों की उत्पत्ति का इतिहास जाति उन के भाटों के पास जो लिखा हुआ है उसी के अनुसार हम ने लिखा है, यह इतिहास भाटों का बनाया हुआ है अथवा वास्तविक (जो कुछ हुआ था उसी का वर्णनरूप) है, इस बात का विचार लेख को देख कर बुद्धिमान् स्वयं ही कर सकेंगे, हम ने तो उक्त वैश्यों की उत्पत्ति जैसी मानी जाती है इस बात का सब को ज्ञान होने के लिये इस विषय का वर्णन कर दिया है ॥

वर्ष तक उत्तर दिशा को न जावे, सूर्यकुण्ड में स्नान न करे और ब्राह्मणों से द्वेष न करे तो वह साम्राज्य (चक्रवर्त्तिराज्य) का भोग करेगा, अन्यथा (नहीं तो) इसी देह से पुनर्जन्म को प्राप्त हो जावेगा" उन के वचन को सुन कर राजा ने उन्हें वचन दिया (प्रतिज्ञा की) कि–"हे महराज! आप के कथनानुसार वह सोलह वर्ष तक न तो उत्तर दिशा को पैर देगा, न सूर्यकुण्ड में स्नान करेगा और न ब्राह्मणों से द्वेष करेगा" राजा के इस वचन को सुन कर ब्राह्मणों ने पुण्याहवाचन को पढ़ कर आशीर्वाद देकर अक्षत (चावल) दिया और राजा ने उन्हें द्रव्य तथा पृथ्वी देकर धनपूरित करके विदा किया, ब्राह्मण भी अति तुष्ट होकर वर को देते हुए विदा हुए, उन के विदा के समय राजा ने पुनः प्रार्थना कर कहा कि–"हे महाराज! आप का वर मुझे सिद्ध हो" सर्व भूदेव (ब्राह्मण) भी 'तथास्तु' कह कर अपने २ स्थान को गये, राजा के २४ रानियां थीं, उन में से चॉपावती रानी के गर्भाधान होकर राजा के पुत्र उत्पन्न हुआ, पुत्र का जन्म सुनते ही चारों तरफ से वधाइयॉ आने लगीं, नामस्थापन के समय उस का नाम सुजन कुँवर रक्खा गया, बुद्धि के तीक्ष्ण होने से वह बारह वर्ष की अवस्था में ही घोड़े की सवारी और शस्त्रविद्या आदि चौदह विद्याओं को पढ़ कर उन में प्रवीण हो गया, हृदय में भक्ति और श्रद्धा के होने से वह ब्राह्मणों और याचकों को नाना प्रकार के दान और मनोवाछित दक्षिणा आदि देने लगा, उस के सद्व्यवहार को देख कर राजा बहुत प्रसन्न हुआ, किसी समय एक बौद्ध[1] जैन साधु राजकुमार से मिला और उस ने राजकुमार को अहिंसा का उपदेश देकर जैनधर्म का उपदेश दिया इस लिये उस उपदेश के प्रभाव से राजकुमार की बुद्धि शिवमत से हट कर जैन मत में प्रवृत्त हो गई और वह ब्राह्मणों से यज्ञसम्बन्धी हिंसा का वर्णन और उस का खण्डन करने लगा, आखिरकार उस ने अपनी राजधानी की तीनों दिशाओं में फिर कर सब जगह जीवहिंसा को बद कर दिया, केवल एक उत्तर दिशा बाकी रह गई, क्योंकि–उत्तर दिशा में जाने से राजा ने पहिले ही से उसे मना कर रक्खा था, जब राजकुमार ने अपनी राजधानी की तीनों दिशाओं में एकदम जीवहिंसा को बंद कर दिया और नरमेध, अश्वमेध तथा गोमेध आदि सब यज्ञ बद किये गये तब ब्राह्मणों और ऋषिजनों ने उत्तर दिशा में जाकर यज्ञ का करना शुरू किया, जब इस बात की चर्चा राजकुमार के कानों तक पहुँची तब वह बड़ा क्रुद्ध हुआ परन्तु पिता ने उत्तर दिशा में जाने का निषेध कर रक्खा था अतः वह

१–यह बात तो अंग्रेजों ने भी इतिहासों में बतला दी है कि–बौद्ध और जैनधर्म एक नहीं है किन्तु अलग २ है परन्तु अफसोस है कि–इस देश के अन्य मतावलम्बी विद्वान् भी इस बात में भूल खाते हैं अर्थात् वे बौद्ध और जैन धर्म को एक ही मानते है, जब विद्वानों की यह व्यवस्था है तो वेचारे भाट बौद्ध और जैनधर्म को एक लिखें इस मे आश्चर्य ही क्या है ॥

उधर जाने में सङ्कोच करता था, परन्तु भारव्धरेखा तो बड़ी प्रबल होती है, बस उसे ने अपना जोर किया और राजकुमार की उमरावों के सहित बुद्धि पलट गई, फिर क्या था– वे सब शीघ्र ही उत्तर दिशा में चले गये और वहाँ पहुँच कर संयोगवश सूर्यकुण्ड पर ही खड़े हुए, वहाँ इन्हों ने देखा कि–छः ऋषीश्वरों (पाराशर और गौतम आदि) ने यज्ञारम्भ कर कुण्ड, मण्डप, ध्वजा और कलश आदि का स्थापन कर रक्खा है और वे वेदध्वनिसहित यज्ञ कर रहे हैं, इस कार्यवाही को देख, वेदध्वनि का श्रवण कर और यज्ञशाला के मण्डप की रचना को देख कर राजकुमार को बड़ा आश्चर्य हुआ और वह मन में विचारने लगा कि–देखो! मुझ को तो यहाँ आने से राजा ने मना कर दिया और यहाँ पर छिपा कर यज्ञारम्भ कराया है, राजा की यह चतुराई मुझे आज मालूम हुई, यह विचार कर राजकुमार अपने साथ के उमरावों से बोला कि–"ब्राह्मणों को पकड़ लो और सम्पूर्ण यज्ञसामग्री को छीन कर नष्ट कर डालो, राजकुमार का यह वचन ज्यों ही ब्राह्मणों और ऋषियों के कर्णगोचर हुआ त्यों ही उन्हों ने समझा कि राक्षस आन पड़े हैं, बस उन्हों ने तेजी में आकर राजकुमार को न पहिचान कर किन्तु उन्हें राक्षस ही जान कर घोर शाप दे दिया कि–"हे निर्बुद्धियो ! तुम लोग पाषाणवत् जड़ हो जाओ" शाप के देते ही बहत्तर उमराव और एक राजपुत्र घोड़ों के सहित पाषाणवत् जड़बुद्धि हो गये अर्थात् उन की चलने फिरने देखने और बोलने आदि की सब शक्ति मिट गई और वे मोहनिद्रा में निमग्न हो गये, इस बात को जब राजा और नगर के लोगों ने सुना तो शीघ्र ही वहाँ आकर उपस्थित हो गये और उन्हों ने कुमार तथा उमरावों को शाप के कारण पाषाणवत् जड़बुद्धि देखा, बस उन्हें ऐसी दशा में देख कर राजा का अन्तःकरण विह्वल हो गया और उस ने उसी दुःख से अपने प्राणों को तज दिया, उस समय राजा के साथ में रानियाँ भी आई थीं, जिन में से सोलह रानियाँ तो सती हो गई और शेष रानियाँ ब्राह्मणों और ऋषियों के शरणागत हुई, ऐसा होते ही आस पास के रजवाड़े वालों ने उस का राज्य दबा लिया, तब राजकुमार की स्त्री उन्हीं बहत्तर उमरावों की स्त्रियों को साथ लेकर रुदन करती हुई वहाँ आई और ब्राह्मणों तथा ऋषियों के चरणों में गिर पड़ी, उन के दुःख को देख कर ऋषियों ने शिव जी का अष्टाक्षरी मन्त्र देकर उन्हें एक गुफा बतला दी और यह वर दिया कि–तुम्हारे पति महादेव पार्वती के वर से शुद्धबुद्धि हो जायेंगे, तब तो वे सब स्त्रियाँ वहाँ बैठ कर शिवजी का स्मरण करने लगीं, कुछ काल के पीछे पार्वती जी के सहित शिव जी वहाँ आये, उस समय पार्वती जी ने महादेव जी से पूछा कि–यह क्या व्यवस्था है ! तब शिव जी ने उन के पूर्व इतिहास का वर्णन कर उसे पार्वती जी को सुनाया, जब राजा के कुँवर की रानी और बहत्तर उमरावों की ठकुरानियों को यह मालूम हुआ कि–सचमुच पार्वती जी के

सहित शिव जी पधारे हैं, तब वे सब स्त्रियाँ आ कर पार्वती जी के चरणो का स्पर्श करने लगीं, उन की श्रद्धा को देख कर पार्वती जी ने उन्हें आशीर्वाद दिया कि–"तुम सौभाग्यवती धनवती तथा पुत्रवती हो कर अपने २ पतियों के सुख को देखो और तुम्हारे पति चिरञ्जीव रहें" पार्वती जी के इस वर को सुन कर रानियाँ हाथ जोड़ कर कहने लगीं कि–"हे मात.! आप समझ कर वर देओ, देखो! यहाँ तो हमारे पतियो की यह दशा हो रही है" उन के वचन को सुन कर पार्वती जी ने महादेव जी से प्रार्थना कर कहा कि–"महाराज! इन के शाप का मोचन करो" पार्वती जी की प्रार्थना को सुनते ही शिव जी ने उन सब की मोहनिद्रा को दूर कर उन्हें चैतन्य कर दिया, बस वे सब सुभट जाग पड़े, परन्तु उन्हो ने मोहवश शिव जी को ही घेर लिया तथा सुजन कुँवर पार्वती जी के रूप को देख कर मोहित हो गया, यह जान कर पार्वती जी ने उसे शाप दिया कि–"अरे मँगते! तू माँग खा" बस वह तो जागते ही याचक हो कर माँगने लगा, इस के पीछे वे बहत्तरो उमराव बोले कि–"हे महाराज! हमारे घर में अब राज्य तो रहा नहीं है, अब हम क्या करें? तब शिव जी ने कहा कि–"तुम क्षत्रियत्व तथा शस्त्र को छोड़ कर वैश्य पद का ग्रहण करो" शिव जी के वचन को सब उमरावों ने अङ्गीकृत किया परन्तु हाथों की जड़ता के न मिटने से वे हाथो से शस्त्र का त्याग न कर सके, तब शिव जी ने कहा कि–"तुम सब इस सूर्यकुण्ड में स्नान करो, ऐसा करने से तुम्हारे हाथो की जड़ता मिट कर शस्त्र छूट जावेंगे" निदान ऐसा ही हुआ कि सूर्यकुण्ड में स्नान करते ही उन के हाथों की जड़ता मिट गई और हाथो से शस्त्र छूट गये, तब उन्हो ने तलवार की तो लेखनी, भालों की डडी और ढालो की तराजू बना कर वणिज् पद (वैश्य पद) का ग्रहण किया, जब ब्राह्मणो को यह खबर हुई कि–हमारे दिये हुए शाप का मोचन कर शिव जी ने उन सब को वैश्य बना दिया है, तब तो वे (ब्राह्मण) वहाँ आ कर शिव जी से प्रार्थना कर कहने लगे कि "हे महाराज! इन्हों ने हमारे यज्ञ का विध्वस किया था अत. हम ने इन्हें शाप दिया था, सो आप ने हमारे दिये हुए शाप का तो मोचन कर दिया और इन्हें वर दे दिया, अब कृपया यह बतलाइये कि–हमारा यज्ञ किस प्रकार सम्पूर्ण होगा?" ब्राह्मणो के इस वचन को सुन कर शिव जी ने कहा कि–"अभी तो इन के पास देने के लिये कुछ नहीं है परन्तु जब २ इन के घर में मङ्गलोत्सव होगा तब २ ये तुम को श्रद्धानुकूल यथाशक्य द्रव्य देते रहेंगे, इस लिये अब तुम भी इन को धर्म में चलाने की इच्छा करो" इस प्रकार वर दे कर इधर तो शिव जी अपने लोक को सिधारे, उधर वे बहत्तर उमराव छःवों ऋषियो के चरणो में गिर पड़े और शिष्य बनने के लिये उन से प्रार्थना करने लगे, उन की प्रार्थना

को सुन कर ऋषियों ने भी उन की बात को स्वीकृत किया, इस लिये एक एक ऋषि के बारह २ शिष्य हो गये, बस वे ही अब यजमान कहलाते हैं।

कुछ दिन पीछे वे सब खंडेला को छोड़ कर डीडवाणा में आ बसे और चूँकि वे बहत्तर खाँपों के उमराव थे इस लिये वे बहत्तर खाँप के डीडू महेश्वरी कहलाने लगे, क्रमान्तर में (कुछ काल के पीछे) इन्हीं बहत्तर खाँपों की वृद्धि (बढ़ती) हो गई अर्थात् वे अनेक मुल्कों में फैल गये, वर्तमान में इन की सब खाँपें करीब ७५० हैं, यद्यपि उन सब खाँपों के नाम हमारे पास विद्यमान (मौजूद) हैं तथापि विस्तार के भय से उन्हें यहाँ नहीं लिखते हैं।

महेश्वरी वैश्यों में भी यद्यपि बड़े २ श्रीमान् हैं परन्तु शोक का विषय है कि–विद्या इन लोगों में भी बहुत कम देखी जाती है, विशेष कर मारवाड़ में तो हमारे ओसवाल बन्धु और महेश्वरी बहुत ही कम विद्वान् देखने में आते हैं, विद्या के न होने से इन का धन भी व्यर्थ कामों में बहुत उठता है परन्तु विद्यावृद्धि आदि शुभ कार्यों में ये लोग कुछ भी खर्च नहीं करते हैं, इस लिये हम अपने मारवाड़निवासी महेश्वरी सज्जनों से भी प्रार्थना करते हैं कि–प्रथम तो–उन को विद्या की वृद्धि करने के लिये कुछ न कुछ अवश्य प्रबन्ध करना चाहिये, दूसरे–अपने पूर्वजों (बड़ेरों वा पुरुषाओं) के व्यवहार की तरफ ध्यान देकर औसर और विवाह आदि में व्यर्थव्यय (फिजूलखर्ची) को बन्द कर देना चाहिये, तीसरे–कन्याविक्रय, बालविवाह, वृद्धविवाह तथा विवाह में गालियों का गाना आदि कुरीतियों को बिलकुल उठा देना चाहिये, चौथे–परिणाम में क्लेश देने वाले तथा निन्दनीय व्यापारों को छोड़ कर शुभ वाणिज्य तथा कला कौशल के प्रचार की ओर ध्यान देना चाहिये कि जिस से उन की लक्ष्मी की वृद्धि हो और देश की भी हितसिद्धि हो, पाँचवें–सांसारिक पदार्थ और उन की तृष्णा को बन्धन का हेतु जान कर उन में अतिशय आसक्ति का परित्याग करना चाहिये, छठे–द्रव्य को सांसारिक तथा पारलौकिक सुख के साधन में हेतुभूत जान कर उस का उचित रीति से तथा सन्मार्ग से ही व्यय करना चाहिये, बस आशा है कि–हमारी इस प्रार्थना पर ध्यान दे कर इसी के अनुसार बर्ताव कर हमारे महेश्वरी भ्राता सांसारिक सुख को प्राप्त कर पारलौकिक सुख के भी अधिकारी होंगे ॥

यह पञ्चम अध्याय का माहेश्वरी वंशोत्पत्तिवर्णन नामक चौथा प्रकरण समाप्त हुआ ॥

पाँचवाँ प्रकरण—बारह न्यात वर्णन ॥

बारह न्यातों का वर्ताव ॥

बारह न्यातों में जो परस्पर में वर्त्ताव है वह पाठकों को इन नीचे लिखे हुए दो दोहों से अच्छे प्रकार विदित हो सकता है:—

दोहा—खण्ड खँडेला में मिली, सब ही बारह न्यात ॥
खण्ड प्रस्थ नृप के समय, जीम्या दालरु भात ॥ १ ॥
बेटी अपनी जाति में, रोटी शामिल होय ॥
काची पाकी दूध की, भिन्न भाव नहिँ कोय[1] ॥ २ ॥

सम्पूर्ण[2] बारह न्यातों का स्थानसहित[3] विवरण ॥

	नाम न्यात	स्थान से	संख्या	नाम न्यात	स्थान से
	श्रीमाल	भीनमाल से	७	खडेलवाल	खडेला से
२	ओसवाल	ओसियाँ से	८	महेश्वरी डीडू	डीडवाणा से
३	मेड़तवाल	मेडता से	९	पौकरा	पौकर जी से
४	जायलवाल	जायल से	१०	टींटोड़ा	टीटोड़गढ़ से
५	बघेरवाल	बघेरा से	११	कठाड़ा	खाटू गढ़ से
६	पल्लीवाल	पाली से	१२	राजपुरा	राजपुर से

मध्यप्रदेश (मालवा) की समस्त बारह न्यातें ॥

संख्या	नाम न्यात	संख्या	नाम न्यात	संख्या	नाम न्यात	संख्या	नाम न्यात
१	श्री श्रीमाल	४	ओसवाल	७	पल्लीवाल	१०	महेश्वरी डीडू
२	श्रीमाल	५	खँडेलवाल	८	पोरवाल	११	हूमड़
३	अग्रवाल	६	बघेरवाल	९	जेसवाल	१२	चौरडियाँ

१—इन दोहों का अर्थ सुगम ही है, इस लिये नहीं लिखा है ॥

२—सब से प्रथम समस्त बारह न्यातें खँडेला नगर में एकत्रित हुई थीं, उस समय जिन २ नगरो से जो २ वैश्य आये थे वह सब विषय कोष्ठ में लिख दिया गया है, इस कोष्ठ के आगे के दो कोष्ठों में देशप्रथा के अनुसार बारह न्यातों का निदर्शन किया गया है अर्थात् जहाँ अग्रवाल नहीं आये वहाँ चित्रवाल शामिल गिने गये, इस प्रकार पीछे से जैसा २ मौका जिस २ देशवालों ने देखा वैसा ही वे करते गये, इस में असली तात्पर्य उन का यही था कि—सब वैश्यों में एकता रहे और उन्नति होती रहे किन्तु केवल पेट को भर २ कर चले जाने का उन का तात्पर्य नहीं था ॥

३—'स्थान सहित, अर्थात् जिन २ स्थानों से आ २ कर वे सब एकत्रित हुए थे (देखो संख्या २ का नोट) ॥

४—इन में श्री श्रीमाल हस्तिनापुर से, अग्रवाल अगरोहा से, पोरवाल पारेवा से, जेसवाल जैसलगढ से, हूमड सादवाडा से तथा चौरंडिया चावडिया से आये थे, शेप का स्थान प्रथम लिख ही चुके हैं ॥

गौढवाड, गुजरात तथा काठियावाड़ की समस्त बारह न्यातें ॥

संख्या	नाम न्यात	संख्या	नाम न्यात	संख्या	नाम न्यात	संख्या	नाम न्यात
१	श्रीमाल	४	चित्रवाल	७	पोरवाल	१०	महेश्वरी
२	श्रीश्रीमाल	५	पल्लीवाल	८	खँडेलवाल	११	ठंठवाल
३	ओसवाल	६	बघेरवाल	९	मेड़तवाल	१२	हरसौरे

यह पञ्चम अध्याय का बारह न्यातवर्णन नामक पाँचवाँ प्रकरण समाप्त हुआ ॥

छठा प्रकरण—चौरासी न्यातवर्णन ॥

चौरासी न्यातों तथा उन के स्थानों के नामों का विवरण ॥

संख्या	नाम न्यात	स्थान से	संख्या	नाम न्यात	स्थान से
१	श्रीमाल	भीनमाल से	१४	ककस्तन	नाककुँडा से
२	श्रीश्रीमाल	हस्तिनापुर से	१५	कपोला	नगरकोट से
३	श्रीसम्म	श्रीनगर से	१६	कोंकरिया	करौली से
४	श्रीगुरु	मामूना डौकाह से	१७	सरवा	सेरवा से
५	श्रीगौड़	सिद्धपुर से	१८	खडायता	खँडवा से
६	अगरवाल	अगरोहा से	१९	खेमवाल	खेमानगर से
७	अजमेरा	अजमेर से	२०	खँडेलवाल	खँडेलानगर से
८	अजोधिया	अयोध्या से	२१	गँगराड़ा	गँगराड़ से
९	अडालिया	आडणपुर से	२२	गाहिलवाल	गौहिलगढ़ से
१०	अनकथवाल	आँबेर आमानगर से	२३	गौलवाल	गोलगढ़ से
११	ओसवाल	ओसियाँ नगर से	२४	गोगवार	गोगा से
१२	कठाड़ा	खाटू से	२५	गौंदोड़िया	गौंदोड़ देवगढ़ से
१३	कलमेरा	कलमेर से	२६	चकौड़	रणथम्भकावा गढ मल्हारी से

१–इन में से चित्रवाल चित्तोडगढ़ से खँडवाल ... से तथा हरसौरा हरसौर से आये थे (इन का स्थान प्रथम लिख ही चुके हैं)॥

२–स्थानों के अर्थात् जिन २ स्थानों से आ २ कर एकत्रित हुए थे उन २ स्थानों के ॥

संख्या	नाम न्यात	स्थान से	संख्या	नाम न्यात	स्थान से
२७	चतुरथ	चरणपुर से	५६	वदनौरा	वदनौर से
२८	चीतौड़ा	चित्तौडगढ़ से	५७	वरमाका	ब्रह्मपुर से
२९	चोरडिया	चावडिया से	५८	विदियादा	विदियाद से
३०	जायलवाल	जावल से	५९	वैगार	विलाम पुरी से
३१	जालोरा	सौवनगढ़ जालौर से	६०	भवनगे	भावनगर से
३२	जैसवाल	जैसलगढ़ से	६१	भूँगडवार	भूरपुर से
३३	जम्बूसरा	जम्बू नगर से	६२	महेश्वरी	डीडवाणे से
३४	टाँटौड़ा	टाँटौड़ से	६३	मेडतवाल	मेडता से
३५	टटौरिया	टंटेरा नगर से	६४	माथुरिया	मथुरा से
३६	ढूंसर	ढाकलपुर से	६५	मौड	सिद्धपुर पाटन से
३७	दसौरा	दसौर से	६६	माडलिया	माँडलगढ़ से
३८	धवलकौष्टी	धौलपुर से	६७	राजपुरा	राजपुर से
३९	धाकड	धाकगढ़ से	६८	राजिया	राजगढ़ से
४०	नारनगरेसा	नराणपुर से	६९	लवेचू	लावा नगर से
४१	नागर	नागरचाल से	७०	लाड	लाँवागढ़ से
४२	नेमा	हरिश्चन्द्र पुरी से	७१	हरसौरा	हरसौर से
४३	नरसिंघपुरा	नरसिंघपुर से	७२	हूमड़	सादवाड़ा से
४४	नवाँभरा	नवसरपुर से	७३	हलद	हलदा नगर से
४५	नागिन्द्रा	नागिन्द्र नगर से	७४	हाकरिया	हाकगढ नलवर से
४६	नाथचल्ला	सिरोही से	७५	साँभरा	साँभर से
४७	नाछेला	नाडोलाइ से	७६	सडोइया	हिंगलादगढ़ से
४८	नौटिया	नौसलगढ़ से	७७	सरेडवाल	सादड़ी से
४९	पल्लीवाल	पाली से	७८	सौरठवाल	गिरनार से
५०	परवार	पारा नगर से	७९	सेतवाल	सीतपुर से
५१	पञ्चम	पञ्चम नगर से	८०	सौहितवाल	सौहित से
५२	पौकरा	पोकरजी से	८१	सुरन्द्रा	सुरन्द्रपुर अवन्ती से
५३	पौरवार	पारेवा से	८२	सौनैया	सौनगढ़ से
५४	पौसरा	पौसर नगर से	८३	सौरडिया	शिवगिराणा से
५५	वघेरवाल	वघेरा से	८४	....	....

गुजरात देश की चौरासी न्यातों का विवरण ॥

संख्या	नाम न्यात	संख्या	नाम न्यात	संख्या	नाम न्यात	संख्या	नाम न्यात
१	श्रीमाळी	२२	गूजरवाल	४३	दसारा	६४	माड
२	श्रीश्रीमाल	२३	गोयलवाल	४४	दोहलवाल	६५	मेड़वाड़ा
३	अगरवाल	२४	नफाक	४५	पदमौरा	६६	मीहीरिया
४	अनेरवाल	२५	नरसिंघपुरा	४६	पलेवाल	६७	मैंगौरा
५	आडवरसी	२६	नागर	४७	पुष्करवाल	६८	मैंडाहुल
६	आरचितवाल	२७	मागेन्द्रा	४८	पद्ममवाल	६९	मौठ
७	औरवाल	२८	नाथौरा	४९	भटीवरा	७०	मौंडलिया
८	औसवाल	२९	चीतौड़ा	५०	भरूरी	७१	मेडौरा
९	अंडौरा	३०	चित्रवाल	५१	बाईस	७२	लाड
१०	कठेरवाल	३१	सारौला	५२	बामीया	७३	लाडीसाका
११	कपोल	३२	जीरणवाल	५३	बाथरवाल	७४	ङिंगायत
१२	करबेरा	३३	जेल्वाल	५४	बामणवाल	७५	वाचड़ा
१३	काकलिया	३४	जेमा	५५	बाल्मीवाल	७६	सखी
१४	काजोटीवाल	३५	जम्बू	५६	बाहौरा	७७	सुरखाल
१५	कौरटवाल	३६	झलियारा	५७	बेड़नौरा	७८	सिरकेरा
१६	कंबोवाल	३७	ठाकरवाल	५८	मागेरवाल	७९	सौनी
१७	सड़ायता	३८	डीडू	५९	मारीवा	८०	सीभवताल
१८	सातरवाल	३९	डीडोरिया	६०	मूँगरवाल	८१	सारविया
१९	सीची	४०	डीसाँवाल	६१	भूँगड़ा	८२	सोहरवाल
२०	खंडेवाल	४१	सेरौड़ा	६२	मामतवाल	८३	साचौरा
२१	गसौरा	४२	सीपौरा	६३	मेड़तवाल	८४	हरसौरा

दक्षिण प्रान्त की चौरासी न्यातों का विवरण ॥

संख्या	नाम न्यात	संख्या	नाम न्यात	संख्या	नाम न्याम	संख्या	नाम न्यात
१	हुमड़	७	धपेरवाल	१३	मेड़तवाल	१९	नाथचला
२	खंडेलवाल	८	बावरिया	१४	पल्लीवाल	२०	सरया
३	पोरवाल	९	गेलवाड़ा	१५	गगेरवाल	२१	सर्वाद्या
४	अमवाल	१०	गोलपुरा	१६	मड़ायते	२२	कटनेरा
५	जेसवाल	११	श्रीमाल	१७	मवभु	२३	काकरिया
६	परवान	१२	भासवाल	१८	धम	२४	कपोला

संख्या	नाम न्यात	संख्या	नाम न्यात	संख्या	नाम न्यात	संख्या	नाम न्यात
२५	हरसौरा	४२	सारेड़वाल	५९	खंडवरत	७६	जनौरा
२६	दसौरा	४३	मॉडलिया	६०	नरसिया	७७	पहासया
२७	नाछेला	४४	अडालिया	६१	भवनगेह	७८	चकौड
२८	टंटोरे	४५	खरिन्द्र	६२	करवस्तन	७९	वहड़ा
२९	हरद	४६	माया	६३	आनदे	८०	घॅवल
३०	जालौरा	४७	अष्टवार	६४	नागोरी	८१	पवारछिया
३१	श्रीगुरु	४८	चतुरथ	६५	टकचाल	८२	बागरौरा
३२	नौटिया	४९	पञ्चम	६६	सरडिया	८३	तरौड़ा
३३	चौरडिया	५०	वपछवार	६७	कमाइया	८४	गींदौडिया
३४	भूँगड़वाल	५१	हाकरिया	६८	पौसरा	८५	पितादी
३५	धाकड़	५२	कॅदोइया	६९	भाकरिया	८६	बघेरवाल
३६	वौगारा	५३	सौनैया	७०	वदवइया	८७	बूढेला
३७	गौगवार	५४	राजिया	७१	नेमा	८८	कटनेरा
३८	लाड	५५	वडेला	७२	अस्तकी	८९	सिंगार
३९	अवकथवाल	५६	मटिया	७३	कारेगराया	९०	नरसिंघपुरा
४०	विदियादी	५७	सेतवार	७४	नराया	९१	महता
४१	ब्रह्माका	५८	चक्कचपा	७५	मौड़मॉडलिया		

एतद्देशीय समस्त वैश्य जाति की पूर्वकालीन सहानुभूति का दिग्दर्शन ॥

विद्वानों को विदित हो होगा कि—पूर्व काल में इस आर्यावर्त्त देश में प्रत्येक नगर और प्रत्येक ग्राम में जातीय पञ्चायतें तथा ग्रामवासियों के शासन और पालन आदि विचार सम्बंधी उन के प्रतिनिधियों की व्यवस्थापक सभायें थीं, जिन के सत्प्रबन्ध (अच्छे इन्तिजाम) से किसी का कोई भी अनुचित वर्त्ताव नहीं हो सकता था, इसी कारण उस समय यह आर्यावर्त सर्वथा आनन्द मङ्गल के शिखर पर पहुँचा हुआ था।

प्रसगवशात् यहा पर एक ऐतिहासिक वृत्तान्त का कथन करना आवश्यक समझ कर पाठकों की सेवा में उपस्थित किया जाता है,आशा है कि—उस का अवलोकन कर प्राचीन प्रथा से विज्ञ होकर पाठकगण अपने हृदयस्थल में पूर्वकालीन सद्विचारों और सद्वर्त्तावों को स्थान देंगे, देखिये—पद्मावती नगरी में एक धनाढ्य पोरवाल ने पुत्रजन्ममहोत्सव में अपने अनेक मित्रों से सम्मति ले कर एक वैश्यमहासभा को स्थापित करने का विचार

कर जगह २ निमन्त्रण भेजा, निमन्त्रण को पाकर यथासमय पर बहुत दूर २ नगरों
प्रतिनिधि आ गये और सभाकर्त्ता पोरवाल ने उन का भोजनादि से अत्यन्त सम्मान कि
सभा सर्व मतानुसार उक्त सभा में यह ठहराव पास किया गया कि—जो कोई लानद
धनाढ्य वैश्य इस सभा का उत्सव करेगा उस को इस सभा के सभासदों (मेम्बरों)
प्रविष्ट (भरती) किया जावेगा ।

१—पाठकगणों को उक्त लेख को पढ़ कर विस्मित (आश्चर्य से युक्त) नहीं होना चाहिये और य
विचार करना चाहिये कि—पूर्व समय में सभायें कम होती थीं सभाओं की प्रथा (रिवाज) तो था
समय पूर्व से प्रचलित हुई है, इत्यादि क्योंकि सभाओं का प्रचार आधुनिक (थोड़े समय पूर्व का) न
किन्तु प्राचीन ही है, हां यह बात सत्य है कि—कुछ काल तक सभाओं की प्रथा बन्द रह चुकी है त
थोड़े समय से इस का पुनः प्रचार हुआ है इसी लिये प्राचीन काल में इस प्रथा के प्रचलित होने में
पाठकों को विस्मय (आश्चर्य) उत्पन्न हो सकता है परन्तु वास्तव में यह बात नहीं है, क्योंकि—सभाओं
की प्रथा प्राचीन ही है, अर्थात् प्राचीन काल में सभाओं की प्रथा का पूर्ण प्रचार रह चुका है, उक्त विष
का पाठकों को ठीक रीति से निश्चय हो जावे इस लिये हम ता २ नोवेंबर सन् १९ ६ के वेंकटेश्वर समा-
चार पत्र में छपे हुए (इसी आशय के) लेख को यहां पर अविकल (ज्यों का त्यों) प्रकाशित करते हैं,
उस के पढ़ने से पाठकों को अच्छे प्रकार से विदित (मालूम) हो जावेगा कि—प्राचीन काल में कि
प्रकार का प्रबन्ध था तथा सभाओं के द्वारा किस प्रकार से व्यवस्था होती थी देखिये—

"गांवों में पञ्चायत—सन् १८१९ ई में एल्फिनस्टन साहब ने हिन्दुस्थानवासियों के विषय में
लिखा था—

Their village Communities are almost sufficient to protect their members if all other Governments are withdrawn.

अर्थात् हिन्दुस्थानवासियों की गांवों की पञ्चायतें इतनी दृढ़ हैं कि किसी प्रकार की गवर्नमेंट न रहने
पर भी वे अपने अधीनस्थ लोगों की रक्षा करने में समर्थ हैं ।

सन् १८३ ई में सर चार्ल्स मेट्काफ महाशय ने लिखा था:—

The village Communities are little republics having nearly every thing they want within themselves. They seem to last where nothing else lasts Dynasty after dynasty tumbles down revolution succeeds to revolution Hindu, Pathan Moghul Maharatta, Sikh, English are masters in turn but the village Communities remain the same. The union of the village communities each one forming a little separate State in itself has I conceive contributed more than any other cause to the preservation of the people of India through all revolutions and changes which they have suffered and it is in a high degree conducive to their happiness and to the enjoyment of great portion of freedom and independence

इस सभास्थापन के समय में जिस २ नगर के तथा जिस २ जाति के वैश्य प्रतिनिधि आये थे उन का नाम चौरासी न्यातों के वर्णन में लिखा हुआ समझ लेना चाहिये, अर्थात् चौरासी नगरों के प्रतिनिधि यहाँ आये थे, उसी दिन से उन की चौरासी न्यातें भी कहलाती है, पीछे देशप्रथा से उन में अन्य २ भी नाम शामिल होते गये है जो कि पूर्व दो कोष्ठो में लिखे जा चुके है ।

अर्थात् हिन्दुस्थान की गाँवों की पञ्चायतें विना राजा के छोटे २ राज्य है, जिन में लोगों की रक्षा के लिये प्राय सभी वस्तुये है, जहाँ अन्य सभी विषय विगडते दिखाई देते है तहाँ ये पञ्चायतें चिरस्थायी दिखाई पडती है, एक राजवश के पीछे दूसरे राजवश का नाश हो रहा है, राज्य मे एक गडवडी के पीछे दूसरी गडवडी खडी हो रही है, कभी हिन्दू, कभी पठान, कभी मुगल, कभी मरहठा, कभी सिख, कभी अग्रेज, एक के पीछे दूसरे राज्य के अधिकारी वन रहे है किंतु ग्रामों की पञ्चायतें सदैव वनी हुई है, ये ग्रामों की पञ्चायतें जिन मे से हर एक अलग २ छोटी २ रियासत सी मुझे जँच रही हैं सब से वढ कर हिन्दुस्थानवासियों की रक्षा करने वाली हैं, ये ही ग्रामों की पञ्चायतें सभी गडवडियों से राज्येश्वरों के सभी अदल वदलों से देश के तहस नहस होते रहने पर भी प्रजा को सब दुःखों से वचा रही है, इन्हीं गाँवों की पञ्चायतों के स्थिर रहने से प्रजा के सुख स्वच्छन्दता मे वाधा नहीं पड रही है तथा वह स्वाधीनता का सुख भोगने को समर्थ हो रही है ।

अग्रेज ऐतिहासिक एलफिनस्टन साहव और सर चार्ल्स मेट्काफ महाशय ने जिन गाँवों की पञ्चायतों को हिन्दुस्थानवासियों की सब विपदो से रक्षा का कारण जाना था, जिन को उन्हों ने हिन्दुस्थान की प्रजा के सुख और स्वच्छन्दता का एक मात्र कारण निश्चय किया था वे अव कहाँ हैं? सन् १८३० ईस्वी मे भी जो गाँवों की पञ्चायतें हिन्दुस्थानवासियों की लौकिक और पारलौकिक स्थिति मे कुछ भी आँच आने नहीं देती थीं वे अव क्या हो गई? एक उन्हीं पञ्चायतों का नाश हो जाने से ही आज दिन भारतवासियों का सर्वनाश हो रहा है, घोर राष्ट्रविप्लवों के समय मे भी जिन पञ्चायतों ने भारतवासियों के सर्वस्व की रक्षा की थी उन के विना इन दिनों अग्रेजी राज्य मे भारत की राष्ट्रसम्बन्धी सभी अशान्तियों के मिट जाने पर भी हमारी दशा दिन प्रतिदिन वदलती हुई, मरती हुई जाति की घोर शोचनीय दशा वन रही है, सोचने से भी शरीर रोमाञ्चित होता है कि—सन् १८५७ ईस्वी के गदर के पश्चात् जव से स्वर्गीया महाराणी विक्टोरिया ने भारतवर्ष को अपनी रियासत की शान्तिमयी छत्रछाया मे मिला लिया तव से प्रथम २५ वर्षों मे ५० लाख भारतवासी अन्न विना तडफते हुए मृत्युलोक मे पहुँच गये तथा दूसरे २५ वर्षों मे २ करोड साठ लाख भारतवासी भूख के हाहाकार से ससार भर को गुँजा कर अपने जीवित भाइयों को समझा गये कि गाँवों की उन छोटी २ पञ्चायतों के विसर्जन से भारत की दुर्गति कैसी भयानक हुई है, अन्य दुर्गतियों की आलोचना करने से हृदयवालों की वाक्यशक्ति तक हर जाती है ।

गाँवों की वे पञ्चायतें कैसे मिट गई, सो कह कर आज शक्तिमान् पुरुषों का अप्रियभाजन होना नहीं है, वे पञ्चायतें क्या थीं सो भी आज पूरा २ लिखने का सुभीता नहीं है, भारतवासियों को सब विपदों से रक्षा करने वाली वे पञ्चायतें मानो एक एक वडी गृहस्थी थीं, एक गृहस्थी के सब समर्थ लोग जिस प्रकार अपने अधीनस्थ परिवारों के पालन पोषण तथा विपदों से तारने के लिये उद्यम और प्रयत्न करते

उस के बाद उक्त सभा किस २ समय पर तथा कितनी बार एकत्रित हुई और उस के ठहराव किस समय तक नियत रह कर काम में आते रहे, इस बात का पता लगाना यद्यपि अति कठिन बात है तथापि खोज करने पर उस का थोड़ा बहुत पता

रहते हैं वैसे ही एक पञ्चायत के सब समर्थ लोग अपनी अधीनस्थ सब वस्तियों की सब प्रकार रक्षा का उद्यम और प्रयत्न करते थे आज कल के अमेरिका फ्रांस आदि जिन राज्यों के राज्य जिस प्रकार प्रजा की इच्छा के अनुसार कुछ लोगों को अपने में से चुन कर उन्हीं के द्वारा अपने शासन पालन विचार आदि का प्रबंध करा लेते हैं उसी प्रकार ये पञ्चायतें ग्रामवासियों के प्रतिनिधियों की शासन पालन विचार आदि की व्यवस्थापकसभायें थीं राजा चाहे जो कोई क्यों न होता था उसी पञ्चायत से उस को सम्पूर्ण ग्रामवासियों से मालगुजारी आदि मिल जाती थी राज्येश्वर राजा से ग्रामवासियों का और कोई सम्बंध नहीं रहता था पञ्चायत ही की व्यवस्था से सब लोग निज २ कर्तव्यों का पालन करते थे पञ्चायत ही की व्यवस्था से सब के लिये अध्यापकों के पालन का प्रबंध होता था पञ्चायत ही की व्यवस्था से दुर्भिक्ष के लिये अन्न आदि का प्रबंध होता था पञ्चायत ही की व्यवस्था से परस्पर के झगड़ों का निबटेरा होता था पञ्चायत ही की व्यवस्था से दुष्ट दुर्नीतियों का शासन होता था पञ्चायत ही की व्यवस्था से शत्रुओं के आक्रमण की दशा में ग्रामवासियों की रक्षा का प्रबन्ध होता था।

हिन्दू राजाओं के दिनों में गाँवों की ये पञ्चायतें रह रह कर अपने उन प्रबंधों से ग्रामवासियों की रक्षा करती थीं मुसल्मान राजाओं के दिनों में पञ्चायतों की वह रक्षाकारिणी शक्ति शिथिल नहीं होने पाई थी अंग्रेजी अमलदारी की पहिली दशा में भी वह शक्ति सर्वथा टूटने नहीं पाई थी किन्तु अंग्रेजी अमलदारी पुष्ट होने पर गाँवों की पञ्चायतें अपनी सारी शक्ति का सर्कार के चरणों में समर्पण करने को लाचार हो कर महाकाल के महाग्रास में समा गईं, तब से अंग्रेजी सर्कार उन पञ्चायतों के सर्वथा स्थानापन्न हो कर अवश्य ही दुष्ट दुर्नीतियों का यथोचित शासन कर रही है, शत्रुओं के आक्रमण के भय से लोगों को सर्वथा बचा रही है, परस्पर के झगड़ों का निबटेरा भी कर रही है, किन्तु उस से झगड़ों का निबटेरा कराने में प्रायः दोनों झगड़ालुओं का दिवाला निकल रहा है और पञ्चायत की अन्यान्य शक्तियों का जैसा व्यवहार अंग्रेजी सर्कार कर रही है सो तो हमारे सभी देशवासी मन मन में अनुभव कर रहे हैं।

असहायों के लिये अन्न की व्यवस्था अंग्रेजी सर्कार नहीं कर सकती है, दुर्भिक्ष के लिये अन्न की व्यवस्था करा रखना अंग्रेजी सर्कार से हो नहीं सकता है, क्योंकि गाँवों के निवासी अपनी पञ्चायतों के जिस प्रकार सर्वस्व थे उस प्रकार हम भारतवासी अंग्रेजी सर्कार के सर्वस्व नहीं हो सकते अंग्रेजी सर्कार का अपना देश भी है अपने देश की अपनी जातिवाली असहाय प्रजा का पालन भी उस को करना है, उस प्रजा के पालन की व्यवस्था किये रह कर वह हमारी पञ्चायतों की भाँति किसी दशा में भी हमारी रक्षा नहीं कर सकती है इसी से पञ्चायतों के बने रहने के दिनों की भाँति हमारी रक्षा नहीं हो रही है, हमारे जो असंख्य देशवासी भूखों तड़फ २ कर मर चुके हैं उस का एक मात्र कारण हमारी गाँवों की पञ्चायतों की भाँति सर्कार के द्वारा हमारी रक्षा न होना ही है सो यदि हम को जीना है तो दुबारा गाँवों की उन पञ्चायतों का निर्माण करना है वैसी ही शक्तिशाली रक्षाकारिणी पञ्चायतों का निर्माण ग्राम ग्राम में पुनर्वार किया किये बर्गर हमारी रक्षा नहीं होगी" ॥

लगना कुछ असंभव नहीं है, परन्तु अनावश्यक समझ कर उस विषय में हम ने कोई परिश्रम नहीं किया, क्योंकि सभासम्बधी प्रायः वे ही प्रस्ताव हो सकते हैं जिन्हें वर्तमान में भी पाठकगण कुछ २ देखते और सुनते ही होंगे ।

अब विचार करने का स्थल यह है कि–देखो! उस समय न तो रेल थी, न तार था और न वर्त्तमान समय की भाँति मार्गप्रबंध ही था, ऐसे समय में ऐसी बृहत् (बड़ी) सभा के होने में जितना परिश्रम हुआ होगा तथा जितने द्रव्य का व्यय हुआ होगा उस का अनुमान पाठकगण स्वय कर सकते है ।

अब उन के जात्युत्साह की तरफ तो जरा ध्यान दीजिये कि–वह (जात्युत्साह) कैसा हार्दिक और सद्भावगर्भित था कि–वे लोग जातीय सहानुभूतिरूप कल्पवृक्ष के प्रभाव से देशहित के कार्यों को किस प्रकार आनन्द से करते थे और सब लोग उन पुरुषों को किस प्रकार मान्यदृष्टि से देख रहे थे, परन्तु अफसोस है कि–वर्त्तमान में उक्त रीति का बिलकुल ही अभाव हो गया है, वर्त्तमान में सब वैश्यों में परस्पर एकता और सहानुभूति का होना तो दूर रहा किन्तु एक जाति में तथा एक मत वालों में भी एकता नहीं है,[1] इस का कारण केवल आत्माभिमान ही है अर्थात् लोग अपने २ बड़प्पन को चाहते हैं,[2] परन्तु यह तो निश्चय ही है कि–पहिले लघु बने विना बड़प्पन नहीं मिल सकता है, क्योंकि विचार कर देखने से विदित होता है कि लघुता ही मान्य का स्थान तथा सब गुणों का अवलम्बन है,[3] इसी उद्देश्य को हृदयस्थ कर पूर्वज महज्जनों ने

१–एकता और सहानुभूति की बात तो जहाँ तहाँ रही किन्तु यह कितने शोक का विषय है कि–एक जाति और एक मतवालों में भी परस्पर विरोध और मात्सर्य देखा जाता है अर्थात् एक दूसरे के गुणोत्कर्ष को नहीं देख सकते हैं और न वृद्धि का सहन कर सकते हैं ॥

२–किसी विद्वान् ने सत्य ही कहा है कि–सर्वे यत्र प्रवक्तार , सर्वे पण्डितमानिन ॥ सर्वे महत्त्वमिच्छन्ति, तद्वृन्दमवसीदति ॥ १ ॥ अर्थात् जिस समूह में सब ही वक्ता (दूसरों को उपदेश देने वाले) हैं अर्थात् श्रोता कोई भी बनना नहीं चाहता है), सब अपने को पण्डित समझते हैं और सब ही महत्व (बड़प्पन) को चाहते हैं वह (समूह) दु ख को प्राप्त होता है ॥ १ ॥ पाठकगण समझ सकते हैं कि वर्त्तमान मे ठीक यही दशा सब समूहों (सब जातिवालों तथा सब मतवालों) मे हो रही है, तो कहिये सुधार की आशा कहाँ से हो सकती है ? ॥

३–स्मरण रहे कि–अपने को लघु समझना नम्रता का ही एक रूपान्तर है और नम्रता के विना किसी गुण की प्राप्ति हो ही नहीं सकती है, क्योंकि नम्रता ही मनुष्य को सब गुणों की प्राप्ति का पात्र बनाती है, जब मनुष्य नम्रता के द्वारा पात्र बन जाता है तब उस की वह पात्रता सब गुणों को खींच कर उस मे स्थापित कर देती है अर्थात् पात्रता के कारण उस मे सब गुण स्वय ही आ जाते हैं, जैसा कि एक विद्वान् ने कहा है कि–नोदन्वानर्थितामेति, न चाम्भोभिर्न पूर्यते ॥ आत्मा तु पात्रता

लघुता की अति प्रशंसा की है, देखो! अध्यात्मपुरुष श्री चिदानन्दजी महाराज ने लघुता का एक स्तवन (स्तोत्र) बनाया है उस का भावार्थ यह है कि—चन्द्र और सूर्य बड़े हैं इस लिये उन को ग्रहण लगता है परन्तु लघु तारागण को ग्रहण नहीं लगता है संसार में यह कोई भी नहीं कहता है कि—तुम्हारे माथे लागूँ किन्तु सब कोई यही कहता है कि—तुम्हारे पगे लागूँ, इस का हेतु यही है कि—चरण (पैर) दूसरे सब अङ्गों से लघु हैं इस लिये उन को सब नमन करते हैं, पूर्णिमा के चन्द्र को कोई नहीं देखता और न उसे नमन करता है परन्तु द्वितीया के चन्द्र को सब ही देखते और उसे नमन करते हैं क्योंकि वह लघु होता है, कीड़ी एक अति छोटा जन्तु है इस लिये चाहे जैसी रसवती (रसोई) तैयार की गई हो सब से पहिले उस (रसवती) का स्वाद उसी (कीड़ी) को मिलता है किन्तु किसी बड़े जीव को नहीं मिलता है, जब राजा किसी पर कड़ी दृष्टि वाला होता है तब उस के कान और नाक आदि उत्तमाङ्गों को ही कटवाता है किन्तु लघु होने से पैरों को नहीं कटवाता है, यदि बालक किसी के कानों को खींचे, मूँछों को मरोड़ देवे अथवा शिर में भी मार देवे तो भी वह मनुष्य प्रसन्न ही होता है, देखिये! यह चेष्टा कितनी अनुचित है परन्तु लघुतायुक्त बालक की चेष्टा होने से सब ही उस का सहन कर लेते हैं किन्तु किसी बड़े की इस चेष्टा को कोई भी नहीं सह सकता है, यदि कोई बड़ा पुरुष किसी के साथ इस चेष्टा को करे तो कैसा अनर्थ हो जावे, छोटे बालक को अन्तःपुर में जाने से कोई भी नहीं रोकता है यहाँ तक कि—वहाँ पहुँचे हुए बालक को अन्तःपुर की रानियाँ भी स्नेह से खिलाती हैं किन्तु बड़े हो जाने पर उसे अन्तःपुर में कोई नहीं जाने देता है, यदि वह चला जावे तो शिरश्छेद आदि कष्ट को उसे सहना पड़े, जब तक बालक छोटा होता है तब तक सब ही उस की सँभाल रखते हैं अर्थात् माता पिता और भाई आदि सब ही उस की सँभाल और निरीक्षण रखते हैं, उस के बाहर निकल जाने पर सब को थोड़ी ही देर में चिन्ता हो जाती है कि बच्चा अभी तक क्यों नहीं आया परन्तु जब वह बड़ा हो जाता है तब उस की कोई चिन्ता नहीं करता है, इन सब उदाहरणों से सारांश यही निकलता है कि जो कुछ सुख है वह लघुता में ही है, जब हृदय में इस (लघुता) के सद्भाव को स्थान मिल जाता है उस समय सब खराबियों का मूल कारण आत्माभिमान और महत्त्वाकाङ्क्षित

नैव, पात्रमपात्रमित्र समुद्रः ॥ १ ॥ अर्थात् समुद्र कभी (मर्यादावान्) नहीं होता है परन्तु (ऐसा होने से) वह जलों से पूरित न किया जाता हो यह बात नहीं है (जल उस को अवश्य ही पूरित करते हैं) इस से सिद्ध है कि अपने को (नम्रता आदि के द्वारा) पात्र बनाना चाहिये पात्र के पास सम्पत्तियां स्वयं ही आ जाती हैं ॥ १ ॥ इस विषय में यद्यपि हमें बहुत कुछ लिखने की आवश्यकता थी परन्तु ग्रन्थ के विस्तार के भय से यहां पर अब नहीं लिखते हैं ॥

(बड़प्पन की अभिलाषा) आप ही चला जाता है, देखो ! वर्त्तमान में दादाभाई नौरोजी, लाला लाजपतराय और बाल गङ्गाधर तिलक आदि सद्गुणी पुरुषों को जो तमाम आर्यावर्त्त देश मान दे रहा है वह उन की लघुता (नम्रता) से प्राप्त हुए देश-भक्ति आदि गुणों से ही प्राप्त हुआ समझना चाहिये ।

इस विषय में विशेष क्या लिखें—क्योंकि प्राज्ञों (बुद्धिमानों) के लिये थोडा ही लिखना पर्याप्त (काफी) होता है, अन्त में हमारी समस्त वैश्य (महेश्वरी तथा ओस-वाल आदि) सज्जनों से सविनय प्रार्थना है कि—जिस प्रकार आप के पूर्वज लोग एक-त्रित हो कर एक दूसरे के साथ एकता और सहानुभूति का वर्त्ताव कर उन्नति के शिखर पर विराजमान थे उसी प्रकार आप लोग भी अपने देश जाति और कुटुम्ब की उन्नति कीजिये, देखिये! पूर्व समय में रेल आदि साधनों के न होने से अनेक कष्टों का सा-मना करके भी आप के पूर्वज अपने कर्तव्य से नहीं हटते थे इसी लिये उन का प्रभाव सर्वत्र फैल रहा था, जिस के उदाहरणरूप नररत्न वस्तुपाल और तेजपाल के समय में दसे और बीसे, ये दो फिरके हो चुके है ।

प्रिय वाचकवृन्द ! क्या यह थोड़ी सी बात है कि—उस समय एक नगर से दूसरे नगर को जाने में महीनों का समय लगता था और वही व्यवस्था पत्र के जाने में भी थी तो भी वे लोग अपने उद्देश्य को पूरा ही करते थे, इस का कारण यही था कि—वे लोग अपने वचन पर ऐसे दृढ़ थे कि—मुख से कहने के बाद उन की बात पत्थर की लकीर के समान हो जाती थी, अब उस पूर्व दशा को हृदयस्थ कर वर्त्तमान दशा को सुनिये, देखिये! वर्त्तमान में—रेल, तार और पोष्ट आफिस आदि सब साधन विद्यमान है कि—जिन के सुभीते से मनुष्य आठ पहर में कहाँ से कहाँ को पहुँच सकता है कुछ घंटों में एक दूसरे को समाचार पहुँचा सकता है इत्यादि, परन्तु बड़े अफसोस की बात है कि—इतना सुभीता होने पर भी लोग सभा आदि में एकत्रित हो कर एक दूसरे से सहानुभूति को प्रकट कर अपने जात्युत्साह का परिचय नहीं दे सकते है, देखिये! आज जैनश्वेताम्बर कान्फ्रेंस को स्थापित हुए छः वर्ष से भी कुछ अधिक समय हो चुका है इतने समय में भी उस के ठहराव का प्रसार होना तो दूर रहा किन्तु हमारे बहुत से जैनी भाइयो ने तो उस सभा का नाम तक नहीं सुना है तथा अनेक लोगो ने उस का नाम और चर्चा तो सुनी है परन्तु उस के उद्देश्य और मर्म से अद्यापि अनभिज्ञ है, देखिये! जैनसम्बधी समस्त समाचारपत्रसम्पादक यही पुकार रहे है कि—कान्फ्रेंस ने केवल लाखों रुपये इकट्ठे किये है, इस के सिवाय और कुछ भी नही किया है, इसी प्र-कार से विभिन्न लोगों की इस विषय में विभिन्न सम्मतियाँ है, हमें उन की विभिन्न सम्म-तियों में इस समय हस्तक्षेप कर सत्यासत्य का निर्णय नहीं करना है किन्तु हमारा अभीष्ट

तो यह है कि–लोग प्राचीन प्रथा को भूले हुए हैं इस लिये वे सभा आदि में कम एकत्रित होते हैं तथा उन के उद्देश्यों और मर्मों को कम समझते हैं इसी लिये वे उस ओर ध्यान भी बहुत ही कम देते हैं, रहा किसी सभा (कान्फ्रेंस आदि) का विभिन्न सम्मतियों का विषय, सो सभासम्बंधी इस प्रकार की सब बातों का विचार तो बुद्धिमान् और विद्वान् स्वयं ही कर सकते हैं, क्योंकि वे जानते हैं कि–प्रायः सब ही विषयों में सत्यासत्य का मिश्रण होता है, प्रचलित विचारों में बिलकुल सत्य ही विषय हो और नये विचारों में बिलकुल असत्य ही विषय हो ऐसा मान लेना सर्वथा भ्रमास्पद है, क्योंकि उक्त दोनों विचारों में न्यूनाधिक अंश में सत्य रहा करता है।

देखो! बहुत से लोग तो यह कहते हैं कि–जैन श्वेताम्बर कान्फ्रेंस पाँच वर्ष से हो रही है और उस में लाखों रुपये खर्च हो चुके हैं और उस के सम्बंध में अब भी बहुत कुछ खर्च हो रहा है परन्तु कुछ भी परिणाम नहीं निकला, बहुत से लोग यह कहते हैं कि–जैन श्वेताम्बर कान्फ्रेंस के होने से जैन धर्म की बहुत उन्नति हुई है, अब उक्त दोनों विचारों में सत्य का अंश किस विचार में अधिक है इस का निर्णय बुद्धिमान् और विद्वान् जन कर सकते हैं।

यह तो निश्चय ही है कि गणित तथा युक्तियुक्त के विषय के सिवाय दूसरे किसी विषय में निर्विवाद सिद्धान्त स्थापित नहीं हो सकता है, देखो! गणित विषयक सिद्धान्त में यह सर्वमत है कि–पाँच में दो के मिलाने से सात ही होते हैं, पाँच को चार से गुणा करने पर बीस ही होते हैं, यह सिद्धान्त ऐसा है कि इस को उलटने में ब्रह्मा भी असमर्थ है परन्तु इस प्रकार का निश्चित सिद्धान्त राज्यनीति तथा धर्म आदि विवादास्पद विषयों में माननीय हो, यह बात अति कठिन तथा असम्भववत् है, क्योंकि–मनुष्यों की प्रकृतियों में भेद होने से सम्मति में भेद होना एक स्वाभाविक बात है, इसी तत्त्व का विचार कर हमारे शास्त्रकारों ने स्याद्वाद का विषय स्थापित किया है और भिन्न २ नयों के रहस्यों को समझा कर एकान्तवाद का निरसन (खण्डन) किया है, इसी नियम के अनुसार बिना किसी पक्षपात के हम यह कह सकते हैं कि–जैन श्वेताम्बर कान्फ्रेंस को श्रीमान् श्री गुलाबचन्द जी ढड्ढा एम्. ए ने अकथनीय परिश्रम कर प्रथम फलोधी तीर्थ में स्थापित किया था, इस सभा के स्थापित करने से उक्त महोदय का अभीष्ट केवल जात्युन्नति, देशोन्नति, विद्यावृद्धि, एकताप्रचार धर्मवृद्धि, परस्पर सहानुभूति तथा कुरीतिनिवारण आदि ही था, अब यह दूसरी बात है कि–सम्मतियों के विभिन्न होने से सभा के सत्पथ पर किसी प्रकार का अवरोध होने से सभा के उद्देश्य अब तक पूर्ण न हुए हों वा कम हुए हों, परन्तु यह विषय सभा को दोषास्पद बनाने वाला नहीं हो सकता है, पाठकगण समझ सकते हैं कि–सदुद्देश्य

से सभा को स्थापित करने वाला तो सर्वथा ही आदरणीय होता है इस लिये उक्त सच्चे वीर पुत्र को यदि सहस्रों धन्यवाद दिये जावें तो भी कम हैं, परन्तु बुद्धिमान् समझ सकते हैं कि–ऐसे बृहत् कार्य में अकेला पुरुष चाहे वह कैसा ही उत्साही और वीर क्यों न हो क्या कर सकता है? अर्थात् उसे दूसरों का आश्रय ढूँढ़ना ही पड़ता है, बस इसी नियम के अनुसार वह बालिका सभा कतिपय मिथ्याभिमानी पुरुषों को रक्षा के उद्देश्य से सौंपी गई अर्थात् प्रथम कान्फ्रेंस फलोधी में हो कर दूसरी बम्बई में हुई, उस के कार्यवाहक प्राय प्रथम तो गुजराती जन हुए, इस पर भी "काल में अधिक मास" वाली कहावत चरितार्थ हुई अर्थात् उन को कुगुरुओं[1] ने शुद्ध मार्ग से हटा कर विपरीत मार्ग पर चला दिया, इस का परिणाम यह हुआ कि वे अपने नित्य के पाठ करने के भी परमात्मा वीर के इस उपदेश को कि–"मित्ती मे सब्ब भूएसु वेर मज्झ न केण इ" अर्थात् मेरी सर्व भूतों के साथ मैत्री है, किसी के साथ मेरा वैर (शत्रुता) नहीं है, मिथ्याभिमानी और कुगुरुओं के विपरीत मार्ग पर चला देने से भूल गये[2], वा यों कहिये कि–बम्बई में जब दूसरी कान्फ्रेंस हुई उस समय एक वर्ष की बालिका सभा की वर्षगाँठ के महोत्सव पर श्री महावीर स्वामी के उक्त वचन को उन्हों ने एकदम तिलाञ्जलि दे दी[3], यद्यपि ऊपर से तो एकता २ पुकारते रहे परन्तु उन का भीतरी हाल जो कुछ था वा उस का प्रभाव अब तक जो कुछ है उस का लिखना अनावश्यक है, फिर उस का फल तो वही हुआ जो कुछ होना चाहिये था, सत्य है कि–"अवसर चूकी डूमणी, गावे आल पपाल" प्रिय वाचकवृन्द! इस बात को आप जानते ही हैं कि–एक नगर से दूसरे नगर को जाते समय यदि कोई शुद्ध मार्ग को भूल कर उजाड़ जंगल में चला जावे तो वह फिर शुद्ध मार्ग पर तब ही आ सकता है जब कि कोई उसे कुमार्ग से हटा कर शुद्ध मार्ग को दिखला देवे, इसी नियम से हम कह सकते है कि–सभा के कार्यकर्त्ता भी अब सत्पथ पर तब ही आ सकते हैं जब कि कोई उन्हें सत्पथ को दिखला देवे, चूँकि सत्पथ का दिखलाने वाला केवल महज्जनोपदेश (महात्माओं का उपदेश) ही हो सकता है इस लिये यदि सभा के कार्यकर्त्ताओं को जीवनरूपी रगशाला में शुद्ध भाव से कुछ करने की अभिलाषा हो तो उन्हें परमात्मा के उक्त वार्क्य को हृदय में स्थान दे कर

१–शुद्ध मार्ग पर जाते हुए पुरुष को विपरीत मार्ग पर चला देने वाले को ही वास्तव में कुगुरु समझना चाहिये, यह सब ही ग्रन्थों का एक मत है ॥

२–हमारा यह कथन कहाँ तक सत्य है, इस का विचार उक्त सभा के मर्म को जानने वाले बुद्धिमान् ही कर सकते हैं ॥

३–इस विषय को लेख के बढ जाने के कारण यहाँ पर नहीं लिख सकते हैं, फिर किसी समय पाठको की सेवा मे यह विषय उपस्थित किया जावेगा ॥

४–इस कथन के आशय को सूक्ष्म बुद्धि वाले पुरुष ही समझ सकते है किन्तु स्थूल बुद्धि वाले नहीं समझ सकते हैं ॥

अपने भीतरी नेत्र खोलने चाहियें, क्योंकि—जब तक उक्त वाक्य को हृदय में स्थान न दिया जावेगा तब तक उन्नति स्थान को पहुँचाने वाला एकतारूपी शुद्ध मार्ग हमारी समझ में स्वप्न में भी नहीं मिल सकता है, इस लिये कान्फ्रेंस के सभ्यों से तथा सम्पूर्ण आर्यावर्त्तनिवासी वैश्य वर्गों से हमारी सविनय प्रार्थना है कि—"मेरी सब भूतों से मैत्री है, किसी के साथ मेरा वैर नहीं है" इस भगवद्वाक्य को सच्चे भाव से हृदय में अङ्कित करें कि जिस से पूर्ववत् पुनः इस आर्यावर्त्त देश की उन्नति हो कर सर्वत्र पूर्ण आनन्द मङ्गल होने लगे ॥

यह पञ्चम अध्याय का चौरासी न्यातवर्णन नामक छठा प्रकरण समाप्त हुआ ॥

सातवाँ प्रकरण—ऐतिहासिक व पदार्थविज्ञानवर्णन ॥

ऐतिहासिक तथा पदार्थविज्ञान की आवश्यकता ॥

सम्पूर्ण प्रमाणों और महज्जनों के अनुभव से यह बात भली भाँति सिद्ध हो चुकी है कि—मनुष्य के सदाचारी वा दुराचारी बनने में केवल ज्ञान और अज्ञान ही कारण होते हैं अर्थात् अन्तःकरण के सतोगुण के उद्भासक (प्रकाशित करने वाले) तथा तमोगुण के आच्छादक (ढाँकने वाले) यथेष्ट साधनों से ज्ञान की प्राप्ति होने से मनुष्य सदाचारी होता है तथा अन्तःकरण के तमोगुण के उद्भासक और सतोगुण के आच्छादक यथेष्ट साधनों से अज्ञान की प्राप्ति होने से मनुष्य दुराचारी (दुष्ट व्यवहार वाला) हो जाता है।

प्रायः सब ही इस बात को जानते होंगे कि—मनुष्य सुसंगति में पड़ कर सुधर जाता है तथा कुसङ्गति में पड़ कर बिगड़ जाता है, परन्तु कभी किसी ने इस के हेतु का भी विचार किया है कि—ऐसा क्यों होता है? देखिये! इस का हेतु विद्वानों ने इस प्रकार निश्चित किया है—

अन्तःकरण की—मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार, ये चार वृत्तियाँ हैं, इन में से मन का कार्य संकल्प और विकल्प करना है, बुद्धि का कार्य उस में हानि लाभ दिखलाना है, चित्त का कार्य किसी एक कर्त्तव्य का निश्चय करा देना है तथा अहङ्कार का कार्य अहं (मैं) पद का प्रकट करना है।

यह भी स्मरण रहे कि अन्तःकरण सतोगुण, रजोगुण तथा तमोगुण रूप है, अर्थात् ये तीनों गुण उस में समानावस्था में विद्यमान हैं, परन्तु इन (गुणों) में कारणसामग्री को पा कर न्यूनाधिक होने की स्वाभाविक शक्ति है।

जब किसी मनुष्य के अन्तःकरण में किसी कारण से किसी विषय का उद्भास (प्रकाश) होता है तब सब से प्रथम वह मनोवृत्ति के द्वारा संकल्प और विकल्प करता है कि-मुझे यह कार्य करना चाहिये वा नहीं करना चाहिये, इस के पश्चात् बुद्धिवृत्ति के द्वारा उस (कर्त्तव्य वा अकर्तव्य) के हानि लाभ को सोचता है, पीछे चित्तवृत्ति के द्वारा उस (कर्त्तव्य वा अकर्त्तव्य) का निश्चय कर लेता है तथा पीछे अहङ्कारवृत्ति के द्वारा अभिमान प्रकट करता है कि मै इस कार्य का कर्त्ता (करने वाला) वा अकर्त्ता (न करने वाला) हूँ।

यदि यह प्रश्न किया जावे कि-किसी विषय को देख वा सुन कर अन्त करण की चारों वृत्तिया क्यो क्रम से अपना २ कार्य करने लगती है तो इस का उत्तर यह है कि-मनुष्य को स्वकर्मानुकूल मननशक्ति (विचार करने की शक्ति) स्वभाव से ही प्राप्त हुई है, बस इसी लिये प्रत्येक विषय का विज्ञान होते ही उस मननशक्ति के द्वारा चारों वृत्तियाँ क्रम से अपना २ कार्य करने लगती है।

बुद्धिमान् यद्यपि इतने ही लेख से अच्छे प्रकार से समझ गये होंगे कि-मनुष्य सुसङ्गति मे रह कर क्यों सुधर जाता है तथा कुसङ्गति में पड़ कर क्यों बिगड़ जाता है तथापि साधारण जनों के ज्ञानार्थ थोड़ा सा और भी लिखना आवश्यक समझते है, देखिये:—

यह तो सब ही जानते है कि-मनुष्य जब से उत्पन्न होता है तब ही से दूसरो के चरित्रों का अवलम्बन कर (सहारा ले कर) उसे अपनी जीवनयात्रा के पथ (मार्ग) को नियत करना पड़ता है, अर्थात् स्वय (खुद) वह अपने लिये किसी मार्ग को नियत नहीं कर सकता है[1], हॉ यह दूसरी बात है कि-प्रथम किन्ही विशेष चरित्रो (खास

१-देखिये बालक अपने माता पिता आदि के चरित्रों को देख कर प्राय उसी ओर झुक जाते हैं अर्थात् वैसा ही व्यवहार करने लगते हैं, इस से बिलकुल सिद्ध है कि-मनुष्य की जीवनयात्रा का मार्ग सर्वथा दूसरों के निदर्शन से ही नियत होता है, इस के सिवाय पाश्चात्य विद्वानों ने इस बात का प्रत्यक्ष अनुभव भी कर लिया है कि-यदि मनुष्य उत्पन्न होते ही निर्जन स्थान मे रक्खा जावे तो वह बिलकुल मानुषी व्यवहार से रहित तथा पशुवत् चेष्टा वाला हो जाता है, कहते हैं कि-किसी बालक को उत्पन्न होने से कुछ समय के पश्चात् एक भेडिया उठा ले गया और उसे ले जा कर अपने भिटे में रक्खा, उस बालक को भेडिये ने खाया नहीं किन्तु अपने बच्चे के समान उस का भी पालन पोषण करने लगा (कभी २ ऐसा होता है कि-भेडिया छोटे बच्चों को उठा ले जाता है परन्तु उन्हे मारता नहीं है किन्तु उन का अपने बच्चों के समान पालन पोषण करने लगता है, इस प्रकार के कई एक बालक मिल चुके हैं जो कि किसी समय सिकन्दरे आदि के अनाथलयों में भी पोषण पा चुके हैं), बहुत समय के बाद देखा गया कि-वह बालक मनुष्यों की सी भाषा को न बोल कर भेडिये के समान ही घुरघुर शब्द करता था, भेडिये के समान ही चारों पैरों से (हाथ पैरों के सहारे) चलता था, मनुष्य को देख कर भागता वा चोट करता या तथा जीभ से चप २ कर पानी पीता था, तात्पर्य यह है कि-उस के सर्व कार्य भेडिये के समान ही थे, इस से निर्भ्रम सिद्ध है कि-मनुष्य की जीवनयात्रा का पथ बिलकुल ही दूसरों के अवलम्बन पर नियत और निर्भर है अर्थात् जैसा वह दूसरों को करते देखता है वैसा ही स्वय करने लगता है ॥

आचरणों) के द्वारा नियत किये हुए तथा चिरकालसेवित अपने मार्ग पर गमन करता हुआ यह कालान्तर में ज्ञानविशेष के बल से उस मार्ग का परित्याग न करे, परन्तु यह बहुत दूर की बात है।

बस इसी नियम के अनुसार सत्पुरुषों की सङ्गति पा कर अर्थात् सत्पुरुषों के सदाचार को देख वा सुन कर आप भी उसी माग पर मनुष्य जाने लगता है, इसी का नाम सुधरना है, इस के विरुद्ध यह कुत्सित पुरुषों की सङ्गति को पा कर अर्थात् कुत्सित पुरुषों के दुराचार को देख वा सुन कर आप भी उसी माग में जाने लगता है, इसी का नाम विगड़ना है।

उक्त लेख से सब साधारण भी अब अच्छे प्रकार से समझ गये होंगे कि–सुसंगति तथा कुसङ्गति से मनुष्य का सुधार वा विगाड़ क्यों होता है, इस लिये अब इस विषय में लेखविस्तार की कोई आवश्यकता नहीं है।

अब ऊपर के लेख से पाठकगण अच्छे प्रकार से समझ ही गये होंगे कि–मनुष्य के सुधार वा विगाड़ का द्वार केवल दूसरों के सदाचार वा दुराचार के अवलम्बन पर निर्भर है, क्योंकि–दूसरों के व्यवहारों को देख वा सुन कर मनुष्य के अन्तःकरण की चारों वृत्तियें क्रम से अपने भी सदृश (दूसरों के समान) कर्तव्य वा अकर्तव्य के विषय में अपना २ कार्य करने लगती हैं।

हाँ इस विषय में इतनी विशेषता अवश्य है कि–जब दूसरे सत्पुरुषों के सदाचार का अनुकरण करते हुए मनुष्य के अन्तःकरण में सतोगुण का पूरा उद्भास हो जाता है तथा उस के द्वारा उत्कृष्ट (उत्तम) ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है तब उस की वृत्ति कुत्सित पुरुषों के व्यवहार की ओर नहीं झुकती है अर्थात् उस पर कुसङ्ग का प्रभाव नहीं होता है (क्योंकि सतोगुण के प्रकाश के आगे तमोगुण का अन्धकार उच्छिन्नप्राय हो जाता है) इसी प्रकार जब दूसरे कुत्सित पुरुषों के कुत्सिताचार का अनुकरण करते हुए मनुष्य के अन्तःकरण में तमोगुण का पूरा उद्भास हो जाता है तथा उस के द्वारा उत्कृष्ट अज्ञान की प्राप्ति हो जाती है तब उस की वृत्ति सत्पुरुषों के व्यवहार की ओर नहीं झुकती है अर्थात् सत्संग और सदुपदेश का उस पर प्रभाव नहीं होता है (क्योंकि तमोगुण की अधिकता से सतोगुण उच्छिन्नप्राय हो जाता है)।

इस कथन स सिद्ध हो गया कि–प्रारम्भ से ही मनुष्य को दूसरे सत्पुरुषों के सच्चरित्रों के देखने सुनने तथा अनुभव करने की आवश्यकता है कि जिस से यह भी उन के सच्चरित्रों का अनुकरण कर सतोगुण की वृद्धि के द्वारा उत्कृष्ट ज्ञान को प्राप्त हो कर अपने जीवन के वास्तविक लक्ष्य को समझ कर निरन्तर उसी मार्ग पर चला जावे और मनुष्यजन्म के धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूपी चारों फलों को प्राप्त होवे।

इस विषय में यह भी स्मरण रखना चाहिये कि–दूसरे सत्पुरुषों के वार्त्तमानिक (वर्त्तमान काल के) सच्चरित्र मनुष्य पर उतना प्रभाव नहीं डाल सकते है जितना कि भूतकालिक (भूत काल के) डाल सकते है, क्योकि वार्त्तमानिक सच्चरित्रों का फल आगामिकालभावी (भविष्यत् काल में होने वाला) है, इस लिये उस विषय में मनुष्य का आत्मा उतना विश्वस्त नहीं होता है जितना कि भूतकाल के सच्चरित्रो के फल पर विश्वस्त होता है, क्योकि–भूतकाल के सच्चरित्रों का फल उस के प्रत्यक्ष होता है (कि अमुक पुरुष ने ऐसा सच्चरित्र किया इस लिये उसे यह शुभ फल प्राप्त हुआ) इस लिये आवश्यक हुआ कि–मनुष्य को भूतकालिक चरित्र का अनुभव होना चाहिये, इसी भूतकालिक चरित्र को ऐतिहासिक विषय कहते है ।

ऐतिहासिक विषय के दो भेद हैं–ऐतिहासिक वृत्त और ऐतिहासिक घटना, इन में से पूर्व भेद में पूर्वकालिक पुरुषों के जीवनचरित्रों का समावेश होता है तथा दूसरे भेद में पूर्व काल में हुईं सब घटनाओं का समावेश होता है, इस लिये मनुष्य को उक्त दोनों विषयों के ग्रन्थों को अवश्य देखना चाहिये, क्योंकि इन दोनों विषयो के ग्रन्थों के अवलोकन से अनेक प्रकार के लाभ प्राप्त होते है ।

स्मरण रहे कि–जीवन के लक्ष्य के नियत करने के लिये जिस प्रकार मनुष्य को ऐतिहासिक विषय के जानने की आवश्यकता है उसी प्रकार उसे पदार्थविज्ञान की भी आवश्यकता है क्योंकि पदार्थविज्ञान के विना भी मनुष्य अनेक समयों में और अनेक स्थानो में धोखा खा जाता है और धोखे का खाना ही अपने लक्ष्य से चूकना है इसी लिये पूर्वीय विद्वानों ने इन दोनो विषयो का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध माना है, अतः मनुष्य को पदार्थविज्ञान के विषय में भी यथाशक्य अवश्य परिश्रम करना चाहिये ॥

यह पञ्चम अध्याय का ऐतिहासिक व पदार्थविज्ञानवर्णन नामक सातवाँ प्रकरण समाप्त हुआ ॥

आठवाँ प्रकरण—राजनियमवर्णन ॥

राजनियमों के साथ प्रजा का सम्बन्ध ॥

धर्मशास्त्रों का कथन है कि–राजा और प्रजा का सम्बध ठीक पिता और पुत्र के समान है, अर्थात् जिस प्रकार सुयोग्य पिता अपने पुत्र की सर्वथा रक्षा करता है उसी प्रकार राजा का धर्म है कि–वह अपनी प्रजा की रक्षा करे, एव जिस प्रकार सुयोग्य पुत्र अपने पिता के अनेक उपकारों का विचार कर भक्त हो कर सर्वथा उस की आज्ञा का

पालन करता है उसी प्रकार प्रजा का धर्म है कि—वह अपने राजा की आज्ञा को माने अर्थात् राजा के नियत किये हुए नियमों का उल्लङ्घन न कर सर्वदा उन्हीं के अनुसार वर्ताव करे ।

प्राचीन शास्त्रकारों ने राजभक्ति को भी एक अपूर्व गुण माना है, जिस मनुष्य में यह गुण विद्यमान होता है वह अपनी सांसारिक जीवनयात्रा को सुख से व्यतीत कर सकता है ।

राजभक्ति के दो भेद हैं—प्रथम भेद तो यही है जो अभी लिख चुके हैं अर्थात् राजा के नियत किये हुए नियमों के अनुसार वर्ताव करना, दूसरा भेद यह है कि—समयानुसार आवश्यकता पड़ने पर यथाशक्ति तन मन धन से राजा की सहायता करना ।

देखो! इतिहासों से विदित है कि—पूर्व समय में जिन लोगों ने इस सर्वोत्तम गुण राजभक्ति के दोनों भेदों का यथावत् परिपालन किया है उन की सांसारिक जीवनयात्रा किस प्रकार सुख से व्यतीत हो चुकी है और राज्य की ओर से उन्हें इस सद्गुण का परिपालन करने के हेतु कैसे २ उत्तम अधिकार जागीरें तथा उपाधियाँ प्राप्त हो चुकी हैं ।

राजभक्ति का यथोचित पालन न कर यदि कोई पुरुष चाहे कि मैं अपनी जीवन यात्रा को सुख से व्यतीत करूँ तो उस की यह बात ऐसी असम्भव है जैसे कि पश्चिमीय देश को प्राप्त होने की इच्छा से पूर्व दिशा की ओर गमन करना ।

जिस प्रकार एक कुटुम्ब के बाल बच्चे आदि सर्व जन अपने कुटुम्ब के अधिपति की नियत की हुई प्रणाली पर चल कर अपने जीवन को सुखपूर्वक व्यतीत करते हैं तथा उस कुटुम्ब में सर्वदा सुख और शान्ति का निवास बना रहता है ठीक उसी प्रकार राजा के नियत किये हुए नियमों के अनुसार वर्ताव करने से समस्त प्रजाजन अपने जीवन को सुखपूर्वक व्यतीत कर सकते हैं तथा उन में सर्वदा सुख और शान्ति का निवास रह सकता है, इस के विरुद्ध जब प्रजाजन राजनियमों का उल्लङ्घन कर स्वेच्छापूर्वक (अपनी मर्जी के अनुसार अर्थात् मनमाना) वर्ताव करते वा करने लगते हैं तब उन को एक ऐसे कुटुम्ब के समान कि जिस में सब ही किसी एक को प्रधान न मान कर और उस की आज्ञा का अनुसरण न कर स्वतन्त्रतापूर्वक वर्ताव करते हों तथा कोई किसी की आधीनता को न चाहता हो चारों ओर से दुःख और आपत्तियाँ घेर लेती

१—हाँ यह दूसरी बात है कि—राजनियमों में यदि कोई नियम प्रजा के विपरीत हो अर्थात् लौकिक और कर्तव्य में बाधा पहुँचाने वाला हो तो उस के विषय में एकमत हो कर राजा से निवेदन कर उस का संशोधन करवा लेना चाहिये क्योंकि तथा पुत्रवत् प्रजापालक राजा प्रजा के बाधक नियम को कभी नहीं रखते हैं, क्योंकि प्रजा के सुख के लिये ही तो नियमों का संस्थापन किया जाता है ॥

हैं[1] जिस का अन्तिम परिणाम (आखिरी नतीजा) विनाश के सिवाय और कुछ भी नहीं होता है ।

भला सोचने की बात है कि–जिस राज्य में हम सुख और शान्तिपूर्वक निर्भय होकर अपनी जीवन यात्रा को व्यतीत कर रहे हों उस राज्य के नियत किये हुए नियमों का पालन न करना तथा उस में स्वामिभक्ति का न दिखलाना हमारी कृतघ्नता नहीं तो और क्या है[2]

सोचिये तो सही कि–यदि हम सब पर सुयोग्य राज्यशासनपूर्वक क्षत्रच्छाया न हो तो क्या कभी सम्भव है कि–इस ससार में एक दिन भी सुखपूर्वक हम अपना निर्वाह कर सकें[3], कभी नहीं, देखिये! राज्य तथा उस के शासनकर्त्ता जन अपने ऊपर कितनी कठिन से कठिन आपत्तियों का सहन करते है परन्तु अपने अधीनस्थ प्रजाजनों पर तनिक भी ऑच नही आने देते हैं अर्थात् उन आई हुई आपत्तियों का ज़रा भी असर यथाशक्य नहीं पड़ने देते हैं[4], बस इसी लिये प्रजाजन निर्भय हो कर अपने जीवन को व्यतीत किया करते है ।

सारांश यही है कि–राज्यशासन के विना किसी दशा में किसी प्रकार से कभी किसी का सुखपूर्वक निर्वाह होना असम्भव है, जब यह व्यवस्था है तो क्या प्रत्येक पुरुष का

१–यदि इस के उदाहरणों के जानने की इच्छा हो तो इतिहासवेत्ताओं से पूछिये ॥

२–कृतघ्न की कभी शुभ गति नहीं होती है, जैसा कि–धर्मशास्त्र मे कहा है कि–मित्रद्रुह कृतघ्नस्य, स्त्रीघ्नस्य गुरुघातिन ॥ चतुर्णा वयमेतेषा, निष्कृतिं नानुशुश्रुम ॥ १ ॥ अर्थात् मित्र से द्रोह करने वाले, कृतघ्न (उपकार को न मानने वाले), स्त्रीहत्या करने वाले तथा गुरुघाती, इन चारों की निष्कृति (उद्धार वा मोक्ष) को हम ने नहीं सुना है ॥ १ ॥ तात्पर्य यह है कि उक्त चारों पापियों की कभी शुभ गति नहीं होती है ॥

३–यदि राज्यशासनपूर्वक क्षत्रच्छाया न हो तो एक दूसरे का प्राणघातक हो जावे, प्रत्येक पुरुष के सव व्यवहार उच्छिन्न (नष्ट) हो जावें और कोई भी सुखपूर्वक अपना पेट तक न भर पावे, परन्तु जव राज्यशासनपूर्वक क्षत्रच्छाया होती है अर्थात् शस्त्रविद्याविशारद राज्यशासक जव स्वाधीन प्रजा की रक्षा करते हुए सव आपत्तियों को अपने ऊपर झेलते हैं तव साधारण प्रजाजनों को यह भी ज्ञात नहीं होता है कि–किधर क्या हो रहा है अर्थात् सव निर्भय हो कर अपने २ कार्यों में लगे रहते हैं, सत्य है कि–"शस्त्रेण रक्षिते राष्ट्रे, शास्त्रचिन्ता प्रवर्तते" अर्थात् शस्त्र के द्वारा राज्य की रक्षा होने पर शास्त्रचिन्तन आदि सव कार्य होते हैं ॥

४–ऐसी दशा में विचारशील दूरदर्शी जन अपने कर्त्तव्यों का पालन किया करते हें परन्तु अज्ञान जन पैर पसार कर नींद लिया करते हैं ॥

५–राज्यशासन चाहे पञ्चायती हो चाहे आधिराजिक हो किन्तु उस का होना आवश्यक है ॥

यह कर्त्तव्य नहीं है कि—वह सच्ची राजभक्ति को अपने हृदय में स्थान दे कर स्वामिभक्ति का परिचय देता हुआ राज्यनियमों के अनुकूल सर्वदा अपना निर्वाह करे।

वर्तमान समय में हम सब प्रजाजन उस श्रीमती न्यायशीला बृटिश गवर्नमेण्ट के अधिशासन में हैं कि—जिस के न्याय, दया, सौजन्य, परोपकार, विद्योन्नति और सुखप्रचार आदि गुणों का वर्णन करने में जिह्वा और लेखनी दोनों ही असमर्थ हैं, इस लिये ऊपर लिखे अनुसार हम सब का परम कर्त्तव्य है कि—उक्त गवर्नमेंट के सच्चे स्वामिभक्त बन कर उस के नियत किये हुए सब नियमों को जान कर उन्हीं के अनुसार सर्वदा वर्त्ताव करें कि जिस से हम सब की संसारयात्रा सुखपूर्वक व्यतीत हो तथा हम सब पारलौकिक सुख के भी अधिकारी हों।

सब ही जानते हैं कि—सच्ची स्वामिभक्ति को हृदय में स्थान देने का मुख्य हेतु प्रत्येक पुरुष का सद्भाव और उस का आत्मिक सद्विचार ही है, इस लिये इस विषय में हम केवल इस उपदेश के सिवाय और कुछ नहीं लिख सकते हैं कि—ऐसा करना (स्वामिभक्त बनना) सर्व साधारण का परम कर्त्तव्य है।

स्मरण रहे कि—राज्यभक्ति का रखना तथा राज्यनियम के अनुसार वर्त्ताव करना (जो कि ऊपर लिखे अनुसार मनुष्य का परम धर्म है) तब ही बन सकता है जब कि मनुष्य राज्यनियम (कानून) को ठीक रीति से जानता हो, इस लिये मनुष्यमात्र को उचित है कि—वह अपने उक्त कर्त्तव्य का पालन करने के लिये राज्यनियम का विज्ञान ठीक रीति से प्राप्त करे।

यद्यपि राज्यनियम का विषय अत्यन्त गहन है इस लिये सर्व साधारण राज्यनियम के सब अङ्गों को भली भाँति नहीं जान सकते हैं तथापि प्रयत्न करने से इस (राज्यनियम) की मुख्य २ और उपयोगी बातों का परिज्ञान तो सर्व साधारण को भी होना कोई कठिन बात नहीं है, इस लिये उपयोगी और मुख्य २ बातों को तो सर्व साधारण को अवश्य जानना चाहिये।

यद्यपि हमारा विचार इस प्रकरण में राज्यनियम के कुछ आवश्यक विषयों के भी वर्णन करने का था परन्तु ग्रन्थ के विस्तृत हो जाने के कारण उक्त विषय का वर्णन नहीं किया है, उक्त विषय को देखने की इच्छा रखनेवाले पुरुषों को ताजीरातहिन्द अर्थात् हिन्दुस्थान का दण्डसंग्रह नामक ग्रन्थ (जिस का कानून ता० १ जनवरी सन् १८६२ ई० से अब तक जारी है) देखना चाहिये ॥

यह पञ्चम अध्याय का राज्यनियमवर्णन नामक आठवाँ प्रकरण समाप्त हुआ ॥

नवाँ प्रकरण—ज्योतिर्विषयवर्णन ॥

ज्योतिष्शास्त्र का संक्षिप्त वर्णन ॥

ज्योतिःशास्त्र का शब्दार्थ ग्रहों की विद्या है, इस में ग्रहों की गति और उन के परस्पर के सम्बंध को देख कर भविष्य (होने वाली) वार्त्ताओं के जानने के नियमों का वर्णन किया गया है, वास्तव में यह विद्या भी एक दिव्य चक्षुरूप है, क्योंकि-इस विद्या के ज्ञान से आगे होने वाली वातों को मनुष्य अच्छे प्रकार से जान सकता है, इस विद्या के अनुसार जन्मपत्रिकायें भी वनती है जिन से अच्छे वा बुरे कर्मों का फल ठीक रीति से मालूम हो सकता है, परन्तु वात केवल इतनी है कि-जन्मसमय का लग्न ठीक होना चाहिये, वर्त्तमान में अन्य विद्याओं के समान इस विद्या की भी न्यूनता अन्य देशों की अपेक्षा मारवाड़ तथा गोड़वाड आदि विद्याशून्य देशों में अधिक देखी जाती है, तात्पर्य यह है कि-विद्यारहित तथा अपनी २ यजमानी में उदरपूर्त्ति (पेटभराई) करने वाले ज्योतिषी लोगों को यदि कोई देखना चाहे तो उक्त देशों में देख सकता है, इस लेख से पाठकवृन्द यह न समझें कि-उक्त देशों में ज्योतिष् विद्या के जानकर पण्डित बिलकुल नहीं है क्योंकि उक्त देशों में भी मुख्य २ राजधानी तथा नगरों में यतिसम्प्रदायें में तथा ब्राह्मण लोगों में कहीं २ अच्छे २ ज्योतिषी देखे जाते है, परन्तु अधिकतर तो ऊपर लिखे अनुसार ही उक्त देशो में ज्योतिषी देखने में आते है, इसी लिये कहा जाता है कि-उक्त देशों में अन्य विद्याओं के समान इस विद्या की भी अत्यन्त न्यूनता है।

इस विद्या को साधारणतया जानने की इच्छा रखने वालों को उचित है कि-वे प्रथम तिथि, वार, नक्षत्र, योग और कर्ण आदि वातों को कण्ठस्थ कर लेवें, क्योकि-ऐसा करने से उन को इस विद्या में आगे बढ़ने में सुगमता पड़ेगी, इस विद्या का काम प्रत्येक गृहस्थ को प्रायः पड़ता ही रहता है, इस लिये गृहस्थ लोगों को भी उचित है कि-कार्ययोग्य (काम के लायक) इस विद्या को भी अवश्य प्राप्त कर लें कि जिस से वे इस विद्या के द्वारा अपने कार्यों के शुभाशुभ फल को विचार कर उन में प्रवृत्त हो कर सुख का सम्पादन करें ।

१-देखो ! जोधपुर राजधानी में ज्योतिष् विद्या, जैनागम, मन्त्रादि जैनाम्नाय तथा सुभाषितादि विषय के पूर्ण ज्ञाता महोपाध्याय श्री जुहारमल जी गणी वर्त्तमान में ८० वर्ष की अवस्था के अच्छे विद्वान् हैं, इन के पास बहुत से ब्राह्मणों के पुत्र ज्योतिष् विद्या को पढ कर निपुण हुए हैं तथा जोधपुर राज्य में पूर्व समय में ब्राह्मण लोगों मे चण्डू जी नामक अच्छे ज्योतिषी हो चुके हैं, इन्हीं के नाम से एक पञ्चाङ्ग निकलता है जिस का वर्त्तमान में बहुत प्रचार है, इन की सन्तति में भी अच्छे २ विद्वान् तथा ज्योतिषी देखे जाते हैं ॥

आगे चल कर हम ज्योतिष् की कुछ आवश्यक बातों को लिखेंगे उन में सूर्य का उदय और अस्त तथा लग्न को स्पष्ट जानने की रीति, ये दो विषय मुख्यतया गृहस्थों के काम के लिये लिखे जावेंगे, क्योंकि गृहस्थ लोग पुत्रादि के जन्मसमय में साधारण (कुछ पढ़े हुए) ज्योतिषियों के द्वारा जन्मसमय को मलवा कर जन्मकुण्डली बनवाते हैं, इस के पीछे अन्य देश के या उसी देश के किसी विद्वान् ज्योतिषी से जन्मपत्री बनवाते हैं, इस दशा में प्रायः यह देखा जाता है कि बहुत से लोगों की जन्मपत्री का शुभाशुभ फल नहीं मिलता है तब वे लोग जन्मपत्री के बनाने वाले विद्वान् को तथा ज्योतिष् विद्या को दोष देते हैं अर्थात् इस विद्या को असत्य (झूठ) बतलाते हैं, परन्तु विचार कर देखा जावे तो इस विषय में न तो जन्मपत्र के बनाने वाले विद्वान् का दोष है और न ज्योतिष् विद्या का ही दोष है किन्तु दोष केवल जन्मसमय में ठीक लग्न न लेने का है, तात्पर्य यह है कि–यदि जन्मसमय में ठीक रीति से लग्न ले लिया जावे तथा उसी के अनुसार जन्मपत्री बनाई जावे तो उस का शुभाशुभ फल अवश्य मिल सकता है, इस में कोई भी सन्देह नहीं है, परन्तु शोक का विषय तो यह है कि–नाममात्र के ज्योतिषी लोग लग्न बनाने की क्रिया को भी तो ठीक रीति से नहीं जानते हैं फिर उन की बनाई हुई जन्मकुण्डली (टेवे) से शुभाशुभ फल कैसे विदित हो सकता है, इस लिये हम लग्न के बनाने की क्रिया का वर्णन अति सरल रीति से करेंगे ॥

सोलह तिथियों के नाम ॥

संख्या	संस्कृत नाम	हिन्दी नाम	संख्या	संस्कृत नाम	हिन्दी नाम
१	प्रतिपद्	पड़िवा	९	नवमी	नौमी
२	द्वितीया	दूज	१०	दशमी	दसमी
३	तृतीया	तीज	११	एकादशी	ग्यारस
४	चतुर्थी	चौथ	१२	द्वादशी	बारस
५	पञ्चमी	पाँचम	१३	त्रयोदशी	तेरस
६	षष्ठी	छठ	१४	चतुर्दशी	चौदस
७	सप्तमी	सातम	१५	पूर्णिमा वा पूर्णमासी	पूनम वा पूरनमासी
८	अष्टमी	आठम	१६	अमावास्या	अमावस

सूचना—कृष्ण पक्ष (वदि) में पन्द्रहवीं तिथि अमावास्या कहलाती है तथा शुक्ल पक्ष (सुदि) में पन्द्रहवीं तिथि पूर्णिमा वा पूर्णमासी कहलाती है ॥

सात वारों के नाम ॥

संख्या	संस्कृत नाम	हिन्दी नाम	मुसलमानी नाम	अंग्रेज़ी नाम
१	सूर्यवार	इतवार	आइतवार	सन्डे
२	चन्द्रवार	सोमवार	पीर	मन्डे
३	भौमवार	मंगलवार	मगल	ट्यूजडे
४	बुधवार	बुधवार	बुध	वेड्नेस्डे
५	गुरुवार	बृहस्पतिवार	जुमेरात	थर्सडे
६	शुक्रवार	शुक्रवार	जुमा	फ्राइडे
७	शनिवार	शनिश्चर	शनीवार	सटर्डे

सूचना-सूर्यवार को आदित्यवार, सोमवार को चन्द्रवार, बृहस्पतिवार को विहफै तथा शनिवार को शनैश्चर वा शनीचर भी कहते हैं ॥

सत्ताईस नक्षत्रों के नाम ॥

संख्या	नाम	संख्या	नाम	संख्या	नाम	संख्या	नाम
१	अश्विनी	८	पुष्य	१५	स्वाति	२२	श्रवण
२	भरणी	९	आश्लेषा	१६	विशाखा	२३	धनिष्ठा
३	कृत्तिका	१०	मघा	१७	अनुराधा	२४	शतभिषा
४	रोहिणी	११	पूर्वाफाल्गुनी	१८	ज्येष्ठा	२५	पूर्वाभाद्रपद
५	मृगशीर्ष	१२	उत्तराफाल्गुनी	१९	मूल	२६	उत्तराभाद्रपद
६	आर्द्रा	१३	हस्त	२०	पूर्वाषाढ़ा	२७	रेवती
७	पुनर्वसु	१४	चित्रा	२१	उत्तराषाढ़ा		

सत्ताईस योगों के नाम ॥

संख्या	नाम	संख्या	नाम	संख्या	नाम	संख्या	नाम
१	विष्कुम्भ	८	धृति	१५	वज्र	२२	साध्य
२	प्रीति	९	शूल	१६	सिद्धि	२३	शुभ
३	आयुष्मान्	१०	गण्ड	१७	व्यतीपात	२४	शुक्र
४	सौभाग्य	११	वृद्ध	१८	वरीयान	२५	ब्रह्मा
५	शोभन	१२	ध्रुव	१९	परिघ	२६	ऐन्द्र
६	अतिगण्ड	१३	व्याघात	२०	शिव	२७	वैधृति
७	सुकर्मा	१४	हर्षण	२१	सिद्ध		

सात करणों के नाम ॥

१–बव । २–बालव । ३–कौलव । ४–तैतिल । ५–गर । ६–वणिज । और ७–विष्टि ॥

सूचना—तिथि की सम्पूर्ण घड़ियों में दो करण भोगते हैं अर्थात् यदि तिथि साठ घड़ी की हो तो एक करण दिन में तथा दूसरा करण रात्रि में बीतता है, परन्तु शुक्ल पक्ष की पड़िवा की तमाम घड़ियों के दूसरे आध भाग से बव और बालव आदि आते हैं तथा कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी की घड़ियों के दूसरे आधे भाग से सदा स्थिर करण आते हैं, जैसे देखो ! चतुर्दशी के दूसरे भाग में शकुनि, अमावास्या के पहिले भाग में चतुष्पद, दूसरे भाग में नाग और पड़िवा के पहिले भाग में किंस्तुघ्न, ये ही चार स्थिर करण कहलाते हैं ॥

करणों के बीतने का स्पष्ट विवरण ॥

शुक्ल पक्ष (सुदि) के करण ॥			कृष्ण पक्ष (बदि) के करण ॥		
तिथि	प्रथम भाग	द्वितीय भाग	तिथि	प्रथम भाग	द्वितीय भाग
१	किंस्तुघ्न	बव	१	बालव	कौलव
२	बालव	कौलव	२	तैतिल	गर
३	तैतिल	गर	३	वणिज	विष्टि
४	वणिज	विष्टि	४	बव	बालव
५	बव	बालव	५	कौलव	तैतिल
६	कौलव	तैतिल	६	गर	वणिज
७	गर	वणिज	७	विष्टि	बव
८	विष्टि	बव	८	बालव	कौलव
९	बालव	कौलव	९	तैतिल	गर
१०	तैतिल	गर	१०	वणिज	विष्टि
११	वणिज	विष्टि	११	बव	बालव
१२	बव	बालव	१२	कौलव	तैतिल
१३	कौलव	तैतिल	१३	गर	वणिज
१४	गर	वणिज	१४	विष्टि	शकुनि
१५ पूर्णिमा	विष्टि	बव	३० अमावस	चतुष्पद	नाग

शुभ कार्यों में निषिद्ध तिथि आदि का वर्णन ॥

जिस तिथि की वृद्धि हो वह तिथि, जिस तिथि का क्षय हो वह तिथि, परिघ योग

का पहिला आधा भाग, विष्टि, वैधृति, व्यतीपात, कृष्ण पक्ष की त्रयोदशी (तेरस) से प्रतिपद् (पड़िवा) तक चार दिवस, दिन और रात्रि के वारह वजने के समय पूर्व और पीछे के दश पल, माता के ऋतुधर्म सवधी चार दिन, पहिले गोद लिये हुए लड़के वा लड़की के विवाह आदि में उस के जन्मकाल का मास, दिवस और नक्षत्र, जेठ का मास, अधिक मास, क्षय मास, सत्ताईस योगो में विष्कुम्भ योग की पहिली तीन घड़ियॉ, व्याघात योग की पहिली नौ घड़ियाँ, शूल योग की पहिली पाँच घड़ियॉ, वज्र योग की पहिली नौ घड़ियॉ, गण्ड योग की पहिली छ घड़ियॉ, अतिगण्ड योग की पहिली छः घड़ियॉ, चौथा चन्द्रमा, आठवाँ चन्द्रमा, वारहवॉ चन्द्रमा, कालचन्द्र, गुरु तथा शुक्र का अस्त, जन्म तथा मृत्यु का सूतक[1], मनोभङ्ग तथा सिंह राशि का वृहस्पति (सिंहस्थ वर्ष), इन सब तिथि आदि का शुभ कार्य में ग्रहण नहीं करना चाहिये॥

१-**सूतक विचार तथा उस में कर्त्तव्य**-पुत्र का जन्म होने से दश दिन तक, पुत्री का जन्म होने से वारह दिन तक, जिस स्त्री के पुत्र हो उस (स्त्री) के लिये एक मास तक, पुत्र होते ही मर जावे तो एक दिन तक, परदेश मे मृत्यु होने से एक दिन तक, घर मे गाय, भेंस; घोडी और ऊँटिनी के व्याने से एक दिन तक, घर मे इन (गाय आदि) का मरण होने से जव तक इन का मृत शरीर घर से वाहर न निकला जावे तव तक, दास दासी के पुत्र तथा पुत्री आदि का जन्म वा मरण होने से तीन दिन तक तथा गर्भ के गिरने पर जितने महीने का गर्भ गिरे उतने दिनो तक सूतक रहता है।

जिस के गृह मे जन्म वा मरण का सूतक हो वह वारह दिन तक देवपूजा को न करे, उस मे भी मृतकसम्वधी सूतक में घर का मूल स्कध (मूल कॉधिया) दश दिन तक देवपूजा को न करे, इस के सिवाय शेष घर वाले तीन दिन तक देवपूजा को न करें, यदि मृतक को छुआ हो तो चौवीस प्रहर तक प्रतिक्रमण (पडिक्कमण) न करे, यदि सदा का भी अखण्ड नियम हो तो समता भाव रख कर शम्वर-पने मे रहे परन्तु मुख से नवकार मन्त्र का भी उच्चारण न करे, स्थापना जी के हाथ न लगावे, परन्तु यदि मृतक को न छुआ हो तो केवल आठ प्रहर तक प्रतिक्रमण (पडिक्कमण) न करे, भैंस के वच्चा होने पर पन्द्रह दिन के पीछे उस का दूध पीना कल्पता है, गाय के वच्चा होने पर भी पन्द्रह दिन के पीछे ही उस का भी दूध पीना कल्पता है तथा वकरी के वच्चा होने पर उस समय से आठ दिन के पीछे दूध पीना कल्पता है।

ऋतुमती स्त्री चार दिन तक पात्र आदि का स्पर्श न करे, चार दिन तक प्रतिक्रमण न करे तथा पॉच दिन तक देवपूजा न करे, यदि रोगादि किसी कारण से तीन दिन के उपरान्त भी किसी स्त्री के रक्त चलता हुआ दीखे तो उस का विशेष दोष नहीं माना गया है, ऋतु के पश्चात् स्त्री को उचित है कि-शुद्ध विवेक से पवित्र हो कर पॉच दिन के पीछे स्थापना पुस्तक का स्पर्श करे तथा साधु को प्रतिलाभ देवे, ऋतुमती स्त्री जो तपस्या (उपवासादि) करती है वह तो सफल होती ही है परन्तु उसे प्रतिक्रमण आदि का करना योग्य नहीं है (जैसा कि ऊपर लिख चुके है), यह चर्चरी ग्रन्थ मे कहा है, जिस घर में जन्म वा मरण का सूतक हो वहॉ वारह दिन तक साधु आहार तथा पानी को न वहरै (ले), क्योंकि-निशीथ-सूत्र के सोलहवें उद्देश्य में जन्म मरण के सूतक से युक्त घर दुर्गछनीक कहा है ॥

सात करणों के नाम ॥

१—बव । २—बालव । ३—कौलव । ४—तैतिल । ५—गर । ६—वणिज । और ७—विष्टि ॥

सूचना—तिथि की सम्पूर्ण घड़ियों में दो करण भोगते हैं अर्थात् यदि तिथि साठ घड़ी की हो तो एक करण दिन में तथा दूसरा करण रात्रि में बीतता है, परन्तु शुक्ल पक्ष की पड़िवा की तमाम घड़ियों के दूसरे आधे भाग से बव और बालव आदि आते हैं तथा कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी की घड़ियों के दूसरे आधे भाग से सदा स्थिर करण आते हैं, जैसे देखो ! चतुर्दशी के दूसरे भाग में शकुनि, अमावास्या के पहिले भाग में चतुष्पद, दूसरे भाग में नाग और पड़िवा के पहिले भाग में किंस्तुघ्न, ये ही चार स्थिर करण कहलाते हैं ॥

करणों के बीतने का स्पष्ट विवरण ॥

शुक्ल पक्ष (सुदि) के करण ॥			कृष्ण पक्ष (वदि) के करण ॥		
तिथि	प्रथम भाग	द्वितीय भाग	तिथि	प्रथम भाग	द्वितीय भाग
१	किंस्तुघ्न	बव	१	बालव	कौलव
२	बालव	कौलव	२	तैतिल	गर
३	तैतिल	गर	३	वणिज	विष्टि
४	वणिज	विष्टि	४	बव	बालव
५	बव	बालव	५	कौलव	तैतिल
६	कौलव	तैतिल	६	गर	वणिज
७	गर	वणिज	७	विष्टि	बव
८	विष्टि	बव	८	बालव	कौलव
९	बालव	कौलव	९	तैतिल	गर
१०	तैतिल	गर	१०	वणिज	विष्टि
११	वणिज	विष्टि	११	बव	बालव
१२	बव	बालव	१२	कौलव	तैतिल
१३	कौलव	तैतिल	१३	गर	वणिज
१४	गर	वणिज	१४	विष्टि	शकुनि
१५ पूर्णिमा	विष्टि	बव	३० अमावस	चतुष्पद	नाग

शुभ कार्यों में निषिद्ध तिथि आदि का वर्णन ॥

जिस तिथि की वृद्धि हो वह तिथि, जिस तिथि का क्षय हो वह तिथि, परिघ योग

का पहिला आधा भाग, विष्टि, वैधृति, व्यतीपात, कृष्ण पक्ष की त्रयोदशी (तेरस) से प्रतिपद् (पडिवा) तक चार दिवस, दिन और रात्रि के बारह बजने के समय पूर्व और पीछे के दश पल, माता के ऋतुधर्म सबंधी चार दिन, पहिले गोद लिये हुए लड़के वा लड़की के विवाह आदि में उस के जन्मकाल का मास, दिवस और नक्षत्र, जेठ का मास, अधिक मास, क्षय मास, सत्ताईस योगों में विष्कुम्भ योग की पहिली तीन घड़ियाँ, व्याघात योग की पहिली नौ घड़ियाँ, शूल योग की पहिली पाँच घडियाँ, वज्र योग की पहिली नौ घड़ियाँ, गण्ड योग की पहिली छ. घडियाँ, अतिगण्ड योग की पहिली छः घड़ियाँ, चौथा चन्द्रमा, आठवाँ चन्द्रमा, वारहवाँ चन्द्रमा, कालचन्द्र, गुरु तथा शुक्र का अस्त, जन्म तथा मृत्यु का सूतक[1], मनोभङ्ग तथा सिंह राशि का बृहस्पति (सिंहस्थ वर्ष), इन सब तिथि आदि का शुभ कार्य में ग्रहण नहीं करना चाहिये॥

१-**सूतक विचार तथा उस में कर्त्तव्य**-पुत्र का जन्म होने से दश दिन तक, पुत्री का जन्म होने से वारह दिन तक, जिस स्त्री के पुत्र हो उस (स्त्री) के लिये एक मास तक, पुत्र होते ही मर जावे तो एक दिन तक, परदेश मे मृत्यु होने से एक दिन तक, घर मे गाय, भैंस; घोडी और ऊँटिनी के व्याने से एक दिन तक, घर मे इन (गाय आदि) का मरण होने से जब तक इन का मृत शरीर घर से बाहर न निकला जावे तब तक, दास दासी के पुत्र तथा पुत्री आदि का जन्म वा मरण होने से तीन दिन तक तथा गर्भ के गिरने पर जितने महीने का गर्भ गिरे उतने दिनों तक सूतक रहता है ।

जिस के गृह मे जन्म वा मरण का सूतक हो वह वारह दिन तक देवपूजा को न करे, उस मे भी मृतकसम्बधी सूतक मे घर का मूल स्कन्ध (मूल काँधिया) दश दिन तक देवपूजा को न करे, इस के सिवाय शेष घर वाले तीन दिन तक देवपूजा को न करें, यदि मृतक को छुआ हो तो चौवीस प्रहर तक प्रतिक्रमण (पडिक्कमण) न करे, यदि सदा का भी अखण्ड नियम हो तो समता भाव रख कर शम्वर-पने में रहे परन्तु मुख से नवकार मन्त्र का भी उच्चारण न करे, स्थापना जी के हाथ न लगावे, परन्तु यदि मृतक को न छुआ हो तो केवल आठ प्रहर तक प्रतिक्रमण (पडिक्कमण) न करे, भैंस के बच्चा होने पर पन्द्रह दिन के पीछे उस का दूध पीना कल्पता है, गाय के बच्चा होने पर भी पन्द्रह दिन के पीछे ही उस का भी दूध पीना कल्पता है तथा वकरी के बच्चा होने पर उस समय से आठ दिन के पीछे दूध पीना कल्पता है ।

ऋतुमती स्त्री चार दिन तक पात्र आदि का स्पर्श न करे, चार दिन तक प्रतिक्रमण न करे तथा पाँच दिन तक देवपूजा न करे, यदि रोगादि किसी कारण से तीन दिन के उपरान्त भी किसी स्त्री के रक्त चलता हुआ दीखे तो उस का विशेष दोष नहीं माना गया है, ऋतु के पश्चात् स्त्री को उचित है कि-शुद्ध विवेक से पवित्र हो कर पाँच दिन के पीछे स्थापना पुस्तक का स्पर्श करे तथा साधु को प्रतिलाभ देवे, ऋतुमती स्त्री जो तपस्या (उपवासादि) करती है वह तो सफल होती ही है परन्तु उसे प्रतिक्रमण आदि का करना योग्य नहीं है (जैसा कि ऊपर लिख चुके है), यह चर्चरी ग्रन्थ मे कहा है, जिस घर मे जन्म वा मरण का सूतक हो वहाँ वारह दिन तक साधु आहार तथा पानी को न वहरै (ले), क्योंकि-निशीथ-सूत्र के सोलहवें उद्देश्य में जन्म मरण के सूतक से युक्त घर दुर्गंछनीक कहा है ॥

दिन का चौघड़िया ॥

रवि	सोम	मङ्गल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ	शुभ	चल	काल
चल	काल	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ	शुभ
लाभ	शुभ	चल	काल	उद्वेग	अमृत	रोग
अमृत	रोग	लाभ	शुभ	चल	काल	उद्वेग
काल	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ	शुभ	चल
शुभ	चल	काल	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ
रोग	लाभ	शुभ	चल	काल	उद्वेग	अमृत
उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ	शुभ	चल	काल

विज्ञान—ऊपर के कोष्ठ से यह समझना चाहिये कि—जिस दिन जो वार हो उस दिन उसी वार के नीचे लिखा हुआ चौघड़िया सूर्योदय के समय में बैठता है वह पहिला समझना चाहिये, पीछे उस के उतरने के बाद उस वार से छठे वार का चौघड़िया बैठता है वह दूसरा समझना चाहिये, पीछे उस के उतरने के बाद उस (छठे) वार से छठे वार का चौघड़िया बैठता है, यही क्रम आगे भी समझना चाहिये, जैसे देखो! रविवार के दिन पहिला उद्वेग नामक चौघड़िया है उस के उतरने के पीछे रवि से छठे शुक्र का चल नामक चौघड़िया बैठता है, इसी अनुक्रम से प्रत्येक वार के दिन भर का चौघड़िया जान लेना चाहिये, एक चौघड़िया डेढ़ घण्टे तक रहता है अर्थात् सबेरे के छः बजे से ले कर शाम के छः बजे तक बारह घण्टे में आठ चौघड़िये व्यतीत होते हैं, इन में से—अमृत; शुभ; लाभ और चल, ये चार चौघड़िये उत्तम तथा उद्वेग; रोग और काल, ये तीन चौघड़िये निकृष्ट हैं, इस लिये अच्छे चौघड़ियों में शुभ काम को करना चाहिये ॥

रात्रि का चौघड़िया ॥

रवि	सोम	मङ्गल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
शुभ	चल	काल	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ
अमृत	रोग	लाभ	शुभ	चल	काल	उद्वेग
चल	काल	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ	शुभ
रोग	लाभ	शुभ	चल	काल	उद्वेग	अमृत
काल	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ	शुभ	चल
लाभ	शुभ	चल	काल	उद्वेग	अमृत	रोग
उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ	शुभ	चल	काल
शुभ	चल	काल	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ

विज्ञान—इस कोष्ठ में ऊपर से केवल इतना ही अन्तर है कि—एक वार के पहिले चौघड़िये के उतरने के पीछे उस वार से पाँचवें वार का दूसरा चौघड़िया बैठता है, शेष सब विपय ऊपर लिखे अनुसार ही है ॥

छोटी बड़ी पनोती तथा उस के पाये का वर्णन ॥

प्रत्येक मनुष्य को अपनी जन्मराशि से जिस समय चौथा वा आठवां शनि हो उस समय से २॥ वर्ष तक की छोटी पनोती जाननी चाहिये, बारहवाँ शनि बैठे (लगे) तब से लेकर दूसरे शनि के उतरने तक बराबर ७॥ वर्ष की बड़ी पनोती होती है, उस में से बारहवें शनि के होने तक २॥ वर्ष की पनोती मस्तक पर समझनी चाहिये, पहिले शनि के होने तक २॥ वर्ष की पनोती छाती पर जाननी चाहिये तथा दूसरे शनि के होने तक २॥ वर्ष की पनोती पैरों पर जाननी चाहिये ।

जिस दिन पनोती बैठे उस दिन यदि जन्मराशि से पहिला, छठा तथा ग्यारहवॉ चन्द्र हो तो उस पनोती को सोने के पाये जानना चाहिये, यदि दूसरा, पॉचवाँ तथा नवाँ चन्द्र हो तो उस पनोती को रूपे के पाये जावना चाहिये, यदि तीसरा, सातवॉ तथा दशवॉ चन्द्र हो तो उस पनोती को ताँबे के पाये जानना चाहिये तथा यदि चौथा आठवॉ और बारहवाँ चन्द्र हो तो उस पनोती को लोहे के पाये जानना चाहिये ॥

पनोती के फल तथा वर्ष और मास के पाये का वर्णन ॥

यदि पनोती सोने के पाये बैठी हो तो चिन्ता को उत्पन्न करे, यदि पनोती रूपे के पाये बैठी हो तो धन मिले, यदि पनोती ताँबे के पाये बैठी हो तो सुख और सम्पत्ति मिले तथा यदि पनोती लोहे के पाये बैठी हो तो कष्ट प्राप्त हो, इसी प्रकार जिस दिन वर्ष तथा मास बैठे उस दिन जिस राशि का चन्द्र हो उस के द्वारा ऊपर लिखे अनुसार सोने के, रूपे के तथा ताँबे के पाये पर बैठने वाले वर्ष अथवा मास का विचार कर सम्पूर्ण वर्ष का अथवा मास का फल जान लेना चाहिये, जैसे—देखो! कल्पना करो कि—सवत् १९६४ के प्रथम चैत्र शुक्ल पड़िवा के दिन मीन राशि का चन्द्र है वह (चन्द्र) मेषराशि वाले पुरुष को बारहवा होता है इस लिये ऊपर कही हुई रीति से लोहे के पाये पर वर्ष तथा मास बैठा अत उसे कष्ट देने वाला जान लेना चाहिये, इसी रीति से दूसरी राशिवालों के लिये भी समझ लेना चाहिये ॥

चोरी गई अथवा खोई हुई वस्तु की प्राप्ति वा अप्राप्ति का वर्णन ॥

पूर्व दिशा में	दक्षिण दिशा में	पश्चिम दिशा में	उत्तर दिशा में
शीघ्र मिलेगी	तीन दिन में मिलेगी	एक मास में मिलेगी	नहीं मिलेगी
रोहिणी	मृगशीर्ष	आर्द्रा	पुनर्वसु
पुष्य	आश्लेषा	मघा	पूर्वाफाल्गुनी
उत्तरा फाल्गुनी	हस्त	चित्रा	स्वाति
विशाखा	अनुराधा	ज्येष्ठा	मूल
पूर्वाषाढ़ा	उत्तराषाढ़ा	अभिजित्	श्रवण
धनिष्ठा	शतभिषा	पूर्वाभाद्रपद	उत्तराभाद्रपद
रेवती	अश्विनी	भरणी	कृत्तिका

विज्ञान—ऊपर के कोष्ठ से यह समझना चाहिये कि–जिस दिन वस्तु खोई गई हो अथवा चुराई गई हो (वह दिन यदि मालूम हो तो) उस दिन का नक्षत्र देखना चाहिये, यदि रोहिणी नक्षत्र हो तो ऊपर लिखे अनुसार समझ लेना चाहिये कि वह वस्तु पूर्व दिशा में गई है तथा वह शीघ्र ही मिलेगी, यदि वह दिन मालूम न हो तो जिस दिन अपने को उस वस्तु का चोरी जाना वा खोया जाना मालूम हो उस दिन का नक्षत्र देख कर ऊपर लिखे अनुसार निर्णय करना चाहिये, यदि उस दिन मृगशीर्ष नक्षत्र हो तो जान लेना चाहिये कि वस्तु दक्षिण दिशा में गई है तथा वह तीन दिन में मिलेगी, यदि उस दिन आर्द्रा नक्षत्र हो तो जानना चाहिये कि–वह वस्तु पश्चिम दिशा में गई है तथा एक महीने में मिलेगी और यदि उस दिन पुनर्वसु नक्षत्र हो तो जान लेना चाहिये कि–वह वस्तु उत्तर दिशा में गई है तथा वह नहीं मिलेगी, इसी प्रकार कोष्ठ में लिखे हुए सब नक्षत्रों के अनुसार वस्तु के विषय में निश्चय कर लेना चाहिये ॥

नाम रखने के नक्षत्रों का वर्णन ॥

संख्या	नाम नक्षत्र अक्षर
१	अश्विनी चु, चे, चो, ला,
२	भरणी ली, लु, ले, लो
३	कृत्तिका अ, ई, ऊ, ए,
४	रोहिणी ओ, वा वी, वू
५	मृगशिर वे, वो का, की
६	आर्द्रा कु, घ, ङ, छ
७	पुनर्वसु के, को, हा, ही,
८	पुष्य हु हे, हो, डा,
९	आश्लेषा डी, डु, डे, डो,
१०	मघा म, मी, मू, मे,
११	पूर्वाफाल्गुनी मो, टा, टी, टू
१२	उत्तराफाल्गुनी टे, टो, प, पी,

संख्या	नाम नक्षत्र	अक्षर
१३	हस्त	पु, ष, ण, ठ,
१४	चित्रा	पे, पो, रा, री,
१५	स्वाती	रू, रे, रो, ता,
१६	विशाखा	ती, तू, ते, तो,
१७	अनुराधा	ना, नि, नू, ने,
१८	ज्येष्ठा	नो या, यी, यू,
१९	मूल	ये, यो, भ, भी,
२०	पूर्वाषाढ़ा	भू, ध, फ, ढ,
२१	उत्तराषाढ़ा	भे, भो, ज, जी,
२२	अभिजित्[1]	जू, जे, जो, खा,
२३	श्रवण	खी, खु, खे, खो,
२४	धनिष्ठा	ग, गी, गू, गे,
२५	शतभिषा	गो, सा, सी, सू,
२६	पूर्वाभाद्रपद	से, सो, द, दी,
२७	उत्तराभाद्रपद	दु, ञ, झ, थ,
२८	रेवती	दे, दो, च, ची,

चन्द्रराशि का वर्णन ॥

राशि।	नक्षत्र तथा उस के पाद[2]।
मेष	अश्विनी, भरणी, कृत्तिका का प्रथम पाद।
वृष	कृत्तिका के तीन पाद, रोहिणी, मृगशिर के दो पाद।
मिथुन	मृगशिर के दो पाद, आर्द्रा, पुनर्वसु के तीन पाद।
कर्क	पुनर्वसु का एक पाद, पुष्य, आश्लेषा।
सिंह	मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी का प्रथम पाद।
कन्या	उत्तराफाल्गुनी के तीन पाद, हस्त, चित्रा के दो पाद।
तुल	चित्रा के दो पाद, स्वाति, विशाखा के तीन पाद।
वृश्चिक	विशाखा का एक पाद, अनुराधा, ज्येष्ठा।
धन	मूल, पूर्वाषाढ़ा, उत्तराषाढ़ा का प्रथम पाद।
मकर	उत्तराषाढ़ा के तीन पाद, श्रवण, धनिष्ठा के दो पाद।
कुम्भ	धनिष्ठा के दो पाद, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपद के तीन पाद।
मीन	पूर्वाभाद्रपद का एक पाद, उत्तराभाद्रपद, रेवती ॥

तिथियों के भेदों का वर्णन ॥

पहिले जिन तिथियों का वर्णन कर चुके है उन के कुल पाँच भेद है—नन्दा, भद्रा, जया, रिक्ता और पूर्णा, अब कौन २ सी तिथियाँ किस २ भेदवाली है यह बात नीचे लिखे कोष्ठ से विदित हो सकती हैः—

१—उत्तराषाढा के चौथे भाग से लेकर श्रवण की पहिली चार घडी पर्यन्त अभिजित् नक्षत्र गिना जाता है, इतने समय में जिस का जन्म हुआ हो उस का अभिजित् नक्षत्र मे जन्म हुआ समझना चाहिये ॥

२—स्मरण रहे कि—एक नक्षत्र के चार चरण (पाद वा पाये) होते हैं तथा चन्द्रमा दो नक्षत्र और एक पाये तक अर्थात् नौ पायों तक एक राशि मे रहता है, चन्द्रमा के राशि में स्थित होने का यही क्रम बराबर जानना चाहिये ॥

संख्या ।	भेद ।	तिथियाँ ।	संख्या ।	भेद ।	तिथियाँ ।
१	नन्दा	पड़िवा, छठ और एकादशी ।	४	रिक्ता	चौथ, नौमी और चौदश ।
२	भद्रा	द्वितीया, सप्तमी और द्वादशी ।	५	पूर्णा	पञ्चमी, दशमी और पूर्णिमा ।
३	जया	तृतीया, अष्टमी और तेरस ।			

सूचना—यदि नन्दा तिथि को शुक्रवार हो, भद्रा तिथि को बुधवार हो, जया तिथि को मङ्गलवार हो, रिक्ता तिथि को शनिवार हो तथा पूर्णा तिथि को गुरुवार (बृहस्पति वार) हो तो उस दिन सिद्धि योग होता है, यह (योग) सब शुभ कामों में अच्छा होता है ॥

दिशाशूल के जानने का कोष्ठ ॥

नाम वार ।	दिशा में ।	नाम वार ।	दिशा में ।
सोम और शनिवार को ।	पूर्व दिशामें ।	बुध तथा मङ्गलवार को ।	उत्तर दिशा में ।
गुरुवार को ।	दक्षिण दिशा में ।	रवि तथा शुक्रवार को ।	पश्चिम दिशा में ।

योगिनी के निवास के जानने का कोष्ठ ॥

नाम तिथि ।	दिशा में ।	नाम तिथि ।	दिशा में ।
पड़िवा और नौमी ।	पूर्व दिशा में ।	षष्ठी और चतुर्दशी ।	पश्चिम दिशा में ।
तृतीया और एकादशी ।	अग्नि कोण में ।	सप्तमी और पूर्णमासी ।	वायव्य कोण में ।
पञ्चमी और त्रयोदशी ।	दक्षिण दिशा में ।	द्वितीया और दशमी ।	उत्तर दिशा में ।
चतुर्थी और द्वादशी ।	नैर्ऋत्य कोण में ।	अष्टमी और अमावास्या ।	ईशान कोण में ।

योगिनी का फल ॥

संख्या ।	तरफ ।	फल ।	संख्या ।	तरफ ।	फल ।
१	दाहिनी तरफ ।	धन की हानि करने वाली ।	३	पीठ की तरफ ।	वाँछित फल को देने वाली ।
२	बाईं तरफ ।	सुख देने वाली ।	४	सम्मुख होने पर ।	मरण तथा तकलीफ को देने वाली ।

चन्द्रमा के निवास के जानने का कोष्ठ ॥

राशि ।	दिशा में ।	राशि ।	दिशा में ।
मेष और सिंह ।	पूर्व दिशा में ।	मिथुन, तुला और कुम्भ ।	पश्चिम दिशा में ।
वृष, कन्या और मकर ।	दक्षिण दिशा में ।	वृश्चिक, कर्क और मीन ।	उत्तर दिशा में ।

चन्द्रमा का फल ॥

संख्या।	तरफ।	फल।	संख्या।	तरफ।	फल।
१	सम्मुख होने पर।	अर्थ का लाभ करता है।	३	पीठ की तरफ होने पर।	प्राणों का नाश करता है।
२	दाहिनी तरफ होने पर।	सुख तथा सम्पत्ति करता है।	४	बाइँ तरफ होने पर।	धन का क्षय करता है।

कालराहु के निवास के जानने का कोष्ठ[1] ॥

नाम वार।	दिशा में।	नाम वार।	दिशा में।	नाम वार।	दिशा में।	नाम वार।	दिशा में।
शनिवार।	पूर्व दिशा में।	गुरुवार।	दक्षिण दिशा में।	मगलवार।	पश्चिम दिशा में।	रविवार।	उत्तर दिशा में।
शुक्रवार।	अग्निकोण में।	बुधवार।	नैर्ऋत्य कोण में।	सोमवार।	वायव्य कोण में।		

अर्कदग्धा तथा चन्द्रदग्धा तिथियों का वर्णन[2] ॥

अर्कदग्धा तिथियाँ ॥		चन्द्रदग्धा तिथियाँ ॥	
सङ्क्रान्ति।	तिथि।	चन्द्रराशि।	तिथि।
धन तथा मीन की।	द्वितीया।	वृष और कर्क राशि के चन्द्र में।	दशमी।
वृष तथा कुम्भ की।	चतुर्थी।	धन और कुम्भ राशि के चन्द्र में।	द्वितीया।
मेष तथा कर्क की।	षष्ठी।	वृश्चिक और कन्या राशि के चन्द्र में।	द्वादशी।
कन्या तथा मिथुन की।	अष्टमी।	मीन और मकर राशि के चन्द्र में।	अष्टमी।
वृश्चिक तथा सिंह की।	दशमी।	तुल और सिंह राशि के चन्द्र में।	षष्ठी।
मकर तथा तुल की।	द्वादशी।	मेष और मिथुन राशि के चन्द्र में।	चतुर्थी।

इष्ट काल साधन ॥

पहिले कह चुके हैं कि–जन्मकुडली वा जन्मपत्री के बनाने के लिये इष्टकाल का साधन करना अत्यावश्यक होता है, क्योंकि–इस (इष्टकाल) के शुद्ध किये विना जन्म-

---

१–परदेशादि में गमन करने के समय उक्त सब बातों (दिशाशूल आदि) का देखना आवश्यक होता है, इन बातों के ज्ञानार्थ इस दोहे को कण्ठ रखना चाहिये कि–**"दिशाशूल ले जावे बायें, राहु योगिनी पूठ ॥ सम्मुख लेवे चन्द्रमा, लावै लक्ष्मी लूट"** ॥ १ ॥ इस के सिवाय जन्म के चन्द्रमा में परदेशगमन, तीर्थयात्रा, युद्ध, विवाह, क्षौरकर्म अर्थात् मुण्डन तथा नये घर मे निवास, ये पाँच कार्य नहीं करने चाहियें ॥

२–अर्कदग्धा तथा चन्द्रदग्धा तिथियों में शुभ तथा माङ्गलिक कार्य का करना अत्यन्त निषिद्ध है ॥

पत्री का फल कभी ठीक नहीं मिल सकता है, इस लिये अब इस विषय का संक्षेप से वर्णन किया जाता है —

घण्टा बनाने की विधि[1]—एक घटी (घड़ी) के २४ मिनट होते हैं, इस लिये ढाई दण्ड (घड़ी) का एक घण्टा (अर्थात् ६० मिनट) होता है, इस रीति से अहोरात्र (रात दिन) साठ घटी का अर्थात् चौबीस घण्टे का होता है, अब घण्टा आदि बनाने के समय इस बात का ख्याल रखना चाहिये कि–जितनी घटी और पल हों उन को २॥ से भाग देना चाहिये, क्योंकि–इस से घण्टा; मिनट तथा सकिण्ड तक मालूम हो सकते हैं, जैसे–देखो! १४ घटी, २० पल तथा ४५ विपल के घण्टे बनाने हैं–इन्हें पाँच ठाम साढ़े बारह को निकाला तो शेष (बाकी) रहीं–१।५०।४५, अब एक घटी के २४ मिनट हुए तथा ५० पल के–२० ठाम ५० अर्थात् २० मिनट हुए, इन में पूर्व के २४ मिनट मिलाये तो ४४ मिनट हुए तथा ४५ विपल के–१८ ठाम ४५ अर्थात् १८ सेकिण्ड हुए, इस लिये–१४ घटी २० पल तथा ४५ विपल के पूरे ५ घण्टे, ४४ मिनट तथा १८ सेकिण्ड हुए ॥

दूसरी विधि—घटी, पल तथा विपल को द्विगुण (दूना) करके ६० से चढ़ा कर ५ का भाग दो, जो लब्ध आवे उसे घण्टा समझो, शेष को ६० से गुणा कर के तथा पल के अङ्कों को जोड़ कर ५ का भाग दो, जो लब्ध आवे उसे मिनट समझो और शेष को साठ (६०) से गुणा कर के तथा विपल के अङ्कों को जोड़ कर ५ का भाग दो, जो लब्ध आवे उसे सेकिण्ड समझो, उदाहरण–१४।२०।४५ को द्विगुण (दूना) किया तो २८।४०।९० हुए, इन में से अन्तिम अङ्क ९० में ६० का भाग दिया तो लब्ध एक आया, इस एक को पल में जोड़ा तो २८।४१।३० हुए, इन में ५ का भाग दिया तो लब्ध ५ आया, ये ही पाँच घण्टे हुए, शेष ३ को ६० से गुणा करके उन में ४१ जोड़े तो २२१ हुए, इन में ५ का भाग दिया तो लब्ध ४४ हुए, इन्हीं को मिनट समझो, शेष एक को ६० से गुणा करके उन में ३० जोड़े तो ९०

1–स्मरण रहे कि सवाये का निशान इस प्रकार से किया जावेगा–१।१५ ढाई का निशान—२॥ पौने दो का १।४५। पूरी राशि १ है इसी का अंश १।१२ वा हिस्सा १५।१ ।४५ जानना चाहिये ॥

2–लब्ध बाकी और लब्ध आदि संज्ञायें घटी (घड़ी) की ही हैं और पल विकली तथा विलम्ब ५ आदि विपल ही की संज्ञायें हैं ॥

3–१४।२ ।४५

बाकी १२।१२ अब २ में से ३ नहीं घट सकता है, इस लिये बची हुई दो घड़ियों में से एक घड़ि को ले कर उस के पल बनाये तो ६ पल हुए, इन को २ में जोड़ा तो ८ पल हुए, इन में से ३ को घटाया तो ५ बचे इस लिये १।५ ।४५ हुए इसी प्रकार सब जगह जानना चाहिये ॥

हुए, इन में ५ का भाग दिया तो लब्ध १८ हुए, इन्हीं को सेकिण्ड समझो, बस १४ घड़ी, २० पल तथा ४५ विपल के ५ घण्टे, ४४ मिनट तथा १८ सेकिण्ड हुए।

इसी प्रकार यदि घण्टा, मिनट और सेकिण्ड के घटी, पल और विपल बनाने हों तो घण्टा, मिनट और सेकिण्ड को ५ से गुणा कर तथा ६० से चढ़ा कर २ का भाग दो अर्थात् आधा कर दो तो घण्टा मिनट और सेकिण्ड के घटी, पल और विपल बन जावेंगे, जैसे–देखो! इन्हीं ५ घण्टे; ४४ मिनट तथा १८ सेकिण्ड को ५ से गुणा किया तो २५।२२०।९० हुए, इन को ६० से चढ़ाया[1] तो २८।४१।३० हुए, इन में दो का भाग दिया (आधा किया) तो १४।२०।४५ रहे अर्थात् ५ घण्टे, ४४ मिनट तथा १८ सेकिण्ड की १४ घटी, २० पल तथा ४५ विपल हुए, यह भी स्मरण रखना चाहिये कि–दो का भाग देने पर जब आधा बचता है तब उस की जगह ३० माना जाता है, जैसे कि–४१ का आधा २०॥ होगा, इस लिये वहाँ आधे के स्थान में ३० समझा जावेगा, इसी प्रकार ढाई गुणा करने में भी उक्त बात का स्मरण रखना चाहिये।

इस का एक अति सुलभ उपाय यह भी है कि–घण्टे, मिनट और सेकिण्ड की जब घटी आदि बनाना हो तो घण्टे आदि को दूना कर उस में उसी का आधा जोड़ दो, जैसे–५।४४।१८ को दूना किया तो १०।८८।३६ हुए, उन में उन्हीं का आधा २। ५२।९ जोड़े तो १२।१४०।४५ हुए, इन में ६० का भाग दिया तो १४।२०।४० हुए अर्थात् उक्त घण्टे आदि के उक्त दण्ड और पल आदि हो गये॥

सूर्यास्त काल साधन॥

पञ्चाङ्ग में लिखे हुए प्रतिदिन के दिनमान के प्रथम ऊपर लिखी हुई क्रिया से घण्टे, मिनट और सेकिण्ड बना लेने चाहियें, पीछे उन्हें आधा कर देना चाहिये, ऐसा करने से सूर्यास्तकाल हो जावेगा, **उदाहरण**—कल्पना करो कि–दिनमान ३१।३५ है, इन के घण्टे बनाये तो १२ घण्टे तथा ३८ मिनट हुए, इन का आधा किया तो ६।१९ हुए, बस यही सूर्यास्तकाल हुआ अर्थात् सूर्य के अस्त होने का समय ६ बज कर १९ मिनट पर सिद्ध हुआ, इसी प्रकार आवश्यकता हो तो सूर्यास्तकाल के घटे आदि को दूना करके घटी तथा पल बन सकते है अर्थात् दिनमान निकल सकता है॥

1–पहिले ९० में ६० का भाग दिया तो लब्ध एक आया, इस एक को २२० में जोडा तो २२१ हुए, शेष बचे हुए ३० को वैसा ही रहने दिया, अब २२१ में ६० का भाग दिया तो लब्ध ३ आये, इन ३ को २५ में जोडा तो २८ हुए, शेष बचे हुए ४१ को वैसा ही रहने दिया, बस २८।४१।३० हो गये॥

सूर्योदय काल के जानने की विधि ॥

१२ में से सूर्यास्तकाल के घण्टों और मिनटों को घटा देने से सूर्योदयकाल बन जाता है, जैसे—१२ में से ६।१९ को घटाया तो ५।४१ शेष रहे अर्थात् ५ बजे के ४१ मिनट पर सूर्योदयकाल ठहरा, एवं सूर्योदयकाल के घण्टों और मिनटों को दूना कर घटी और पल बनाये तो २८।२५ हुए, बस यही रात्रिमान है, दिनमान का आधा दिनार्ध और रात्रिमान का आधा रात्रिमानार्ध (रात्र्यर्ध) होता है तथा दिनमान में रात्रिमानार्ध को जोड़ने से रात्र्यर्ध अर्थात् निशीथसमय होता है, जैसे—१५।४७।३० दिनार्ध है तथा १४।१२।३० रात्रिमानार्ध है, इस रात्रिमानार्ध का (१४।१२।३० को) दिनमान में जोड़ा[१] रात्र्यर्ध अर्थात् निशीथकाल ४५।४७।३० हुआ ॥

दूसरी क्रिया—६० में से दिनमान को घटा देने से रात्रिमान बनता है, दिनमान में ५ का भाग देने से सूर्यास्तकाल के घण्टे और मिनट निकलते हैं तथा रात्रिमान में ५ का भाग देने से सूर्योदयकाल बनता है, जैसे—३१।३५ में ५ का भाग दिया तो ६ लब्ध हुए, शेष बचे हुए एक को ६० से गुणा कर उस में ३५ जोड़े तथा ५ का भाग दिया तो १९ लब्ध हुए, बस यही सूर्यास्तकाल हुआ अर्थात् ६।१९ सूर्यास्तकाल ठहरा, ६० में से दिनमान ३१।३५ को घटाया तो २८।२५ रात्रिमान रहा, उस में ५ का भाग दिया तो ५।४१ हुए, बस यही सूर्योदयकाल बन गया ॥

इष्टकाल विरचन ॥

यदि सूर्योदयकाल से दो पहर के भीतर तक इष्टकाल बनाना हो तो सूर्योदयकाल को इष्टसमय के घण्टों और मिनटों में से घटा कर दण्ड और पल कर लो तो मध्याह्न के भीतर तक का इष्टकाल बन जावेगा, जैसे—कल्पना करो कि—सूर्योदय काल ६ बज के ७ मिनट तथा ४९ सेकिण्ड पर है तो इष्टसमय १० बज के ११ मिनट तथा ३७ सेकिण्ड पर हुआ, क्योंकि—अन्तर करने से ४।३।४८ के घटी और पल आदि १०।८ १० हुए, बस यही इष्टकाल हुआ, इसी प्रकार मध्याह्न के ऊपर जितने घण्टे आदि हुए हों उन की घटी आदि को दिनार्ध में जोड़ देने से दो पहर के ऊपर का इष्टकाल सूर्योदय से बन जावेगा ॥

सूर्यास्त के घण्टे और मिनट के उपरान्त जितने घण्टे आदि व्यतीत हुए हों उन की घटी और पल आदि को दिनमान में जोड़ देने से रात्र्यर्ध तक का इष्टकाल बन जावेगा।

१—स्मरण रहे कि—२४ घण्टे का अर्थात् ६० घटी का अहोरात्र (दिनरात) होता है, घटाने की रीति इस प्रकार समझनी चाहिये—$\frac{31|35}{28|25}$ देखो! ६० में से ३१ को घटाया तो २९ रहे, अब ३५ को घटाना है परन्तु ३५ के ऊपर शून्य है अर्थात् शून्य में से ३५ घट नहीं सकता है तो २९ में से एक निकाला अर्थात् २९ की जगह २८ रक्खा तथा उस निकाले हुए एक के पल बनाये तो ६० हुए, इन में से ३५ को निकाला (घटाया) तो २५ बचे अर्थात् ६० में से ३१।३५ को घटाने से २८।२५ रहे ॥

राञ्यर्ध के उपरान्त जितने घण्टे और मिनट हुए हों उन के दण्ड और पलों को राञ्यर्ध में जोड देने से सूर्योदय तक का इष्ट बन जावेगा ॥

दूसरी विधि—सूर्योदय के उपरान्त तथा दो प्रहर के भीतर की घटी और पलों को दिनार्ध में घटा देने से इष्ट बन जाता है, अथवा सूर्योदय से लेकर जितना समय व्यतीत हुआ हो उस की घटी और पल बना कर मध्याह्नोत्तर तथा अर्ध रात्रि के भीतर तक का जितना समय हो उसे दिनार्ध में जोड़ देने से मध्य रात्रि तक का इष्ट बन जावेगा, अथवा सूर्योदय के अनन्तर जितने घण्टे व्यतीत हुए हों उन की घटी और पल बना कर उन्हें ६० में से घटा देने से इष्ट बन जाता है, दिनार्ध के ऊपर के जितने घण्टे व्यतीत हुए हों उन की घटी और पल बना कर उन्हें राञ्यर्ध में घटा देने से राञ्यर्ध के भीतर का इष्टकाल बन जाता है ॥

लग्न जानने की रीति ॥

जिस समय का लग्न बनाना हो उस समय का प्रथम तो ऊपर लिखी हुई क्रिया से इष्ट बनाओ, फिर—उस दिन की वर्त्तमान सक्रान्ति के जितने अंश गये हों उन को पञ्चाङ्ग में देख कर लग्नसारणी में उन्हीं अशों की पङ्क्ति में उस सङ्क्रान्ति वाले कोष्ठ की पङ्क्ति के बराबर (सामने) जो कोष्ठ हो उस कोष्ठ के अङ्कों को इष्ट में जोड़ दो और उस सारणी में फिर देखो जहाँ तुम्हारे जोड़े हुए अंक मिलें वही लग्न उस समय का जानो, परन्तु स्मरण रखना चाहिये कि—यदि तुम्हारे जोड़े हुए अङ्क साठ से ऊपर (अधिक) हों तो ऊपर के अङ्कों को (साठ को निकाल कर शेष अङ्कों को) कायम रक्खो अर्थात् उन अङ्कों में से साठ को निकाल डालो फिर ऊपर के जो अङ्क हों उन को सारणी में देखो, जिस राशि की पङ्क्ति में वे अङ्क मिलें उतने ही अंश पर उसी लग्न को समझो ॥

कतिपय महज्जनों की जन्मकुंडलियाँ

अब कतिपय महज्जनों की जन्मकुण्डलियाँ लिखी जाती हैं—जिन की ग्रहविशेषस्थिति को देख कर विद्वज्जन ग्रहविशेषजन्य फल का अनुभव कर सकेंगे:—

तीर्थंकर श्री महावीर स्वामी की जन्मकुण्डली ॥

श्री रामचद्र जी महाराज की जन्मकुण्डली ॥
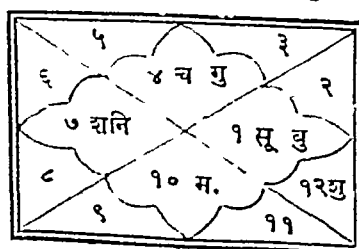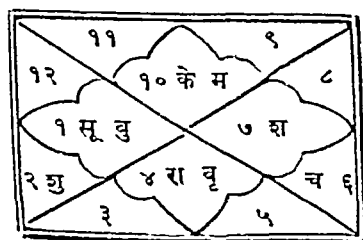
श्रीकृष्णचन्द्र महाराज की जन्मकुण्डली ॥

कैसरेहिन्द महारानी स्वर्गवासिनी श्री विक्टोरिया की जन्मकुण्डली ॥

श्री हुल्कर महाराज श्री सियाजीराव बहादुर इन्दोर की जन्मकुण्डली १।१७ ॥
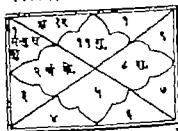
स्वर्गवासी महाराज श्री यशवन्त सिंह जी बहादुर जोधपुर की जन्मकुण्डली ॥

महाराज श्री प्रतापसिंह जी बहादुर ईडर की जन्मकुण्डली ॥

महाराज श्री सिरदारसिंह जी बहादुर जोधपुर की जन्म कुण्डली ॥

सूचना—बहुत से पुरुषों की जन्मपत्री का शुभाशुभ फल प्रायः नहीं मिलता है जिस का कारण प्रथम लिख चुके हैं कि—उन में इष्टकाल ठीक रीति से नहीं लिया जाता है, इस लिये जिन जन्मपत्रियों का फल न मिलता हो उन में इष्टकाल का गड़बड़ समझना चाहिये तथा किसी विद्वान् से उसे ठीक कराना चाहिये, किन्तु ज्योतिःशास्त्र

१—इन महारानी का जन्म केन्सिंग्टन के राजमहल में सन् १८१९ ई० के मई मास की २४ ता० को सबेरे ४ बज के ६ मिनट तथा १६ सेकिण्ड के समय हुआ था ॥

२—संवत् १९१६ मिति कार्तिक कृष्णा १ इष्ट ५८।५ पर जन्म हुआ ॥

३—संवत् १८९४ आश्विन सुदि ९ इष्ट ५७।५८ पर जन्म हुआ ॥

४—संवत् १९ १ मिति मिगसिर वदि ५ इष्ट ३ ।२१ के समय जन्म हुआ ॥

५—संवत् १९१६ मिति माघ सुदि १ बुधवार इष्ट ३२।१ के समय जन्म हुआ ॥

पर से श्रद्धा को नहीं हटाना चाहिये, क्योंकि—ज्योतिःशास्त्र (निमित्तज्ञान) कभी मिथ्या नहीं हो सकता है, देखो! ऊपर जिन प्रसिद्ध महोदयों की जन्मकुण्डलियाँ यहाँ उद्धृत (दर्ज) की हैं उन के लग्नसमय में फर्क का होना कदापि सम्भव नहीं है, क्योंकि इस विद्या के पूर्ण ज्ञाता विद्वानों से इष्टकाल का संशोधन करा के उक्त कुण्डलियाँ बनावाई गई प्रतीत होती हैं और यह बात कुण्डलियों के ग्रहों वा उन के फल से ही विदित होती है, देखो! इन कुण्डलियों में जो उच्च ग्रह तथा राज्ययोग आदि पड़े हैं उन का फल सब के प्रत्यक्ष ही है, बस यह बात ज्योतिष् शास्त्र की सत्यता को स्पष्ट ही बतला रही है।

जन्मपत्रिका के फलादेश के देखने की इच्छा रखने वाले जनों को भद्रबाहुसंहिता,[1] जन्माम्भोधि, त्रैलोक्यप्रकाश तथा भुवनप्रदीप आदि ग्रन्थ एवं बृहज्जातक,[2] भावकुतूहल तथा लघुपाराशरी आदि ज्योतिष्शास्त्र के ग्रन्थों को देखना चाहिये, क्योंकि—उक्त ग्रन्थों में सर्व योगों तथा ग्रहों के फल का वर्णन बहुत उत्तम रीति से किया गया है।

यहाँ पर विस्तार के भय से ग्रहों के फलादेश आदि का वर्णन नहीं किया जाता है किन्तु गृहस्थों के लिये लाभदायक इस विद्या का जो अत्यावश्यक विषय था उस का संक्षेप से कथन कर दिया गया है, आशा है कि—गृहस्थ जन उस का अभ्यास कर उस से अवश्य लाभ उठावेंगे ॥

यह पञ्चम अध्याय का ज्योतिर्विषय वर्णन नामक नवाँ प्रकरण समाप्त हुआ ॥

दशवाँ प्रकरण—स्वरोदयवर्णन ॥

स्वरोदय विद्या का ज्ञान ॥

विचार कर देखने से विदित होता है कि—स्वरोदय की विद्या एक बड़ी ही पवित्र तथा आत्मा का कल्याण करने वाली विद्या है, क्योंकि—इसी के अभ्यास से पूर्वकालीन महानुभाव अपने आत्मा का कल्याण कर अविनाशी पद को प्राप्त हो चुके हैं, देखो! श्री जिनेन्द्र देव और श्री गणधर महाराज इस विद्या के पूर्ण ज्ञाता (जानने वाले) थे अर्थात् वे इस विद्या के प्राणायाम आदि सब अङ्गों और उपाङ्गों को भले प्रकार से जानते थे, देखिये! जैनागम में लिखा है कि—"श्री महावीर अरिहन्त के पश्चात् चौदह पूर्व के पाठी श्री भद्रबाहु स्वामी जब हुए थे तथा उन्हो ने सूक्ष्म प्राणायाम के ध्यान का परावर्त्तन किया था उस समय समस्त सङ्घ ने मिल कर उन को विज्ञप्ति की थी" इत्यादि।

१—भद्रबाहुसंहिता आदि ग्रन्थ जैनाचार्यों के बनाये हुए हैं ॥

२—बृहज्जातक आदि ग्रन्थ अन्य (जैनाचार्यों से भिन्न) आचार्यों के बनाये हुए हैं ॥

इतिहासों के अवलोकन से विदित होता है कि—जैनाचार्य श्री हेमचन्द्र सूरि जी तथा दादा साहिब श्री जिनदत्त सूरि जी आदि अनेक जैनाचार्य इस विद्या के पूरे अभ्यासी थे, इस के अतिरिक्त—थोड़ी शताब्दी के पूर्व आनन्दघन जी महाराज, चिदानन्द (कपूरचन्द) जी महाराज तथा ज्ञानसार (नारायण) जी महाराज आदि बड़े २ अध्यात्म पुरुष हो गये हैं जिन के बनाये हुए ग्रन्थों के देखने से विदित होता है कि—आत्मा के कल्याण के लिये पूर्व काल में साधु लोग योगाभ्यास का सूब वर्त्ताव करते थे, परन्तु अब तो कई कारणों से वह व्यवहार नहीं देखा जाता है, क्योंकि—प्रथम तो—अनेक कारणों से शरीर की शक्ति कम हो गई है, दूसरे—धर्म तथा श्रद्धा घटने लगी है, तीसरे—साधु लोग पुस्तकादि परिग्रह के इकट्ठे करने में और अपनी मानमहिमा में ही साधुत्व (साधुपन) समझने लगे हैं, चौथे—लोभ ने भी कुछ २ उन पर अपना पञ्जा फैला दिया है, कहिये अब स्वरोदयज्ञान का झगड़ा किसे अच्छा लगे! क्योंकि यह कार्य तो लोभरहित तथा आत्मज्ञानियों का है किन्तु यह कह देने में भी अत्युक्ति न होगी कि मुनियों के आत्मकल्याण का मुख्य मार्ग यही है, अब यह दूसरी बात है कि—वे (मुनि) अपने आत्मकल्याण का मार्ग छोड़ कर अज्ञान सांसारिक जनों पर अपने ढोंग के द्वारा ही अपने साधुत्व को प्रकट करें।

प्राणायाम योग की दश भूमि हैं, जिन में से पहिली भूमि (मञ्जल) स्वरोदयज्ञान ही है, इस के अभ्यास के द्वारा बड़े २ गुप्त भेदों[2] को मनुष्य सुगमतापूर्वक ही जान सकते हैं तथा बहुत से रोगों की ओषधि भी कर सकते हैं।

स्वरोदय पद का शब्दार्थ स्वास का निकलना है, इसी लिये इस में केवल श्वास की पहिचान की जाती है और नाकपर हाथ के रखते ही गुप्त बातों का रहस चित्रवत् सामने आ जाता है तथा अनेक सिद्धियां उत्पन्न होती हैं परन्तु यह दृढ़ निश्चय है कि—इस विद्या का अभ्यास ठीक रीति से गृहस्थों से नहीं हो सकता है, क्योंकि प्रथम तो—यह विषय अति कठिन है अर्थात् इस में अनेक साधनों की आवश्यकता होती है, दूसरे इस विद्या के जो ग्रन्थ हैं उन में इस विषय का अति कठिनता के साथ तथा अति संक्षेप से वर्णन किया गया है जो सर्व साधारण की समझ में नहीं आ सकता है, तीसरे—इस विद्या के ठीक रीति से जानने वाले तथा दूसरों को सुगमतों के साथ अभ्यास करा सकने वाले पुरुष विरले ही स्थानों में देखे जाते हैं, केवल यही कारण है कि—वर्तमान में इस विद्या के अभ्यास करने की इच्छा वाले पुरुष उस में प्रवृत्त हो कर लाभ होने के

१—योगाभ्यास का विशेष वर्णन देखना हो तो विवेकमार्तण्ड' योग रहस' तथा योगशास्त्र' आदि ग्रन्थों को देखना चाहिये ॥ २—छिपे हुए रहस्यों ॥ ३—आसानी से ॥ ४—तस्वीर के समान ॥ ५—आसामी ॥ ६—उत्पार का लगा हुआ ॥

वदले अनेक हानियाँ कर बैठते है, अस्तु,—इन्हीं सव वातों को विचार कर तथा गृहस्थ जनों को भी इस विद्या का कुछ अभ्यास होना आवश्यक[1] समझ कर उन (गृहस्थों) से सिद्ध[2] हो सकने योग्य इस विद्या का कुछ विज्ञान हम इस प्रकरण में लिखते है, आशा है कि—गृहस्थ जन इस के अवलम्बन से इस विद्या के अभ्यास के द्वारा लाभ उठावेंगे, क्योंकि—इस विद्या का अभ्यास इस भव और पर भव के सुख को निःसन्देह प्राप्त करा सकता है॥

स्वरोदय का स्वरूप तथा आवश्यक नियम ॥

१—नासिका के भीतर से जो श्वास निकलता है उस का नाम स्वर है, उस को स्थिर चित्त के द्वारा पहिचान कर शुभाशुभ कार्यों का विचार करना चाहिये।

२—स्वर का सम्बन्ध नाड़ियों से है, यद्यपि शरीर में नाडियाँ वहुत है परन्तु उन में से २४ नाड़ियाँ प्रधान हैं तथा उन २४ नाडियों में से नौ नाड़ियाँ अति प्रधान हैं तथा उन नौ नाडियों में भी तीन नाड़ियाँ अतिशय प्रधान मानी गई है, जिन के नाम—इड्गला, पिङ्गला और सुपुन्ना (सुखमना) है, इन का वर्णन आगे किया जावेगा।

३—स्मरण रखना चाहिये कि—भौओं (भँवारों) के बीच में जो चक्र है वहाँ से श्वास का प्रकाश होता है और पिछली वङ्क नाल में हो कर नाभि में जा कर ठहरता है।

४—दक्षिण अर्थात् दाहिने (जीमणे) तरफ जो श्वास नाक के द्वारा निकलता है उस को इड्गला नाडी वा सूर्य स्वर कहते है, वाम अर्थात् बायें (डावी) तरफ जो श्वास नाक के द्वारा निकलता है उस को पिङ्गला नाडी वा चन्द्र स्वर कहते हैं तथा दोनों तरफ (दाहिने और वायें तरफ अर्थात् उक्त दोनों नाडियों (दोनों स्वरों) के बीच में अर्थात् दोनों नाड़ियों के द्वारा जो स्वर[3] चलता है उस को सुखमना नाड़ी (स्वर) कहते है, इन में से जब बायाँ स्वर चलता हो तव चन्द्र का उदय जानना चाहिये तथा जब दाहिना स्वर चलता हो तब सूर्य का उदय जानना चाहिये।

१—जरूरी ॥ २—सफल वा पूरा ॥

३—प्रत्येक मनुष्य जव श्वास लेता है तव उस की नासिका के दोनों छेदों में से किसी एक छेद से प्रचण्डतया (तेजी के साथ) श्वास निकलता है तथा दूसरे छेद से मन्दतया (धीरे २) श्वास निकलता है अर्थात् दोनों छेदों में से समान श्वास नहीं निकलता है, इन मे से जिस तरफ का श्वास तेजी के साथ अर्थात् अधिक निकलता हो उसी स्वर को चलता हुआ स्वर समझना चाहिये, दाहिने छेद में से जो वेग से श्वास निकले उसे सूर्य स्वर कहते हैं, वायें छेद मे से जो अधिक श्वास निकले उसे चन्द्र स्वर कहते हैं तथा दोनों छेदों में से जो समान श्वास निकले अथवा कभी एक में से अधिक निकले और कभी दूसरे में से अधिक निकले उसे सुखमना स्वर कहते हैं, परन्तु यह (सुखमना) स्वर प्राय उस समय में चलता है जब कि स्वर वदलना चाहता है, अच्छे नीरोग मनुष्य के दिन रात में घण्टे घण्टे भर तक चन्द्र स्वर और सूर्य स्वर अदल वदल होते हुए चलते रहते हैं परन्तु रोगी मनुष्य के यह नियम नहीं रहता है अर्थात् उस के स्वर में समय की न्यूनाधिकता (कमी ज्यादती) भी हो जाती है ॥

५–शीतल और स्थिर कार्यों को चन्द्र स्वर में करना चाहिये, जैसे–नये मन्दिर का बनवाना, मन्दिर की नींवें का खुदाना, मूर्ति की प्रतिष्ठा करना, मूल नायक की मूर्ति को स्थापित करना, मन्दिर पर दण्ड तथा कलश का चढ़ाना, उपाश्रय (उपासरा), धर्मशाला, दानशाला, विद्याशाला; पुस्तकालय, घर (मकान); हाट, महल, गढ़ और कोट का बनवाना, गुरु की माला का पहिराना, दान देना, दीक्षा देना, यज्ञोपवीत देना, नगर में प्रवेश करना, नये मकान में प्रवेश करना, कपड़ों और आभूषणों (गहनों) का कराना अथवा मोल लेना, नये गहने और कपड़े का पहरना, अधिकार का लेना, ओषधि का बनाना, खेती करना, बाग बगीचे का लगाना, राजा आदि बड़े पुरुषों से मित्रता करना, राज्यसिंहासन पर बैठना तथा योगाभ्यास करना इत्यादि, तात्पर्य यह है कि–ये सब कार्य चन्द्र स्वर में करने चाहियें क्योंकि चन्द्र स्वर में किये हुए उक्त कार्य कल्याणकारी होते हैं।

६–क्रूर और चर कार्यों को सूर्य स्वर में करना चाहिये, जैसे–विद्या के सीखने का प्रारम्भ करना, ध्यान साधना, मन्त्र तथा देव की आराधना करना, राजा वा हाकिम को अर्जी देना, वकालत वा मुसत्यारी लेना, वैरी से मुकाबला करना, सर्प के विष तथा भूत का उतारना, रोगी को दवा देना, विघ्न का शान्त करना, कष्ट का उपाय करना, हाथी, घोड़ा तथा सवारी (बग्घी रथ आदि) का लेना, भोजन करना, स्नान करना, स्त्री को ऋतुदान देना, नई वही को लिखना, व्यापार करना, राजा का शत्रु से लड़ाई करने को जाना, जहाज वा अग्नि बोट को दर्याव में चलाना, वैरी के मकान में पैर रखना, नदी आदि के जल में तैरना तथा किसी को रुपये उधार देना वा लेना इत्यादि, तात्पर्य यह है कि–ये सब कार्य सूर्य स्वर में करने चाहियें, क्योंकि सूर्य स्वर में किये हुए उक्त कार्य सफल होते हैं।

७–जिस समय चलता २ एक स्वर रुक कर दूसरा स्वर बदलने को होता है अर्थात् जब चन्द्र स्वर बदल कर सूर्य स्वर होने को होता है अथवा सूर्य स्वर बदल कर चन्द्र स्वर होने को होता है उस समय पाँच सात मिनट तक दोनों स्वर चलने लगते हैं, उसी को सुखमना स्वर कहते हैं, इस (सुखमना) स्वर में कोई काम नहीं करना चाहिये, क्योंकि इस स्वर में किसी काम के करने से वह निष्फल होता है तथा उस से क्लेश भी उत्पन्न होता है।

१–इस में भी जल तत्त्व और पृथिवी तत्त्व का होना अति श्रेष्ठ होता है ॥

२–हाट अर्थात् दूकान ॥

३–इस में भी पृथिवी तत्त्व और जल तत्त्व का होना अति श्रेष्ठ होता है ॥

८–कृष्ण पक्ष (अँधेरे पक्ष) का स्वामी (मालिक) सूर्य है और शुक्ल पक्ष (उजेले पक्ष) का स्वामी चन्द्र है ।

९–कृष्ण पक्ष की प्रतिपद् (पड़िवा) को यदि प्रातःकाल सूर्य स्वर चले तो वह पक्ष बहुत आनन्द से बीतता है ।

१०–शुक्ल पक्ष की प्रतिपद् के दिन यदि प्रातःकाल चन्द्र स्वर चले तो वह पक्ष भी बहुत सुख और आनन्द से बीतता है ।

११–यदि चन्द्र की तिथि में (शुक्ल पक्ष की प्रतिपद् को प्रातःकाल) सूर्य स्वर चले तो क्लेश और पीड़ा होती है तथा कुछ द्रव्य की भी हानि होती है ।

१२–सूर्य की तिथि में (कृष्ण पक्ष की प्रतिपद् को प्रातःकाल) यदि चन्द्र स्वर चले तो पीडा, कलह तथा राजा से किसी प्रकार का भय होता है और चित्त में चञ्चलता उत्पन्न होती है ।

१३–यदि कदाचित् उक्त दोनों पक्षों (कृष्ण पक्ष और शुक्ल पक्ष) की पड़िवा के दिन प्रातःकाल सुखमना स्वर चले तो उस मास में हानि और लाभ समान (बराबर) ही रहते हैं ।

१४–कृष्ण पक्ष की पन्द्रह तिथियों में से क्रम २ से तीन २ तिथियाँ सूर्य और चन्द्र की होती हैं, जैसे–पड़िवा, द्वितीया और तृतीया, ये तीन तिथियाँ सूर्य की हैं, चतुर्थी, पञ्चमी और षष्ठी, ये तीन तिथियाँ चन्द्र की है, इसी प्रकार अमावास्या तक शेष तिथियों में भी समझना चाहिये, इन में जब अपनी २ तिथियों में दोनों (चन्द्र और सूर्य) स्वर चलते हैं तब वे कल्याणकारी होते हैं ।

१५–शुक्ल पक्ष की पन्द्रह तिथियों में से क्रम २ से तीन २ तिथियाँ चन्द्र और सूर्य की होती हैं अर्थात् प्रतिपद्, द्वितीया और तृतीया, ये तीन तिथियाँ चन्द्र की है तथा चतुर्थी, पञ्चमी और षष्ठी, ये तीन तिथियाँ सूर्य की हैं, इसी प्रकार पूर्णमासी तक शेष तिथियों में भी समझना चाहिये इन में भी इन दोनों (चन्द्र और सूर्य) स्वरों का अपनी २ तिथियों में प्रात.काल चलना शुभकारी होता है ।

१६–वृश्चिक, सिंह, वृष और कुम्भ, ये चार राशियाँ चन्द्र स्वर की हैं तथा ये (राशियाँ) स्थिर कार्यों में श्रेष्ठ है ।

१७–कर्क, मकर, तुल और मेष, ये चार राशियाँ सूर्य स्वर की हैं तथा ये (राशियाँ) चर कार्यों में श्रेष्ठ है ।

१८–मीन, मिथुन, धन और कन्या, ये सुखमना के द्विस्वभाव लग्न हैं, इन में कार्य के करने से हानि होती है ।

१९—उक्त बारह राशियों से बारह महीने भी जान लेने चाहियें अर्थात् ऊपर जिसी को सङ्क्रान्ति लगे वही सूर्य, चन्द्र और सुखमना के महीने समझने चाहियें ।

२०—यदि कोई मनुष्य अपने किसी कार्य के लिये प्रश्न करने को आवे तथा अपने सामने, बायें तरफ अथवा ऊपर (ऊँचा) ठहर कर प्रश्न करे और उस समय अपना चन्द्र स्वर चलता हो तो कह देना चाहिये कि—तेरा कार्य सिद्ध होगा ।

२१—यदि अपने नीचे, अपने पीछे अथवा दाहिने तरफ खड़ा रह कर कोई प्रश्न करे और उस समय अपना सूर्य स्वर चलता हो तो भी कह देना चाहिये कि—तेरा काम सिद्ध होगा ।

२२—यदि कोई दाहिने तरफ खड़ा होकर प्रश्न करे और उस समय अपना सूर्य स्वर चलता हो तथा लग्न, वार और तिथि का भी सब योग मिल जावे तो कह देना चाहिये कि—तेरा कार्य अवश्य सिद्ध होगा ।

२३—यदि प्रश्न करने वाला दाहिनी तरफ खड़ा हो कर वा बैठ कर प्रश्न करे और उस समय अपना चन्द्र स्वर चलता हो तो सूर्य की तिथि और वार के बिना वह शून्य (खाली) दिशा का प्रश्न सिद्ध नहीं हो सकता है ।

२४—यदि कोई पीछे खड़ा हो कर प्रश्न करे और उस समय अपना चन्द्र स्वर चलता हो तो कह देना चाहिये कि—कार्य सिद्ध नहीं होगा ।

२५—यदि कोई बाईं तरफ खड़ा हो कर प्रश्न करे तथा उस समय अपना सूर्य स्वर चलता हो तो चन्द्र योग स्वर के बिना वह कार्यसिद्ध नहीं होगा ।

२६—इसी प्रकार यदि कोई अपने सामने अथवा अपने से ऊपर (ऊँचा) खड़ा हो कर प्रश्न करे तथा उस समय अपना सूर्य स्वर चलता हो तो चन्द्र स्वर के सब योगों के मिले बिना वह कार्य कभी सिद्ध नहीं होगा ॥

स्वरों में पाँचों तत्वों की पहिचान ॥

उक्त दोनों (चन्द्र और सूर्य) स्वरों में पाँच तत्त्व चलते हैं तथा उन (तत्त्वों) का रंग, परिमाण, आकार और काल भी विशेष होता है, इस लिये स्वरोदयज्ञान में इस विषय का भी ज्ञान लेना अत्यावश्यक है, क्योंकि जो पुरुष इन के विज्ञान को अच्छे प्रकार से समझ लेता है उस की कही हुई बात अवश्य मिलती है, इस लिये अब इन के विषय में आवश्यक वर्णन करते हैं—

१—मङ्गल शनि और रवि इन वारों का स्वामी सूर्य स्वर है तथा सोम बुध गुरु और शुक्र इन वारों का स्वामी चन्द्र स्वर है ॥ २—बहुत जरूरी ॥

१–पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और आकाश, ये पाँच तत्त्व हैं, इन में से प्रथम दो का अर्थात् पृथिवी और जल का स्वामी चन्द्र है और शेष तीनों का अर्थात् अग्नि, वायु और आकाश का स्वामी सूर्य है।

२–पीला, सफेद, लाल, हरा और काला, ये पाँच वर्ण (रंग) क्रम से पाँचों तत्त्वों के जानने चाहियें अर्थात् पृथिवी तत्त्व का वर्ण पीला, जल तत्त्व का वर्ण सफेद, अग्नि तत्त्व का वर्ण लाल, वायु तत्त्व का वर्ण हरा और आकाश तत्त्व का वर्ण काला है।

३–पृथिवी तत्त्व सामने चलता है तथा नासिका (नाक) से वारह[1] अङ्गुल तक दूर जाता है और उस के स्वर के साथ समचौरस आकार होता है।

४–जल तत्त्व नीचे की तरफ चलता है तथा नासिका से सोलह अङ्गुल तक दूर जाता है और उस का चन्द्रमा के समान गोल आकार है।

५–अग्नि तत्त्व ऊपर की तरफ चलता है तथा नासिका से चार अङ्गुल तक दूर जाता है और उस का त्रिकोण आकार है।

६–वायु तत्त्व टेढ़ा (तिरछा) चलता है तथा नासिका से आठ अङ्गुल तक दूर जाता है और उस का ध्वजा के समान आकार है।

७–आकाश तत्त्व नासिका के भीतर ही चलता है अर्थात् दोनों स्वरों में (सुखमना स्वर में) चलता है तथा इस का आकार कोई नहीं है[2]।

८–एक एक (प्रत्येक) स्वर ढाई घड़ी तक अर्थात् एक घण्टे तक चला करता है और उस में उक्त पाँचों तत्त्व इस रीति से रात दिन चलते हैं कि–पृथिवी तत्त्व पचास पल, जल तत्त्व चालीस पल, अग्नि तत्त्व तीस पल, वायु तत्त्व बीस पल और आकाश तत्त्व दश पल[3], इस प्रकार से तीनो नाड़ियाँ (तीनो स्वर) उक्त पाँचो तत्त्वों के साथ दिन रात (सदा) प्रकाशमान[4] रहती हैं॥

पाँचों तत्त्वों के ज्ञान की सहज रीतियाँ॥

१–पाच रंगो[5] की पाँच गोलियाँ तथा एक गोली विचित्र रंग की वना कर इन छवो गोलियों को अपने पास रख लेना चाहिये और जव वुद्धि में किसी तत्त्व का विचार

१–नाक पर अगुलि के रखने से यदि श्वास वारह अगुल तक दूर जाता हुआ ज्ञात हो तो पृथिवी तत्त्व समझना चाहिये, इसी प्रकार शेष तत्त्वों के परिमाण के विषय में समझना चाहिये॥

२–क्योंकि आकाश शून्य पदार्थ है॥

३–सव मिला कर १५० पल हुए, सो ही ढाई घडी वा एक घण्टे के १५० पल होते है॥

४–'प्रकाशमान' अर्थात् प्रकाशित॥

५–पाँच रंग वे ही समझने चाहियें जो कि–पहिले पृथिवी आदि के लिख चुके हैं अर्थात् पीला, सफेद, लाल, हरा और काला॥

करना हो उस समय उन छः वों गोलियों में से किसी एक गोली को आँख मीच कर उठा लेना चाहिये, यदि बुद्धि में विचारा हुआ तथा गोली का रंग एक मिल जावे तो जान लेना चाहिये कि—तत्त्व मिलने लगा है ।

२—अथवा—किसी दूसरे पुरुष से कहना चाहिये कि—तुम किसी रंग का विचार करो, जब वह पुरुष अपने मन में किसी रंग का विचार कर ले उस समय अपने नाक के स्वर में तत्त्व को देखना चाहिये तथा अपने तत्त्व को विचार कर उस पुरुष के विचारे हुए रंग को बतलाना चाहिये कि—तुमने अमुक (फलाने) रंग का विचार किया था, यदि उस पुरुष का विचारा हुआ रंग ठीक मिल जावे तो जान लेना चाहिये कि—तत्त्व ठीक मिलता है ।

३—अथवा—काच अर्थात् दर्पण को अपने ओष्ठों (होठों) के पास लगा कर उस के ऊपर बलपूर्वक नाक का श्वास छोड़ना चाहिये, ऐसा करने से उस दर्पण पर जैसे आकार का चिह्न हो जावे उसी आकार को पहिले लिखे हुए तत्त्वों के आकार से मिलना चाहिये, जिस तत्त्व के आकार से वह आकार मिल जावे उस समय वही तत्त्व समझना चाहिये ।

४—अथवा—दोनों अङ्गूठों से दोनों कानों को, दोनों तर्जनी अङ्गुलियों से दोनों आँखों को और दोनों मध्यमा अङ्गुलियों से नासिका के दोनों छिद्रों को बन्द कर ले और दोनों अनामिका तथा दोनों कनिष्ठिका अङ्गुलियों से (चारों अङ्गुलियों से) ओठों को ऊपर नीचे से खूब दाब ले, यह कार्य करके एकाग्र चित्त से गुरु की बताई हुई रीति से मन को भ्रुकुटी में ले जावे, उस जगह जैसा और जिस रंग का बिन्दु मालूम पड़े वही तत्त्व जानना चाहिये ।

५—ऊपर कही हुई रीतियों से मनुष्य को कुछ दिन तक तत्त्वों का साधन करना चाहिये, क्योंकि कुछ दिन के अभ्यास से मनुष्य को तत्त्वों का ज्ञान होने लगता है और तत्त्वों का ज्ञान होने से वह पुरुष कार्याकार्य और शुभाशुभ आदि होने वाले कार्यों को शीघ्र ही जान सकता है ॥

स्वरों में उदित हुए तत्त्वों के द्वारा वर्षफल जानने की रीति ॥

अभी कह चुके हैं कि—पाँचों तत्त्वों का ज्ञान हो जाने से मनुष्य होने वाले शुभाशुभ आदि सब कामों को जान सकता है, इसी नियम के अनुसार वह उक्त पाँचों तत्त्वों के द्वारा वर्ष में होने वाले शुभाशुभ फल को भी जान सकता है, उस के जानने की निम्नलिखित रीतियाँ हैं:—

१—जिस समय मेष की संक्रान्ति लगे उस समय श्वास को ठहरा कर स्वर में चलने वाले तत्त्व को देखना चाहिये, यदि चन्द्र स्वर में पृथिवी तत्त्व चलता हो तो जान

लेना चाहिये कि–ज़माना बहुत ही श्रेष्ठ होगा अर्थात् राजा और प्रजाजन सुखी रहेंगे पशुओं के लिये घास आदि बहुत उत्पन्न होगी तथा रोग और भय आदि की शान्ति रहेगी, इत्यादि ।

२–यदि उस समय (चन्द्र स्वर में) जल तत्त्व चलता हो तो जान लेना चाहिये कि बर्सात बहुत होगी, पृथिवी पर अपरिमित अन्न होगा, प्रजा सुखी होगी, राजा और प्रजा धर्म के मार्ग पर चलेंगे, पुण्य; दान और धर्म की वृद्धि होगी तथा सब प्रकार से सुख और सम्पत्ति बढ़ेगी, इत्यादि ।

३–यदि उस समय सूर्य स्वर में पृथिवी तत्त्व और जल तत्त्व चलता हो तो जान लेना चाहिये कि–कुछ कम फल होगा ।

४–यदि उक्त समय में दोनो स्वरों में से चाहे जिस स्वर में अग्नि तत्त्व चलता हो तो जान लेना चाहिये कि–बर्सात कम होगी, रोगपीड़ा अधिक होगी, दुर्भिक्ष होगा, देश उजाड़ होगा तथा प्रजा दुःखी होगी, इत्यादि ।

५–यदि उक्त समय में चाहे जिस स्वर में वायु तत्त्व चलता हो तो जान लेना चाहिये कि–राज्य में कुछ विग्रह होगा, बर्सात थोड़ी होगी, जमाना साधारण होगा तथा पशुओं के लिये घास और चारा भी थोड़ा होगा, इत्यादि ।

६–यदि उक्त समय में आकाश तत्त्व चलता हो तो जान लेना चाहिये कि–बड़ा भारी दुर्भिक्ष पड़ेगा तथा पशुओं के लिये घास आदि भी कुछ नहीं होगा, इत्यादि ।

वर्षफल के जानने की अन्य रीति ॥

१–यदि चैत्र सुदि पड़िवा के दिन प्रातःकाल चन्द्र स्वर में पृथिवी तत्त्व चलता हो तो यह फल समझना चाहिये कि–वर्षा बहुत होगी, जमाना श्रेष्ठ होगा, राजा और प्रजा में सुख का सञ्चार होगा तथा किसी प्रकार का इस वर्ष में भय और उत्पात नही होगा, इत्यादि ।

२–यदि उस दिन प्रातःकाल चन्द्र स्वर में जल तत्त्व चलता हो तो यह फल समझना चाहिये कि–यह वर्ष अति श्रेष्ठ है अर्थात् इस वर्ष में बर्सात, अन्न और धर्म की अतिशय वृद्धि होगी तथा सब प्रकार से आनन्द रहेगा, इत्यादि ।

३–यदि उस दिन प्रातःकाल सूर्य स्वर में पृथिवी अथवा जल तत्त्व चलता हो तो मध्यम अर्थात् साधारण फल समझना चाहिये ।

४–यदि उस दिन प्रातःकाल चन्द्र स्वर में वा सूर्य स्वर में शेष (अग्नि, वायु और आकाश) तीन तत्त्व चलते हों तो उन का वही फल समझना चाहिये जो कि पूर्व मेष सङ्क्रान्ति के विषय मे लिख चुके है, जैसे–देखो! यदि सूर्य स्वर में अग्नि तत्त्व चलता हो

तो जानना चाहिये कि–प्रजा में रोग और शोक होगा, दुर्भिक्ष पड़ेगा तथा राजा के चित्त में चैन नहीं रहेगा इत्यादि, यदि सूर्य स्वर में वायु तत्त्व चलता हो तो समझना चाहिये कि–राज्य में कुछ विग्रह होगा और वृष्टि थोड़ी होगी तथा यदि सूर्य स्वर में सुखमना चलता हो तो जानना चाहिये कि–अपनी ही मृत्यु होगी और छत्रभङ्ग होगा तथा कहीं २ थोड़े अन्न व घास आदि की उत्पत्ति होगी और कहीं २ बिलकुल नहीं होगी, इत्यादि ॥

वर्षफल जानने की तीसरी रीति ॥

१–यदि माघ सुदि सप्तमी को अथवा अक्षयतृतीया को प्रातःकाल चन्द्र स्वर में पृथिवी तत्त्व वा जल तत्त्व चलता हो तो पूर्व कहे अनुसार श्रेष्ठ फल जानना चाहिये ।

२–यदि उक्त दिन प्रातःकाल अग्नि आदि तीन तत्त्व चलते हों तो पूर्व कहे अनुसार निकृष्ट फल समझना चाहिये ।

३–यदि उक्त दिन प्रातःकाल सूर्य स्वर में पृथिवी तत्त्व और जल तत्त्व चलता हो तो मध्यम फल अर्थात् साधारण फल जानना चाहिये ।

४–यदि उक्त दिन प्रातःकाल शेष तीन तत्त्व चलते हों तो उन का फल भी पूर्व कहे अनुसार जान लेना चाहिये ॥

अपने शरीर, कुटुम्ब और धन आदि के विचार की रीति ॥

१–यदि चैत्र सुदि पड़िवा के दिन प्रातःकाल चन्द्र स्वर न चलता हो तो जानना चाहिये कि–तीन महीने में हृदय में बहुत चिन्ता और क्लेश उत्पन्न होगा ।

२–यदि चैत्र सुदि द्वितीया के दिन प्रातःकाल चन्द्र स्वर न चलता हो तो जान लेना चाहिये कि–परदेश में जाना पड़ेगा और वहाँ अधिक दुःख भोगना पड़ेगा ।

३–यदि चैत्र सुदि तृतीया के दिन प्रातःकाल चन्द्र स्वर न चलता हो तो जानना चाहिये कि–शरीर में गर्मी, पित्तज्वर तथा रक्तविकार आदि का रोग होगा ।

४–यदि चैत्र सुदि चतुर्थी के दिन प्रातःकाल चन्द्र स्वर न चलता हो तो जानना चाहिये कि–नौ महीने में मृत्यु होगी ।

५–यदि चैत्र सुदि पञ्चमी के दिन प्रातःकाल चन्द्र स्वर न चलता हो तो जानना चाहिये कि–राज्य से किसी प्रकार की तकलीफ तथा दण्ड की प्राप्ति होगी ।

६–यदि चैत्र सुदि षष्ठी (छठ) के दिन प्रातःकाल चन्द्र स्वर न चलता हो तो जानना चाहिये कि–इस वर्ष के अन्दर ही भाई की मृत्यु होगी ।

७–यदि चैत्र सुदि सप्तमी के दिन प्रातःकाल चन्द्र स्वर न चलता हो तो जानना चाहिये कि–इस वर्ष में अपनी स्त्री मर जावेगी ।

८–यदि चैत्र सुदि अष्टमी के दिन प्रातःकाल चन्द्र स्वर न चलता हो तो जानना चाहिये कि–इस वर्ष में कष्ट तथा पीड़ा अधिक होगी अर्थात् भाग्ययोग से ही सुख की प्राप्ति हो सकती है, इत्यादि ।

९–इन के सिवाय–यदि उक्त दिनों में प्रातःकाल चन्द्र स्वर में पृथिवी तत्त्व और जल तत्त्व आदि शुभ तत्त्व चलते हों तो और भी श्रेष्ठ फल जानना चाहिये ॥

पाँच तत्वों में प्रश्न का विचार ॥

१–यदि चन्द्र स्वर में पृथिवी तत्त्व वा जल तत्त्व चलता हो और उस समय कोई किसी कार्य के लिये प्रश्न करे तो कह देना चाहिये कि–अवश्य कार्य सिद्ध होगा ।

२–यदि चन्द्र स्वर में अग्नि तत्त्व वा वायु तत्व चलता हो अथवा आकाश तत्त्व हो और उस समय कोई किसी कार्य के लिये प्रश्न करे तो कह देना चाहिये कि–कार्य किसी प्रकार भी सिद्ध नहीं होगा ।

३–स्मरण रखना चाहिये कि–चन्द्र स्वर में जल तत्त्व और पृथिवी तत्व स्थिर कार्य के लिये अच्छे होते हैं परन्तु चर कार्य[1] के लिये अच्छे नहीं होते हैं और वायु तत्त्व; अग्नि तत्त्व और आकाश तत्त्व, ये तीनों चर कार्य के लिये अच्छे होते हैं; परन्तु ये भी सूर्य स्वर में अच्छे होते है किन्तु चन्द्र स्वर में नहीं ।

४–यदि कोई पुरुष रोगिविषयक[2] प्रश्न को आकर पूछे तथा उस समय चन्द्र स्वर में पृथिवी तत्त्व वा जल तत्त्व चलता हो और प्रश्न करने वाला भी उसी चन्द्र स्वर की तरफ ही (बाईं तरफ ही) बैठा हो तो कह देना चाहिये कि–रोगी नहीं मरेगा ।

५–यदि चन्द्र स्वर बन्द हो अर्थात् सूर्य स्वर चलता हो और प्रश्न करने वाला बाईं तरफ बैठा हो तो कह देना चाहिये कि–रोगी किसी प्रकार भी नहीं जी सकता है ।

६–यदि कोई पुरुष खाली दिशा[3] में आ कर प्रश्न करे तो कह देना चाहिये कि–रोगी नहीं बचेगा, परन्तु यदि खाली दिशा से आ कर भरी दिशा में बैठ कर (जिधर का स्वर चलता हो उधर बैठ कर) प्रश्न करे तो कह देना चाहिये कि–रोगी अच्छा हो जावेगा ।

७–यदि प्रश्न करते समय चन्द्र स्वर में जल तत्त्व वा पृथिवी तत्त्व चलता हो तो जान लेना चाहिये कि–रोगी के शरीर में एक ही रोग है तथा यदि प्रश्न करने के समय चन्द्र स्वर में अग्नि तत्त्व आदि कोई तत्त्व चलता हो तो जान लेना चाहिये कि–रोगी के शरीर में कई रोग मिश्रित (मिले हुए) हैं ।

१–चर और स्थिर कार्यों का वर्णन सक्षेप से पहिले कर चुके हैं ॥

२–रोगी के विषय में ॥

३–जिधर का स्वर चलता हो उस दिशा को छोड कर सर्व दिशायें खाली मानी गई हैं ॥

८–यदि प्रश्न करते समय सूर्य स्वर में अग्नि, वायु अथवा आकाश तत्त्व चलता हो तो जान लेना चाहिये कि–रोगी के शरीर में एक ही रोग है परन्तु यदि प्रश्न करते समय सूर्य स्वर में पृथिवी तत्त्व वा जल तत्त्व चलता हो तो जान लेना चाहिये कि–रोगी के शरीर में कई मिश्रित (मिले हुए) रोग हैं।

९–स्मरण रखना चाहिये कि–वायु और पित्त का स्वामी सूर्य है, कफ का स्वामी चन्द्र है तथा सन्निपात का स्वामी सुखमना है।

१०–यदि कोई पुरुष चलते हुए स्वर की तरफ से आ कर उसी (चलते हुए) स्वर की तरफ खड़ा हो कर वा बैठ कर प्रश्न करे तो कह देना चाहिये कि–तुम्हारा काम अवश्य सिद्ध होगा।

११–यदि कोई पुरुष खाली स्वर की तरफ से आ कर उसी (खाली) स्वर की तरफ खड़ा हो कर वा बैठ कर प्रश्न करे तो कह देना चाहिये कि–तुम्हारा कोई भी कार्य सिद्ध नहीं होगा।

१२–यदि कोई पुरुष खाली स्वर की तरफ से आ कर चलते स्वर की तरफ खड़ा हो कर वा बैठ कर प्रश्न करे तो कह देना चाहिये कि–तुम्हारा कार्य निस्सन्देह सिद्ध होगा।

१३–यदि कोई पुरुष चलते हुए स्वर की तरफ से आ कर खाली स्वर की तरफ खड़ा हो कर वा बैठ कर प्रश्न करे तो कह देना चाहिये कि–तुम्हारा कार्य सिद्ध नहीं होगा।

१४–यदि गुरुवार को वायु तत्त्व, शनिवार को आकाश तत्त्व, बुधवार को पृथिवी तत्त्व सोमवार को जल तत्त्व तथा शुक्रवार को अग्नि तत्त्व प्रातःकाल में चले तो जान लेना चाहिये कि–शरीर में जो कोई पहिले का रोग है वह अवश्य मिट जावेगा ॥

१–इस शरीर में उदान प्राण व्यान समान और अपान नामक पाँच वायु हैं, वे वायु विपरीत खान पान रूपी कुपथ्य तथा विपरीत व्यवहार से कुपित होकर अनेक रोगों को उत्पन्न करते हैं (जिन का वर्णन चौथे अध्याय में कर चुके हैं) तथा शरीर में पाचक, भ्राजक रञ्जक आलोचक और साधक नामक पाँच पित्त हैं, वे पित्त चरपरे तीखे लवण खट्टे, मिर्च आदि गर्म चीजों के खाने से तथा धूप, अग्नि और मैथुन आदि विपरीत व्यवहार से कुपित हो कर चालीस प्रकार के रोगों को उत्पन्न करते हैं, एवं शरीर में अवलम्बन क्लेद रसन स्नेहन और श्लेषण नामक पाँच कफ हैं, वे कफ बहुत मीठे बहुत चिकने भारी तथा ठंढे अन्न आदि के खान पान से दिन में सोना परिश्रम न करना तथा सेज और बिछौनों पर सदा बैठे रहना आदि विपरीत व्यवहार से कुपित होकर बीस प्रकार के रोगों को उत्पन्न करते हैं, परन्तु जब विरुद्ध आहार और विहार से ये तीनों दोष कुपित हो जाते हैं तब सन्निपात रोग होकर प्राणियों की मृत्यु हो जाती है ॥

२–पूर्ण वा सफल ॥ ३–बिना सन्देह के वा बेशक ॥ ४–बृहस्पतिवार ॥

स्वरों के द्वारा परदेशगमन[1] का विचार ॥

१-जो पुरुष चन्द्र स्वर में दक्षिण और पश्चिम दिशा में परदेश को जावेगा वह परदेश से आ कर अपने घर में सुख का भोग करेगा ।

२-सूर्य स्वर में पूर्व और उत्तर की तरफ परदेश को जाना शुभकारी[2] है ।

३-चन्द्र स्वर में पूर्व और उत्तर की तरफ परदेश को जाना अच्छा नहीं है ।

४-सूर्य स्वर में दक्षिण और पश्चिम की तरफ परदेश के जाना अच्छा नहीं है ।

५-ऊर्ध्व (ऊँची) दिशा चन्द्र स्वर की है इस लिये चन्द्र स्वर में पर्वत आदि ऊर्ध्व दिशा में जाना अच्छा है ।

६-पृथिवी के तल भाग का स्वामी सूर्य है, इस लिये सूर्य स्वर में पृथिवी के तल भाग में (नीचे की तरफ) जाना अच्छा है, परन्तु सुखमना स्वर में पृथिवी के तल भाग में जाना अच्छा नहीं है ॥

परदेश में स्थित[3] मनुष्य के विषय में प्रश्नविचार ॥

१-प्रश्न करने के समय यदि स्वर[4] में जल तत्त्व चलता हो तो प्रश्नकर्त्ता से कह देना चाहिये कि-सब कामों को सिद्ध कर के वह (परदेशी) शीघ्र ही आ जावेगा ।

२-यदि प्रश्न करने के समय स्वर में पृथिवी तत्त्व चलता हो तो प्रश्नकर्त्ता से कह देना चाहिये कि-वह पुरुष ठिकाने पर बैठा है और उसे किसी बात की तकलीफ नहीं है ।

३-यदि प्रश्न करने के समय स्वर में वायु तत्त्व चलता हो तो प्रश्नकर्त्ता से कह देना चाहिये कि-वह पुरुष उस स्थान से दूसरे स्थान को गया है तथा उस के हृदय में चिन्ता उत्पन्न हो रही है ।

४-यदि प्रश्न करने के समय स्वर में अग्नि तत्त्व चलता हो तो प्रश्नकर्त्ता से कह देना चाहिये कि-उस के शरीर में रोग है ।

५-यदि प्रश्न करने के समय स्वर में आकाश तत्त्व चलता हो तो प्रश्नकर्त्ता से कह देना चाहिये कि-वह पुरुष मर गया ॥

अन्य आवश्यक विषयों का विचार ॥

१-कहीं जाने के समय अथवा नींद से उठ कर (जाग कर) बिछौने से नीचे पैर रखने के समय यदि चन्द्र स्वर चलता हो तथा चन्द्रमा का ही वार हो तो पहिले चार पैर (कदम) बायें पैर से चलना चाहिये ।

१-दूसरे देश मे जाना ॥ २-कल्याणकारी ॥ ३-ठहरे हुए ॥ ४-"स्वर मे, अर्थात् चाहे जिस स्वर मे ॥

२–यदि सूर्य का वार हो तथा सूर्य स्वर चलता हो तो चलते समय पहिले तीन पैर (कदम) दाहिने पैर से चलना चाहिये।

३–जो मनुष्य तत्त्व को पहिचान कर अपने सब कामों को करेगा उस के सब काम अवश्य सिद्ध होंगे।

४–पश्चिम दिशा जल तत्त्वरूप है, दक्षिण दिशा पृथिवी तत्त्वरूप है, उत्तर दिशा अग्नि तत्त्वरूप है, पूर्व दिशा वायु तत्त्व रूप है तथा आकाश की स्थिर दिशा है।

५–जय, तुष्टि, पुष्टि, रति, खेलकूद और हास्य, ये छः अवस्थायें चन्द्र स्वर की हैं।

६–ज्वर, निद्रा, परिश्रम और कम्पन, ये चार अवस्थायें जब चन्द्र स्वर में वायु तत्त्व तथा अग्नि तत्त्व चलता हो उस समय शरीर में होती हैं।

७–जब चन्द्र स्वर में आकाश तत्त्व चलता है तब आयु का क्षय तथा मृत्यु होती है।

८–पाँचों तत्त्वों के मिलने से चन्द्र स्वर की उक्त बारह अवस्थायें होती हैं।

९–यदि पृथिवी तत्त्व चलता हो तो जान लेना चाहिये कि–पूछने वाले के मन में मूल की चिन्ता है।

१०–यदि जल तत्त्व और वायु तत्त्व चलते हों तो जान लेना चाहिये कि–पूछने वाले के मन में जीवसम्बन्धी चिन्ता है।

११–अग्नि तत्त्व में धातु की चिन्ता जाननी चाहिये।

१२–आकाश तत्त्व में शुभ कार्य की चिन्ता जाननी चाहिये।

१३–पृथिवी तत्त्व में बहुत पैर वालों की चिन्ता जाननी चाहिये।

१४–जल और वायु तत्त्व में दो पैर वालों की चिन्ता जाननी चाहिये।

१५–अग्नि तत्त्व में चार पैर वालों (चौपायों) की चिन्ता जाननी चाहिये।

१६–आकाश तत्त्व में बिना पैर के पदार्थ की चिन्ता जाननी चाहिये।

१७–रवि, राहु, मङ्गल और शनि, ये चार सूर्य स्वर के पाँचों तत्त्वों के स्वामी हैं।

१८–चन्द्र स्वर में पृथिवी तत्त्व का स्वामी बुध, जल तत्त्व का स्वामी चन्द्र, अग्नि तत्त्व का स्वामी शुक्र और वायु तत्त्व का स्वामी गुरु है, इस लिये अपने २ तत्त्वों में ये ग्रह अथवा वार शुभफलदायक होते हैं।

१९–पृथिवी आदि चारों तत्त्वों के क्रम से मीठा, कसैला, खारा और खट्टा, ये चार रस हैं, इस लिये जिस समय जिस रस के खाने की इच्छा हो उस समय उसी तत्त्व का चलना समझ लेना चाहिये।

२०–अग्नि तत्त्व में क्रोध, वायु तत्त्व में इच्छा तथा जल और पृथिवी तत्त्व में क्षमा और नम्रता आदि यतिधर्मरूप दश गुण उत्पन्न होते हैं।

२१–श्रवण, धनिष्ठा, रोहिणी, उत्तराषाढ़ा, अभिजित्, ज्येष्ठा और अनुराधा, ये सात नक्षत्र पृथिवी तत्त्व के हैं तथा शुभफलदायी हैं।

२२–मूल, उत्तराभाद्रपद, रेवती, आर्द्रा, पूर्वाषाढ़ा, शतभिषा और आश्लेषा, ये सात नक्षत्र जल तत्त्व के है।

२३–ये (उक्त) चौदह नक्षत्र स्थिर कार्यों में अपने २ तत्त्वों के चलने के समय में जानने चाहियें।

२४–मघा, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाभाद्रपद, स्वाती, कृत्तिका, भरणी और पुष्य, ये सात नक्षत्र अग्नि के है।

२५–हस्त, विशाखा, मृगशिर, पुनर्वसु, चित्रा, उत्तराफाल्गुनी और अश्विनी, ये सात नक्षत्र वायु के है।

२६–पहिले आकाश, उस के पीछे वायु, उस के पीछे अग्नि, उस के पीछे पानी और उस के पीछे पृथिवी, इस क्रम से एक एक तत्त्व एक एक के पीछे चलता है।

२७–पृथिवी तत्त्व का आधार गुदा, जल तत्त्व का आधार लिङ्ग, अग्नि तत्त्व का आधार नेत्र, वायु तत्त्व का आधार नासिका (नाक) तथा आकाश तत्त्व का आधार कर्ण (कान) है।

२८–यदि सूर्य स्वर में भोजन करे तथा चन्द्र स्वर में जल पीवे और बाईं करवट सोवे तो उस के शरीर में रोग कभी नहीं होगा।

२९–यदि चन्द्र स्वर में भोजन करे तथा सूर्य स्वर में जल पीवे तो उस के शरीर में रोग अवश्य होगा[1]।

३०–चन्द्र स्वर में शौच के लिये (दिशा मैदान के लिये) जाना चाहिये, सूर्यस्वर में मूत्रोत्सर्ग (पेशाब) करना चाहिये तथा शयन करना चाहिये।

३१–यदि कोई पुरुष स्वरों का ऐसा अभ्यास रक्खे कि–उस के चन्द्र स्वर में दिन का उदय हो (दिन निकले) तथा सूर्य स्वर में रात्रि का उदय हो तो वह पूरी अवस्था को प्राप्त होगा, परन्तु यदि इस से विपरीत[2] हो तो जानना चाहिये कि–मौत समीप ही है।

३२–ढाई २ घड़ी तक दोनों (सूर्य और चन्द्र) स्वर चलते है और तेरह श्वास तक सुखमना स्वर चलता है।

३३–यदि अष्ट प्रहर तक (२४ घण्टे अर्थात् रात दिन) सूर्य स्वर में वायु तत्त्व ही चलता रहे तो तीन वर्ष की आयु जाननी चाहिये।

१–यदि कोई पुरुष पॉच सात दिन तक बराबर इस व्यवहार को करे तो वह अवश्य रुग्ण (रोगी) हो जावेगा, यदि किसी को इस विषय में सशय (शक) हो तो वह इस का वर्त्ताव कर के निश्चय कर ले॥

२–'विपरीत हो, अर्थात् सूर्य स्वर में दिन का उदय हो तथा चन्द्र स्वर में रात्रि का उदय हो ॥

३४–यदि सोलह प्रहर तक सूर्य स्वर ही चलता रहे (चन्द्र स्वर आवे ही नहीं) तो दो वर्ष में मृत्यु जाननी चाहिये ।

३५–यदि तीन दिन तक एक सा सूर्य स्वर ही चलता रहे तो एक वर्ष में मृत्यु जाननी चाहिये ।

३६–यदि सोलह दिन तक बराबर सूर्यस्वर ही चलता रहे तो एक महीने में मृत्यु जाननी चाहिये ।

३७–यदि एक महीने तक सूर्य स्वर निरन्तर चलता रहे तो दो दिन की आयु जाननी चाहिये ।

३८–यदि सूर्य, चन्द्र और सुखमना, ये तीनों ही स्वर न चलें अर्थात् मुख से श्वास लेना पड़े तो चार घड़ी में मृत्यु जाननी चाहिये ।

३९–यदि दिन में (सब दिन) चन्द्र स्वर चले तथा रात में (रात भर) सूर्य स्वर चले तो बड़ी आयु जाननी चाहिये ।

४०–यदि दिन में (दिन भर) सूर्य स्वर और रात में (रात भर) बराबर चन्द्र स्वर चलता रहे तो छः महीने की आयु जाननी चाहिये ।

४१–यदि चार आठ, बारह, सोलह अथवा बीस दिन रात बराबर चन्द्र स्वर चलता रहे तो बड़ी आयु जाननी चाहिये ।

४२–यदि तीन रात दिन तक सुखमना स्वर चलता रहे तो एक वर्ष की आयु जाननी चाहिये ।

४३–यदि चार दिन तक बराबर सुखमना स्वर चलता रहे तो छः महीने की आयु जाननी चाहिये[1] ॥

स्वरों के द्वारा गर्भसम्बन्धी प्रश्न–विचार ॥

१–यदि चन्द्र स्वर चलता हो तथा उधर से ही आ कर कोई प्रश्न करे कि–गर्भवती स्त्री के पुत्र होगा वा पुत्री, तो कह देना चाहिये कि–पुत्री होगी ।

२–यदि सूर्य स्वर चलता हो तथा उधर से ही आ कर कोई प्रश्न करे कि गर्भवती स्त्री के पुत्र होगा वा पुत्री, तो कह देना चाहिये कि–पुत्र होगा ।

३–यदि सुखमना स्वर के चलते समय कोई आ कर प्रश्न करे कि–गर्भवती स्त्री के पुत्र होगा वा पुत्री, तो कह देना चाहिये कि–नपुंसक होगा ।

४–यदि अपना सूर्य स्वर चलता हो तथा उधर से ही आ कर कोई गर्भविषयक प्रश्न

१ इस के सिवाय–वैद्यक सम्प्रदाय के अनुसार तथा अनुभवसिद्ध कुछ बातें चौथे अध्याय में लिख चुके हैं वहाँ देख लेना चाहिये ॥

करे परन्तु प्रश्नकर्त्ता (पूछने वाले) का चन्द्र स्वर चलता हो तो कह देना चाहिये कि--पुत्र उत्पन्न होगा परन्तु वह जीवेगा नहीं ।

५-यदि दोनों का (अपना तथा पूछने वाले का) सूर्य स्वर चलता हो तो कह देना चाहिये कि-पुत्र होगा तथा वह चिरञ्जीवी होगा ।

६-यदि अपना चन्द्र स्वर चलता हो तथा पूछने वाले का सूर्य स्वर चलता हो तो कह देना चाहिये कि-पुत्री होगी परन्तु वह जीवेगी नहीं ।

७-यदि दोनों का (अपना और पूछने वाले का) चन्द्र स्वर चलता हो तो कह देना चाहिये कि-पुत्री होगी तथा वह दीर्घायु होगी ।

८-यदि सूर्य स्वर में पृथिवी तत्त्व में तथा उसी दिन के लिये किसी का गर्भसम्बन्धी प्रश्न हो तो कह देना चाहिये कि-पुत्र होगा तथा वह रूपवान्, राज्यवान् और सुखी होगा ।

९-यदि सूर्य स्वर में जल तत्त्व चलता हो और उस में कोई गर्भसम्बन्धी प्रश्न करे तो कह देना चाहिये कि-पुत्र होगा तथा वह सुखी, धनवान् और छः रसो का भोगी होगा ।

१०-यदि गर्भसम्बन्धी प्रश्न करते समय चन्द्र स्वर मे उक्त दोनों तत्त्व (पृथिवी तत्त्व और जल तत्त्व) चलते हो तो कह देना चाहिये कि-पुत्री होगी तथा वह ऊपर लिखे अनुसार लक्षणों वाली होगी ।

११-यदि गर्भसम्बन्धी प्रश्न करते समय उक्त स्वर में अग्नि तत्त्व चलता हो तो कह देना चाहिये कि-गर्भ गिर जावेगा तथा यदि सन्तति भी होगी तो वह जीवेगी नहीं ।

१२-यदि गर्भसम्बन्धी प्रश्न करते समय उक्त स्वर में वायु तत्त्व चलता हो तो कह देना चाहिये कि-या तो छोड़ (पिण्डाकृति) बँधेगी वा गर्भ गल जावेगा ।

१३-यदि गर्भसम्बन्धी प्रश्न करते समय सूर्य स्वर में आकाश तत्त्व चलता हो तो नपुसक की तथा चन्द्र स्वर में आकाश तत्त्व चलता हो तो बाँझ लडकी की उत्पत्ति कह देनी चाहिये ।

१४-यदि कोई सुखमना स्वर में गर्भ का प्रश्न करे तो कह देना चाहिये कि-दो लडकियाँ होंगी ।

१५-यदि कोई दोनों स्वरों के चलने के समय में गर्भविषयक प्रश्न करे तथा उस समय यदि चन्द्र स्वर तेज़ चलता हो तो कह देना चाहिये कि-दो कन्यायें होंगी तथा यदि सूर्य स्वर तेज चलता हो तो कह देना चाहिये कि-दो पुत्र होंगे ॥

गृहस्थों के लिये आवश्यक विज्ञप्ति ॥

स्वरोदय ज्ञान की जो २ बातें गृहस्थो के लिये उपयोगी थी उन का हम ने ऊपर कथन कर दिया है, इन सब बातों को अभ्यस्त (अभ्यास में) रखने से गृहस्थों को

अवश्य आनन्द की प्राप्ति हो सकती है, क्योंकि स्वरोदय के ज्ञान में मन और इन्द्रियों का रोकना आवश्यक होता है ।

यद्यपि प्रथम अभ्यास करने में गृहस्थों को कुछ कठिनता अवश्य मालूम होगी परन्तु थोड़ा बहुत अभ्यास हो जाने पर वह कठिनता आप ही मिट जावेगी, इस लिये आरम्भ में उस की कठिनता से भय नहीं करना चाहिये किन्तु उस का अभ्यास अवश्य करना ही चाहिये, क्योंकि—यह विद्या अति लाभकारिणी है, देखो! वर्त्तमान समय में इस देश के निवासी श्रीमान् तथा दूसरे लोग अन्यदेशवासी जनों की बनाई हुई जागरण घटिका (जगाने की घड़ी) आदि वस्तुओं को निद्रा से जगाने आदि कार्य के लिये द्रव्य का व्यय कर के लेते हैं तथा रात्रि में जितने बजे पर उठना हो उसी समय की जगाने की चाबी लगा कर घड़ी को रख देते हैं और ठीक समय पर घड़ी की आवाज़ को सुन कर उठ बैठते हैं, परन्तु हमारे प्राचीन आर्यावर्त्तनिवासी जन अपनी योगादि विद्या के बल से उक्त जागरण आदि का सब काम लेते थे, जिस में उन की एक पाई भी खर्च नहीं होती थी। (प्रश्न) आप इस बात को क्या हमें प्रत्यक्ष कर बतला सकते हैं कि—आर्यावर्त्तनिवासी प्राचीन जन अपनी योगादि विद्या के बल से उक्त जागरण आदि का सब काम लेते थे? (उत्तर) हाँ, हम अवश्य बतला सकते हैं, क्योंकि—गृहस्थों के लिये हितकारी इस प्रकार की बातों का प्रकट करना हम अत्यावश्यक समझते हैं, यद्यपि बहुत से लोगों का यह मन्तव्य होता है कि—इस प्रकार की गोप्य बातों को प्रकट नहीं करना चाहिये परन्तु हम ऐसे विचार को बहुत तुच्छ तथा सङ्कीर्णहृदयता का चिह्न समझते हैं, देखो! इसी विचार से तो इस पवित्र देश की सब विद्यायें नष्ट हो गईं।

पाठकवृन्द! तुम को रात्रि में जितने बजे पर उठने की आवश्यकता हो उस के लिये ऐसा करो कि—सोने के समय प्रथम दो चार मिनट तक चित्त को स्थिर करो, फिर बिछौने पर लेट कर तीन वा सात बार ईश्वर का नाम लो अर्थात् नमस्कारमन्त्र को पढ़ो, फिर अपना नाम ले कर मुख से यह कहो कि—हम को इतने बजे पर (जितने बजे पर तुम्हारी उठने की इच्छा हो) उठा देना ऐसा कह कर सो जाओ, यदि तुम को उक्त कार्य के बाद दश पाँच मिनट तक निद्रा न आवे तो पुन नमस्कारमन्त्र को निद्रा आने तक मन में ही (होठों को न हिला कर) पढ़ते रहो[1], ऐसा करने से तुम रात्रि में अभीष्ट समय पर जाग कर उठ सकते हो, इस में सन्देह नहीं है[2] ॥

---

१ निद्रा के आने तक तुम मन में मन्त्र पढ़ने का तात्पर्य यह है कि—ईश्वरनमस्कार के पीछे मन को अनेक बातों में नहीं ले जाना चाहिये अर्थात् अन्य किसी बात का स्मरण नहीं करना चाहिये ॥

२—हाथकङ्गन के लिये आरसी की क्या आवश्यकता है अर्थात् इस बात की जो परीक्षा करना चाहे वह कर मानता दे ॥

योगसम्बन्धिनी मेस्मेरिजम विद्या का संक्षिप्त वर्णन[1] ॥

वर्तमान समय में इस विद्या की चर्चा भी चारों ओर अधिक फैल रही है अर्थात् अंग्रेज़ी शिक्षा पाये हुए मनुष्य इस विद्या पर तन मन से मोहित हो रहे हैं, इस का यहाँ तक प्रचार बढ़ रहा है कि–पाठशालाओं (स्कूलों) के सब विद्यार्थी भी इस का नाम जानते है तथा इस पर यहाँ तक श्रद्धा बढ़ रही है कि–हमारे जैन्टिलमैन भाई भी (जो कि सब बातों को व्यर्थ बतलाया करते हैं) इस विद्या का सच्चे भाव से स्वीकार कर रहे है, इस का कारण केवल यही है कि–इस पर श्रद्धा रखने वाले जनो को बालकपन से ही इस प्रकार की शिक्षा मिली है और इस में सन्देह भी नहीं है कि–यह विद्या बहुत सच्ची और अत्यन्त लाभदायक है, परन्तु बात केवल इतनी है कि–यदि इस विद्या में सिद्धता को प्राप्त कर उसे यथोचित रीति से काम में लाया जावे तो वह बहुत लाभदायक हो सकती है ।

इस विद्या का विशेष वर्णन हम यहां पर ग्रन्थ के विस्तार के भय से नहीं कर सकते हैं किन्तु केवल इस का स्वरूपमात्र पाठक जनों के ज्ञान के लिये लिखते हैं[2] ।

निस्सन्देह यह विद्या बहुत प्राचीन है तथा योगाभ्यास की एक शाखा है, पूर्व समय में भारतवर्षीय सम्पूर्ण आचार्य और मुनि महातमा जन योगाभ्यासी हुआ करते थे जिस का वृत्तान्त प्राचीन ग्रन्थो से तथा इतिहासों से विदित हो सकता है ॥

आवश्यक सूचना—ससार में यह एक साधारण नियम देखा जाता है कि–जब कभी कोई पुरुष किन्हीं नूतन (नये) विचारों को सर्व साधारण के समक्ष में प्रचरित करने का प्रारम्भ करता है तब लोग पहिले उस का उपहास किया करते हैं, तात्पर्य यह है कि–जब कोई पुरुष (चाहे वह कैसा ही विद्वान् क्यों न हो) किन्हीं नये विचारों को (संसार के लिये लाभदायक होने पर भी) प्रकट करता है तब एक वार लोग उस का उपहास अवश्य ही करते है तथा उस के उन विचारो को बाललीला समझते है, परन्तु विचारप्रकटकर्त्ता (विचारो को प्रकट करने वाला) गम्भीर पुरुष जब लोगो के उपहास का कुछ भी विचार न कर अपने कर्त्तव्य में सोद्योग (उद्योगयुक्त) ही रहता है तब उस का परिणाम यह होता है कि–उन विचारो में जो कुछ सत्यता विद्यमान होती है वह शनै. २ (धीरे २) कालान्तर में (कुछ काल के पश्चात्) प्रचार को प्राप्त होती है अर्थात् उन विचारों की सत्यता और असलियत को लोग समझ कर मानने लगते है,

---

१–यह विद्या भी स्वरोदयविद्या से विषयसाम्य से सम्बध रखती है, अत यहाँ पर थोडा सा इस का भी स्वरूप दिखलाया जाता है ॥

२–इतने ही आवश्यक विषयो के वर्णन से ग्रन्थ अब तक बढ चुका है तथा आगे भी कुछ आवश्यक विषय का वर्णन करना अवशिष्ट है, अत इस (मेस्मेरिजम) विद्या के स्वरूपमात्र का वर्णन किया है ॥

विचार करने पर पाठकों को इस के अनेक प्राचीन उदाहरण मिल सकते हैं अत हम उन (प्राचीन उदाहरणों) का कुछ भी उल्लेख करना नहीं चाहते हैं किन्तु इस विषय के पश्चिमीय विद्वानों के दो एक उदाहरण पाठकों की सेवा में अवश्य उपस्थित करते हैं, देखिये—अठारहवीं शताब्दी (सदी) में मेस्मरे "एनीमल मेगनेटीज्म" (जिस ने अपने ही नाम से अपने आविष्कार का नाम "मेस्मेरिज्म" रक्खा तथा जिस ने अपने आविष्कार की सहायता से अनेक रोगियों का अच्छा किया) का अपने नूतन विचार के प्रकट करने के प्रारम्भ में कैसा उपहास हो चुका है, यहाँ तक कि—विद्वान् डाक्तरों तथा दूसरे लोगों ने भी उस के विचारों को हँसी में उड़ा दिया और इस विद्या को प्रकट करने वाले डाक्तर मेस्मर को लोग ठग बतलाने लगे, परन्तु "सत्यमेव विजयते" इस वाक्य के अनुसार उस ने अपनी सत्यता पर दृढ निश्चय रक्खा, जिस का परिणाम यह हुआ कि—उस की उक्त विद्या की तरफ कुछ लोगों का ध्यान हुआ तथा उस का आन्दोलन होने लगा, कुछ काल के पश्चात् अमेरिका वालों ने इस विद्या में विशेष अन्वेषण किया जिस से इस विद्या की सारता प्रकट हो गई, फिर क्या था इस विद्या का खूब ही प्रचार होने लगा और थियासोफिकल सुसाइटी के द्वारा यह विद्या समस्त देशों में प्रचरित हो गई तथा बड़े २ प्रोफेसर विद्वान् जन इस का अभ्यास करने लगे।

दूसरा उदाहरण देखिये—ईस्वी सन् १८२८ में सब से प्रथम जब सात पुरुषों ने मद्य (दारू वा शराब) के न पीने का नियम ग्रहण कर मद्य का प्रचार लोगों में कम करने का प्रयत्न करना प्रारंभ किया था उस समय उन का बड़ा ही उपहास हुआ था, विशेषता यह थी कि—उस उपहास में विना विचारे बड़े २ सुयोग्य और नामी शाह भी सम्मीलित (शामिल) हो गये थे, परन्तु इतना उपहास होने पर भी उक्त (मद्य न पीने का नियम लेने वाले) लोगों ने अपने नियम को नहीं छोड़ा तथा उस के लिये चेष्टा करते ही गये, परिणाम यह हुआ कि—दूसरे भी अनेक जन उन के अनुगामी हो गये, आज उसी का यह कितना बड़ा फल प्रत्यक्ष है कि—इँगलेंड में (यद्यपि वहाँ मद्य का अब भी बहुत कुछ खर्च होता है तथापि) मद्यपान के विरुद्ध सैकड़ों मंडलियाँ स्थापित हो चुकी हैं तथा इस समय ग्रेट ब्रिटन में साठ लाख मनुष्य मद्य से बिलकुल परहेज करते हैं इस से अनुमान किया जा सकता है कि—जैसे गत शताब्दी में सुधरे हुए मुल्कों में गुलामी का व्यापार बन्द किया जा चुका है उसी प्रकार वर्तमान शताब्दी के अन्त तक मद्य का व्यापार भी प्रत्यन्त बन्द कर दिया जाना आश्चर्यजनक नहीं है।

इसी प्रकार तीसरा उदाहरण देखिये—यूराप में वनस्पति की खुराक का समर्थन और मांस की खुराक का असमर्थन करने वाली मण्डली सन् १८४७ में मेनचेस्टर में आठ से पुरुषों ने मिल कर जब स्थापित की थी उस समय भी उस (मण्डली) के सभासदों का

उपहास किया गया था परन्तु उक्त खुराक के समर्थन में सत्यता विद्यमान थी इस कारण आज इँग्लेंड, यूरोप तथा अमेरिका में वनस्पति की खुराक के समर्थन में अनेक मण्डलियां स्थापित हो गई है तथा उन में हज़ारों विद्वान्, यूनीवर्सिटी की बड़ी २ डिग्रियों को प्राप्त करने वाले, डाक्टर, वकील और बड़े २ इञ्जीनियर आदि अनेक उच्चाधिकारी जन सभासद्रूप में प्रविष्ट हुए है, तात्पर्य यह है कि–चाहें नये विचार वा आविष्कार हो, चाहें प्राचीन हो यदि वे सत्यता से युक्त होते है तथा उन में नेकनियती और इमानदारी से सदुद्यम किया जाता है तो उस का फल अवश्य मिलता है तथा सदुद्यम वाले का ही अन्त में विजय होता है ॥

यह पञ्चम अध्याय का स्वरोदयवर्णन नामक दशवॉ प्रकरण समाप्त हुआ ॥

ग्यारहवाँ प्रकरण—शकुनावलिवर्णन ॥

शकुनविद्या का स्वरूप ॥

इस विद्या के अति उपयोगी होने के कारण पूर्व समय में इस का बहुत ही प्रचार था अर्थात् पूर्व जन इस विद्या के द्वारा कार्यसिद्धि का (कार्य के पूर्ण होने का) शकुन (सगुन) ले कर प्रत्येक (हर एक) कार्य का प्रारम्भ करते थे, केवल यही कारण था कि–उन के सब कार्य प्रायः सफल और शुभकारी होते थे, परन्तु अन्य विद्याओं के समान धीरे २ इस विद्या का भी प्रचार घटता गया तथा कम बुद्धि वाले पुरुष इसे बच्चों का खेल समझने लगे और विशेष कर अंग्रेज़ी पढ़े हुए लोगो का तो विश्वास इस पर नाममात्र को भी नहीं रहा, सत्य है कि–"न वेत्ति यो यस्य गुणप्रकर्षं स तस्य निन्दा सतत करोति" अर्थात् जो जिस के गुण को नही जानता है वह उस की निरन्तर निन्दा किया करता है, अस्तु–इस के विषय में किसी का विचार चाहे कैसा ही क्यो न हो परन्तु पूर्वीय सिद्धान्त से यह तो मुक्त कण्ठ से कहा जा सकता है कि–यह विद्या प्राचीन समय में अति आदर पा चुकी है तथा पूर्वीय विद्वानों ने इस विद्या का अपने बनाये हुए ग्रन्थों में बहुत कुछ उल्लेख किया है ।

पूर्व काल में इस विद्या का प्रचार यद्यपि प्रायः सब ही देशों में था तथापि मारवाड़ देश में तो यह विद्या अति उत्कृष्ट रूप से प्रचलित थी, देखो! मारवाड़ देश में पूर्व समय में (थोड़े ही समय पहिले) परदेश आदि को गमन करने वालो के सहायक (चोर आदि से रक्षा करने वाले) बन कर भाटी आदि राजपूत जाया करते थे वे लोग जानवरों की भाषा आदि के शुभाशुभ शकुनों को भली भाँति जानते थे, हड़बूकी नामक

सांखला राजपूत हुए हैं, जिन्हों ने प्रदेशगमनादि के शुभाशुभ शकुनों के विषय में सैकड़ों दोहे बनाये हैं, वर्तमान में रेल आदि के द्वारा यात्रा करने का प्रचार हो गया है इस कारण उक्त (मारवाड़) देश में भी शकुनों का प्रचार घट गया है और घटता चला जाता है।

हमारे देशवासी बहुत से जन यह भी नहीं जानते हैं कि–शुभ शकुन कौन से होते हैं तथा अशुभ शकुन कौन से होते हैं, यह बहुत ही लज्जास्पद विषय है, क्योंकि शुभाशुभ शकुनों का जानना और यात्रा के समय उन का देखना अत्यावश्यक है, देखो! शकुन ही आगामी शुभाशुभ के (भले वा बुरे के) अथवा यों समझो कि–कार्य की सिद्धि वा असिद्धि तथा सुख वा दुःख के सूचक होते हैं।

शकुन दो प्रकार से लिये (देखे) जाते हैं–एक तो रमल के द्वारा वा पाशा आदि के द्वारा कार्य के विषय में लिये (देखे) जाते हैं और दूसरे प्रदेशादि को गमन करने के समय शुभाशुभ फल के विषय में लिये (देखे) जाते हैं, इन्हीं दोनों प्रकार के शकुनों के विषय में संक्षेप से इस प्रकरण में लिखेंगे, इन में से प्रथम वर्ग के शकुनों के विषय में गर्गाचार्य मुनि[1] की संस्कृत में बनाई हुई पाशकशकुनावलि का भाषा में अनुवाद कर वर्णन करेंगे, उस के पश्चात् प्रदेशादिगमनविषयक शुभाशुभ शकुनों का संक्षेप से वर्णन करेंगे, आशा है कि–गृहस्थ जन शकुनों का विज्ञान कर इस से लाभ उठावेंगे[2]।

जो कुछ कार्य करना हो उस का प्रथम स्थिर मन से विचार करना चाहिये, फिर थोड़े चाँवल, एक सुपारी और दुअन्नी वा चाँदी की अगूठी आदि को पुस्तक पर भेट रूप रख कर पाँसे[3] को हाथ में ले कर इस निम्नलिखित मन्त्र को सात बार पढ़ना चाहिये, फिर तीन बार पासे का डालना चाहिये तथा तीनों बार के जितने अङ्क हों उन का

१–तीनों लोकों के पूज्य श्री गर्गाचार्य महात्मा ने सत्यपाला केवली राजा अग्रसेन के सामने प्रशा-दितकारिणी इस (शकुनावली) का वर्णन संस्कृत पद्य में किया था उसी का भाषानुवाद कर के यहां पर हम ने लिखा है ॥

२–इस प्रकरण का जो द्रव्य इकट्ठा हो जावे उस को शुभकार्य में लगा देना योग्य होता है, इस लिये जो श्रीमंत लोग देशान्तरों में रहते हैं उन को उचित है कि–काम धन्धे से छुट्टी पा कर अवकाश के समय में व्यर्थ गप्प मार कर समय को न गमावें किन्तु अपने धर्म में से जो उत्तम कुछ पठित हो उस के यहां बाल-बोध पंच सात अच्छे २ ग्रन्थों को मँगवा कर रक्खें और उन को सुना करें तथा स्वयं भी बांचा करें और जो ज्ञानखाते का द्रव्य हो उस से उपयोगी पुस्तकों को मँगा लिया करें तथा उपयोगी साप्ताहिक पत्र और मासिक पत्र भी दो चार मंगाते रहें, ऐसा करने से मनुष्य को बहुत लाभ होता है ॥

३–चौसर के पासे के समान काष्ठ पीतल वा चांदी का चौकोन पासा होना चाहिये जिस में एक दो तीन और चार ये अंक लिखे होने चाहियें ॥

फल देख लेना चाहिये, (इस शकुनावलि का फल ठीक २ मिलता है) परन्तु यह स्मरण रखना चाहिये कि—एक वार शकुन के लेनेपर (उस का फल चाहे बुरा आवे चाहे अच्छा आवे) फिर दूसरी वार शकुन नहीं लेना चाहिये।

मन्त्र—ओं नमो भगवति कूष्माण्डनि सर्वकार्यप्रसाधिनि सर्वनिमित्तप्रकाशिनि एह्येहि २ वरं देहि २ हलि २ मातङ्गिनि सत्य ब्रूहि २ स्वाहा।

इस मन्त्र को सात वार पढ़ कर "सत्य भाषे असत्य का परिहार करे" इस प्रकार मुख से कह कर पासे को डालना चाहिये, यदि पासा उपस्थित न हो तो नीचे जो पासावलि का यन्त्र लिखा है उस पर तीन वार अङ्गुलि को फेर कर चाहे जिस कोठे पर रख दे तथा आगे जो उस का फल लिखा है उसे देख ले॥

पासावलिका यन्त्र ॥

१११	११२	११३	११४	१२१	१२२	१२३	१२४
१३१	१३२	१३३	१३४	१४१	१४२	१४३	१४४
२११	२१२	२१३	२१४	२२१	२२२	२२३	२२४
२३१	२३२	२३३	२३४	२४१	२४२	२४३	२४४
३११	३१२	३१३	३१४	३२१	३२२	३२३	३२४
३३१	३३२	३३३	३३४	३४१	३४२	३४३	३४४
४११	४१२	४१३	४१४	४२१	४२२	४२३	४२४
४३१	४३२	४३३	४३४	४४१	४४२	४४३	४४४

पासावलिका का क्रमानुसार फल ॥

१११—हे पूछने वाले! यह पासा बहुत शुभ है, तेरे दिन अच्छे हैं, तू ने विलक्षण बात विचार रक्खी है, वह सब सिद्ध होगी, व्यापार में लाभ होगा और युद्ध में जीत होगी।

११२—हे पासा लेने वाले! तेरा काम सिद्ध नही होगा, इस लिये विचारे हुए काम को छोड़ कर दूसरा काम कर तथा देवाधिदेव का ध्यान रख, इस शकुन का यह प्रमाण (पुरावा) है कि—तू रात को स्वप्न में काक (कौआ), घुग्घू, गीध, मक्खियाँ, मच्छर, मानो अपने शरीर में तेल लगाया हो अथवा काला साँप देखा हो, ऐसा देखेगा।

११३—हे पूछने वाले! तू ने जो विचार किया है उस का फल सुन, तू किसी स्थान (ठिकाने) को वा धन के लाभ को अथवा किसी सज्जन की मुलाकात को चाहता है, यह सब तुझे मिलेगा, तेरे क्लेश और चिन्ता के दिन बहुत से बीत गये, अब तेरे अच्छे दिन आ गये हैं, इस बात की सत्यता (सचाई) का प्रमाण यह है कि—तेरी कोख पर तिल वा मसा अथवा कोई घाव का चिह्न है।

११९–हे पूछने वाले ! यह पासा बहुत कल्याणकारी है, कुल की वृद्धि होगी, जमीन का लाभ होगा, धन का लाभ होगा, पुत्र का भी लाभ दीखता है और प्यारे मित्र का दर्शन होगा, किसी से सम्बंध होगा तथा तीन महीने के भीतर विचारे हुए काम का लाभ होगा, गुरु की भक्ति और कुलदेवी का पूजन कर, इस बात की सत्यता का प्रमाण यह है कि–तेरे शरीर के ऊपर दोनों तरफ मसा; तिल वा घाव का चिह्न है।

१२१–हे पूछने वाले! तूने ठिकाने का लाभ तथा सज्जन की मुलाकात विचारी है, मातृ, धन; सम्पत्ति और भाई बन्धु की वृद्धि तथा पहिले जैसे सम्मान का मिलना विचारा है, यह सब बात निर्विघ्न (विना किसी विघ्न के) तेरे लिये सुखदायी होगी, इस का निश्चय तुझे इस प्रकार हो सकता है कि–तू स्वप्न में अपने बड़े लोगों को देखेगा।

१२२–हे पूछने वाले ! तुझे वित्त (धन) और यश का लाभ होगा, ठिकाना और सम्मान मिलेगा तथा तेरी मनोऽभीष्ट (मनचाही) वस्तु मिलेगी, इस में शङ्का मत कर, अब तेरा पाप और दुःख क्षीण हो गया, इस लिये तुझे कल्याण की प्राप्ति होगी, इस का पुरावा यह है कि–तू रात को स्वप्न में अथवा प्रत्यक्ष में लड़ाई का करना देखेगा।

१२३–हे पूछने वाले! तेरे कार्य और धन की सिद्धि होगी, तेरे विचारे हुए सब मामले सिद्ध होंगे, कुटुम्ब की वृद्धि, स्त्री का लाभ तथा सज्जन की मुलाकात होगी, तेरे मन में जो बहुत दिनों से विचार है वह अब जल्दी पूर्ण होगा, इस बात का यह पुरावा है कि–तेरे घर में लड़ाई तथा स्त्रीसम्बंधी चिन्ता आज से पाँचवें दिन के भीतर हुई होगी।

१२४–हे पूछने वाले! तेरी भाइयों से जल्दी मुलाकात होगी, तेरा सुख अच्छा है, ग्रह का बल भी अच्छा है, इस लिये तेरे सब काम हो जावेंगे, तू अपनी कुलदेवी का पूजन कर।

१२५–हे पूछने वाले! तुझे ठिकाने का लाभ, धन का लाभ तथा चित्त में चैन होगा, जो कुछ काम तेरा बिगड़ गया है वह भी सुधर जावेगा तथा जो कुछ चीज चोरी में गई है वह भी मिल जावेगी, इस बात का यह पुरावा है कि–तू ने स्वप्न में वृक्ष को देखा है अथवा देखेगा।

१२६–हे पूछने वाले! जो काम तू ने विचारा है वह सब हो जावेगा, इस बात का यह पुरावा है कि–तेरी स्त्री के साथ तेरी बहुत प्रीति है।

१३१–हे पूछने वाले! इस शकुन से तेरे धन के नाश का तथा शरीर में रोग होने का सम्भव है तथा तेरे किसी प्रकार का बन्धन है, जान के धोखे का खतरा है, तू ने भारी काम विचारा है वह बड़ी तकलीफ से पूरा होगा।

१३४–हे पूछने वाले! तुझे राजकाज की तरफ की वा सर्कार की तरफ की अथवा सोना चाँदी की ओर परदेश की चिन्ता है, तू किसी दुश्मन से जीतना चाहता है, यह

सब बात धीरे २ तुझे प्राप्त होगी, जैसी कि तू ने विचारी है, अब हानि नहीं होगी, तेरे पाप कट गये, तू वीतराग देव का ध्यान धर, तेरे सब कार्य सिद्ध होंगे ।

१४१–हे पूछने वाले! तेरा विचार किसी व्यापार का है तथा तुझे दूसरी भी कोई चिन्ता है, इस सब कष्ट से छूट कर तेरा मङ्गल होगा, आज के सातवें दिन या तो तुझे कुछ लाभ होगा वा अच्छी बुद्धि उत्पन्न होगी ।

१४२–हे पूछने वाले! तेरे मन में धन और धान्य की अथवा घर के विषय की चिन्ता है, वह सब चिन्ता दूर होगी, तेरे कुटुम्ब की वृद्धि होगी, कल्याण होगा, सज्जनों से मुलाक़ात होगी तथा गई हुई वस्तु भी मिलेगी, इस बात का यह पुरावा है कि–तेरे घर में अथवा बाहर लडाई हुई है वा होगी ।

१४३–हे पूछने वाले! तेरे विचारे हुए सब काम सिद्ध होंगे, कल्याण होगा तथा लड़की का लाभ होगा, इस बात का यह पुरावा है कि–तू स्वप्न में किसी ग्राम में जाना देखेगा ।

१४४–हे पूछने वाले! तेरे सब कामो की सिद्धि होगी और तुझे सम्पत्ति मिलेगी इस बात का यह पुरावा है कि–तू अपने विचारे हुए काम को स्वप्न में देखेगा वा देव-मन्दिर को वा मूर्ति को अथवा चन्द्रमा को देखेगा ।

२११–हे पूछने वाले! तू ने अपने मन में एक बड़ा कार्य विचारा है तथा तुझे धनविषयक चिन्ता है, सो तेरे लिये सब अच्छा होगा तथा प्यारे भाइयों की मुलाकात होगी, इस बात की सत्यता का प्रमाण यह है कि–तू ने स्वप्न में ऊँचे मकान पर पहाड़ पर चढ़ना देखा है अथवा देखेगा ।

२१२–हे पूछने वाले! तेरे सब बातों की वृद्धि होगी, मित्रों से मुलाकात होगी, ससार से लाभ होगा, विवाह करने पर कुल की वृद्धि होगी तथा सोना चाँदी आदि सब सम्पत्ति होगी, इस बात का यह पुरावा है कि–तू ने स्वप्न में गाय वा बैल को देखा है अथवा देखेगा, तू परदेश में भी जाने का विचार करता है, तू कुलदेवी को मना, तेरे लिये अच्छा होगा ।

२१३–हे पूछने वाले! तेरे मन में द्विपद अर्थात् दो पैर वाले की चिन्ता है और तू ने अच्छा काम विचारा है उस का लाभ तुझे एक महीने में होगा, भाई तथा सज्जन मिलेंगे, शरीर में प्रसन्नता होगी और तेरे मनोऽभीष्ट (मनचाहे) कार्य होंगे परन्तु जो तेरा गोत्रदेव है उस की आराधना तथा सम्मान कर, तू माता; पिता, भाई और पुत्र आदि से जो कुछ प्रयोजन चाहता है वह तेरा मनोरथ सिद्ध होगा, इस बात का यह पुरावा है कि–तू ने रात्रि में प्रत्यक्ष में अथवा स्वप्न में स्त्री से समागम किया है ।

२१४-हे पूछने वाले ! जो कुछ तेरा काम बिगड़ गया है अर्थात् जो कुछ नुकसान आदि हुआ है अथवा किसी से जो कुछ तुझे लेना है वा जिस किसी ने तुझ से दगाबाजी की है उस को तू भूल जा, यहाँ से कुछ दूर जाने से तुझे लाभ होगा, आज तूने स्वम में देव को वा देवी को वा कुल के बड़े जनों को वा नदी आदि को देखा है, अथवा सज्जनों से तेरी मुलाकात हुई है ।

२२१-हे पूछने वाले! इतने दिनों तक जो कुछ कार्य तू ने किया उस में तुझे बराबर क्लेश हुआ अर्थात् तू ने सुख नहीं पाया, अब तू अपने मन में कुछ कल्याण को चाहता है तथा धन की इच्छा रखता है, तुझे बड़े स्थान (ठिकाने) की चिन्ता है तथा तेरा चित्त चञ्चल है सो अब तेरे दुःख का नाश हुआ और कल्याण की प्राप्ति हुई समझ ले, इस बात की सत्यता का यह प्रमाण है-कि तू स्वम में वृक्ष को देखेगा ।

२२२-हे पूछने वाले ! तेरा सज्जनों के साथ विरोध है और तेरी कुमित्र से मित्रता है, जो तेरे मन में चिन्ता है तथा जिस बड़े काम को तू ने उठा रक्खा है उस काम की सिद्धि बहुत दिनों में होगी तथा तेरा कुछ पाप बाकी है सो उस का नाश हो जाने से तुझे स्थान (ठिकाने) का लाभ होगा ।

२२३-हे पूछने वाले ! इस समय तू ने बुरे काम का मनोरथ किया है तथा तू दूसरे के धन के सहारे से व्यापार कर अपना मतलब निकालना चाहता है, सो उस सम्पत्ति का मिलना कठिन है, तू व्यापार कर, तुझे लाभ होगा; परन्तु तू ने जो मन में बुरा विचार किया है उस को छोड़ कर दूसरे प्रयोजन को विचार, इस बात की सत्यता का यही प्रमाण है कि तू स्वम में अपने खोटे दिन देखेगा ।

२२४-हे पूछने वाले ! तेरे मन में परस्त्री की चिन्ता है, तू बहुत दिनों से तकलीफ को देख रहा है, तू इधर उधर भटक रहा है तथा तेरे साथ यहाँ पर लड़ाई आदि बहुत दिनों से चल रही है, यह सब विरोध शान्त हो जावेगा, अब तेरी तकलीफ गई, कल्याण होगा तथा पाप और दुःख सब मिट गये, तू गुरुदेव की भक्ति कर तथा कुलदेव की पूजा कर, ऐसा करने से तेरे मन के विचारे हुए सब काम ठीक हो जावेंगे ।

२३१-हे पूछने वाले ! तुझे दोनों के विना विचारे ही धन का लाभ होगा, एक महीने में तेरा विचारा हुआ मनोरथ सिद्ध होगा और तुझे बड़ा फल मिलेगा, इस बात की सत्यता का यही प्रमाण है कि-तू ने स्त्रियों की कथा की है अथवा तू स्वम में वृक्षों को, सूने घरों को; अथवा सूने देश को; वा सूखे तालाब को देखेगा ।

२३२-हे पूछने वाले! तू ने बहुत कठिन काम विचारा है, तुझे फायदा नहीं होगा, तेरा काम सिद्ध नहीं होगा तथा तुझे सुख मिलना कठिन है, इस बात की सत्यता का यह प्रमाण है कि-तू स्वम में भैंस को देखेगा ।

२३३–हे पूछने वाले! तेरे मन में अचानक (एकाएक) काम उत्पन्न हो गया है, तू दूसरे के काम के लिये चिन्ता करता है, तेरे मन में विलक्षण तथा कठिन चिन्ता है, तू ने अनर्थ करना विचारा है, इस लिये कार्य की चिन्ता को छोड़ कर तू दूसरा काम कर तथा गोत्रदेवी की आराधना कर, उस से तेरा भला होगा, इस बात की सत्यता का प्रमाण यह है कि–तेरे घर में कलह है, अथवा तू वाहर फिरता है ऐसा देखेगा, अथवा तुझे स्वप्न में देवतों का दर्शन होगा।

२३४–हे पूछने वाले! तेरे काम वहुत है, तुझे धन का लाभ होगा, तू कुटुम्ब की चिन्ता में वार २ मुर्झाता है, तुझे ठिकाने और जमीन जगह की भी चिन्ता है, तेरे मन में पाप नहीं है, इस लिये जल्दी तेरी चिन्ता मिटेगी, तू स्वप्न में गाय को, भैस को तथा जल में तैरने को देखेगा, तेरे दुःख का अन्त आ गया, तेरी बुद्धि अच्छी है इस लिये शुद्ध भक्ति से तू कुलदेवता का ध्यान कर।

२४१–हे पूछने वाले! तुझे विवाहसम्बन्धी चिन्ता है तथा तू कहीं लाभ के लिये जाना चाहता है, तेरा विचारा हुआ कार्य जल्दी सिद्ध होगा तथा तेरे पद की वृद्धि होगी, इस बात का यह पुरावा है कि–मैथुन के लिये तू ने बात की है।

२४२–हे पूछने वाले! तुझे वहुत दिनों से परदेश में गये हुए मनुष्य की चिन्ता है, तू उस को बुलाना चाहता है तथा तू ने जो काम विचारा है वह अच्छा है, परन्तु भावी वलवान् है इस लिये यह बात इस समय सिद्ध होती नही मालूम देती है।

२४३–हे पूछने वाले! तेरा रोग और दुःख मिट गया, तेरे सुख के दिन आ गये, तुझे मनोवाञ्छित (मनचाहा) फल मिलेगा, तेरे सब उपद्रव मिट गये तथा इस समय जाने से तुझे लाभ होगा।

२४४–हे पूछने वाले! तेरे चित्त में जो चिन्ता है वह सब मिट जावेगी, कल्याण होगा तथा तेरा सब काम सिद्ध होगा, इस बात का पुरावा यह है कि–तेरे गुप्त अङ्ग पर तिल है।

३११–हे पूछने वाले! तू इस बात को विचारता है कि–मै देशान्तर (दूसरे देश) को जाऊँ मुझे ठिकाना मिलेगा वा नहीं, सो तू कुलदेवी को वा गुरुदेव को याद कर, तेरे सब विघ्न मिट जावेंगे तथा तुझे अच्छा लाभ होगा और कार्य में सिद्धि होगी, इस बात की सत्यता में यह प्रमाण है कि–तू स्वप्न में पहाड़ वा किसी ऊँचे स्थल को देखेगा।

३१२–हे पूछने वाले! तेरे मनोरथ पूर्ण होवेंगे, तेरे लिये धन का लाभ दीखता है, तेरे कुटुम्ब की वृद्धि तथा शरीर में सुख धीरे २ होगा, देवतों की तथा ग्रहों की जो पूर्व की पीड़ा है उस की शान्ति के लिये देवता की आराधना कर, ऐसा करने से तू जिस

काम का आरम्भ करेगा वह सब सिद्ध होगा, इस बात की सत्यता का यह प्रमाण है कि– तू स्वम में गाय, घोड़ा और हाथी आदि को देखेगा। -

२१२–हे पूछने वाले! तेरे मन में धन की चिन्ता है और तू कुछ दिल का नरम है, तेरे दुश्मन ने तुझे दबा रक्खा है, तेरा मित्र भी तेरी सहायता नहीं करता है, तू सज्जनता को बहुत रखता है, इस लिये तेरा धन लोग खाते हैं, सो कुछ ठहर कर परिणाम में तेरा भला होगा अर्थात् तेरा सब दुःख मिट जावेगा, इस बात का यह पुरावा है कि–तेरे घर में लड़ाई हुई है वा होगी।

२१४–हे पूछने वाले! यह शकुन कल्याण तथा गुण से भरा हुआ है, तू निश्चिन्तता (बेफिक्री) के साथ जल्दी ही सब कामों का सिद्ध होना चाहता है; सो वे सब काम धीरे २ सिद्ध होंगे, इस बात की सत्यता का यह प्रमाण है कि–तू स्वम में वृष्टि का होना, सम्पत्ति, तालाब; वा मछली, इन में से किसी वस्तु को देखेगा।

२२१–हे पूछने वाले! यह शकुन अच्छा नहीं है, यह काम जो तू ने विचारा है निरर्थक है, एक महीने तक तेरे पाप का उदय है इस लिये इस की आशा को छोड़ कर तू दूसरा काम कर, क्योंकि–यह काम अभी नहीं होगा, इस बात की सत्यता का यह प्रमाण है कि–तू स्वम में मोल वा गवैया लोगों को अथवा नगर को देखेगा, सर्कार से तुझे तकलीफ होगी इस लिये यहाँ से और स्थान को चला जा कि–जिस से तुझे तकलीफ न होगी।

२२२–हे पूछने वाले! एक महीना हुआ है तब से धन के लिये तेरे चित्त में उद्वेग हो रहा है परन्तु अब तेरे शत्रु भी मित्र हो जावेंगे, सुख सम्पत्ति की वृद्धि होगी, धन का लाभ अवश्य होगा और सर्कार से भी तुझे कुछ सम्मान मिलेगा, इस बात का यह पुरावा है कि–तू ने मैथुन की बात चीत की है।

२२३–हे पूछने वाले! यद्यपि तेरे भाग्य का थोड़ा उदय है परन्तु तकलीफ तो तुझे है ही नहीं, तुझे अच्छे प्रकार से रहने के लिये ठिकाना मिलेगा, धन का लाभ होगा, प्यारे सज्जनों की मुलाकात होगी तथा सब दुःखों का नाश होगा, तू मन में चिन्ता मत कर, इस बात का यह पुरावा है कि–तू स्वम में प्यारों से मुलाकात को देखेगा।

२२४–हे पूछने वाले! तेरे मकान और जमीन की वृद्धि होगी, तू व्यापार में सम्पत्ति को पावेगा तथा जो तू ने मन में विचार किया है यद्यपि वह सब सिद्ध हो हो जावेगा परन्तु तेरे मन में कोई खटका तथा चिन्ता है, इस बात की सत्यता का यह प्रमाण है कि तेरे शिर में जखम का निशान है, अथवा तू रात को लड़ाई कर के सोया होगा।

२३१–हे पूछने वाले! तू अपने चित्त में काम, कुटुम्ब, घर, सम्पत्ति और धन की

वृद्धि, प्रजा से लाभ तथा वस्त्रलाभ आदि का विचार करता है; सो तू कुलदेव तथा गुरु की भक्ति कर, ऐसा करने से तुझ को अच्छा लाभ होगा, इस बात का यह पुरावा है कि-तू स्वप्न में गाय को देखेगा ।

३३२-हे पूछने वाले! तुझ को तकलीफ है, तेरे भाई और मित्र भी तुझ से बदल कर चल रहे है तथा जो तू अपने मन में विचार करता है उस तरफ से तुझे लाभ का होना नहीं दीखता है, इस लिये तू देशान्तर (दूसरे देश) को चला जा, वहाँ तुझे लाभ होगा, तू आम बात में पराये धन से वर्ताव करता है, इस बात की सत्यता का यह प्रमाण है कि- तू स्वप्न में भाई तथा मित्रों को देखेगा ।

३३३-हे पूछने वाले! तू अपने मन के विचारे हुए फल को पावेगा, तुझे व्यवहार की तथा भाई और मित्रो की चिन्ता है, सो ये सब तेरे विचारे हुए काम सिद्ध होगे ।

३३४-हे पूछने वाले! तू चिन्ता को मत कर, तेरी अच्छे आदमी से मुलाकात होगी, अब तेरे सब दुःख का नाश हुआ, तेरे विचारे हुए सब काम सफल होंगे ।

३४१-हे पूछने वाले! तेरे मन में किसी पराये आदमी से प्रीति करने की इच्छा है सो तेरे लिये अच्छा होगा, तू घवड़ा मत, तुझे सुख होगा, धन का लाभ होगा तथा अच्छे आदमी से मुलाकात होगी ।

३४२-हे पूछने वाले! तेरे मन में पराये आदमी से मुलाकात करने की चिन्ता है, तेरे ठिकान की वृद्धि होगी, कल्याण होगा, प्रजा की वृद्धि तथा आरोग्यता होगी, इस वात का यह पुरावा है कि-तू स्वप्न में वृक्ष को देखेगा ।

३४३-हे पूछने वाले! तुझे वैरी की अथवा जिस किसी ने तेरे साथ विश्वासघात (दगाबाजी) किया है उस की चिन्ता है, सो इस शकुन से ऐसा मालूम होता है कि-तेरे वहुत दिन क्लेश में वीतेंगे और तेरी जो चीज़ चली गई है वह पीछे नहीं आवेगी परन्तु कुछ दिन पीछे तेरा कल्याण होगा ।

३४४-हे पूछने वाले! तेरे सब काम अच्छे है, तुझे शीघ्र ही मनोवाञ्छित (मन चाहा) फल मिलेगा, तुझे जो व्यापार की तथा भाई बन्धुओ की चिन्ता है वह सब मिट जावेगी, इस बात का यह पुरावा है कि-तेरे शिर में घाव का चिह्न है, तू उद्यम कर अवश्य लाभ होगा ।

४११-हे पूछने वाले! तेरे धन की हानि, शरीर में रोग और चित्त की चञ्चलता, ये वातें सात वर्ष से हो रही हैं, जो काम तू ने अब तक किया है उस में नुकसान होता रहा है परन्तु अब तू खुश हो, क्योंकि-अब तेरी तकलीफ चली गई, तू अब चिन्ता मत कर; क्योंकि-अब कल्याण होगा, धन धान्य की आमद होगी तथा सुख होगा ।

४१२–हे पूछने वाले ! तेरे मन में स्त्रीविषयक चिन्ता है, तेरी कुछ रकम भी लेने में फँस रही है और अब तू माँगता है तब केवल हाँ, नाँ होती है, धन के विषय में तकरार होने पर भी तुझे लाभ होता नहीं दीखता है, यद्यपि तू अपने मन में शुभ समय (सुखवस्ती) समझ रहा है परन्तु उस में कुछ दिनों की ढील है अर्थात् कुछ दिन पीछे तेरा मतलब सिद्ध होगा ।

४१३–हे पूछने वाले ! तेरे मन में धनलाभ की चिन्ता है और तू किसी प्यारे मित्र की मुलाकात को चाहता है, सो तेरी जीत होगी, अचल ठिकाना मिलेगा, पुत्र का लाभ होगा, परदेश जाने पर कुशल क्षेम रहेगा तथा कुछ दिनों के बाद तेरी बहुत वृद्धि होगी, इस बात की सत्यता का यह प्रमाण है कि–तू स्वम में काच (दर्पण) को देखेगा ।

४१४–हे पूछने वाले ! यह बहुत अच्छा शकुन है, तुझे द्विपद अर्थात् किसी आदमी की चिन्ता है, सो महीने भर में मिट जावेगी, धन का लाभ होगा, मित्र से मुलाकात होगी तथा मन के विचारे हुए सब काम शीघ्र ही सिद्ध होंगे ।

४२१–हे पूछने वाले ! तू धन को चाहता है, तेरी संसार में प्रतिष्ठा होगी, परदेश में जाने से मनोवाञ्छित (मनचाहा) लाभ होगा तथा सज्जन की मुलाकात होगी, तू ने स्वम में धन को देखा है, वा स्त्री की बात की है, इस अनुमान से सब कुछ अच्छा होगा, तू माता की शरण में जा; ऐसा करने से कोई भी विघ्न नहीं होगा ।

४२२–हे पूछने वाले ! तेरे मन में ठकुराई की चिन्ता है; परन्तु तेरे पीछे तो दरिद्रता पड़ रही है, तू पराये (दूसरे के) काम में लगा रहा है, मन में बड़ी तकलीफ पा रहा है तथा तीन वर्ष से तुझे क्लेश हो रहा है अर्थात् सुख नहीं है, इस लिये तू अपने मन के विचारे हुए काम को छोड़ कर दूसरे काम को कर, वह सफल होगा, तू कठिन स्वम को देखता है तथा उस का तुझे ज्ञान नहीं होता है, इस लिये जो तेरा कुलधर्म है उसे कर, गुरु की सेवा कर तथा कुलदेव का ध्यान कर, ऐसा करने से सिद्धि होगी ।

४२३–हे पूछने वाले ! तेरा विजय होगा, शत्रु का क्षय होगा, धन सम्पत्ति का लाभ होगा, सज्जनों से प्रीति होगी, कुशल क्षेम होगा तथा ओषधि करने आदि से लाभ होगा, अब तेरे पाप क्षय (नाश) को प्राप्त हुए; इस लिये जिस काम को तू विचारता है वह सब सिद्ध होगा, इस बात का यह पुरावा है कि–तू स्वम में वृक्ष को देखेगा ।

४२४–हे पूछने वाले ! तेरे मन में बड़ी भारी चिन्ता है, तुझे अर्थ का लाभ होगा, तेरी जीत होगी, सज्जन की मुलाकात होगी, सब काम सफल होंगे तथा चित्त में आनन्द होगा ।

४३१–हे पूछने वाले ! यह शकुन दीर्घायुष्कारक (बड़ी उम्र का करने वाला) है, तुझे दूसरे ठिकाने की चिन्ता है, तू भाई बन्धुओं के आगमन को चाहता है, तू अपने मन में

जिस काम को विचारता है वह सब सिद्ध होगा, अब तेरे दुःख का नाश हो गया है परन्तु तुझे देशान्तर (दूसरे देश) में जाने से धन का लाभ होगा और कुशल क्षेम से आना होगा, इस बात का यह पुरावा है कि–तू स्वप्न में पहाड़ पर चढना तथा मकान आदि को देखेगा, अथवा तेरे पैर पर पचफोड़े का चिह्न (निशान) है ।

४३२–हे पूछने वाले ! अब तेरे सब दुःख समाप्त हुए तथा तुझे कल्याण प्राप्त हुआ तुझे ठिकाने की चिन्ता है तथा तू किसी की मुलाकत को चाहता है सो जो कुछ काम तू ने विचारा है वह सब होगा, देशान्तर (दूसरे देश) में जाने से धन की प्राप्ति होगी तथा वहाँ से कुशल क्षेम से तू आवेगा ।

४३३–हे पूछने वाले ! जब तेरे पास पहिले धन था तब तो मित्र पुत्र और भाई आदि सब लोग तेरा हुक्म मानते थे, परन्तु खोटे कर्म के प्रभाव से अब वह सब धन नष्ट हो गया है, खैर ! तू चिन्ता मत कर, फिर तेरे पास धन होगा, मन खुश होगा तथा मन में विचारे हुए सब काम सिद्ध होंगे ।

४३४–हे पूछने वाले ! जिस का तू मरना विचारता है वह अभी नहीं होगा (वह अभी नहीं मरेगा) और तू ने जो यह विचार किया है कि–यह मेरा काम कब होगा, सो वह तेरा काम कुछ दिनों के बाद होगा ।

४४१–हे पूछने वाले ! तेरे भाई का नाश हुआ है तथा तेरे क्लेश, पीडा और कष्ट के बहुत दिन बीत गये हैं, अब तेरे ग्रह की पीड़ा केवल पाँच पक्ष वा पाच दिन की है, जिस काम को तू विचारता है उस में तुझे फायदा नहीं है, इस लिये दूसरे काम को विचार, उस में तुझे कुछ फल मिलेगा ।

४४२–हे पूछने वाले ! जिस काम का तू प्रारम्भ करता है वह काम यत्न करने पर भी सिद्ध होता हुआ नहीं दीखता है, अर्थात् इस शकुन से इस काम का सिद्ध होना प्रतीत नहीं होता है इस लिये तू दूसरा काम कर ।

४४३–हे पूछने वाले ! जिस काम का तू प्रारम्भ करता है वह काम सिद्ध नहीं होगा, तू पराये वास्ते (दूसरे के लिये) जो अपने प्राण देता है वह सब तेरा उपाय व्यर्थ है इस लिये तू दूसरी बात का विचार कर, उस में सिद्धि होगी ।

४४४–हे पूछने वाले ! जिस काम का तू वारवार विचार करता है वह तुझे शीघ्र ही प्राप्त होगा अर्थात् पुत्र का लाभ, ठिकाने का लाभ, गई हुई वस्तु का लाभ तथा धन का लाभ, ये सब कार्य बहुत शीघ्र होंगे ॥

प्रदेशगमनादिविषयक शकुन विचार ॥

१–यदि ग्राम को जाते समय कुमारी कन्या, सधवा (पतिवाली) स्त्री, गाय, भरा

हुआ घड़ा, दही, भेरी, शङ्ख, उत्तम फल, पुष्पमाला, विना धूम की अग्नि, घोड़ा, हाथी, रथ, बैल, राजा, मिट्टी, चँवर, सुपारी, छत्र (छाता), सिद्ध (तैयार किये हुए) भोजन से भरा हुआ थाल, वेश्या, चोरों का समूह, गडुआ, आरसी, सिकोरा, दोना, मांस, मद्य, मुकुट, चकडोल (यानविशेष), मधुसहित घृत, गोरोचन, चावल, रत्न, वीणा, कमल, सिंहासन, सम्पूर्ण हथियार, मृदङ्ग आदि सम्पूर्ण बाजे, गीत की ध्वनि, पुत्र के सहित स्त्री, बछड़े के सहित गाय, धोये हुए वस्त्रों को लिये हुये धोबी, ओघा और मुँहपत्ती के सहित साधु, तिलक के सहित ब्राह्मण, बजाने का नगारा तथा ध्वजापताका इत्यादि शुभ पदार्थ सामने दीख पड़ें अथवा गमन करने के समय–'आओ आओ' 'निकलो' 'छोड़ दो' 'जय पाओ' 'सिद्धि करो' 'वाञ्छित फल को प्राप्त करो' इस प्रकार के शुभ शब्द सुनाई देवें तो कार्य की सिद्धि समझनी चाहिये अर्थात् इन शकुनों के होने से अवश्य कार्य सिद्ध होता है।

२–ग्राम को जाते समय यदि सामने वा दाहिनी तरफ छींक होवे, काँटे से वस्त्र फट जावे वा उलझ जावे, वा काँटा लग जावे, वा कराहने का शब्द सुनाई पड़े, अथवा साँप का वा बिलाव का दर्शन हो तो गमन नहीं करना चाहिये।

३–चलते समय यदि नीलचास, मोर, भारद्वाज और नेवला दृष्टिगत हो तो उत्तम है।

४–चलते समय कुक्कुट (मुर्गे) का बाईं तरफ बोलना उत्तम होता है।

५–चलते समय बाईं तरफ राजा का दर्शन होने से सब कष्ट दूर होता है।

६–चलते समय बाईं तरफ गधे के मिलने से मनोवाञ्छित कार्य सिद्ध होता है।

७–चलते समय दाहिनी तरफ नाहर के मिलने से उत्तम प्रसिद्धि सिद्धि होती है।

८–चलते समय सम्पूर्ण नखायुधों का बाईं तरफ मिलना तथा घुसते समय दाहिनी तरफ मिलना मङ्गलकारी होता है।

९–चलते समय गधे का बाईं तरफ मिलना तथा घुसते समय दाहिनी तरफ मिलना उत्तम होता है।

१०–पीछे तथा सामने जब गधा बोलता हो उस समय गमन करना चाहिये।

११–चलते समय यदि गधा मैथुन सेवन करता हुआ मिले तो धन का लाभ तथा कार्य की सिद्धि जानी जाती है।

१२ चलते समय यदि गधा बाईं तरफ लिंग को दिखाता हुआ दीखे तो कुशल का सूचक होता है।

१३–यदि सुआ (तोता) बाईं तरफ बोले तो भय दाहिनी तरफ बोले तो महालाभ, सूखी हुई लकड़ी पर बैठा हुआ बोले तो भय तथा सम्मुख बोले तो बन्धन होता है।

१–उत्तम शब्द का अर्थ सर्वत्र शुभफलदायक समझना चाहिये ॥

१४–यदि मैना सामने वोले तो कलह, दाहिनी तरफ वोले तो लाभ और सुख, वाईं तरफ वोले तो अशुभ तथा पीठ पीछे वोले तो मित्रसमागम होता है।

१५–ग्राम को चलते समय यदि वगुला वायें पैर को ऊँचा (ऊपर को) उठाये हुए तथा दाहिने पैर के सहारे खड़ा हुआ दीख पडे तो लक्ष्मी का लाभ होता है।

१६–यदि प्रसन्न हुआ वगुला वोलता हुआ दीखे, अथवा ऊँचा (ऊपर को) उडता हुआ दीखे तो कन्या और द्रव्य का लाभ तथा सन्तोष होता है और यदि वह भयभीत होकर उडता हुआ दीखे तो भय उत्पन्न होता है।

१७–ग्राम को जाते समय यदि वहुत से चकवे मिले हुए वैठे दीखें तो वड़ा लाभ और सन्तोष होता है तथा यदि भयभीत हो कर उड़ते हुए दीखें तो भय उत्पन्न होता है।

१८–यदि सारस वाईं तरफ दीखे तो महासुख, लाभ और सन्तोष होता है, यदि एक एक वैठा हुआ दीखे तो मित्रसमागम होता है, यदि सामने वोलता हुआ दीखे तो राजा की कृपा होती है तथा यदि जोड़े के सहित वोलता हुआ दीखे तो स्त्री का लाभ होता है परन्तु दाहिनी तरफ सारस का मिलना निषिद्ध होता है।

१९–ग्राम को जाते समय यदि टिट्टिभी (टिंटोड़ी) सामने वोले तो कार्य की सिद्धि होती है तथा यदि वाईं तरफ वोले तो निकृष्ट[1] फल होता है।

२०–जाते समय यदि जलकुक्कुटी (जलमुर्गावी) जल में वोलती हो तो उत्तम फल होता है तथा यदि जल के वाहर वोलती हो तो निकृष्ट फल होता है।

२१–ग्राम को चलते समय यदि मोर एक शब्द[2] वोले तो लाभ, दो वार वोले तो स्त्री का लाभ, तीन वार वोले तो द्रव्य का लाभ, चार वार वोले तो राजा की कृपा तथा पाँच वार वोले तो कल्याण होता है, यदि नाचता हुआ मोर दीखे तो उत्साह उत्पन्न होता है तथा यह मंगलकारी और अधिक लाभदायक होता है।

२२–गमन के समय यदि समली आहार के सहित वृक्ष के ऊपर वैठी हुई दीखे तो वड़ा लाभ होता है, यदि आहार के विना वैठी हो तो गमन निष्फल होता है, यदि वाईं तरफ वोलती हो तो उत्तम फल होता है तथा यदि दाहिनी तरफ वोलती हो तो उत्तम फल नहीं होता है।

२३–ग्राम को चलते समय यदि घुग्घू वाईं तरफ वोलता हो तो उत्तम फल होता है, यदि दाहिनी तरफ वोलता हो तो भय उत्पन्न होता है, यदि पीठ पीछे वोलता हो तो वैरी वश में होता है, यदि सामने वोलता हो तो भय उत्पन्न होता है, यदि अधिक शब्द

१–वुरा अर्थात् अशुभ फल का सूचक।

२–'एक शब्द,' अर्थात् एक वार।

करता हो तो अधिक वैरी उत्पन्न होते हैं, यदि घर के ऊपर बोले तो स्त्री की मृत्यु होती है अथवा अन्य किसी गृहजन की मृत्यु होती है तथा यदि तीन दिन तक बोलता रहे तो चोरी का सूचक होता है।

२४–चलते समय कबूतर का दाहिनी तरफ होना लाभकारी होता है, बाईं तरफ होने से भाई और परिजन को कष्ट उत्पन्न होता है तथा पीछे चुगता हुआ होने से उत्तम फल होता है।

२५–यदि मुर्गा स्थिरता के साथ बाईं तरफ शब्द करता हो तो लाभ और सुख होता है तथा यदि भय से आन्त हो कर बाईं तरफ बोलता हो तो भय और क्लेश उत्पन्न होता है।

२६–यदि नीलकण्ठ पक्षी सामने वा दाहिनी तरफ क्षीर वृक्ष के ऊपर बैठा हुआ बोले तो सुख और लाभ होता है, यदि वह दाहिनी तरफ हो कर तोरण पर आवे तो अत्यन्त लाभ और कार्य की सिद्धि होती है, यदि वह बाईं तरफ और स्थिर चित्त से बोलता हुआ दीखे तो उत्तम फल होता है तथा यदि चुप बैठा हुआ दीखे तो उत्तम फल नहीं होता है।

२७–नीलकण्ठ और नीलिया पक्षी का दर्शन भी शुभकारी होता है, क्योंकि चलते समय इन का दर्शन होने से सर्व सम्पत्ति की प्राप्ति होती है।

२८–ग्राम को चलते समय अथवा किसी शुभ कार्य के करते समय यदि भौंरा बाईं तरफ पुष्प पर बैठा हुआ दीखे तो हर्ष और कल्याण का करने वाला होता है, यदि सामने पुष्प के ऊपर बैठा हुआ दीखे तो भी शुभकारक होता है तथा यदि लड़ते हुए दो भौंरे शरीर पर आ गिरें तो अशुभ होता है, इस लिये ऐसी दशा में वस्त्रों के सहित स्नान करना चाहिये और काले पदार्थ का दान करना चाहिये, ऐसा करने से सर्व दोष निवृत्त हो जाता है।

२९–ग्राम को चलते समय यदि मकड़ी बाईं तरफ से दाहिनी तरफ को उतरे तो उस दिन नहीं चलना चाहिये, यदि बाईं तरफ जाल को बालती हुई दीख पड़े तो अर्थ की सिद्धि, लाभ और कुशल होता है, यदि दाहिनी तरफ से बाईं तरफ को उतरे तो भी शुभ होता है, यदि पैर की तरफ से ऊपर जाँघ पर चढ़े तो घोड़े की प्राप्ति होती है, यदि कण्ठ तक चढ़े तो वस्त्र और आभूषण की प्राप्ति होती है, यदि मस्तक पर्यन्त चढ़े तो राजमान प्राप्त होता है तथा यदि शरीर पर चढ़े तो वस्त्र की प्राप्ति होती है, मकड़ी का ऊपर को चढ़ना शुभकारी और नीचे को उतरना अशुभकारी होता है।

३०–ग्राम को चलते समय कानखजूरे का बाईं तरफ को उतरना शुभ होता है तथा दाहिनी तरफ को उतरना एवं मस्तक और शरीर पर चढ़ना बुरा होता है।

३१–ग्राम को चलते समय यदि हाथी दाहिने दाँत के ऊपर सूँड़ को रक्खे हुए अथवा सूँड़ को उछालता हुआ सामने आता दीख पड़े तो सुख, लाभ और सन्तोष होता है तथा वाईं तरफ वा अन्य किसी तरफ सूँड को किये हुए दीखे तो सामान्य फल होता है, इस के अतिरिक्त हाथी का सामने मिलना अच्छा होता है।

३२–यदि घोडा अगले दाहिने पैर से पृथिवी को खोदता हुआ वा दाँत से दाहिने अंग को खुजलाता हुआ दीखे तो सर्व कार्यों की सिद्धि होती है, यदि वायें पैर को पसारे हुए दीख पडे तो क्लेश होता है तथा यदि सामने मिल जावे तो शुभकारी होता है।

३३–ऊँट का वाईं तरफ बोलना अच्छा होता है, दाहिनी तरफ बोलना क्लेशकारी होता है, यदि साँड़नी सामने मिले तो शुभ होती है।

३४–यदि चलते समय बैल वाँयें सींग से वा वाँयें पैर से धरती को खोदता हुआ दीख पड़े तो अच्छा होता है अर्थात् इस से सुख और लाभ होता है, यदि दाहिने अंग से पृथिवी को खोदता हुआ दीख पड़े तो बुरा होता है, यदि बैल और भैसा इकट्ठे खड़े हुए दीख पड़ें तो अशुभ होता है, ऐसी दशा में ग्राम को नही जाना चाहिये, यदि जावेगा तो प्राणों का सन्देह होगा, यदि डकराता (दड़ूकता) हुआ साँड़ सामने दीख पड़े तो अच्छा होता है।

३५–यदि गाय बाईं तरफ शब्द करती हुई अथवा बछड़े को दूध पिलाती हुई दीख पड़े तो लाभ, सुख और सन्तोष होता है तथा यदि पिछली रात को गाय बोले तो क्लेश उत्पन्न होता है।

३६–यदि गधा बाईं तरफ को जावे तो सुख और सन्तोष होता है, पीछे की तरफ वा दाहिनी तरफ को जावे तो क्लेश होता है, यदि दो गधे परस्पर में कन्धे को खुजलावें, वा दाँतों को दिखावें, वा इन्द्रिय को तेज करें, वा बाईं तरफ को जावें तो बहुत लाभ और सुख होता है, यदि गधा शिर को धुने वा राख में लोटे अथवा परस्पर में लड़ता हुआ दीख पड़े तो अशुभ और क्लेशकारी होता है तथा यदि चलते समय गधा बाईं तरफ बोले और घुसते समय दाहिनी तरफ बोले तो शुभकारी होता है।

३७–ग्राम को चलते समय बन्दर का दाहिनी तरफ मिलना अच्छा होता है तथा मध्याह्न के पश्चात् बाईं तरफ मिलना अच्छा होता है।

३८–यदि कुत्ता दाहिनी कोख को चाटता हुआ दीख पड़े अथवा मुख में किसी भक्ष्य पदार्थ को लिये हुए सामने मिले तो सुख, कार्य की सिद्धि और बहुत लाभ होता है, फले और फूले हुए वृक्ष के नीचे बाड़ी में, नीली क्यारियों में, नीले तिनकों पर; द्वार की ईंट पर तथा धान्य की राशि पर यदि कुत्ता पेशाब करता हुआ दीख पड़े तो बड़ा लाभ और सुख होता है, यदि बाईं तरफ को उतरे वा जाँघ, पेट और हृदय को दाहिने पिछले

पैर से चाटता हुआ अथवा खुजलाता हुआ दीख पड़े तो बड़ा लाभ होता है, यदि सूखे पर; ऊसली की दाहिनी तरफ, श्मशान में, वा पत्थर पर मूतता हुआ दीख पड़े तो बड़ा कष्ट उत्पन्न होता है, ऐसे शकुन को देख कर ग्राम को नहीं जाना चाहिये, ग्राम को चलते समय यदि कुत्ता ऊँचा बैठा हुआ कान मस्तक और हृदय को खुजलाता हुआ या चाटता हुआ दीख पड़े अथवा दो कुत्ते खेलते हुए दीख पड़ें तो कार्य की सिद्धि होती है तथा यदि कुत्ता भूमि पर लोटता हुआ वा स्वामी से लाड़ किया जाता हुआ खाट पर बैठा दीखे तो तो बड़ा क्लेश उत्पन्न होता है।

३९–यदि ग्राम को जाते समय मुख में भक्ष्य पदार्थ को लिये हुए बिल्ली सामने दीख पड़े तो लाभ और कुशल होता है, यदि दो बिल्लियाँ लड़ती हों वा घुर २ शब्द कर रही हों तो अशुभ होता है तथा यदि बिल्ली मार्ग को काट जावे तो ग्राम को नहीं जाना चाहिये।

४०–ग्राम को जाते समय छछूँदर का बाईं तरफ होना उत्तम होता है तथा दाहिनी तरफ होना बुरा होता है।

४१–ग्राम को जाते समय यदि प्रात काल हरिण दाहिनी तरफ जावे तो अच्छा होता है परन्तु यदि हरिण सींग को ठोंके, शिर को हिलावे, मूत्र करे, मल करे वा छींके तो, दाहिनी तरफ भी अच्छा नहीं होता है।

४२–ग्राम को जाते समय शृगाल का बाईं तरफ बोलना तथा घुसते समय दाहिनी तरफ बोलना उत्तम होता है।

यह पञ्चम अध्याय का शकुनावलिवर्णन नामक ग्यारहवाँ प्रकरण समाप्त हुआ।

इति श्री जैनश्वेताम्बर–धर्मोपदेशक–यतिप्राणाचार्य–विवेकलब्धिशिष्य
शीलसौभाग्यनिर्मितः जैनसम्प्रदायशिक्षायाः।
पञ्चमोऽध्यायः॥